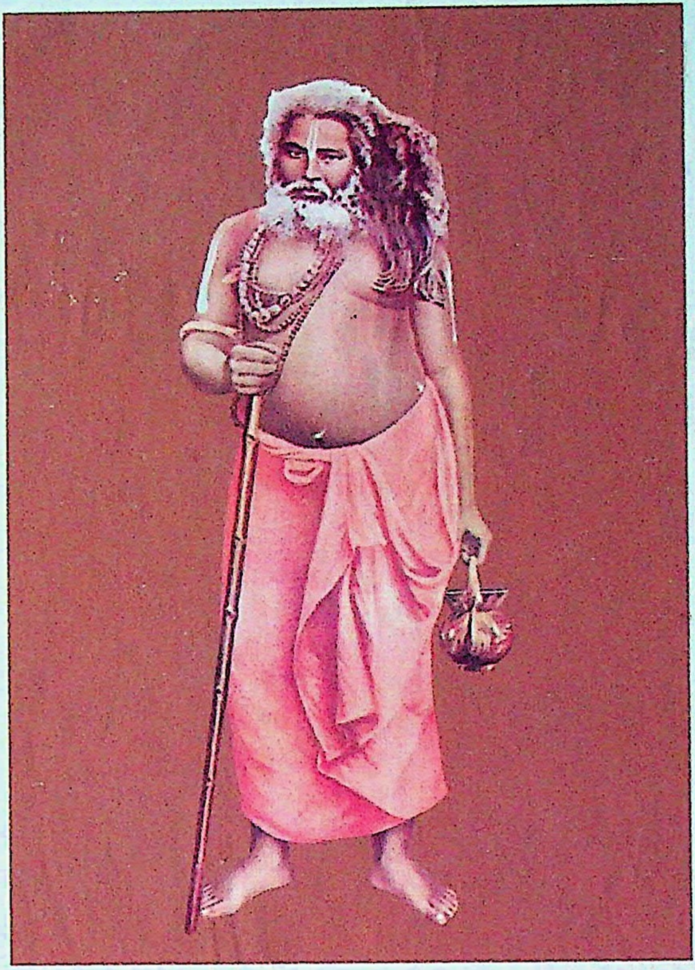

श्री श्री विजयकृष्ण परिजन

(प्रथम खण्ड)

ॐ

श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन

(प्रथम खण्ड)

— लेखक —

श्री दुर्गेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्तसंघ
स्टेशन रोड
पोस्ट – रघुनाथपुर, जिला – पुरुलिया
(पश्चिम बंगाल) पिनः 723 133

प्रकाशक :
श्रीश्री विजयकृष्ण भक्तसंघ
स्टेशन रोड
पोस्ट – रघुनाथपुर, जिला – पुरुलिया
(पश्चिम बंगाल) पिनः 723 133

प्रथम बंगला संस्करण :

रासपूर्णिमा 1398 (Bengali Year)

प्रथम हिन्दी संस्करण :

रासपूर्णिमा 2008 ई०

प्रचार सामग्री : सहयोग राशि – रू. 125/-

मुद्रक :
गोयल पेपर उद्योग
जुगसलाई, जमशेदपुर
पिन : 831006
फोन : 0657–2291651, 09431180077

ग्रन्थ परिचय

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का नाम भक्त समाज में प्रायः सभी ने सुना है। हिन्दी एवं अन्य भाषा में उनके जीवन एवं उपदेश के सम्बन्ध में बहुत ही कम साहित्य प्रकाशित हुए हैं। विगत् चालीस वर्षों से 'श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ' द्वारा विभिन्न स्थानों में नाम–संकीर्तन का प्रचार कार्य किया जा रहा है। विभिन्न स्थानों में भक्त लोग सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के सम्बन्ध में जानने के लिए जिस प्रकार आग्रह प्रकाश करते थे, उसे देखकर हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम 'साधना पथ' ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। इस ग्रन्थ में श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु एवं श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी की संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेशों को प्रकाशित किया गया है।

जिस प्रकार किसी वृक्ष का परिचय उसके फूल और फलों से मिलता है उसी प्रकार किसी सिद्ध महात्मा एवं सद्‌गुरु का परिचय उसके आश्रित परिजनों के जीवन की पर्यालोचना से मिलता है। गोस्वामीजी के निकट दीक्षा प्राप्त करके अनेक लोगों का जीवन जिस प्रकार दिव्य रूपान्तरित हुआ है वह अध्यात्म जगत् में दृष्टान्त स्वरूप है। इन लोगों में कुछ तो तंपस्या में तल्लीन हो गए, कुछ ने सद्‌गुरु का प्रत्यक्ष निर्देश प्राप्त कर दीक्षा प्रदान किए और कुछ लोगों ने सद्‌गुरु की प्रेरणा एवं निर्देशानुसार स्वदेश सेवा एवं छात्रों के चरित्र–निर्माण कार्य में अपना जीवन उत्सर्ग किया। इन महान् शिष्यों के सम्बन्ध में परिचय देने के लिए 'श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन' ग्रन्थ को सर्वप्रथम बंगला भाषा में प्रकाशित किया गया। ग्रन्थ का विशेष प्रचार न होने पर भी ग्रन्थ के दो संस्करण अल्प समय के मध्य ही प्रकाशित हो चुके हैं। बंगला भाषा में इस ग्रन्थ के क्रमशः पाँच खण्ड प्रकाशित हुए जिसे 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन के बंगला भाषा के अध्यापक डॉ॰ दुर्गेशचन्द्र ने लिखा। वृद्धावस्था में अस्वस्थता के बाद भी जिस प्रकार एक के बाद एक खण्ड वे लिखते गए यह देखकर सभी विस्मित हो गए। अन्तिम अर्थात् पंचम खण्ड समाप्त कर उसकी पांडुलिपी जिस दिन हमें प्राप्त हुई उसके तीन दिन बाद ही उनके महाप्रयाण का संवाद प्राप्त हुआ। उस समय ऐसा लगा कि इस

महान् कार्य को सम्पूर्णता प्रदान करने के लिए ही सद्गुरु गोस्वामीजी ने उन्हें विशेष शक्ति दी थी।

बंगला भाषा में 'श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन' ग्रन्थ को पाँच खण्डों में लिखा गया है परन्तु हिन्दी भाषा में अनुवाद करते समय इसे दो खण्डों में सम्पूर्ण कर दिया गया है। अनुवाद कार्य में सर्वप्रथम श्रीमती गौरी बसु अग्रसर हुईं। भाषा संशोधन कार्य में अविनाश, अनिल, अशोक एवं अनूप के सहयोग से ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की गई है।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मूल बंगला ग्रन्थ में अधिकांश स्थानों पर बंगला संवत् का उल्लेख है। वर्तमान में सर्वत्र ईस्वी सन् प्रचलित है इस कारण पाठकों की सुविधा के लिए बंगला संवत् के साथ–साथ ईस्वी सन् भी दिया गया है। परन्तु तिथि अथवा महीने को ईस्वी सन् में परिवर्तन नहीं किया है। यदि कहीं पर बंगला संवत् के साथ अंग्रेजी ईस्वी सन् मेल न हो तो बंगला सन् को ही ठीक मान लेना उचित होगा।

आशा है सद्गुरु एवं उनकी साधना के सम्बन्ध में सम्यक अवधारणा के लिए यह ग्रन्थ सहायक होगी।

विनीत
प्रकाशक

****

प्रस्तावना

(बंगला प्रथम संस्करण से)

डॉ॰ दुर्गेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय मेरे अत्यन्त श्रद्धा के पात्र हैं। उन्होंने दीर्घकाल, लगभग तीस वर्ष 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया है। बंगला भाषा के अध्यापक होने के कारण मेरे साथ उनका बहुत पहले से परिचय रहा है। जो क्रमशः घनिष्टता का रूप धारण कर लिया। उनके नम्र, विनयी एवं मधुर स्वभाव के साथ विद्वता का, मणि–कांचन संयोग का प्रकाश उनके व्यक्तित्व में दिखलाई पड़ता था। इनके व्यक्तित्व के सम्पर्क में आकर अन्य लोगों की भांति मैं भी मुग्ध हुआ हूँ।

उनके स्वभाव की विशेषता थी स्वयं को सर्वदा गुप्त रखना। उनके जैसा आत्म समाहित विद्वान तपस्वी आज के युग में विरल है। हमेशा नीरवता एवं परम् निष्ठा के साथ उन्होंने ज्ञान–चर्चा एवं गवेषणा कार्य में अपने को नियुक्त रखा। वृद्धावस्था में भी उनकी यह प्रतिभा, उनके मनन–शक्ति को थोड़ा भी म्लान नहीं होने दी, इसका प्रमाण मिलता है 'श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन' ग्रन्थ में। इस ग्रन्थ के पाठक भी इस विषय में अपनी स्वीकृति देंगे यह मेरा विश्वास है।

यह ग्रन्थ विजयकृष्ण गोस्वामीजी की जीवनी नहीं है – इस ग्रन्थ में उनके कृपापात्र यथा विपिनचन्द्र पाल, अश्विनीकुमार दत्त आदि कुछ लोगों की जीवनकथा का उल्लेख है। इन लोगों के अध्यात्म जीवन के दर्शन में प्रसंगवश श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी प्रदर्शित साधना की दिव्य विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है।

ग्रन्थ को पढ़ते समय पाठक अनुभव करेंगे कि यह एक भक्त के द्वारा लिखा गया हे पर भाव की अभिव्यक्ति से जीवनगाथा कहीं भी अस्पष्ट नहीं हुई है। लेखक का मनन एवं तथ्यनिष्ठा, जीवन–कथा के माध्यम से व्यक्ति के चरित्र को उज्ज्वल रूप से व्यक्त करता दिखलाई पड़ता है। इस तरह लेखक के भक्त एवं ज्ञानी, इन दोनों सत्ता की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है।

एक और विशेषता ग्रन्थ में मिलेगी – 'श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन' ग्रन्थ किसी व्यक्ति विशेष के धर्म या अध्यात्म साधना की केवल कथा ही नहीं है, इसके साथ समकालीन अविभक्त बंगाल के समाजिक जीवन का चित्र इसमें मिलता है, जिसका मूल्य सभी स्वीकार करेंगे। लेखक ने इस सत्य को सर्वदा स्मरण में रखा है कि श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के जिन विस्मृत शिष्यों की कथा ग्रन्थ में आलोचित हुई है, बंगाल के समाजिक, राष्ट्रीय तथा गवेषणा के विचार से उनकी भूमिका अनुपम रही है।

ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने हेतु लेखक का अनुरोध करने के लिए, उन्हें अपनी आन्तरिक कृतज्ञता एवं श्रद्धा व्यक्त करता हूँ। यह ग्रन्थ भक्त पाठक समाज में समादृत हो – यही प्रार्थना है।

श्री गोपिकानाथ राय चौधरी
प्रधान, बंगलाभाषा एवं साहित्य विभाग
विश्वभारती विश्वविद्यालय, (प. बंगाल)

शान्ति निकेतन
21 September,1986

गोस्वामीजी की संक्षिप्त जीवन–पंजी

1. आविर्भाव – 19 श्रावण, 1248 बंगला सन् (2 अगस्त, सन् 1841 ई0), सोमवार, श्रावण पूर्णिमा तिथि।
2. जन्म स्थान – दहकुल, शिकारपुर (जिला–नदिया)
3. निवास स्थान – श्रीश्री श्यामसुन्दरजी की ठाकुरबाड़ी, शांतिपुर (जिला–नदिया)
4. वंश परिचय – वारेन्द्र ब्राह्मण, अद्वैत वंश – दशम् पीढ़ी
   - पिता – आनन्दकिशोर गोस्वामी
   - माता – स्वर्णमयी देवी
   - पत्नी – योगमाया देवी
     - अविर्भाव सन् 1852 ई0 कृष्ण द्वादशी (बुधवार)
     - जन्म स्थान – शिकारपुर (जिला–नदिया)
5. पिता आनन्दकिशोर का अप्रकट होना – अक्षय तृतीया, मई, 1844 ई0
6. उपनयन संस्कार – सन् 1850 ई0
7. संस्कृत कॉलेज में प्रवेश – सन् 1858 ई0
8. विवाह – सन् 1858 ई0
9. मेडिकल कालेज में प्रवेश – सन् 1860 ई0
10. महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के निकट ब्राह्मधर्म ग्रहण सन् – 1861 ई0
11. शांतिपुर समाज द्वारा परित्याग – सन् 1862 ई0
12. महर्षि देवेन्द्रनाथ के द्वारा उपाचार्य पद ग्रहण – सन् 1864 ई0
13. नवीन और प्राचीन ब्राह्म लोगों में मतभेद – सन् 1866 ई0
14. नवीन ब्राह्म लोगों के प्रमुख केशवचन्द्र सेन द्वारा भारतवर्षीय ब्राह्म–समाज की स्थापना – 10 नवम्बर, 1866 ई0
15. विजयकृष्ण गृहस्थ आश्रम में –
    - प्रथम कन्या (संतोषिनी) का जन्म – 1867 ई0 (लगभग 4 वर्ष की आयु में मृत्यु)
    - एकमात्र पुत्र (योगजीवन) का जन्म – 15 दिसम्बर, 1870 ई0
    - द्वितीय कन्या (शांतिसुधा) का जन्म– जनवरी 1873 ई0
    - तृतीय कन्या (प्रेममाला) का जन्म – अनुमान 1877 ई0 (लगभग 4 वर्ष की आयु में मृत्यु)
    - चतुर्थ कन्या (प्रेमसखी) का जन्म – 1879 ई0 (लगभग 16 वर्ष की आयु में मृत्यु)
16. परमहंस श्री रामकृष्ण के साथ केशवचन्द्र का मिलन – सन् 1872 ई0

17. केशवचन्द्र का ब्राह्म–विवाह कानून न मानकर कन्या का विवाह करना सन् 1878 ई0
18. केशवचन्द्र के साथ मतभेद तथा विजयकृष्ण आदि ब्राह्म युवकों द्वारा साधारण ब्राह्म–समाज की स्थापना – 16 मई, 1878 ई0
19. केशवचन्द्र सेन द्वारा 'नव–विधान' नामक पृथक ब्राह्म–समाज की स्थापना – सन् 1880 ई0
20. श्री रामकृष्ण के साथ विजयकृष्ण का प्रथम मिलन – 27 अक्टूबर, 1882 ई0
21. गया में विजयकृष्ण की दीक्षा प्राप्ति – अगस्त, 1883 ई0
22. वाराणसी में संन्यास ग्रहण – सितम्बर/अक्टूबर (अनुमान), 1883 ई0
23. गुरुदेव के निर्देश से कोलकाता वापस आना तथा पूर्ववत् ब्राह्म–समाज का सब कार्य संभालना – नवम्बर, 1883 ई0
24. केशवचन्द्र सेन के अंतिम समय (लगभग 1 महिने पूर्व) विजयकृष्ण का मुलाकात करना – 8 दिसम्बर, 1883 ई0
25. कोलकाता ब्राह्म–समाज का परित्याग कर ढाका ब्राह्म–समाज में आचार्य के रूप में प्रचार कार्य – 1886 ई0
26. श्री रामकृष्ण का अप्रकट होना – सन् 1886 ई0
27. दरभंगा में गोस्वामीजी का अस्वस्थ होना – 1887 ई0
28. ढाका ब्राह्म–समाज त्यागकर गेण्डारिया में आश्रम की स्थापना – 31 अगस्त, 1888 ई0
29. वाराणसी अयोध्या आदि होकर वृन्दावन गमन – नवम्बर, 1889 ई0
30. ब्रज–परिक्रमा प्रारंभ – 8 अगस्त, 1890 ई0
31. योगमाया देवी की श्रीवृन्दावन में नित्यलीला प्रवेश – 22 जनवरी, 1891 ई0
32. गोस्वामीजी का हरिद्वार कुंभ गमन – मार्च, 1891 ई0
33. गेण्डारिया आश्रम में नाम–ब्रह्म मंदिर की स्थापना – 12 अक्टूबर, 1891 ई0
34. माता स्वर्णमयी देवी का अप्रकट होना – अप्रेल, 1893 ई0
35. गोस्वामीजी का प्रयाग कुंभ मेला में आगमन – जनवरी, 1894 ई0
36. ढाका में अंतिम धूलट (धूली)महोत्सव – फरवरी, 1896 ई0
37. कोलकाता में शेष अवस्थान – फरवरी, 1896 से 7 मार्च, 1898 ई0
38. पुरी गमन – 8 मार्च, 1898 ई0
39. पुरी में अप्रकट होना – 5 जून, 1899 ई0
40. पुरी में नरेन्द्र–सरोवर के किनारे समाधि–मंदिर की स्थापना की गई। यह स्थान 'जटियाबाबा का समाधि–मंदिर' नाम से पुरी में प्रसिद्ध है।

****

साधन के समय श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी के उपदेश

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी साधन देते समय दीक्षा प्रार्थियों को साधारणतः जो उपदेश देते थे उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है –

उपदेश :–

गुरुजी कृपापूर्वक तुम्हें यह साधन दे रहे हैं। इस समय जो उपदेश दिया जा रहा है, उसके प्रति ध्यान रखना चाहिए।

विधि :–

(1) सत्य बोलना होगा। सत्य बोलना आसान नहीं है, जिनमें दलबन्दी (पक्षपात) की भावना हो, वे सत्य नहीं बोल सकते। एक प्रतिबन्धकता आ जाता है।

(2) परनिन्दा परित्याग करना होगा। मुनि ऋषियों के अनुसार अन्य पापों से मुक्ति मिल सकती है, किन्तु परनिन्दा से नहीं। किसी के मंगल के लिए, उसके दोष की बात कहने से निन्दा नहीं होती, शिक्षक छात्र को, पिता पुत्र को दोष की बात कहते हैं। लेकिन दूसरों को छोटा करने की चेष्टा, अपमानित करने की चेष्टा को निन्दा कहते हैं। परनिन्दा महापाप है, नरहत्या से भी बड़ा पाप है। हत्या करने से किसी की एक ही बार में मृत्यु होती है, लेकिन निन्दा करने से, दूसरों के समक्ष उसे अपमानित होकर प्रतिक्षण मृत्युयंत्रणा भोगनी पड़ती है। जहाँ परनिन्दा होती है, वहाँ नहीं रहना चाहिए। परनिन्दक के संग जैसा कुसंग और दूसरा नहीं होता। परनिन्दक का हृदय इतना अंधकारमय होता है कि भगवान वहाँ नहीं रह सकते। अर्थात् उसके हृदय में भगवान प्रकाशित नहीं हो सकते।

(3) सब प्राणियों के प्रति दया का भाव रखना होगा। दूसरों के सुख में सुख एवं दुःख में सहानुभूति – इसे दया कहते हैं। सबकी सेवा करते–करते इस प्रकार की भावना आती है।

(क) वृक्षलताओं को पानी देना, उनकी सेवा है। पांव धोकर वह पानी वृक्ष में कभी नहीं देना चाहिए, जैसे तुलसी वृक्ष को, नारायण शिला एवं शिव को पवित्र जल दिया जाता है उसी प्रकार वृक्ष की सेवा करनी चाहिए।

(ख) पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़ों को भी कुछ–कुछ भोजन देना चाहिए।

(ग) भिखारी को मुष्टि भिक्षा देना चाहिए।

(ध) अतिथि की सेवा, देव–भावना से करनी चाहिए। अतिथि उसे कहते हैं, जो किसी अन्य तिथि में नहीं आए हैं, जिनका कोई आश्रय नहीं है। उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करनी चाहिए। ऐसा करते–करते सर्वजीवों के प्रति दया जागृत होती है। इससे फिर मन में अशांति नहीं रहती।

(4) माता–पिता व गुरुजनों की प्रत्यक्ष देवता के समान सेवा करनी चाहिए। माता–पिता साक्षात देवता हैं। पितृ–मातृ सेवा द्वारा भगवान की प्राप्ति होती है। महाभारत में एक कथा है – एक शिकारी व्याध ने इस प्रकार से धर्मलाभ किया था। ऋषि–मुनि भी उसके पास धर्मशिक्षा के लिए आते थे। माता–पिता के चरणों की पुष्प–चन्दन से पूजा करनी चाहिए एवं चरणामृत पीना चाहिए। यह शरीर माता–पिता का है, उनकी सेवा करनी चाहिए। उनके मृत्यु होने पर श्राद्धादि द्वारा उनको संतुष्ट करना चाहिए। दूसरे गुरुजनों के प्रति भक्ति का भाव रखना चाहिए।

(5) साधुओं की भक्ति करनी चाहिए। केवल वेष से ही कोई साधु नहीं होता। साधु के लक्षण हैं :–

(क) सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं।

(ख) कभी कुछ नहीं माँगते। जैसे कुत्ता द्वार में पड़ा रहता है, पीड़ित होने पर भी द्वार नहीं छोड़ता। वे भी उसी प्रकार भगवान के द्वार पर पड़े रहते हैं।

(ग) परनिन्दा नहीं करते। किसी व्यक्ति की, यहाँ तक कीट–पतंग की भी निन्दा नहीं करते।

(ध) आत्मप्रशंसा नहीं करते। वे अपने को दासानुदास मानते हैं, क्योंकि सबके भीतर नारायण हैं। साधु के लिए, दूसरों के द्वारा की गई अपनी निन्दा, अमृत एवं दूसरों के द्वारा की गई अपनी प्रशंसा विषतुल्य है। दूसरों के द्वारा की गई निन्दा से उपकार होता है– आत्मदृष्टि खुलती है अर्थात् आत्मविचार होता है। दूसरों के द्वारा की गई प्रशंसा से, अभिमान होने पर सर्वनाश होता है। निन्दक की बातें साधु के लिए अमृततुल्य हैं।

(ड़) साधु मनगढ़ी बातें नहीं करते। वे शास्त्र की बातें, ऋषि–मुनियों के वाक्यों को कहते हैं एवं उनके आचरण का ही अनुसरण करते हैं।

(च) किसी में बुद्धिभेद पैदा नहीं करते हैं। 'तुम्हारा मत अच्छा नहीं है, मेरा मत अच्छा है।' इस प्रकार आचरण करो, ऐसा कहना बुद्धिभेद है।

(छ) वृथा समय नष्ट नहीं करते। भगवद्ध्यान, शास्त्र पाठ आदि में समय बिताते हैं।

(6) गृहस्थ लोग आपस में भगवत् सम्बन्ध स्थापित करेंगे। स्त्री भगवती एवं स्वामी नारायण है। स्त्री, स्वामी की नारायण ज्ञान से भक्ति करेंगी। पति भी स्त्री को भगवत् शक्ति के रूप में देखेंगे। जिस प्रकार सावित्री व लक्ष्मी भगवती हैं, उस प्रकार की भावना रखनी चाहिए। जिस परिवार के स्त्री–पुरुष में इस प्रकार संबंध स्थापित होता है, वहाँ कोई अकल्याण नहीं होता। ऐसा होने से परिवार में ही भगवत्लीला का दर्शन होता है।

निषेध :–

(7)(क) उच्छिष्ट (जूठा) नहीं खाना।

(ख) नशा नहीं करना।

(ग) मांस नहीं खाना– मांस खाने से शक्ति नष्ट होती है। विनोद के लिए नशा करना मना है। चिकित्सक के परामर्श अनुसार दवाई के रूप में इसे ग्रहण किया जा सकता है। तम्बाकू नशे की चीज नहीं मानी गई है। गुरुजनों का उच्छिष्ट प्रसाद होता है। पाँच साल से कम उम्र के बच्चों का उच्छिष्ट, उच्छिष्ट नहीं माना जाता।

(घ) प्याज़ तमोगुणी है। शास्त्रों में प्याज़ को गोमांस के तुल्य कहा गया है। (संदर्भग्रन्थ – आचार्यप्रसंग द्वादश अध्याय)*

(8) प्राणायाम भी एक और विधि है। प्राणायाम साधन नहीं है, पर साधन का एक विशेष अंग है। यह शरीर की जड़ता नष्ट करता है। कफ कम करता है। साधन में सहायता करता है। जो लोग यह साधन नहीं करते हैं उनके समक्ष यह प्राणायाम करना मना है। पति–पत्नी एक साथ प्राणायाम कर सकते हैं। महिलाएँ अन्य पुरूष के साथ एक कमरे में भी प्राणायाम नहीं कर सकतीं हैं। एक आसन में तो किसी भी हालत में नहीं बैठ सकते। स्त्री–पुरूष विशेष सावधानी से चलेंगे। महिलाएँ सर्वदा पवित्र रूप में रहेंगीं। शरीर और मन पवित्र रखेंगी।

(9) जो शास्त्र में नहीं है उसे किसी महापुरूष के कहने पर भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कभी–कभी महापुरुष भी परीक्षा लेते हैं। नाम ही साधन है। शास्त्र में जो कुछ व्यवस्था दी गई है, उनमें किसी के साथ किसी का विरोध नहीं है। श्वास–प्रश्वास के प्रति लक्ष्य रखकर सर्वदा मन ही मन नाम जप करना।

इसके बाद गोस्वामी प्रभुजी नाम प्रदान करते थे।

---

*(1) पलान्डुं विड्वराहांच च्छत्राकं ग्रामकुक्कुटम्। लशुनं गृजंनचैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत्।। (याज्ञवल्क्य संहिता–76 श्लोक) अर्थ– पलान्डु (अर्थात प्याज़), ग्राम्य शूकर, छत्राक (मशरूम), ग्राम्य मुर्गा, लहसुन एवं गाजर ज्ञानपूर्वक कभी भी भोजन करे तो चान्द्रायण व्रत करें।

(2) अमेध्यरेतो गोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा। यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छं चान्द्रायणं चरेत्।। (पराशर संहिता–एकादश अध्याय,श्लोक 1) अर्थ– विप्र यदि अपवित्र गोमांस अथवा चांडाल का अन्न भोजन करे तब कृच्छ चान्द्रायण व्रत आचरण करेंगे।

(3) पलान्डुलशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम्। छत्राकं विड्वराहन्च चरेच्चन्द्रायणं द्विजः।। (संवर्त्तसंहिता–श्लोक ।1।) अर्थ– पलाण्डु अर्थात प्याज़, लहसुन, ग्राम्य मुर्गा, छत्राक अर्थात मशरूम एवं ग्राम्य शूकर को खाने पर द्विज अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य चान्द्रायण व्रत करेंगे। (गोमांस भोजन एवं प्याज़ आदि भोजन करने पर इसका प्रायश्चित्त चान्दायण व्रत करने पर होता है। इस कारण प्याज़ को गोमांस के तुल्य कहा गया है। शास्त्रों में इस प्रकार अनेक प्रमाण मिलते हैं।)

सूची पत्र

क्रमांक	जीवन चरित्र	पृष्ठ संख्या
1.	महात्मा श्रीश्री मयूरमुकुट बाबा	1—28
2.	श्री जगद्बन्धु मैत्र	29—45
3.	श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय	46—86
4.	श्री योगजीवन गोस्वामी	87—103
5.	महात्मा श्री सतीशचंद्र मुखोपाध्याय	104—135
6.	वरिशाल रत्न श्री अश्विनीकुमार दत्त	136—175
7.	श्री भरतचन्द्र मुखोपाध्याय	176—177
8.	श्री ब्रजमोहन	178—179
9.	श्री चन्द्रकान्त दत्त गुप्त	180—189
10.	श्री नित्यगोपाल गोस्वामी	190—192
11.	श्री कृपानाथ मजुमदार	193—195
12.	श्री लालबिहारी बसु	196—202
13.	देश—नायक विपिनचन्द्र पाल	203—245
14.	श्री हरिदास बसु	246—270
15.	श्री श्रीधरचन्द्र घोष	271—297
16.	श्रीश्री सरलनाथ गुहठाकुरता	298—305
17.	श्री अश्विनी कुमार सामन्त	306—314
18.	श्री हेमेन्द्र नाथ मित्र	315—318
19.	साधु राधिकानाथ राय	319—321
20.	श्री नरेन्द्रचन्द्र पाल	322—324

सूची पत्र

क्रमांक	जीवन चरित्र	पृष्ठ संख्या
21.	माता योगमाया देवी	325—364
22.	श्रीमती शांतिसुधा देवी	365—379
23.	श्रीमती मनोरमा देवी	380—409
24.	श्रीमती यमुना माईजी	410—421
25.	श्रीमती योगमाया गुह	422—436
26.	श्रीमती मन्दाकिनी देवी	437—442
27.	श्रीमती सत्यदासी देवी	443—446
28.	सुरेन्द्र की माँ	447—450
29.	श्रीमती शरत्कामिनी देवी	451—462
30.	श्रीमती कुसुमकामिनी गुह	463—474
31.	श्रीमती सरोजबाला देवी	475—486

****

चित्र सूची

क्रमांक	चित्र	पृष्ठ संख्या
1.	महात्मा श्रीश्री मयूरमुकुट बाबा	xvii
2.	श्री जगद्बन्धु मैत्र	xvii
3.	श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय	xviii
4.	श्री योगजीवन गोस्वामी	xviii
5.	महात्मा श्री सतीशचंद्र मुखोपाध्याय	xix
6.	वरिशाल रत्न श्री अश्विनीकुमार दत्त	xix
7.	देश–नायक विपिनचन्द्र पाल	xx
8.	श्री हरिदास बसु	xx
9.	श्री श्रीधरचन्द्र घोष	xxi
10.	श्री हेमेन्द्र नाथ मित्र	xxi
11.	श्री नरेन्द्रचन्द्र पाल	xxi
12.	श्रीमती शांतिसुधा देवी	xxii
13.	श्रीमती मनोरमा देवी	xxii
14.	श्रीमती यमुना माईजी	xxiii
15.	श्रीमती सत्यदासी देवी	xxiii
16.	श्रीमती कुसुमकामिनी गुह	xxiv
17.	श्रीमती सरोजबाला देवी	xxiv

****

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- **Sri Sri Bijoy Krishna Bhakta Sangha.**

Station Road, P.O. – Raghunathpur,
Dist – Purulia (W.B.), Pin – 723 133

- **Sri Hari Shankar singhania.**

309, B.B.Ganguly Street
Kolkata (W.B.) Pin 700 012
Phone – 033-22363057, 22361453

- **Sri Ramavtar Sharma.**

A 22, Bhar Nagar, Quins Road
P.O. – Jaipur (Rajasthan), Pin – 302 021
Phone – 0141-2353971, Mob - 09314522108

- **Khandelwal and sons**

Athkhamba Bazar, Vrindaban, Pin - 281 121
Phone - 0565-2443101, 2442100

- **Sarvodaya Book Stall**

Railway Station, Howrah

****

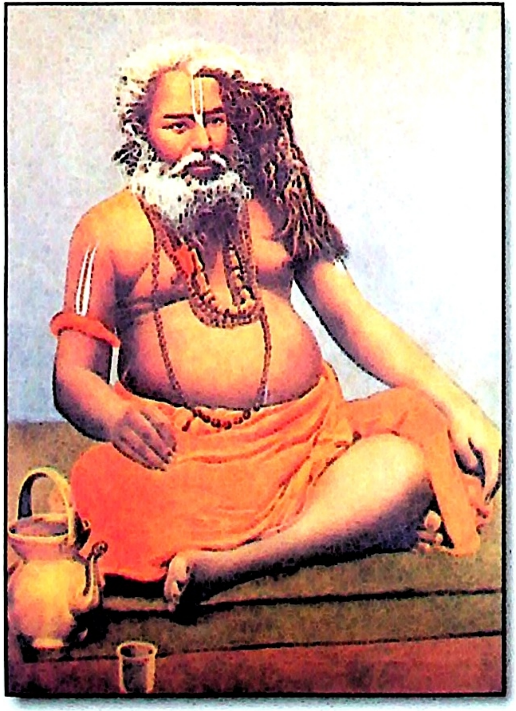

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

माता योगमाया देवी

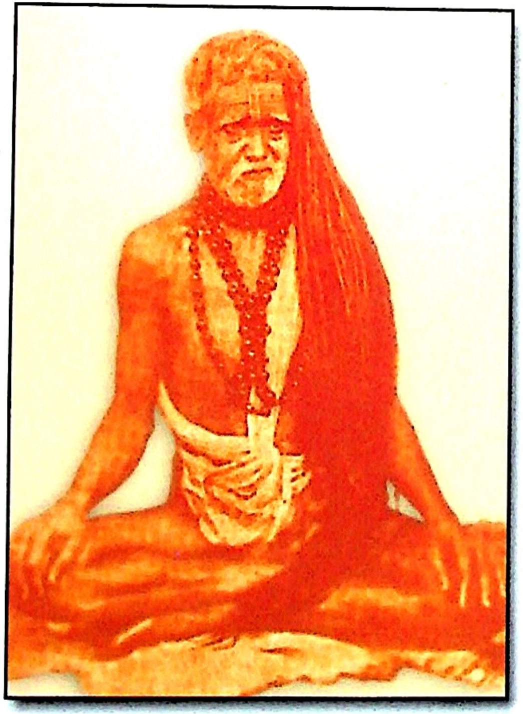

महात्मा श्रीश्री मयुरमुकुट बाबा

श्री जगद्बन्धु मैत्र

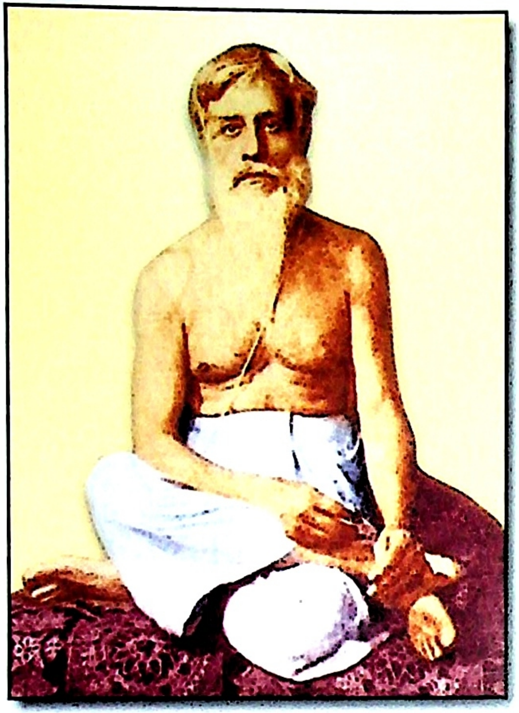

श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय

श्री योगजीवन गोस्वामी

महात्मा श्री सतीशचंद्र मुखोपाध्याय

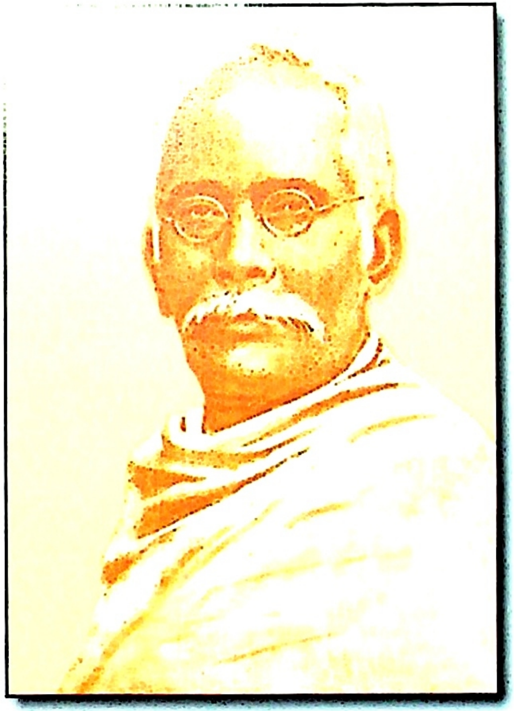

वरिशाल् रत्न अश्विनीकुमार दत्त

देश–नायक विपिनचन्द्र पाल

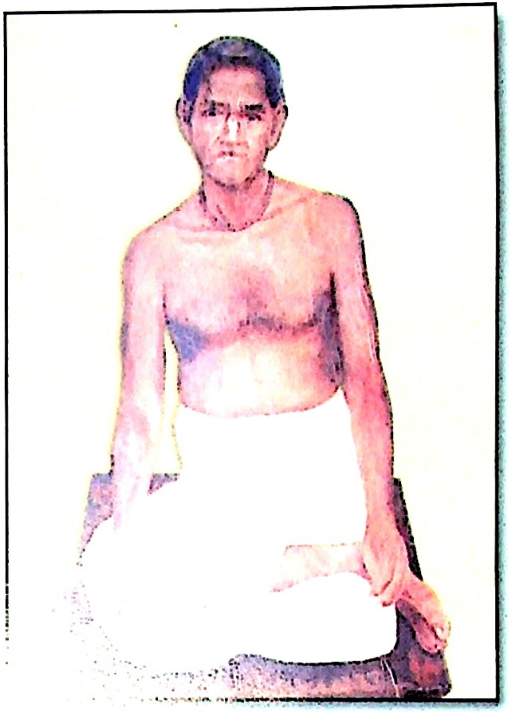

श्री हरिदास बसु

श्री श्रीधरचन्द्र घोष

श्री हेमेन्द्रनाथ मित्र

श्री नरेन्द्रचन्द्र पाल

श्रीमती शांतिसुधा देवी

श्रीमती मनोरमा देवी

श्रीमती यमुना माईजी

श्रीमती सत्यदासी देवी

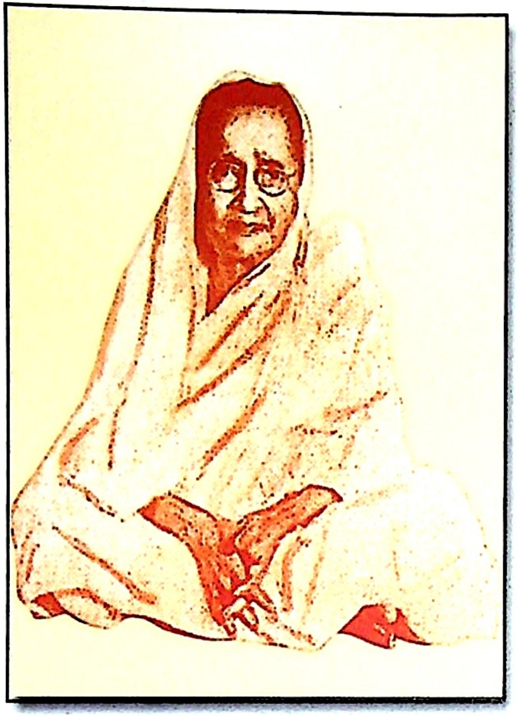

श्रीमती कुसुमकामिनी गुह

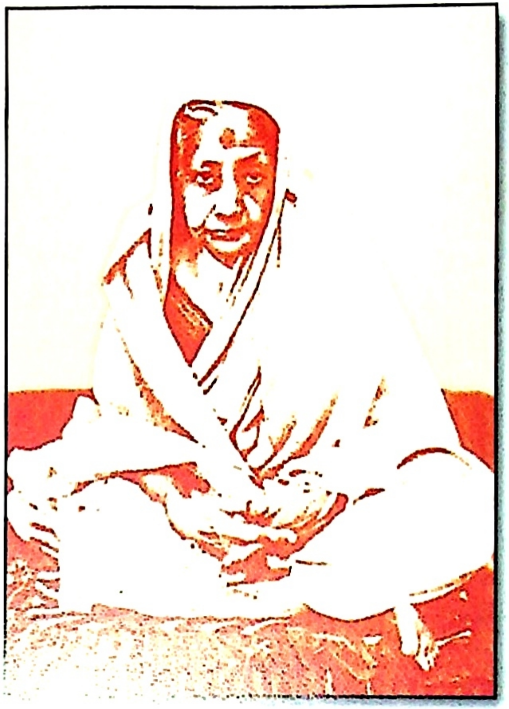

श्रीमती सरोजबाला देवी

महात्मा श्रीश्री मयूरमुकुट बाबा

युग–युग से भारतवर्ष में अनेक साधु–सन्तों तथा महापुरुषों ने जन्म ग्रहण किया है एवं वे इस देश को अनेक अमूल्य सम्पदा दान कर गए हैं लेकिन अपने संबंध में कुछ नहीं कहा है। इनमें से कुछ महापुरुषों ने अपने को लोकालय से छिपाकर साधना की। कभी–कभी उनकी शक्ति का थोड़ा बहुत प्रकाश दिखाई दिया, लेकिन वह भी क्षणभर के लिए। वे गुप्त रूप से आते हैं और अपने उद्देश्य प्राप्ति के बाद अज्ञात धाम में प्रस्थान करते हैं। श्री मयूरमुकुट, इसी प्रकार के महामानव थे।

श्रीश्री मयूरमुकुटजी का जन्म 18 जुलाई, 1851 ई० (बंगला सन् 1258, 13 श्रावण), सोमवार को, अमावस्या तिथि में ब्रजमण्डल अंतर्गत बरसाना में, ब्राह्मण वंश में हुआ। बाल्यकाल में उनका नाम था, लालमोहन। आत्मीय जन उनको मोहन भी कहते थे। मोहन के पिता एक साधारण सद्गृहस्थ थे। मोहनजी को पढ़ाई के साथ–साथ गाय भी चराना पड़ता था। गाय चराने के समय खेलकूद में उनका समय बीतता था। एकदिन मैदान में गाय चराते समय मोहनजी खेल में इतने मग्न हो गए कि गाय के प्रति उनका ध्यान नहीं रहा और गायों ने दूसरों के खेत की फसल नष्ट कर दी। खेतवालों ने मोहनजी की माँ के पास जाकर शिकायत की। इस बात पर माँ ने क्रोधवश उनकी बहुत पिटाई की। मोहनजी बेहोश हो गए। होश आने पर उनके मन में परिवर्तन आया। इस घटना के पश्चात् बालक के मन में प्रबल आत्मविचार हुआ। संसार की असारता एवं मानव जीवन के लक्ष्य के प्रति उनका ध्यान केन्द्रित हुआ। एकबार आधी रात को वे घर छोड़कर चले गए।

सुकृति के फलस्वरूप उनको रामायत् सम्प्रदाय के साधुओं का संग मिला। मोहनजी उन लोगों के साथ अयोध्या पहुँचे और एक मठ में रहने लगे। मठाधीश श्री सीतारामजी ने उनको आदरपूर्वक स्वीकार किया। घर में ही उनका उपनयन संस्कार हो गया था। उस समय वे दस वर्ष के थे। बालक का सरल हृदय सांसारिक दुःख–कष्ट एवं कुटिलता से मुक्त था। महात्माजी से दीक्षा प्राप्त कर मोहन साधना में मग्न हो गए। श्रीगुरुजी उनको 'वीर साधक' भाव से परिचालित करने लगे ताकि शिष्य को श्रीश्री महावीरजी की कृपा लाभ हो सके। बालक मोहनलाल भी गहरी निष्ठा, अध्यवसाय और आन्तरिकता के साथ साधना में अग्रसर होने लगे। साधना के साथ–साथ कुश्ती, लाठी चलाना आदि विषयों मे भी उन्होंने

दक्षता प्राप्त की। कुछ ही दिनों मे बालक को युगलरूप मे श्रीश्री सीतारामजी के दर्शन हुए एवं कृपा प्राप्त हुई। कुश्ती और लाठी चलाने में वे पारंगत थे। मानो स्वयं महावीरजी उनमें प्रविष्ट होकर सब असम्भव कार्य को सम्भव कर देते थे। ऐसा कोई भी नहीं था जो उनसे लाठी चलाने में प्रतिद्वंद्विता करें। उनके भय से, चोर बदमाश मठ के आसपास भी नहीं फटकते थे।

गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीरामचरितमानस का वे नित्य पाठ करते थे। ग्रन्थपाठ के समय उनके मन में एक अपूर्व भाव का संचार होता था। उस समय शरीर में कम्पन होता था और आँखों से अश्रुधारा बहती थी। उस समय उनका बाह्यज्ञान भी नहीं रहता था। कभी–कभी वे पागल की तरह हँसते, कभी रोते, कभी चिल्लाते या गाते तो कभी नृत्य करने लगते। पाठ का दृश्य उनके अन्तर्राज्य में प्रस्फुटित होता था। अप्राकृत लीला दर्शन आदि के कारण उनका शरीर रोमांचित हो उठता था। उस समय पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) से एक विशिष्ट श्रीश्री सीतारामसेवक दल और उसके मठाध्यक्ष, अयोध्याधाम दर्शन के लिए आए। मठाघ्यक्ष के विशेष अनुरोध पर मोहनजी ने उस दल को अयोध्या के लीलास्थलियों का दर्शन करवाया। मोहनजी का संग पाकर अध्यक्ष मुग्ध हो गए और उनको पुरी ले जाने के लिए विशेष आग्रह किया। मोहनजी के गुरुजी ने कहा "तुम्हारा पुरुषोत्तम क्षेत्र जाना विशेष जरूरी है। तुम्हारी योग–सिद्ध अवस्था प्राप्ति के लिए मैं ही तुम्हें पुरी भेजता, ईश्वर की कृपा से जब संयोग हो ही गया तो अच्छा ही हुआ। तुम मठाध्यक्ष के साथ चले जाओ। बाकी कार्य अपने आप होगा। तुम्हारे ऊपर ईश्वर की कृपादृष्टि पड़ी है।" गुरुजी के निर्देश से मोहनलालजी ने मठाध्यक्ष के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा की। वहाँ सीताराम–विग्रहादि की सेवापूजा की सुन्दर व्यवस्था देखकर उनका मन भर आया। सब विग्रहादि उनको प्राणवन्त प्रतीत हुए और वे कृपा अनुभव करनें लगे। मन्दिर में महावीरजी की वीर विक्रमशाली मूर्ति देखकर वे मुग्ध हो गए और उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। फिर उन्होंने जगन्नाथदेव, विमला माँ आदि विग्रह के दर्शन किये। मोहनलाल को श्री जगन्नाथजी की कृपा से उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति हुई। वहाँ मोहनजी को स्पष्ट अनुभव हुआ कि इष्टदेव सीतारामजी केवल अयोध्यापति ही नहीं, बल्कि वे जगन्नाथ रूप में विश्वब्रह्माण्डपति भी हैं। जगन्नाथदेव की विशाल सेवा व्यवस्था देखकर वे मुग्ध हो गए। मन्दिर के बाहर एक बकुल वृक्ष के नीचे मोहनजी ने आसन बिछाया। बाद में महावीरजी के निर्देश पर उन्होंने मार्कण्डेय सरोवर के पास जाकर तपस्या करके सिद्धिलाभ किया। महावीरजी ने मोहनलााल को अष्टांग योग–साधना करने का आदेश दिया। मोहनलाल ने बहुत ही कम समय में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा अष्टांगयोग में सिद्धि प्राप्त की। अब वे

महावीरजी के निर्देश से लोकनाथ मन्दिर के पास घने जंगल में तपस्या करने लगे। महावीरजी ने उन्हें प्रणवयुक्त एक मन्त्र का जप करने का निर्देश दिया। वहाँ साधना के समय मोहनजी शाम को एकबार लोकनाथजी के मन्दिर में जाकर श्रीविग्रह को प्रणाम और स्पर्श करके, फिर बाहर आकर पुजारी के हाथ से सामान्य प्रसाद लेकर तेजी से जंगल में चले जाते थे।

एकदिन शाम को लोकनाथ दर्शन के पश्चात् वे मन्दिर के बाहर आए। उस समय कुछ महात्मा, जो लोकनाथजी के दर्शन के लिए वहाँ आए थे, उन्हें देखकर आकृष्ट हो गए। महात्माओं ने उनके बारे में जानना चाहा लेकिन उनके कुछ पूछने के पहले ही वे तेजी से घने जंगल में चले गए। महात्मागण मोहनजी से मिलने के लिए उस दिन वहीं रुक गए। दूसरे दिन यथासमय पर मोहनजी को मंदिर प्रांगण में आते ही महात्मागण साष्टांग प्रणाम करने लगे। मोहनजी ने उनका अभिप्राय पूछा। महात्माओं के दलपति ने विनयपूर्वक कहा कि वे सब कैलास स्थित मानससरोवर में श्रीश्री हरपार्वतीजी के दर्शन के लिए यात्रा करेंगे। यह दर्शन मोहनजी के आशीर्वाद और संग बिना सम्भव नहीं है। उन लोगों का सौभाग्य होगा यदि मोहनजी भी उनके साथ चलें। मोहनजी कुछ देर तक मौन रहे फिर बोलें, इसका उत्तर कल देंगे। वे तेजी से मंदिर में गए और स्थिर दृष्टि से श्रीविग्रह को देखने लगे। उन्होंने देखा कि श्रीविग्रह की ज्योति से विश्वब्रह्माण्ड आलोकित हो गया। वे विग्रह के सामने नतमस्तक हो गए। तब दैववाणी हुई– "मैंने तुम्हें ग्रहण किया, मेरे निजधाम कैलास जाओ। वहाँ मेरा युगलरूप दर्शन करके तुम्हारा जन्म सार्थक होगा और तुम्हें बहुत लाभ भी होगा। जाओ तुम्हें अष्टसिद्धि दे दी गई, कैलास में यह बहुत काम आएगी।" मोहनजी ने आनन्दपूर्वक मन्दिर से बाहर आकर महात्माओं के दलपति से कहा कि उन्हें लोकनाथजी का निर्देश मिल गया है। इस कारण उन्हें कल तक प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं हैं। वे भी उन लोगों के साथ कैलास यात्रा करेंगे। उस दिन रात के समय महावीरजी ने भी प्रकट होकर उनको महात्माओं के साथ मुक्तिनाथ तीर्थ और कैलासधाम में जाने का निर्देश दिया। इस प्रकार मोहनजी महात्माओं के साथ कैलासधाम यात्रा में निकल पड़े।

कैलासधाम जाते समय वे एक ऐसे स्थान में पहुँचे जहाँ केवल बर्फ ही बर्फ थी। वहाँ वे मात्र कौपीन पहनकर ध्यानस्थ हो गए। उनके साथी थोड़ी दूर में धूनी जलाकर बैठे थे। तेजी से ठण्डी हवा चल रही थी लेकिन योगी मोहनलालजी को कोई अनुभूति नहीं थी। वे ध्यानमग्न थे। उस समय पास के भुटिया पल्ली से जयमल गार्वांग नामक एक भुटिया घर से निकलकर मोहनजी को अनावृत अवस्था में देखकर आश्चर्यचकित हो गया। फिर महात्माजी की

प्राणहानि होने की आशंका से एक कम्बल से उनका शरीर ढंक दिया। कम्बल से ढँकते ही मोहनजी को होश आया और उन्होंने कम्बल पास में रख दी। ऐसे असाधारण पुरुष को देखकर जयमल उनके प्रति आकृष्ट हुआ एवं थोडी दूर में अवस्थानरत् साधुओं से उनका परिचय पूछा। उन्होंने कहा कि ये ध्यानरत् योगिराजजी सिद्ध महात्मा हैं। जयमल ने उसी दिन महात्मा के श्रीचरणों में आत्मसमर्पण किया। मोहनलालजी ने उसको दीक्षा प्रदान की। शिष्य जयमल कैलास में जाकर गुरुजी की बहुत सेवा की।

कैलास जाते समय मोहनजी एकदिन कौपीन पहनकर ध्यानमग्न बैठे थे। वहाँ बहुत ठण्ड थी। उस समय एक महारानी हिमालय भ्रमण के लिए वहाँ से जा रही थीं। मोहनजी को ऐसी अवस्था में देखकर रानी माँ मुग्ध हो गयी और उन्होंने अपने मस्तक से एक टुकरा हीरा उनकी जटा में बाँध दिया। क्योंकि हीरा धारण करने से शरीर में ताप वृद्धि होगी। रानी माँ के स्पर्श से उनका ध्यान भंग हुआ और उन्होंने मस्तक से हीरा उतारकर नीचे रख दिया और स्पर्श तक नहीं किया। शरीर की ताप समता रक्षा के लिए उनकी योगशक्ति ही काफी थी। बाद में उनके अनेक पहाड़ी भक्त हुए। जयमल उनका सबसे प्रिय और सर्वश्रेष्ठ सेवक था। काश्मीर, नेपाल आदि स्थानों में भी उनके अनेक भक्त थे। नेपाल के राजा भी उनके प्रति गुरु की तरह श्रद्धा भक्ति का भाव रखते थे। अंत में मोहनजी कैलास पहुँचे। वहाँ हरपार्वतीजी के श्रीचरण दर्शन करके वे आत्म–विस्मृत हो गए। मोहनजी कैलास में गहन तपस्या में मग्न हो गए। उस समय उनको भूख, प्यास, निद्रा आदि का बोध नहीं था। ध्यानभंग होने पर झरने का पानी और पहाड़ से फल आदि संग्रह करते थे। उनकी इस प्रकार कठोर गुप्त साधना के लिए लामा संन्यासी उनको गुहाड़िया महाराज कहकर अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे।

कैलास पर्वत के बत्तीस मील अन्दर में श्रीश्री हरगौरी का मन्दिर हैं। वहाँ केवल सिद्ध महात्मा ही जा सकते हैं। मोहनजी को सिद्धि प्राप्ति हो चुकी थी इसलिए अपनी इच्छानुसार हरगौरी दर्शन के लिए वे जा सके। इस तरह सम्पूर्ण रूप में उन्होंने श्री भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण किया। एकदिन गोपेश्वर महादेव ने उनको दर्शन देकर कहा "अबसे तुम विश्व संसार की आत्माओं के साथ एकात्म होकर संवेदनमय हो गए। यही श्री भगवान के रसानुभूति राज्य में रसानन्द अनुभूति की आदि अवस्था है। बाद की अवस्था रसराज्य अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण लीला में प्रवेश है। यह लीला अनुभूति सम्पूर्ण रूप से स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का कृपादानस्वरूप है।"

मोहनलालजी सर्वदा साधना में मग्न रहते थे। इस तरह कई दिन बीतने के बाद भी, कोई लीला का अविर्भाव न होते देखकर उनका मन अस्थिर हो उठा

और उन्होंने सोचा कि ज़रूर साधना में कोई त्रुटि हो रही है। इस समय श्रीश्री राधारानीजी ने उन्हें श्रीवृन्दावन के केशीघाट में जाकर सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण के निकट दीक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया। इतने दिनों तक यद्यपि पूर्व जन्म के संस्कार और इस जन्म की तपस्या से उन्हें दिव्य अनुभव और योगसिद्धि की प्राप्ति हो चुकी थी, फिर भी उन्हें कुछ कमी अनुभव होती थी। भगवत् लीला में पूर्णरूप से वे मग्न नहीं हो पाते थे। यह कमी सद्गुरु दीक्षा के बाद पूर्ण हुई। सिद्धि एवं विभिन्न अवस्था प्राप्ति के बाद अंत में ब्रज–प्रेमरस के भंडारी एवं दाता स्वयं सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण की कृपा प्राप्त कर मोहनलालजी ब्रजभावरूप लीलारस में डूब गए। उस समय से उन पर भगवान श्रीकृष्ण की असीम कृपा होने लगी। गोस्वामी प्रभुजी के कृपा से मोहनलालजी का जीवन धन्य हुआ और उनको श्रीश्री राधाकृष्णजी का दर्शन हुआ। श्रीकृष्णजी ने उनको सखारूप में ग्रहण किया और मोर का रूप धारण करके कुछ मोरपंख उनको दिया। बाद में श्रीकृष्णजी ने अपने मुकुट से एक पंख देकर उन्हें कहा कि अन्य मोर पंखों के साथ इसे मिलाकर एक मुकुट बनाकर पहनो। मोहनलालजी इस प्रकार मुकुट धारण करने के बाद "मयूरमुकुट बाबा" नाम से प्रसिद्ध हो गए। इसके पश्चात् एक दैववाणी सुनकर उसके अनुसार वे राधाकुण्ड गए। वहाँ युगलमूर्ति के दर्शन से वे आत्म–विस्मृत होकर श्रीकृष्णजी द्वारा दी हुई बाँसुरी बजाकर श्रीविग्रह के चारों तरफ घूम–घूमकर नृत्य करने लगे। कभी–कभी बाँसुरी बजाना बन्द करके वे भावमग्न हो जमीन में लोटपोट होने लगते। अश्रुधारा से उनका शरीर भीग जाता। इस तरह काफी समय व्यतीत होने के बाद श्रीराधागोविन्दजी ने उनको आश्वासन दिया कि अब से सर्वदा अन्दर में और बाहर में उन्हें युगल दर्शन होगा। यह कहकर श्रीश्री युगलविग्रह अंतर्ध्यान हो गए। उस दिन से मयूरमुकुटजी बाँसुरी बजाकर नृत्य करते हुए राधागोविन्दलीला में विभोर होकर भ्रमण करते रहते।

सख्य, वात्सल्य और मधुर–रसलीला ही ब्रजलीला है। स्वयं सद्गुरु से प्रेमदीक्षा प्राप्ति के बाद मयूरमुकुटजी इस लीलारस में डूब गए। परमयोगी एवं श्रेष्ठभक्त होने के कारण उनमें अपार्थिव राधाभाव प्रकट होने लगा। श्रीकृष्ण विरह से वे विक्षिप्त–से हो गए। 'श्रीनाम' की कृपा से उनमें आगे चलकर श्रीकृष्णरूप प्रस्फुटित हुआ। उनकी भाव समाधि होने लगी। उनमें वात्सल्य भावना का अपार निदर्शन मिलता है। एकदिन उन्होंने उद्विग्न होकर कहा, "शाम हो गई, लालाजी अब तक जंगल से नहीं लौटे, जंगल में अवश्य कोई विपत्ति आई होगी, नहीं तो उनको लौटने में इतनी देर क्यों हो रही है? अब क्या होगा ? मैंने लालाजी के लिए भोजन तैयार किया है वह भी नष्ट हो जाएगा।" यह कथन हमें उस घटना की याद दिलाती है– जब श्रीकृष्णजी गोष्ठ से लौटने में देर करते थे और यशोदा मैया

भी इस तरह विचलित हो जाया करती थी।

एक समय वे बरसाना में थे। नाम–जप करते–करते प्रायः वे समाधिस्थ हो जाते थे। तब उनमें श्रीकृष्णजी की गोष्ठलीला का प्रकाश होता था। राधाकुण्ड में वे सर्वदा बांसुरी में "राधेकृष्ण राधेकृष्ण" बजाते थे। वे श्रीवृन्दावन के सब पुरुषों में श्रीकृष्णजी को एवं सब ब्रजमाइयों में वे श्रीराधारानी को देखते थे। बाँसुरी में राधेकृष्ण ध्वनि बजाते–बजाते वे वृन्दावन में घूमते थे। इस तरह उनके हृदय में राधाकृष्ण–नित्यलीला प्रकट होती रहती थी। स्वयं कभी कृष्णजी होकर तो कभी राधभाव में तन्मय होकर नृत्य–गीत करते हुए वे श्रीवृन्दावनलीला को प्रकट करते थे। ब्रजमाई उनको देखते ही आनन्दपूर्वक दौड़तीं हुई उनके पास आकर उनको घेरकर ब्रजलीला के गीत गाती थीं और मयूरमुकुटजी आनन्द से बाँसुरी बजाकर नाचते थे। ऐसा लगता था कि प्राचीनयुग की ब्रजलीला फिर जीवंत हो उठी है। साधारण मनुष्य उनका यह भाव समझ नहीं पाते थे और उनकी निन्दा करके अपराधी बन जाते थे।

एकदिन मथुरा में यमुना किनारे मयूरमुकटजी बाँसुरी बजाकर नृत्य कर रहे थे। ब्रजमाई उनको घेरकर ब्रजलीला का गीत गा रही थीं और नृत्य भी कर रही थीं। उस समय एक धनी स्त्री उसी रास्ते से जा रहीं थी। मयूरमुकुटजी को युवतियों के साथ नृत्य करते देखकर उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा "बाबाजी मन होशियार रखना, वैरागी लोगों के लिये यह काम अच्छा नहीं है।" भावमग्न मयूरमुकुटजी को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं चला। वह धनी स्त्री घर में जाते ही अस्थिर होने लगी। उसके शरीर में ज्वलन शुरू हो गई और खून की उल्टी होने लगी। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि महात्मा की अवमानना के फलस्वरूप उसे यह सजा भुगतनी पड़ रही है। अंत में उसने अपने पति से सारी बातें कहीं। उनके पति जानते थे कि मयूरमुकुटजी साक्षात् श्रीकृष्ण सखा एवं परम रसिक महाजन हैं। वे सर्वदा ब्रजभाव और लीलारस में मग्न रहते हैं। वे दौड़ते हुए यमुना किनारे पहुँचे पर वहाँ उन्हें मयूरमुकुटजी नहीं दिखे। अचानक उन्होंने जंगल में वंशीध्वनि सुनी। वहाँ पहुँचकर उनके चरणों में वे गिर पड़े और सारी बातें कही। मयूरमुकुटजी ने उनसे कहा कि उन्हें ये सब कुछ भी पता नहीं है। फिर उसको आश्वासन देकर उन्होंने कहा कि कृष्णजी सब ठीक कर देंगे। वह आदमी उनका चरणामृत लेकर घर लौटा। पत्नी को चरणामृत पिलाते ही वह स्वस्थ हो गई। महात्माओं की अवमानना से ऐसी ही सजा भुगतनी पड़ती है।

मयूरमुकुटजी सर्वदा एक स्थान पर नहीं रहते थे। साधारणतः कार्तिक महीने में रासपूर्णिमा के पहले वे श्रीवृन्दावन आते एवं बसन्तोत्सव के बाद कैलास चले जाते थे। वहाँ निर्जन गुफा में वे समाधिमग्न रहते थे। श्रीवृन्दावन में रहते समय

ब्रज के गाँव–गाँव में वंशी बजाकर नृत्य और गीत के माध्यम से प्रेम वितरण करते थे। वे वृन्दावन में महाप्रेमिक श्रीकृष्णसखा और कैलास के लामा संन्यासियों के बीच महासिद्ध महात्मा के रूप में परिचित थे।

गुरुभाइयों के प्रति उनकी असाधारण प्रीति थी। गोस्वामी प्रभुजी के किसी भी शिष्य के वृन्दावन में रहने या किसी भी शिष्य के वृन्दावन में आने पर दिव्यदृष्टि से उनको पता चल जाता था। उसी वक्त वे गुरुभाई के पास जाकर उनसे बातें करते थे। "मेरा गुरुभाई" कहकर वे आनन्दमग्न हो जाते थे। एकबार उनके एक गुरुभाई श्रीनाथ दास अपनी माँ को साथ लेकर मयमनसिंह से आगरा होकर वृन्दावन आए। उस समय अचानक रात में मयूरमुकुटजी राधाकुंड से बीस मील दूर वृन्दावन के गोपालबाग में श्रीनाथ दास के पास आए। गुरुभाई की सुविधा–असुविधा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् दास महाशय के माताजी की उन्होंने बहुत सेवा भी की। उनके सुमधुर व्यवहार से सब मुग्ध हो गए। वृन्दावन से लौटने के दिन जब दास महाशय स्टेशन पहुँचे तब मयूरमुकुट बाबा भी वहाँ उपस्थित होकर वंशी बजाकर नाच–नाचकर उन लोगों को आनन्द प्रदान किया। ट्रेन आने पर बहुत सावधानी से गुरुभाई के माताजी को ट्रेन में बैठा दिया। उन लोगों ने मयूरमुकुट बाबाजी को अपने वृन्दावन आने एवं वहाँ से वापसी के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। लेकिन अन्तर्यामी बाबाजी सब कुछ जानकर गुरुभाई के पास आए और उन्हें आनन्द प्रदान किया। इससे पता चलता है कि वे सर्वज्ञ महापुरुष थे एवं गुरुभाइयों के प्रति उनका अपार निःस्वार्थ प्रेम था। गुरुभाई श्यामाकान्त पण्डित महाशय कई साथियों के साथ अंधेरे में राधाकुण्ड जाकर अवस्थान कर रहे थे। मयूरमुकुटजी उसी अंधेरे में कुसुमसरोवर के घने जंगल के भीतर से राधाकुण्ड में उपस्थित हुए। जितने दिन पण्डित महाशय राधाकुण्ड में थे, वे प्रतिदिन उन के पास आकर उनकी कुशलक्षेम जानकर निश्चिन्त होते थे।

बरसाना और नन्दग्राम की होली सुप्रसिद्ध है। इसमें स्वयं राधारानी उपस्थित रहती हैं, यह जानकर मयूरमुकुटजी कैलास से आकर, ब्रजमाइयों के साथ नाचने–गाने और बाँसुरी बजाने में मग्न हो जाते थे। ब्रजमाइयों के पैर में पायल, हाथ में पिचकारी और मुँह में श्रीकृष्ण गुणगाथा रहती थी। उन लोगों के पायल की ताल में नृत्य के साथ मयूरमुकुटजी भी वंशी बजाकर नाचते थे। माईलोग भी फाग उड़ाकर पिचकारी के रंग से उनको लाल कर देती थीं। इस तरह सब आत्म–विस्मृत होकर एक प्रेममय मधुर भाव में मग्न होकर नृत्य–गीत करते थे।

होली में श्रीश्री राधाकृष्ण यात्राभिनय में मयूरमुकुटजी श्रीकृष्ण होते थे। जब वे ब्रजभाव में मग्न होकर वंशी बजाते और नाच–नाचकर ब्रजवासियों को मुग्ध कर

देते तब परिवेश की मधुरता से ऐसा लगता था कि याथार्थ में श्रीकृष्ण लीला का पुनः आविर्भाव हो गया है। राधाकृष्ण के दिव्य प्रेमलीला के आस्वादन से दर्शक भी मधुर भाव के आनन्द में डूब जाते थे।

उस समय श्री रामदास काठिया बाबाजी चौरासी कोस वृन्दावन के महन्त थे। वे मयूरमुकुटजी को ब्रज–प्रेमरससिद्ध महात्मा के रूप में जानते थे। दोनों महात्माओं में प्रगाढ़ प्रेमभाव था। काठियाबाबाजी ने अपने शिष्य द्वारकानाथ दत्त को मयूरमुकुटजी की सेवा और संग करने का निर्देश दिया था। दत्त महाशय उनके सानिध्य के लिए व्याकुल रहते थे और कभी–कभी पूरी रात उनके साथ बिताते थे।

एकदिन गोस्वामी प्रभुजी और काठिया बाबाजी बैठे थे। उस समय मयूरमुकुटजी वंशी बजाते हुए वहाँ पहुँचे। मयूरमुकुटजी अपने गुरुजी को किशनजी कहते थे। दोनों महापुरुषों को एकत्र देखकर उनका भाव–समुद्र उत्ताल हो उठा और वे उन लोगों के सामने श्रीकृष्णलीला गाते हुए नृत्य करने लगे। यह देखकर काठिया बाबाजी ने अपना आसन छोडकर मयूरमुकुटजी को आलिंगन किया दोनों आलिंगनबद्ध अवस्था में भावमग्न होकर चुपचाप खड़े रहे। गोसाँईजी के शिष्यगण यह दृश्य देखकर मुग्ध हो गए।

मयूरमुकुटजी का कोई स्थायी वासस्थान नहीं था। वे वृन्दावन के पानीघाट में करबी (कनेर) वृक्ष के नीचे आसन बिछाते थे। उनके गुरुभ्राता और भक्त लोग यहाँ आकर उनके साथ सत्संग करते थे। एकदिन उनके गुरुभाई दिनाजपुर के राजकुंज के मैनेजर मन्मथरंजन राय चौधरी और एक गुरुभाई के साथ उनके सानिध्य के लिए उसी वृक्ष के नीचे उपस्थित हुए। उस समय हल्की वर्षा हो रही थी। मयूरमुकुटजी प्रायः बुझी हुई धूनी के पास बैठे थे। ठण्ड भी बहुत ज्यादा थी। धूनी का ताप पाने के लिए सब वहाँ बैठे, लेकिन ताप के बदले ठंड लगने की बात उन्होंनें मयूरमुकुटजी से कही। मयुरमुकुटजी ने कहा "भाई मन्मथ धूनी तो बुझी नहीं है। किशनजी (गोस्वामी प्रभुजी) धूनी की रक्षा कर रहे हैं। यह कहकर उनके धूनी में चिमटा घुसाते ही आग दिखाई दी। सब गुरुभाई मिलकर सत्संग करने लगे। धूप, वर्षा, तूफान आदि किसी भी प्राकृतिक दुर्योग में मयूरमुकुटजी घर में आश्रय नहीं लेते थे। वे सब विषयों में गुरुनिर्भरशील और विरक्त थे।

संस्कृत भाषा के महापण्डित बैकुण्ठनाथ वेदान्त वाचस्पति ने कहा था कि संस्कृत शास्त्र में मयूरमुकुटजी की असाधारण दक्षता थी। उनका संस्कृत उच्चारण शुद्ध और मधुर था। एकदिन उनसे षट् सन्दर्भ और अन्य शास्त्रों का मार्मिक अर्थ एवं विचारादि सुनकर वाचस्पति महाशय स्तंभित हो गए। वे सब भाषा समझते थे और कहते थे कि परब्रह्म को जान लेने से और कुछ भी अज्ञात नहीं रहता।

"तस्मिन् ज्ञाते सर्वमेव विज्ञातं भवति" – यह वाक्य उनके बारे में बिलकुल सत्य था।

वाचस्पति महाशय ने कहा है कि उन्होंने मयूरमुकुटजी को विभिन्न समय में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, पहाड़ी, तेलुगू आदि भाषाओं का साधिकार प्रयोग करते हुए देखा। प्रियनाथ मुखोपाध्याय नामक एक व्यक्ति ने अपने क्लेशग्रस्त पुत्र का संदेश नहीं मिलने पर वाचस्पति महाशय से ज्योतिष गणना करने का अनुरोध किया। वाचस्पति महाशय ने उनके अनुरोध पर ज्योतिष–चक्र अंकित किया। अचानक मयूरमुकुटजी वहाँ आए और चक्र देखकर बोले कि उनके पुत्र के स्वस्थ होने का संवाद शीघ्र आएगा। वही हुआ। उन लोगों की उपस्थिति में ही सुसंवाद आया। इससे पता चलता है कि मयूरमुकुटजी ज्योतिष–शास्त्र भी जानते थे। एकबार वाचस्पति महाशय ने त्रिपुरा राजकुंज की महारानी के निकट श्रीमद्भागवत् पाठ करते समय लीला प्रसंग में भूलवश 'माधुर्य' के स्थान में 'ऐश्वर्य' शब्द का प्रयोग कर व्याख्या में भूल की। यमुनाकिनारे वाचस्पति महाशय से मिलने पर मयूरमुकुटजी ने इस भूल के बारे में उनसे कहा। उनके कहने पर वाचस्पति महाशय स्तंभित हो गए कि मयूरमुकुटजी को इस बात का पता कैसे चला ? उन्होंने अन्तःपुर में रानीमाँ के पास पाठ सुनाया था। मयूरमुकुटजी सर्वज्ञ थे। वह सूक्ष्मरूप में रहकर, सब कुछ जान सकते थे एवं एक ही समय में, अनेक भी हो सकते थे। यह सब परमसिद्धियों को वे साधारणतः प्रकट नहीं करते थे।

महाप्रभु के असमाप्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए सद्गुरु श्री विजयकृष्ण का अविर्भाव हुआ था। सद्गुरु के असमाप्त कार्य का भार उनके शिष्यों पर है। किन्तु जो दीक्षा देंगे, उन्हें प्रत्यक्ष रूप में गोसाँईजी का आदेश प्राप्त करना ज़रूरी है। यद्यपि गोस्वामी प्रभुजी ने 1899 ई० में पुरी में शरीर त्याग दिया था तथापि उनके प्रत्यक्ष आदेश से ही कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी, ठाकुर वरदाकान्त, किरणचाँद दरवेशजी आदि शिष्यों ने साधन दिया। मयूरमुकुटजी को भी गोस्वामी प्रभुजी ने साधन देने का निर्देश दिया था। बंगला सन् 1376 (सन् 1910 ई०) से गुरुजी का आशीर्वाद लेकर मयूरमुकुटजी ने साधन देना शुरू किया। केवल प्रार्थी होने से ही वे साधन नहीं देते थे। प्रार्थी को साधन का अधिकार है कि नहीं, यह गुरुजी से जानने के बाद ही साधन देते थे। वे कहते थे "मेरे किशनजी का हुकुम होने से हो जाएगा। हम कौन हैं ?– नौकर, असली गुरु तो गोस्वामी प्रभुजी हैं। हम तो माध्यम मात्र हैं।" वे इस प्रकार कहा करते थे। उनके दीक्षा देने का संवाद बंगलादेश में पहुँचने पर भावालराज के अंशीदार नवद्वीपबाबू अपने पुत्र ज्ञानचन्द्र की भगवन्मुखी अवस्था देखकर मयूरमुकुटजी के पास साधन लेने के लिए वृन्दावन भेजा। ज्ञानचन्द्र को गुरुभाई नवद्वीपबाबू का पुत्र जानकर मयूरमुकुटजी बहुत खुश

हुए एवं बंगला सन् 1316 (सन् 1910 ई०) के माघ महीने के अंत में उन्होंने एकादशी तिथि के दिन पति–पत्नी दोनों को दीक्षा प्रदान की। ज्ञानचन्द्र ने द्वादशी के दिन अर्थात् दूसरे दिन लगभग तीन सौ साधु–महात्माओं की सेवा करने के पश्चात् अनेक गृही भक्तों को संतोषपूर्वक भोजन करवाया।

मयूरमुकुटजी गोसाँईजी के अत्यन्त प्रिय थे। उन्होंने एकदिन स्वयं कहा था– "किशनजी हमको योगजीवन (गोस्वामीजी के पुत्र) से ज्यादा प्यार करते हैं।" प्रभुजी के स्नेह प्रीति से वे स्वयं जैसे कृतार्थ हुए थे, वैसे ही स्नेह प्रीति की दृष्टि से वे अपने शिष्यों को देखा करते थे।

गोस्वामी प्रभुजी की सब जीवों के प्रति असाधारण प्रीति थी। नर–नारायण सेवा, पुरीधाम में विशाल दानयज्ञ, वानरों को खाद्य–प्रदान, गायों के लिए घास संग्रह, राजपथ के किनारे प्याऊ निर्माण एवं पशुपक्षियों के तृष्णा निवारण के लिए उसे जलपूर्ण रखना, पक्षियों के आहार के लिए अनाज आदि बिखराना आदि अनेक कार्य इस प्रकार का निदर्शन है। मयूरमुकुटजी भी गुरुजी प्रदर्शित पथ का अनुसरण करते थे। मयूरमुकुटजी प्रतिदिन बंदरों को केला, चना, चावल, लाई आदि देते थे।

मयूरमुकुटजी का बंगलादेश आगमन एक आश्चर्यजनक घटना है। उस समय वे श्री वृन्दावन में थे। बंगला सन् 1318 कार्तिक माह (सन् 1911 ई०) में उनके अनन्यतम शिष्य चाँदमोहन गुरु दर्शन के लिए कोलकाता से वृन्दावन गए। गुरुजी चाँदमोहन को प्यार से चन्दनदास पुकारते थे। शिष्य ने आकर देखा कि गुरुजी कहीं जाने के लिए आसनादि उठाकर तैयार हो रहे हैं। शिष्य को देखकर मयूरमुकुटजी ने आनन्दपूर्वक कहा "देखो किशनजी की दया! नए देश में जाना है। वहाँ की बातों का मुझे कुछ नहीं पता, वहाँ की सब असुविधा उनकी कृपा से ही दूर होगी। थोड़ी देर पहले किशनजी ने यहाँ प्रकट होकर कहा, 'तुम मेरे बंगलादेश में जाओ। वहाँ मेरा आश्रम और अनेक शिष्य हैं। उनके पुत्रों तथा अनेक भक्तवृन्द, जो यह साधन पाने के अधिकारी है, उन लोगों को तुम्हारे माध्यम से साधन देने के लिए तुम्हे वहाँ भेजना पड़ रहा है। तुम्हें ले जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति आ रहा है तुम तैयार हो जाओ।' किशनजी की कृपा से तुम आ गए।"

मयूरमुकुटजी का बंगलादेश के प्रति आकर्षण के अनेक कारण थे। उनमें से प्रधान कारण था किशनजी का ही द्वितीय स्वरूप गेण्डारिया आश्रम दर्शन। गोस्वामी प्रभुजी ने स्वयं प्रकट होकर शिष्य को बंगलादेश जाने का आदेश दिया, इसलिए मयूरमुकुटजी बहुत आनन्दित हुए। दोपहर डेढ़ बजे बंगलादेश जाने के लिए वे निकल पड़े। पहले कांशी पहुँचे। वहाँ गुरुभाई मन्मथबाबू ने बंगालीटोला के काकिना छत्र में उनके रहने की व्यवस्था कर दी। यहाँ अनेक गुरुभाइयों को

देखकर वे बहुत आनन्दित हुए। मणिकर्निका घाट में स्नान करने के पश्चात् अन्नपूर्णा–विश्वेश्वर दर्शन करके वे परमानन्द से वंशी बजाकर नृत्य करने लगे। लोगों ने श्रीकृष्ण सखावेशी महात्मा के बारे में सुना था, अब उन्हें प्रत्यक्ष देखकर लोगों ने अपना जीवन धन्य किया।

इसके पश्चात् मयूरमुकुटजी शिष्य चन्दनदास के साथ कोलकाता के लिए निकल पड़े। यथासमय ट्रेन हावड़ा स्टेशन पहुँची। शिष्य चन्दनदास गुरुजी को एक घोड़ागाड़ी में बैठाकर 43 नं० बांसतल्ला स्ट्रीट में नवद्वीपबाबू की गद्दी में ले आए। बाहर आसन बिछाना संभव नहीं हुआ इसलिए मयूरमुकुटजी ने अन्दर ही आसन बिछाया। उनके आने का संवाद मिलते ही अनेक गुरुभाई आने लगे। यहाँ चार–पॉच दिनों तक कई लोगों ने उनसे दीक्षा प्राप्त की। उनमें कॉलेज के कुछ छात्र भी थे। ढाका जाने के पहले उन्होंने जगन्नाथ पुरी स्थित गोस्वामी प्रभु के समाधि–मन्दिर का दर्शन करना चाहा। उनकी इच्छानुसार शिष्यों ने व्यवस्था कर दी। पुरी एक्सप्रेस में रवाना होकर दूसरे दिन सुबह पुरी पहुँचे। श्रीश्री जगन्नाथदेव मन्दिर का चूड़ा देखते ही उन्होंने प्रणाम किया। समाधि–आश्रम के सेवायत एवं अन्य गुरुभाई उन्हें अभ्यर्थना करके साथ ले गए।

समाधि–मन्दिर में जाकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया एवं भावमग्न होकर बहुत देर तक पड़े रहे। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। बाद में उन्होंने मन्दिर के सामने आम के पेड़ के नीचे आसन बिछाकर धूनी जलाई। चाय पीकर दो शिष्यों के साथ श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिए गए। दिव्य प्रेमिक मयूरमुकुटजी श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन पाकर भावविभोर होकर वंशी बजाकर नृत्य करने लगे। वहाँ उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर धन्य हो गए। एकदिन चन्दनतालाब (नरेन्द्र सरोवर) में स्पर्श–स्नान करके उन्होंने कहा कि इस तालाब में सब तीर्थो का जल है। एकदिन समुद्रकिनारे ध्यानमग्न होकर बैठ गए। ध्यान भंग होने पर कई अंजलि भर जल सिर में लिया, फिर आश्रम लौट आए। पुरी में समुद्र स्नान का बहुत माहात्म्य है। स्वर्गद्वार के पास समुद्र में सब तीर्थ हैं, ऐसी मान्यता है। पुरीधाम का मार्कण्डेय सरोवर पंच तीर्थो में एक है। मार्कण्डेय मुनि ने यहीं तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी। तीस साल पहले मयूरमुकुटजी ने भी इस सरोवर किनारे वटवृक्ष के नीचे तपस्या की थी एवं मार्कण्डेय मुनि की विशेष कृपा प्राप्त की थी।

पुरी में रहते समय उनको तीव्र जुकाम और बुखार हुआ। अंत में जटियाबाबा का प्रसादी बादाम का हलुआ खाकर वे स्वस्थ हो गए। यहाँ वे तीन दिन रहे। वे सर्वदा गुरुभाइयों के साथ किशनजी के गुणगान में तन्मय रहते थे। यहाँ गुरुभाई पार्वतीचरण वसु के दो बालकपुत्र अमल और विमल को उन्होंने दीक्षा प्रदान की।

बंगला सन् 1318 के अग्रहायण मास में (सन् 1911 ई०)चन्दनदास के साथ वे पुरी से ढाका आए। उनके दर्शन करने के लिए काफी लोग स्टेशन आए। उन लोगों में रायसाहब विधुबाबू अध्यात्म के क्षेत्र में विख्यात थे। ढाका में वे चन्दनदास के घर में ठहरे थे। कई लोगों ने यहाँ दीक्षा प्राप्त की।

यहाँ से वे राजफूलबेड़िया में उनके गुरुभाई नवद्वीपबाबू के घर पर आसन ग्रहण किया। महात्मा के शुभागमन से नवद्वीपबाबू का परिवार धन्य हो गया। महात्मा के शुभागमन का संवाद सर्वत्र फैलते ही काफी लोग महात्मा के दर्शन के लिए आने लगे। वे हँस–हँसकर लोगों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। उनकी भाषा समझने में असुविधा होने पर भी, उनके मधुर भाव के आकर्षण से लोग मुग्ध हो गए। कई लोग दीक्षा प्रार्थी भी हो गए। सन्ध्या के समय धूप की सुगन्धि से चारों दिशाएं सुरभित हो रही थी। उस समय मयूरमुकुटजी मधुर स्वर में स्तोत्र पाठ करने लगे। ऐसा लगता था कि सब लोग भगवत् राज्य में हैं। भक्तसंख्या क्रमशः बढ़ने लगी। श्रीभगवान के रूप, गुण एवं लीला की वे ऐसी व्याख्या कर रहे थे कि लोगों को समय का पता भी नहीं चला। देर रात में भक्त लोग महात्मा को प्रणाम करके अपने–अपने घर गए।

दूसरे दिन सुबह, मयूरमुकुटजी उनके शिष्य चाँदमोहनबाबू एवं नन्दलालबाबू के घर जाकर, कई लोगों को दीक्षा प्रदान की। चाँदमोहनबाबू के घर से वे नवद्वीपचन्द्र के घर आए। यहाँ के आम के बगीचे में एक बड़े पेड़ के नीचे उन्होंने आसन बिछाया। उनके आगमन का संवाद मिलते ही अनेक भक्त वहाँ आ गए। उनके इस यात्रापथ में अलौकिक रूप में कई लोगों को साधन प्राप्त हुआ। मयूरमुकुटजी जब नवद्वीपचन्द्र के घर जा रहे थे, राजफूलबेड़िया का विश्वनाथ (विशु), अपूर्व वेशधारी संन्यासी को देखकर मुग्ध हो गया। दौड़ते हुए आकर उनको प्रणाम किया और उनकी कृपा पाने के लिए उनके साथ–साथ चलने लगा। अंतर्यामी महाराज विशु के मन कीं बात जानकर दूसरे दिन अचानक पैदल उसके घर चले गए। उस समय विशु की पत्नी गोबर से घर लीप रही थी। वह महापुरुष को देखकर संकुचित होकर घर के एक कोने में खड़ी हो गई। महाराज ने वंशी बजाकर नृत्य करते–करते विशु और उसकी पत्नी के कान में मन्त्र सुनाया। मंत्र पाते ही दोनों के शरीर और मन में एक अपूर्व भाव का संचार हुआ। वे अभिभूत हो गए। उस समय एक और अपूर्व घटना हुई। सब लोगों के नवद्वीपचन्द्र के घर से काफी दूर चले आने पर नवद्वीपचन्द्र का पुजारी नटवर चक्रवर्ती विपरीत दिशा से अचानक मयूरमुकुटजी के सामने उपस्थित हुआ। महाराजजी ने उसे भी महामन्त्र प्रदान किया। तीन व्यक्तियों का इस प्रकार अचानक कृपा प्राप्ति की घटना से यह प्रतीत होता है कि सद्‌गुरु दीक्षा पाने का समय होने पर

देश–काल–पात्र का विचार नहीं रहता। गोस्वामी प्रभुजी इस तरह मयूरमुकुटजी द्वारा कृपा वितरण करने लगे।

वे मीरपुर तक पैदल पहुँचकर घोड़ागाड़ी से ढाका आए। फिर से नवद्वीपचन्द्र के घर की छत पर मानो आनन्द की वर्षा होने लगी। अनेक दर्शनार्थी आए। उनमें अनेक दीक्षाप्रार्थी भी थे। शाम को वे गुरुभाइयों के साथ पैदल गुरुजी के आश्रम गेण्डारिया में गए। वहाँ जामुन वृक्ष के नीचे उन्होंने आसन बिछाया। यहीं पर गोस्वामीजी ने धूलट उत्सव के समय तीन प्रभुजी का आसन बनाया था। सिद्ध महात्मा की दृष्टि में पूर्व की लीला अज्ञात न रही। आश्रम की कुटिया और वृक्षों को देखकर उन्होंने कहा "ये सच में श्रीवृन्दावन मालूम होता है।" वे भावविभोर हो गए और भजन गा–गाकर अपना आनन्द व्यक्त करने लगे। पूरी रात वे जामुन वृक्ष के नीचे बैठे रहे। वे पूर्णतः गुरुनिर्भरशील थे। एक समय वर्षा शुरू हुई। सब लोगों ने उनसे घर में आने के लिए अनुरोध किया, पर वे किशनजी पर निर्भर होकर वहीं बैठे रहे। वर्षा तेज होने पर उनके सब गुरुभाई निरापद आश्रय में चले गए लेकिन मयूरमुकुटजी गुरुनिर्भरशील होकर उसी वृक्ष के नीचे बैठे रहे। अचानक वर्षा रुक गयी एवं चारों ओर चाँदनी रात की शोभा फैल गई। उनकी यह निर्भरता देखकर सब लोग उनकी महिमा समझ गए। उस दिन गहरी रात तक नामकीर्तन हुआ। अन्त में हरिलूट देकर अनुष्ठान समाप्त किया गया। दूसरे दिन उन्होंने अनेक लोगों को दीक्षा देकर कृपा की। उनके शिष्य ज्ञानचन्द्र ने उनको को अपने घर ले जाने के लिए प्रार्थना की। वे गुरुभाइयों से विदा लेकर, आश्रम को प्रणाम करके थोड़ा पैदल चलकर, फिर घोड़ागाड़ी में एक घन्टा बाद 'बड़ाकटारा' पहुँचे। चारों ओर आनन्द फैल गया। अनेक दीक्षार्थी उनके पास आए। उन्होंने कहा कि गुरुजी के आदेश बिना वह दीक्षा नहीं दे सकते। ऐसा कहकर वह थोड़ी देर तक स्थिर रहकर बोले– "आदेश हो गया! जो प्रार्थी होगा, उसे ही दीक्षा मिलेगी।" सबको बहुत आनन्द हुआ। उसी दिन एक और आश्चर्यजनक घटना हुई। ज्ञानचन्द्र के पास गुरुभाई चाँदमोहनबाबू को तेज बुखार होने का समाचार आया। रोगी के बचने की कोई आशा नहीं है, सब डाक्टर निराश हो चुके हैं, यह सुनकर ज्ञानचन्द्र ने गुरुजी को सब बताया। मयूरमुकुटजी कुछ देर तक स्थिर बैठे रहे। उधर अज्ञान अवस्था में चाँदमोहनबाबू ने देखा, दो दिव्य आकृतियां छत् से नीचे आ रही हैं। एक उनके गुरुजी और दूसरे गोस्वामी प्रभुजी। उनके गुरुजी ने उन्हें बिस्तर से उठाकर किशनजी के चरणों में रख दिया। अचानक रोगी स्वस्थ होने लगा। डाक्टरों ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि गुरुशक्ति के निकट उनकी विद्या तुच्छ है।

शिष्य नवद्वीपचन्द्र के घर में वे चार दिन रहे। वहाँ वे कभी पेड़ पर बैठकर

वंशी बजाते, तो कभी श्रीकृष्ण की मधुर लीला का अभिनय करते, कभी नृत्य करते फिर कभी चंचल बालकों की तरह हँसते रहते। इस तरह विभिन्न भगवत्प्रसंग से वे सबको आनन्द की अनुभूति कराते थे।

वे यहाँ से फिर गेण्डारिया आश्रम गए। गुरुभाइयों के साथ साधन–भजन, कीर्तन और बातों में ही दिन–रात बीत गया। उनके लिए गुरुभाई–संग, श्रेष्ठ संपद् था। उन्होंने गुरुभाइयों से कहा "आप लोग हमको कृतार्थ करने आ गए, हम धन्य हो गए।" गेण्डारिया सचमुच साधन–भजन के लिए उपयुक्त स्थान था। पहले अनेक शक्तिमान साधकों तथा मुसलमान फकीरों ने यहाँ रहकर तपस्या की थी।

दूसरे दिन अनेक भक्तों ने महाराज के सत्संग का लाभ उठाया। अनेक लोगों ने दीक्षा भी प्राप्त की। उस दिन गेण्डारिया आश्रम में महोत्सव किया गया। चारों ओर से गुरुभाइयों ने सपरिवार, इस उत्सव में योगदान किया। सदालाप, दीक्षादान, भजन–कीर्तनादि में दिन कैसे आनन्दपूर्वक बीत गया, किसी को पता भी नहीं चला।

इसके बाद उनका शिष्य ज्ञानचन्द्र, गुरुजी को अपने घर ले जाने के लिए आया। यह देखकर सब लोग दुःखी हो गए। महाराजजी के गुरुभाई विश्वेश्वरबाबू ने बाधा डाली। लेकिन ज्ञानचन्द्र नहीं माना। स्वामी ब्रह्मानन्दजी (अश्विनी वैरागी महाशय) भी उत्तेजित होकर ज्ञानचन्द्र के साथ तर्क–वितर्क करने लगे। गुरुभाइयों की इच्छा थी कि महाराजजी गेण्डारिया आश्रम में ही रहें, लेकिन शिष्य ज्ञानचन्द्र गुरुजी को अपने घर ले जाना चाहता था। इस वाद–विवाद के चलते समय महाराजजी ने ज्ञानचन्द्र के मुँह पर हाथ रखा। शिष्य समझ गया कि गुरुजनों के साथ तर्क नहीं करना चाहिए। इसलिए उसने सिर नीचा कर लिया। ब्रह्मानन्दजी भी लज्जित होकर वहाँ से चले गए। मयूरमुकुटजी हाथ जोड़कर हँसते हुए जाने के लिए प्रस्तुत हुए। इस तरह सब शान्त हो गए। संध्या के समय श्रीकृष्ण वेश में वंशी लेकर वे साधन–कुटीर की ओर दौड़े। वहाँ भावमग्न होकर नृत्य करने लगे फिर श्रीश्री योगमाया देवी के आसन के सामने भावमग्न होकर नृत्य करने के बाद साष्टांग प्रणाम करते हुए श्रीमन्दिर से निकल पड़े।

मयूरमुकुटजी ने आश्रम को अंतिम प्रणाम किया और सबसे विदा लेकर चल दिए। आश्रम से काफी दूरी तक पैदल चलने के पश्चात् ही वे तांगे पर चढ़े। उनकी गुरुभक्ति देखकर सब मुग्ध हो गए। गाड़ी सनातनबाबू के घर पहुँचते ही महिलाएं शंख बजाकर उनको अन्दर ले गईं। उन्हें कम्बलासन में बैठाकर उनकी आरती की गई। दूसरे दिन सुबह सनातनबाबू की पत्नी अन्नदासुन्दरी, कन्या लक्ष्मीमणि और नाती ब्रजगोपाल ने दीक्षा प्राप्त की। गोस्वामी प्रभुजी, शिष्य को

पहले ही आदेश दे चुके थे कि जिन लोगों का नाम दीक्षा की तालिका में है, उन लोगों को साधन देना पड़ेगा। मयूरमुकुटजी इसी आदेश का पालन करते चले। अनेक लोगों को साधन देने के कारण उनका शरीर थका हुआ था। इसलिए ज्ञानचन्द्र के घर जाकर छत पर वे विश्राम करने लगे।

"बड़ाकटारा" में महाराजजी का आने का संवाद मिलते ही दर्शनार्थियों की भीड शुरू हो गई। महाराजजी विश्राम कर रहे हैं, यह देखकर सब भक्त चुपचाप बैठ गए। साधु–महात्माओं का विश्राम उनके इच्छाधीन होता है। भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए महाराजजी उठकर बैठ गए। संध्या होते देख उन्होंने शंख बजाया। चारों ओर धूप की सुगन्ध फैल गई। वे मधुर भजन गा रहे थे। बाद में सत्संग चलता रहा। रात अधिक होने पर लोग धीरे–धीरे जाने लगे। भोजन समाप्त होने पर कई शिष्यों ने महाराजजी के साथ रात बिताई। रात्रि साढ़े तीन बजे वे सशिष्य बूढ़ीगंगा नदी में नहाने गए। वहाँ से लौटकर धूनी जलाकर चाय बनाई। स्वयं थोड़ी चाय पी और शेष शिष्यों को, फिर आसन पर स्थिर बैठकर शंख बजाया। शिष्यों के साथ साधन में बैठ गए। भजन के बाद विभिन्न उपदेश प्रदान किए। जितने दिन वे बड़ाकटारा में रहे, इसी तरह शिष्यों को लेकर साधन–भजन करते रहे।

दीक्षार्थियों को वे सुबह दस बजे उपस्थित रहने को कहते। उनका कहना था– "दस बजे किशनजी आयेंगे तब साधन हो जाएगा।" इसलिए उस समय ही प्रार्थियों का साधन होता था। शाम को अनेक लोग उनका दर्शन और सदुपदेश सुनने के लिए आते थे। कोई भी उनके पास आने पर वे उसे आदर पूर्वक बैठाते थे। साधन देने के पहले उपदेश देते थे। अधिक जोर–जबरदस्ती करने पर रोग की दवा भी दे देते थे, क्योंकि चिकित्सा विद्या का भी उनको ज्ञान था।

महाराजजी के ढाका में, नवद्वीपचन्द्र के घर में रहते हुए, प्रतिदिन गुरुभाई उनके मधुरसंग के लिए आते थे। प्रायः तीन–चार घन्टा आनन्द प्राप्त करने के बाद ही सब घर जाते थे। कभी–कभी अधिक रात हो जाने के कारण कोई–कोई गुरुभाई उनके साथ ही रात बिताता था। वे कभी तुलसीदास के "रामचरितमानस" का पाठ करके सबको आनन्द देते, तो कभी मधुर वंशी बजाते और भावमग्न होकर नृत्य करते। श्रीकृष्ण प्रेम की अपूर्व महिमा के प्रकाश से अभूतपूर्व परिवेश की सृष्टि होती थीं। बिना आह्वान के, असंख्य भक्तों के, समावेश से नवद्वीपचन्द्र का घर मधुमय हो जाता था। महाराज के पास इस तरह का सत्संग नित्य होता था। एकदिन तिब्बत के बारे में बातचीत होते समय महाराजजी को एक प्रश्न पूछा गया कि क्या तिब्बत के जंगल में सिंह आदि हिंसक जंतु रहते है तथा वहाँ साधु महात्मा लोग किस तरह साधन–भजन करते है ? उत्तर में महाराजजी ने कहा– "तिब्बत

में राक्षस भी हैं – जो मनुष्यों को खाते है, गौ खाते है पर साधु लोगों को कुछ नहीं करते हैं"। जिसके मन से हिंसावृत्ति दूर हो गई हो, उससे कोई प्राणी हिंसा नहीं करता। इसलिए साधु लोग कैलासादि दुर्गम स्थान में साधन कर सकते हैं। इसी प्रसंग में महाराजजी ने श्रीमन् महाप्रभु के वृन्दावन और दक्षिण भारत भ्रमण के समय, नाम–प्रेम के अपूर्व माहात्म्य का उल्लेख करते हुए बोले कि उस समय कीर्तन में हिंसक पशु भी भावावेश में नाचते थे। महाराजजी सर्वदा गुरुजी किशनजी के निर्देश से चलते थे। वे कभी–कभी कान में मन्त्र न देकर, कागज पर लिख कर देते थे और मंत्र अभ्यास हो जाने पर कागज को पानी में विसर्जन कर देने के लिए कहते थे। साधन के साथ–साथ कुछ नियम भी कहते थे और सदुपदेश भी देते थे।

ढाका में उनके आगमन का उद्देश्य संपूर्ण होने पर वृन्दावन लौटने की तैयारी शुरू हो गई। अयोध्या और वृन्दावन में साधुओं के भण्डारे के लिए शिष्य लोग रुपये देने लगे। ज्ञानचन्द्र ने सब रुपये अपने पास जमा रखे। महाराजजी ने अपना आसन कटहल पेड़ के नीचे रख कर, अपने शिष्यों से कहा कि इस स्थान पर प्रणाम करने पर वे उनका साक्षात् प्रणाम ग्रहण करेंगे। बाद में वहाँ पर एक सुन्दर मन्दिर बनाकर मयूरमुकुटजीका छोड़ा हुआ मुकुटांश, कपड़ा आदि काँच के बक्से में रखकर उसकी प्रतिदिन फूल–तुलसी देकर आरती की जाती थी।

उनके वृन्दावन लौटने का दिन निश्चित हुआ। उस दिन भी अनेक लोगों ने साधन प्राप्त किया। उनकी इच्छानुसार कुमारी भोजन का आयोजन भी किया गया। यात्रा के समय आने पर वे ऊपर से नीचे आए। सबके मन में विषाद की छाया थी, महिलाएं रोने लगी। उन्होंने सबको सान्त्वना दिया एवं यात्रा शुरू की। कई घोड़ागाड़ियाँ लाईं गयी थी। प्रथम गाड़ी में मयूरमुकुटजी, उनके गुरुभाई रायसाहब विधु मजूमदार के साथ बैठे। बाकी गाड़ियाँ उनके शिष्यों को लेकर उनकी गाड़ी का अनुसरण करते हुए चलने लगी। पहले से ही रेलगाड़ी का एक कमरा रिज़र्व किया गया था। सब लोग उसमें चढ़े। स्टेशनमास्टर एवं अन्य लोग आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। "गुरुजी महाराज की जय" ध्वनि चारों ओर गूंज उठी। ट्रेन के दोलाइगंज स्टेशन पहुँचने पर गेण्डारिया आश्रम के अनेक शिष्य एवं गुरुभाई अंतिम विदा लेकर लौट आए। ट्रेन नारायणगंज की ओर चलने लगी। कुछ देर बाद जब गाड़ी मैदान से गुजर रही थी, मयूरमुकुटजी का मन आनन्द से नाच उठा और उनकी मोहनी वंशी बजने लगी। वे बोल उठे "तिब्बत में ऐसा ही मैदान है।" गाड़ी नारायणगंज के शीतलक्ष्या नदी के किनारे रुकने पर वे सशिष्य गाड़ी से उतरे और स्टीमर की ओर जाने लगे। उस समय उनके दर्शन के लिए आसपास के गुरुभाई और शिष्यगण वहाँ पहुँचे। कुछ देर सत्संग चलने के पश्चात्

शिष्यगण उनको स्टीमर के ऊपरी मंजिल में ले गए। वे उन लोगों को विभिन्न धर्मोपदेश और आशीर्वाद देकर धीरे–धीरे विदा करने लगे। यह दृश्य बहुत ही मर्मान्तक था। शिष्यगण गुरुजी को विदा नहीं करना चाहते थे लेकिन निरूपाय होकर विदा लेनी पड़ रही थी। वे समझ भी नहीं सके कि यही उनका गुरुजी के साथ अंतिम साक्षात्कार है। मयूरमुकुटजी गुरुजी के निर्देश से पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) आए थे और अपना कार्य समाप्त करने पर फिर वृन्दावन की ओर चल दिए। यह विच्छेद शिष्यवत्सल मयूरमुकुटजी के मन में कोई विक्षेप पैदा नहीं कर सका। वे हमेशा धीर–गंभीर थे। शिष्यों को अंतिम आशीर्वाद देकर वे स्टीमर में नारायणगंज से कोलकाता की ओर रवाना हुए। लौहजंग स्टेशन से उनके तीन गुरुभाई उनकी सेवा करने के लिए साथ–साथ चले। ग्वालन्द में उतरकर, ट्रेन द्वारा, दूसरे दिन सुबह वे कोलकाता पहुँचे। गुरुभाई नवद्वीपचन्द्र उनको अपने घर ले आए। ढाका से लौटने की खबर सुनकर गुरुभाई, शिष्य एवं भक्त उनके दर्शन के लिए आने लगे। यहाँ वे कई गुरुभाइयों के घर भी गए एवं उनकी प्रार्थना पूरी की। यहाँ भी अनेक लोगों ने दीक्षा प्राप्त की। दो–तीन दिन बाद वे काशी रवाना होने वाले थे, लेकिन शिष्य ज्ञानचन्द्र ने तार भेजा कि उसके कोलकाता पहुँचने के बाद ही गुरुजी यात्रा शुरू करें। यह तार मिलते ही महाराजजी ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। ज्ञानचन्द्र ने आकर पहले श्रीगुरुजी के श्रीचरणों में दण्डवत् किया फिर अपना शरीर–मन–प्राण सब गुरुजी के सेवा में नियुक्त किया। गुरुजी का जैसे शिष्यवात्सल्य था, शिष्य की भी अनुरूप गुरुभक्ति थी।

अब महाराजजी यात्रा की तैयारी करने लगे। लोगों ने वृन्दावन के विग्रह और साधुसेवा के लिए पैसा देना चाहा। उन्होंने ये सब अपने शिष्य अतुलानन्द को देने को कहा। इस तरह महाराजजी ने सभी के मन की इच्छा पूरी की। यात्रा के समय उन्होंने दोनों हाथ उठाकर उपस्थित नर–नारियों को आशीर्वाद दिया। ज्ञानचन्द्र और कई शिष्यों ने गुरुजी को हावड़ा स्टेशन के विश्रामागार में बैठाया। वहाँ उनके दर्शन के लिए और भी अनेक लोग आने लगे। माधुर्यमय मूर्ति एवं अपरूप मोर–पंखधारी महात्मा के दर्शन करके सब लोग मुग्ध हो गए। उनको काशी जाने वाली एक्सप्रेस ट्रेन में चढ़ाकर शिष्यों ने गुरुजी को अंतिम प्रणाम किया। ट्रेन चलने लगी। इस तरह मयूरमुकुटजी का बंगलादेश आगमन एक अविस्मरणीय घटना है।

दूसरे दिन ट्रेन मुगलसराय पहुँचने पर, वे सशिष्य अन्य ट्रेन से गंगा पार करके काशी पहुँचे। वहाँ गोसाँईजी के शिष्य, काकिना के राजा महिमारंजन के ककिना क्षेत्र में ठहरे। अन्न क्षेत्र के मैनेजर राधिकाप्रसाद भी गोसाँईजी के शिष्य थे। उस समय वे पुत्र शोकातुर थे। महाराजजी गुरुभाई को शास्त्रोक्त वाणी द्वारा

सांत्वना देकर, उनके सीने पर हाथ रखकर कुछ क्षण के लिए ध्यानस्थ हो गए। गुरुभाई का शोक दूर हो गया और उसका मन भी शान्त हो गया। इसके बाद राधिकाबाबू के घर जाकर गुरुबहन को भी सांत्वना देकर, उन्होंने शांत किया।

काशी में रहते समय वे विग्रहादि दर्शन, गंगास्नान व नित्य साधन–भजन करके आनन्द मग्न रहे। एकदिन, गुरुभाई ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी के भजन कुटीर में जाकर बहुत देर तक गुरुभाई का संग करके, उन्होंने विपुल आनन्द लाभ किया। इस तरह कुछ दिन काशी में रहने के बाद, वे शिष्यों के साथ अयोध्या रवाना हुए। शाम को वे सरयू नदी पार करके अयोध्या पहुँचे। सरयू नदी के पुल से अयोध्या का मनोरम दृश्य देखकर वे मुग्ध हो गए। अयोध्या उनका विशेष परिचित स्थान था। यहाँ रामायत मठ में उन्होंने कई साल बिताए थे। वे श्री किशनदास बाबाजी के आश्रम में भी गए। वृक्ष–लता से घिरा हुआ यह आश्रम अति मनोरम है। यह रामायत सम्प्रदाय का बहुत बड़ा एवं प्राचीन आश्रम है। प्राचीन महात्मागण श्रीवृन्दावन एवं कैलास के मयूरमुकुटजी को पाकर बहुत आनन्दित हुए। स्वयं महन्तजी ने आकर उनका मंगल संवादादि पूछकर महाराजजी के रहने की सुव्यवस्था की। धूनी और अन्य प्रयोजनीय वस्तुओं की भी व्यवस्था की गई। संध्या के समय, श्रीश्री सीतारामजी की आरती का घंटा बजते ही, वे सबके साथ मन्दिर में गए एवं हाथ जोड़कर आरती दर्शन में तन्मय हो गए। कुछ देर बाद अनेक प्रकार के सुस्वादु फल, मिठाई एवं खीर आदि उनकी सेवा के लिए लाया गया। सब लोग प्रसाद ग्रंहण करके विश्राम करने लगे। महाराजजी ने अपने आसन पर कुछ समय के लिए विश्राम किया। तीन सौ महात्माओं को सुचारू रूप से भोजन कराने के लिए उपयुक्त पैसा, महाराजजी ने अपने शिष्य के द्वारा, महन्तजी के पास भेज दिया। महन्तजी भी साधु भंडारा के लिए उपयुक्त व्यवस्था करने में लग गए।

दूसरे दिन महाराजजी ने शिष्यों को सरयू में नहाने के लिए भेज दिया और स्वयं, प्रातः कृत्यादि समाप्ति के बाद, किशनजी को बालभोग निवेदन करके कुछ प्रसाद ग्रहण किया और बाकी शिष्यों के लिए रख दिया। शिष्यगण सरयू में नहाकर आश्रम में आए, फिर प्रसाद ग्रहण करने के बाद, गुरुजी के साथ अयोध्या के विशेष देवालयों का दर्शन करने निकल पड़े। वे लोग गुरुजी के साथ श्रीराम जन्मस्थान एवं अन्य मन्दिरों में श्रीविग्रह दर्शन के बाद हनुमानगढ़ी गए। वहाँ पहुँचकर महाराजजी वंशी बजाकर नृत्य करने लगे। उनका नृत्य देखकर ऐसा लग रहा था कि वे सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह का साक्षात्कार कर रहे हैं। उनके परिचित अनेक साधु–संत उनका बहुत सम्मान करने लगे। वे भी उन्हें प्रति–प्रणाम और विनम्र व्यवहार से ऐसा सौजन्य व्यक्त करने लगे जैसे कि वे उन लोगों के

सेवक हैं। इस तरह का मधुर व्यवहार और वैष्णवता थी मयूरमुकुटजी में। विभिन्न देवालयों का दर्शन करते–करते उन्होंने शिष्यों को एक मन्दिर दिखाकर कहा– "ये हमारा गुरुद्वारा है।" यह कहकर वे अन्दर जाकर साधु–संतों के साथ भेंट करके आए। इसके बाद और कई मंदिरों का दर्शन करके सब लोग आश्रम लौटे। उल्लेखनीय है कि मयूरमुकुटजी ने पहले इसी रामायत आश्रम से दीक्षा प्राप्त की थी। बाद में साधना के उच्चस्तर पर पहुँचकर साक्षात् शिवजी के निर्देशानुसार सद्गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की कृपा प्राप्त की। महात्माओं के भण्डारे के दिन सारी व्यवस्थाएँ बहुत ही सुन्दर थीं। निर्दिष्ट समय में भोजन तैयार हो गया। महात्माओं के अभ्यर्थना के लिए कई लोग प्रवेशद्वार पर रहे। उनके पाँव धोने का पानी तैयार था। वे पाँव धोकर अन्दर बैठे। मयूरमुकुटजी ने महात्माओं के पाद प्रक्षालन का पानी एक पात्र में लेकर सिर पर रखा, फिर पान करने लगे। उन्होंने शिष्यों को भी वह पानी सिर पर रखने और पीने के लिए कहा। शिष्यों ने गुरुजी की आज्ञा का पालन किया। इतने में श्री सीतारामजी की भोग–आरती की घंटी बजने लगी। आरती के बाद महात्माओं को भोजनासन पर बिठाकर मयूरमुकुटजी एक कोने में हाथ जोड़कर खड़े हो गए। प्रसाद वितरण प्रारम्भ हुआ। महात्मागण परम तृप्त होकर "सीताराम की जय" "गुहाड़िया महाराज की जय"– ध्वनि देने लगे। प्रसाद ग्रहण समाप्त होने पर महाराजजी ने एक पात्र में रज लेकर विशेष आग्रहपूर्वक सब महात्माओं के पादपद्म स्पर्श करवायें। बाद में उन्होंने शिष्यों से महात्माओं का प्रसाद ग्रहण करने के लिए कहा। शिष्यों ने गुरुजी के आदेश का पालन किया। महाराजजी शिष्यों को लेकर उच्छिष्ट (जूठा) पत्ता उठाने गए, तो आश्रम के कर्मियों ने जल्दी आकर पत्ता उठा लिया। फिर महात्माओं के साथ बातचीत करके महाराजजी उन्हें आनन्द देने लगे। इस तरह अपूर्व आनन्दोत्साह के साथ साधु–भंडारा समाप्त हुआ। महाराजजी के आसन ग्रहण करने के बाद महन्तजी ने प्रसाद भेजा। सशिष्य महाराज जी ने वह प्रसाद ग्रहण किया।

पौष महीना था, इसलिए जल्दी संध्या हो गई। सीतारामजी की आरती के लिए, महाराजजी शिष्यों को लेकर मंदिर प्रांगण में आ गए। आरती समाप्त होने पर स्तोत्रपाठ, स्तुति, कीर्तनादि से आश्रम मुखरित हो उठा। महाराजजी अपने आसन पर अप्राकृत सच्चिदानन्दमय रससागर में निमग्न हो गए। यथासमय प्रसाद आने पर उन्होंने सामान्य प्रसाद ग्रहण किया और शेष शिष्यों को दिया। शिष्यगण आनन्दपूर्वक भोजन करके सो गए। महाराजजी अपने आसन पर बैठे रहे। प्रायः वे रात में निद्रा नहीं लेते थे। जप–ध्यान, स्तवन–स्तुति में रात बिताते थे। महाराजजी की दिनचर्या से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे किस तरह अपना समय

व्यतीत करते थे।

दूसरे दिन महन्तजी ने दोपहर के भोजन के बाद रामायण पाठ की व्यवस्था की। रामायण पाठक के एक तरफ महन्तजी और दूसरी तरफ महाराजजी का आसन किया गया था। अनेक महात्मा एवं भक्तों का समावेश हुआ था। पाठ समाप्त होते ही सीतारामजी की आरती शुरू हो गई। महाराजजी सशिष्य आरती दर्शन करने गए। बाद में प्रसाद ग्रहण के बाद शिष्यलोग सो गए। महाराजजी आसन पर बैठकर ध्यानमग्न हो गए। नाम–जप साधन में ही उनकी रात बीत गयी। इस तरह तीन दिन अयोध्या में बिताने के बाद वे श्रीवृन्दावन यात्रा की तैयारी करने लगे।

अयोध्या महाराजजी का प्राणप्रिय धाम था। वे संसार छोड़कर साधु होकर सर्वप्रथम अयोध्या में ही आए थे। कोई रामायत महात्मा के कृपाश्रित होकर उन्हें इस अयोध्या में ही महावीरजी का दर्शन और कृपा लाभ हुआ था। श्रीश्री सीतारामजी की युगलमूर्ति का भी उन्होंने दर्शन प्राप्त किया था। सद्गुरु की कृपा से साधना के अन्त में वे श्रीकृष्ण सखा रूप में गृहीत हुए। इसलिए अयोध्या मयूरमुकुटजी का परम् साधन स्थान था। यहाँ तीन रात्रि रहकर वे कृतार्थ हो गए। चौथे दिन सुबह यथारीति साधन–भजन के बाद दोपहर में प्रसाद ग्रहण करके उन्होंने वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। वे एक मथुरावासी भक्त छोटीलाल के घर पर ठहरे। भक्त छोटीलाल ने महाराजजी को देखकर आनन्दपूर्वक सशिष्य उनका सत्कार किया। घर के पास में एक पेड़ के नीचे महाराजजी ने आसन बिछाया। छोटीलाल के धूनी जलाने की व्यवस्था कर देने पर, शिष्य लोग धूनी के पास जा बैठे। प्रातः मंगल आरती के बाद सब लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। मयूरमुकुटजी ने इसके बाद शिष्यों को वृन्दावन यात्रा के लिए तैयार होने को कहा। एक कुली के सहारे सामान ले जाने की व्यवस्था की गई। वे मथुरा से छः मील दूर वृन्दावन पैदल चलने लगे। उनको जल्दी चलने की आदत थी। शिष्यों को उनके साथ चलने में थोड़ा कष्ट उठाना पड़ा। रास्ते में एक दुकान में गरम दूध देखकर थोड़ा दूध खरीदकर स्वयं कुछ पीया और शेष शिष्यों को दिया। कृष्ण सखा–वेश में आनन्दमग्न होकर वे चल रहे थे। हाथ में वंशी सिर में मोरपंख का मुकुट लेकर यहाँ विशेष परिचित महात्मा होने के कारण रास्ते में लोग उन्हें यथायोग्य मर्यादा देने लगे और वे दोनों हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद देते चलते रहे। कुछ दूर चलने के बाद वनपथ पर चलने लगे। उनका मन ब्रजभाव से भरपूर था, ब्रज की वृक्षलताओं से पक्षी की ध्वनि उनके कान में सुधा डाल रही थी। ब्रजभाव से विभोर होकर वे इस तरह चल रहे थे मानो नशा में हों। ऐसा लग रहा था कि जैसे वे किसी के साथ मिलन के लिए दौड़ते हुए जा रहे हैं। वे इस तरह

शिष्यों को लेकर वृन्दावन पहुँचे।

शिष्यगण कष्ट न पायें इसलिए वे गुरुभाई मन्मथरंजन के राधामोहन–घेरा में ठहरे। महाराजजी को देखते ही मन्मथबाबू गुरुभाई के चरणों में गिर पड़े एवं विभिन्न कुशल संवाद आदान–प्रदान के बाद खेतुकुंज में उन लोगों के रहने की व्यवस्था की। धूनी के लिए लकड़ी एवं सेवा के विभिन्न उपकरण आदि की व्यवस्था मन्मथबाबू ने की। कुंज की दूसरी मंज़िल में महाराजजी ने आसन बिछाया। मन्मथबाबू सामान संग्रह के लिए बाहर गए। महाराजजी ने बालभोग के लिए एक काबूली नारियल अपने थैला से निकालकर रखा। एक छोटा–सा बंदर आकर नारियल लेकर भागने लगा। यह देखकर महाराजजी ने उसका पीछा किया। फिर बंदर की कमर दबाकर नारियल ले लिए। घर में आकर उन्होंने दरवाजा बंद कर दिया। वे पशु–पक्षियों को सर्वदा भोजन कराते थे लेकिन अन्याय देखने से विरोध भी करते थे। बाल–भोग का नारियल लेकर बंदर ने जो अन्याय किया वह महाराज सहन नहीं कर पाए। इतने में शिष्यलोग स्नान करके आ गए और गुरुजी के साथ बाल–भोग की तैयारी करने लग गए। भोग तैयार होने पर गुरुजी ने किशनजी को भोग निवेदन किया, फिर उन्होंने थोड़ा प्रसाद ग्रहण करके बाकी शिष्यों को दे दिया। इस तरह शिष्यगण गुरुजी का मधुर सत्संग पाने लगे। दोपहर में दिनाजपुरकुंज से मन्मथबाबू श्रीराधाकृष्णजी का अन्न प्रसाद आदि गुरुभाईयों के लिए भेजा। महाराजजी को अन्नप्रसाद ग्रहण का अभ्यास नहीं था, इसलिए उन्होंने प्रसाद को सिर में लगाकर सब शिष्यों को दे दिया।

बंगाली शिष्यलोग अन्न–प्रसाद पाकर बहुत खुश हुए। प्रसाद ग्रहण के बाद उन लोगों की क्लान्ति दूर हो गई। किंचित् विश्राम के बाद महाराजजी शिष्यों को लेकर अपने आसन, पानीघाट की ओर चल दिए। रास्ते में शिष्यों को श्रीरंगनाथजी का मंदिर एवं अन्य दर्शनीय स्थानों को दिखाकर पानीघाट पहुँचकर वे परितृप्त हुए। यहाँ महात्माओं का शुद्ध भाव, यमुना का पवित्र जल, शुद्ध वायु, पशु–पक्षी का स्वच्छन्द विचरण, सब कुछ मिलकर एक स्वर्गीय भाव की सृष्टि करता है। इसलिए शरीर व मन आनन्द से भरपूर हो उठता है। यहाँ आते ही महाराजजी अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गए। महात्मा लोग अपने प्रियजनों से बहुत दिन बाद मिलकर परम आनन्दित हुए। परस्पर अभिवादन और कुशलादि पूछने के बाद वे सत्संग में रम गए। शिष्य लोगों ने महात्माओं को प्रणाम किया, फिर श्रीश्री गोपालजी के मंदिर के दक्षिण में करवी (कनेर) कुंज के एक बड़े पेड़ के नीचे गुरुजी का आसन बिछाने की व्यवस्था की। वहाँ धूनी जलाने की व्यवस्था भी की गई। इसके बाद महाराजजी स्थानीय महन्तजी के पास गए। कुशलादि पूछकर उनसे साधु–सेवा कराने का अनुरोध किया। दो सौ महात्माओं के सेवा के लिए

आवश्यक पैसा शिष्यों के द्वारा देने की उन्होंने व्यवस्था की। थोड़ी देर में सूर्यास्त हो गया। वे गोपालजी की आरती दर्शन करके परितृप्त हुए। बाद में प्रसाद ग्रहण करके शिष्यलोग सो गए और महाराजजी आसन पर ध्यानस्थ हो गए।

दूसरे दिन साधु भंडारा की व्यवस्था की गई। यथासमय श्रीविग्रह का भोगपर्व समाप्त होने पर साधु–महात्मा लोग प्रसाद ग्रहण के लिए सुसज्जित आसन में बैठे। मयूरमुकुटजी उनके सामने सविनय खड़े होकर उनकी कृपा प्रार्थना करने लगे। प्रसाद परोसने पर महात्मालोग "राधेश्याम की जय", "गुहाड़िया महाराज की जय" आदि जय ध्वनि देकर प्रसाद ग्रहण करना शुरू किये। महाराजजी खड़े–खड़े हाथ जोड़कर आनन्द इस दृश्य का उपभोग करने लगे। भोजन के बाद उन्होंने प्रत्येक महात्मा की चरणधूलि संग्रह की। महात्मालोगों द्वारा पात्र त्याग करने पर उन्होंने भुक्तावशिष्ट संग्रह करके थोड़ा स्वयं ग्रहण किया एवं बाकी शिष्यों को ग्रहण करने को कहा। साधु सेवा के बाद उन्होंने नर–नारायण सेवा की। मोर, बंदर, यमुना के कछुओं आदि को भी प्रसाद वितरण किया गया। आज मयूरमुकुटजी ने शिष्यों के धन द्वारा उन्हींके मंगल के लिए, साधुओं को भंडारा प्रदान करके परम तृप्ति लाभ की। भण्डारा के बाद दो गुरुभाइयों को गृहयात्रा के पूर्व उन्होंने महात्माओं की पदधूलि, प्रसाद, मार्ग का खर्च, श्रीबद्रीनारायण का ताम्बे का चित्रपट और शंख उपहार दिया। गुरुभाइयों के प्रति कितना प्रेम था, इसका निदर्शन यहाँ मिलता है।

इसके बाद मयूरमुकुटजी अपने शिष्य अतुलानन्द को लेकर पानीघाट चले गए। गुरुजी के चरणों में रहने का अधिकार प्राप्त करके शिष्य भी कृतार्थ हो गया। महाराजजी जानते थे कि रोटी खाकर बंगाली शिष्य का मन नहीं भरता है इसलिए दोपहर में भोजन परोसने वाले साधु से उन्होंने कहा "इसको अधिक अन्न प्रसाद दो, रोटी कम दो, बंगाली आदमी अन्न (चावल) खाता है।" गुरुजी के आसन के पास, शिष्य कम्बल बिछाकर बैठने का अधिकार पाकर धन्य हो गया। उस समय वृन्दावन में बहुत ठण्ड थी, इसलिए रात में प्रसाद ग्रहण के बाद गुरुजी ने अपनी धूनी के पास कम्बल पर शिष्य के सोने की व्यवस्था कर दी। खुले आसमान के नीचे बंगाली शिष्य अतुलानन्द को कष्ट होगा इसलिए धूनी की आग तेज कर दी। आग के ताप से शिष्य आराम बोध करने लगा। शिष्य के प्रति गुरु का क्या अपूर्व वात्सल्य भाव! कैलास के बर्फ में भी जो समाधिमग्न रहते हैं, उनके लिए वृन्दावन की ठण्ड कुछ भी नहीं थी। वे तो पूरी रात साधन–भजन करते थे, इसलिए मयूरमुकुटजी को कोई असुविधा नहीं हुई।

शिष्य के प्रति उनका अगाध स्नेह था। उन्होंने शिष्य को वृन्दावन के गोविन्दजी, गोपीनाथ, मदनमोहन और भी कई विग्रह का दर्शन करवाया। वृन्दावन में उनको सिद्ध विदेही महात्मा के रूप में सब लोग विशेष सम्मान करते थे। मन्दिर

के सेवकगण उनको परम सिद्ध भागवत् मानकर विशेष श्रद्धा करते थे। श्रीमन्दिरादि दर्शन के समय वे मन्दिर द्वार में भावविभोर होकर वंशी बजाते हुए परमानन्द से नृत्य करते थे।

बेलवन वृन्दावन का एक विशिष्ट स्थान है। यह एक ऊँचे टीले पर है। इसका आयतन ज्यादा बड़ा नहीं है। विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों व लता–गुल्म से युक्त यह स्थान अति मनोरम है। यहाँ कई बड़े–बड़े नीम के पेड़ हैं। इन वृक्षों की विशेषता यह है कि देखने में ये वट वृक्ष की तरह लगते हैं। यहाँ श्रीश्री लक्ष्मीदेवी का मन्दिर है। कहते हैं कि जब लक्ष्मी देवी ब्रजधाम में आ रही थी, यहाँ पहुँचते ही ब्रजगोपियों ने, ऐश्वर्य अधिकारिणीं लक्ष्मीदेवी को आगे जाने नहीं दिया, क्योंकि माधुर्यमय वृन्दावन में ऐश्वर्य का कोई स्थान नहीं है। इसलिए लक्ष्मीदेवी यहीं रह गईं। ऐश्वर्यकामी लोगों ने इस बेलवन में लक्ष्मीदेवी के लिए ऐश्वर्यमय मन्दिर बनवाया। प्रति गुरुवार यहाँ मेला लगता है। मयूरमुकुटजी शिष्य को बेलवन दर्शन कराने के लिए एक गुरुवार को चले, लेकिन चूँकि वे राधारानी की परम सेवक और माधुर्य के परम उपासक थे, इसलिए लक्ष्मीदेवी के मन्दिर में न जाकर उन्होंने दूर से ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शिष्य अतुलानन्द को श्रीमूर्ति दर्शन के लिए भेजा। शिष्य द्वारा श्रीमूर्ति दर्शन और प्रदक्षिणा करके गुरुजी के पास उपस्थित होने पर, वे शिष्य को अपूर्व तुलसी कानन में ले गए। "तुलसी कानन यथा, वृन्दावन है तथा।" यहाँ आते ही मयूरमुकुटजी श्रीकृष्ण आवेश में मग्न हो गए। उनका शरीर स्थिर एवं इंद्रियों की क्रिया स्तब्ध हो गई। उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। काफी देर तक वे इस तरह रहे। थोड़ी देर में अचानक उनका बाह्यज्ञान लौटा। शिष्य को देखते ही वे समझ गए कि शिष्य को भूख लगी है। उन्होंने शिष्य से कहा "तुम्हें बहुत भूख लगी है। तुम यहाँ बैठे रहो मैं तुम्हारे लिए प्रसाद ले आता हूँ।" ऐसा कहकर वे बाहर गए और थोड़ी देर में ताड़ के पत्ते पर खिचड़ी, सब्जी, पकौडी आदि लाकर शिष्य को दिया। शिष्य को गुरुजी का प्रसाद पाने की इच्छा हुई। शिष्य का यह भाव समझकर उन्होंने प्रसाद सिर में लगाकर शिष्य को दिया। शिष्य ने महानन्द से प्रसाद ग्रहण किया। ऐसा शिष्य वात्सल्य अभूतपूर्व है। इसमें सन्देह नहीं है।

इस तरह शिष्य अतुलानन्द ने जी–भरकर गुरुजी की कृपा प्राप्त की। कुछ दिन बाद गुरुजी ने स्वयं शिष्य को घर जाने का निर्देश दिया। श्रीश्री राधागोविन्द के दो चित्रपट और श्रीबदरीनारायणजी का एक चित्रपट, कपड़े से बाँधकर उन्होंने शिष्य को दिया एवं रास्ते में खर्च के लिये 15 रुपये दिए। जाने के पहले शिष्य को सीने से लगाकर आलिंगन किया। शिष्य के रवाना होने पर गुरुजी उसके पीछे–पीछे काफी दूर तक गए। फिर स्नेहपूर्ण दृष्टि से शिष्य को देखते रहे। शिष्य

भी बार–बार पीछे मुड़कर गुरुजी का मुखामृत पान करता रहा।

इसके बाद मयूरमुकुटजी अपने जन्मस्थान बरसाना गए। बरसाना व नन्दग्राम में विशेष समारोह के साथ होली का उत्सव मनाया जाता है। मयूरमुकुटजी ने इस उत्सव में योगदान करके विशेष आनन्द अर्जित किया। उत्सव समाप्ति के बाद उन्होंने कैलास यात्रा की एवं हर–पार्वतीजी के दर्शन और शुभाशीर्वाद ग्रहण करके धन्य हुए। कैलास में उनके पुनरागमन से महात्मालोग बहुत आनन्दित हुए। कैलास यात्रा के पूर्व उन्होंने गुरुभाई मन्मथबाबू को संकेत दिया था कि उनको शीघ्र ही गोसाँईजी के निर्देश में परलोक यात्रा करना पड़ेगा। तब उनका कार्य होगा विश्वमय प्रेम राज्य गठन करना। गोस्वामी प्रभु के निर्देश से उन्होंने बंगला सन् 1320 (सन् 1914 ई०) के चैत्र महीने की कृष्णाचतुर्दशी तिथि में खुले आसमान के नीचे स्वेच्छा से समाधि ग्रहण की। उनके समाधि के ऊपर प्रतिदिन बर्फ पड़ने लगी। इसी तरह एक महीना बीत गया। संन्यासी लोगों ने उनकी पवित्र देह को वहाँ से उठाकर कैलास के नीचे श्रीश्री ब्रह्मदेव मन्दिर के निकट उन्हींकी बनाई हुई काष्ठ धर्मशाला के पास ले गए। इस धर्मशाला को मयूरमुकुटजी ने नवद्वीपबाबू के आर्थिक सहायता से संन्यासियों के लिए बनवाया था। संन्यासी लोगों ने उस धर्मशाला के पास उन्हें यथा विधि समाधि दी और महाराज के स्मृति स्वरूप एक स्तम्भ बना दिया। गोस्वामी प्रभु ने शिष्य मयूरमुकुटजी को एक निर्दिष्ट कार्य के लिए ढाका भेजा था एवं कार्य समाप्त होते ही गुरुजी शिष्य को अपने पास ले गए।

मयूरमुकुटजी पर श्रीश्री राधारानी की कृपा का अनन्यतम निदर्शन एक पत्र से प्राप्त होता है। यह पत्र श्री बैकुण्ठनाथ वेदान्त वाचस्पति ने बाँकुड़ा से सन् 1350 (सन् 1943 ई०) 26 वैशाख तिथि में मयूरमुकुटजी के शिष्य गौरचन्द्र को लिखा था।

वेदान्त वाचस्पति मयूरमुकुटजी के प्राणसखा थे। एकदिन सुबह सात बजे मयूरमुकुटजी सखा को साथ लेकर घूमने गए, दोनों श्रीकृष्णलीला के गोचारण के बारे में बातें कर रहे थे। वक्ता थे मयूरमुकुटजी और वाचस्पति श्रोता। वाचस्पति प्रश्न कर रहे थे और महाराजजी उत्तर दे रहे थे। बातों–बातों में वे कितनी दूर चले गए, यह किसी को भी ज्ञात नहीं रहा। मयूरमुकुटजी तो कृष्णप्रेमाविष्ट थे। अचानक मोर और हिरण के एक दल को देखकर उनमें प्रेम–तरंग जाग उठी। साथ में गाय और चरवाहे के बाँसुरी के स्वर ने उनको व्याकुल कर दिया। उनमें कृष्णलीला और गोचारणलीला प्रकट होने लगी। अचानक उन्होंने गाय–बछड़ों के झुंड में प्रवेश किया। वाचस्पति अकेले पड़े रहे। इस दृश्य को देखकर वाचस्पति एक वृक्ष के नीचे अचेत हो गए। जब उनकी चेतना लौटी तो अपने सखा को पास

में बैठा देखा। सखा से उन्होंने कहा कि उनको भूख लगी है। मयूरमुकुटजी ने कहा कि वृन्दावन की तरुलता कल्पवृक्ष स्वरूप एवं पानी अमृत स्वरूप है। इसलिए उन्होंने वाचस्पति से कहा कि वृक्षों के पास खाद्य और पानी के लिए प्रार्थना करो। वाचस्पति को लगा कि वे मजाक कर रहें हैं। फिर भी सखा की बात अमान्य नहीं कर सके और एक वृक्ष के पास जाकर खाद्य और पानी के लिए प्रार्थना की। आश्चर्य की बात है, प्रार्थना करते ही उन्होंने देखा कि वृक्ष के नीचे मिट्टी के बर्तन में गरम–गरम मोहन भोग, गरम दूध, पेठा, मिष्टान्न आदि सज्जित है। यह देखकर वेदान्त वाचस्पति महाराजजी के पैरों पर गिर पड़े। महाराजजी ने सखा को उठाकर सीने से लगा लिया। फिर दोनों ने मिलकर वह खाद्य और पानी ग्रहण किया। बाद में, पूछने पर वाचस्पति को पता चला कि वे 16 मील दूर आ चुके हैं। यह जानकर उन्होंने कहा कि इतनी दूरी वे पैदल नहीं लौट सकते अतः उन्हें आज वृक्ष के नीचे ही रहना होगा। सखा की बात सुनकर महाराजजी ने कहा कि राधारानी सब व्यवस्था कर देंगी। उनकी बातों से आश्वस्त होकर वे वृक्ष के नीचे सो गए। सोते ही उनको नींद आ गई। लेकिन नींद टूटने पर अपने आप को घर में बिस्तर पर पाया, उन्होंने सोचा कि शायद वे सपना देख रहे हैं इसलिए चारों ओर देखने लगे। मयूरमुकुटजी ने हँसकर कहा कि श्रीश्री राधारानी की कृपा से यह सब सम्भव हुआ।

इस अभूतपूर्व कृपा के बारे में पत्र लिखकर महाराजजी के शिष्य गौरचन्द्र को वेदान्त वाचस्पति ने बताया था–"तुम लोग (महाराजजी के शिष्यलोग) भाग्यवान् हो। वे सिद्ध महापुरुष थे। अब भी उनका दर्शन मिलता है।" इस घटना से यह पता चलता है कि मयूरमुकुटजी कितने बड़े उच्च अवस्था के साधक थे। श्रीश्री राधारानी की अपार कृपा से उनका जीवन धन्य हो गया था। यद्यपि मयूरमुकुटजी कैलास में रहकर साधन–भजन करते थे, लेकिन किसी कारणवश उन्होंने कैलास–यात्रा की कोई चर्चा नहीं की है। सौभाग्यवश गोस्वामी प्रभुजी ने स्वयं इस यात्रा का वर्णन किया था, जब उन्होंने दो साथियों के साथ श्रीश्री हरगौरीधाम का दर्शन किया था और श्रीश्री कैलासनाथ की कृपा प्राप्त की थी। गोस्वामी प्रभुजी ने यह भी कहा था कि जनसाधारण जिसे कैलास कहता है, वह असल में कैलास नहीं है। इस विषय में उनके एक प्रधान शिष्य, वीरभूम जिले के अलिग्राम निवासी, सूर्यनारायण राय महाशय को उन्होंने कहा था। गोस्वामी प्रभुजी द्वारा यह कथित विवरण, राय महाशय ने अपनी डायरी में लिखा था। बाद में गोस्वामी प्रभुजी के जीवनीकार अमृतलाल सेन महाशय ने राय महाशय के डायरी से श्रीश्री कैलासधाम का वर्णन, गोस्वामी प्रभुजी के जीवनी ग्रन्थ में किया।

राय महाशय की डायरी से गोस्वामी प्रभुजी कथित विवरण का यहाँ उल्लेख

किया जा रहा है– गोस्वामी प्रभुजी ने कहा "एकबार मैं कुछ साधुओं के साथ हिमालय पार होकर स्वर्ग के रास्ते पर चल रहा था। बर्फ पर बहुत मुश्किल से चल रहा था, सँकरे रास्ते से चलते–चलते, एक स्थान पर जाकर विश्राम किया। उस स्थान में एक कुंड देखा – महादेवकुंड। यहॉ महादेव की पूजा करनी पड़ती है। हम लोगों ने जैसे ही पूजा करने के बाद शंखध्वनि की, बड़े–बड़े बंदर आकर कुंड के चारों ओर बैठ गए। इसके बाद कुंड से एक रथ निकला, उसमें महादेवजी का दर्शन किया, बड़ा अद्भुत दर्शन। फिर बंदरों को खाने के लिए फलादि दिया गया। वे खाकर चले गए। रथसह महादेव उस कुंड में अंतर्हित हो गए।

इसके बाद फिर साधुओं के साथ दीर्घकाल चलने के बाद अंत में एक परम रमणीय पर्वत के पास जा पहुँचे। यहाँ अनेक शिव मन्दिर हैं। यहाँ कई साधु रहते हैं। इस पर्वत के शिखर में हरपार्वतीजी की तपस्यास्थल कैलासपुरी स्थित है। साधु–सज्जनगण कैलास पर्वत के इस स्थान तक मुश्किल से ही आ सकते हैं, लेकिन इसके बाद अग्रसर होना प्रायः असम्भव है। इसके बाद ही पर्वत का बर्फीला अंश शुरू होता है। हठयोग आदि प्रक्रियाओं का विशेष रूप से अभ्यास नहीं रहने पर, यहाँ की ठंड सहन नहीं की जा सकती। अनेक महात्माओंकी, कैलासनाथ के दर्शन के लिए इसके बाद भी अग्रसर होने से, ठण्ड में उनके शरीर का खून जम जाने के कारण, मृत्यु हो गई। यहाँ मृतदेह सड़ती नहीं है। पहले शरीर का खून, माँस आदि जम कर बर्फ सा हो जाता है। दीर्घकाल ऐसी अवस्था में रहते–रहते, भगवान् के अद्भुत कौशल से यह बर्फ, पत्थर में बदल जाता है। ऐसे पत्थर के कई मनुष्यमूर्ति को देखकर हम लोग विस्मित हो गए। महामति युधिष्ठिर ने, महाप्रस्थान के समय यह जानकर, भविष्य में आने वाले यात्रियों को सतर्क करने के लिए, एक प्रस्तरखण्ड में "अत्र अग्रे न गच्छन्ति" यह उक्ति बड़े–बड़े अक्षरों में लिखी थी, यह भी दर्शन हुआ।मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। हठयोग की क्रिया में भी मैं अभ्यस्त नहीं था। मेरे साथी साधु लोग हठयोग सिद्ध थे, वे बर्फीले प्रदेश में कैलासपुरी की ओर अग्रसर होने लगे। मैं उनके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा में पर्वत के पास शिवमंदिर में अन्य साधुओं के साथ प्रतीक्षा करने लगा।

दोनों साधुओं ने कैलासपुरी से लौटकर गोस्वामी प्रभुजी को जो कुछ कहा था, वह भी राय महाशय के डायरी में मिला है– "बर्फ में चलते–चलते हठयोगसिद्ध महापुरुषों ने अनेक आश्चर्यजनक दृश्य देखें। यहाँ उनको अनेक तपोवन दिखाई दिये। नरमाँसभोजी अनेक असभ्य जातियों को भी देखा। पुरीधाम में श्रीश्री जगन्नाथदेव के मंदिर की दीवार में एक प्रकार द्विभुज सूर्याकृति एकमुण्ड विशिष्ट अस्वाभाविक जीव का चित्र अंकित है, ऐसे प्राणियों को भी उन्होंने देखा। आश्चर्य की बात यह है कि ये सब अद्भुत जीव कैलासपुरी के प्रहरी स्वरूप है। ये लोग

आगन्तुकों को कैलास में प्रवेश करने से बाधा प्रदान करते हैं। बाधा नहीं मानने से उनका प्राण विनाश भी करते हैं। साधु लोग विहंगम् योग द्वारा शून्य पथ में ये सब दुर्गम स्थानों को पार करने लगे।

इस तरह दीर्घपथ अतिक्रमण करने के बाद वे शिवरात्रि के दिन शिवलिंग आकार के एक विशिष्ट पर्वत के निकट उपस्थित हुए। उसके ऊपर एक स्वर्णमयी पुरी का दर्शन हुआ। इस पर्वत की एक बड़ी गुफा में अनेक प्राचीन ऋषि–मुनियों का एक अपूर्व समावेश देखकर वे अतिशय मुग्ध हो गए। इससे कुछ दूरी पर एक प्रकाण्ड पर्वत मिला, जिसके बाद कोई और रास्ता नहीं था। पर्वत के पास जाकर एक बड़ा पत्थर का दरवाजा देखा उसके दोनों तरफ दो घण्टे थे। अन्दर में जहाँ तक देखा जाए, केवल तपस्वी ही नजर आए। कोई दीर्घकाय, कोई शीर्णकाय, कोई सफेद केशवाला, कोई लंबी दाढीवाला, कोई कृष्णवर्ण, कोई श्वेतवर्ण, कोई होम कर रहा है, कोई योगध्यान मग्न, कोई भावमग्न होकर भजन गा रहा है तो कोई भक्ति भाव से पूजा कर रहा है। अनेक पुरातन ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी, नर, देवता आदि इस अमर भवन में युग–युग से तप कर रहें है। साधुगण ब्रह्मानन्द में निमग्न हैं। अहा! यही तो चिरशान्तिमय अमरधाम–अक्षय–अव्यय–जो प्रलयाधीन नहीं, सम्भवतः यह स्थान ही मुक्तिनाथ कालातीत धाम है। उन्होंने देव–द्वार–रक्षक से पूछा "देव, यह कौन–सा धाम है ?" द्वार रक्षक ने कहा "हरगौरीधाम, वह जो मंदिर देख रहें है वहाँ हरगौरी विराज कर रहें है– यही कैलासपुरी है। संध्या के समय पुरी का द्वार खुला। साधुगण अंदर में प्रवेश किये। वहाँ की अपूर्व शोभा दर्शन कर वे मोहित हो गए। वहाँ मेरे साथ अचानक साक्षात् होते ही सहयात्री साधु आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने विस्मय के साथ पूछा कि मैं कैसे उन लोगों के पहले कैलासधाम में पहुँच गया। मैनें कहा "आप लोगों के चले आने के बाद मैं प्रतीक्षा करता हुआ पड़ा रहा। मन में बहुत कष्ट हो रहा था। मैनें श्रीश्री कैलासनाथजी के शरणापन्न होकर मन की वेदना निवेदित की– "हे कैलासपति, दया के सागर क्या तुम मुझे तुम्हारे चरणों में नहीं ले जा सकते ? मेरा शरीर अक्षम है। मैं अर्द्धमृत होकर पड़ा हूँ।" दया के सागर भगवान आशुतोष कृपा करके उपस्थित होकर मुझे सूक्ष्म शरीर में यहाँ ले आए। मेरा स्थूल शरीर पर्वत के नीचे स्थित एक मंदिर में रख दिया।

हम लोगों ने देखा "एक मंदिर के मध्यस्थल में एक विचित्र हिरण्मय सिंहासन में योगेश्वर श्रीमहादेव, योगमाया पार्वतीदेवी को अंक में धारण करके उपविष्ट हैं। विश्व के आदि माता–पिता को आँखों के सामने देखकर हम लोग गद्गद् होकर विभिन्न स्तव–स्तुति–पाठ द्वारा उनकी अर्चना करने लगे। इस तरह शिवरात्रि बीत गई। प्रातःकाल में भगवान श्रीमहादेव एवं भगवती पार्वतीदेवी ने उपस्थित

महापुरुषगणों को शुभाशीर्वादपूर्वक विदा किया। योगेश्वर महादेव पुनः मुझे पर्वत के नीचे स्थूल शरीर में प्रविष्ट कराने के बाद, अप्राकृत कैलासधाम में लौट गए। श्रीश्री नन्दीकेश्वर के, उपस्थित महापुरुषों को कैलासपुरी से, विदा होने का अनुरोध करने पर सब अपने–अपने स्थान में चले गए।"

विश्व के आदि माता–पिता, पार्वती–परमेश्वर के निवास स्थान, इसी कैलास में साधक मयूरमुकुटजी ने स्वेच्छापूर्वक चिर समाधि प्राप्त की।

श्री मयूरमुकुटजी बाबा के उपदेश

1. **खराब काम नहीं करना! बद्लोगों (असत्लोगों) के साथ नहीं चलना।**
2. **स्त्रीलोग नहीं हेरे! स्वपन् में नहीं हेरे परनारी। (हेरना–देखंना)**
3. **जूठा कुछ भी नहीं देना और जूठा कुछ भी नहीं खाना।**
4. **पवित्र होकर "नाम" जपो और कोई चिन्ता नहीं करो।**
5. **माता–पिता का जूठा प्रसाद है।**
6. **पवित्र नाम से प्रेम होगा। प्रेम से भगवान आएगा।**
7. **अपनी शक्ति कुछ नहीं मानोगे। भगवान की शक्ति सब कुछ में देखोगे।**
8. **कोई काम अपना नहीं। भगवान का सब काम निहारो।**
9. **सुजन के साथ रहोगे। कुजन का संग नहीं करोगे।**
10. **सदा नाम जपोगे। भवनदी तरोगे।**

****

श्री जगद्बन्धु मैत्र

श्री जगद्बन्धु मैत्र महाशय ने बंगला सन् 1266 के ज्येष्ठ माह (सन् 1859 ई०) में फरीदपुर जिला (बंगला देश) में राजबाड़ी थाना के अन्तर्गत रूफुनि गाँव में जन्म लिया था। उनके पिता रामगति मैत्र अत्यन्त सरल, उदारचेता, धर्मशील एवं निष्ठावान ब्राह्मण थे। उनका विचार था कि ब्राह्मण को नौकरी करना उचित नहीं है क्योंकि इससे धर्मरक्षा करना मुश्किल होता है। उनका धर्मजीवन अतिशय उच्चस्तर का था। जगद्बन्धु मैत्र के पुत्र दाऊजी (वृन्दावन चन्द्र) के जन्मग्रहण की घटना से यह पता चलता है। घटना इस प्रकार है–

उस समय गोस्वामी प्रभुजी की कन्या शान्तिसुधा देवी एवं जामाता जगद्बन्धु मैत्र ढाका गेण्डारिया आश्रम में रहते थे। उन लोगों की सन्तान दाऊजी के जन्मग्रहण के दिन गोस्वामी प्रभुजी की सास मुक्ताकेशी देवी ने सपना देखा कि एक गेरूआवस्त्र पहने हुआ वृद्ध ब्राह्मण, गंगाजल से भरा एक ताम्बे का लोटा लेकर, गोस्वामी प्रभु के साथ सूतिकागृह में प्रवेश कर कह रहें हैं कि हमारे वंश में एक महापुरुष ने जन्मग्रहण लिया है, उसको शान्तिजल से अभिषिक्त करके अर्घ्यदान करने के लिए हम लोग आए है। ऐसा कहकर उन्होंने हरिद्वार से लाए हुए गंगा जल से बालक का अभिषेक किया।

जब गोस्वामी प्रभु ढाका आए, शान्तिसुधादेवी ने अपने पिता से इस स्वप्न के बारे में पूछा। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था कि वह सपना सच था और घटना भी सच थी। दाऊजी के जन्मग्रहण के बाद उसके परलोक गत पितामह ने सत्यलोक से मेरे पास आकर कहा कि चलो हम लोग ढाका में जाकर नवजात शिशु को आशीर्वाद देकर आए। तब हम दोनों ढाका में आकर शिशु को शान्तिजल से अभिषिक्त किया फिर मैं श्रीवृन्दावन चला गया और उन्होंने सत्यलोक में प्रस्थान किया।

मैत्र महाशय के पिता महापुरुष थे, यह इस घटना से ही पता चलता है। उन्होंने ज्यादा दिन इस लोक में अवस्थान नहीं किया, जब पुत्र पन्द्रह साल का था, बंगला सन् 1281, 11 पौष (सन् 1875 ई०) की मध्य रात्रि में पिता रामगति मैत्र ने दिव्यधाम में प्रस्थान किया। मृत्यु के पश्चात् सत्यलोक में स्थान पाना उच्च अवस्था का लक्षण माना जाता है। मैत्र महाशय की माताजी शारदासुन्दरी देवी

अति सुन्दरी और पतिव्रता थीं। पतिसेवा ही उनका एकमात्र व्रत था। वे कभी ऊँची आवाज में बात नहीं करती थीं। उन्होंने कभी भी किसी के साथ झगड़ा नहीं किया। शारदासुन्दरी देवी पुत्र को बहुत स्नेह करती थी। इस सम्बन्ध में दो घटनाएँ मैत्र महाशय ने कही हैं। पहली घटना यह है–

पुत्र जगद्बन्धु बचपन में बहुत चंचल था। रास्ते में, पानी का कलश लेकर जाती हुई लड़कियों के कलश को बालक जगद्बन्धु पत्थर मारकर तोड़ देता था। लड़कियां उनकी माँ के पास जाकर शिकायत करती थीं। शारदादेवी उन लोगों को समझा–बुझाकर कलश का मूल्य दे देती थीं और उन लोगों से अनुरोध करती थीं कि वे शिशु को अभिशाप न दें। इसके लिए माता, पुत्र को डाँटती नहीं थी परन्तु प्यार से उपदेश देती थी। दूसरी घटना यह है–

उस समय मैत्र महाशय की उम्र ज्यादा थी। एकबार रात के समय स्वर्गीय माता ने पुत्र को दर्शन देकर कहा– "प्राणायाम मत करो, इससे तुम्हारा शरीर अस्वस्थ हो सकता है। अगले जन्म में प्राणायाम करना, इस जन्म में नहीं।" यह सुनकर पुत्र हँसता हुआ बोला "दूसरे जन्म में तुम फिर मना करोगी।" देहान्त के बाद भी माता पुत्र के कल्याण की चिन्ता करती है। इस घटना से यही पता चलता है।

शारदादेवी की मृत्यु बंगला सन् 1292 (सन् 1886 ई०) 7वीं चैत्र को हैज़ा से हुई। मैत्र महाशय के अनाथबन्धु नाम का एक भाई और बसन्तकुमारी नाम की एक बहन थी। अनाथबन्धु फरीदपुर राजबाड़ी मुंसिफ कोर्ट के वकील थे। उन्होंने भी गोस्वामी प्रभु की कृपा प्राप्त की थी। जगद्बन्धु ने अपने मामा के घर में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। मैमनसिंह के पाठशाला की पढ़ाई समाप्त होने पर मैत्र महाशय, छात्रवृति स्कूल में भर्ती हुए। पारिवारिक कारणों से वे ज्यादा पढ़ाई नहीं कर पाए। पर गोस्वामी प्रभु के निर्देश से संस्कृत पढ़कर सुपण्डित हुए। धीरे–धीरे प्राच्य एवं पाश्चात्य शास्त्र में उन्होंने प्रगाढ़ ज्ञान लाभ किया।

मैत्र महाशय, उत्तरबंग में पावना जिला के एक स्कूल में, काफी दिनों तक शिक्षक थे। इस समय उन्होंने गोस्वामी प्रभु का हृदयस्पर्शी प्रवचन सुना एवं मुग्ध हो गए। उस समय बंगलादेश के विभिन्न स्थान, गोस्वामी प्रभु के प्रभाव से, ब्रह्म–नाम और संगीत से प्रभावित हो उठे थे।

मैत्र महाशय स्वास्थ्यवान एवं सुश्री थे। यौवन के प्रारम्भ में कोंकरादि निवासी चिन्तामणि देवी की कन्या लक्ष्मीदेवी के साथ उनका प्रथम विवाह हुआ एवं बंगला सन् 1286 (सन् 1879 ई०) में सरोजबन्धु नामक एक पुत्र हुआ, लेकिन माता और पुत्र दोनों ज्यादा दिन जीवित नहीं रहे। बंगला सन् 1291 (सन् 1864 ई०) के 26

श्रावण को लक्ष्मी देवी एवं 31 श्रावण को पुत्र सरोजबन्धु ने देहावसान हुआ। पत्नी एवं पुत्र के वियोग से मैत्र महाशय के मन में वैराग्य उदय हुआ। उन्होंने शिक्षक का कार्य छोड़कर कोलकाता के 82 नं० कॉलेज स्ट्रीट में स्वतंत्र रूप में पुस्तक विक्रेता का कार्य शुरू किया। उस समय वे 10 नं० कृष्णदास लेन में किराया पर रहते थे। उसी रास्ते के 12 नं० घर में ब्राह्मसमाज के आचार्य नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय रहते थे। उनकी पत्नी मातंगिनी देवी अत्यन्त भक्तिमति महिला थी। गोस्वामी प्रभु उनको माँ आनन्दमयी पुकारते थे। मातंगिनीदेवी के उपदेश से मैत्र महाशय, गोस्वामी प्रभु के पास गए। बंगला सन् 1294 (सन् 1887 ई०) 3 अग्रहायण को, रात 12 बजे नगेन्द्रबाबू के घर में गोस्वामी प्रभुजी ने कृपापूर्वक उनको दीक्षा प्रदान की। दीक्षाप्राप्ति के साथ–साथ उनका संताप दूर हो गया। वे नवजीवन प्राप्त करके गुरुजी के निर्देशानुसार चलने लगे। दीक्षा प्राप्ति से पहले मैत्र महाशय ने, सत्य प्राप्ति के लिए, विभिन्न धर्म सम्प्रदाय में योगदान दिया था। वे ब्राह्मसमाज, रोमन कैथलिक एवं प्रोटेस्टैन्ट चर्च भी गए थे। उस समय उन्होंने कर्ताभजा और बाउलों की भी संगत की। बाउलों का अनाचार और मल–मूत्र भोजन देखकर उनको अच्छा नहीं लगा। बंगाल में बाउल वैष्णव सम्प्रदाय ऊपरी तौर से चैतन्य महाप्रभु को मानते हैं पर उनका आचार–विचार आदि सब विपरीत है। मैत्र महाशय सब धर्म सम्प्रदाय के प्रति समान श्रद्धा रखते थे। उल्टाडांगा (विधाननगर) में आठ आना के किराए के घर पर उन्होंने रहना शुरू किया। मात्र एकबार भोजन बनाकर खाते थे और दुकान चलाते थे। फिर दो–एक पैसे में कुछ खाकर "नाम" लेकर पड़े रहते। "नाम" के अलौकिक प्रभाव से उनकी अंतर्ज्वाला शान्त होने लगी। कुछ दिन बाद गुरुजी के निर्देश पर, पुस्तक व्यवसाय छोड़कर वे गुरुजी के साथ रहने लगे।

गोस्वामी प्रभु के निर्देश से उनकी कन्या शान्तिसुधादेवी के साथ मैत्र महाशय का पुनः विवाह हुआ एवं पुत्र योगजीवन के साथ मैत्र महाशय के बहन का विवाह हुआ। दोनों ही शादियाँ एक ही दिन में, बंगला सन् 1295 की 26 फाल्गुन (सन् 1887 ई०) में अनुष्ठित हुई। यह विवाह ब्राह्मधर्म के अनुसार हुआ था। विवाह के बाद, गुरुजी के निर्देशानुसार, उन्होंने गृहस्थ आश्रम में रहते हुए ब्रह्मचर्य का जो नियम है, उसका पालन किया। गोसाँईजी ने मैत्र महाशय को अपना कर्मक्षय करने के लिए कुछ दिन और नौकरी करने का निर्देश दिया। मैत्र महाशय ने दरभंगा के एक स्कूल में कुछ दिन पंडित का काम किया। उस समय शान्तिसुधादेवी उनके साथ थीं।

बंगला सन् 1297 के 22 पौष (सन् 1890 ई०) में ढाका में उनके पुत्र वृन्दावनचन्द्र (दाउजी) ने जन्म लिया। कुछ दिन बाद वृन्दावन से गोसाँईजी जब

ढाका आए, उस समय गोसाँईजी ने मैत्र महाशय से पूछा कि क्या वे इस वक्त नौकरी छोड़ सकते हैं या नहीं ? गुरुजी की यह बात सुनकर सातवें दिन मैत्र महाशय ने उनसे कहा कि वे स्वयं कुछ भी निर्णय नहीं करेंगे। बुरा–भला सब के लिए वे गुरुजी पर निर्भर हैं। गोसाँईजी ने हँसते हुए कहा कि उनका कर्मक्षय हो चुका है। अब उनको आकाशवृत्ति पर निर्भर रह कर गोसाँईजी के साथ रहना होगा। उस दिन के बाद से मैत्र महाशय ने गुरुजी का साथ कभी नहीं छोड़ा। उस समय से उनका साधन–भजन भी नियमित रूप से चलता रहा।

पहले पुत्र के बाद जगदानन्द, सौरीन्द्रसुन्दर, भुवनसुन्दर एवं ब्रजेन्द्रसुन्दर नाम के उनके और चार पुत्र हुए। गोस्वामी प्रभु के आदेश से मैत्र महाशय ने कोलकाता के केवड़ातला महाश्मशान की निर्जनता में काफी दिनों तक नाम–साधना किया। ढाका में रहते समय वे श्रीश्री नामब्रह्म मंदिर में पूरी रात नाम–साधना करते थे। उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। मन्दाग्निरोग से कष्ट हो रहा था, फिर भी गुरुजी के निर्देश से पूरी रात मंदिर में नाम–साधना करते थे।

ढाका में मैत्र महाशय कठोर साधना करते थे। वे प्रतिदिन रात नौ बजे भोजन करके आसन में बैठते थे और योगतन्द्रा में मग्न हो जाते थे। प्रातः काल उनकी योगतन्द्रा भंग होती थी। वे साधारणतः योगमाया देवी के समाधि मंदिर में साधना करते थे। गोसाँईजी अपनी कुटिया में बैठते थे। सुबह होते ही गोसाँईजी प्राणायाम करते थे। मैत्र महाशय भी उस समय प्राणायाम करके आसन छोड़ते थे। गोसाँईजी ने उनको सप्ताह में एक दिन सोने को कहा। उनके अनुसार वे 6 रात्रि साधना करते और एक रात्रि सोते थे। उस समय वे मन्दाग्नि से पीड़ित थे। रात में साधना करते समय आसन के पास सोडा का बोतल और एक लोटा पानी रखते थे। अम्ल होने से आसन से उठकर थोड़ा सोडा और पानी पीकर फिर आसन में बैठते थे। मैत्र महाशय को मन्दाग्नि रोग प्रायः 35 साल तक भुगतना पड़ा। धर्म प्राप्ति के लिए उनका अनुराग तीव्र था, इसलिए इस रोग की यंत्रणा सहन करते हुए भी वे साधन करते थे। 21 वर्ष की उम्र में उन्हें इस रोग ने घेरा और 56 वर्ष की उम्र में यह गुरुकृपा से सम्पूर्णरूप से ठीक हो गया। इस रोग के बारे में उन्होंने कहा था–"इस रोग के लिए मैंने एक मन सोडा पिया एवं अनेक प्रकार की चिकित्सा कराई, लेकिन कोई फल नहीं मिला। अंत में तारकेश्वर शिवजी के पास में "अनशन व्रत" किया उससे भी कुछ नहीं हुआ। गोसाँईजी को एकदिन इसके बारे में कहने से उन्होंने कहा "रामायण में सूर्य का स्तोत्र है, उसका पाठ करके देख सकते हो।" हैरिसन रोड के घर में रहते समय उन्होंने यह बात कही थी। उस समय मेरा भी कर्म–भोग समाप्त नहीं हुआ था इसलिए मैंने उनकी बात नहीं सुनी। बाद में काशी में रहते समय एकदिन गोसाँईजी की बात याद आई। तब मैंने

सोचा क्यों न यह स्तोत्र पाठ करके देखें ? तब प्रतिदिन गंगास्नान के बाद यह स्तोत्र पाठ करने लगा। तीन माह स्तोत्र–पाठ के बाद, क्रमशः यह रोग ठीक हो गया।"

बंगला सन् 1306 (सन् 1899 ई०) में काशी से लौटकर मैत्र महाशय कुछ दिन राममोहन दत्त स्ट्रीट में रहे। यहाँ रहते समय एकबार रात में मृत जस्टिस् (Justice) श्री द्वारिकानाथ मित्र ने (प्रेतरूप में) उनके पास आकर पूछा "मुझे पहचानते हैं ?"

मैत्र महाशय – हाँ।

प्रेत – कैसे ? आप ने तो जीवित अवस्था में मुझे कभी नहीं देखा है।

मैत्र महाशय – मैंने आपकी ऑइल पेंटिग देखी है।

प्रेत – मैं एक सहायता के लिए आपके पास आया हूँ।

मैत्र महाशय – मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ। आप हाईकोर्ट के जस्टिस थे। मेरे द्वारा आपका क्या उपकार हो सकता है ?

प्रेत – वह दिन बीत गया। अब 25 साल से प्रेत होकर बहुत कष्ट हो रहा है।

मैत्र महाशय – कैसा कष्ट ?

प्रेत – सर्वदा पूरे शरीर में वृश्चिक के काटने जैसा कष्ट हो रहा है। गया में पिण्ड नहीं देने से मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी। आप मेरी कन्या से कहें कि वह गया में पिण्ड दे। आपकी बात वह मानेगी।

मैत्र महाशय – ठीक है मैं कहूँगा।

दूसरे दिन मैत्र महाशय ने उनकी कन्या को बुलाकर सारी बातें कही। श्रीयुक्त द्वारकानाथ मित्र की कन्या ने शीघ्र गया जाकर पिण्ड दान किया।

पिण्डदान के बाद एकदिन श्रीयुक्त द्वारकानाथ मित्र ने मैत्र महाशय से कहा– "मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ। आपने मेरा बहुत उपकार किया अब मैं पूर्ण आनन्द में हूँ।" ऐसा कहकर वे अंतर्ध्यान हो गए।

अपने साधन जीवन के बारे में मैत्र महाशय ने एकबार कहा था– "मैंने कभी भी गुरुजी पर अविश्वास नहीं किया। साधन प्राप्ति के बाद नियमित साधन किया फिर भी चार साल लग गया।" चार साल बाद एकदिन गोसाँईजी ने कहा– "इतने दिन में अजपा (जप) ठीक हुआ।"

साधन करते समय सब महापुरुषों के जीवन में विभिन्न उपद्रव, विघ्न आदि देखा गया है। मैत्र महाशय को एक युवती ने प्रलुब्ध करने का बहुत प्रयास किया।

अंत में व्यर्थ होकर उनके संयम की प्रशंसा करते हुए उसने कहा कि वह मायादासी है और उनकी परीक्षा ले रही थी।

मैत्र महाशय दृढ़चेता एवं तेजस्वी पुरुष थे। इस घटना से उनकी चारित्रिक दृढ़ता स्पष्ट होती है। गठिया की यंत्रणा से उनको बहुत कष्ट होता था। इसलिए एक वैद्य ने उनको अफीम सेवन करने को कहा। इससे यंत्रणा तो कम हो गई लेकिन उनको अफीम का नशा हो गया। अफीम नहीं मिलने से तीव्र कष्ट होता था। वे समझ गए कि उनको अफीम का नशा हो गया है। घटना इस प्रकार है–

उस समय हवा बदलने के लिए मैत्र महाशय पुत्र–परिजनों को लेकर गिरिडीह गए थे। चिकित्सक के परामर्श के अनुसार वे प्रतिदिन अफीम सेवन करते थे। वे शहर से काफी दूर रहते थे। बाजार से प्रतिदिन अफीम लाया जाता था। एकदिन उनका पुत्र जगदानन्द बाजार से अफीम लाना भूल गया। रात में जब मैत्र महाशय ने अफीम की तलाश की तब उन्हें बताया गया था कि भूलवश बाजार से अफीम नहीं लाया जा सका है। मैत्र महाशय के मन में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अफीम छोड़ने के संकल्प से कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर दिया और सबसे कह दिया कि कोई कमरे में प्रवेश करने की चेष्टा न करे। इस तरह दो दिन बीत गए। तीसरे दिन उन्होंने दरवाजा खोला और बाहर आकर बोले– "मैंने गुरुकृपा से अफीम सेवन के नशे को जीत लिया है। अब मैं और अफीम का दास नहीं हूँ।" ऐसा दृढ़ संकल्प और असीम शक्ति उनमें थी। गुरुकृपा से वे इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। इस कठिन नशा को उन्होंने कैसे छोड़ा ? ऐसा प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि वे सर्वदा नाम में डूबे रहे और अपना कष्ट गोस्वामी प्रभु को कहते रहे। इस तरह तीन दिन की साधना से उनका अफीम का नशा हमेशा के लिए छूट गया।

पुरीधाम में रहते समय गोस्वामी प्रभुजी ने कहा– "जगद्बन्धु को कोई सामान्य व्यक्ति न समझना, देखो! श्रीवृन्दावन के गोविन्दजी, गोपीनाथ एवं मदनमोहन ने एकबार उनके पास से भोजन माँग कर खाया है। वे सबके पास जाते नहीं।" एकबार विधुघोष ने जगद्बन्धु मैत्र के बारे में कुछ संदेह प्रकाश किया। तब गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था, "ये लोग साथ में आते हैं और साथ में जाते हैं। इन लोगों के बाहरी कार्यकलाप को देखकर निर्णय लेना उचित नही।"

बंगला सन् 1302 के माघ माह (सन् 1896 ई०) में गोस्वामी प्रभु ने ढाका में अंतिम धूलट–उत्सव सुसम्पन्न किया। उस समय मैत्र महाशय को उन्होंने दीक्षा प्रदान करने का आदेश दिया। लेकिन गुरुजी के देहावसान के पूर्व उन्होंने किसी को भी दीक्षा नहीं दी। गोसाँईजी के तिरोभाव के बाद, जब वे पहली बार काशी गए थे, तब गोसाँईजी ने तीन दिन लगातार रात्रि के समय स्वप्न में आविर्भूत

होकर उनको दीक्षा देने को कहा। पहले और दूसरे दिनों के स्वप्न पर उन्होंने विश्वास नहीं किया, पर तीसरे दिन भी जब उन्होंने यही सपना देखा तब उन्होंने साधन (दीक्षा) देने का निश्चय किया। कौन–कौन से मंत्र देने पड़ेंगे, यह भी गोसाँईजी ने स्वप्न में कह दिया था, (संभवतः बंगला सन् 1313, सन् 1906 ई०)। मैत्र महाशय पहले अपने मित्र श्री हेमेन्द्र मित्र के पुत्र को साधन दिया। उल्लेखनीय है कि हेमेन्द्र मित्र उस समय कोलकाता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील थे। गोसाँईजी से दीक्षा प्राप्त कर उन्होंने साधना में काफी उच्च अवस्था प्राप्त की थी। उनके निवास स्थान पर आज भी मन्दिर में गोसाँईजी की सेवा पूजा चल रही है। धीरे–धीरे अनेक लोगों ने उनसे साधन प्राप्त किया। बंगला सन् 1314 (सन् 1907 ई०) में उनको गुरुभाई बीरभूम के अलिग्राम निवासी सूर्यनारायण राय, मैत्र महाशय को अपने गाँव ले गए। वहाँ सौ से भी अधिक लोगों ने दीक्षा प्राप्त की।

मैत्र महाशय कोलकाता में 1/1 महामाया लेन में रहते थे। मैत्र महाशय के दीक्षा देना आरम्भ करने पर उनके गुरुभाई, दीक्षा प्रार्थियों को उनके पास भेज देते थे। जिन लोगों ने गोस्वामी प्रभुजी के जीवित में रहते समय उनकी कृपा का लाभ प्राप्त नहीं किया था, मैत्र महाशय ने उन लोगों की आंकाक्षा पूरी की। इनमें से उल्लेखनीय है श्री ललित गुप्त, श्री शीतलप्रसाद चट्टोपाध्याय आदि।

गोस्वामीप्रभु के अनन्यतम शिष्य एवं 'महापातकीर जीवने सद्गुरुलीला' (बंगला ग्रन्थ–हिन्दी अनुवाद भी निकल चुका है।) के रचयिता हरिदास बसु महाशय, बोलपुर के कचहरी पट्टी में स्थित अपने वासभवन में रहते थे। वे हर साल धूलट उत्सव करते थे। उन्होंने मैत्र महाशय को इस उत्सव में योगदान के लिए आमंत्रित किया। संभवतः बंगला सन् 1322 (सन् 1915 ई०) में, इस आमंत्रण से मैत्र महाशय, तीन गुरुभाई माखनलाल गंगोपाध्याय, आनन्दचन्द्र मजूमदार एवं चन्द्रकांत ब्रह्म के साथ बोलपुर आए। उत्सव समाप्ति के बाद वे गुरुभाइयों को लेकर रामपुरहाट के पास नारायणपुर में गुरुभाई वृन्दावन हालदार महाशय के घर गए। यहाँ रहते समय अघोरनाथ का पुत्र मनीन्द्रमोहन, उनकी दो पुत्रवधुएं एवं स्थानीय अनेक भक्त उनकी कृपा प्राप्त कर धन्य हुए। स्वामी प्रेमानन्द भारतीजी के अनुरोध पर उनको नलहाटी जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने अनेक प्रार्थियों को दीक्षा प्रदान की। इस तरह गोस्वामी प्रभु के इच्छानुसार वे दीक्षा प्रदान करते रहे। उल्लेखनीय है कि स्वामी प्रेमानन्दजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से अमेरिका में वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। उनके द्वारा लिखित पुस्तक Lord of Love बहुत प्रसिद्ध है।

स्वामी प्रेमानन्दजी ने बहरमपुर में जमीन खरीदकर उनके लिए आश्रम निर्माण करना चाहा, पर वे राजी नहीं हुए। उनके एक गुरुभाई उमाचरण दास ने उनको एक मकान दान करना चाहा। यह प्रस्ताव भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

गोसाँईजी ने उनको आकाशवृत्ति पर रहने को कहा था। उन्होंने गुरुजी का निर्देश पालन किया। आकाशवृत्ति का अर्थ है भगवान पर पूर्ण रूप से निर्भर रहना। इस व्रत के प्रमुख नियम हैं : **(1) अर्थ उपार्जन की चेष्टा नहीं करना, (2) किसी के पास कुछ भी, अर्थात् अर्थ, खाद्य, वस्त्र आदि, नहीं माँगना, (3) किसी के पास अपना अभाव या आवश्यकता को प्रकाश नहीं करना, (4) केवल स्वेच्छापूर्वक किसी के कुछ देने पर, उसे भगवान् का दान मानकर ग्रहण करना, अभिमानवश इसे न लेना अपराध माना जाता है।**

बंगला सन् 1326–27 (सन् 1922 ई०) में सिउड़ी शहर के सत्येन्द्रनाथ दास एवं बसंतकुमार दास ने उनके पास दीक्षा प्राप्त की। बसंतकुमार के आग्रह पर वे पहली बार सिउड़ी गए एवं वहाँ के अनेक भक्तों को दीक्षा देकर धन्य किया। बंगला सन् 1329–30 (सन् 1923 ई०) में, गुरुभाई आशुबाबू के प्रयास से, वे रामपुरहाट में कुंजबिहारी घोष महाशय के घर गए। वहाँ उन्होंने कुंजबाबू के पुत्र पुत्रवधू एवं अनेक दीक्षा–प्रार्थियों को दीक्षा प्रदान की। वहाँ की एक घटना उल्लेखनीय है। डा० श्यामलाल के पत्नी को जब वे दीक्षा दे रहे थे, तब देखा गया कि स्वयं गोस्वामी प्रभुजी दीक्षा दे रहे हैं।

नदीया जिला के बेलमुड़ि स्टेशन के पास सुँटिया गाँव में सरोजिनी देवी एवं उनकी माता ने उनसे दीक्षा प्राप्त किया। दीक्षाप्राप्ति के साथ–साथ सरोजिनी देवी की माता भगवत् दर्शन से समाधिस्थ हो गईं। काफी देर तक हरिनाम कीर्तन के बाद उनकी चेतना लौटी। तब उन्होंने दर्शनादि के बारे में कहा। इस सम्बन्ध में मैत्र महाशय ने कहा–"भगवान इनको दर्शन देने के लिए प्रस्तुत थे, केवल दीक्षाप्राप्ति की ही अपेक्षा थी"। बंगला सन् 1332 के पौष मास (सन् 1926 ई०) में उन्होंने वर्द्धमान के निताईचन्द्र मजूमदार के घर, कीर्तन में योगदान किया। फिर नलहाटी होकर जगधारी में आए। यहाँ 16–17 भक्तों की दीक्षा हुई। दीक्षा के समय अश्विनी कुमार दत्त महाशय ने मैत्र महाशय के पीछे अलौकिक ज्योति दर्शन की। शिष्या ज्योतिर्मयीदेवी को दीक्षाप्राप्ति के साथ–साथ ही प्राणायाम शुरू हो गया। अन्य कई भक्तों के मुखमण्डल पर अपूर्व ज्योति दिखाई दी। वे रामपुरहाट होकर नारायणपुर आए। वहाँ से नलहाटी में गुरुभाई अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के घर गए। यहाँ एकबार रात में कीर्तन के समय, पूजा–घर अपूर्व सुगन्ध से भर गया। नलहाटी से वे पुनः सिउड़ी गए और अनेक भक्तों को कृपा प्रदान किए।

सिउड़ी से वे वर्द्धमान में निताईबाबू के घर आए। निताईबाबू के पुत्र तारापद, एकदिन ज़ब रात में कीर्तन कर रहे थे, उस समय राधाकृष्ण की अप्राकृत लीला प्रकट हुई एवं सब लोग भावविभोर हो गए। इसके पहले मैत्र महाशय का भावावेग किसी ने नहीं देखा था। वे सर्वदा भाव संवरण की प्रबल चेष्टा करते थे लेकिन

उस दिन वे भावमग्न होकर "जय राधारानी" ध्वनि दे रहे थे एवं कीर्तन समाप्त होने पर सबको साष्टांग प्रणाम करके सबसे आशीर्वाद प्रार्थना करने लगे। उनकी ऐसी अवस्था पहले कभी भी देखी नहीं गई थी। उनके शरीर से कभी–कभी कमल की सुगंध मिलती थी।

वे गंभीर प्रकृति के थे इसलिए सहज में उनके पास जाना थोड़ा कठिन था, किन्तु शिशुओं के प्रति उनका विशेष स्नेह था। उनके चौथे पुत्र की पत्नी नीरदादेवी मात्र नौ वर्ष की थी। वह शांतिसुधा देवी और मैत्र महाशय को अपना माता–पिता समझती थी। नीरदादेवी सर्वदा उनके शरीर से कमल के सुगंध का अनुभव करती थी। एकबार महामाया लेन के दोमंजिले घर के ऊपर के कमरे से नीरदादेवी ने मैत्र महाशय को शौचालय में अदृश्य किसी व्यक्ति के साथ बातें करते सुना और एकदिन उनको किसी की ओर पैर बढ़ाते हुए देखा। इस बारे में पूछने पर उन्होंने कहा कि एक प्रेत रोज उन्हें तंग करने आता है। उसे भगाने के लिए उन्होंने इस तरह पैर बढ़ाए थे। ऐसी अलौकिक घटना अनेक लोगों ने देखी थी।

उनके प्रदत्त नाम की अपार महिमा थी। "नाम" की शक्ति कभी–कभी ऐसी प्रकट हो जाती थी कि नाम ग्रहणकारी साधारण कार्यों को भी नहीं कर पाते थे। बीरभूम जिले के नारायणपुर गाँव में मदन नामक एक बालक की दीक्षा प्राप्ति के बाद देखा गया कि 'नाम' की उस पर बड़ी ही कृपा हुई है– काम करते, खाते, सोते सर्वदा ही नाम चलता रहता है। उसे नींद भी नहीं आती थी। साधना के साथ–साथ ही स्वाध्याय करने के लिए वे कहते थे, इससे कल्पना और गलत रास्ते में जाने से रक्षा होती है। वे कहते थे, **"शास्त्र और सदाचार मानने से गृही भी ब्रह्मचारी की मर्यादा का लाभ पा सकते हैं। इसका ज्वलन्त दृष्टान्त स्वयं गोस्वामी प्रभु, अद्वैत प्रभु और प्राचीनकाल के वशिष्ठ, विश्वामित्र, कश्यप आदि ऋषिगण हैं। जटाधारण, गेरुआवेश आदि साधक की अवस्था के ऊपर निर्भर करता है। यह सब जरूरी नहीं है।"** गृही वेश में भी वे संन्यासी से लगते थे, ऐसी मोहनीय मूर्ति थी उनकी। लोगों को दूर से देखने में, उन्हें गोस्वामी प्रभु का दूसरा स्वरूप लगता थे। इसका कारण यह है कि सर्वदा गुरुध्यान करने से शिष्य गुरुमूर्ति का सादृश्य प्राप्त करता है।

कोलकाता के पास शालिखा निवासी एक व्यक्ति मधुमेह रोग से ग्रस्त हो गया। उसकी इस मरणासन्न अवस्था में, उसने ललित बाबू से मैत्र महाशय के बारे में सुना और उनके पास दीक्षा लेना चाही। मैत्र महाशय के वहाँ आने पर वह अपनी पीड़ा शांति के लिए उनके पास प्रार्थना करने लगा। मैत्र महाशय के कोई उत्तर न देने पर उसने उनके पास दीक्षा प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की। अस्वस्थ अवस्था में प्राणायाम आदि नहीं कर पाने के कारण उसको केवल 'नाम' मिला।

'नाम' की अलौकिक शक्ति से वह धीरे–धीरे आरोग्य लाभ करने लगा, लेकिन रोग सम्पूर्ण रूप से दूर न होने के कारण उसका दार्जिलिंग जाने का मन किया। उसने सोचा कि वहाँ किसी साधु की कृपा से रोगमुक्ति हो सकती है। उसने दार्जिलिंग यात्रा की। दार्जिलिंग स्टेशन से कुछ दूरी पर एक साधु से उसका साक्षात्कार हुआ। साधु धूनी जलाकर बैठे थे। उसने साधु के पास जाकर प्रणाम किया और अपनी सारी बातें कही। साधु ने कहा कि यदि वह उनको पुरी ले जा सके तो वहाँ उसकी रोगमुक्ति होगी। वे दोनों पुरी चले गए। पुरी स्टेशन में पहुँचकर साधु उसको प्रतीक्षा करने के लिये कहकर कहीं चले गए। दोपहर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी साधु नहीं लौटे। तब वह अपने आवास पर लौट आया। जब वहाँ भोजन के बाद बरामदे में बैठकर वह रो रहा था, उसी समय उसने उस साधु को द्रुत गति से अपने पास आते हुए देखा, साधु के पास आते ही वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और रोने लगा। साधु ने उसको आश्वासन देकर उठाया, फिर दोनों हाथों से पकड़कर जोर–जोर से कई बार हिलाया। प्रत्येक बार हिलाते समय उसको ऐसा लगा कि एक शक्ति उसके भीतर प्रवेश कर रही है। उसका रोग सम्पूर्ण रूप से ठीक हो गया। इसके बाद साधु कहीं चले गए। उनकी फिर कोई खबर नहीं मिली। मैत्र महाशय ने यह घटना सुनकर कहा– "दार्जिलिंग में जिस साधु से साक्षात्कार हुआ था, वे गोसाँईजी थे एवं पुरी में जिस साधु ने उसको हिलाया वे भी गोसाँईजी थे। इस तरह गोसाँईजी ने उसकी आर्त प्रार्थना सुनकर कृपा प्रदान की"।

मैत्र महाशय का आदर्श था, सर्वदा अपने आपको गुप्त रखकर गोस्वामी प्रभु को प्रकट करना एवं उनकी सेवा–पूजा को सर्वत्र प्रतिष्ठित करना। वे सर्वदा शिष्यों को इस आदर्श के पालन करने के लिये कहते थे। इसलिए कुलदानन्द ब्रह्मचारी, श्रीधर घोष आदि गोस्वामी प्रभु के शिष्यगण उनके प्रति विशेष श्रद्धा एवं आदर रखते थे। ये लोग उनको साष्टांग प्रणाम करके विशेष सम्मान देते थे। उनके एक गुरुभाई महेन्द्रनाथ मित्र उनके सहयोगी होकर उनके साथ विभिन्न स्थानों पर जाते एवं दीक्षा के समय मैत्र महशय का अपूर्व भाव देखकर विस्मित होते थे। वे सर्वदा मैत्र महाशय के पास श्री मद्भगवद्गीता की महिमा सुनते थे। मैत्र महाशय स्वयं प्रतिदिन गीता पाठ करते थे एवं शिष्यों को भी नित्य गीता पाठ करने के लिये कहते थे। वे सर्वदा कहते थे कि स्वाध्याय–अभ्यास द्वारा भगवान को जाना जा सकता है और भगवान को जानने पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। यह केवल नाम साधना एवं गुरुकृपा से ही संभव है। वे बारम्बार कहते थे कि जरा–सा अहंकार भी साधक के लिए अत्यन्त अनिष्टकारक है। उनका महामाया लेन का वासभवन उनकी उपस्थिति में स्वर्ग–शोभा धारण करता था। विभिन्न धर्मप्रसंगों की

चर्चा एवं नाम–साधना में रातदिन बीत जाते थे। वे सर्वदा आसन में बैठकर नाम–साधना करते थे, उनको कभी भी आसन त्याग करते हुए नहीं देखा गया। कुछ गुरुभाई एवं शिष्य उनके वासभवन में प्रायः रहा करते थे। लेकिन उनके आहारादि के बारे में वे कभी भी चिंतित नहीं होते थे। वे सर्वदा आकाशवृत्ति पर निर्भर थे। कोई भी सांसारिक विषय उनको उद्विग्न नहीं करता था। निद्रा को जय करने के कारण उनकी साधना शक्ति की अपूर्व महिमा परिलक्षित होती थी।

मैत्र महाशय अत्यन्त अतिथि–वत्सल थे। एकबार उनके कालीघाट के वासभवन में एक ब्राह्मण अतिथि 'दोपहर में भोजन करेंगे' यह कहकर किसी काम से बाहर गए। अतिथि को लौटने में बहुत देर हुई। मैत्र महाशय प्रतिदिन 11 बजे मध्याह्न भोजन करते थे। लगभग एक बजे तक अतिथि के नहीं लौटने पर उन्होंने सबको भोजन कर लेने कहा पर स्वयं अभुक्त रहे। दो बजे अतिथि के लौटने पर उनका यथोचित सेवा करने के बाद ही उन्होंने स्वयं भोजन किया।

कोई भिखारी उनके पास आकर खाली हाथ नहीं लौटता था। भिखारी की आवाज सुनते ही वे आसन में बैठकर ही भिक्षा देने का आदेश देते थे। किसी देव स्थान में जाकर पुजारी लोगों को यथा–संभव दान देते थे। शिष्यों को भी वे दरिद्रों को दान देने के लिए उत्साहित करते थे।

भक्तगण सर्वदा उनको घेरकर रहते थे। अनेक गुरुभाई, शिष्य एवं भक्त उनके साथ साक्षात्कार के लिए आते थे। उनमें से कई लोग उनसे जटिल प्रश्न भी करते थे। वे सब प्रश्नों का यथोचित उत्तर देकर, सबके मन को आनन्दित करते थे। ऐसा लगता था कि वे सब कुछ जानते हैं। उनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थों में से 'गुरुशिष्य संवाद' एवं 'ऋषिचरित' उनके प्रगाढ़ शास्त्रज्ञान का परिचय देता है और 'सरल सिद्धान्त कौमुदी' उनके संस्कृत शास्त्र में अगाध पाण्डित्य का निदर्शन है। श्री मैत्र महाशय द्वारा लिखित गोस्वामी प्रभु की जीवनी बहुत अच्छी पुस्तक है। गोस्वामी प्रभु के उपदेशों का संग्रह 'करुणा कथा' नाम से, बंगला भाषा में मिलती है।

उनके दीक्षा दान में एक विशेष तत्व था। वे कहते थे, प्रार्थी में वे अपने इष्टदेव को प्रतिष्ठा करके वे दीक्षा देते हैं। गुरु–शिष्य संबंध में, जैसा गुरु के प्रति शिष्य की प्रगाढ़ श्रद्धा है, वैसा ही शिष्य के प्रति गुरु का भी निःस्वार्थ प्रेम है। एक शिष्य को उन्होंने लिखा था – "तुम लोग नहीं जानते कि मैं तुम लोगों से कितना प्यार करता हूँ। तुम लोग मेरे कलेजे के टुकड़े जैसे हो। एक उदाहरण से ही इसका तात्पर्य स्पष्ट होता है– गर्मी के समय, एकदिन, एक शिष्य उनको हवा करते–करते सो गया। शिष्य की नींद टूट न जाए इसलिए गुरुजी, शिष्य को हवा

करने लगे। नींद टूटने पर शिष्य का मन अपराध–बोध से भर गया। तभी गुरुजी हँसने लगे और शिष्य का भय दूर हो गया। इस तरह का सार्वजनिक प्रेम था उनका। उनके साथ बातें करने से ही पता चलता था कि वे प्रेम के आधार थे।

धर्म सम्प्रदाय अनेकों हो सकते हैं, किन्तु उन लोगों के आपस में कलह रहने से अशांति पैदा होती है। इससे वास्तविक धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इसी बारे में गोस्वामी प्रभुजी सबको सावधान करते थे। उन्होंने मैत्र महाशय से कहा था– "जगद्बन्धु! मेरे न रहने पर अनेक दल एवं उप–दल की सृष्टि होगी। यदि सही में धर्म प्राप्त करना चाहते हो तो इन सबसे दूर रहना।" गोस्वामी प्रभुजी की यह सावधान वाणी मैत्र महाशय शिष्यों से बार–बार कहते थे एवं उसी अनुसार धर्म–साधना करने का उपदेश देते थे। वे कहते थे, "धर्म की, गर्भस्थ भ्रूण के समान रक्षा करना चाहिए। धर्म मन में, वन में और कोने में होता है। प्रतिष्ठा की भावना साधना में प्रधान शत्रु है।"

वे तेजस्विता की प्रतिमूर्ति थे, लेकिन बाद में वे एकदम कोमल हृदय के मनुष्य हो गए थे। भावावेश से उनकी वाणी रुद्ध हो जाती थी। आँखों से अश्रुधारा बह उठती थी और वे सबसे आशीर्वाद की प्रार्थना करते थे।

मैत्र महाशय के अनेक शिष्यों ने उत्तम अवस्था प्राप्त की थी। उनकी अनन्यतम शिष्या सरोजिनी मित्र (माँ–मणि) साधारणतः श्रीक्षेत्र पुरी में वास करती थीं। वे गोस्वामी प्रभु, श्रीचैतन्यदेव, श्रीजगन्नाथदेव आदि के नित्य दर्शन प्राप्त करती थीं और उन लोगों की बातें भी सुन सकती थीं। उनके उपदेशों का संकलन करके, माँ मणि ने कई पुस्तकों की रचना की।

{हिन्दी भाषा में 'माँ मणि के उपदेश एवं लीला दर्शन' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं। प्राप्ति स्थान– श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ, स्टेशन रोड, पोस्ट– रघुनाथपुर, जिला– पुरुलिया, (पं बंगाल)}

सद्‌गुरु की अपार करुणा से उन्होंने नित्यलीला दर्शन का अधिकार प्राप्त किया था।

माँ–मणि ने 'त्रिवेणी' नामक ग्रन्थ में उनके गुरुदेव की प्रकट अवस्था की कुछ लीला एवं घटनाएँ लिखी हैं। उनमें से कुछ घटनाएँ नीचे दी जा रही हैं –

(1) एकदिन दोपहर के तीन बजे मैं और मेरी मँझली बहन गुरुदेव के पास गए। गुरुदेव उस समय विश्राम समाप्त कर लेने के बाद, मुँह धोकर तम्बाकू सेवन कर रहे थे। हमें देखकर बहुत आनन्दित हुए एवं कहा– "देखो, आज तुम लोगों के गोत्रपति चित्रगुप्त से मुलाकात हुई।" यह सुनकर मैं समझ गई कि वे भावावेश

में हैं। सब गुप्त रखना चाहते थे, कभी–कभी एक–एक बात बोल भी देते थे। मैंने कहा– "कैसे मुलाकात हुई बाबा ? आप सो गए थे और स्वप्न देख रहे थे क्या ? "थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "सूक्ष्म शरीर में गया था। मुझे कुछ जानने की जरूरत थी इसलिए जाना पड़ा।" मैंने कहा, "बाबा वहाँ चित्रगुप्त की पोथी बहुत मोटी है क्या ? किस प्रकार उसमें मनुष्य का कर्मफल लिखा रहता है।" तब बाबा ने जोर से हँसते हुए कहा– "नहीं–नहीं पोथी नहीं, साहब लोगों के घर में जैसे बड़े–बड़े शीशे लगे रहते हैं, उसी प्रकार शीशे (आईने) में प्रत्येक जीव का कर्मफल प्रकट होता है। वही है चित्रगुप्त की पोथी।" बाबा की कृपा से ही ये सब सुन्दर बातें जान सकी।

(2) श्रीश्री गोस्वामी प्रभु के शिष्य आनन्दचन्द्र मजूमदार महाशय ने माँ मणि से एकबार कहा था– "माँ, तुम लोगों का परम सौभाग्य है कि तुम लोगों ने मैत्र महाशय से दीक्षा प्राप्त की है। श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी कहते थे, "मैं प्रातः उठकर जिन लोगों का नाम स्मरण करता हूँ, पूजा करता हूँ, वे उन लोगों में एक हैं। माँ, मैनें तुम्हें यह गुह्य बात बता दी।"

(3) समय–समय पर बाबा कहते थे, "माँ, तुम लोगों को कोई चिन्ता नहीं है, सब दायित्व मेरे ऊपर है। तुम लोगों को मृत्यु–भय भी नहीं है। गोसाँईजी स्वयं आकर तुम्हें ले जायेंगे। तुम लोग 'नाम' करो। इसी से सब होगा। इस साधन में क्या है–सब कुछ जान सकोगे।"

(4) बाबा के संसार में संचय करना मना था, रसोई के बाद अन्न, व्यंजन आदि अतिथि आदि को बाँट दिया जाता था। अंत में घर की बहुओं के लिए प्रायः कुछ भी नहीं रहता था। वे लोग थोड़ा–बहुत बचा हुआ, पानी के साथ आनन्दपूर्वक खा लेते थे। ऐसी घटना प्रायः होती थी। दो–चार शिष्य सर्वदा उनके पास ही रहते थे।

एकदिन हम लोग वहाँ गए थे। उसी दिन एक शिष्य, तीन–चार सेर मिठाई लाया था । सब मिठाई, उसी वक्त, उपस्थित लोगों में बांट दी गई। घर में छोटे बच्चे भी थे, जो सोए हुये थे। सुबह उठकर उनके खाने के लिए कुछ भी नहीं बचा। फिर भी बच्चों को उन्होंने अपने हाथों से भर–भरकर मिठाई दी, हम सब आश्चर्यचकित हो गए।

(5) एकदिन शाम चार बजे, हम लोग बाबा के पास बैठकर बातें कर रहे थे। उस समय बड़ी भाभी (दाऊजी की पत्नी) आई। बाबा ने पूछा, "माँ, इतनी देर तक क्या कर रही थी ? "भाभी बोली "बाबा चूल्हा जल रहा था, इसलिए रात के भोजन के लिये दाल पका रही थी।" बाबा ने गम्भीर स्वर में कहा, "माँ, गोसाँईजी ने मुझे

आकाशवृत्ति व्रत दिया है। जब जो कुछ मिलेगा तभी खाना पड़ेगा, रात के भोजन की चिन्ता, दिन में मत करो। मेरी यह बात याद रखना।"

उनका महाप्रयाण भी अत्यन्त आश्चर्यजनक था। शरीर छोड़ने के काफी दिन पहले से ही वे महाष्टमी तिथि के बारे में प्रायः पूछा करते थे। लेकिन इसका कोई विशेष कारण है, यह कोई समझ नहीं सका। महाष्टमी के दिन उन्होंने कालीघाट की माँ काली का प्रसाद ग्रहण किया। बंगला सन् 1336 (सन् 1929 ई०) 25 आश्विन महाष्टमी के दिन जब चारों ओर शंख–घंटा, ढाक–ढोल बजाकर जगत् माता की पूजा हो रही थी, उस समय उन्होंने शरीर त्याग दिया। शाम को नवमी तिथि थी। उनके पास असंख्य गुरुभाई, शिष्य और भक्तगण उपस्थित थे। उनके द्वितीय एवं कनिष्ठ पुत्रों की उपस्थिति में श्रीमदभगवद्गीता पाठ एवं हरिनाम संकीर्तन चल रहा था। मैत्र महाशय के द्वितीय पुत्र जगदानन्द (पन्टुरू) एवं कनिष्ठ पुत्र ब्रजेन्द्र (बुड़ो) अंतिम समय में पिता के पास थे, तृतीय एवं चतुर्थ पुत्र सौरेन्द्रसुन्दर एवं भुवनसुन्दर उस समय गेण्डारिया आंश्रम में शांतिसुधादेवी के पास थे।

पुराने 'मंदिर' पत्रिका से संग्रहित, मैत्र महाशय के कुछ उपदेश, यहाँ प्रस्तुत हैं–

प्रश्न – गोसाँईजी के शिष्यगण मृत्यु के बाद क्या गोसाँईजी के पास ही हैं ?

उत्तर – नहीं। कोई–कोई गोसाँईजी के पास हैं, कोई गोलोक में हैं, और कोई बैकुण्ठ में हैं।

प्रश्न – बाबा, इस तरह भिन्न–भिन्न स्थान में क्यों हैं ?

उत्तर – भगवान गीता में कहते है– "ये यथा माँ प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्।" जो व्यक्ति जिस प्रकार से भगवान की आराधना करता है, भगवान उसी प्रकार से उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं।

जो लोग गोसाँईजी के पास रहना चाहते हैं, वे उन्हींके पास रहकर उनका नित्य संग करते हैं। जो लोग गोलोक में रासादि में सम्मिलित होकर आस्वादन करना चाहते हैं, वे वही करते हैं। और जो लोग बैकुण्ठ में रहना चाहते है, वे बैकुण्ठ में ही रहने का अधिकार प्राप्त करते हैं।

प्रश्न – इस शरीर में ही यदि सब देवी–देवता हैं, तो मनुष्य पापासक्त क्यों होता है ?

उत्तर – जैसे सुदेव–देवियां हैं, उसी तरह काम–क्रोध आदि षड्रिपु, दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार, इन सबके अधिष्ठात्री देवगण भी इसी शरीर में स्थित हैं। जीव को अपने कब्जे में रखने के लिए वे प्राणप्रण प्रयास करते हैं। सुर और असुर में लड़ाई होती है, अंत में सद्गुरु की कृपा से सुरगण की विजय होती

है – जीव, मायामुक्त होकर चिन्मय धाम का अधिकारी होता है।

प्रश्न – काम को कैसे दूर किया जा सकता है ?

उत्तर – केवल 'नाम'! 'नाम' ही इन सब रिपुओं से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। जिन लोगों में काम अत्यन्त प्रबल है, वे लोग नाम के साथ–साथ वैध रूप में, अर्थात् शास्त्रीय विधि पूर्वक, पत्नी से संभोग करें। ऐसा करने से, काम धीरे–धीरे कम हो जाएगा, गीता में भगवान कहते हैं – "यह कर्मेन्द्रिय मन एवं बुद्धि में व्याप्त रहती है। जब तक विज्ञानमय कोष भेद नहीं होता, तब तक मनुष्य इस काम के वश में रहता है।

प्रश्न – असदुपाय से उपार्जित द्रव्य–पदार्थ भोजन करने से क्या होता है ?

उत्तर – एक कहानी सुनो, इससे इस प्रश्न का उत्तर जल्दी समझ सकोगे। एकबार एक साधु ने, रास्ते में चलते–चलते संध्या हो जाने के कारण, एक ब्राह्मण पुजारी के घर पर आश्रय लिया। पुजारी ने उसको श्राद्धान्न भोजन कराया। भोजन के बाद साधु सो गया। प्रातः उठकर उसके भीतर चोरी करने की प्रवृत्ति हुई। पूजा घर में जाकर भगवान के अलंकार की चोरी करके वह निकल पड़ा। काफी दूर जाकर वह एक नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ स्नान के पश्चात् पूजा में बैठते समय उसका विवेक जागृत हुआ। तब उसके मन में बहुत पश्चाताप हुआ। वह तुरन्त पुजारी के घर वापस जाकर उससे सारी बातें कहकर पूछा– आपने कल मुझे जो अन्न भोजन कराया था, वह कहाँ से संग्रह किया गया था ? पुजारी ने कहा, "वह श्राद्धान्न था, जिसका श्राद्ध हुआ था वह जीवितावस्था में चोर था।" साधु समझ गया कि चोर का श्राद्धान्न भोजन करने से उसमें ऐसी प्रवृत्ति जाग उठी। तब उसने प्रायश्चित करते हुए चान्द्रायण व्रत किया। गोसाँईजी सभी को श्राद्धान्न खाने को निषेध करते थे। श्राद्धान्न प्रेत का उच्छिष्ट (जूठा) होता है।

असदुपाय से उपार्जित द्रव्य–पदार्थ भोजन करने से, भोजन करने वाले में उपार्जन करने वाले व्यक्ति का गुण संक्रमित होता है। साधु का उच्छिष्ट भोजन ग्रहण करने से सत् प्रवृत्ति की जागृत होती है और असाधु का उच्छिष्ट भोजन से असत् प्रवृत्ति जागृत होती है।

जिस किसी भी व्यक्ति के हाथ का बना अन्न ग्रहण करने से भी हानि होती है। अन्न बनाने वालों के गुण–दोष भोजन सामग्री में संक्रमित होते हैं। रसोईया में सत्व गुण प्रबल रहने से भोजन सामग्री भी सत्व भावापन्न होती है।

प्रश्न– पुरी में जाकर क्या–क्या करना चाहिए ?

उत्तर– सबसे पहले जगन्नाथदेव का दर्शन करना चाहिए। इसके बाद

विमलादेवी, लक्ष्मीदेवी, गुण्डिचा मंदिर, नृसिंहदेव, नीलकण्ठेश्वर शिव आदि (दर्शनीय मंदिरादि), गंभीरामठ (जहाँ महाप्रभु रहते थे), टोटा गोपीनाथ, श्रीजगन्नाथ मन्दिर में स्थित महाप्रभु के पदचिन्ह, एवं हस्तचिन्ह दर्शन करना चाहिए। सन्तान के पुरी या गया जाने से मृत माता–पिता एवं पितृ पुरुषगण उनसे पिण्ड की आशा करते हैं। पुरी जाकर मृत पिता के उद्देश्य में महाप्रसाद का पिण्ड देना चाहिए। पहले दिन मार्कण्डेय सरोवर में, शिवगंगा एवं समुद्र तट पर श्राद्ध करना चाहिए। द्वितीय दिन चक्रतीर्थ एवं इंद्रद्युम्न सरोवर में श्राद्ध करना चाहिए। साध्यानुसार आटके बाँधना (आटके का अर्थ है श्री जगन्नाथजी की सेवा के लिए पैसा देना) । समुद्र महातीर्थ है। एक दिन समुद्र में स्नान करना।

प्रश्न– पुरी या गया में तो केवल ज्येष्ठ पुत्र को पिण्ड देना पड़ता है ?

उत्तर– नहीं, कोई भी पुत्र दे सकता है।

प्रश्न– जितनी बार जाएँ, क्या हर बार पिण्ड देंगे ?

उत्तर– नहीं, पहली बार देने से ही होगा।

प्रश्न– हम लोग कौन–सा धर्म पालन करते हैं ? क्या हम लोग वैष्णव हैं ?

उत्तर– हाँ! हमलोग वैष्णव हैं। लेकिन साधारण लोग वैष्णव का जो अर्थ जानते हैं, वैसे वैष्णव नहीं। साधारणतः जो विष्णु की पूजा करता है, उसे ही वैष्णव कहा जाता है। वैष्णव का वास्तविक अर्थ यह है कि जो निष्कामभाव से विष्णु, शिव, काली आदि किसी भी देवता की पूजा करता है। जैसे रामकृष्ण यद्यपि माँ काली के उपासक थे, पर वे परम वैष्णव थे। सकाम भाव से विष्णु की उपासना करने वाला वैष्णव नहीं कहलाता, कोई निष्कामभाव से, माँ काली की भी पूजा करने से वैष्णव ही कहलाएगा, शाक्त नहीं। हमारे साधन में कोई कामना नहीं है, इसका उद्देश्य है मोक्षलाभ। हम लोग काली, शिव, विष्णु सबको ब्रह्मभाव से प्रणाम करते हैं। इसलिए हमलोग द्वितीय अर्थ से वैष्णव हैं।

प्रश्न– हमलोग किस सम्प्रदाय से संबद्ध हैं ?

उत्तर– वास्तव में हम लोगों का कोई सम्प्रदाय नहीं है। साधारण परिचय – मध्वाचार्य सम्प्रदाय। महाजनो येन गतः स पन्थाः। महाप्रभु अपने आप को मध्वाचार्य सम्प्रदाय का कहते थे। अतः हम लोगों को भी उन्हीं का पथ अनुसरण करना पड़ेगा।

प्रश्न– आजकल अधिकांश युवकों को स्वप्नदोष रोग भुगतना पड़ता है। इससे रक्षा पाने का क्या उपाय है ?

उत्तर– 'नाम' ही सब रोगों की दवाई है। यदि कोई निष्ठा पूर्वक 'नाम' करे तो कोई भी रोग नहीं होता है। नित्य प्रातः एवं संध्या में प्राणयाम, कुंभक आदि गुरुजी के निर्देशानुसार करना चाहिए। रास्ता चलते समय, पैर के वृद्धांगुष्ठ के प्रति दृष्टि रखकर चलना चाहिए। आहार में नैष्ठिक ब्रह्मचारी के भांति गर्म चीज़ें (जिससे पेट में वायु विकार हो) नहीं खाना चाहिए, सोते समय गर्मधारिणी मातृमूर्ति का घ्यान करके एवं बेल के पत्ते में दुर्गा नाम लिखकर अपने तकिये के नीचे रखकर सोना चाहिए। ऐसा करने से स्वप्नदोष धीरे–धीरे चला जाएगा। गुरु की सेवा करने से स्वप्नदोष आदि रोग नहीं होता – लेकिन निष्ठापूर्वक सेवा करनी पड़ेगी। केवल दिखावे के लिये कर्तव्य करने से कोई फल नहीं होता।

प्रश्न– यदि माता–पिता, पत्नी नहीं रहते तो क्या मुझे कोई चिन्ता नहीं रहती ?

उत्तर– माता–पिता की सेवा से सब कुछ होता है। माता–पिता साक्षात् देवता हैं। माता–पिता के आशीर्वाद के बिना कुछ भी नहीं होगा। तुमने यह शरीर उन लोगों से प्राप्त किया है। इस शरीर के ऊपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तन–मन से उन लोगों की सेवा करो। पत्नी एवं संतानादि के भरण–पोषण का दायित्व भी तुम्हारा है।

प्रश्न– क्या केवल माता–पिता की सेवा करने पर जीव माया मुक्त हो सकता है ?

उत्तर– हाँ, लेकिन संपूर्ण आत्मत्याग के साथ माता–पिता की सेवा बहुत कम लोग ही कर सकते हैं।

****

श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय

अठारहवीं शताब्दी के मध्यभाग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक एक सौ साल तक भारतवर्ष में सनातन धर्म विपन्न अवस्था में था। सनातन धर्म की इस शोचनीय अवस्था में कई महापुरुषों का अविर्भाव हुआ इस बंगाल में। सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी की कृपा से उनके शिष्यों में जो लोग शक्तिमान हुए थे, उनमें से ठाकुर वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय अनन्यतम हैं।

ठाकुर वरदाकान्त का जन्म फरीदपुर जिले के वीरमोहन माइचपाड़ा नामक एक छोटे–से गाँव में हुआ था। उनके पिता कमलाकान्त बन्द्योपाध्याय ढाका में मोक्तारी करते थे। वे अत्यन्त साधु प्रकृति के थे। तन्त्र–साधना में उन्होंने उच्च अवस्था प्राप्त की। अतिथि सत्कार, गरीब छात्रों का प्रतिपालन एवं दुःखी व्यक्तियों का दुःख मोचन उनका नियमित कार्य था। वे पूर्णतः सत्याश्रयी थे।

वरदाकान्त की माता हरसुन्दरी देवी एक आदर्श परायण रमणी थीं। परिवार के सुख–शांति के लिए वे प्रातःकाल से रात्रि तक कठोर परिश्रम करती थीं। उनकी पति–निष्ठा अतुलनीय थी। धर्म का भेदभाव उनमें नहीं था। हिन्दू देवताओं के प्रति जैसी भक्ति थी, उसी प्रकार उनकी श्रद्धा मुसलमान फकीर एवं पीरों के प्रति भी थी। सूर्य उपासना के प्रति उनका गंभीर अनुराग था। वे प्रति प्रहर में सूर्यार्घ्य देती थीं। आत्मसुख के प्रति उनकी लेशमात्र भी परवाह नहीं थी।

वरदाकान्त, सत्याश्रयी कमलाकान्त एवं धर्मप्राणा हरसुन्दरी देवी के द्वितीय पुत्र थे। वरदाकान्त के अन्य भ्राताओं का नाम हरकान्त, शारदाकान्त एवं कुलदाकान्त था। ये तीनों भी देवतुल्य थे। कमलाकांत की द्वितीय पत्नी के गर्भ से रोहिनीकान्त नामक एक पुत्र ने जन्मग्रहण किया था। बालक की उम्र जब छह महीने थी तब उसकी माता की मृत्यु हो गई। इसके बाद हरसुन्दरी देवी ने उसे अपने पुत्राधिक स्नेह से लालन-पालन किया। कुमुदिनी, मोक्षदासुन्दरी एवं सुखदासुन्दरी नामक कमलाकांत की तीन कन्याएं भी थीं। कमलाकान्त के चारों पुत्र धर्मजगत के स्तंभ स्वरूप थे। एकदिन उनके गुरुदेव श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी ने ठाकुर वरदाकांत से कहा–"तुम लोगों को देखकर ऐसा लगता है कि तुम चारों भाई आपस में परामर्श करके पृथ्वी पर आए हो। यद्यपि बाहरी आचार–व्यवहार से सब स्वतंत्र हैं, लेकिन तुम लोगों का मन एक ही उपादान से गठित है।" फिर एकबार उन्होंने कहा था, "तुम लोग स्वर्ण–युग के एक–एक स्तंभ स्वरूप हो।"

हरसुन्दरी देवी के प्रथमपुत्र हरकांत के बाद उनकी दो कन्या संतानों ने जन्म ग्रहण किया। चौथी बार जब वे संतान–संभवा हुई तो, घर के सभी लोग एक पुत्र की प्रतीक्षा करने लगे। शुभ–क्षण उपस्थित जानकार वे शंख एवं अन्यान्य मांगलिक उपचार लेकर सब प्रस्तुत थे। ठीक उसी समय गौरवर्ण एक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। चारों ओर शंख ध्वनि होने लगी। बंगला सन् 1267 (सन् 1861 ई०) फाल्गुन महीने की शुक्ला त्रयोदशी तिथि में ठाकुर श्रीश्री वरदाकांत आविर्भूत हुए।

शिशु वरदाकांत सबकी गोद में खेलते हुए बड़ा होने लगा। दो कन्या संतान के बाद पुत्र संतान होने के कारण उसके प्रति स्नेह कुछ अधिक ही था। माता के प्रति शिशु का असीम प्यार था। माता का अनादर देखने से शिशु का मन व्यथित होता था। माता हरसुन्दरी को सर्वदा सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता था, इसलिए पुत्र को गोद में लेने का अवकाश भी नहीं मिलता था। इससे माता के प्रति शिशु का आकर्षण बढ़ता गया। संसार के सब काम करके भी हरसुन्दरी देवी उनकी दो ननंद को संतुष्ट नहीं कर पाती थीं। इसलिए उनको अनेक कष्ट सहना पड़ता था। शिशु वरदाकांत माँ का यह कष्ट सहन नही कर पाता था, लेकिन तब वह मात्र पाँच साल का था। कोई प्रतिकार भी नहीं कर पाता था। लेकिन शिशु की तीक्ष्ण बुद्धि थी। वह देखा करता था कि उसकी बड़ी बुआ रात में पानी पीने के लिए चौकी के नीचे पानी रखती हैं। एकदिन शिशु ने चुपचाप वह पानी पी लिया और उसमें हुक्का का पानी भरकर रख दिया। वह पानी पीते ही बुआ उल्टी करने लगी। अंत में पता चला कि यह काम वरदाकांत का है। माँ के प्रति निर्यातन का प्रतिशोध इस तरह लेते देख बुआजी फिर कभी वरदाकान्त की माँ से कड़वी बातें नहीं करती थीं।

वरदाकांत की दूसरी बुआ भी हरसुन्दरी के साथ खराब व्यवहार करती थीं। शिशु यह सहन नहीं कर पाया। बुआजी प्रतिदिन संध्या के समय तुलसी मंच पर दीया जलाकर प्रणाम करती थीं। एकदिन शिशु बुआजी के प्रणाम करते समय एक ईंटा उनके पीठ पर फेंककर भाग गया। दर्द से बुआजी अस्थिर हो उठी। शिशु को ढूँढ़ने के लिए लोग चारों ओर दौड़े लेकिन वह कहीं नहीं मिला। देखते–देखते रात हो गई। बालक के लिए सब लोग चिंतित हो गए। चारों ओर तालाब आदि में पानी था, उन्होंने सोचा, जरूर बालक भागते वक्त पानी में गिर गया। जाल फेंका गया लेकिन शिशु का पता नहीं मिला। उस समय अचानक बालक का शब्द सुनाई दिया। उस आवाज का अनुसरण करते–करते देखा गया कि बालक एक मचान के ऊपर एक बड़ी टोकरी में बैठा है। पाँच साल का यह बालक माँ के प्रति दुर्व्यवहार का प्रतिशोध लेने के लिए इस तरह व्याकुल हो उठता था। इससे पता चलता है कि यह बालक भविष्य में कितना मातृभक्त होगा।

बालक वरदाकांत की बुद्धि तीक्ष्ण थी। उनके पिता एक 'शिशु शिक्षा' ग्रन्थ लेकर आए। बालक ने एक दिन में ही समग्र वर्णमाला सीख ली और थोड़े दिनों में पूरी किताब पढ़ ली। पिताजी ने उनको ढाका के स्कूल में भर्ती करा दिया। हरकांत भी ढाका में था। जब पुत्र आठवीं में पढ़ रहा था, तब उनके पिता अचानक बहुत बीमार पड़ गए। यह समाचार मिलते ही ज्येष्ठ पुत्र हरकांत पिता को चिकित्सा के लिए कोलकाता ले आए, लेकिन उनकी हालत दिन–पर–दिन खराब होने के कारण उनको अपने गाँव में स्थानान्तरित किया गया। कुछ दिन बाद पिता कमलाकांत ने स्वर्गारोहण किया। श्राद्धादि कार्य समाप्ति के बाद वरदाकांत ढाका कॉलेजियेट स्कूल में भर्ती हो गए। 1283 बंगला सन् (सन् 1877 ई०) में वे इंट्रेन्स परीक्षा पास करके ढाका कॉलेज में भर्ती हो गए।

श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय ढाका पश्चिमपाड़ा गाँव के एक धनवान जमींदार थे। उसकी पत्नी के साथ हरसुन्दरी देवी का विशेष सख्य भाव था। जमींदार की पत्नी ने वरदाकान्त के रूप एवं गुण देखकर अपनी एकमात्र कन्या गिरिबाला के साथ वरदाकांत के विवाह का प्रस्ताव हरसुंदरीदेवी को दिया। हरसुंदरीदेवी ने यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया। फिर ज्योतिषियों ने विचार किया। देखा गया कि वरदाकान्त के प्रथम पत्नी का मृत्यु योग है। तब ज्योतिषियों के व्यवस्थानुसार एक मादा कबूतर के साथ वरदाकांन्त का पहले शास्त्रानुसार विवाह कराया गया। फिर उसी रात के द्वितीय लग्न में जमींदार कन्या गिरिबाला के साथ वरदाकांत की शादी हुई। इससे गिरिबाला उनकी द्वितीय पत्नी हुई। अतः मृत्युयोग का प्रश्न ही नहीं रहा। यह विवाह बंगला सन् 1285 (सन् 1879 ई०) 25 माघ को हुआ। तब वर 18 साल का और वधू नौ साल की थी। गिरिबाला देवी साधारण घर की लड़की नहीं थी। उसके मातामह उस समय के प्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय श्री रामशिरोमणि थे। उनकी दौहित्री गिरिबालादेवी भी संस्कृत में विशेष पारदर्शिनी थी। समग्र गीता के श्लोक उनको कण्ठस्थ थे। ससुराल में नववधू के आगमन तिथि में वरदाकांत के एक परीक्षा में सफल होने का संवाद आया। इससे सबको लगा कि वधू अति सुलक्षणा है। सास ने आनन्दपूर्वक नव–वधू को सीने से लगा लिया।

वरदाकांत प्ररम्भिक जीवन में पाश्चात्य–भावापन्न थे। सनातन धर्म के प्रति उनका अनुराग कम था। वरदाकांत के छोटे भाई कुलदाकांत को देवर रूप में पाकर गिरबाला देवी का मन भर गया। देवी का कोई भाई नहीं था। यह अभाव देवर ने पूरा कर दिया। देवर से गोस्वामी प्रभुजी की बातें सुनकर देवी के मन में धर्म की प्यास जाग उठी एवं दीक्षा प्राप्ति के लिए वह व्याकुल हो गईं। कुलदाकांत द्वारा यह बात गोस्वामी प्रभुजी से कहने पर उन्होंने कहा कि पति की अनुमति लेनी पड़ेगी। वरदाकांत की अनुमति मिलनी असंभव है, यह सोचकर देवी दुःखी

हो गईं। कुलदाकांत, गोस्वामी प्रभुजी की कृपा प्राप्त करके ब्रह्मचारी हो गए एवं उनका नाम हुआ कुलदानन्द ब्रह्मचारी। उस समय गोस्वामी प्रभुजी ब्राह्मसमाज त्यागकर सनातन धर्म में लौट आए एवं ढाका, गेण्डारिया में आश्रम बनाकर रहने लगे। देवर कुलदानंद की दीक्षा होने के बाद गिरिबाला देवी दीक्षा के लिए व्याकुल हो उठीं। वरदाकांत उस समय ब्राह्मसमाज के अनुयायी थे। वे हिन्दूधर्म के गुरुवाद एवं मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। अतः उनकी अनुमति मिलनी असंभव थी। कुछ दिन बाद वरदाकांत के घर लौटने पर उनमें कुछ परिवर्तन दिखाई दिया। उनमें हिन्दू धर्म के प्रति आस्था देखकर देवी उत्साहित हुईं। उसने पति से दीक्षा के लिए अनुमति प्राप्त की। सास ने भी अनुमति दे दी। उस समय देवी गर्भवती थीं। देवर कुलदानंद ब्रह्मचारी ने भाभीजी को गेण्डारिया ले जाने के लिए आवश्यक व्यवस्था कर दी। उनके चाचाजी ने इस कार्य में बाधा डाली। अंत में आधी रात में देवी ने देवरानी, जेठानी, देवर शारदाकान्त एवं ब्रह्मचारी के साथ यात्रा की। देवी के माता–पिता भी उस समय ढाका में ही थे। इसलिए देवी को कोई चिन्ता नहीं थी। वे संध्या के समय सेराजदिघा पहुँचे। वहाँ से एक बड़ी नाव द्वारा दूसरे दिन प्रातःकाल ढाका पहुँचे।

देवी का शरीर अत्यन्त कातर हो गया था, लगता था प्रसव का समय आ गया। कुलदानन्द अत्यन्त चिंतित हो गए। उन्होंने छोटे भैया शारदाकांत को गोस्वामी प्रभुजी के पास सारी बातें कहने के लिए भेजा एवं स्वयं गोसाँईजी को स्मरण करने लगे। गोस्वामी प्रभुजी ने सारी बातें सुनकर उन लोगों को आश्रम आने का निर्देश दिया एवं कहा कि अभी दीक्षा होगी। इस तरह 22 माघ सुबह नौ बजे देवी तथा उनकी देवरानी, जेठानी एवं शारदाकांत की दीक्षा हो गई। दीक्षा प्राप्ति के बाद सब लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया एवं लक्ष्मी बाजार में देवी के पित्रालय में देवी को पहुँचा दिया गया। गुरु के प्रति अचल निष्ठा एवं निर्भरता एवं पति के प्रति भक्ति, देवी का व्रत था। जमींदार पिता की एकमात्र कन्या होने के कारण काफी संपत्ति की अधिकारिणी होकर भी उनमें कुछ अंहकार नहीं आया था। विवाह के पूर्व देवी अनेक व्रत आदि रखती थीं, पूजा पाठ करती थीं। विवाह के बाद ये सब व्रतानुष्ठान करते समय उनको कभी–कभी प्रतिकूल अवस्था का सामना करना पड़ता था। मूर्ति पूजा के विरोधी पति कभी–कभी व्रत का घट फेंक देते थे, लेकिन देवी ये सब चुपचाप सहन करती थीं। कभी पति का विरोध नहीं किया। उनके पित्रालय में दुर्गा पूजा होती थी एवं देवी विसर्जन के दिन दुर्गा माता की मूर्ति को प्रत्येक बार वे प्रथम वरण करती थीं। विवाह के बाद पहली शारदीया पूजा में देवीवरण के लिए वरदाकांत ने पत्नी को पित्रालय नहीं जाने दिया। इस तरह के छोटे–छोटे विरोध को लेकर ससुरजी के साथ वरदाकांत का मेल नहीं

था। इसलिए ससुरजी ने क्षुब्ध होकर अपनी अनेक संपत्ति बहुत ही कम कीमत पर बेच दी। ससुरजी के जीवितावस्था में वरदाकांत ने कोई अर्थ सहायता नहीं ली। उनके मृत्यु के बाद उत्तराधिकार सूत्र से देवी ने काफी संपत्ति प्राप्त की। ये सब संपत्ति वे संसार के लिए एवं धर्म–कार्य में सम्पूर्णरूप से व्यय करती थीं।

उस समय थियोसफिकल सोसाइटी तथा उसके प्रेसीडेन्ट माननीय अलकट साहब के प्रति वरदाकांत विशेष आकृष्ट हो गए थे। उस सोसाइटी के उदार मिलन–क्षेत्र में सब धर्म–सम्प्रदाय के लोग समान रूप से एकत्रित हो सकते थे। इस सोसाइटी का सदस्य बनकर वरदाकांत नियमित रूप से सब अनुष्ठानों में योगदान देते थे। इस सोसाइटी की तरफ से अलकट साहब ने उनको एक डिप्लोमा दिया था। उस समय वरदाकांत की अपने चाचा–ससुर नवकान्त चट्टोपाध्याय के साथ घनिष्ठता हुई। चट्टोपाध्याय महाशय पूर्वबंग ब्राह्म–मन्दिर के प्रतिष्ठाता थे। इसके पूर्व श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी भी ब्राह्मसमाज के आचार्य थे। गोस्वामी प्रभुजी का तेजस्वी कण्ठस्वर, मंत्रमुग्धकारी उपासना समाज में योगदानकारी श्रोतृवृन्दों को मुग्ध कर देता था। सब लोगों को सत्य का दीपक जलता हुआ नजर आता था। दो छोटे भाई शारदाकांत एवं कुलदाकांत को भी ब्राह्मसमाज में जाने के लिए उत्साह देते थे वरदाकांत। वरदाकांत के भाइयों में सत्यवस्तु प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा थी। क्रमशः कुलदाकांत के मन में गोस्वामी प्रभु के प्रति आपार भक्ति का संचार हुआ। वह प्रभुजी से दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हुए। सद्‌गुरु दीक्षा प्राप्त करने के बाद भी गोस्वामीजी काफी समय तक ब्राह्मसमाज के आचार्य थे। वरदाकान्त यद्यपि हिन्दूधर्म के कुसंस्कारादि सहन नहीं कर पाते थे तथापि हिन्दूधर्म त्याग करके ब्राह्मधर्म में प्रवेश करना वे उचित नहीं समझते थे। कुलदानन्द ने गोस्वामीजी से दीक्षा लेने का संकल्प लिया है जानकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए एवं उन पर प्रहार करने गए। गिरिबाला देवी देवर को बचाने के लिए दौड़कर सामने आईं और प्रहार उन पर हुआ। बाद में गोस्वामी प्रभुजी ब्राह्मसमाज पूर्णतः त्याग करके हिन्दू मतानुसार चलने लगे। उस समय वरदाकांत का मन भी परिवर्तित हो गया। कुलदाकांत एवं गिरिबाला देवी, दोनों ने गोस्वामी प्रभुजी से पहले दीक्षा ग्रहण की थी।

वरदाकांत एफ० ए० पास करने के बाद आर्थिक अभाव के कारण और अग्रसर नहीं हो सके। ससुरजी अर्थ देना चाहते थे लेकिन आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने यह अर्थ लेने से इन्कार कर दिया। अब वरदाकांत ने साहित्य सेवा में मन लगाया। शीघ्र ही उन्होंने 'नवलतिका' नामक एक उपन्यास की रचना की। यह ग्रन्थ प्रकाशित होने पर कुछ अर्थ की प्राप्ति हुई। इसके बाद वरदाकांत ने उनके बहनोई स्कूल इंस्पेक्टर मथुरानाथ की सहायता भागलपुर के एक शिक्षा

प्रतिष्ठान में अध्यापक का कार्य शुरू किया। उस समय उन्होंने भूगोल की एक स्कूल पाठ्य पुस्तक की रचना की। इसके बाद 'वर्णाश्रमधर्म' नामक ग्रन्थ लिखा। स्टुडेन्टस् लाइब्रेरी ने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया। भागलपुर में अध्यापक रहते समय वे साथ–साथ बी० ए० की परीक्षा के लिए प्रस्तुत होने लगे। नॉनकॉलेजियेट प्राईवेट परीक्षार्थी के हिसाब से उन्होने बी० ए० की परीक्षा पास की। कई साल भागलपुर में काम करने के बाद वे मुंगेर गए।

वरदाकांत का शरीर अत्यन्त सुदृढ़ एवं सुन्दर था। वे नियमित शारीरिक व्यायाम करते थे। वे जिमनास्टिक में विशेष पारंगत थे। उनके सहयोगी थे एक नामी सर्कस के शेरों के खिलाड़ी श्यामाकांत बन्धोपाध्याय। श्यामाकांत बहुत शक्तिशाली थे एवं जंगली बाघ या शेरों के साथ लड़ाई करते थे। दोनों के मध्य जो अकृत्रिम मित्रता थी वह अवर्णनीय है। एकदिन दोनों मित्र ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। कुछ देर बाद उस बोगी में एक दम्पति आए। एक खाली बेंच पर सभ्य व्यक्ति अपनी सुन्दर युवती पत्नी के साथ बैठ गए। कुछ देर बाद उसी बोगी में दो श्वेतांग सैनिक आए। तब अंधेरा हो चुका था। वे दोनों सैनिक उस सुन्दरी युवती वधू के पास जाकर बैठ गएं। वधू के वहाँ से उठने का प्रयास करते ही सैनिकों ने उसका हाथ पकड़कर अपने बीच बैठाने का प्रयास किया। ऐसा देखते ही वरदाकांत और श्यामाकांत तुरंत उठकर उनके पास आए। वरदाकांत के एक मुक्के से एक श्वेतांग सैनिक नीचे गिर पड़ा। वरदाकान्त ने उसे अपने पैरों के नीचे दबाकर रखा। उधर श्यामाकान्त ने दूसरे श्वेतांग की भी यही दशा की। दोनों श्वेतांग सैनिक इन वीर पुरुषों के पैरों के नीचे आर्तनाद करने लगे। ट्रेन के किसी स्टेशन पर रुकने के बाद उन्होंने लात मारकर उन्हें स्टेशन पर उतार दिया। प्राण बचाकर वे दोनों भाग गए। वरदाकांत का साहस एवं शक्ति का परिचय और एक घटना से भी मिलता है। एकबार वरदाकांत ने परिवार वर्ग के साथ किउल स्टेशन पर ट्रेन बदली करते समय देखा कि कहीं भी थोड़ी–सी जगह नहीं है। ढूँढ़ते–ढूँढ़ते एक बोगी में जगह दिखी। जैसे ही उन्होंने चढ़ने का प्रयास किया, दो पठान काबुलीवालों ने दरवाजे पर खड़े होकर वरदाकांत को रोका। वरदाकांत ने पहले काफी अनुरोध किया लेकिन उन लोगों ने वरदाकांत को गाली दी एवं धक्का देने लगे। वरदाकांत ने दोनों काबुलीवालों को खींचकर नीचे उतारा एवं मुक्का मार–मारकर उन लोगों को काबू में कर लिया। एक बंगाली व्यक्ति को दो काबुलीवालों को इस तरह कबू करते देख सब लोग चौंक गए। गार्ड, स्टेशनमास्टर एवं अन्य लोगों ने वरदाकांत का अभिनन्दन किया और हाथ मिलाया। इस तरह के शक्तिशाली थे वरदाकांत। अन्याय को वे कभी सहन नहीं कर पाते थे। अपनी पूरी शक्ति लगाकर अन्याय का प्रतिकार करते थे।

गुरु–शिष्य का संबंध पुरातन है। प्रत्येक के लिए गुरु निर्दिष्ट रहता है। वरदाकांत के लिए भी यह बात सही हुई। वरदाकांत में भी दीक्षा पाने की व्याकुलता जाग उठी। वे एकबार बारदी के श्रीश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी के पास गए। ब्रह्मचारीजी ने कहा कुछ दिन अर्थोपार्जन करके भोग कर लो. भोग से कर्मक्षय होता है, नहीं तो साधन प्राप्ति में देर होगी। ब्रह्मचारीजी की यह बात वरदाकांत के जीवन में सत्य सिद्ध हुई थी। वरदाकांत जो कुछ भी उपार्जन करते थे, सब भगवत् भक्तों की सेवा में व्यय होता था। इससे पहले उनकी पत्नी, दोनों भाई एवं दो भातृवधू गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा ले लिए थे। उन लोगों की उन्नत अवस्था देखकर वरदाकांत भी गोस्वामी प्रभु के पास दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो उठे। उस समय वे मुँगेर में थे। वहाँ से श्रीश्री योगमाया देवी के पास अपनी इच्छा लिखकर एक पत्र उन्होंने भेजा। माता योगमाया देवी उनको अपनी संतान जैसा स्नेह करती थी। गोस्वामी प्रभुजी से अनुमति लेकर उन्होंने वरदाकांत को चिट्ठी भेजी। गोस्वामी प्रभुजी ने वरदाकान्त की प्रार्थना पर दीक्षा की अनुमति प्रदान की। पर समय का उल्लेख नहीं किया। उस समय गोस्वामी प्रभुजी कोलकाता के सुकिया स्ट्रीट में रहते थे। वरदाकांत और देर न करके अपनी पत्नी को ढाका पश्चिमपाड़ा में छोड़कर प्रभुजी के पास चले आए। दीक्षा के लिए कहने पर गोस्वामी प्रभुजी ने उन्हें और एक साल प्रतीक्षा करने को कहा। वरदाकांत ने कहा कि अगर गोस्वामी प्रभुजी उनके एक साल बचने का भार ले लेंगे तो वह भी एक साल प्रतीक्षा करेंगे वरना कल ही उनको दीक्षा देनी पड़ेगी। गोस्वामी प्रभुजी यह सुन करके हँस दिए और दूसरे ही दिन दीक्षा देने की इच्छा व्यक्त की। वरदाकांत ने और दो शर्तें रखी। पहली, दीक्षा के समय कोई नहीं रहेगा और दूसरी, शर्त उनके दीक्षा के बारे में गोस्वामी प्रभु किसी को कुछ भी नहीं बतायेंगे। उनको दीक्षा देना मानो गोस्वामी प्रभु का बोझ था। इसलिए उन्होंने सम्मत होकर दूसरे दिन आने को कहा। लेकिन ऐसा हुआ कि दूसरे दिन जब वरदाकांत प्रातःकाल में गंगास्नान करके दीक्षा लेने के लिए गोस्वामी प्रभुजी के पास गए, तब भक्तों से कमरा भरा हुआ था। दुःखित होकर वरदाकांत गोसाँईजी के पास गए। प्रभुजी मृदु–मृदु हँस रहे थे। यथासमय 1286 बंगला सन् के आश्विन महीने में वरदाकांत की दीक्षा हो गई।

वरदाकांत के दीक्षा के बारे में किसी को पता नहीं चला। उनकी पत्नी भी नहीं जानती थी। दीक्षा के बाद पश्चिमपाडा के घर में आकर उन्होंने अपनी माँ से कहा था कि वे भी माँ के साथ हविष्यान्न ही ग्रहण करेंगे। जिनको राजसिक आहार अधिक पसन्द था, वे अब निरामिष भोजन कर रहे हैं, यह देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गए। उनके आचरण में भी अनेक परिवर्तन देखा गया। हिन्दुओं

की मूर्तिपूजा के प्रति श्रद्धा–भक्ति एवं विभिन्न धर्मानुष्ठानों के प्रति आकर्षण देखा गया। गिरिबाला देवी ने उनसे दीक्षा के बारे पूछा। उन्होंने झूठा क्रोध दिखाकर प्रसंग बदल दिया। गिरिबाला देवी ने अपने सन्देह के बारे में देवर कुलदानंद को पत्र लिखा। ब्रह्मचारीजी ने तीर्थ भ्रमण करके गेण्डारिया पहुँचते ही भैया के दीक्षा के बारे में गोस्वामी प्रभुजी से पूछा। गोसाँईजी ने सिर खुजलाते हुए उत्तर दिया, "कैसे कहूँ – वे तो मुझे यह बात बोलने के लिए मना करके गए हैं।" उपस्थित सभी भक्तगण गोस्वामी प्रभुजी की यह बात सुनकर हँसने लगे।

एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने वरदाकांत के बारे में ब्रह्मचारीजी से कहा – **"तुम्हारे मँझले भैया (मेजदादा) गंभीर और बुद्धिमान हैं। उनकी प्रकृति वैराग्य प्रधान है। थोड़े विश्वास की कमी के कारण बंधे हुए है, विश्वास एक बूंद भी मिलने से पता नहीं कहाँ चला जाएगा ? अभी विश्वास आने से कैसे चलेगा ? कर्मक्षय तो करना ही पड़ेगा। तुम लोग चारों भाई परस्पर परामर्श करके जन्म लिए हो। सबकी प्रकृति अलग है लेकिन उद्देश्य एक है।"** वरदाकांत के जीवन में गोसाँईजी की यह वाणी सत्य हुई। कुछ समय तक कार्य करने के बाद उनका कर्म–बंधन छिन्न हो गया एवं वे आध्यात्मिक कार्यों में रम गए।

दीक्षा के कुछ दिन बाद कोलकाता के हेयर स्कूल में उनका तबादला हो गया। उस समय उन्हें कानून की परीक्षा देने की इच्छा हुई। परीक्षा के तीन महीने पहले उन्हें आँखों का रोग हो गया। फिर भी वे पीछे नहीं हटे। कानून की अंग्रेजी किताबें उनकी पत्नी गिरिबाला देवी पढ़ती थीं और वे सुनकर पाठ तैयार करते थे। ऐसा दृढ़ संकल्प एवं अध्यवसाय का दृष्टांत अत्यन्त विरल हैं। गुरुजी की कृपा से परीक्षा के दो हप्ताह पहले वे रोगमुक्त हो गए और परीक्षा देकर पास हो गए। गोस्वामी प्रभुजी ने उनको निर्देश दिये। पूर्णिया जाकर स्वाधीन रूप में वकालत करना। गुरुजी का निर्देश पाकर वे सरकारी नौकरी छोड़कर पूर्णिया चले गए।

उस जमाने में श्वसुर और जामाता में बहुत व्यवधान होता था। एकदिन भी ससुराल में बिताना जामाता अपने सम्मान की हानि समझता था। पूर्णिया में रहते समय वरदाकांत की पत्नी अस्वस्थ पिता की सेवा के लिए पित्रालय में रहती थी। लेकिन वरदाकांत लड़कियों की शादी के बाद ज्यादा दिन पित्रालय में रहना पसन्द नहीं करते थे। वे अपनी लड़कियों को भी ज्यादा दिन अपने पास नहीं रखते थे और पुत्रवधुओं को भी पित्रालय में नहीं रहने देते थे। सुनीतिसम्पन्न वरदाकांत ने अपनी पत्नी का ज्यादा दिन पित्रालय में रहना उचित नहीं समझा और पत्नी को ले आने के लिए ससुराल गए। लेकिन श्वसुरजी ने बाधा डाली। वरदाकांत ने निरुपाय होकर एक रिश्तेदार के घर में आश्रय लेकर पत्नी को एक पत्र भेजा। जिसमें लिखा था कि उस दिन रात ढाई बजे वह ससुराल के शौचालय

के पीछे दरवाजा के पास रहेंगे – अगर उनकी पत्नी भविष्य में मंगल चाहती है तो उसी रास्ते से पित्रालय त्याग करके चली आए। पत्र पाकर देवी धर्म–संकट में पड़ गई। अंत में पति का निर्देश मानकर पित्रालय त्याग करके वरदाकांत के पास आ गई। दूसरे दिन सुबह ससुरजी सारी बातें जानकर दुःखित हुए। वरदाकांत के मित्र एवं अन्य रिश्तेदार इस घटना को लेकर मजाक करने लगे।

देवी को पश्चिमपाड़ा के घर में छोड़कर वह पूर्णिया चले गए, लेकिन वहाँ पार्वती बाबू के घर में साधन–भजन ठीक से नहीं हो रहा था। इस विषय में गोसाँईजी को लिखने पर गोसाँईजी ने उनको आसाम के हविगंज में जाकर वकालत करने का निर्देश दिया। इसके अनुसार वरदाकांत हविगंज में जाकर एक सुनार के मकान में किराये पर रहने लगे। उसके एक अंश में सुनार की दुकान थी और दूसरे अंश में वरदाकांत का रहने का घर था। दिन–रात दुकान की खट–खट आवाज से उनके साधन–भजन में बाधा पड़ती थी। इस विषय में गुरुजी को लिखने पर प्रभुजी ने उनको कोलकाता बुलाकर निःशब्द प्राणायाम प्रदान किया एवं कहा कि शीघ्र ही उनको हविगंज में ऐसा मकान मिलेगा कि उस प्रकार का कभी होता नहीं। गुरु वाक्य झूठ नहीं हो सकता। कुछ ही दिनों में वरदाकांत ने अदालत के पास तालाब और बगीचा वाला बड़ा मकान खरीद लिया एवं अपनी इच्छानुसार संस्कारादि करके मकान को सुन्दर बनाया। वे अपनी पत्नी एवं सन्तानादि को हविगंज ले आए और आनन्द के साथ साधन–भजन करने लगे। देवी भी धर्म के संबंध में अपने पति की प्राणप्रण से सहायता करने लगीं। उस समय उनका सुन्दर एवं उच्चांग प्राणायाम होता था। पति–पत्नी दोनों साधन–भजन में तन्मय हो गए। पाँच साल इस तरह बिताने के बाद एक दुर्घटना हुई। एकदिन दोपहर को अदालत में वरदाकांत को खबर मिली कि घर में आग लगी है। तुरंत वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि आग बहुत तेजी से एक–एक करके सब कमरों को जला रही है। वे निर्विकार होकर यह दृश्य देख रहे थे। पत्नी और पुत्रों को निरापद स्थान पर रखकर उनकी दृष्टि पूजा घर की ओर पड़ी। तब निर्भीक वरदाकांत ने आग में प्रवेश करके एक हाथ में गोसाँईजी के चित्र को सीने से लगाकर और दूसरे हाथ से नारायण शिला का सिंहासन माथे पर लेते हुए बाहर आ गए। उस समय वरदाकांत ने पत्नी को अपने पित्रालय में भेजकर गृहनिर्माण शुरू किए। गृहनिर्माण का कार्य समाप्त होने पर वे पत्नी एवं संतानादि को हविगंज लाने के लिए ढाका गए। ढाका पहुँचते ही उनको सौतेले भाई रोहिणीकान्त का एक जरूरी तार मिला और वह उलुबेड़िया के निकट आमता में भाई के पास चले गए। रोहिणीकांत वहाँ के दरोगा थे। वरदाकांत ने वहाँ जाकर देखा कि उनका भाई एक कठिन मुकदमे में फँस गया है। यह मुकदमा इतना जटिल था कि इससे छुटकारा मिलना असंभव था। वरदाकांत गुरुजी को स्मरण करके मुकदमा की

पैरवी करने लगे। गुरुजी पर एकांत निर्भर होकर वे काम करने लगे। आश्चर्य की बात है, उन्होंने शीघ्र ही मुकदमा मुकदमा जीतकर भाई को बचा लिया। उस समय गोसाँईजी कोलकाता में थे। वरदाकांत उनको प्रणाम करने गए। सब समाचार सुनकर गोसाँईजी ने उनको हविगंज छोड़ने का निर्देश दिया। गुरुजी के निर्देश से वे गया चले गए। वहाँ से पत्रयोग में हविगंज का मकान बहुत ही कम कीमत पर बेच दिया एवं वहाँ की प्रतिष्ठा, विपुल अर्थोपार्जन सब छोड़ दिए। सद्गुरु के निर्देशानुसार कर्म करके ही प्रारब्ध खण्डन किया जाता है। इसलिए गोसाँईजी शिष्य को कर्म–साधना के द्वारा आध्यात्मिक पथ में आगे बढ़ाने लगे। उनका निर्देश पाकर शिष्य ने गया में वकालत शुरू की। काम करते समय उन्होंने देखा कि यहाँ उर्दू भाषा सीखना जरूरी है। शीघ्र ही वे उर्दूभाषा में बोलना तथा लिखना सीख गए। इससे उनकी वकालत अच्छी तरह चलने लगी। वे अच्छा फर्नीचर, गाड़ी आदि खरीदने में समर्थ हुए। उस समय उनके छोटे भाई शारदाकांत प्रायः उनके पास आकर रहते थे। ब्रह्मचारी कुलदानन्द उस समय आकाशगंगा पहाड़ में रहते थे। बीच–बीच में वे नीचे भैया के पास एक–दो दिन रहकर दाल, चावल आदि लेकर पहाड़ पर चले जाते थे। गुरुभाई लोग भी यहाँ आते–जाते रहते थे। इसलिए वरदाकांत जो कुछ आय अर्जित करते थे, सब खर्च हो जाती थी। दूसरे दिन के लिए वे कभी कुछ संचय नहीं करते थे। इससे कभी–कभी संसार में अभाव होने पर भी गुरु की कृपा से सब व्यवस्था हो जाती थी।

वरदाकांत की ऐसी धारणा थी कि किसी विषय में निष्ठा नहीं रहने से उसमें सफलता मिलना असंभव है। यह बात उन्होंने पढ़ने के समय अनुभव की थी। इसलिए छोटे भाइयों या सन्तानों को इस विषय में अन्यमनस्क देखने से वे कठोर शासन करते थे। अपने बड़े पुत्र रणदाकांत को पढ़ाई में उचित ध्यान न देने के कारण उन्होंने कठोर शासन किया। इसलिए उनका पुत्र घर छोड़कर भाग गया। एक सप्ताह उसका कुछ पता नहीं मिला। उस समय एक वकील मित्र ने उनसे कहा कि उन्होंने रणदाकांत को बोधगया में मुण्डितमस्तक एवं गेरूआधारी साधुरूप में देखा है। वहाँ के महन्तजी रणदाकांत को सुपुरुष देखकर भविष्य का महन्त निर्वाचित किए हैं। यह जानकर वरदाकांत ने किसी के द्वारा महन्तजी को पत्र भेजा कि पत्र पढ़कर अगर वे उनके लड़के को वापस नहीं भेजते हैं तो उनके विरुद्ध मुकदमा करेंगे। पत्र पाकर महंतजी ने तुरन्त रणदाकांत को उसके पिता के पास भेज दिया। उसी समय पुरी से गोसाँईजी का निर्देश आया कि लड़कों पर कठोर शासन करने की जरूरत नहीं है।

गया में रहते समय वरदाकांत ने पत्नी के साथ मथुरा, वृंदावन, हरिद्वार, काशी आदि तीर्थ स्थानों एवं आगरा, लखनऊ आदि स्थानों का दर्शन किया।

गया में अवस्थान के समय एक अलौकिक घटना हुई। वरदाकांत जब पूजाघर में आरती करते थे, एक चार–पाँच हाथ लम्बा श्वेतवर्ण का सांप पूजा–घर में प्रवेश करके आरती का दर्शन करता था। वरदाकांत उसे बलराम का अंश समझकर दूध–केला का भोग निवेदन करते थे। सांप उसे ग्रहण करके चला जाता था। गोसाँईजी ने उनको नित्य होम करने का निर्देश दिया था। वे निष्ठा के साथ उसका पालन करते थे। गया में अवस्थान के द्वितीय वर्ष में उनको खबर मिली कि पुरी में गुरुजी भयानक अस्वस्थ है। यह सुनकर वरदाकांत एवं उनके परिवार के प्रायः सब लोग गुरुजी के पास चले गए। 1306 बंगला सन् (सन् 1899 ई०) 22 ज्येष्ठ रविवार रात्रि नौ बजकर 20 मिनट पर गोसाँईजी का महाप्रयाण हो गया। वरदाकांत शोकाकुल होकर 'नाथ' संप्रदाय के बड़े शक्तिशाली महात्मा गंभीरनाथजी के पास गए। यह खबर सुनते ही उनका मुखमण्डल लाल हो गया और आँखों में अश्रू भर आए। काफी देर बाद उन्होंने कहा, "इस संसार में साधु लोगों के रहने का स्थान नहीं रहा। कुछ वर्षों में सब लोग चले जाएँगे।" महात्मा गंभीरनाथ जी के संबंध में गोस्वामीजी कहा करते थे– **"नाथ जी पलभर में सृष्टि–स्थिति–प्रलय करने में समर्थ हैं।"** वरदाकांत के साथ इनका अत्यन्त स्नेहभाव था।

गया के आकाशगंगा पहाड़ में गोसाँईजी की दीक्षा हुई थी। उनके गुरुजी स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंसजी ने सूक्ष्म शरीर में मानस–सरोवर से आकर 1290 बंगला सन् (सन् 1883 ई०) के भाद्र महीने की एक शुभ तिथि में आकाशगंगा पहाड़ में गोसाँईजी को दीक्षा प्रदान की थी। इस स्थान को चिह्नित करने के लिए गोस्वामी प्रभुजी ने एक लोहे के छेनी द्वारा पत्थर पर लिखने की कोशिश की थी। लेकिन इस स्थान में 'मा' लिखते ही वह छेनी टूट गई। इसके बाद गोसाँईजी ने और कुछ नहीं लिखा था। वरदाकांत ने एक समय यह दीक्षा स्थान ढूँढ़ निकाला एवं गोसाँईजी का यह लेख उन्हें दिखाई दिया। इस लेख को सम्पूर्ण करने की इच्छा प्रकट करने पर गोस्वामी प्रभुजी ने उनको अनुमति दी एवं क्या लिखना है, वह भी बताया, सम्पूर्ण लेख बंगला भाषा में है। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है–

ॐ

इस स्थान पर
मानस–सरोवर के परमहंसजी ने
श्री विजयकृष्ण गोस्वामी को दीक्षा प्रदान की थी।
जय गुरु ॐ 1290 (सन् 1883 ई०)

गया में एक अलौकिक घटना इस समय हुई – गिरिबालादेवी बहुत दिनों से

सिर–दर्द से कष्ट पा रही थी। उनका सिर–दर्द इतना तीव्र होता था कि सहन करना मुश्किल होता था। एकदिन देवी ने असहाय होकर गोसाँईजी से प्रार्थना की कि उनको इस यन्त्रणा से मुक्ति देकर अपने पास ले जाए। उसी रात में देवी को सपने में गोसाँईजी ने कहा कि पुराने लकड़ी के बक्से में जहाँ पुस्तकें रखी हैं, वहाँ एक ताजा जड़ी है। उसे धारण करने से उनकी रोग से मुक्ति होगी। सपना देखकर देवी ने वरदाकांत से सारी बातें कही लेकिन उनको या घरवालों को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन लोगों ने सोचा कि वह बक्सा बहुत दिनों से बंद पड़ा है। उसमें ताजा जड़ी रहना असंभव है। वह बक्सा ब्रह्मचारीजी के कमरे में था, ब्रह्मचारीजी को नींद से जगाया गया। ब्रह्मचारीजी भी इस बात पर विश्वास नहीं कर पाए। फिर भी, उन्होंने बक्सा खोला और कीड़े, धूल से भरी किताबें बाहर निकालने लगे। अचानक अन्तिम ग्रन्थ के ऊपर एक ताजा जड़ी दिखाई दी। देवी ने परम श्रद्धा के साथ उसे धारण किया। तुरंत सब दर्द चला गया। इस घटना से युक्तिवादी वरदाकांत ने अलौकिक शक्ति के प्रभाव को श्रद्धा के साथ स्वीकार किया। प्रभुजी की शिष्यों के प्रति अपार करुणा थी, यह घटना इसका ज्वलन्त दृष्टांत है।

गया में चूहों का बहुत उपद्रव था। इसलिए पूजा घर की खिड़की एवं दरवाजा बंद रखना पड़ता था। गया ग्रीष्म प्रधान स्थान है। एकबार रात के समय गोसाँईजी ने सपने में कहा कि गर्मी के कारण उनको पसीना आ रहा है। निद्राभंग होने पर वे चित्रपट पर पसीने की बूंद देखकर विस्मित हो गए। पूजा कमरे की खिड़कियों को खोल दिया गया। देवी चित्र का कांच खोलकर मूर्ति को हवा करने लगी और वरदाकांत ने तुलसी द्वारा पसीना पोंछ दिया। उस तुलसी को खाकर उन्होंने देखा। अपूर्व मधु जैसी मिठास और चन्दन की सुगन्ध से वह भरपूर थी।

एकबार रात प्रायः 11 बजे वरदाकांत के तृतीय पुत्र वसुदाकांत हैजा (कलेरा) से पीड़ित हुआ। छह साल के बालक को स्वस्थ करने के लिए सब चिंतित हो उठे। सुचिकित्सा द्वारा बालक स्वस्थ हो गया लेकिन यह संवाद आकाश गंगा पहाड़ में कुलदानन्द को देने की बात किसी को याद नहीं थी। धीरे–धीरे स्वस्थ होकर बालक सो गया। वरदाकांत की बड़ी लड़की लावण्यदेवी रोगी के पास बैठकर देखभाल कर रही थी। लावण्यदेवी ने खिड़की से देखा कि उसके चाचा कुलदानंद दौड़ते हुए आ रहे हैं। लावण्यदेवी के दरवाजा खोलते ही उन्होंने वसुदाकांत की खबर पूछी। लावण्य देवी से उसके स्वस्थ होने की खबर सुनकर कुलदानन्द निश्चिन्त हुए। बाद में भतीजी ने जब चाचा से पूछा कि उनको वसुदाकांत के बारे में कैसे पता चला ? तो कुलदानंद ने कहा– "वाह! मैं कैसे नहीं जानता! – मैंने तो पूरी रात उसके लिए युद्ध किया। मैं आसन में बैठा था।

अचानक देखा, कोई उसको पकड़कर ले जा रहा है। मैंने जल्दी से उसका रास्ता रोका। देखा इतनी रात में इतने छोटे शिशु को एक अपरिचित आदमी ले जा रहा है, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। मेरे रास्ता रोकते ही उसने मुझे धक्का देकर हटाना चाहा। मैंने भी उसका रास्ता नहीं छोड़ा। वह क्रुद्ध होकर मुझ पर झपटा। रात भर उसके साथ लड़ाई चली। तब तक गुरुजी प्रदत्त नाम करने का मुझे याद नहीं था। फिर याद आते ही मैंने गुरुजी को स्मरण करके दुगुने बल से उसको पकड़ा। अचानक देखा कोई नहीं है। मैं शून्य में लड़ाई कर रहा हूँ। मानो सब जादू है वह आदमी भी नहीं है, शिशु भी नहीं है। लेकिन यह घटना सत्य थी इसमें कोई संदेह नहीं था क्योंकि मेरा शरीर पत्थरों के आघात से छिन्न–विछिन्न हो गया था। मन में संदेह जागा, इसलिए दौड़ते हुए यहाँ आया। गुरुजी के दया एवं नाम की कृपा से संकट दूर हो गया" – यह कहकर ब्रह्मचारीजी बैठ गए, जाड़े की रात थी लेकिन उनके शरीर से पसीना निकल रहा था। उनके शरीर पर कई स्थानों पर चोट लगी थी। इस घटना से प्रमाणित होता है कि शिष्यों की विपत्ति में विदेही अवस्था में भी सद्गुरु की कृपा से हमेशा रक्षा होती है।

वरदाकांत की आठ साल की कन्या मालती ने कुछ दिन रोगग्रस्त रहने के पश्चात् देह त्याग दी। कुछ दिन बाद उसने सपने में गया के प्रेतशिला में पिण्डदान के लिए प्रार्थना की। पति–पत्नी दोनों प्रेतशिला में पिण्डदान करने गए। शिला पर पिण्ड देते समय उस बालिका के कोमल छोटे–छोटे दो हाथ शून्य में दिखाई दिए।

ब्रह्मचारी कुलदानंद कुछ दिन आकाशगंगा पहाड़ पर साधन–भजन करके अन्यत्र चले गए। गया में रहते समय शिवदास नाम का एक बलिष्ठ साधु उनकी सेवा करता था। ब्रह्मचारीजी के गया से चले जाने के बाद शिवदास आकाशगंगा में ही रहने लगे। साधु शिवदास वरदाकांत के प्रति अपने पिता की तरह श्रद्धा रखते थे। वरदाकांत भी उनकी देखभाल करते थे। जाड़े की रात थी। साधु धूनी जलाकर समाधिस्थ थे। धूनी की आग से साधु का घुटना बुरी तरह जल गया। जब साधु की समाधि भंग हुई तब उसकी अवस्था अत्यन्त आशंकाजनक थी। उस समय वरदाकांत अदालत की छुट्टी रहने से देश जाने के लिए तैयार हो रहे थे। साधु का यह संवाद मिलते ही वे तुरन्त पहाड़ पर पहुँचे। फिर साधु को गोद में लेकर नीचे लाए और अस्पताल में चिकित्सा की सुव्यवस्था की। साधु की परमायु शेष हो गई थी। दो दिन बाद शिवदास ने देह त्याग दी। वरदाकांत ने उनकी पारलौकिक क्रिया शास्त्रानुसार की।

गया में छह साल बीत गए। एकदिन सपने में गोस्वामी प्रभुजी ने देवी से कहा कि गया का कार्य समाप्त हो गया है। कर्म भी समाप्त हो गया है। अब वरदाकांत

को और वकालत करने की जरूरत नहीं है। अब वरदाकांत एवं गिरिबाला देवी के सब भार प्रभुजी ले रहे हैं। देवी ने सारी बातें पति से कही। सब सुनकर वरदाकांत ने कपिलधारा में बाबा गंभीरनाथजी के पास जाकर सब बताया। नाथजी ने सबकुछ सुनकर कुछ देर तक ध्यानमग्न रहकर बोले– "सब सच है। ये सब स्वप्न के भीतर स्वप्न, सब माया है।"

वरदाकांत को और कोई संदेह नहीं रहा। वे नाथजी के आश्रम से लौटकर अपने मकान, गाड़ी, घोड़ा, फर्नीचर आदि सब कम कीमत पर बेचकर सबको लेकर ढाका रवाना हो गए। अब बर्हिमुखी कर्म त्याग करके साधना में मग्न हो गए। वैध भोग से ही कर्म का अवसान होता है। बहुत दिन पहले श्रीश्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी ने वरदाकांत को कहा था, "कुछ दिन अर्थोपार्जन करके भोगकर लो। शास्त्र में कथित वैध भोग द्वारा ही कर्मक्षय करना पड़ता है, अन्यथा साधन–भजन में विलम्ब होता है।" यह भविष्यवाणी वरदाकांत के जीवन में सत्य हुई थी। कर्म त्याग करके साधन–भजन में आत्मनियोग करने के लिए वरदाकांत गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से सपरिवार गुरुजी की साधना स्थली गेण्डारिया में चले आए।

गेण्डारिया आकर वे पहले किराए के मकान में रहने लगे। फिर एक सुंदर मकान बनाकर वहाँ सपरिवार स्थायी रूप से वास करने लगे। मकान के एक निर्जन अंश में उन्होंने पंचवटी का कुंज निर्माण किया एवं वट–वृक्ष के नीचे वेदी निर्माण किया। उस वेदी पर धूनी–कुण्ड की स्थापना की। इस धूनी के सामने उनका स्थायी आसन था। उसके पास ही तुलसी मंच था। यह धूनी सर्वदा प्रज्जवलित रहती। तूफान, वर्षा या शिलावृष्टि में भी इसकी आग नहीं बुझती थी।

गुरुजी के आश्रम के पास रहते हुए साधन–भजन से वरदाकांत परम परितृप्त हुए और उनकी आध्यामिक अवस्था शीघ्र उन्नत होने लगी। गुरुजी के पुत्र योगजीवन गोस्वामी एवं विधुभूषण मजुमदार, राधारमण गुह, नवकुमार बागची, किशोरीलाल सेन आदि गुरुभाइयों के संगलाभ से वरदाकांत का साधन–जीवन परिपुष्ट होने लगा।

वरदाकांत कभी भी पक्के घर में नहीं रहते थे। मकान के एक निर्जन अंश में मिट्टी के कमरे में वे रहते थे। रात के ढाई बजे उठकर शौचादि क्रिया समाप्त करके स्नान करके कमरे में लौटते थे। इसके बाद एक घंटा प्राणायाम एवं नाम–साधन के बाद प्रभाती कीर्तन समापन करके गुरुजी की मूर्ति में तुलसी चन्दन देते थे एवं उसके पश्चात् नारायण शिला का स्नान एवं पूजा करते थे। इसके बाद नित्य होम क्रिया करते थे। होम क्रिया समाप्त होने पर होम पात्र में धूना डालकर उस पात्र के धुएँ से सब घर पवित्र करते थे एवं निद्रित

पुत्र–कन्याओं के कान में हरिबोल ध्वनि देकर उन्हें जगाते थे। फिर पक्षियों के आहार के लिए आँगन में चावल छिड़कते। इतने में गिरिबाला देवी गोस्वामी प्रभुजी के लिए बाल्य–भोग प्रस्तुत कर देती। भोग हो जाने के बाद सब प्रसाद ग्रहण करते थे। इसी नियम से उनका दैनिक कर्म चलता था। कभी इसका उल्लंघन नहीं हुआ।

प्रसाद ग्रहण करनें के बाद वरदाकांत पंचवटी कुंज के आसन में दोपहर ढाई बजे तक ध्यान मग्न रहते थे। ध्यान भंग होने पर थोड़ा दूध और फल ग्रहण करते थे। साधन में विघ्न होगा, इसलिए वह दोपहर में भोजन नहीं करते थे। तीन से चार बजे तक संवादपत्र पाठ एवं गुरुभाइयों के साथ बातचीत में व्यतीत होता था। संवादपत्र के प्रति उनका विशेष अनुराग था। जीवन के अंतिम दिन तक उन्होंने संवादपत्र पढ़ा था। चार बजने पर श्री गुरुग्रंथसाहेब, मूल महाभारत, श्रीमद्भावगत, योगवशिष्ठ, रामायण, चैतन्य चरितामृत. चैतन्य भागवत आदि पाठ करके अन्य लोगों को सुनाते थे। संध्या के समय उनकी तृतीय कन्या तुलसी एवं चतुर्थ कन्या नारायणी उनके निर्देश से मधुरकंठ में "शिवस्तोत्रम्" करती एवं उसके बाद 'भवसागर तारण कारण हे' आदि गुरुस्त्रोत का पाठ दोहराते थे। उसके बाद कीर्तन एवं हरिलूट होती थी। उसमें परिवार के सभी सदस्य योगदान करते थे। उनका तृतीय पुत्र गुणदाकान्त मूल गायक था। हरिलूट के बाद फिर अपने आसन में नाम साधना करते थे। साधन के बाद आहार फिर शय्या ग्रहण। इसी नियम से उन्होंने बारह वर्ष तक साधन–भजन किया। इसके बाद अचानक उनमें कुछ परिवर्तन देखा गया। नियमानुवर्तिता शिथिल होने लगी। पहले जैसा पर नाम–प्राणायाम, पाठ–कीर्तन में भी मन नहीं था। इसके बदले में कभी–कभी विषय संबंधित कार्यों को भी करने लगे। पंचवटी के आसन में बैठने का आग्रह कम हो गया। कभी–कभी कुटुम्बों के घर जाने लगे। एक साधारण मुनष्य जैसा व्यवहार करने लगे। ये सब देखकर ऐसा लगता था कि उन्होंने सहज अवस्था प्राप्त कर ली है। उनकी आँखों तथा मुखमण्डल पर एक दिव्य आभा का वास रहता था। परिपूर्ण आनंद से वे तन्मय रहते थे। उस समय से उन्हें सभी कर्म ब्रह्मकर्म लगने लगा था।

गेण्डारिया में रहते समय अनेक अलौकिक घटना घटी। यहाँ उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है –

एकदिन वरदाकांत बाल हर्रे से एक प्रकार का चूरण तैयार कर रहे थे। उनका सिर नीचे था। अचानक.एक सांप उनके पैरों के नीचे से घुसकर हाँडी के सामने फन फैला कर खड़ा हो गया। वरदाकांत बिन्दुमात्र भी नहीं डरे। पहले जैसा

अपना काम करने लगे। कुछ देर बाद सांप धीरे–धीरे चला गया।

वरदाकांत के घर में एक आम का पेड़ था। उसमें बड़ा खोखला था जिसमें एक सफेद सांप रहता था। इस पेड़ के कारण उनको मकान बनाते समय बहुत असुविधा हुई। लेकिन फिर भी उन्होंने उस सांप का आवास स्थल वाला पेड़ नहीं कटवाया। मकान के पीछे एक नाला था। प्रति अमावस्या के रात में वह साँप नाले से घर में प्रवेश करता था। देवी यह जानती थी और नाले के पास दूध और केला रख दिया करती थी। साँप उसे नियमित ग्रहण करके चला जाता था। वरदाकांत कहते थे कि वह सांप एक साधनशील फकीर का गुप्त रूप है और आश्चर्य की बात है कि उनका पुत्र हेमदाकांत उस सांप को एक उपकारी दोस्त समझता था। कोई फेरीवाला खाने की वस्तु बेचने के लिए आता तो उसे खरीदने के लिए हेमदाकांत उस सर्परूपी फकीर के पास पैसा माँगता था। फिर मिट्टी में से उसे दो–चार पैसा मिल जाता था। एक दिन भी उसे निराश नहीं होना पड़ा।

एकबार वरदाकांत को पत्नी एवं संतानादि के साथ ढाका आते समय बड़े तूफान का सामना करना पड़ा था। उन लोगों की नाव उस समय 'धलेश्वरी' नदी के बीच में थी। चारों ओर अंधेरा छा गया। बड़ी–बड़ी लहरों के बीच नाव डूबने को हुई। नाविक लोग प्राणप्रण से चेष्टा करके भी नाव को स्थिर नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने हताश होकर वरदाकांत को भगवान का नाम लेने को कहा। वरंदाकांत ने अपना बेडिंग खोलकर प्रत्येक संतान के कमर में तकिया बांध दिया। यह सोचकर कि अगर नाव डूब जाए तो वे लोग कुछ देर तक तैर सकेंगे। इसके बाद छोटे पुत्र को गोद में उठाकर पत्नी के साथ गोस्वामी प्रभुजी को स्मरणपूर्वक 'अपरूप श्रीगुरु–रूप हृदये सदा भवनारे' यह गीतं गाने लगे। अचानक नाव जोर से काँप उठी और तेजी से चलने लगी और फिर बहुत जल्दी किनारे पहुँच गई। ऐसा लगा मानो कोई अपने हाथों से नाव को उठाकर लाया हो। सब लोगों को ऐसा लगा कि गोस्वामी प्रभुजी को स्मरण करते ही उन्होंने स्वयं आकर सब लोगो को निरापद स्थान पर पहुँचा दिया।

वरदाकांत के बहनोई अंबिकाचरण चट्टोपाध्याय कुमिल्ला में नौकरी करते थे। एकदिन बहन की चिट्ठी एवं तार पाकर वरदाकांत कुमिल्ला गए। वहाँ जाकर देखा कि बहन की लड़की को किसी भैरवी की आत्मा ने अपने कब्जे में कर लिया है। जो लड़की कभी संस्कृत पढ़ी नहीं थी, वह केवल संस्कृत बोल रही है। वरदाकांत के साथ बहुत देर तक उसने तर्क किया। वरदाकांत समझ गए कि कोई शक्तिशाली भैरवी ने उसका आश्रय लिया है। दूसरे दिन वरदाकांत फिर अपनी भांजी के साथ संस्कृत में बातें करते समय भैरवी से पूछा कि उसने क्यों उनकी भांजी का आश्रय लिया ? भैरवी ने उत्तर दिया कि इस लड़की की देह अति पवित्र

है इसलिए। वरदाकांत ने कहा कि इस अविवाहिता लड़की का सत्यानाश न करके उसे छोड़ दो। भैरवी ने कहा कि ऐसा अच्छा आश्रय छोड़कर वह कहीं नहीं जाएगी। पिछले जन्म में धर्म के गलत रास्ते में जाने के कारण उसकी गति नहीं हुई है। सद्गुरु आश्रित किसी के पास दीक्षा मिलने से वह लड़की को छोड़ देगी। वरदाकांत सद्गुरु आश्रित हैं। वरदाकांत अगर उसे दीक्षा देंगे तो वह लड़की को छोड़ देगी। वरदाकांत ने उत्तर दिया कि उनको दीक्षा देने का कोई अधिकार नहीं है। वरदाकांत उसको दीक्षा नहीं देगें। भैरवी बोली कि तब वह लड़की का आश्रय लेकर ही रहेगी। वरदाकांत भांजी को सामने बैठाकर होम करने लगे। होम का धुँआ कन्या के शरीर में लग रहा था और वरदाकांत तेजी से गुरुजी का दिया नाम जपने लगे। भांजी की आँखों से मानों आग निकल रही थी। ऐसा लगता था कि उस आग से वह वरदाकांत को भस्म कर देगी। उनकी भांजी एक–एक बार ऊपर मुँह करके किसी को देख रही थी फिर निस्तेज होकर आँखें नीचा कर देती। कई बार ऐसा करते देख वरदाकांत ने पूछा वह ऊपर क्यों देख रही है ? भांजी के मुंह से भैरवी ने उत्तर दिया कि उनके गुरुजी गोस्वामी प्रभु उनके सिर पर दण्ड लेकर खड़े हैं। गुरुजी उनकी रक्षा कर रहे हैं, नहीं तो वह वरदाकांत को भस्म कर देती। होम से भैरवी धीरे–धीरे शक्तिहीन हो गई और भाँजी की अवस्था भी आशंकाजनक होने लगी। भैरवी बार–बार उसकी सद्गति का उपाय करने के लिए वरदाकांत से अनुरोध करने लगी। उस समय वरदाकांत को दीक्षा देने का निर्देश नहीं मिला था। इसलिए भैरवी से उन्होंने कहा कि अगर वह भांजी को छोड़ दे तो दीक्षा देने के अधिकारी उनके छोटे भाई कुलदानन्द ब्रह्मचारी के पास उसकी दीक्षा लेने की व्यवस्था वे कर सकते हैं। भैरवी इस प्रस्ताव पर सहमत हुई। वरदाकांत ब्रह्मचारीजी को कुमिल्ला आने के लिए तार भेजे। ब्रह्मचारीजी ने यथासमय कुमिल्ला पहुँचकर भांजी के कान में मन्त्र दान किया। मंत्र सुनते ही भांजी जमीन में गिर पड़ी और साथ–साथ आँगन में एक बेल का पेड़ भी बिना तूफान और वर्षा के गिर पड़ा। सब लोग कहने लगे प्रेतात्मा को मुक्ति मिलने से वह ऐसा निदर्शन छोड़ जाता है। इसके बाद भांजी स्वस्थ हो गई।

पंचवटी कुंज में बेल वृक्ष के नीचे धूनी और आसन स्थापित था। यह स्थान बहुत पवित्र था। वरदाकांत सबको विशेष सावधान करके कहते थे कि देह शुद्ध नहीं रहने से वेदी पर मत जाओ एवं वेदी में चढ़ते समय प्रणाम करके चढ़ो। एकदिन राजकुमारी नाम की एक बूढ़ी दासी झाड़ू लगाने के लिए वेदी पर चढ़ गई। उसने वेदी को प्रणाम नहीं किया। वेदी पर खड़ी होते ही एक अदृश्य हाथ के धक्के से वह नीचे गिर गई और जोर से रोने लगी। सब लोग वहाँ आए। सब सुनकर वरदाकांत बोले, "शुचिशुद्ध होकर वेदी में उठते समय वेदी को प्रणाम

करके उठना चाहिए, नहीं तो ऐसी दुघर्टना होने की संभावना रहती है।" धर्मजगत की अपूर्व महिमा का पता इस घटना से होता है।

एकबार वरदाकांत उनकी बड़ी पुत्र वधू को पित्रालय से लेकर आ रहे थे। साथ में एक पेटी थी जिनमें वधु के अलंकार थे। लौहजंग घाट में स्टीमर आने पर वे स्टीमर में चढ़े, लेकिन जल्दी में वह बक्सा उठाना भूल गए। स्टीमर घाट से छूटने पर उनको बक्से की याद आई। उन्होंने जहाज घुमाने के लिए अनेक अनुरोध किया, पर वे लोग राजी नहीं हुए। वरदाकांत उस स्टीमर के एक यात्री को, जो उनका बाल्यकाल का मित्र था, सारी घटना कहकर उनकी पुत्रवधु को यथास्थान पहुँचाने को कहा और वे पानी में तैरकर किनारे में जाने के लिए तैयार हो गए। उनके मित्र, पुत्रवधु एवं अन्य सभी लोग हाहाकार कर उठे। वरदाकांत ने पानी में कूदने से पहले आँखें बन्द करके पहले गुरुजी को समरण किया एवं 'जयगुरु' कहकर कूदने का उपक्रम करते ही भयंकर शब्द के साथ स्टीमर के एक छोर से लोहे का मोटा संकल टूट गया और जहाज जोर से हिल उठा एवं घूमकर सीधा लौहजंग जेटि के सामने उपस्थित हुआ। वरदाकांत ने सामने एक नाव को बुलाया एवं नाव द्वारा जेटि से बक्सा लेकर फिर उसी स्टीमर में आ गए। स्टीमर के यात्रीगण उच्च स्वर में 'हरिबोल' जयघोष करने लगे। वरदाकांत एक धर्मप्राण पुरुष हैं, इस विषय में किसी को संदेह नहीं रहा। स्टीमर के नाविक लोगों ने भी उनसे क्षमा माँगी। गुरुजी किस प्रकार आश्रित जन की रक्षा करते हैं, इस घटना से पता चलता है।

वरदाकांत साधन–भजन के लिए पहाड़ या जंगल में नहीं गए। वे घर में, संसार में रहकर गुरुजी की पूजा, उपासना और नाम–ध्यान करके पूर्णता प्रप्त किये थे। उन्होंने समझ लिया था कि गुरुजी ही सब कुछ हैं और वे ही एकमात्र उपास्य हैं। संसार की प्रतिकूल अवस्था में रहकर भी वरदाकांत ने भगवत प्राप्ति की।

वरदाकांत को अलौकिक रूप से गोस्वामी प्रभुजी ने दीक्षा देने का आदेश दिया था। उस समय वे रांची में थे। उनकी उच्चावस्था देखकर अनेक युवक उनके पास दीक्षा लेने के लिए भीड़ जमाते। मयमनसिंह के एक धनी जमींदार ने सर्वप्रथम उनके पास दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी, लेकिन गोस्वामी प्रभुजी से आदेश नहीं मिलने के कारण वरदाकांत उस पर कृपा नहीं कर सके। रांची में उनके घर के बगल में गोस्वामी प्रभुजी के पुत्र योगजीवन गोस्वामी के प्रिय शिष्य गोष्ठबिहारी सिंह रहते थे। अचानक एकदिन खबर आई कि गोष्ठबिहारी जी की ज्येष्ठ कन्या सिद्धेश्वरी देवी के पति का देहांत हो गया। शोकाकुल विधवा पिता के पास आई। वरदाकांत के भीतर विस्मयकर भगवत शक्ति का प्रकाश देखकर

कन्या ने बाकी जीवन वरदाकांत जी के निर्देशित पथ पर चलना स्थिर किया। कन्या ने इसके बारे में पिता को सब कुछ बता दिया। सिंह महाशय ने डरते हुए वरदाकांत को सबकुछ निवेदन किया। इस अवसर पर अन्य भक्तों ने भी अपने मन की बात कह दी। वरदाकांत ने सब सुनकर कहा कि गुरुजी के आदेश देने से ही यह संभव होगा। अब प्रतीक्षा करनी पड़गी, यह सुनकर सब लोग दुःखी हो गए। सिंह महाशय की विधवा कन्या ने तो खाना–पीना बन्द कर दिया और बोली दीक्षा मिलने पर ही वह अन्नजल ग्रहण करेगी। तीन दिन, तीन रात बीत गई! चौथे दिन वरदाकांत ने अचानक सभी दीक्षाप्रार्थियों को दूसरे दिन सुबह नहाकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर उनके पास आने के लिए कहा। उस दिन सिंह जी की विधवा कन्या एवं अन्य 13 जनों को दीक्षा मिली थी। सन् 1327 के 10 वीं आषाढ अग्रेजी सन् 1920, 24 जून से वरदाकांत जी ने दीक्षा देनी शुरू की थी। बाद में रांची के अनेक लोगों ने उनसे दीक्षा ली थी।

ठाकुर वरदाकान्तजी कुछ दिन बाद गेण्डारिया वापस लौटे। उनके दीक्षा प्रदान करने का संवाद उनके आने से पहले ढाका में पहुँच चुका था। इसलिए कई दीक्षाप्रार्थियों ने उनके पास दीक्षा के लिए प्रार्थना की। इन लोगों में उनके पुत्र हेमदाकान्त एवं पुत्रवधू भी शामिल थे। सब लोगों की दीक्षा हो गई। इसके बाद चारों ओर से विभिन्न लोग दीक्षा लेने के लिए आने लगे। लोग साधन पाकर धन्य हो गए। दीक्षा दान के समय वे सर्वदा यही कहते थे कि वे उनके गुरु नहीं हैं। उनके गुरुदेव गोस्वामी प्रभु ही सबके गुरु हैं। उन्होंने ही सबका भार ग्रहण किया है। वे केवल उनके श्री चरणों में सबको अर्पण कर देते हैं। उन्होंने अपने शिष्यों में अपने गुरुदेव को ही स्थापित किया। अपनी तस्वीर में तुलसीचन्दन देने के लिए वे मना करते थे। वे अपने गुरुदेव को जिसरूप से देखते थे, उसका परिचय उनके द्वारा संकलित 'श्रीश्री विजयमंगल' ग्रन्थ के उत्सर्ग पत्र में पाया जाता हैं। गुरुदेव ही उनके सब कुछ थे। यह बात वे बार–बार कहते थे। उन्होंने लिखा था – "तुम्हीं मेरे राजा, तुम्हीं मेरे महाराजा, महाराजाधिराज हो! हे दयाल, हे प्रभो! हे कांगालैकशरण, हे दीनदयार्द्रनाथ! करूनैक–सिन्धों! दया करो, केवल तुम्हें ही चाहते हैं, और कुछ नहीं। क्षुद्र इन्द्रियों को लेकर असीमत्व समझने की जल्पना, कल्पना, असफल प्रयास से रक्षा करो। वर्तमान में मुझे तुम्हारे दृष्ट, स्पृष्ट, प्रत्यक्षीभूत, सीमित अवस्था में श्री चरणों की अनुभूति में ही खींच लो।"

1331 बंगला सन् (सन् 1924 ई०) को ठाकुर वरदाकान्त पटना एवं मुजफ्फरपुर में आए थे। वे पटना में अपने ज्येष्ठ पुत्र रणदाकान्त के घर पर ठहरे थे। उस समय अनेक भक्तों ने उनके पास आकर कृपा प्राप्त की। बाद में उन्हें ब्रह्मचारीजी के शिष्य गंगानारायण मुखोपाध्याय मुजफ्फरपुर ले गए। वे टेलीग्राफ

के दफ्तर में काम करते थे। उनके घर में अनेक लोग सत्संग के लिए आने लगे। उनकी उपस्थिति में वहाँ महाभाव का स्त्रोत बहने लगा। अनेक लोग उनसे दीक्षा पाकर धन्य हो गए। उन्होंने सबसे यही कहा कि श्वास–प्रश्वास में नाम जपो। इसे ही अजपा–साधन कहते हैं।

धर्मोपदेश के साथ–साथ सांसारिक जीवन के कर्तव्यों का पालन करने के प्रति उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। छात्रों को वे अनन्यचित्त होकर पढ़ाई करने को कहते। सन्ध्या के बाद अगर कोई छात्र उनके पास रहते तो वे असन्तुष्ट हो जाते थे। जिस समय पर जो करना चाहिए, वैसा नहीं करना ठीक नहीं है। छात्रों की पढ़ाई ही तपस्या है– यह बात वे बार–बार छात्रों को स्मरण कराते थे। नारी के प्रति अवहेलना (अनादर) और अपमान वे कभी सहन नहीं कर सकते थे। स्वयं श्रीकृष्ण ने द्रोपदी के वस्त्र प्रकट कर लज्जा और अपमान से उनकी रक्षा की– महाभारत की इस घटना का उल्लेख करके उन्होंने कहा "जहाँ पर नारी का सम्मान नहीं है, वहाँ पर शुभ असंभव है।" पहले दो साल वरदाकान्तजी मुजफ्फरपुर में गंगानारायण मुखोपाध्याय के घर पर ठहरे थे। उनकी (गंगानारायण) माँ और बहन ने उन्हीं से दीक्षा प्राप्त की थी। बाद में दो साल वे अपने प्रिय शिष्य ज्योतिन्द्रमोहन गांगुली के घर ठहरे थे। उस समय एक घटना हुई। हर साल मुजफ्फरपुर में गोस्वामी प्रभु का जन्मोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। दीक्षित–अदीक्षित भक्त एवं जन–साधारण उस उत्सव में महानन्द से योगदान करते थे। एकबार इस उत्सव में ब्रह्मचारीजी के एक शिष्य ने ठाकुर वरदाकान्त के अज्ञात में उनके दैनन्दिन जीवन वृतान्त को लाकर वरदाकान्तजी के शिष्यों के पास पाठ करने लगे। वरदाकान्तजी संवाद सुनते ही तुरन्त वह डायरी लेकर उसमें आग लगा दी और बोले कि इस डायरी में बहुत–सी ऐसी बातें हैं जिसे समझने की भूल से साधारण मनुष्य का अनिष्ट हो सकता है। इस प्रकार डायरी की मर्यादा नष्ट हो सकती है। इस तरह एक भूल के कारण एक अमूल्य संपद् नष्ट हो गई।

मुजफ्फरपुर में अनुष्ठित उत्सव की हर एक कार्यसूची से पता चलता है कि वह अनुष्ठान कितनी निष्ठा के साथ सुसम्पन्न होता था। प्रातःकाल चार बजे मंगला आरती और प्रभाती कीर्तन के बाद, पूजा और ग्रन्थ पाठ समाप्त होने पर ठाकुर वरदाकान्त ब्राह्मणों को लेकर होम में बैठते थे। तब श्रीश्री चंडी का प्रति–श्लोक पाठ करके अग्नि में आहुति दी जाती थी। सुस्वर मंत्र उच्चारण से चारों दिशाएँ गुँज उठती थी और होम की सुगन्ध से चारों ओर सात्विक वातावरण हो जाता था। होम के अंत में बाल्य–भोग और चाय वितरण के बाद ठाकुर दीक्षा–प्रार्थी और भक्तों के साथ बैठकर सत्संग किया करते थे। दोपहर में गुरुभाई सूर्यनारायण राय

(वीरभूम अलिग्राम निवासी) समधुर कीर्तन करते थे जिसके कारण एक मधुर परिवेश की सृष्टि होती थी। इस प्रसंग में गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य परमभक्त शैलजा प्रसाद चट्टोपाध्याय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे हर साल इस अनुष्ठान में उपस्थित होकर गोस्वामी प्रभुजी के बारे में कथा प्रसंग सुनाते थे। इससे सबका हृदय विस्मय और आनन्द से भर जाता था। कीर्तन समाप्त होने पर प्रसाद वितरण के समय भक्तों की जय ध्वनि से चारों दिशाएं गूंज उठती थीं। संध्या–आरती के बाद उस दिन का अनुष्ठान समाप्त होता था। फिर दूसरे दिन नर–नारायण सेवा शुरू हो जाती थी। कभी चिवड़ा, दही, मिठाई आदि या कभी खिचड़ी, सब्जी प्रसाद वितरण किया जाता था। इसके साथ मुजफ्फरपुर का सुप्रसिद्ध अमावट भी रहता था। भोजन के बाद दक्षिणा एक आना या छह पैसा दिया जाता था। दूसरे दिन नर–नारायण सेवा के बाद तीसरे दिन नगर–कीर्तन होता था। उस दिन प्रातःकाल भक्तगण ठाकुर वरदाकान्त को बीच में लेकर नगर–कीर्तन करते थे। मृदंग, करताल एवं शंखध्वनि से चारों दिशाएं मुखरित हो उठती थी। नगर–संकीर्तन में स्त्री–पुरुष एवं भक्तों में महाभाव दिखाई देता था। प्रधान राजपथ परिक्रमा के बाद सब लोग जब घर लौटते थे, उस समय ठाकुर वरदाकांत बरामदे में उठते ही सब लोग उनके श्रीचरण स्पर्श करते–करते अश्रु धारा से अभिषिक्त होते थे। कोई–कोई अचेत भी हो जाता था। इस दृश्य को देखकर सूर्यनारायण राय महाशय पुलकित होकर कहते थे, "गोस्वामी प्रभुजी की कितनी अद्भुत कृपा! सबके साथ प्रभुजी कितना आनन्द कर रहे हैं।" राय महाशय प्रभुजी का आविर्भाव दर्शन करके महाभाव में डूब जाते थे। उनके शरीर में भावावेश के लक्षण अश्रु, कंपन आदि दिखलाई पड़ते थे।

मुजफ्फरपुर के इस उत्सव में गोस्वामी प्रभुजी के भक्तगण विशेष आनन्द प्राप्त करते थे। लेकिन स्थायी रूप से उत्सव का स्थान या आश्रम नहीं रहने से असुविधा होने लगी थी। हर साल उत्सव समाप्त होने पर ठाकुर वरदाकांत धर्मालोचना का आयोजन करते थे। इस आलोचना सभा में सब लोग उत्सव के विषय में विभन्न प्रश्न या अभियोग ठाकुर वरदाकांत के पास निवेदन करते थे। इससे विभिन्न समस्यायों का समाधान हो जाता था। इस तरह सन् 1928 ई० में उत्सव के बाद आलोचना सभा में श्री कुलदानंद ब्रह्मचारीजी के शिष्य श्री योगेश ब्रह्मचारीजी ने सभास्थल में आवेदन किया कि हर साल यह उत्सव एक अस्थायी स्थान में अनुष्ठित होता है। इसके लिए एक स्थायी जगह या आश्रम की जरूरत है। सभा में उपस्थित सब लोगों ने ब्रह्मचारीजी का समर्थन किया। ब्रह्मचारीजी ने अपनी झोली सबके सामने फैलाई। पुरुषों ने अपनी एक महीने की आय देने का अंगीकार लिखकर झोली में डाला एवं महिलाओं ने अपने स्वर्णालंकार खोलकर

झोली में डाल दिए। क्षणभर में स्वर्णालंकार से झोली पूर्ण हो गई। इतने कम समय में आशातीत अर्थ संग्रह होते देख सब लोग गोस्वामी प्रभुजी की जय–जयकार करने लगे।

चंदनपट्टि की हवेली उत्सव के लिए उपयुक्त थी। यह स्थान ठाकुर वरदाकांत जी को अतिप्रिय था। इसलिए उनके शिष्यों एवं भक्तों ने यह हवेली खरीदकर स्थायी आश्रम बनाने का संकल्प लिया। सन् 1933 में इस हवेली में महा–समारोह के साथ उत्सव अनुष्ठित हुआ था। इसके बाद इस हवेली को खरीदने के लिए सारी व्यवस्थाएं हो चुकी। अचानक बिहार में सन् 1934 की 15 जनवरी को भूकंप आया। इसका प्रकोप मुजफ्फरपुर में ज्यादा दिखाई दिया फलस्वरूप चंदनपट्टि की हवेली ध्वंसस्तूप में परिणत हो गई, इसलिए यहाँ आश्रम नहीं बनाया जा सका।

बाँकुड़ा के भादुलाग्राम निवासी रति घोष महाशय ने रांची में ठाकुर वरदाकांत से दीक्षा ग्रहण की थी। शिष्य ने गुरुजी से अपने घर चलने का विशेष अनुरोध किया। ठाकुर वरदाकन्त बंगला सन् 1329 (सन् 1922 ई०) की गर्मी के दिनों में रति घोष के घर आए थे। वहाँ अनेक भक्तों ने उनसे दीक्षा प्राप्त की। बांकुड़ा के आसपास के अंचल में भी ठाकुर जाते थे। इस तरह एकबार शिष्य देवेन्द्रनाथ नियोगी के विशेष आग्रह पर वे सोनामुखी गाँव गए थे। उस समय सोनामुखी के जंगल में अनेक हिंसक प्राणी रहते थे। कभी–कभी ठाकुर इस जंगल में अकेले चले जाते थे और निश्चिन्त होकर भ्रमण करते थे। यहाँ साधक हरनाथ ठाकुर के आश्रम एवं अन्यान्य दर्शनीय स्थानों का परिदर्शन करके वे अत्यन्त तृप्ति अनुभव करते थे। शिष्य एवं भक्तों के आमंत्रण पर कई बार वे विष्णुपुर भी गए थे। वहाँ मदनमोहन मंदिर एवं असंख्य मंदिरों का दर्शन किये। विष्णुपुर के शिल्प की निपुणता देखकर वे मुग्ध हो जाते थे। वे हर मंदिर में प्रणामी देते थे। राजा के महल के दर्शन के समय भी उन्होंने भेंटस्वरूप राशि प्रदान की थी। विष्णुपुर के सुगायक और सुरशिल्पी एवं उनके एकनिष्ठ भक्त दिग्वसन बंद्योपाध्याय के विशेष आमंत्रण पर एकबार उनके घर गए थे। रधुनाथपुर में उनके अनेक शिष्य थे। इन शिष्यों के अनुरोध पर वे एकबार रधुनाथपुर आए थे एवं शिष्य मुन्सिफ अवनीधर चट्टोपाध्याय महाशय के घर पर कई दिन रहे थे। उस समय उनकी अनेक अलौकिक लीलाओं का परिचय मिला था। रधुनाथपुर के प्रसिद्ध वकील लम्बोदर चौधरी एवं आशुतोष घोषाल श्रीश्री ठाकुर का सत्संग लाभ करके कृतार्थ हो गए। ठाकुर कई बार शुशुनिया पहाड़ घूमने गए थे। यह स्थान उन्हें बहुत अच्छा लगा।

बाँकुड़ा के विभिन्न स्थानों पर रहते समय अनेक लोगों ने उनसे साधन प्राप्त

किया था। जब भी ठाकुर बांकुड़ा में आते थे, गुरुदर्शन के लिए शिष्यों की भीड़ लगी रहती। केवल बाँकुड़ा के नहीं, अन्य विभिन्न स्थानों से भी लोग यहाँ आते थे। गोस्वामी प्रभुजी की कृपा से बाँकुड़ा शहर से थोड़ी दूरी पर एक जमीन मिली। वहाँ कुछ पुराना वृक्ष भी था। लोग भूत–प्रेत एवं चोर–डाकू के डर से वहाँ संध्या के बाद नहीं जाया करते थे। पास में रेल लाइन एवं अहिल्याबाई रोड है। यह रास्ता पुरी तक गया है। सब लोगों ने इस स्थान को आश्रम के लिए उपयुक्त समझा। जमीन के मालिक ने आश्रम बनने की बात सुनकर बिना मूल्य जमीन दान कर दी। धीरे–धीरे आश्रम तैयार हो गया। इस जमीन की बंगला सन् 1337 (सन् 1931 ई०) 17 चैत्र को रजिस्ट्री हुई थी।

आश्रम तैयार होने के बाद गोस्वामी प्रभुजी की प्रतिमूर्ति संग्रह की प्रचेष्टा होने लगी। ठाकुर वरदाकांत के पुत्र हेमदाकांत द्वारा गोस्वामी प्रभुजी के आशीर्वाद से एक सर्वांग सुन्दर चित्र की रचना की गई। यह चित्र कोलकाता से फ्रेम करवाकर लाया गया। बंगला सन् 1338 (सन् 1932 ई०) के फाल्गुनी शुक्ला त्रयोदशी तिथि को चित्र की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए सुनिश्चित की गई। उस समय ठाकुर उनके शिष्य वाणीकण्ठ मुखोपाध्याय के घर में ठहरे थे। निर्दिष्ट दिन में दूर–दूर से शिष्यगण मुखोपाध्याय महाशय के घर आए। उस दिन प्रातःकाल सब लोगों ने नगर–संकीर्तन के साथ मुखोपाध्याय महाशय के घर से आश्रम की ओर यात्रा की। आश्रम में गोस्वामी प्रभुजी का सिंहासन सजाया गया था। उस सिंहासन में प्रभुजी के चित्र की स्थापना की गई। उसके ऊपरी भाग में 'नामब्रह्म' स्थापित हुआ। सिंहासन के निम्नभाग में गोस्वामी प्रभुजी एवं माता ठाकुरानी योगमाया देवी की प्रतिकृति नित्य पूजा के लिए स्थापित की गई। इस तरह ठाकुर वरदाकांतजी के आश्रम प्रतिष्ठा का स्वप्न साकार हुआ। यहाँ उल्लेखनीय है कि फाल्गुनी शुक्ला त्रयोदशी तिथि ठाकुर वरदाकान्तजी की आविर्भाव तिथि है। ठाकुर वरदाकान्तजी के आविर्भाव के 70 साल बाद उसी दिन आश्रम की प्रतिष्ठा हुई। आश्रम का नाम दिया गया 'श्रीश्री विजय योगाश्रम'।

बाँकुड़ा आने पर ठाकुर इस आश्रम में रहते थे। भक्तगण यहाँ आकर ठाकुर के सान्निध्य में सत्संग लाभ करते थे। ठाकुर ने साधन–भजन के लिए आश्रम के तालाब के उत्तर पश्चिम कोने में एक निर्जन साधन कुटीर निर्माण कराया। वे इस कुटीर में साधन–भजन में मग्न रहते थे और सामने धूनी जलती थी। कुछ दिन बाद माँ ठाकुरानी भी इस आश्रम में रहने लगी। दिनभर वे दोनों साधन कुटीर में साधन करते थे। उनकी सेवा के लिए गोष्ठबिहारी सिंह महाशय सर्वदा तत्पर रहते थे। सिंह महाशय श्रीश्री योगजीवन गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य थे। शिशु प्रकृति का ऐसा सरल वैष्णव बहुत कम मिलता है।

आश्रम के तालाब के पास के बड़े–बड़े वृक्ष ठाकुर को अत्यन्त प्रिय थे। परेशबाबू नामक एक भक्त ने वृक्ष के नीचे पक्की वेदी बनवा दी थी। ठाकुर प्रायः संध्या के समय उस वेदी पर बैठते थे। उसका नाम परेश कुंज रखा गया। यहाँ दो–एक भक्तों के साथ ठाकुर रहते थे, इसलिए चोरी–डकैती आदि का डर होना स्वाभाविक था। कई बार आश्रम से बर्तन एवं घण्टा आदि चोरी हुए। आश्रम में हिंसक एवं विषधर प्राणी भी आते थे लेकिन ठाकुर निश्चिन्त होकर चोर, डाकू एवं हिंसक प्राणियों के बीच आश्रम में रहते थे। पहले ठाकुर केवल उत्सव के समय आश्रम आते थे। देखभाल के अभाव में आश्रम का सौन्दर्य नष्ट होने लगा, तब आश्रम की उन्नति के लिए वहाँ सर्वदा वास करना जरूरी सोचकर ठाकुर स्थायी रूप से आश्रम में रहने लगे एवं आश्रम की उन्नति के लिए तत्पर हुए। इसके लिए अर्थ का प्रयोजन था लेकिन दान के अर्थ का परिमाण उतना नहीं था। इसलिए कभी–कभी ठाकुर स्वयं शिष्यों को लेकर काम करने लगते थे। उस समय उनकी काफी उम्र भी हो चुकी थी। इस तरह आश्रम में बड़ा मन्दिर, नाट्य–मन्दिर, जगमोहन, अन्दरमहल, बर्हिमहल का दालान, तीन पक्का घाट वाला तालाब, पक्का अँगन, कुँआ, नयनाभिराम सिंहद्वार बनाया गया। तालाबों के पास केला, सब्जी एवं फूलों का बगीचा बनाया गया। आम, कटहल आदि फलदार पौधे रोपे गए।

गोस्वामी प्रभुजी की मूर्ति के नीचे वेदी युक्त आसन स्थान बनाया गया। ठाकुर वरदाकांत के शिष्यगणों ने उस आसन पर ठाकुर वरदाकान्तजी के चित्र की स्थापना की प्रबल इच्छा व्यक्त करके ठाकुर की सम्मति प्रार्थना की। ठाकुर ने पहले तो सम्मति नहीं दी पर बाद में काफी तर्क–वितर्क के बाद शिष्यों की आन्तरिक प्रार्थना को देखकर ठाकुर को सम्मति देनी ही पड़ी। सम्मति मिलते ही शिष्यों ने गोस्वामी प्रभुजी की जयकार कर परमभक्त गोपीरंजन मुखोपाध्याय को पुजारी बनाकर ठाकुर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। गोस्वामी प्रभुजी के सिंहासन के नीचे जहाँ ठाकुर की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई उसके सम्मुख भाग में पत्थर के ऊपर ठाकुर ने स्वयं लिख दिया– पदतलआश्रित दीनः! "देहि पदपल्लवमुदारम्"। बाद में उनके शिष्यों ने ठाकुर के स्वहस्त लेख को पत्थर पर अंकित कर स्थापित किया।

ठाकुर वरदाकांत ने गोस्वामी प्रभुजी की वन्दना में एक वन्दनाश्लोक की रचना की थी। उस श्लोक को मंदिर प्रतिष्ठा के दिन प्रवेश द्वार के ऊपर श्रीश्री नामब्रह्म के नीचे मंदिर में अंकित किया गया। यह वन्दनाश्लोक इस प्रकार है –

जयतु विजयकृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अद्वैतवंशतिलकः योगमायावल्लभः।।

बंगे शांतिपुरे जन्म क्षेत्रे यस्य समाधिः।
सद्गुरो त्वमहं वन्दे त्राहि शरणागतम्।।

— श्री वरदाकांत बन्द्योपाध्याय (ढाका)

मंदिर प्रतिष्ठा, फाल्गुनी शुक्ला त्रयोदशी, 1342 (सन् 1936 ई०)

उन्होंने माता ठाकुरानी श्रीश्री योगमाया देवी की जयवन्दना करते हुए एक मातृ–स्तोत्र की रचना भी की जो इस प्रकार है :—

मातृस्तोत्र

(बागेश्री— आड़ाठेका)

जय जय जगन्माता योगमाया ठाकुराणी,
प्रेमभक्तिप्रदा देवी जय कृष्णमोहिनी।
1. तुमि ब्रजे कात्त्यायनी, ब्रजांगनार मनमोहिनी,
आद्यशक्ति राधा तुमि, अष्टसखीर शिरोमणि।
2. तुमि माँ विन्ध्यावासिनी, अष्टभुजा नारायणी,
सुखशांति–प्रदायिनी, तुमि माँ विश्वजननी।
3. तुमि कुलकुण्डलिनी, शिवशक्तिस्वरूपिनी,
मूलाधारे सहस्रारे, तुमि माँ नृत्यकामिनी।
4. जय माँ सर्वमंगला त्रि–तापविनाशिनी,
जय श्यामा ब्रह्ममयी, जय विजयदायिनी।

श्रीश्री विजययोगाश्रम प्रतिष्ठा के समय बड़ा महोत्सव अनुष्ठित हुआ था। इसके स्मरण में हर साल उस विशेष तिथि में यहाँ महोत्सव अनुष्ठित होता है। श्रीश्री विजययोगाश्रम ठाकुर का प्राणस्वरूप था। उन्होंने आश्रम में साधन–भजन के बारे में एक कार्यसूची बनाई। फाल्गुनी शुक्ला त्रयोदशी तिथि की विशेष मर्यादा है। यह श्रीश्री माधवेन्द्रपुरी की जन्मतिथि है। ठाकुर वरदाकांतजी की आविर्भाव तिथि एवं आश्रम मंदिर की प्रतिष्ठा तिथि इस तरह की तीनों तिथियों का एकत्र समावेश हुआ है। श्रीश्री विजययोगाश्रम के इतिहास में यह तिथि विशेष महत्वपूर्ण है। प्रतिवर्ष इस तिथि में ठाकुर के शिष्य–शिष्यागण ढाका, पुरी, कोलकाता, नवद्वीप, पटना, गया, मुजफ्फरपुर, कानपुर, मथुरा, वृंदावन, पंजाब आदि स्थानों से यहाँ आते थे। सबसे मिलकर उन्हें असीम आनन्द की अनुभूति होती थी। वे कहते थे, **"तुम लोगों के हृदय में मैंने अपने गुरुजी का आसन प्रतिष्ठित किया है।**

तुम सबको मैं समान प्यार करता हूँ। तुम लोगों में कोई छोटा–बड़ा नहीं है। गोसाँईजी उनके पुत्रों के अपेक्षा पौत्रों को ज्यादा स्नेह करते हैं।" ठाकुर अपने पुत्र–कन्या की अपेक्षा शिष्यों को ज्यादा प्यार करते थे एवं उन लोगों के मंगल चिंतन में मग्न रहते थे। एकबार उन्होंने कहा था, **"मेरा हृदय तुम लोगों के दर्द से भरा है। तुम लोगों के लिए प्रार्थना करता हूँ, तुम लोगों के लिए नाम जप करता हूँ, गुरु होना कोई साधारण बात नहीं है। सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार बेंत लेकर पीछे खड़े हैं।"**

झरिया में ठाकुर के अनेक शिष्य रहते थे। उन लोगों के अनुरोध पर तथा उन लोगों को साधन–भजन में उत्साह प्रदान करने के लिए ठाकुर चार बार झरिया गए थे। भक्तगण विभिन्न समस्याओं को ठाकुर के श्री चरण में निवेदन करते थे एवं ठाकुर उन लोगों की हर समस्या का समाधान करके शांति प्रदान करते थे। ठाकुर कहते थे, "प्रत्येक मनुष्य संस्कार के अधीन है– कभी चेतन, कभी अचेतन मन में"। ठाकुर सब प्रचलित कुसंस्कारों से पूर्णतः मुक्त थे। वे मघा, त्र्याहस्पर्श, कालबेला, अगस्त्य, छींकना, छिपकिली आदि नहीं मानते थे या यात्रादि में ये सब संस्कार भी नहीं मानते थे। वे कहते थे, **"हम लोग सद्गुरु आश्रित हैं। हम लोगों पर ग्रहों–नक्षत्रों का कोई अधिकार नहीं है। सद्गुरु आश्रितों के ऊपर छींक, छिपकिली, ग्रह–नक्षत्र, यात्रा–अयात्रा का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। मारने से गुरुजी ही मारेगें और बचाने से गुरुजी ही बचाएंगे। पार्थिव बाधा हम लोगों को कोई हानि नहीं पहुँचा सकती।"** वे गुरुजी को स्मरण करके "जयगुरु जयगुरु" कहते–कहते काम में लग जाते थे। गुरु निर्भरता की ऐसी असीम शक्ति उन्होंने प्राप्त की थी।

तीर्थ भ्रमण के समय एवं गोस्वामी प्रभुजी के उत्सव के लिए पुरी आते–जाते समय कोलकाता आने पर वे उनके छोटे भाई ब्रह्मचारी के पास ही ठहरते थे। ब्रह्मचारीजी की अनुपस्थिति में उनके शिष्यों के घर पर ठहरते थे। वे कभी–कभी सुकिया स्ट्रीट में पालवाड़ी या कभी–कभी कर्नवालिश स्ट्रीट में श्रीमानी के घर पर ठहरते थे। यहाँ रहते समय उन्होंने कालीघाट, ठनठनिया, दक्षिणेश्वर, बेलुड़, तारकेश्वर एवं जैनों के पारसनाथ मंदिर के दर्शन किए। राय साहब, क्षितीशचन्द्र बन्द्योपाध्याय ब्रह्मचारीजी के शिष्य थे लेकिन ठाकुर वरदाकांतजी के प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। ठाकुर भी उनको अपने संतानों से ज्यादा प्यार करते थे। सन् 1347 (सन् 1940 ई०) ज्येष्ठ मास में ठाकुर अंतिम बार कोलकाता आए एवं बालिगंज के मनोहर पुकुर रोड में राय साहब के घर ठहरे थे। यहाँ रहने में उनको बहुत आनन्द मिलता था। जीवन के अंतिम कुछ दिन ठाकुर ने अपने प्रिय क्षितीशचन्द्र के साथ बिताए थे।

सन् 1346 (सन् 1939 ई०) में बाँकुड़ा के विजय योगाश्रम का वार्षिक उत्सव, ठाकुर का अंतिम आनन्दोत्सव था। उस समय उन्होंने अपने प्रिय शिष्यों से कहा था, "आश्रम का कार्य संपूर्ण हो गया, मेरा भी कार्य समाप्त हो गया। तुम सब इस उत्सव में योगदान करना। मैं तो और ज्यादा दिन नहीं रहूँगा। अगले साल तुम लोगों के साथ आनन्द करूँगा, ऐसी आशा नहीं रखना। मेरा समय समाप्त होने वाला है।" अन्य प्रान्त के शिष्यों को उन्होंने पत्र में लिखा था– "तुम लोग इस वर्ष उत्सव में योगदान करो, यह मेरी इच्छा है। मैंने तुम लोगों के आश्रम का कार्य संपूर्ण कर दिया। इस बार आकर देख जाओ। मेरा कार्य भी समाप्त हो गया है। मेरा अंतिम समय भी पास आ गया है। तुम लोगों के साथ यह उत्सव मेरा अंतिम उत्सव है। ऐसा अवसर और नहीं मिलेगा। नहीं आने से बाद में अनुताप करोगे।"

उस बार अनेक शिष्यों ने उत्सव में योगदान किया एवं गुरुजी के श्रीचरणों के दर्शन से वे कृतार्थ हुए। ठाकुर ने भी सबको जी भर के आशीर्वाद दिया। उत्सव समाप्ति के बाद ठाकुर मंदिर में जाकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से गोस्वामी प्रभुजी के विग्रह की ओर काफी देर तक देखते रहे। दोनों में क्या बातचीत हुई, किसी को पता नहीं चला। अंत में 'जयगुरु' का घोष कर और फिर हाथ जोड़कर कहने लगे, "मेरा कार्य समाप्त हो गया। ठाकुर अब तुम्हारे चरणों में स्थान दो।" उपस्थित शिष्यों ने व्याकुल होकर ठाकुर से पूछा कि वे ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं ? ठाकुर ने उत्तर दिया, "क्या मैं अमर हूँ ? एकदिन तो जाना ही पड़ेगा। मेरा उद्देश्य एवं कार्य पूर्ण हो गया है। यही तो संसार से जाने का श्रेष्ठ समय है। तुम लोग मेरी विदाई करो।" फिर उन्होंने कहा, "तुम लोगों ने कभी भी मुझसे कोई प्रश्न नहीं पूछा; धर्म–साधना में कितनी समस्या है, जीवन की कितनी समस्या है, लेकिन तुम लोगों ने कभी भी मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया। जो कुछ पूछना है अब पूछ लो। इसके बाद किसके पास जाओगे ?"

उसके उत्तर में उनके प्रियभक्त हेमेन्द्र पालित ने कहा कि ठाकुर स्वयं उन लोगों के समाधान का विषय हैं। उनके पास आते ही सब प्रश्नों का समाधान हो जाता है। इसलिए उन लोगों का कोई प्रश्न नहीं है। इसके बाद ठाकुर महिलाओं के पास विदा लेने गए एवं कहने लगे, "लड़कों से विदा ले ली अब तुम लोग भी मुझे विदा करो।" ठाकुर की बात सुनकर सब विलाप करने लगे।

उसके बाद ठाकुर जलाशय के पक्के घाट के पास कुछ देर तक खड़े रहे। फिर आश्रम को घूमकर देखते समय तरूलताओं को स्नेह करने लगे। इस तरह आश्रम–परिक्रमा करके आश्रम से विदा लेकर वे मोटर में रवाना हुए। उस समय ऐसा लगा मानो आश्रम का प्राण चला गया। बाँकुड़ा आश्रम से विदा लेकर वे कोलकाता आए। कोलकाता आने पर ठाकुर अपने प्रिय भक्त क्षितीशचन्द्र के पास

ही ठहरते थे, लेकिन इस बार कन्या कोलकाता में थी इसलिए ठाकुर उनके पास ठहरे। ठाकुर का मन तो क्षितीशचन्द्र के पास ही था, इसलिए एकदिन कन्या के घर रहकर ठाकुर क्षितीशचन्द्र के घर में चले आए। दौहित्र की शादी होने वाली थी, इसलिए उनकी पत्नी कन्या के पास रह गई एवं शादी के बाद ढाका चली गई। ठाकुर बोले कि वे और कुछ दिन बाद ढाका जायेंगे।

उस बार कोलकाता में ठाकुर का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। एकबार उनको श्रीरामपुर जाना पड़ा। वहाँ अनेक लोगों ने दीक्षा प्राप्त की। कोलकाता में भी उन्होंने अनेक लोगों को दीक्षा प्रदान की। दीक्षा की सर्वशेष बैठक में अनेक नर–नारियों को दीक्षा प्रदान करने के बाद उन्होंने हिरण्मयीदेवी एवं हेमप्रभादेवी से कहा, "तुम लोगों के लिए ही अपेक्षा कर रहा था, अब मैं निश्चिन्त हूँ।" दीक्षा प्रदान करने के बाद ठाकुर ब्रंकाइटिस के कारण अस्वस्थ हो गए। यह रोग बढ़ते–बढ़ते निमोनिया एवं डबल निमोनिया में परिणत हुआ। क्षितीशचन्द्र एक नामी होमियोपैथ चिकित्सक थे। उनकी प्राणप्रण चेष्टा से भी रोग कम नहीं हुआ। तब अन्यान्य चिकित्सकों को बुलाया गया। सबके परामर्श के अनुसार कविराजी घरेलू एवं एलोपैथिक चिकित्सा भी शुरू हुई, लेकिन रोग क्रमशः भयावह होता गया। ऑक्सीजन प्रयोग से उनका श्वास–कष्ट थोड़ा कम होता था लेकिन रोग बढ़ता ही गया। उनके स्वजन, शिष्य–शिष्या सबको संवाद भेजा गया। प्रतिदिन अनेक पत्र तथा तार आने लगे, ठाकुर के निरामय का संवाद पाने के लिए। इसी बीच एकदिन उनके प्रिय गुरुभाई एवं परमभक्त संन्यासी श्री किरणचांद दरवेशजी आए। उनको देखते ही ठाकुर उस रुग्णावस्था में भी अचानक बैठ गए एवं संपूर्ण स्वस्थ मनुष्य की तरह हँस–हँसकर बात की। उस समय कमरे में सबका प्रवेश निषेध कर दिया गया था। उस समय उन्होंने एक घंटा बातें की। उन लोगों की बातें गुप्त रही। दरवेशजी ने जाते समय कहा, "उनका यह रोग केवल उपलक्ष मात्र है, देखते नहीं, अभी कितने स्वस्थ लग रहे हैं। महापुरुषों का रोग उनके इच्छाधीन होता है। चिन्ता मत करो, कुछ हानि नहीं होगी।" दरवेशजी ने जाते समय ठाकुर से कहा, "आप इच्छा करने से और कुछ दिन रह सकते हैं।" ठाकुर ने हँसते हुए उत्तर दिया, "और क्यों ? मेरी इच्छा से कुछ नहीं होगा, सब उनकी इच्छा। तुम तो सब जानते हो।" ठाकुर की पत्नी एवं पुत्र उस समय वहाँ पहुँच गए थे।

कुछ वैषयिक कामों के बारे में बताते समय ठाकुर ने आश्रम के कुँए को यथाशीघ्र बंधाकर उसे व्यवहार योग्य बनाने को कहा। बाँकुड़ा के वाणीकण्ठ मुखोपाध्याय महाशय के साथ आश्रम के बारे में अनेक बातें की एवं आश्रम की आर्थिक अवस्था के बारे में कहकर बैंक की पुस्तक एवं आश्रम का पैसा सब उनको

देकर कहा – "प्रतिदिन आश्रम में कम–से–कम चार व्यक्तियों के आहार एवं स्थायी वासस्थान की व्यवस्था करना। आश्रम के लिए और कुछ धान–जमीन खरीदना।"

सब काम समाप्त होने पर उन्होंने गोस्वामी प्रभुजी की लीला भूमि ढाका गेण्डारिया जाने का विशेष आग्रह किया। यह सुनकर सब लोगों ने कहा इस रुग्ण–दशा में वहाँ जाना ठीक नहीं होगा। यह बात सुनकर ठाकुर तीन–चार दिनों में संपूर्ण स्वस्थ हो गए। चिकित्सकों ने परीक्षा की एवं उनको संपूर्ण स्वस्थ देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। डाक्टरों ने कहा कि ठाकुर 98 प्रतिशत स्वस्थ हो गए हैं। चिकित्सकों की बातों पर आश्वस्त होकर गोसाँईजी का नाम लेकर शिष्यों ने ठाकुर वरदाकान्तजी के ढाका जाने की आवश्यक व्यवस्था की। स्टीमर नारायणगंज में आने पर ठाकुर स्वयं स्टीमर से उतरकर मोटर में बैठे। रास्ते में अपने परिचित स्थानों को देखकर वे आनन्दित हो रहे थे। इस तरह प्रफुल्ल मन से वे ढाका के घर में पहुँचे एवं विश्राम करने लगे। उनके मुखमण्डल पर तृप्ति एवं प्रशान्ति का भाव था। चिकित्सकों ने परीक्षा करके कहा कि उनकी उम्र के हिसाब से उनका स्वास्थ्य ठीक है लेकिन महापुरुषों की बात स्वतंत्र है। साधना की उच्चावस्था में जीवन–मृत्यु उनके वश में होती है। चिकित्साशास्त्र में इसका विवरण संभव नहीं है। ठाकुर के भाव देखकर उनके कुटुम्ब एवं मित्रगण निश्चिन्त हुए। तीन दिन ठाकुर ने स्वाभाविक आहार ग्रहण किया। चौथे दिन 10 वीं श्रावण को ठाकुर की तृतीय पुत्रवधू ने उनके पसन्द का भोजन बनाया। ठाकुर इस पुत्रवधू के हाथ का बना हुआ भोजन बहुत पसन्द करते थे। भोजन आने पर ठाकुर उठकर बैठे। उनके पास उनकी पत्नी बैठी थी। मुरलीधर खड़ा होकर हवा कर रहा था एवं पुत्र हेमदाकांत पास में ही बैठा था। ठाकुर ने भोजन के सामने पाँच मिनट तक मस्तक नीचा करके प्रणाम किया। मस्तक उठाने पर उनकी पत्नी ने पूछा कि इतनी देर तक इस तरह पड़े रहने का क्या कारण है ? आपका शरीर तो ठीक है ? ठाकुर ने उत्तर दिया – "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, वे आए थे! देखा नहीं!! वे आए थे!!" इसके बाद ठाकुर भोजन करने लगे। अचानक "मेरे सिर में क्या हो रहा है– सिर गिर पड़ा।" ऐसा कहते–कहते पत्नी के गोद में उनका सिर लुढक गया। पुत्र हेमदाकांत ने जल्दी आकर ठाकुर को पकड़ा। लेकिन ठाकुर इहलोक में नहीं रहे, वे अनंत धाम की महायात्रा पर चल पड़े थे। 80 वर्ष की उम्र में बंगला सन् 1347,व 10 वीं श्रावण, 1940 ई०, 26 जुलाई को दोपहर 12 बजकर 25 मिनट पर उनका महाप्रयाण हो गया।

ठाकुर के अनन्तधाम प्रस्थान का संवाद बहुत जल्दी चारों ओर फैल गया। उनके भक्तों एवं शिष्यों ने आकर उनको अंतिम प्रणाम किया। शाम को उनकी

इच्छानुसार "हरिहरये नमः कृष्ण यादवाय नमः" – कीर्तन के साथ श्यामपुर महाश्मशान की ओर शवयात्रा अग्रसर हुई। गोस्वामी प्रभु के साधन–कुटीर के सामने देह रखकर उनके माथे में साधन–स्थल की मिट्टी लगा दी गई एवं माँ ठाकुरानी की मंदिर की प्रदक्षिणा की गई। महाश्मशान में ले जाकर देह में अग्नि संयोग करते ही चोरों ओर ज्योति फैल गई। उनके देहावशेष अस्थि एवं भस्म बाँकुड़ा आश्रम में उनके प्राणदेवता गोस्वामी प्रभुजी के चरणतल में समाहित किया गया।

ठाकुर वरदाकांत जी ने विभिन्न समय उनके आश्रितों के कल्याण के लिए अनेक मूल्यवान उपदेश दिए थे। उनमें से निम्नलिखित उक्ति मननीय है –

"तुम लोगों की मुक्ति नहीं होने तक मेरी भी मुक्ति नहीं है। तुम सबको लक्ष्य पर पहुँचाकर मैं मुक्त होऊँगा। नाम करो, नाम द्वारा कर्मक्षय करो, तब ही तुम लोग शीघ्र अग्रसर हो सकोगे एवं मेरा दुर्भोग भी कम होगा। इस तरह मेरी सहायता करो– यही प्राकृत गुरु सेवा है। नहीं तो तुम लोगों का दुर्भोग होने पर मेरा भी दुर्भोग होगा। तुम लोगों को कष्ट होने पर मुझे भी कष्ट होगा।"

ठाकुर के साथ 'श्रीश्री विजयमंगल' ग्रंथ का गहरा संबंध है। इस ग्रंथ की रचना के बारे में विदित है कि गोस्वामी प्रभुजी ने गेण्डारिया आश्रम में कुछ दिन मौनव्रत का पालन किया था। उस समय प्रभुजी प्रतिदिन शाम को एक आम वृक्ष के नीचे बैठते थे, जिससे मधु गिरता था। भक्त एवं शिष्य उनके पास अनेक समय प्रश्न लेकर आते थे। ठाकुर वरदाकांत प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजी की श्रीचरण वन्दना के लिए आश्रम जाते थे एवं कुछ कागज एवं कलम प्रभुजी की वेदी के पास रख देते थे। भक्तों के प्रश्नों का उत्तर गोसाँईजी उन कागजों में लिखकर देते थे। ठाकुर वरदाकांत उन उत्तर लिखे हुए कागजों को संध्या के बाद प्रतिदिन घर ले आते थे। इस तरह एक साल तक प्रतिदिन कागजों को उन्होंने जमा किया था। एक गैरिक वस्त्र में बांधकर इन सब कागजों को उन्होंने रखा था। बुढ़ापा आने पर उन्होंने जन–साधारण के कल्याण के लिए उनको प्रकाशित करने की बात सोची। 1332 सन् (सन् 1925 ई०) में यह 'श्रीश्री विजयमंगल' नाम से प्रथम प्रकाशित हुआ। इस तरह और एक ग्रंथ रचित हुआ था। इसका नाम है 'त्रिधारा गंगा'। 'त्रिधारा गंगा' की प्रथम धारा में शिष्यों के प्रति ठाकुर वरदाकांतजी का अमृत उपदेश है। द्वितीय धारा 'उत्तरपक्ष' के बारे में लेखक ने स्वयं कहा है– "दयाल ठाकुर वरदाकान्तजी के आश्रित गण पत्र में ठाकुर से विभिन्न प्रश्न करते थे। ठाकुर भी उनका उत्तर पत्र द्वारा दिया करते थे। इस तरह के कुछ प्रश्न उत्तर का संग्रह इसमें प्रकाशित किया गया है।

नमूनास्वरूप यहाँ दो–एक प्रश्नोत्तर दिए जा रहें हैं :

प्र०– श्वास–प्रश्वास में 'नाम' का अभ्यास क्यों नहीं होता है ?

उ०–. यह सहज नहीं है। बार–बार चेष्टा करनी पड़ेगी।

प्र०– आसक्ति कैसे जाएगी ?

उ०– नाम–जप से।

तृतीय धारा 'सुवर्ण पत्रावली' के बारे में लेखक ने कहा है – "श्रीश्री ठाकुर के गुरुभ्राताओं के पास ठाकुर के लिखे गए कुछ पत्रों का संकलन इसमें है।"

यहाँ 'सुवर्ण पत्राली' के दो पत्रों का उल्लेख किया गया है। ठाकुर ने यह पत्र उनके गुरुभ्राता डा० नवीनचन्द्र घोष को लिखा था –

श्रीश्री गुरु

गेण्डारिया, ढाका

पहला कार्तिक 1313 बंग्लाब्द (सन् 1906 ई०)

परम श्रद्धास्पदेषु,

भैया, क्या बड़े भाई छोटे भाई को ऐसे पत्र लिखते हैं ? आपने मुझे एक गाना लिखकर भेजने के लिए अनुरोध किया है। अनुरोध क्यों ? आदेश होने से सही होता। आपके लिए दूसरे पन्ने में मूल संस्कृत श्लोक, जिसे अवलंबन करके वह गाना रचित हुआ एवं गाना लिखकर भेज रहा हूँ। गुरुजी ने हमारे लिए एक प्रणाम मंत्र बोला था, उसे भी लिखकर भेज रहा हूँ। यह मंत्र अति अपूर्व है। यह मंत्र किसी भी अवस्था में उच्चारित होने से अवश्य श्रीगोविन्द पादपद्म तक पहुँचेगा। यह उनके श्रीमुख से कहा गया है। श्री गुरुजी को प्रणाम करने के लिए और एक मंत्र हैं। वह इस प्रकार है :–

"जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदर शरीरिणे।
कमण्डलु निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।

आप इतनी जल्दी चले गए मुझे कष्ट हुआ। पुत्र के लिए इतना आकर्षण क्यों ? हम लोग क्या छोटे भाई नहीं हैं ? घर पर सब तो मंगल है ? सबको मेरा अभिवादन देंगे एवं स्वयं ग्रहण करिएगा।

आपने नरेन भाई को समाधिमन्दिर के लिए दो सौ रुपये भेजे हैं। शीघ्र समाधिमंदिर का कार्य शुरू होगा। नानी अच्छी हैं। तूफान के बाद विराम, भोग के बाद शांति, ठाकुर ही दण्ड देते हैं, ठाकुर ही हम लोगों के लिए रोते हैं एवं हम

लोगों को सहन करने की क्षमता देते हैं। कृपा रखिएगा।

(इसके बाद 'ॐ स्वर्णाभजटाजुटपरिशोभितं' आदि गुरु–स्तोत्र एवं उसे अवलंबन करके रचित 'अपरूप श्रीगुरुरूप' भजन)

हम लोगों के लिए श्रीगुरुनिर्दिष्ट नमस्कार मंत्र जिसे किसी भी अवस्था में उच्चारण करने से श्री गोविन्द–चरण में पहुँचता है।

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

इति पद्मपुराण में श्री कृष्ण देहत्याग के समय देवगणकृत स्तोत्रम्।

शारदा पुरी का मैनेजर नियुक्त हुआ है।

स्नेहप्रार्थी

श्री वरदाकांत बंद्योपाध्याय

द्वितीय पत्र भी डाक्टर नवीनचन्द्र घोष को लिखा हुआ है–

श्रीश्री गुरु

प्रीति अभिवादन ग्रहण कीजिए।

दादा महाशय, कुछ दिन पहले ही आपका पत्र मिला। विभिन्न कारण से उत्तर नहीं दे सका। ब्रह्मचारी भाई का पता जानना चाहते हैं, वह है – "217 सोनारपुरा, बंगाली टोला, काशी", प्रायः एक महीना पहले कुलदा यहाँ आया था फिर काशी लौट गया। हमारे साधन के बारे में गेण्डारिया में मैं क्या बोला था वह मुझे याद नहीं है – लेकिन ठाकुर ने कहा है– "इस साधन के लिए विशेष अधिकार चाहिए। सूर्योपासना तीन जन्म, गणेश–उपासना तीन जन्म, शिव उपासना तीन जन्म, शक्ति उपासना सौ जन्म करने के बाद, विष्णु उपासना तीन जन्म करने के पश्चात् यह अधिकार प्राप्त होता है। इसके पहले अनेक जन्म अतिवाहित होता है। इसलिए सनातन गोस्वामी ने कहा है –

"भ्रमिते भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरुकृष्ण–प्रसादे मिले भक्तिलता बीज।।"

अर्थ :– विभिन्न योनियों में भ्रमण करते–करते कोई भाग्यवान जीव को गुरु कृष्ण की कृपा से भक्तिलता बीज (शक्ति पूर्ण मंत्र) प्राप्त होता है।

यह साधन सर्वप्रथम नारायण ने ब्रह्मा को, फिर ब्रह्मा ने नारद को दिया था। इसके बाद गुरुप्रणाली से चला आ रहा है। माध्वेन्द्रपुरी की इस शक्ति को महाप्रभु

ने साढ़े तीन जन को दिया था – स्वरूप दामोदर, रामानन्द, शिखिमाईति एवं उनकी बहन माधवी को।"

योगजीवन से उन्होंने कहा, "जिन लोगों को यह साधन मिला है वे सब महाप्रभु के समय के लोग हैं। इस शक्ति की क्रिया शुरू होने से संसार में लोग प्रायः अकर्मण्य हो जाते हैं। जिन्होंने यह साधन प्राप्त किया है, उनके साथ अन्य धर्मोपासकों का कोई विरोध नहीं है। यह साधन जिन्होंने प्राप्त किया है उन सब लोगों को शांति मिलेगी– तुम सभी शान्ति पाओगे लेकिन कुछ समय लगेगा। बाद में सिर पटकने पर भी यह साधन किसी को नहीं मिलेगा।" आपके भीतर सब कुछ प्रकाशित है तथापि जो मेरे पास से यह सब गुरु–उपदेश जानना चाहते हैं, यह केवल बातचीत द्वारा गुरुदेव के उपदेशों को मेरे स्मृति पट में जगाने के लिए आपकी इस कृपा के लिए आपको धन्यवाद न देकर रह नहीं सकते। आपका यह स्नेह ऋण अपरीशोधनीय हैं।

वे तो आपके निकट है इस विषय में कोई संदेह नहीं है।

अधम् वरदाकान्त शर्मा

पत्रों के माध्यम से ठाकुर वरदाकान्तजी का आध्यात्मिक जीवन कुछ प्रकाशित हुआ है। गोस्वामी प्रभु के शिष्यों में जो दिक्पाल हुए उन लोगों में अनन्यतम् थे ठाकुर वरदाकान्तजी। इस छोटी–सी जगह में उनके साधन–जीवन के बारे में विस्तृत रूप में व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

एकबार आश्रम में भोग–निवेदन के समय एक अविस्मरणीय घटना हुई। उस दिन यथा समय मंदिर में भोगराग देकर दरवाजा बन्द करके भोग–आरती का भजन शुरू किया गया। ठाकुर वरदाकान्तजी कुछ दूर जाकर गीत गा रहे थे। गाना चलते–चलते "अद्वैतभवन में और आनन्द की सीमा नही" इस पद गान के समय वरदाकान्तजी भावमग्न हो इसी पद को बहुत ही उत्साहपूर्वक बार–बार गाने लगे। यथा समय दरवाजा खोलकर देखा गया कि गोस्वामी प्रभुजी के हाथ के चिन्ह सभी वस्तुओं पर थे और सुन्दर पदचिह्न दही के पास था। गोस्वामी प्रभु बालगोपाल के रूप में दही ग्रहण करते समय दही के पास सुन्दर पदचिह्न अंकित कर गए।

ठाकुर वरदाकान्तजी और आश्रम के सभी लोग यह दृश्य देखकर आनन्द से विभोर हो गए थे और उस दिन सबके अंदर अपूर्व भाव का आवेश हुआ। यह अनिर्वचनीय दृश्य बहुत दिनों तक सबके मन में जागृत रहा। प्रसाद की सुगंध अतुलनीय थी और स्वाद भी अभूतपूर्व था। इसलिए ठाकुर वरदाकान्तजी ने आज्ञा दी कि सबको वह अमूल्य प्रसाद दिया जाए और जो अनुपस्थित थे, उनके लिए

कुछ प्रसाद रखा जाए।

बाँकुड़ा जिला के मालियाड़ा निवासी चट्टोपाध्याय परिवार पर गोस्वामी प्रभु की कृपादृष्टि शुरू से ही थी। इस परिवार के शैलजा प्रसाद चट्टोपाध्याय जब बिहार के मुजफ्फरपुर में रहते थे, उस समय गोस्वामी प्रभुजी की कृपा से बिहार में सन् 1934 ई० के भूकंप से उनको सपरिवार रक्षा मिली। गोस्वामी प्रभु के शिष्य शैलजाप्रसाद चट्टोपाध्याय महाशय के ज्येष्ठ पुत्र श्री अवनीधर चट्टोपाध्याय को ठाकुर वरदाकान्तजी ने साधन प्रदान किया था। घटना इस प्रकार थी–

गोस्वामी प्रभुजी के जन्मोत्सव में ठाकुर वरदाकांतजी उत्सव शुरू होने के काफी दिन पहले मुजफ्फरपुर पहुँच जाते थे। मुजफ्फरपुर में अनेक गोसाँईगण एवं गोसाँई भक्त रहते थे। उन लोगों के अनुरोध पर ठाकुर वरदाकांतजी ने वहाँ जन्मोत्सव की व्यवस्था की थी। एक मकान किराए पर लेकर वहाँ उत्सव होता था। उत्सव शुरू होने के कुछ दिन पहले से ही वहाँ प्रतिदिन होम, पूजा, पाठ, प्रसाद वितरण आदि चलता रहता था। सन् 1924 ई० से यह उत्सव शुरू हुआ था। इस उत्सव से आकृष्ट होकर गोसाँईजी के शिष्यगण एवं अन्य भक्तगण आनन्द के साथ योगदान करते थे। शैलजाप्रसाद के ज्येष्ठ पुत्र अवनीधर मुन्सिफ थे एवं उस समय पिता के साथ ही रहते थे। वे उत्सव के लिए आर्थिक सहायता करते थे, लेकिन सक्रिय सहयोग नहीं करते थे। उनका अवचेतन मन इस उत्सव को सम्पूर्ण रूप से साथ देता था। उत्सव के लिए जो मकान किराए पर लिया जाता था, वह मकान अवनीधर जिस मकान में रहते थे, उसके तीन मकान के बाद ही था। अवनीधर अपनी पत्नी के एक कुटुम्बी के घर पर रहते थे। घटना का दिन था, सन् 1928 ई०, 23 अगस्त। उनकी सास सुबह बहुत जल्दी उठती थीं। घटना के दिन वे तड़के सुबह चार बजे मुँह धोकर छत पर खड़ी थीं। अचानक खड़ाऊँ के खट्–खट् की आवाज सुनाई दी। आवाज सुनकर वे सोचने लगीं कि चारों तरफ बन्द है फिर भी यह आवाज कहाँ से आ रही है ? सोचते–सोचते उन्होंने तीन संन्यासियों को पास में खड़े देखा। संन्यासी लोग कह रहे थे, "वाह, मजे की बात है, वहाँ महाहोम् हो रहा है, और अवनी कहाँ ?" यह कहकर वे लोग अन्तर्हित हो गए। उसी दिन शाम को अवनीधर के पास उन्होंने पूछा कि उसने उत्सव के लिए पैसा दिया है या नहीं ? अवनीधर ने उत्तर दिया, "मैं तो हर साल उत्सव के लिए पैसा देता हूँ, लेकिन आप तो मुझसे कभी भी नहीं पूछती। आज पूछने का क्या कारण है ?" सास ने उत्तर दिया, "नहीं ऐसा कुछ नहीं, ठीक है।" अवनीधर ने कहा, "यह विषय आपके लिए कुछ नहीं हो सकता है लेकिन मेरे लिए जीवन–मरण की समस्या हो सकती है।" तब सास ने प्रातःकाल की सारी बातें

बताई। अवनीधर ने गोस्वामी प्रभुजी को लक्ष्य करते हुए कहा, "प्रभु! क्या इतने दिन में तुम्हारा समय हुआ ? ठीक है, जब तुमने स्मरण किया है तब महाहोम् के स्थान पर मुझे जाना ही पड़ेगा। तुम्हारा आदेश मैं टाल नहीं सकता" यह कहकर अवनीधर यज्ञस्थल पर गए। उस समय वहाँ प्रसाद वितरण हो रहा था। सब लोग उनको देखकर आनन्दित हुए एवं उनको प्रसाद दिया गया। बाद में सब उनको ठाकुर वरदाकांतजी के पास ले गए। वहाँ अवनीधर के पिता शैलजाप्रसाद भी उपस्थित थे। ठाकुर वरदाकान्तजी के पास अवनीधर को देखकर सब विस्मित हो गए। सन् 1915 में दीक्षा प्राप्ति के लिए काशीधाम जाना एवं वहाँ से विफल होकर लौटना, स्वप्न में गोसाँईजी की बात सब उन्होंने कही। सब सुनकर ठाकुर वरदाकान्तजी ने उत्तर दिया, "तुम्हारा समय हो गया, अब किसी के पास दीक्षा ले लो।" अवनीधर ने कहा, "मैं और कहाँ जाऊँ, आप ही कृपा करें।" यह सुनकर ठाकुर ने कुछ देर तक मौन रहकर फिर कहा, "हाँ! मैं ही तुम्हें दीक्षा दूँगा।" ठाकुर ने उन्हें आश्रम की संध्या आरती के बाद पत्नी सहित आने को कहा। अवनीधर ने कहा, "20–25 दिन हुआ, मेरी पत्नी की संतान हुई है, अब तक अशौच नहीं गया। इस अवस्था में क्या दीक्षा संभव है ? "ठाकुर ने कहा, "गोस्वामी प्रभुजी का साधन सद्गुरु साधन है। इसमें शौच–अशौच का विचार नहीं होता। इस साधन में जन्म–मृत्यु का कोई संपर्क नहीं है। तुम दोनों की दीक्षा आज रात में ही होगी।" यह सुनकर अवनीधर के आनन्द की सीमा नहीं रही। वे चले गए। उस समय किसी ने उनसे कहा कि ठाकुर उन्हें बुला रहे हैं। अवनीधर ठाकुर के पास गए। ठाकुर वरदाकान्तजी ने कहा, "बेटा तुम्हारी दीक्षा इस आश्रम में नहीं होगी, मुझे तुम्हारे घर जाना पड़ेगा। मैं तो वृद्ध हूँ संध्या के बाद सर्वत्र अंधेरा हो जाएगा। क्या एक गाड़ी की व्यवस्था कर सकते हो ?" अवनीधर ने कहा, "हाँ मैं कर सकूँगा।" अवनीधर ठाकुर को यथासमय गाड़ी में बैठाकर घर ले गए। वहाँ अवनीधर एवं उनकी पत्नी की दीक्षा हुई। दीक्षा के बाद उनको ऐसा लगा कि उन्होंने नवजीवन प्राप्त किया है। उसी दिन रात में अवनीधर ने स्वप्न देखा कि उनकी दीक्षा हो रही है और गोस्वामी प्रभुजी स्वयं वहाँ खड़े होकर अवनीधर की ओर देखकर कह रहे हैं, "क्या ? जो कहा था वही हुआ न!"

बहुत पहले प्रवेशिका परीक्षा देकर ही अवनीधर दीक्षा लेने के लिए काशीधाम में कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी के पास गए थे, लेकिन ब्रह्मचारीजी उनके पहुँचने के पहले ही चले गए थे। अवनीधर को अत्यन्त निराश होकर लौटना पड़ा। उसके बाद एकबार रात में स्वप्न में गोस्वामी प्रभुजी ने उनको दर्शन देकर कहा कि उनको गुरु ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा, गुरु स्वयं उनके घर आकर उनको दीक्षा देंगे। दीक्षा ग्रहण के समय अवनीधर को गोस्वामी प्रभुजी की यह बात याद आई। ठाकुर

वरदाकांतजी ही उनके निर्दिष्ट गुरु थे। वरदाकांत जी ने अवनीधर को बाँकुड़ा श्रीश्री विजयकृष्ण योगाश्रम का सेवायत बना दिया था एवं शिष्य अवनीधर ने भी जीवनभर आश्रम का सेवा कार्य निष्ठा के साथ किया था। बाँकुड़ा में एक और घटना में उनकी शक्ति प्रकाशित हुई थी– बाँकुड़ा के वकील वाणीकान्त मुखोपाध्याय बाँकुड़ा श्रीश्री विजय योगाश्रम में सहकारी सेवायत थे। उनकी विधवा बहन अदीक्षित थी। कठिन रोग से पीड़ित होकर जब वे मृत्यु शय्या पर थीं, तब वाणीबाबू की माता ने वाणीबाबू से कहा कि लड़की अदीक्षित अवस्था में क्यों जाएगी ? वाणीबाबू ने कहा कि ठाकुर वरदाकान्तजी आश्रम में मौजूद हैं, उनको जाकर बताता हूँ। ऐसा कहकर वाणीबाबू आश्रम में पहुँचते ही फाटक के सामने छड़ी हाथ में लेकर ठाकुर को कहीं जाने के लिए प्रस्तुत देखा। ठाकुर वरदाकान्तजी ने वाणीबाबू को देखते ही कहा कि अभी गाड़ी ले आओ। पास में तेल मिल के मालिक नन्दीबाबू से तुरन्त वाणीबाबू ने गाड़ी माँगी और नन्दी महाशय के राजी होने पर गाड़ी आश्रम में लाई गई। इस तरह वाणीबाबू ठाकुर वरदाकान्तजी को अपने घर में ले गए। ठाकुर वरदाकांतजी वाणीबाबू की बहिन की शय्या के पास गए एवं उन्हें स्पर्श किया। थोड़ी देर में ही रोगिनी होश में आ गई। ठाकुर ने उनसे पूछा – "मुझको पहचान रही हो ?" रोगिनी ने कहा– हाँ, पहचान रही हूँ ? इसके बाद ठाकुर ने उनके मुँह में गंगाजल देकर कान में मंत्र दान करके, कुछ देर बाद उनसे पूछा– "गोसाँईजी को देख रही हो ?" उत्तर में विधवा बहन ने कहा, "हाँ देख रही हूँ।" इसके बाद ठाकुर ने कहा कि विधवा को लेकर मुक्त आसमान के नीचे तुलसीमंच के पास रख दो। 'अपरूप श्री गुरुरूप' इत्यादि भजन के समय ही उस विधवा बहन की आत्मा मुक्त हो गई।

इसी प्रकार की एक घटना मथुरापुर में गोसाँईजी के शिष्य ज्ञान दत्त वकील के पुत्र के मृत्यु के समय हुई। यह पुत्र भी मृत्यु पथ यात्री होकर इसी प्रकार ठाकुर वरदाकान्तजी के पास से मंत्र पाकर मुक्त हो गए।

श्री वरदाकान्त महाशय के उपदेश

1. सबका पंथ एक नहीं है। तुम्हारी पत्नी का पंथ अलग, तुम्हारा अलग। इसलिए निराश मत हो, तुमको अगर मरूभूमि के भीतर से ले जाए तो तुमको उसी में संतुष्ट रहना चाहिए। विश्वास ही धर्म का मूल है। यह विश्वास लाने के लिए शुरू में नियमानुसार चलना पड़ता है, धीरे–धीरे इसका फल मिलता है। परंतु इसलिए अस्थिर होने की आवश्यकता नहीं है, जो होना है, उसे होने दो, जिसे

पकड़ कर रखा है उसे ही पकड़े रहो –यही है निष्ठा एवं एकाग्रता।

2. वे (ठाकुर श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी) सर्वदा तुम्हारे साथ–साथ हैं, विश्वास करना।

3. विश्वास करना कि गुरु सर्वदा साथ–साथ रहते हैं, इसलिए उत्सव आदि क्षणिक आनन्द में योगदान कर सको या नहीं कर सको, उसके लिए मन में क्षोभ मत रखना।

4. मेरी सेवा नही कर सके, इसलिए दुःख मत करो। 'नाम' करना ही गुरुसेवा है। ठाकुर ने हमें कहा है, "नाम करने से ही मेरी याथार्थ सेवा होती हैं।"

5. हमारा वाक्य उनके गुण कथन में, कर्ण उनके कथा श्रवण में, हाथ उनके कर्म साधन में, मन उनके चरणों की स्मृति में, मस्तक उनके निवास समग्र जगत् को प्रणाम करने में, आँखें साधु दर्शन में नियुक्त रहना चाहिए।

6. पदधूलि का माहात्म्य– अभिमान नष्ट करता है। हमारा रास्ता सर्व साधारण के पैरों के नीचे से है। सर्वदा नम्र और विनीत होकर चलना चाहिए।

7. सहनशीलता की जरूरत है। किसी भी क्षण शुभ समय आ सकता है।

8. दूसरों को कष्ट पहुँचाने से या किसी के उद्वेग का कारण बनने से धर्म–पथ में विघ्न होता है।

9. पाँच जन एक साथ बैठकर धर्मालाप करने से, परस्पर के भाव–विनिमय से अनेक उपकार होता है।

10. प्र०– दान किसे कहा जाता है ?

उ०– (क) जब मन में श्रद्धा भक्ति का भाव ऐसा हो कि नहीं देने से मन में बहुत कष्ट हो।

(ख) गरीबों की दुर्दशा देखकर जब मन विचलित होगा, उस अवस्था का नाम ही दान होता है।

(ग) संतान माता–पिता को मन की आंतरिक इच्छा के साथ जब कुछ देता है, वह दान होता है।

(घ) संतान को माता–पिता आग्रह के साथ जो प्रदान करते हैं, वह दान होता है।

(ङ) मित्रों को आंतरिक प्रीति के साथ दान करने से वह दान होता है।

दान से पाप भी होता है, पुण्य भी होता है। दूसरों को देखकर दान करना, प्रतिष्ठा के लिए दान करना, इच्छा न रहने पर भी लोग क्या सोचेंगे – यह सोच कर दान करना, आत्मसम्मान की रक्षा के लिए दान करना, ये सब दान दान नहीं

होता। ऐसे दान से दाता एवं ग्रहणकर्ता दोनों का अकल्याण होता है।

"उन्होंने मुझे यह वस्तु दिया है" सरल मन से किसी को यह कहने का फल भी अच्छा नहीं होता। 'तुम लोग भी कुछ दो' यह गुप्त रूप से मेरे मन को अधिकार कर सकता है या दूसरों को प्रेरित कर सकता है।

श्यामसुन्दरजी के मन्दिर निर्माण के लिए दो गुरुभाइयों ने मेरी पत्नी के पास आकर कहा, "जो सामर्थ्य है, दीजिए।" उस समय अर्थ का अभाव था। इसलिए मेरी पत्नी बोली, "एक रूपया भी नहीं दे सकेंगे।" वे आश्रम लौट गए। रात में मेरी पत्नी ने सपना देखा कि एक भिखारी द्वार पर खड़ा है, जिसका एक पैर नहीं है। लाठी के सहारे वह दान प्रार्थी होकर आया था। उसका चेहरा कुष्ठ रोगी जैसा था। चल नहीं सकता था। उसे देखकर मेरी पत्नी का मन दुःखी हो गया और उसकी सहायता करने के लिए वह विचलित हो उठी। उसी समय एक जटाधारी शुभ्र वर्ण ब्राह्मण ने हँसकर कहा, इसका अभाव दूर करने के लिए अनेक अर्थ की आवश्यकता है, फिर भी इसका सब कष्ट नहीं दूर कर सकोगी, लेकिन इसके लिए तुम्हारा मन विचलित हो रहा है और श्री श्यामसुन्दरजी के मंदिर के लिए कुछ नहीं दे सके। थोड़ा कुछ दे सकते थे। ऐसा कहकर वे हँसते–हँसते चले गए। यह सपना देखकर दूसरे दिन श्यामसुन्दरजी के मंदिर के लिए कुछ रुपए उधार की। ठीक उसी समय दोनों गुरुभाई वितरण के लिए कुछ विज्ञापन लेकर आए। मेरी पत्नी ने उन लोगों को रूपए दिए। उन लोगों ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "इतना रूपया क्यों दिया ? कम देने से भी होता।" पत्नी बोली, "नहीं, जो दिया है आप ले जाइए।" सचमुच अभाव के समय ही यह घटना हुई थी। गोस्वामीजी के पुरी अवस्थान के समय की एक और घटना का उल्लेख करते हुए वरदाकान्तजी ने कहा – पुरी में एकदिन गोस्वामीजी ने कहा, "शारदा इसको एक लोटा दे दो।" शारदा ने कहा, "अभी बहुत ही अभाव चल रहा है। योगजीवन के पास भी कुछ पैसा नहीं है।" गोस्वामी प्रभु– "इतना सोचने की क्या जरूरत है ? सर्वदा शुभ–क्षण उपस्थित नहीं होता। जब वह उपस्थित है तो कुछ नहीं सोचकर उसका सद्व्यवहार करना चाहिए।" शारदा ने तुरन्त दान दे दिया। यह दोनों घटना एक जैसी है। शुभ–क्षण आने पर यथासाध्य दान करना चाहिए नहीं तो 'सदर्थ में व्यय' इस उपदेश का कोई मूल्य नहीं रहता। शास्त्रों का निर्देश है –

"सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियति सति" जब सब कुछ विनाश होने वाला है, तब सत्कार्य में व्यय करना ही श्रेयस्कर है।

11. दान ग्रहण करने से दान करना ही श्रेयस्कर है। अगर सामर्थ्य नहीं है तो वृक्ष को जल दान एवं मनुष्य को मीठी बातें भी तो दान कर सकते हो।

12. अर्थ शांति नहीं दे सकता। अर्थ ही अनर्थ का कारण है। जितना उपार्जन करोगे उतना ही अभाव बढ़ता जाएगा। आत्मिय–स्वजन उतनी ही आशा करने लगेंगे। उनकी चाह पूरी नहीं करने से अशांति अधिक होगी। शाकान्न आहार करके भी शांति से रहा जा सकता है। तुम्हारा अर्थागम कम देखकर लोगों की चाह भी कम हो जाएगी।

13. अर्थ से सुख नहीं मिलता। अभाव नहीं रहे, यही ठीक है। जिस महीने में मेरी छह सौ रूपए आय हुई, उसी महीने वकालत छोड़ने का आदेश मिला एवं मैंने छोड़ दी।

14. पुरी आना चाहते हो, अच्छी बात है। महाप्रसाद खाने से प्रारब्ध नष्ट होता है। महातीर्थ समुद्र स्नान, श्रीश्री जगन्नाथ–दर्शन, महाप्रसाद–भक्षण एवं समाधि (गोस्वामीजी के) में प्रत्यक्ष रूप में अवस्थित हमारे प्रभुजी के श्रीचरण में तुलसीचन्दन देना, ऐसा करने से यह मानव जन्म सार्थक हो जाएगा।

15. श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी ने कृपा करके अनुमति दी है। उन्होंने तुम लोगों के सब भार ग्रहण किए हैं। मैंने तो केवल माध्यम स्वरूप तुम लोगों को उनके चरणों में पहुँचा दिया है।

16. 'सद्गुरु' शब्द का अर्थ है, जिसकी सत्ता भगवत् सत्ता से अलग नहीं है। हम लोग बातों–बातों में जिन लोगों को सद्गुरु कहते हैं वे सद्गुरु नहीं है। गोसाँईजी सद्गुरु थे। सद्गुरु यत्र–तत्र नहीं मिलते। युग–युगांतर में एक जन दर्शन देते हैं। गोसाँईजी के एक शिष्य के इस प्रकार प्रश्न करने से उन्होंने कहा था– "ये सब बातें क्या सबसे कहनी चाहिए ?" यह कहकर ही चुप हो गए। पकड़े जाने पर एकांत निरूपाय होकर उन्होंने इस प्रकार कहा था। विश्वास बढ़ाने के लिए कुछ दृष्टांत दे रहा हूँ। उन्होंने किसी शिष्य को द्विभुज मुरलीधर रूप में, किसी शिष्य को चतुर्भुज रूप में तो किसी को षड्भुजरूप में दर्शन दिए थे। एकदिन महिलाएँ फूल चन्दन लेकर आईं। वे ध्यानमग्न हो गए। महिलाएँ भी पूजा करते–करते भावमग्न हो गईं। एक गुरुभाई चुपके–से दरवाजे के पास से देखा कि गोसाँईजी महादेव होकर बैठे हैं। वर्ण सफेद, जटाजूटधारी, फणिभूषण आदि देखकर उसका कंपन शुरू हो गया एवं वह भावमग्न हो गिर पड़ा। एकदिन श्रीधर पागल की तरह दौड़ते हुए गोसाँईजी के पास आया। उनकी आँखें रक्तवर्णी हो गई थी। वह गोसाँईजी के गले में गमछे से फन्दा डालकर बोला, "साला बोल तू कौन है ? कभी देखता हूँ द्विभुज मुरलीधर, कभी चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्माधारी, कभी षड्भुज, बोल साला तू कौन है ? नहीं तो मार डालूँगा।" गोसाँईजी हाँथ जोड़कर "मैं धन्य हो गया, मैं धन्य हो गया!!" कहकर शिष्य का अभिवादन करने लगे।

17. देवदर्शन, महापुरुष–दर्शन के लिए खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। उनके भोग के लिए कुछ ले जाना चाहिए। कुछ नहीं मिले तो एक फल या हरितकी लेकर जाना चाहिए।

18. स्त्री जाति मातृ जाति है, प्रकृति देवी प्रत्येक स्त्री के भीतर अधिष्ठिता हैं। उन्हें कष्ट देने से स्वयं भगवान के पास अपराधी होना पड़ता है। पुरुषों का आचरण ही उनके अधःपतन का कारण है। पहले पुरुष ही उन लोगों को विपथ में ले आते हैं। इसके बाद की अवस्था कभी–कभी स्वतंत्र हो जाती है। यदि ये सब विचार करो तो कभी कोई स्त्री जाति पर दोषारोपण नहीं कर सकोगे। यदि लोग किसी स्त्री को बदनाम करते हैं तो अवश्य ही उसका कोई कारण है। फिर भी देखना पड़ेगा कि हजारों पुरुष उससे भी ज्यादा अपराध करके सिर ऊँचा करके समाज में घूम रहे हैं या नहीं ? वह अपना दोष छिपाकर दूसरों को शासन करता है कि नहीं ? और देखना पड़ेगा कि क्या उन अपराधियों की स्त्रियों ने उन्हें त्याग दिया है ? लेकिन एक स्त्री, महापुरुषों के विचार में वास्तव में दोषी नहीं होने पर भी कुछ झूठे आरोप का आवलंबन करके पुरुष उनको त्याग देता है। उसके पार्थिव जीवन की सुख–शांति नष्ट करता है। उसको रास्ते में खड़ा करता है। क्या वह भगवान का जीव नहीं है ? क्या भगवान उनमें विराज नहीं करते हैं ?

19. पशुभावपन्न पुरुष लोग स्त्रियों को भोग उपादान की तरह देखते हैं एवं उनके प्रति असद्व्यवहार करते हैं।

20. मानव–विचार एवं भगवत्–विचार एक नहीं होता। मानव बाहर देखता है और भगवान अन्दर। ऐसे अनेक व्यक्ति को मानव–विचार से प्राणदण्ड मिला है लेकिन भगवत्–विचार से भगवान की गोद में आश्रय मिला है। किसी देश के या किसी युग के मानव ने जो विचार किया है, अन्य देश के या अन्य युगके मानव ने उसका समर्थन नहीं किया। इसलिए लोग क्या कहेंगे या सोचेंगे, यह सोचकर अपने कर्तव्य से विरत् मत हो। डरो मत, सत्य अवलंबन करो। सर्वदा याद रखना, भगवान ही तुम्हारे सर्वशेष एवं सर्वप्रधान विचारक हैं। उनके विचार संपूर्ण भिन्न हैं।

21. प्रकृत धर्म क्या है ? असली धर्म किसे कहते हैं ? यह पहचानना, जानना या समझना बहुत ही कठिन है। हम लोग साधारणतः कुछ लौकिक आचार, अनुष्ठान, संस्कार, विधि–निषेध आदि को धर्म कहते हैं। अनेक लोग छींकना, छिपकिली, बारबेला, कालबेला, मधा, त्र्यहस्पर्श आदि को धर्म मानते हैं। अनेक कुसंस्कार धर्म के रूप में हमें प्रताड़ित करते है। हम लोग अनेक अन्याय एवं अधर्म को धर्म के नाम से मानते हैं। असली धर्म इन सबसे दूर है। भ्रम से हम लोग धीरे–धीरे असली धर्म से दूर चले जाते हैं। यह भी महामाया का एक खेल

है। हम लोग सत्य विश्वास से कुछ शुष्क अनुष्ठान करके सोचते हैं कि हम लोग अनेक धर्मानुशीलन कर रहे हैं। लेकिन देखा जाए तो ये सब हमें धर्म के संपूर्ण विपरीत दिशा में ले जा रहा है। माया,मोह धर्म के रूप में आकर हम लोगो को विभ्रान्त करता है।

22. अनजान लोगों के साथ सतर्क होकर चलना चाहिए।

23. सब कार्य विचारपूर्वक नहीं करने से सब नष्ट होता है।

24. मैं स्वयं कोई उपदेश नहीं दे रहा हूँ। ये सब मेरी बातें नहीं है। ये सब गुरुजी की उक्ति है। गुरुजी ऐसा ही कहते थे।

25. ज्यादा उपदेश सुनकर कोई लाभ नहीं है। एक भी उपदेश को जीवन में सही रूप से पालन करने से जीवन धन्य हो जाता है।

वरदाकान्तजी ने कहा है, अद्वैताचार्य के दशम पुरुष में मेरे ठाकुर, मेरे प्राण श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु ने जन्म लिया था।

गुरुजी श्रीश्री वरदाकांतजी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से एवं भावमग्न हो कर कहा था, **"अब भी संशय! अब दुविधा किसलिए ? भगवान नारायण श्रीकृष्ण रूप में आविर्भूत हुए थे। श्रीकृष्ण नवद्वीप में आए थे– लक्ष्मीनारायण, प्रकृतिपुरुष एक साथ गौरांग होकर, इसके बाद अद्वैत अभिशाप पूरण के लिए शांतिपुर में अद्वैत– वंश के दसवीं पीढ़ी में भगवान श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के रूप में उन्होंने जन्म लिया। वे ही गौरांग, वे ही श्रीकृष्ण, वे ही नारायण हैं। पुराण में, शास्त्र में, इतिहास में इस कहानी की धारावाहिकता है। यह सत्य है!, सत्य है!, सत्य है! वे स्वयं भगवान हैं। मेरे दयाल ठाकुर अद्वय, अरूप, अखंड, सच्चिदानंद, सत्य–स्वरूप श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी पूर्ण भगवान हैं।**

****

श्री योगजीवन गोस्वामी

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु की पाँच संतानों में श्री योगजीवन गोस्वामी द्वितीय संतान एवं एक मात्र पुत्र थे। बंगला सन् 1277 (1870 ई०) के 29 अग्रहायण सोमवार शुक्ला दशमी तिथि में उनका जन्म हुआ था। 11 वें वर्ष के 'मंदिर' पत्रिका के अनुसार उनका जन्म सन् 1276 (सन् 1869 ई०) के 18 अग्रहायण सोमवार, सूर्योदय के कुछ पहले हुआ ऐसा लिखा गया है। ढाका के पातला खाँ गली के भवन में प्रथम संतान (पुत्री) संतोषिनी के बाद पुत्र संतान होने से सब लोग विशेष आनन्दित हुए। पुत्र की शुभ कामना के लिए विभिन्न मांगलिक अनुष्ठान सुसंपन्न हुआ। उन्होंने पुत्र का नाम योगजीवन रखा। उनके शरीर का गठन पिता क़े ही समान था। महापुरुष का दिया गया नाम सार्थक हुआ। जैसा एक छोटे–से वटवृक्ष के बीज में एक बड़ा वृक्ष होने की संभावना रहती है, उसी तरह महापुरुष के सारे गुण इस शिशु के अंदर गुप्त रूप में रहकर यथासमय आत्मप्रकाश किये थे। परवर्ती समय में यह शिशु बड़ा होकर साधना क्षेत्र में असाधारण क्षमता का अधिकारी हुआ था।

बालक योगजीवन शिशुकाल से ही सर्वदा सत्संग करता था। उनकी शिशु सुलभ चंचलता के साथ–साथ सरलता, सत्यप्रियता, दया, तेजस्विता, न्याय, निष्ठा आदि गुण मिश्रित रहने के कारण वह माता–पिता, कुटुम्ब एवं गोस्वामी प्रभु की शिष्यमंडली में अत्यन्त प्रिय था। बाल्यकाल से उसके भीतर कैसी दयावृत्ति थी, वह इस घटना से स्पष्ट होता है –

उस समय योगजीवन गोस्वामी 5–6 साल के थे। एकदिन एक गरीब आदमी आश्रम में सब्जी बेचने आया। एक व्यक्ति ने दो–एक पैसे की सब्जी खरीदा फिर मुफ्त में और कुछ मांगता रहा। यह देखकर योगजीवन गोस्वामी ने कहा, "यह गरीब आदमी है, यह सब्जी बेचेगा तब घर के सब लोग खायेंगे। इनके साथ ऐसा क्यों कर रहे हो ?" बाल्यकाल से ही उनका ऐसा स्वभाव था। वे गरीब दुःखी के प्राण थे। विद्यालय की शिक्षा के साथ उनका योग नहीं था लेकिन सर्वदा पिता का संग करने से उनको सत् शिक्षा का कोई अभाव नहीं था। इसलिए उनके अंदर पैतृक धर्मभाव ने कम उम्र से ही आत्मप्रकाश किया था। ब्राह्मसमाज के आश्रम में पालित होने के कारण उनके धर्मविषयक संस्कारादि ब्राह्मसमाज के अनुसार हुए।

संध्यावन्दना, उपवीत धारण आदि ब्राह्मण के आवश्यक कर्तव्य कर्मों के प्रति उनका ज्यादा ध्यान नहीं था। गोस्वामी प्रभुजी पुत्र को काशीधाम में उस समय के प्राज्ञतांत्रिक पूर्णानंद स्वामी का संग करने भेजा था। योगजीवन पिता के आदेश से वहाँ गए। उस तांत्रिक के मादक द्रव्यादि द्वारा तांत्रिक अनुष्ठानों को देखकर उनको अच्छा नहीं लगा एवं इस विषय में पिता को पत्र लिखने से गोस्वामी प्रभुजी ने पुत्र को लिखा– "तुम जो कहते हो, वह सत्य है, लेकिन स्वामीजी का वास्तविक गुण तुम्हारे सामने आने से तुम धन्य हो जाओगे।" पिता की बात सुनकर वे स्वामीजी का संग करने लगे। एकदिन एक भक्त साधक ने एकतारा यंत्र बजाकर स्वामीजी को संगीत सुनाया। संगीत सुनकर स्वामीजी के भीतर अष्ट सात्विक भाव जाग उठा। वे भाव–मग्न होकर नृत्य करने लगे। यह देखकर योगजीवन के मन में विशेष भक्ति का उदय हुआ एवं उन्होंने स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया। उस समय स्वामीजी का शरीर श्वेत वर्णधारण किया था एवं ललाट में अर्धचन्द्र प्रकाशित हुआ। उस अवस्था में योगजीवन गोस्वामी ने जब उनको प्रणाम किया तब स्वामीजी ने उनके गले में उपवीत नहीं देखकर पूछा कि उसका उपवीत कहाँ है ? योगजीवन गोस्वामी ने कहा कि अभी तक उसने उपवीत धारण नहीं किया है। स्वामीजी ने एक सेवक को बुलाकर उपवीत मँगवाया एवं योगजीवन के गले में डाल दिया। पिता के सामने उपस्थित होने पर पुत्र को उपवीतधारी देखकर गोस्वामी प्रभुजी ने आनंद के साथ कहा कि उसको स्वामीजी के पास भेजना सार्थक हुआ है।

साधारणतः शिक्षा का मूल उद्देश्य अर्थोपार्जन होता है। इस प्रकार की शिक्षा से मानसिक विकास नहीं होता है। चरित्र गठन एवं मानविकता का विकास ही सत्शिक्षा का उद्देश्य है। प्रचलित स्कूल –कॉलेज की शिक्षा में इसका बड़ा ही अभाव देखा जाता है। पुत्र योगजीवन को अर्थशाली करने की कोई इच्छा गोस्वामी प्रभुजी की नहीं थी, इसलिए महान् पिता के साथ रहकर उनके श्रीमुख से निकली वाणी श्रवण एवं उनके अगनित शिष्यों के आचार–आचरण दर्शन से बालक योगजीवन की सत्शिक्षा की बुनियाद दृढ़ हुई थी। इस प्रसंग में योगीराज श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी की बात उल्लेखनीय है। ब्रह्मचारीजी के बाल्यकाल में उनके पिता रामनारायण घोषाल, अपने पुत्र की पढ़ाई के बारे में अपने गुरुजी भगवान गांगुली महाशय से पूछने पर उन्होंने कहा, "जो विद्या सीखने से अन्य किसी विद्या की जरूरत नहीं होती, लोकनाथ वही विद्या शिक्षा करेगा। वही शिक्षा अभी चल रही है।" गुरु भगवान गांगुली लोकनाथजी एवं उनके मित्र बेणीमाधव बन्द्योपाध्याय के अभिभावकों से कहा था कि बालकों के उज्ज्वल भविष्य को देखकर वे इन लोगों को उपनयन एवं ब्रह्मचर्य दान करके इन्हें लेकर संन्यास

ग्रहण करेंगे एवं बाद में बालकों को योगधर्म में दीक्षित करेंगे। गुरु भगवान गांगुली को लोकनाथजी ने एकदिन कहा था कि उन लोगों की तो कोई पढ़ाई नहीं हुई। गुरुजी ने उत्तर दिया, "मैंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया है– यथा समय मेरा सारा ज्ञान तुम लोगों में संचारित करूँगा।" यह सत्य है कि गुरु भगवान गांगुली ने सारा शास्त्र–ज्ञान लोकनाथजी एवं बेणीमाधव के भीतर संचारित किया था। लोकनाथजी इसी ज्ञान से कर्मयोग एवं ध्यान–धारणा–समाधि के बल पर सर्वज्ञान संपन्न हुए थे। बालक योगजीवन के जीवन में भी ऐसी घटना हुई। पिता के साथ रहकर पुत्र की यथार्थ शिक्षा का चरमोत्कर्ष हुआ। बहुत ही कम उम्र में गोस्वामी प्रभुजी ने पुत्र को दीक्षा दी थी। योगजीवनजी की दीक्षा के बारे में यह बताया गया है कि एकबार ब्राह्मसमाज के उत्सव के लिए गोस्वामी प्रभुजी फाल्गुन महीने में वर्धमान गए थे। उसी समय वर्धमान के राजा के नंदनकानन के शिवमंदिर में योगजीवन जी की दीक्षा हुई थी। दीक्षा के समय उनके भीतर अद्‌भुत अवस्था का प्रकाश हुआ था।

इस प्रसंग में गोसाँईजी की सास मुक्तकेशी देवी एवं सहधर्मिणी योगमाया देवी की दीक्षा की बात उल्लेखनीय है। उस समय गोसाँईजी ढाका ब्राह्मसमाज के प्रचारक निवास में थे। एकदिन योगमाया देवी ने गोसाँईजी से कहा, "क्या मुझे दीक्षा नहीं मिल सकती ?" उत्तर में गोसाँईजी ने कहा, "प्रार्थना करने से ही दीक्षा मिल सकती है।" माघोत्सव के बाद किसी समय मुक्तकेशी देवी एवं योगामया देवी की दीक्षा हुई। दीक्षा के समय गोसाँईजी ने इन्हें उपदेश दिया था– "मांस, उच्छिष्ट, मादक आदि नहीं खाना। ऋषि याज्ञवल्क्य जिस 'नाम' से सिद्ध हुए थे, आप लोग वही 'नाम' ग्रहण कीजिए। सर्वदा 'नाम' कीजिए। 'नाम' पाते ही योगमाया देवी को दर्शन मिला एवं वे भावावेश में मग्न हो गईं। प्राणायाम् दिखाने का अवसर भी नहीं मिला। संध्या के समय गोसाँईजी दोनों को ऊपर ले जाकर बैठे। योगमाया देवी ने प्रभुजी से कहा, "शांतिपुर की सीढ़ी में मैं जिसे देखकर डर गई थी, सफेद दाढ़ी, लाल मुँह वाले महात्माजी को मैंने आज भी देखा।" यह सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "तुम भाग्यवती हो। सफेद दाढ़ी वाले वही महात्मा श्री अद्वैत प्रभु हैं। उन्होंने उसी समय तुम्हारे भीतर शक्ति संचार किया था। उस समय मैं वह सब विश्वास नहीं करता था– पाखण्डी था।" इसके कुछ दिन बाद कन्या शांतिसुधा देवी एवं कुतुबुड़ि की दीक्षा हुई। गोस्वामीजी के पास बैठकर योगजीवन कभी–कभी अपने साधन–भजन, दर्शनादि के बारे में बातें करते थे। जब गोस्वामीजी ढाका प्रचारक आश्रम में थे। बहुत ही कम उम्र में उनको एकदिन राजा राममोहन राय का दर्शन मिला था। ब्राह्म प्रचारक नगेन्दबाबू के साथ एकदिन इस विषय पर बातें हुई।

योगजीवन के दर्शन के बारे में ब्रह्मचारीजी ने 'आचार्य–प्रसंग' ग्रन्थ में कहा

है– "एकदिन सुना, गोस्वामीजी के पास बैठकर योगजीवन कह रहे हैं कि समुद्र स्नान के लिए जा रहा हूँ। जैसे ही मंदिर के कोने में गया, श्री वृन्दावन का केशीघाट, रास्ता, गली आदि नजर आया। मोरों की क्यें–क्यें ध्वनि मैंने साफ–साफ सुनी।" योगजीवन गोस्वामीजी को ये सब दर्शन–प्राप्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे पिता की संतान को ये सब दर्शन होना तो स्वाभाविक है। ब्राह्मसमाज के प्रचारक जलालमियाँ ने योगजीवन गोस्वामी के जन्मग्रहण के समय कहा था, "एक महापुरुष जन्म ले रहे हैं, संकीर्तन करो।" बंगला सन् 1294 (सन् 1887 ई०) के ज्येष्ठ मास में द्वारभंगा में गोस्वामी प्रभुजी को प्राणघातक पीड़ा हुई। सब चिकित्सकों ने आशा छोड़ दी। डबल निमोनिया रोग से उनके दोनों फेफड़े सड़ गए थे। उनकी इस अवस्था का समाचार तार द्वारा मिलते ही ढाका से प्रभुजी के पूरे परिवार के साथ कई शिष्य भी दरंभगा रवाना हुए। उनमें योगजीवन गोस्वामीजी थे।

गोस्वामी प्रभुजी के अनन्यतम शिष्य श्यामाचरण बक्शी महाशय बारदी जाकर लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के चरण में गोस्वामी प्रभुजी के जीवन भिक्षा करके रो पड़े। उनकी व्याकुलता से ब्रह्मचारीजी सूक्ष्म देह में आकाश मार्ग से चल दिए। उस समय गोयलन्द के जहाज में प्रभुजी के परिवार के सब लोग बैठे थे। कोई–कोई रो रहा था। अचानक योगजीवन गोस्वामी आसमान की तरफ अँगुली उठाकर कहने लगे, "वह देखो, ब्रह्मचारी महाशयजी दरभंगा जा रहे हैं। उन्होंने मुझे हाथ दिखाकर कहा, "मैं भी दरभंगा जा रहा हूँ, तुम लोग चिन्ता मत करो। कोई डर नहीं है।" उस समय योगजीवन गोस्वामी की उम्र ज्यादा नहीं थी। कुछ दिन पहले ही उनकी दीक्षा हुई थी। लेकिन गुरुकृपा एवं साधन–शक्ति से वे बहुत उच्च अवस्था में पहुँच गए थे। इसलिए उन्होंने सूक्ष्मशरीर में आकाश मार्ग से जाते हुए ब्रह्मचारीजी को देखा था। केवल दर्शन ही नहीं, जहाज में रहकर उनकी आवाज भी सुन सके थे। इससे पता चलता है कि बहुत ही कम उम्र में योगजीवन गोस्वामीजी साधन–जीवन में विशेष शक्तिमान हो गए थे।

दीक्षा प्राप्ति के पहले उनके जीवन में एक विस्मयकारी घटना हुई। उस समय वे बहुत ही छोटे थे। पिता के साथ ढाका गेण्डारिया आश्रम में वे रहते थे। एकदिन गोस्वामी प्रभुजी अपना आसन छोड़कर आश्रम के पास घूम रहे थे। अचानक बाल्यचपलता से बालक योगजीवन पिता के आसन में बैठ गए। बैठने के साथ–साथ एक अदृश्य हस्त ने उसका गला इतना जोर से दबाया कि वे बेहोश हो गए एवं मुँह से झाग निकलने लगा। सब लोग बहुत डर गए। गोस्वामी प्रभुजी संवाद पाकर जल्दी वहाँ आए एवं पुत्र को स्वस्थ किए। पुत्र के स्वस्थ होने पर प्रभुजी ने उनसे कहा, "तुमने मेरे आसन में बैठकर बहुत ही अन्याय किया है।

महापुरुषगण सर्वदा मेरे आसन की रक्षा करते हैं। आसन की किसी प्रकार अमर्यादा उन्हें सहन नहीं होती। आसन का असम्मान करने से वे उसे कठिन दण्ड प्रदान करते है। तुम बालक हो एवं कोई बुरे मतलब से नहीं बैठे थे, इसलिए वे तुम्हें छोड़ दिए हैं। ऐसी हालत में वे अपराधी को प्राणदण्ड भी देते हैं। सावधान! भविष्य में कभी ऐसा मत करना।"

योगजीवन गोस्वामी के जीवन में बहुत ही कम उम्र से धर्मभाव का विकास हुआ। जिन्होंने उनका सत्संग किया उन्होंने कहा कि ये तो देवता हैं। वे संसार का कुछ भी नहीं समझते थे। बहुत सरल थे। कभी–कभी संसार के विषय में कोई समस्या आने पर वे अव्यावहारिक बात कह देते थे। उस समय गोस्वामी प्रभुजी पुत्र को डांटकर कहते, "तुम इस बारे में क्या जानते हो ?" गोस्वामी प्रभुजी के कोलकाता के सीताराम घोष स्ट्रीट में रहते हुए एकदिन योगजीवन गोस्वामी ने पिता के पास आकर कहा – "देखो, आज बहुत मजा आया। श्रीकृष्ण को बहुत परेशान किया।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा – "क्या किया ?" योगजीवन जी ने कहा, "आसन में बैठा हूँ, अनेक ऋषि–मुनियों के साथ श्रीकृष्ण का दर्शन मिला। मेरे प्रणाम करते ही उन्होंने मुझे कहा, "मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता। वर प्रार्थना करो।" मैंने कहा 'मुझे 50 लाख करोड़ रूपए दो।' जैसे ही यह बात मैंने कही श्रीकृष्ण दौड़कर भाग गए और घूमकर नहीं देखे।"

यह सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने हँसते हुए कहा, "तू बहुत ही मूर्ख है। प्रेमभक्ति नहीं माँग सका ?" पुत्र ने उत्तर दिया, "मैं नहीं, तुम मूर्ख हो, वह चीज मैं क्यों माँगू ? उसके लिए तो तुम हो। वह तो मेरी मुट्ठी में है पर तुम तो धन नहीं दोगे। इस कारण श्रीकृष्णजी से मैंने ऐसी प्रार्थना की।" गोस्वामी प्रभुजी यह सुनकर हँस दिए।

दूसरों का दुःख देखने से योगजीवनजी का मन अस्थिर हो जाता था। किसी का अन्न–कष्ट या रोगयंत्रणा देखने से वे उसके दुःख निवारण के लिए ईश्वर के निकट प्रार्थना करने के अतिरिक्त उनके पास जितना पैसा रहता, उसी समय दान कर देते थे। अगनित मनुष्यों का दुःख दूर करने के लिए उन्होंने श्री कृष्ण के पास विपुल अर्थ माँगा था। दूसरों के दुःख में वे कितना कातर होते थे, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वे अपने लिए कभी नहीं सोचते थे। वे निश्िंचत थे कि पिता के रहते हुए आध्यात्मिक सम्पदा के लिए उनको किसी के पास जाना नहीं पड़ेगा। इससे गुरुजी के प्रति उनका कैसा सुदृढ़ विश्वास था, इसका परिचय मिलता है। वे कर्ण जैसे दाता थे। दान के बारे में पात्रापात्र की विवेचना नहीं करते थे। अर्थ नहीं रहने से भी उधार करके दान करते थे। इस उधार के लिए उनको अनेक समय अपमानित भी होना पड़ता था।

उनमें अनेक गुण थे, साधन–भजन में जैसी ऐकान्तिक निष्ठा एवं चित्त की एकाग्रता थी, वैसी ही थी चित्त की उदारता एवं सर्वदा अनासक्ति भाव। पार्थिव धन संपदा कभी भी उनको आकर्षित नहीं कर सकी। शास्त्र के प्रति उनका अगाध विश्वास था। सर्व जीवों के प्रति दया, साधु–सज्जनों के प्रति अकृत्रिम भक्ति उनके चरित्र का अनन्यतम गुण था। उनके समान उदार प्रकृति एवं असाधारण पुरुष बड़ा दुर्लभ था। उनका कोई शत्रु नहीं था। उनकी असमान्य गुरु–भक्ति एवं गुरु–आनुगत्य देखकर सब लोग विस्मित होते थे। गुरु के बिना उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। उन्होंने गुरु की इच्छा में अपनी इच्छा विलीन कर दी थी। गुरु–संग ही उनका एक मात्र काम्य था। गुरु–सेवा ही उनका एकामात्र कार्य था। एकबार कुलदानंद ब्रह्मचारीजी को सेवा–अभिमान हुआ था। वे सोचते थे कि गोस्वामी प्रभुजी के सर्वश्रेष्ठ सेवक वे ही हैं। एकबार रात में एक सपना देखकर उनका यह अभिमान छिन्न हो गया था। ब्रह्मचारीजी ने सपने में देखा कि ठाकुर आसन में बैठकर कह रहे हैं, "योगजीवन ही मेरा सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं।" सचमुच उनकी गुरु–सेवा में कोई दिखावा नहीं था। इसलिए उनकी गुरु–भक्ति का परिमाप संभव नहीं था।

एकदिन ब्रह्मचारीजी ने योगजीवन गोस्वामी के भीतर एक अपूर्व विस्मयकर भक्तिभाव देखा था। एक साधु दाताओं की महिमा के बारे में बोल रहे थे। वहाँ योगजीवनजी उपस्थित थे। उसी समय ब्रह्मचारीजी ने वहाँ आकर देखा कि योगजीवनजी के आँखों से अश्रुधारा निकल रही है। उन्होंने ब्रह्मचारीजी से कहा "मैं चाहता हूँ कि साधुओं की सेवा में मेरे शरीर का एक–एक टुकड़ा माँस काटकर लगा दूँ।"

गोस्वामीजी प्राचीन ऋषियों की तरह परिवार के साथ रहते थे। गृहस्थों को सन्यासियों की तरह अनासक्तिपूर्वक संसार–धर्म पालन करने को कहा करते थे। योगमाया देवी ने पुत्र योगजीवन को बुलाकर उसके विवाह की इच्छा व्यक्त की। माता योगमाया ने पुत्र को बहुत समझाया लेकिन पुत्र विवाह के लिए सहमत नहीं हुआ। अंत में उन्होंने पुत्र से कहा कि उसके विवाह देखने के लिए क्या उनको फिर संसार में आना पड़ेगा ? क्या वह यही चाहता है ? तब पुत्र ने कुछ क्षण मौन रहकर अन्त में विवाह के लिए सहमति प्रदान की। गोस्वामी प्रभुजी ने अपने शिष्य जगदबन्धु की बहन बसंतकुमारी देवी के साथ योगजीवन का विवाह तय किया। सन् 1295 (1988 ई०) के 26 फाल्गुन बसंतकुमारी देवी के साथ योगजीवन गोस्वामी का विवाह हुआ। उसी दिन गोसाँईजी की द्वितीय कन्या शांतिसुधा देवी के साथ जगद्बन्धु मैत्र का विवाह हो हुआ।

इस विवाह के बारे में 'सद्गुरु संग' ग्रन्थ से कुछ तथ्य मिला है, जो इस

प्रकार है –

गोस्वामी प्रभु के पुत्र श्री योगजीवन गोस्वामी एवं कन्या शांतिसुधा देवी का विवाह क्रमशः श्रीमती बसंतकुमारी देवी एवं जगद्बंधु मैत्र के साथ हुआ। आधुनिक भाव के समृद्ध परिवार में पुत्र कन्या का विवाह देना गोस्वामी प्रभु के लिए असंभव नहीं था, लेकिन उन्होंने अपने गुरु परमहंसजी का आदेश पालन किया। उनके परिवार वर्ग एवं कुटुम्ब इस विवाह के घोर विरोधी थे, फिर भी गोस्वामी प्रभुजी ने आनन्दपूर्वक यह विवाह संपन्न किया था। जामाता ने पहले ही उनके पास दीक्षा प्राप्त की थी। साधारण ब्राह्मसमाज के नियमानुसार यह शादी हुई थी।

पुत्र और कन्या के विवाह में पुरोहित थे श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय एवं रजनीकान्त घोष महाशय। विवाह में उपस्थित होकर गोस्वामी प्रभुजी ने गृहस्थ धर्म के बारे में अपूर्व सारगर्भ एवं हृदयस्पर्शी उपदेश प्रदान किया। उन्होंने पुत्र को एक साल ब्रह्मचर्य पालन करने का आदेश दिया। विवाह के बाद दूसरे दिन रजिस्ट्री हुई थी। इस विवाह में आकाशगंगा पहाड़ के रघुवरदास बाबाजी एवं धामराई के भक्त साधु परशुराम ने योगदान दिया था। विवाह के बाद दूसरे दिन सुबह महा–संकीर्तन हुआ। उसमें सब लोग महाभाव में मग्न हो गए। भगवत् प्रेम से परिपूर्ण गोस्वामी प्रभु का उद्दण्ड नृत्य एवं उच्च हरिध्वनि चारों ओर गूँज उठी। जननी योगमाया देवी एक तरफ भाव मग्न होकर खड़ी थी। इस अवस्था में उनकी माता मुक्तकेशी देवी ने कन्या को लाकर गोस्वामी प्रभुजी के बायीं तरफ खड़ा कर दिया। भावमग्न योगामाया देवी को समाधिस्थ गोस्वामीजी के साथ देखकर ऐसा लगा मानो कैलासधाम प्रकटित हो उठा है।

योगजीवन गोस्वामी को दाम्पत्य जीवन ज्यादा दिन भोग नहीं करना पड़ा। वे तो पिता के साथ रहते थे इसलिए विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ता था। उस समय गोसाँईजी कोलकाता, श्यामबाजार में कांति घोष के घर में थे। एकदिन संवाद आया कि गोसाँईजी की पुत्रवधू बसंतकुमारी देवी अत्यन्त अस्वस्थ हैं। वह असमय में एक मृत पुत्र संतान प्रसव करके बुखार से पीड़ित हो गई हैं। योगजीवन गोस्वामी को गोसाँईजी ने गेण्डारिया भेज दिया एवं कह दिया कि रोगिनी की चिकित्सा में कोई त्रुटि नहीं रहनी चाहिए। यह भी कहा कि वे भी शीघ्र ढाका जाएँगे। पिता के आदेश से योगजीवन गोस्वामी ढाका में आए एवं पत्नी की चिकित्सा–सेवा की सुबन्दोबस्त कर दिये लेकिन रोग और भी बढ़ने लगा। कुछ दिन बाद गोस्वामी प्रभुजी वहाँ गए। पुत्रवधू के पास बैठकर उनका हाथ पकड़कर वे हरिनाम करने लगे। रोगिणी की शारीरिक एवं मानसिक अवस्था का संपूर्ण परिवर्तन देखा गया। ऐसा लगा कि उनको कोई रोग ही नहीं है। वधू के

मुखमण्डल पर शांति एवं आराम की छाया दिखाई दी। दिनभर नाम चला लेकिन कोई नहीं समझा कि यह मुक्तावस्था की पूर्व अवस्था है। देखते–देखते वह शुभक्षण उपस्थित हो गया। अंतिम समय में उनके मुखमंडल पर निर्मल शांति छा गई। इस तरह योगजीवन गोस्वामी की पत्नी ने सन् 1298 (1991 ई०) के 25 पौष में देह त्याग किया। वधू ने श्वसुरजी के पास पति के हाथ से पिण्ड पाने की इच्छा व्यक्त की थी इसलिए गोसाँईजी ने ग्यारहवें दिन में बंद कमरे मे पुत्र द्वारा वधू का श्राद्ध करवाया एवं स्वयं मंत्रोच्चारण किया था। वधू ने पति के हाथ से ही पिण्ड ग्रहण किया था।

इस तरह तीन साल में ही योगजीवन गोस्वामी के दाम्पत्य जीवन की समाप्ति हुई। इसके बाद वे हमेशा पिता के साथ रहकर उनकी सेवा करते थे एवं साधन–भजन में मग्न रहते थे। पिता की सेवा करना उनका प्रमुख साधन–भजन था।

महाभारत में है कि राजसूय यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण सबका पाँव धो रहे थे। ऐसा ही कार्य योगजीवन गोस्वामी ने किया था। एकबार आश्रम में महोत्सव के समय एक गुरुभाई के सहारे आश्रम में उपस्थित सबका चरणामृत उन्होंने गुप्त रूप से संग्रह किया एवं बाद में उसका पान किया था। इस घटना से उनकी वैष्णव दीनता प्रमाणित होती है।

उनमें कोई विलासिता नहीं थी। प्रायः कंबल ओढ़कर चुपचाप नाम करते थे। वे कौपीन एवं एक सामान्य सफेद वस्त्र पहनते थे। एक मोटी चादर ओढ़ते थे। एक तकिया एवं दो काला कंबल उनका बिस्तर था। अपने लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करते थे लेकिन आश्रम की सेवा के लिए काफी खर्च करते थे। अर्थादि संरक्षण की कोई चेष्टा उनमें नहीं थी। जितना पैसा मिलता था, वे अपने आसन के नीचे रख देते थे, कभी–कभी बक्सा में भी रखते थे लेकिन बक्से में ताला नहीं लगाते थे। वे प्रार्थी को निर्विकार भाव से अर्थ समाप्त होने तक दान करते थे। उनकी अर्थ के प्रति अनासक्ति एवं चित्त के उदासीन भाव को देखने से ऐसा लगता था कि उन्होंने केवल भगवान का 'नाम' करने के लिए ही जन्म लिया है। कलियुग की मलिनता उनको लेषमात्र भी स्पर्श नहीं कर पाई।

गोस्वामी प्रभुजी के पुरी धाम जाने के लिए योगजीवन गोस्वामी एवं मनीन्द्रमोहन मजूमदार महाशय कम पैसा में जहाज की व्यवस्था करने के लिए कोशिश की लेकिन उस समय अर्थाभाव के कारण व्यवस्था करना मुश्किल हो गया, इसलिए योगजीवनजी ने पिता को कुछ दिन अपेक्षा करने को कहा। उनकी बात सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने कहा कि विषयी अर्थात संसार में आसक्त व्यक्ति जैसी बातें नहीं करनी चाहिए। जगन्नाथदेव का आदेश होने से वे ही पैसों का भी

इंतजाम कर देंगे। उनके ऊपर निर्भर करने से और कोई चिन्ता नहीं। पिता की यह बात सुनकर पुत्र निश्चिन्त हुए एवं उस समय से वे ईश्वर के ऊपर निर्भरशील होकर चलते रहे।

गोसाँईजी के पुरी में अवस्थान के समय एकदिन योगजीवन गोस्वामी ने उनसे पूछा कि गुरु के प्रति प्रेम कैसे होता है ? उत्तर में गोसाँईजी ने कहा "मायिक संबंध का अस्तित्व रहने तक गुरु प्रेम का कोई पता नहीं चलता।" उनके भीतर साधन–शक्ति का अगाध समुद्र था, लेकिन वे शक्ति गुप्त रखते थे।

गोस्वामी प्रभुजी के कोलकाता हैरिसन् रोड में रहते समय अनेक भक्तों एवं शिष्यों का समागम होता था। योगजीवनजी को उन लोगों के भोजन की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इसके लिए उनको अनेक समय ऋण लेना पड़ता था। एकदिन महेन्द्र मित्र महाशय द्वारा इतना ऋण लेने के बारे में पूछने पर योगजीवनजी ने उत्तर दिया, "सब लोग जब तक भोजन नहीं करेंगे तब तक मेरे वृद्ध पिता भोजन नहीं करेंगे। भूखे बैठे रहेंगे। क्या यह मैं देख सकता हूँ? इसके लिए जितना ऋण मिलेगा, उतना ऋण लेता रहूँगा। इसके लिए अगर मुझे नरक में जाना पड़े, मैं तैयार हूँ।" इतना खर्च देखकर केवल महेन्द्रबाबू ही नहीं अन्य शिष्य भी चिंतित हो जाते थे लेकिन योगजीवन गोस्वामी को इस बारे में कोई चिन्ता नहीं थी। पिता की संतुष्टि के लिए वे कभी–कभी जरूरत से ज्यादा व्यय कर देते थे। आकाशवृत्ति में अर्थ कैसे आता है, यह सोचने में भी आश्चर्य लगता है।

यहाँ रहते समय गोस्वामी प्रभुजी के पास दीक्षाप्रार्थियों के अनेक पत्र आते थे। इन पत्रों का उत्तर भी योगजीवनजी को लिखना पड़ता था। गोसाँईजी के पास से सब समय पत्र का उत्तर जाना संभव नहीं था। एकदिन गोसाँईजी ने योगजीवन से कहा, "दीक्षा प्रार्थी होकर किसी के पत्र लिखने पर तुम्हारी जो इच्छा हो वही उत्तर लिखना वैसा ही होगा"– गोस्वामी प्रभुजी की यह उक्ति अत्यन्त तात्पर्यपूर्ण है। दोनों एकात्म नहीं होने से ऐसी अभिव्यक्ति असंभव है। एकजन का मनोभाव दूसरा कोई तब ही जान पाएगा, जब दोनों में कोई व्यवधान नहीं रहेगा– दोनों एक हो जाएगा। गोस्वामी प्रभु एवं पुत्र योगजीवन के बीच ऐसा ही संबंध प्रतिष्ठित हुआ था। सेवा के लिए ऋण करने के बारे में योगजीवन गोस्वामी ने एकबार पिता से पूछा। इस प्रश्न के उत्तर में गोसाँईजी ने पुत्र से कहा था, "तुम्हारी जो विषय सम्पति है, उसे बेचकर जितना कर्ज मिटा सकोगे, उतना ही ऋण कर सकते हो। देने वाले मालिक भगवान हैं। उनके ऊपर निर्भर करने से और कोई चिन्ता नहीं रहेगी।" इस विषय में गोस्वामी प्रभु ने भक्तमाल ग्रन्थ से श्यामल शाह की कथा पाठ करके पुत्र को सुनाई। साधु–सेवा के लिए श्यामल बार–बार ऋण करता था, लेकिन पैसा नहीं देने के कारण महाजनलोग उनके नाम पर डिक्री जारी करना

तय किया, लेकिन जिस दिन डिक्री जारी होना था, उससे पहले ही एक व्यक्ति ने उन लोगों को सारा पैसा दे दिया। बाद में उन लोगों ने श्यामल शाह के पास जाकर कहा कि उनको अपना–अपना पैसा मिल गया। यह सुनकर श्यामल शाह ने भगवान को लक्ष्य करके साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा, "ये लोग कितने भाग्यवान हैं क्योंकि उन्होंने भगवान का दर्शन किया एवं उनके हाथ से पैसा लिया, लेकिन मुझे दर्शन नहीं मिला।"

पुत्र का मनोबल दृढ़ करने के लिए पुत्र को भगवान पर संपूर्ण निर्भरशील कराने के लिए गोस्वामी प्रभुजी ने यह कथा सुनाई थी। इसके फलस्वरूप एकबार श्रीवृन्दावन में अर्ध कुंभ के समय योगजीवन गोस्वामी ने चार–पाँच हजार रूपए उधार करके दान किया था। इस पैसे के लिए उनको अनेक बार अपमान सहना पड़ा था। भगवान के प्रति संपूर्ण निर्भरशील होने के कारण बहुत जल्दी ही वे यह ऋण मिटा सके थे। उल्लेखनीय है कि सौ वर्ष पूर्व पाँच हजार रुपये का मूल्य आज की तुलना में काफी अधिक था।

एकदिन उन्होंने स्वप्न में आत्मपुरुष का दर्शन किए। केवल अपना ही नहीं, माता ठाकुरानी की उज्ज्वल मूर्ति का भी दर्शन किया। इस स्वप्न के बारे में उन्होंने पिता से कहा, माता ठाकुरानी की उज्ज्वल मूर्ति दर्शन किया, फिर अपनी मूर्ति भी अत्यन्त उज्ज्वल रूप में देखा। मेरा शरीर दूर में पड़ा था। उस उज्ज्वल मूर्ति से मैंने प्रश्न किया तुम कौन हो ? उत्तर आया "मैं आत्मपुरुष हूँ" फिर माता ठाकुरानी को देखा, यह क्या रूप है ?

योगजीवन गोस्वामी ने इस स्वप्न का तात्पर्य अपने पिता के पास जानना चाहा। गोस्वामी प्रभु ने कहा, **"जो देखा है, वही यथार्थ स्वरूप है।"** पुत्र ने पुनः प्रश्न किया "तो ये सब पाप क्यों ?" उत्तर में गोस्वामी प्रभु ने कहा, **"वह सब कुछ नहीं, प्रारब्ध मात्र है। तुम्हारी नई इच्छा नहीं है। वासना रहने से नया कर्म होता है। भगवान अपने को फेरे में डालकर फिर कौशल से निकालते हैं। जैसे रेशम कीटं। रेशम कीट अपने ही लार में बद्ध होता है। तितली उसके ऊपर बैठती है, यह देखकर उसके ध्यान से उसका पंख होता है फिर वह उड़ने लगता है। यह दृष्टांत पूरा नहीं लगता। ये कौशल भगवान किसी को समझने नहीं देते। राम अवतार में 'हा सीता' 'हा सीता' कहकर उन्होंने कितना विलाप किया। कर्म की अंतिम अवस्था में जब जन्म और नहीं होगा, तभी ऐसा दर्शन मिलता है, किसी से मत कहना।"**

गोस्वामी प्रभुजी की आकाशवृत्ति थी। भगवान की ओर देखते रहना एवं वे जो कुछ देंगे उसी से आहारादि संपन्न करना, यही गोस्वामी प्रभुजी का नियम था। वे सर्वदा भगवान के ऊपर निर्भर रहते थे, इसलिए उनकी आकाशवृत्ति कभी भंग

नहीं हुई। एकदिन योगजीवन गोस्वामी ने पिता से कहा कि अर्थ का इतना अभाव चल रहा है, रंगपुर की संपत्ति बेची जा सकती है। उत्तर में गोस्वामी प्रभु ने कहा, "भगवान दाता है, वे नहीं देंगे तो कुछ भी नहीं होगा। संपत्ति बेचकर ज्यादा–से–ज्यादा दो हजार रूपए पाओगे। उससे कितने दिन चलेगा ? उनके ऊपर निर्भरशील होकर रहो। लेकिन भगवान का दान यथार्थ रूप में व्यय नहीं होने से वे देना बन्द कर देते है। अगर नहीं चले, तो खर्च कम कर दो।" पिता की बात सुनकर योगजीवन गोस्वामी ने कंगाली भोजन के लिए निर्दिष्ट 120 रू0 कम करना चाहा, लेकिन विधु मजूमदार एवं मोक्षदा बसु ने एक महीने के लिए यह भार ले लिया, इसलिए योगजीवन को इसके बारे में नहीं सोचना पड़ा।"

पहले आश्रम का भार गोस्वामी प्रभुजी की सास मुक्तकेशी देवी के ऊपर था। वे कम पैसे में सुचारू रूप से खर्च चलाती थीं। श्रीवृन्दावन में यह भार श्री भारत पण्डित पर एवं प्रयाग कुंम्भ मेला में श्री महेन्द्र मित्र पर था। कोलकाता, सीताराम घोष स्ट्रीट के मकान में आने के बाद गोस्वामी प्रभु ने महापुरुषों के अनुरोध से पुत्र योगजीवन को यह भार सौंपा। इस समय काफी अर्थ आया एवं भंडारी योगजीवन ने दिल खोलकर सर्व–साधारण के लिए खर्च किया। महापुरुषों ने उपयुक्त पात्र को भगवान का यह भण्डार अर्पण किया था।

सन् 1297 (सन् 1890 ई०) का आषाढ़ महीना, उस समय गोस्वामी प्रभुजी श्रीवृन्दावन के गोपीनाथ बाग में दाऊजी के मंदिर के दामोदर पुजारी के कुंज में थे। ब्रह्मचारी कुलदानन्द वहाँ आए। दो–एक दिन बाद वे गोस्वामी प्रभुजी के साथ श्रीगोपीनाथजी के मंदिर में संकीर्तन महोत्सव में गए। उस दिन वृन्दावन के सब वैष्णव समाज उत्सव में सम्मिलित हुए थे। गोस्वामी प्रभु संकीर्तन को लक्ष्य करके साष्टांग प्रणाम देकर सतृष्ण नयन में कीर्तन की ओर देखने लगे। उनका शरीर कांपने लगा। वैष्णवगण गोसाँईजी का दर्शन करके दुगने उत्साह से उनकी परिक्रमा करते हुए कीर्तन कर रहे थे। उस समय प्रभुजी के भीतर अपूर्व भाव सृष्टि होने के कारण वे 'जय शचीनन्दन', 'जय शचीनन्दन' कहकर आगे–पीछे, दायें–बायें दौड़ने लगे। भाव का प्रबल तूफान, गोसाँईजी की हुँकार एवं हरिध्वनि से सब लोग अचेत हो गए। वे लोग कभी दौड़ रहे थे तो कभी एक जगह में खड़े होकर 'जय शचीनंदन, जय शचीनंदन' कहकर भूमि में गिर पड़ते। कभी सर्वांग में ब्रज की रज लगाकर फिर उठ जाते एवं हरिध्वनि देकर नृत्य करने लगते। इन लोगों का विचित्र भावावेश ब्रह्मचारी कुलदानन्द नहीं सहन कर पाते थे, इसलिए वे पीछे हटने लगे। अचानक उन्होंने मुड़कर देखा कि योगजीवन गोस्वामी दौड़ते हुए आ रहे हैं। ब्रह्मचारी जानते थे कि योगजीवनजी ढाका के गेण्डारिया आश्रम में हैं। अचानक उनको कीर्तनस्थल में देखकर ब्रह्मचारीजी विस्मित हो गए।

संकीर्तन में गोसाँईजी को देखकर योगजीवनजी भी उन्मत्त से हो उठे। वे बहुत दूर से ठाकुर को पकड़ने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बार–बार अग्रसर होने की चेष्टा कर रहे थे। लेकिन शराबी की तरह वे इधर–उधर गिर जा रहे थे। ब्रह्मचारीजी उनको पकड़े रहे। उस समय अचानक गोसाँईजी ने पीछे मुड़कर पुत्र योगजीवन को देखा एवं कुछ क्षण स्थिर दृष्टि में रहकर उच्चस्वर में हरिध्वनि करने लगे। योगजीवनजी एकबार गोसाँईजी को देखकर अचेत हो गए। बाद में थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर ब्रह्मचारीजी उनको लेकर संकीर्तन के साथ गोपीनाथजी के मन्दिर में प्रवेश किए। मन्दिर प्रांगण में गोपीनाथजी को साष्टांग प्रणाम करते ही गोसाँईजी समाधिस्थ हो गए। दोपहर तीन बजे समाधि भंग होने पर उनको लेकर सब कुंज में लौट आए। इस घटना से यह पता चलता है कि योगजीवनजी का आधार कितना ऊँचा था। श्रीवृन्दावन पहुँचते ही वे संकीर्तन स्थल में चले आए एवं भक्ति भावरस में डूब गए।

एकबार पुरी में गोसाँईजी के जन्मोत्सव झूलनपूर्णिमा के दिन गोसाँईजी बोले कि उस दिन कंगालियों को अच्छा भोजन कराने से वे बहुत सन्तुष्ट होंगे। यह सुनते ही योगजीवन गोस्वामी ने श्री विघु घोष की सहायता से कंगालियों को बहुत अच्छी तरह से भोजन करवाया। कंगालियों ने जटियाबाबा की जयकार करके कहा कि ऐसा अमूल्य प्रसाद प्यार से कभी किसी ने उन्हें नहीं खिलाया। पिता की बात की रक्षा करके उस दिन योगजीवन गोस्वामी को भी बहुत आनन्द हुआ।

श्रीवृन्दावन के तीर्थमणि कुंज में गर्मी के समय गोसाँईजी रात में खुली छत पर रहते एवं प्रातःकाल में दो मंजिले के एक कमरे में आसन पर बैठते थे। उनके कमरे में आने से पहले बानारीपाड़ा के कुंजबिहारी गुह घर साफ करते थे। एकदिन घर साफ करने के लिए आकर उन्होंने देखा, दरवाजा अंदर से बंद है। उन्होंने सोचा सरलनाथ ने मजाक से दरवाजा बंद किया है। इसलिए उसने दरवाजा में जोर से धक्का मारा। अंदर से गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "क्यों तंग करते हो?" अचानक उस समय गोसाँईजी को कमरे में देखकर सब लोग आश्चर्यचकित रह गए। उस दिन आठ बजे प्रभुजी ने दरवाजा खोला। पुत्र योगजीवन ने पिता से कमरे में जल्दी आने का कारण पूछा। उत्तर में गोसाँईजी ने कहा "कल रात में हिमालय से कई महात्मा आए थे, उन लोगों के साथ निर्जन में बात करने के लिए कमरे में दरवाजा बंद किया था।" पुत्र ने पूछा कि उन लोगों के साथ क्या बातें हुई ? उत्तर में गोसाँईजी ने कहा, "उन लोगों ने मुझसे कहा कि तुम्हारा यहाँ का काम तो एक प्रकार हो गया है। अब हिमालय चलो।" मैंने कहा– "गुरुजी के आदेश के बिना मैं नहीं जा सकता।" यह बात सुनकर वे लोग चले गए। पुत्र ने फिर पिता से पूछा कि उनका क्या काम बचा है ? गोसाँईजी ने कहा, "देश में धर्म की

प्रतिष्ठा। राजा ठीक नहीं होने से देश में धर्म नहीं रहता। वर्तमान शासन प्रणाली धर्म के उपयुक्त नहीं है.। इसका परिवर्तन होना चाहिए एवं शीघ्र होगा। जो धर्म स्थापित होगा, उसका स्त्रोत पाँच सौ वर्ष तक रहेगा, उसके बाद म्लान हो जाएगा। तब भगवान फिर अवतीर्ण होंगे।"

पिता पुत्र के इस कथोपकथन से यह स्पष्ट होता है कि योगजीवनजी स्वयं जैसे सरल थे पिता को भी ऐसे सोचते थे। उनमें कोई संकोच बोध नहीं था। इसलिए उन्होंने महापुरुषों के साथ क्या बातें हुई, पिता से यह पूछने में कोई संकोच नहीं किया। पिता की भविष्य कर्मसूची, धर्म–प्रतिष्ठा के लिए पिता का आविर्भाव यह भी पिता के मुँह से जान गए थे। पिता–पुत्र के बीच ऐसा एकात्म बोध दुर्लभ ही दिखता है।

गोस्वामी प्रभु के अंतिम बार कोलकाता में अवस्थान के समय योगजीवनजी में साधन–शक्ति का अपूर्व प्रकाश देखा गया। घटना इस प्रकार थी–

गोस्वामी प्रभु के शिष्य श्री कैलाशचन्द्र बसु की पत्नी को एक कठिन रोग हुआ। कैलाशबसु ने यथासाध्य चेष्टा की, पर रोग और बढ़ने लगा। रोगिणी का मृत्युकाल आ गया। कैलाशबाबू के मित्रों ने इस घटना के विषय में गोस्वामी प्रभुजी को कहा। खबर सुनते ही उन्होंने ब्राह्मण का पादोदक पिलाने को कहा। तब पुत्र योगजीवन गोस्वामी का पादोदक रोगिणी को पिलाया गया। कैलाशबाबू की पत्नी धीरे–धीरे स्वस्थ हो गई।

गोस्वामी प्रभुजी पुत्र योगजीवन को कोई भी कार्य सौंपकर निश्चिन्त रहते थे। एकबार गोस्वामी प्रभु के शिष्य पण्डित दुर्गामोहन चक्रवर्ती बहुत अस्वस्थ हो गए थे। शिष्य की चिकित्सा एवं पथ्य की व्यवस्था करने के लिए गोसाँईजी ने पुत्र योगजीवन से कहा। पिता के निर्देश से योगजीवन गोस्वामी प्रसिद्ध डाक्टर नीलरतनबाबू को बुलाकर दवाई एवं पथ्य की व्यवस्था की। उनकी प्रचेष्टा से पण्डित महाशय जल्दी स्वस्थ हो गए। योगजीवन गोस्वामी मन–प्राण से सेवा करते थे।

गुरुभाइयों के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा–भक्ति एवं प्रेम था। अपनी सेवा वे कभी भी नहीं चाहते थे। उनके शिष्य उनकी सेवा करना चाहते तो वे गुरुभाइयों की सेवा करने के लिए कहते थे। वरिशाल में देहैरगति गाँव के स्कूल सेक्रेटरी अनुकूल चक्रवर्ती योगजीवन गोस्वामी के अनन्यतम् शिष्य थे। दीक्षा के बाद उन्होंने शिष्य को पण्डित दुर्गामोहन की सेवा करने का आदेश दिए थे। गुरुजी के आदेश से चक्रवर्ती महाशय प्रायः नारायणपुर आकर पण्डित महाशय की सेवा करते थे। इससे पता चलता है कि अपनी सेवा की अपेक्षा दूसरों की सेवा करना

श्रेष्ठ है। निःस्वार्थपरता का इस प्रकार उज्ज्वल दृष्टांत अत्यन्त दुर्लभ है।

गोस्वामी प्रभु के प्रति उनका प्राणापेक्षा अधिक प्रेम था। एक घटना से इसका प्रमाण मिलता है–

गोस्वामी प्रभु के शरीर त्याग करने पर योगजीवन ऐसे शोकाकुल हो गए कि स्वयं आत्मविसर्जन का संकल्प करके एक खाली कमरे में फाँसी लगाने का प्रयत्न करने लगे। अचानक उस समय श्री नवकुमार बागची महाशय वहाँ उपस्थित हुए। उनको इस तरह देहत्याग करते देखकर वे स्तंभित हो गए। फिर उन्हें सांत्वना देकर आत्महत्या करने से रोके। पिता एवं सद्‌गुरु के विरह से उनकी निरंतर अश्रुधारा बहती थी। 1901 ई० में पुरी के नीलमणि वर्मण के घर से गोस्वामी प्रभुजी का आसन एवं उनका सामान आदि लाकर समाधि–आश्रम में स्थापित किया गया। उस समय से पुरी में यह आश्रम जटियाबाबा मठ नाम से प्रसिद्ध हुआ एवं योगजीवन गोस्वामी इस मठ के प्रथम सेवायत बनाए गए। बाद में रजिस्ट्री करके इस आश्रम की 'श्रीनामब्रह्मदेव' के नाम पर प्रतिष्ठा की गई।

'मंदिर' पत्रिका से संगृहीत कुछ घटनाएं :–

1903 ई० में एकदिन पुरी आश्रम में योगजीवन ने कहा, "चाय पिला सकते हो ?" एक गुरुभाई ने खबर दी कि आश्रम में चीनी एवं दूध नहीं है। योगजीवन ने कहा, "रात के हरी लूट के बताशा से चाय बनाओ।" गुरुभाई ने कहा "किसी के पास एक पैसा भी नहीं है, संध्या में हरि लूट कैसे होगी ?" उन्होंने कहा, "कुछ परवाह नहीं, मेरा दाहिना हाथ खुजला रहा है, आज जरूर पैसा आएगा।"

किसी प्रकार से चाय सेवा होने के बाद योगजीवनजी अभाव के कारण कैसे स्वभाव नष्ट होता है, इस बारे में रहस्य कथा कहने लगे।

पुरी में मनीआर्डर का डाकिया साधारणतः दो से तीन बजे तक आता था। उस दिन 4:30 बज गए, तब भी डाकिया नहीं आया। गुरुभाई ने कहा– "दादा क्या अभी भी दाहिना हाथ खुजला रहा है ? उन्होंने गंभीर भाव से उत्तर दिया "हाँ"! उस दिन 5:30 बजे डाकिया आया। देरी करने का कारण पूछने से उसने कहा आज कम रकम के अनेक मनीआर्डर है, इसलिए सब काम करके यहाँ आने में देर हो गई। प्रायः तीन सौ रूपए मिले। योगजीवन ने गुरुभाई से कहा, "देखा! अब उत्कृष्ट भोग एवं चाय की व्यवस्था की जाय।"

ऐसा असाधारण निश्चिन्त एवं निश्चेष्ट भाव बहुत कम ही देखा जाता है। उनके मुँह पर कभी विषाद या निराशा की छाया नहीं देखी गई। वे कहते थे – "जब गोसाँईजी ने हमें स्वीकार किया है तो चिन्ता क्या ? कुछ दिनों के लिए इतना हिसाब करने की क्या जरूरत है ? चाय पीकर गपशप कर दिन गुजार देंगे।" ऐसी

निर्भरशीलता के लिए स्वामी भूतानन्द बाबा, गंभीरनाथजी, भोलानन्दगिरी महाराज आदि महापुरुषगण उनसे अत्यन्त प्रेम करते थे।

योगजीवन गोस्वामी ने बंगला सन् 1309 (सन् 1902 ई०) में गोसाँईजी की समाधि को बीच में रखकर वर्तमान में जो श्रीमंदिर है उसका निर्माण शुरू किया था। योगाजीवनजी मन–प्राण से चाहते थे कि समाधि के ऊपर एक सुन्दर मंदिर हो लेकिन इस चाह को पूरा करने का कोई रास्ता उन्हें दिखाई नहीं दे रहा था। उसी समय महात्मा गंभीरनाथ बाबा एकबार अनेक शिष्यों के साथ श्रीक्षेत्र में पहुँचे। पहले वे जगन्नाथ मंदिर के पास एक घर में ठहरे थे। योगजीवन ने एकदिन जगन्नाथ दर्शन के समय उन लोगों को देखा एवं अत्यन्त आदर के साथ उन्हें आश्रम में ले आए। वे लोग कई दिन आश्रम में रहे।

इस समय योगजीवन ने सोचा, बाबाजी त्रिकालदर्शी है – गोसाँई के समाधि के ऊपर एक सुन्दर मंदिर निर्मित हो यह मेरी आन्तरिक इच्छा है। वह इच्छा कभी पूरी होगी या नहीं, इस विषय में बाबा क्या कोई भविष्यवाणी नहीं करेंगे? मन में यह प्रार्थना लेकर योगजीवन गंभीरनाथ बाबा के सामने गए। जैसे ही योगजीवन पहुँचे बाबा ने कहा– "बाबा का मंदिर बन जाएगा।" इसके बाद योगजीवन का मन शांत हुआ।

एकदिन योगजीवन ने गंभीरनाथ बाबा से पूछा, "गोसाँईजी जीवित रहते हुए जैसे उनको दिनरात देख सकते थे, अब ऐसे क्यों नहीं देख पाते?" गंभीरनाथ बाबा ने उत्तर दिया– "गोसाँईजी बोले हैं, उनके प्रति तुम्हारा विश्वास जब और दृढ़ होगा तब तुम उन्हें हमेशा देख सकोगे।" यह बात सुनकर योगजीवन के मन में आत्मग्लानि हुई एवं मन–ही–मन अपने को धिक्कार कर कहने लगे, "क्या मैं आप पर अभी भी विश्वास नहीं कर पाया?" मन में ऐसा भाव आते ही उन्होंने देखा कि गोसाँईजी बाबाजी के बगल में बैठे हैं। थोड़ी देर बाद वे अदृश्य हो गए।

पूज्यपाद योगजीवन गोस्वामी ने सर्वप्रथम चार जन को एक साथ दीक्षा प्रदान की थी। यह घटना भी अलौकिक थी। ये चार जन थे– श्री निवारणचन्द्र गांगुली, चन्द्रकुमार चक्रवर्ती, शशिकुमार चक्रवर्ती एवं ललितमोहन दास।

एकबार ठाकुर दुर्गामोहन गठिया रोग से अचल हो गए थे। उन चारों शिष्यों की सेवा से वे स्वस्थ हो गए। उस समय योगजीवन बानारीपाड़ा में आकर चार–पाँच दिन थे। ठाकुर दुर्गामोहन लाठी के सहारे गुरुभाई से मिलने आए। उनके अस्वस्थ अवस्था में इन चारों लोगों ने बहुत सेवा की थी इसलिए योगजीवनजी ने संतोष व्यक्त किया। सेवा करने वाले चार भक्तों पर कृपा करने के लिए दयाल श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु मानो पहले से ही तैयार थे।

इसलिए पूज्यपाद योगजीवन गोस्वामी के बानारीपाड़ा छोड़ने से पहले श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी ने पुत्र के निकट प्रकट होकर कहा– "दुर्गामोहन पण्डित महाशय की अस्वस्थ अवस्था में जिन चार व्यक्तियों ने सेवा की हैं, उन लोगों के लिए यह 'नाम' दिया गया।" यह नाम कागज में लिखकर पण्डित महाशय के पास भेज दो। उन चार जन को बैठाकर कागज में लिखा हुआ नाम उन लोगों को दिखाने से ही दीक्षा का काम होगा। पुत्र योगजीवन गोस्वामी ने पिता का दिया हुआ नाम कागज में लिखकर लिफाफा में भरके पण्डित महाशय को भेज दिया। साथ में एक पत्र भी लिखा– "श्रद्धेय पण्डित महाशय ! पिताजी ने आज प्रकट होकर एक 'नाम' मुझे बताया एवं कहा है कि आपके अस्वस्थ अवस्था में जिन्होंने आपकी सेवा की थी, उन चार व्यक्तियों को बैठाकर कागज में लिखा हुआ नाम उन्हें दिखाने से ही दीक्षा का कार्य हो जाएगा। पिताजी के आदेश से यह नाम आपके पास भेजा गया।" फिर उन्होंने नाम लिखा। कागज के नीचे उन चार व्यक्तियों को उद्देश्य करके लिखा– "मेरा लिखा हुआ यह नाम पण्डित महाशय द्वारा आप लोगों को दिखाने से ही आप लोगों का विशेष कल्याण होगा।"

पूज्यपाद योगजीवन का पत्र पाकर ठाकुर दुर्गामोहन शुभ समय में श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी के आसन के पास उन चार व्यक्तियों को बैठाकर कागज में लिखा हुआ नाम उनके सामने रखकर कहा– "इस कागज में लिखा हुआ नाम एवं नीचे लिखे वाक्यों को पढ़कर याद रखें। गुरुजी गोसाँई की अपार करूणा से दादा योगजीवन गोस्वामी के निकट आपलोगों की दीक्षा हो गई। इस तरह पूज्यपाद योगजीवन गोस्वामी के इन चार शिष्यों ने गोस्वामी प्रभुजी की अपार करूणा पाकर धन्य हो गए।

सन् 1307 (सन् 1900 ई०) में दुर्गापूजा के बाद किरणचन्द्र (दरवेशजी) के विशेष आमंत्रण से योगजीवनजी खलिया गए। वे किरणचन्द्र को बहुत ही प्यार करते थे। वहाँ दो दिन रहकर किरणचन्द्र को साथ लेकर वे वनग्राम गए।

जिस समय पूज्यपाद योगजीवन गोस्वामी अस्वस्थ होने के कारण कोलकाता में वास कर रहे थे, उस समय उनका शिष्य नवेन्दुबाबू संवाद पाते ही गुरुजी को एक सुन्दर मकान में ले गए एवं विशेष अभिज्ञ डाक्टरों से चिकित्सा की व्यवस्था की। इस व्यवस्था में ठाकुर दुर्गामोहन पंडित का भी अवदान था। गुरुजी को रोगमुक्त कराने के लिए शिष्यों ने अनेक अर्थ व्यय किया, लेकिन पूज्यपाद योगजीवन गोस्वामी रोगमुक्त नहीं हो सके। अंत में उनको उदरी रोग हुआ। डाक्टरों के परामर्श अनुसार विशुद्ध वायु सेवन के लिए उनको बजरा (बड़ी नाव) में नदी में रखने की बात शिष्य एवं गुरुभाई सोच रहे थे। इस विषय में योगजीवन गोस्वामीजी ने स्वयं गुरुभाई वरदाकांत को एक पत्र लिखा था कि उनको पद्मा

नदी में ले जाया जाए। लेकिन ठाकुर वरदाकांत ने गोसाँईजी के पास सुना था, "योगजीवन को पद्मा नदी में ले जाने से, वह वापस नही लौट पाएगा।" इसलिए बार–बार उनका अनुरोध सुनकर भी वरदाकांत मौन रहे। अंत में उनको और नहीं रोका जा सका। उनको पद्मा नदी में बजरा में रखा गया। योगजीवन गोस्वामी ने जब जाना कि वे पद्मावक्ष में हैं तब पद्मा अधिष्ठात्री देवी को संबोधित करके उन्होंने कहा, "अब भी मुझे नहीं ले सकी"। यह बोलते ही उनका अंतिम काल आ गया। इस तरह एक महान् साधक के जीवन का अंत हुआ।

गोस्वामी प्रभु के कार्यों की सहायता के लिए वे पृथ्वी पर आए थे। काम पूरा करके वे शांतिधाम में गमन किए। बंगला सन् 1312 (सन् 1905 ई०) के 18 आश्विन सप्तमी पूजा के दिन 36 वर्ष की उम्र में कोलकाता से गेण्डारिया आश्रम जाते समय ढाका के पास तालतला नामक स्थान में उन्होंने शरीर त्याग किया। जहाँ उनका देह सत्कार किया गया था, उनके भक्तों ने वहाँ एक मंदिर निर्माण कराया।

****

महात्मा श्री सतीशचंद्र मुखोपाध्याय

श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय महाशय का जन्म 1865 ई०, 5 जून को हुगली जिला के बन्दीपुर ग्राम में हुआ था। पिता कृष्णदास मुखोपाध्याय कोलकाता हाईकोर्ट में अनुवादक का काम करते थे। उनका काम था ओड़िया दलीलों को अंग्रेजी में अनुवाद करना। सतीशचन्द्र 1875 ई० में साऊथ सुबार्बन स्कूल में भर्ती हुए एवं 14 साल की उम्र में एंट्रांस पास करके प्रेसिडेंसि कॉलेज में योगदान किये। 1884 ई० में बी०ए० पास करने के बाद सरकारी वृत्ति लेकर विदेश जाने का मौका आया था, लेकिन पिता की अनुमति नहीं मिलने के कारण विदेश नहीं जा सके। 1886 ई० में उन्होंने अंग्रेजी में एम०ए० परीक्षा पास की। इसके बाद मेट्रोपोलिटन इनस्टिट्यूशन में शिक्षक रूप में उन्होंने योगदान किया। बहरमपुर कॉलेज के अध्यक्ष महान् दार्शनिक ब्रजेन्द्रनाथ शील उनको अपने कॉलेज में इतिहास एवं अर्थनीति पढ़ाने के लिए ले आए। उनकी विद्या बुद्धि से रमेशचन्द्र मित्रा आदि उनके पिता के मित्रों ने सोचा कि सतीशचन्द्र वकालत करके जीवन में अनेक उन्नति कर सकेगा। उन लोगों के परामर्श एवं पिता के आग्रह से उन्होंने बहरमपुर कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर बी०एल० पढ़ने के लिए कोलकाता सिटी कॉलेज में प्रवेश लिया। 1890 ई० में उन्होंने बी०एल० पास करके कोलकाता हाईकोर्ट में वकालत शुरू की, लेकिन जिस दिन उन्हें पता चला कि इस व्यवसाय में मिथ्या भाषण का आश्रय लेना पड़ता है, उन्होंने उसी दिन वकालत छोड़ दी।

उनके जीवन का पहला बत्तीस साल अध्ययन, वकालत, दीक्षाग्रहण एवं अर्थोपार्जन में गुजरा। अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य में उनकी अद्भुत दक्षता थी। उस समय कोलकाता विश्वविद्यालय का नाम उज्ज्वल किया था– मुखोपाध्याय उपाधि के दो मनीषियों ने– सर आशुतोश एवं महात्मा सतीशचन्द्र। प्रथम व्यक्ति ने गणित शास्त्र में एवं द्वितीय व्यक्ति ने अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य परीक्षा में प्रथम स्थान अर्जित किया था। दोनों सहपाठियों ने ही छात्र जीवन में चरमोत्कर्ष लाभ किया था एवं दोनों में प्रगाढ़ प्रेम भी था। ईश्वर के विधान से दोनों का रास्ता स्वतंत्र था। एक विद्यानुशीलन में और दूसरे ने अध्यात्मतत्वानुसंधान में सार्थकता के चरम शिखर पर आरोहण किया। फिर भी बहुत दिन बाद बाल्यकाल के मित्र के साथ मिलने पर सर आशुतोष ने एक महामूल्यवान सत्य कहा था। उस समय सतीशबाबू आकाशवृत्ति व्रत लेकर काशी में रहते थे। जब सर आशुतोष उनसे मिलने आए,

बहुत दिन बाद साक्षात् हुआ। इसलिए दोनों में अनेक बातें हो रही थीं। सतीशबाबू के विचार एवं जीवनधारा से आशुतोष महाशय विशेष प्रभावित हुए। विदाई के पहले उन्होंने एक महासत्य मूल्यवान वाक्य कहा–

"सतीश! पढ़ाई के समय एवं हाईकोर्ट में वकालत के समय हम दोनों बराबर थे, लेकिन अब देख रहा हूँ– तुम ही जीत गए हो, मैं हार गया।" उल्लेखनीय है उस समय सर आशुतोष मुखर्जी कोलकाता हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस थे।

वकालत में भी सतीशबाबू ने असाधारण कृतित्व का प्रदर्शन किया। हाईकोर्ट में वकालत के समय उनके सुनाम के साथ–साथ अर्थोपार्जन भी उल्लेखनीय घटना है। हाईकोर्ट में वकालत के समय उनके मित्र आशुतोषबाबू को जितना यश एवं सम्मान मिला था, सतीशचन्द्र ने भी उतनी ही ख्याति प्राप्त की थी। यह उक्ति स्वयं आशुतोष महाशय की है। इस ख्याति एवं गौरव प्राप्ति के लिए सतीशबाबू का जन्म नहीं हुआ था। लगभग तीन साल उन्होंने हाईकोर्ट में वकालत की थी। उन्होंने देखा कि वकालत में 'सत्यरक्षा' संभव नहीं होती। इसलिए उन्होंने वकालत छोड़ दी। इस प्रसंग में सतीशबाबू ने एकबार कहा था – एक मुकदमा में उनके सवाल करने पर निम्न न्यायाधीश (Junior Judge) ने विरूद्ध पक्ष के मतावलम्बी होकर राय दी पर बाद में पुनर्निरीक्षण कर उच्च न्यायाधीश (Senior Judge) ने उनके मतावलम्बी होकर राय दी। इसके बाद विरूद्ध पक्ष के मुवक्किल ने उनके पास आकर कहा कि आपके मुवक्किल ने जाली दलील बनाया है। आप साधु प्रकृति के होकर भी इस प्रकार मिथ्या जाली दलील का पक्ष क्यों लेते हैं ? ऐसा कहकर वह उनके पाँव पकड़कर रोने लगा। सतीशचन्द्र ने अनुसंधान किया एवं उन्हें मालूम चला कि सचमुच उनके मुवक्किल का दलील जाली थी। मजबूरी से मुवक्किल ने ऐसा किया था। इस प्रकार गलत कार्यो को देखकर उनको अपने प्रति ग्लानि हुई एवं उन्होंने वकालत छोड़ दी। उनकी अंतिम कमाई यह 100 रूपए उन्होंने गंगा में फेंक दिया था, ऐसा कहा जाता है। लेकिन यह सत्य नहीं, पर बीच–बीच में वे पैसे तालाब में फेंक देते थे। 1893 ई० में उन्होंने गोसाँईजी के पास दीक्षा प्राप्त की और उसके बाद जीवन की गति संपूर्ण बदल गई।

महात्मा स तीशचन्द्र थे चिरकुमार एवं आदर्श ब्रह्मचारी। ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण नहीं करने से भी वे एक निष्ठावान ब्रह्मचारी से कुछ कम नहीं थे। उनका मन पहले से ही प्रस्तुत था, जब वे आध्यात्मिक प्रथप्रदर्शक श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी के संपर्क में आए। प्रभुजी के साथ उनका मिलना भी अति आकस्मिक एवं भगवत निर्दिष्ट था। उनकी दीक्षा प्राप्ति का विवरण अति आश्यर्चजनक है।

प्राथमिक अवस्था में सतीशचन्द्र को ईश्वर में विश्वास नहीं था। इन्द्रियग्राह्य जगत के भीतर और कोई सत्य है, वे यह विश्वास नहीं करते थे। वे कभी भी किसी

साधु–महात्मा की बात सोचते नहीं थे। विवेक के सहारे अपनी विचार बुद्धि से चलते थे। दूसरों की बातों पर उनकी आस्था नहीं थी। अपनी बुद्धि विचार पर उनका अधिक विश्वास था। इसलिए उस समय आदर्श मानव रूप में उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। स्वामी विवेकानंद के साथ उनका घनिष्ट सम्पर्क था। लेकिन उन्होंने कभी श्री रामकृष्ण परमहंस के साथ मिलने का प्रयास नहीं किया। योगी, साधु, संन्यासियों के प्रति उनकी ऐसी तीव्र उदासीनता थी। उनका मुख्य आदर्श था, विद्यानुशीलन, देश एवं मनुष्यों की सेवा एवं पवित्र नैतिक जीवनयापन। वे समझते थे कि नीति परायण जीवन से ही सर्वोत्तम अभीष्ट प्राप्ति सम्भव हैं। उनका ऐसा परिवर्तन हो सकता है, ऐसा उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था।

सतीशबाबू निष्ठावान एवं सदाचारी थे। हाईकोर्ट में वकालत करते समय वे श्री महेन्द्रबाबू (श्रीश्री रामकृष्ण कथामृतकार श्री 'म') के साथ झामापुकुर लेन् में 18 रूपए किराए के एक ही घर में रहते थे। उस समय महेन्द्रबाबू प्रायः परमहंसदेव के पास जाते रहते थे एवं अपनी डायरी में दैनन्दिन घटनाओं को लिखते रहते थे। सतीशचन्द्र श्री 'म' (मास्टर महाशय) को ग्रन्थ लिखने में सहायता करते थे। नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) वहाँ प्रायः आते थे एवं मधुर भक्ति संगीत द्वारा सबको आनन्द देते थे। उस समय परमहंस देव के संबंध में विभिन्न आलोचना होती थी, लेकिन सतीशबाबू कोई आकर्षण अनुभव नहीं करते थे। उन्हें देखने के लिए वे कभी दक्षिणेश्वर नहीं गए। उस समय वे गुरुवाद के विरोधी थे।

इसके कुछ दिन बाद जब वे अपनी माता एवं बहन के साथ भवानीपुर में रहते थे। उस समय एकदिन बहुत ऊँची आवाज में उन्होंने दैववाणी सुनी कि "ईश्वर हैं।" सतीशबाबू ने इस आवाज के संबंध में अंग्रेजी में कहा था– "Horizon to horizon" यह वाणी उन्होंने सुनी थी। यह देव वाणी सुनकर उन्होंने पास में खड़ी माता एवं बहन से पूछा, पर उन लोगों को वह उच्चध्वनि सुनाई नहीं पड़ी थी। इससे चकित होकर वे उसी क्षण घर से निकल पड़े एवं यथार्थ साधु के पास जाने के लिए उनका मन बहुत व्याकुल हो उठा। उन्होंने महेन्द्रबाबू (श्री 'म') के पास जाकर अपने मन की इच्छा व्यक्त की। उस समय परमहंसदेव अप्रकट हो गए थे। उन्होंने सोचा था कि महेन्द्रबाबू उनको काशीपुर उद्यानबाटी में उनके किसी गुरुभाई के पास ले जाएँगे, लेकिन महेन्द्रबाबू उन्हें एक सच्चा साधु दिखाने के लिए मसजिदबाड़ी स्ट्रीट में श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी के पास ले गए।

गोस्वामी प्रभुजी उस समय भक्तों को साधारण उपदेश दे रहे थे। गोस्वामीजी के उपदेशों को सुनकर वे मुग्ध हो गए। मनोरंजन गुहठाकुरता ने गोस्वामी प्रभु को सतीशबाबू के साथ परिचय कराया एवं सतीशबाबू को कोई भी प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित किया। पर वे चुपचाप बैठे रहे। इसके बाद कीर्तन आरंभ हुआ एवं

सतीशबाबू तन्मय हो गए। रात साढ़े आठ बजे तक उनको होश नहीं था। गोस्वामी प्रभुजी के कहने पर उनको थोड़ा प्रसाद दिया गया। वे प्रसाद लेकर घर चले गए। दैववाणी सुनने के बाद उनके मन में जो व्याकुल भाव हुआ था, उसका अवसान हुआ। इसके बाद दो–ढाई महीना उन्होंने गोस्वामी प्रभुजी की कोई खबर नहीं ली। बाद में एक मित्र के पास सुना कि मनोरंजनबाबू की पत्नी मनोरमादेवी को प्रायः समाधि होती है एवं गोस्वामीजी के निर्देश से वे लोग आकाशवृत्ति लेकर रहते हैं। पूरा परिवार गोस्वामीजी का शिष्य था। उनके मन में कुछ सहायता करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने मित्र से कहा कि अभी किसी से उधार लेकर एक मन चावल भेज दो एवं प्रति महीने में 60 रूपया वे दे सकते हैं।

उसी महीने से वे सऊथ सुबार्बन स्कूल में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए थे। वहाँ उनको 60 रूपए वेतन के रूप में मिलते थे। सप्ताह में दो दिन पढ़ाना था एवं बाकी समय में वे High Court में Practice करते थे। उस समय 60 रूपए का मूल्य आज की तुलना में बहुत अधिक था।

उन्होंने अपना नाम गुप्त रखकर तीन महीने 60 रूपये करके दान किया था। पहले से ही उनका विचार था कि असली भक्त को सहायता करने से वह भगवान के निकट पहुँचता है। मनोरमा देवी की समाधि देखने की इच्छा उनको नहीं थी। बाद में मनोरंजनबाबू के अनुरोध पर वे पाँच–छह बार मनोरमादेवी की समाधि देखने गए थे। उन्होंने किसी को गुरु नहीं माना था। इसके तीन कारण थे – पहला, स्वार्थसिद्धि के लिए गुरु क्यों करेंगे ? दूसरा, गुरु करने के बाद अगर उनका मन किसी दूसरे महापुरुष के प्रति आकृष्ट हो जाए तब क्या उपाय होगा ? तीसरा, गुरु चुनने की उनकी क्या सामर्थ्य है ?

सतीशबाबू के मित्र मनोरंजनबाबू गोस्वामी प्रभु के शिष्य थे। वे सोचते थे कि सतीशचन्द्र के समान सात्विक और उच्च विचार के व्यक्ति यदि गोस्वामीजी के पास दीक्षा लें तो साधना में बहुत उन्नति कर सकेंगे। शिष्य के श्री गुरुजी के श्रीचरण में अपनी मन की इच्छा व्यक्त करते ही गोसाँईजी ने आदेश किया, "कल सतीश को मेरे पास आने को कहना। कल 10 बजे उसकी दीक्षा होगी।"

सतीशबाबू यह सब कुछ भी नहीं जानते थे। उस दिन रात साढ़े 10 बजे आहार के बाद जब सतीशबाबू सोने जा रहे थे, अचानक मनोरंजनबाबू ने आकर कहा, "कल सुबह 10 बजे गोस्वामी प्रभु के पास आपकी दीक्षा होगी।" अचानक यह सुनकर वे घबरा गए एवं हाँ या ना कुछ भी नहीं कहकर मनोरंजनबाबू के साथ बाहर आए एवं कुछ दूर तक उनके साथ गए, फिर घर लौटकर सो गए। तीव्र चिन्ता के कारण बहुत देर तक नींद नहीं आई। बाद में उन्होंने सुना, "तुम्हें इतनी चिन्ता की क्या जरूरत हैं। जो तुम्हारा गुरु होगा कान पकड़कर तुम्हें ले जाएगा

और दीक्षा देगा।" यह सुनकर वे सो गए। दूसरे दिन सुबह सतीशबाबू ने सोचा कि उनका मित्र जरूर उनको श्री गोस्वामीप्रभु के पास ले जाने के लिए आयेंगे।

वे सुबह–सुबह घर से निकल पड़े ताकि मित्र के साथ उनकी मुलाकात नहीं हो। उन्होंने सोचा महापुरुष के सम्मोहिनी शक्ति में वे अपने सिद्धान्त को नहीं रख पायेंगे। इस डर से वे गोस्वामीप्रभु के घर के विपरीत रास्ते से जाने लगे। इस तरह सुबह से भटकते–भटकते उन्हें प्यास लगी। उन्होंने मन में सोचा कि अब सामने जो घर देखेंगे वहाँ जाकर पानी पीयेंगे। उस समय वे स्वाभाविक अवस्था में नहीं थे। वे यंत्र की तरह चले जा रहे थे। एक मकान के सामने आकर दरवाजा के पास उन्होंने एक युवक को बैठे हुए देखा। उसके पास उन्होंने पानी माँगा। यह सुनकर युवक ने कहा, "पिता के निर्देशानुसार आप ही का मैं इंतजार कर रहा था।" यह कहते–कहते युवक ने सतीशबाबू को लेकर एक कमरे में प्रवेश किया जहाँ पहले से ही एक आसन बिछा हुआ था। युवक के अनुरोध से वे उस आसन पर बैठ गए। उन्हें पानी के साथ अल्पाहार दिया गया। अब उन्होंने समझा कि जिसे टालना वे चाहते थे घूमते–घूमते उन्हीं के पास आ पहुँचे। वह युवक श्री गोस्वामी महाशय का पुत्र श्री योगजीवन गोस्वामी था। वे कैसे गोस्वामी महाशय के घर में पहुँच गए, यह सोच भी नहीं पा रहे थे। पूरी घटना उन्हें पहेली जैसी लगी। इतने में प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने हँसते हुए धीरे–धीरे कमरे में प्रवेश किया एवं करुण दृष्टि से सतीशबाबू की ओर देखकर कहा, "तुम सही समय पर आए हो। मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।" प्रभुपाद यह कहकर उनको लेकर दूसरे कमरे में गए जहाँ पहले से ही दो आसन बिछे हुए थे। गोस्वामी प्रभु ने सतीशचन्द्र से कहा, "तुम इस आसन पर बैठो, तुम्हारी दीक्षा होगी।" यह सुनकर सतीशचन्द्र विस्मित होकर उनकी बात का कोई प्रतिवाद नहीं कर सके। उन्होंने केवल कहा, "मैं तो यहाँ नहीं आना चाहता था। कैसे आया ?" गोस्वामी प्रभु ने कहा, "जो होना है, वह जरूर होगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। आज ही तुम्हारे दीक्षा ग्रहण का दिन पूर्व निर्धारित है।" सतीशचन्द्र इसका कोई उत्तर न देकर विनम्र भाव से आसन पर बैठ गए एवं गोस्वामी प्रभु ने उनको दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के समय सतीशचन्द्र के भीतर विचित्र अनुभूति का प्रकाश होने लगा। उस समय उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि प्रकाश स्तंभ की तीव्र रोशनी की तरह एक रोशनी उनके मस्तक पर पड़ी और उनके भीतर एक प्रबल शक्ति का खेल चलने लगा। वे पहले स्थूल शरीर एवं बाद में सूक्ष्म शरीर से निकले एवं एक अपूर्व आनन्द उनके सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगा। केवल यही नहीं, उन्होंने गुरुजी का यथार्थ रूप दर्शन किया एवं समझ गए कि गुरु–शिष्य का यह संबंध सनातन है। साथ–साथ उनकी अंतर्दृष्टि खुल गई। इस तरह 27 सितम्बर, 1893 ई० में उनकी दीक्षा हुई।

सद्गुरु दीक्षा प्राप्ति के साथ–साथ उनका सारा भ्रम अज्ञानता, संदेह, नष्ट हो गया। भगवान के अस्तित्व के बारे में उनको और कोई संदेह नहीं रहा। दीक्षा ग्रहण के बाद घर लौटते समय उनके मन में अनेक प्रश्न आए लेकिन ज्यादा देर तक वे सब नहीं टिके। जो सत्य लाभ उन्होंने किया, उससे सब संशय एवं संदेह दूर हो गया। सद्गुरुशक्ति की महिमा देखकर वे धन्य एवं कृतार्थ हो गए।

सतीशचन्द्र की दीक्षा की घटना से यह पता चलता है कि सब ईश्वर का विधान है – सब कुछ पूर्व निर्धारित रहता है, अन्यथा जिससे बचने के लिए उन्होंने इतना प्रयास किया, वहीं गोस्वामी प्रभु के पास ही उनको जाना पड़ा यंत्र की तरह, क्योंकि उसी दिन उनकी दीक्षा प्राप्ति का दिन निर्धारित था। कोई किसी प्रकार से भी इसे टाल नहीं सकता। सद्गुरु शिष्य का सब दायित्व ग्रहण करते हैं, इसलिए जिस दिन से सतीशचन्द्र ने गोस्वामी प्रभुजी की कृपा प्राप्त किया था, उसी दिन से सतीशचन्द्र गुरुजी के निर्देश से ही अपना कदम बढ़ाते रहे। दीक्षा के दिन से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक गुरुकृपा भी उनपर समानरूप में विद्यमान थी।

कुछ समय बाद एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने उनसे पूछा कि वे गंगा स्नान करते हैं या नहीं। सतीशचन्द्र ने कहा कि वे प्रतिदिन सूर्योदय के पहले स्नान करके घर लौटते हैं। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "सूर्योदय के बाद स्नान करने से भी होगा, उतना जल्दी उठने की कोई जरूरत नहीं है। "ब्रह्मचारी आदि को प्रातः स्नान करने के लिए क्यों कहा गया, यह पूछने पर उन्होंने कहा, "उन लोगों को जरूरत है, तुम्हें नहीं।" फिर कुछ दिन बाद गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "तुम्हें और गंगास्नान करने की जरूरत नहीं है, सुबह घर में स्नान करना।" उस समय प्रतिदिन पैदल चलकर गंगास्नान करने में उनको कष्ट हो रहा था, लेकिन उन्होंने यह बात गोस्वामी प्रभुजी से नहीं कही थी।

दीक्षाप्राप्ति के बाद सतीशचन्द्र अन्य गुरुभाइयों की तरह अधिक समय तक जप ध्यान करते थे। एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने उनसे पूछा, "कितने घंटे 'नाम' करते हो ?" सतीशचन्द्र ने कहा, "दस घंटे 'नाम' करता हूँ।" गोस्वामी प्रभु ने कहा, "इतना करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ दो घंटे 'नाम' करने से ही चलेगा। प्राणायाम की भी कोई जरूरत नहीं है।" गोस्वामी प्रभु किसी को 3 घंटे तो किसी को 12 घंटे नाम करने को कहते थे। इस बारे में पूछने पर प्रभुजी ने कहा कि उन्हें इतना अधिक साधन की जरूरत नहीं है। कुछ दिन बाद प्रभुजी ने उनको प्रतिदिन आधा घंटा 'नाम' करने को कहा और कुछ दिन बाद 'नाम' जप बन्द कर देने को कहा। जिस नाम से उनको इतना आनन्द होता था, प्रभुजी के निर्देश से वह बंद करना पड़ा। लेकिन उस समय नाम नहीं करने से भी प्रभुजी सर्वदा साथ में हैं यह

उन्हें अनुभव होता था। पर प्रभुजी के ऊपर निर्भरता उस समय दृढ़ नहीं हुई थी।

नामजप बंद करने के निर्देश से सतीशचन्द्र के मन में दुःख हुआ एवं उन्होंने सोचा कि उनकी अयोग्यता के कारण गुरुजी ने ऐसा निर्देश दिया है। शिष्य के कुछ नहीं बोलने पर भी सद्गुरु सब जानते हैं। इसलिए एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने शिष्य से कहा, **"अब तुम्हें और जप ध्यान कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। तुम्हारा जो कुछ करने का है वह अब तुम्हारा होकर मैं करूँगा। तुम्हें साधना की और जरूरत नहीं है। तुम्हारी वह अवस्था समाप्त हो चुकी है। लेकिन तुम्हारा कुछ कर्म अब भी बाकी है। वह तुम्हें ही करना पड़ेगा क्योंकि वह तुम्हारा होकर मैं नहीं कर सकता। तुम्हें लोकशिक्षा के लिए कार्य करना पड़ेगा, क्योंकि यही तुम्हारा प्रारब्ध कर्म है। उसी कर्म के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है। साधना के लिए नहीं।"**

गोस्वामी प्रभु ने वृन्दावन जाने से पहले एकदिन सतीशचन्द्र से कहा, "तुम्हें कुछ दिन नौकरी करनी पड़ेगी।" बहुत ही नाराजगी के साथ उन्होंने निर्देश स्वीकार किया। गुरुजी से उन्होंने कहा कि वे स्वयं कोई चेष्टा नहीं करेंगे, काम मिलने पर करेंगे। अचानक 200 रूपए की एक नौकरी उन्हें मिली एवं उन्होंने योगदान दिया। हर महीने अपना पूरा वेतन वे गोस्वामी प्रभुजी को भेज देते थे। इससे प्रभुजी को अशांति हो रही थी एवं कुछ ही दिनों में उनको इस काम से छुटकारा मिल गया।

उस समय एकबार सतीशचन्द्र दो महीने तक मकान का किराया नहीं दे सके। इसलिए वे नौकरी की चेष्टा करने लगे। गोस्वामी प्रभुजी ने उनको सपने में दर्शन देकर इतनी कम सहनशीलता के लिए किंचित डांटा। आश्चर्य की बात है बहुत जल्दी रुपए की व्यवस्था हो गई। उनको दिन में सोने की आदत नहीं थी। यह जानकर प्रभुजी ने उनको दिन में सोने का आदेश दिया एवं उनके पास ही सोने को कहा। सतीशचन्द्र एकादशी के दिन कुछ भी नहीं खाते थे, लेकिन एक एकादशी में उनको फलाहार करने का आदेश मिला।

सतीशचन्द्र के पिता कृष्णधन मुखोपाध्याय थियोसफिस्ट एवं प्रत्यक्षवादी थे। कृष्णधनबाबू ने सतीशचन्द्र को शादी करने के लिए कहा, लेकिन सतीशचन्द्र राजी नहीं हो रहे थे। उनके पिता क्रुद्ध होकर एक मुदगर लेकर पुत्र को एक कमरे में बुलाकर कहा, "मैं तुम्हारा जन्मदाता पिता हूँ– तुम्हारे इस देह की रक्षा या ध्वंस करने का अधिकार मेरा है। तू क्यों शादी नहीं करेगा ? इस प्रश्न का सदुत्तर नहीं मिलने से तेरी हत्या करूँगा।" सतीशचन्द्र ने उत्तर दिया, "मेरे लिए क्या अच्छा, क्या बुरा है, मैं नहीं जानता। मेरे गुरु गोस्वामी प्रभुजी जो कहेंगे, मैं वही करूँगा।" कृष्णधनबाबू पुत्र का यह उत्तर सुनकर गोस्वामी प्रभु के प्रति रूष्ट होकर अपने

मित्र रमेशचन्द्र मित्रा महाशय एवं अपनी पत्नी को साथ लेकर गोस्वामी प्रभु के पास गए। उन लोगों के वहाँ पहुँचते ही किसी ने गोस्वामीजी से कहा, "सतीशबाबू के पिता आए हैं।" गोस्वामीजी यह सुनते ही बोले, "सतीशबाबू के पिता आए हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।" कृष्णधनबाबू गोस्वामी प्रभुजी का इस तरह का व्यवहार देखकर घबड़ाकर बोलें– "यह क्या कर रहे हैं ? आपने मुझे प्रणाम किया ?" गोस्वामीजी ने कहा, "नहीं, मैंने आपको प्रणाम नहीं किया। आप के पीछे भारद्वाज ऋषि को देखकर मैंने उनको प्रणाम किया।" अन्यान्य बातें करके वे लोग चले गए।

बाद में गोस्वामीजी ने सतीशबाबू से पूछा, "आप विवाह क्यों नहीं करेंगे ?" सतीशबाबू ने कहा, "मेरे लिए क्या अच्छा, क्या बुरा, वह मैं नहीं जानता। यदि आप मुझे विवाह करने के लिए कहें तो मैं करूँगा। एकाधिक विवाह करने को कहें तो वह भी करूँगा। वेश्यागमन करने को कहें तो वह भी करूँगा।" इस उत्तर से संतुष्ट होकर गोस्वामी प्रभुजी ने उनको विवाह करने से छुटकारा दे दिया। आश्चर्य की बात है, इसके बाद उनके माता–पिता ने विवाह करने के लिए सतीशबाबू से कभी कुछ नहीं कहा। गोस्वामी प्रभु साधारणतः सबसे कहते थे, **"पिता, माता, पति जैसे भी हों, प्रत्यक्ष देवता मानकर उनलोंगों की सेवा पूजा करनी चाहिए। सब कार्य में उनका अनुगत होकर चलना चाहिए। गुरु के प्रति शिष्य का भी यही कर्तव्य है। भगवत ज्ञान से गुरु की सेवा–पूजा करनी चाहिए। बिना विचार किए उनका आदेश का पालन करना चाहिए। भगवान को प्राप्त करने का इससे सहज उपाय और नहीं है।** यही ऋषियों का कहना है।" गृहस्थों का क्या कर्तव्य है ?– इस प्रश्न के उत्तर में गोस्वामी प्रभुजी कहते थे, **"गृहस्थ लोग माता–पिता की भगवान जैसी सेवा करेंगे। माता–पिता को प्रत्यक्ष देवता मानकर पूजा करने से भगवान लाभ होता हैं। लोग यह समझते नहीं। जो भी हो, देवता जैसी पूजा कर सको या नहीं, भक्ति अवश्य करना।"**

सतीशबाबू ने सोचा माता की बात नहीं सुनना सुपुत्र का कार्य नहीं है। इसलिए विवाह के बारे में माता की इच्छा पूरी करने की इच्छा व्यक्त की। जननी ने पुत्र से कहा, "मेरे लिए तुझे विवाह नहीं करना पड़ेगा। मैं तो केवल तेरे बारे में सोचती हूँ। मेरी खुशी के लिए तुझे विवाह नहीं करना पड़ेगा। मैं हमेशा तुझसे प्रसन्न हूँ।" इस तरह विवाह–संकट से मुक्त होकर सतीशचन्द्र ने जीवनभर ब्रह्मचर्य पालन किया एवं साथ में माता–पिता की प्रसन्नता भी अर्जित की।

इस बारे में सतीशचन्द्र ने अपने जीवन की एक घटना में कहा है–

"मैं उस समय (1897–1898) 49 नं० मछुयाबजार स्ट्रीट के एक मेस में रहता था। महामारी के डर से लोग कोलकाता छोड़कर जा रहे थे। मेरे माता–पिता एवं

अन्य सब लोग हुगली जिले के बन्दीपुर गाँव में (मेरा जन्मस्थान) चले गए। श्रीश्री गुरुजी उस समय कोलकाता में ही थे। लेकिन हर शनिवार वे मुझे माता–पिता के पास भेज देते थे एवं साथ में दो–तीन रूपए की चीजें ले जाने को कहते। यह भी कहते थे कि मैं वहाँ पहुँचकर पिता के चरणों में मस्तक अवनत करके वह सब चीजें उनको अर्पण करूँ। प्रति सप्ताह में पिता के पास जाकर मैं ऐसा ही करता था। उनका उपदेश था कि ऐसा करने से पिता मेरे प्रति प्रसन्न होंगे एवं इससे मेरी आध्यात्मिक उन्नति का रास्ता सहज होगा।"

सतीशबाबू कहते थे, **"भगवत साधन नहीं करने से जीव का देह में आत्मबोध एवं अंहकार नष्ट नहीं होता है। दूसरी तरफ माता–पिता की सेवा–पूजा ही उनकी प्रसन्नता लाभ का एकमात्र उपाय है। उस प्रसन्नता को लाभ करने से पुत्र की पारमार्थिक उन्नति का रास्ता खुल जाता है।"**

गुरुजी के निर्देश से ही सतीशचन्द्र कोलकाता में 'डॉन सोसाइटी' की स्थापना की। सोसाइटी का कार्य ठीक से चल रहा था। इसी समय एकदिन सतीशचन्द्र ने गुरुजी से कहा, "उनको यह सोसाइटी का काम और कितने दिन करना पड़ेगा ?" गोसाँईजी ने कहा, "समय आने पर उनको कार्य बन्द करने के लिए कहेंगे।" सोसाइटी का कार्य एवं 'डॉन' पत्रिका सम्पादन 1898 ई० से 1914 ई० तक चला।

जिस व्रत पालन के लिए उनका कर्मजीवन सुनिर्दिष्ट था, वह था शिक्षादान। यह काम सतीशचन्द्र ने दो प्रकार से किया। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कुछ लड़कों को चुनकर अपने पास रखकर उनकी बुद्धि का विकास एवं चरित्रगठन में उन्होंने सहायता की। सिविलियन किरणचन्द्र डे, सर् अतुलचन्द्र चटर्जी, जज चारूचन्द्र विश्वास आदि उनके इस कार्य का निदर्शन हैं। दूसरे श्रेणी के निदर्शन स्वरूप हारानचन्द्र चाकलादार, विनय कुमार सरकार, रवीन्द्रनारायण घोष, सतीशचन्द्र गुह, कृष्णदास सिंह राय आदि का नाम उल्लेखनीय है।

विदेश में भी 'डॉन' पत्रिका ने ख्याति अर्जित की थी। इस तरह की ख्याति 'डॉन" पत्रिका के पहले और किसी भारतीय पत्रिका को नहीं मिली थी। पत्रिका के सर्वप्रधान लेखक सतीशचन्द्र थे, लेकिन नया लेखक तैयार करने की क्षमता भी उनमें थी।

प्रचलित कॉलेज की शिक्षा की असंपूर्णता एवं त्रुटि यथाशक्ति दूर करने का उद्देश्य लेकर सतीशचन्द्र आगे बढ़े। 'मेट्रोपोलिटन इनस्टिट्उशन' के अध्यक्ष एवं 'दि इंडियन नेशन' पत्रिका के संपादक नरेन्द्र घोष महाशय इस सोसाइटी के सभापति थे। सतीशचन्द्र थे जनरल सेक्रेटरी। इस सोसाइटी के सदस्यगण

साधारण कॉलेज की पढ़ाई के साथ–साथ डॉन सोसाइटी से शिक्षा प्राप्त करते थे। अर्थात् साधारण कॉलेज की पढ़ाई में जो कमी थी, उसे यह सोसाइटी पूरी कर देती थी। इसलिए सब जगह इसका नाम फैल गया। इस सोसाइटी में विभिन्न भाषा के सदस्य भी थे। इनमें डा० राजेन्द्र प्रसाद का नाम विख्यात है। छात्रों का चरित्र गठन, उन लोगों को स्वाधीन चिन्ता एवं आत्मनियंत्रण का अभ्यास कराना, उन लोगों में देशात्मबोध जगाना, ये सब डॉन सोसाइटी की शिक्षा का लक्ष्य था। डॉन पत्रिका के माध्यम से यह जाना जाता है, किस तरह यह कार्य बढ़ा। डॉन सोसाइटी स्वदेशी आन्दोलन का प्रधान प्राणकेन्द्र था। विदेशी द्रव्य वर्जन एवं देशी शिल्प के पुनरुत्थान को यह सोसाइटी प्रेरणा देती थी।

दो साल बाद डॉन सोसाइटी का कार्य समाप्त हुआ। तब वह जातीय शिक्षा परिषद एवं बंगाल नेशनल कॉलेज में रूपांतरित हुआ। इन दोनों प्रतिष्ठानों की भी सतीशचन्द्र ने ही प्रतिष्ठा की थी। कॉलेज के अध्यक्ष एवं सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए, श्री अरविन्द्र एवं सतीशचन्द्र। ऐसे तो कॉलेज परिचालना का सारा काम सतीशचन्द को ही करना पड़ता था, क्योंकि श्री अरविन्द 'वन्देमातरम्' पत्रिका के संपादन एवं विभिन्न राजनैतिक कार्यों में व्यस्त रहते थे। 1907 ई० के अगस्त महीने में श्री अरविन्द ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया। इसलिए सतीशचन्द्र को आनुष्ठानिक रूप में अध्यक्ष पद भी ग्रहण करना पड़ा। इस तरह कठिन परिश्रम के फलस्वरूप 1908 ई० के अंत में वे अत्यन्त अस्वस्थ हो गए एवं कॉलेज के कार्य से इस्तीफा दे दिये। बाद में थोड़ा स्वस्थ होने पर फिर डॉन पत्रिका के संपादन में नियुक्त हुए। फिर पॉच साल काम करने के पश्चात् 1913 ई० में वे फिर अस्वस्थ हो गए एवं पत्रिका बंद करके कोलकाता से काशी चले गए। वहाँ आठ साल रहने के बाद 1922 ई० में भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करके फिर 1930 ई० में काशी आए एवं जीवन के अंतिम 18 साल वहाँ बिताए।

उस समय वे स्वयं कोई विशेष काम पर नियुक्त नहीं थे लेकिन उनके व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर अनेक नेता एवं कर्मी सुपरामर्श के लिए उनके पास आते थे। इन लोगों में पंडित मदनमोहन मालवीय, शिवप्रसाद गुप्त, डा० भगवानदास, आचार्य नरेन्द्र देव, पंडित गोपीनाथ कविराज आदि मनीषीगण शामिल थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के सर यदुनाथ सरकार, जय गोपाल बन्धोपाध्याय, श्यामाचरण डे आदि अध्यापक सतीशचन्द्र के मित्र थे। एच०बी० मालखानि, एच०एल० चाबलानि, जे०बि० कृपलानि, प्रिंसिपल के०पी०एस० मालानि आदि सिंधी अध्यापक भी सतीशचन्द्र के संस्पर्श में आकर उनके अनुरागी बन गए।

इस समय नेशनल कॉलेज प्रतिस्थापित करके सतीशचन्द्र उसके प्रथम आचार्य हुए। देश की जनता को जागृत करने के लिए सतीशचन्द्र का प्रयास

अतुलनीय है। दीर्घ 16 साल बाद 1914 ई० में गुरुजी के निर्देश से उनके कार्य की समाप्ति हुई। गुरुजी के निर्देश से पहले ही हाई कोर्ट की वकालत उन्होंने छोड़ दी थी। फिर उनके निर्देश से ही कुछ दिन गृहशिक्षक का काम करके उन्होंने जीवन यात्रा निर्वाह किया था।

14/2 नं० सीताराम घोष स्ट्रीट में गोसाँईजी कुछ दिन थे। बाद में वहाँ से वे श्रीवृन्दावन चले गए। उस समय सतीशचन्द्र उसी घोष स्ट्रीट वाले घर में रहने लगे। वहाँ रहते समय प्रभुजी जहाँ आसन में बैठते थे, सतीश उसी स्थान पर आसन बिछाकर पूजा आदि द्वारा आसन रक्षा करते थे। दीक्षा के पहले से अब तक सतीशबाबू को मुक्तिलाभ की विशेष आकांक्षा थी। वे सोचते थे, इस माया से छुटकारा मिलने से ही मुक्तिलाभ होगा। मन की इस अवस्था में एकबार गहरी रात में उन्होंने स्वप्न देखा, एक कुरूप पुरुष सतीशबाबू से कह रहा है, "तुम तो मुक्ति चाहते हो, यह मंत्र ग्रहण करो। इसे ग्रहण करने से ही मुक्ति होगी।" सतीशबाबू ने मंत्र ग्रहण करने से अस्वीकार करके कहा, "मैं आपके पास क्यों मंत्र ग्रहण करूँगा ? मुझे जो भी जरूरत होगी गुरुजी देंगे।" यह सुनकर महापुरुष ने मुग्ध होकर कहा, "मैं तुम्हारी गुरु–भक्ति देखकर प्रसन्न हुआ। तुमने मेरे पास कुछ भी नहीं लेना चाहा। इससे मैं खुश हूँ। तुम्हारी जो भी जरूरत हो, उसे तुम गुरुजी से ही प्राप्त करना। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ – तुम इससे भी बड़ी चीज पाओगे।" यह कहकर वह कुरूप महापुरुष अदृश्य हो गए। सतीशचन्द्र को और नींद नहीं आई। सुबह उठकर अपना प्रातः कृत्य समाप्त करके वे गुरुजी के पास गए एवं उनके श्रीचरणों में सारी बातें निवेदन की। उन्होंने महापुरुष का परिचय जानना चाहा। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "वे महापुरुष एक सिद्ध महात्मा थे। ये लोग गभीर रात में चारों ओर विचरण करते हैं एवं योग्य आधार में वस्तु दान करते हैं।" बाद में गोस्वामीजी ने शिष्य से प्रश्न किया कि महापुरुष का अयाचित दान उन्होंने क्यों ग्रहण नहीं किया ? उत्तर में सतीशचन्द्र ने कहा, "मुझे लगता था उसे ग्रहण करने से मेरा हृदय व्यभिचार दोष से दूषित होगा। यदि कुछ ग्रहण करना ही है तो आपसे ग्रहण करूँगा। उनके पास क्यों ? यदि मुझे कुछ आवश्यक हो एवं यदि आप उसे देना उचित समझें तो आप ही देंगे। मैं क्यों माँगू ? लेकिन उस महापुरुष की एक बात मुझे समझ में नहीं आई। मैं जानता हूँ, सब दुःखों की निवृत्ति ही मोक्ष है। मुक्ति से बड़ी ऐसी क्या चीज है जिसे प्राप्त करने के लिए महापुरुष ने मुझे आशीर्वाद दिया।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "मुक्ति से भी बड़ी चीज है। उसी परमवस्तु के अभाव से अनेक सिद्ध योगी एवं भक्त महापुरुष प्रार्थना कर रहे हैं। मुक्ति के द्वारा जन्म–मरण से निवृत्ति मिलती है यह सत्य है लेकिन मानव जन्म सफल नहीं होता।" वह वस्तु क्या है यह जानने की व्याकुलता प्रकाश करने पर गोस्वामी

प्रभुजी ने शिष्य सतीशचन्द्र के कान में बहुत मृदु स्वर में लेकिन सुनिश्चितरूप में कहा, **"हाँ, हाँ, मुक्ति से अति बड़ी चीज है। जानते हो वह वस्तु क्या है ? उसका नाम है भगवत्प्रेम, जिसके लिए मुक्त पुरुषगण सारे दुःख की निवृत्ति होने पर भी प्रार्थना कर रहे हैं। यह अति दुर्लभ वस्तु हैं। सबको नहीं मिलती है।"**

इसके बाद कोलकाता से पुरीधाम यात्रा के पूर्व गोस्वामी प्रभुजी शिष्य को एकांत में बुलाकर कुछ आदेश दिए एवं उसे यथा–संभव पालन करने को कहा। उन्होंने सतीशचन्द्र को संपूर्ण रूप में भगवान के ऊपर निर्भर रहने को कहा। इसे आकाशवृत्ति व्रत कहा जाता है। कुछ गृहस्थ शिष्यों को भी गोसाँईजी ने यह व्रत दिया था। गोसाँईजी सतीशचन्द्र को निर्भरता के विषय में जो निर्देश दिए थे संक्षेप में वह निम्न लिखित है –

1. **अर्थ उपार्जन के लिए कोई भी चेष्टा न करना।**
2. **किसी के पास से अर्थ या किसी वस्तु को नहीं माँगना।**
3. **अपने अभाव के विषय में किसी को कौशलपूर्वक या किसी भी तरीके से प्रकाश न करना।**
4. **काशी में किराए के किसी दुमंजिले मकान में बाबू की तरह रहना।**

यह आदेश जैसा अद्‌भुत था वैसा ही सुकठोर था। लेकिन गुरुजी के अनुगत सतीशचन्द्र ने निर्देशों का निष्ठा के साथ जीवन के अंतिम दिन तक पालन किया। संपूर्ण आकाशवृत्ति पर उनको चलना पड़ा था। लेकिन कोई अभाव उनको नहीं था। भगवान पर निर्भरता एवं गुरु के प्रति श्रद्धा से ही यह संभव हुआ था, सतीशचन्द्र के लिए। इस विषय में सतीशचन्द्र ने कहा था, "मानो रस्सी पकड़कर मैं आकाश में लटक रहा हूँ – I am Suspanded in mid air. रस्सी वे पकड़े हैं लेकिन हमेशा डर है रस्सी से हाथ छूटने पर गिर न जाऊँ क्योंकि इस रस्सी को पकड़ने के लिए मेरी कोई शक्ति नहीं है। इसलिए हमेशा डर से जीवन बिताना पड़ता है। इस कारण मेरी दृष्टि सर्वदा उनके प्रति एवं उनके दया के प्रति रहती है।"

सतीशचन्द्र ने एक पत्र में योगक्षेम के बारे में गीता का 9/22 श्लोक का अर्थ इस प्रकार लिखे थे – "जो श्रीभगवान की चिन्ता में सर्वदा निमग्न रहकर ईश्वर की उपासना करता है अर्थात् अपनी चेष्टा द्वारा जीविका निर्वाह नहीं करता है, उन लोगों के लिए ही "योगक्षेम" अवस्था कही जाती है। उन लोगों को भगवान ने "नित्ययुक्त" पुरुष कहा है। वह अवस्था हम लोगों की अभी नहीं हुई है। वर्तमान अवस्था में पूर्व जन्म अर्जित पुण्यफल से ही हम लोग खा–पी रहे हैं। यह भी

उनका दान है। लेकिन योगक्षेम अवस्था में अपने प्रारब्ध पर निर्भर नहीं करना पड़ता। जब तक जीव में कर्तृत्व का अभिमान रहेगा, वह संपूर्ण रूप से भगवान पर निर्भर नहीं रह सकेगा। जब जीव का चित्त देहात्माभिमान छोड़कर कर्तृत्वभिमान त्याग देना सीखेगा, तभी उस जीव का भार श्रीभगवान ग्रहण करेंगे। तभी उस जीव को नित्याभियुक्त पुरुष कहा जा सकता है। वह पुरुष केवलमात्र श्रीभगवान की ही चिन्ता करता है। इस श्रेणी का जीव ही प्रकृत रूप में निष्काम हो सकता है।"

सम्पूर्ण रिक्त एवं निःस्व सतीशचन्द्र का दिन कैसे चलता था, यह सुनने में भी आश्चर्य लगता है। उनका अर्थागम का सारा रास्ता बंद हो चुका था। फिर भी गुरुकृपा से हर महीना इतना अर्थ आता था कि उनके खर्च के बाद भी बच जाता था। बचा हुआ पैसा वे सत्कार्यों में व्यय करते थे। प्रयोजन से ज्यादा अर्थ वे संचय नहीं करते थे। एकदिन राजा श्रीगौरीशंकर गोयनका उनके दर्शन करने आए। उन्होंने देखा कि सतीशचन्द्र एक फटा हुआ खद्दर का कमीज पहनकर बैठे हैं। यह देखकर उनके मन में बहुत दुःख हुआ। उन्होंने दूसरे दिन कर्मचारी द्वारा एक नया कमीज भेजा एवं सतीशचन्द्र से अनुरोध किया उसे पहनने के लिए। सतीशचन्द्र ने वह कमीज लौटा दिया एवं कहा, "उपस्थित इस कमीज से ही मेरा काम चल रहा है। नए कमीज की जरूरत नहीं है। इसे ग्रहण करने से गुरुजी असंतुष्ट होंगे। आप मेरे पास धर्मालोचना एवं सत्संग करने आते हैं या मेरे परिधान में कैसा वस्त्र है, कैसा कमीज है वह देखने आते हैं। यदि इसके प्रति आपकी दृष्टि हो तो कष्ट उठाकर उतने दूर से यहाँ आने की कोई सार्थकता नहीं है।"

उक्त घटना से यह पता चलता है कि सतीशचन्द्र कितने उच्च स्तर पर पहुँच गए थे। अपने प्रति उनकी कोई दृष्टि नहीं थी। गुरुजी का निर्देश पालन ही उनका एक मात्र कार्य था। गुरुजी के देहत्याग से सतीशचन्द्र में गुरु–विरह नहीं देखा गया क्योंकि वे अनुभव करते थे कि देहत्याग के बाद भी गुरुजी उनके नित्य साथी हैं एवं प्रतिक्षण उनको निर्देश दे रहे हैं। इसलिए गुरुजी के तिरोभाव अनुष्ठान में वे योगदान नहीं देते थे।

काशी में रहते समय एक आश्चर्यजनक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। वहाँ वे किराए पर रहते थे। हर महीने के दो–तीन तारीख में मकान–मालिक को किराया देना पड़ता था। एकबार दो महीना का किराया बाकी रह गया। मालिक ने एक व्यक्ति को भेजा। पैसा माँगने पर सतीशचन्द्र ने कहा, "पैसा नहीं आने के कारण किराया नहीं दे सके। पैसा आने से किराया दे देंगे।" पैसा माँगने वाला ने कहा, "किराया हर महीना के दो–तीन तारीख को देना है, दो महीना का किराया बाकी है। ठीक समय पर पैसा नहीं मिलने से मालिक अपमान कर सकते हैं।" उत्तर में सतीशचन्द्र ने कहा, "पैसा के लिए अगर

गोसाँईजी इस वृद्ध का अपमान कराना चाहते हैं, तो अपमानित होना पड़ेगा। मेरे पास पैसे नहीं है। अभी मै आपको पैसा कहाँ से दूँ ? उधार भी नहीं कर सकता। किसी को अभाव के बारे में कहना भी गुरुजी का निषेध है। आप निश्चिन्त रहें। गोसाँईजी पैसा के लिए मुझे कभी भी अपमानित नहीं होने देंगे।" इस घटना के बाद जिस दिन पैसा आया, उसी दिन मकान मालिक ने सतीशबाबू के पास आकर कहा कि वह विशेष काम से बाहर गया था। इसलिए समय पर किराया लेने नहीं आ सका। उन्होंने यह भी कहा कि अगर दो महीने का किराया देने में असुविधा हो तो अभी एक महीने का देने से हो जाएगा। सतीशबाबू ने दो महीने का किराया एक साथ दे दिया। इस तरह हर महीने उनके पास अर्थ आता था। खर्च करने के बाद बचा हुआ पैसा वे पुरीधाम में श्रीश्री जगन्नाथदेव के भोग के लिए भेजते थे या कभी–कभी विभिन्न सत्कार्यों में व्यय करते थे। संचय की इच्छा कभी भी नहीं रखी। उनके तिरोधान के बाद भी उनके ये सब काम बन्द नहीं हुए। उनके भक्तवृन्द ये सब कार्य कर रहे हैं।

सतीशचन्द्र के जीवन को कई स्तरों में विभक्त किया जा सकता है। पहला स्तर 1865 ई० से 1897 ई० तक उस समय उनका शिक्षा, अध्ययन, वकालत, दीक्षा एवं अन्त में अर्थोपार्जन की समाप्ति हुई एवं आध्यात्मिक जीवन की प्रस्तुति हुई। 1897 ई० से 1913 ई० तक यह 16 साल था उनका जीवसेवा के लिए। उस समय वे एकान्त वास एवं योगसाधना में मग्न थे। निःस्वार्थ रूप में जनसेवा एवं लोकशिक्षा के लिए आत्मनियोग करना ही उनका प्रधान कर्तव्य था। उस समय डॉन सोसाइटी, भागवत चतुष्पाठी प्रतिष्ठा करके उन्होंने जन जागरण के लिए सर्व शक्ति नियोग किया। इस समय उन्होंने कोलकाता में जातीय महाविद्यालय (National College) की प्रतिष्ठा की। उनकी इस निःस्वार्थ जनसेवा के लिए बंगाली समाज उनका चिर कृतज्ञ रहेगा। यही जातीय महाविद्यालय आज कोलकाता में जादवपुर यूनिवर्सिटी के नाम से प्रसिद्ध है। 1913 ई० से 1930 तक उन्होंने काशीधाम में रहकर विभिन्न दर्शन–शास्त्रों का अनुशीलन किया। उनके पुस्तकालय में प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य से लेकर इतिहास, विज्ञान, दर्शन, योग, आगम, निगम आदि अनेक ग्रन्थ सुरक्षित थे। उस समय वाराणसी के विख्यात पंडित महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के साथ उनका परिचय हुआ। उन्होंने सतीशचन्द्र को अनेक धर्मग्रन्थ दिए थे। ये दोनों महात्माओं के मिलन से सचमुच मणिकांचन का योग सूचित होता है। महामहोपाध्याय महाशय कहते थे कि सतीशचन्द्र के घनिष्ट सान्निध्य से उनको बहुत लाभ हुआ। गोपीनाथ कविराज उन्हें गुरु के समान श्रद्धा करते थे। इस समय कुलदानंद ब्रह्मचारीजी का 'सद्गुरु संग' ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा था। सतीशचन्द्र ने अपने गुरुभाई के इस अपूर्व ग्रन्थ

का संशोधन किया था। तिरोधान के पहले उन्होंने उनके ग्रन्थागार के दुर्लभ ग्रन्थों को काशी में एक जनहितकर प्रतिष्ठान को दान कर दिया था। 1930 ई० से 1948 ई० था उनका भगवत आराधनाकाल। भगवत साक्षात्कार के बाद ही इस समय की सूचना हुई। जन–साधारण, उनकी भगवत् आराधना के बारे में, कुछ भी नहीं जान सका। वे इसे गोपनीय रखते थे।

सतीशचन्द्र कहते थे, "साधक जीवन की समाप्ति में साधक को मुक्ति प्राप्ति होने के बाद वह अनुभव करता है कि मैं श्रीभगवान का हूँ। जब तक मुक्त नहीं होता तब तक यह अनुभूति साधक जीवन में नहीं आती। पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करने से 'मैं' उनके ऊपर निर्भरशील हूँ – ऐसा भाव भी नहीं रहता। 'प्रभु ने मुझे कृपापूर्वक ग्रहण किया है' केवल यही सर्वदा ह्रदय में जागृत होता है। इस शरीर के द्वारा जो कुछ हो रहा है, सब उनका काम है। वे इस शरीर को यंत्र बनाकर काम करा रहे हैं।"

सर्वकर्मफल भगवान श्रीनारायण के चरण कमल में समर्पण करना ही सतीशबाबू के जीवन का आदर्श था। वह कर्म कोई एक विशेष कर्म नहीं है। वह कर्म शरीर, वाक्य, मन, इन्द्रिय आदि द्वारा हो सकता है या वह एक जन्म या अनेक जन्म के अभ्यास के द्वारा हो सकता है। वे कहते थे, "भगवान या गुरु की प्रसन्नता का लाभ करना ही साधक के जीवन का प्रधान उद्देश्य होना चाहिए। साधना के सर्वस्तर पर सबसे पहले कर्तृत्वाभिमान नाश करना चाहिए। यह अभिमान जितना क्षीण होता जाएगा, उतना ही भगवत्–कर्तृत्व अनुभव होगा एवं साधना के लक्ष्य के निकटवर्ती होगा। भगवत् विमुखता सारे दुःखों का मूल है। श्री गुरुजी के चरण में आत्मसमर्पण करना साधक का सर्वप्रधान कर्तव्य है। इससे अहं का विनाश होता है।" वे कहते थे, **"मुक्ति के पूर्व अलौकिक एवं यौगिक शक्ति का विकास होने से विपदा या पतन की संभावना रहती है, लेकिन मुक्त पुरुष के जीवन में उन सब शक्ति के विकास से कोई डर नहीं रहता। भगवत् प्रेम लाभ करना ही एकमात्र लक्ष्य है, इसलिए साधक को पूर्ण रूप में भगवान के चरणों में आत्मसमपर्ण करना पड़ता हैं। शक्ति, आध्यामिक अनुभूति, विभूति आदि बाहर की चीजें हैं। इन सब विषय पर बिन्दुमात्र आसक्ति होने से भगवत्प्रेम बहुत दूर चला जाता हैं। साधक को सर्वदा याद रखना है कि वह संपूर्ण रूप में श्रीभगवत्चरणों में समर्पित हो। ऐसा करने से मन में अभिमान नहीं होता। साधक का ऐसा भाव होने से उनकी कृपा से नित्य नई–नई आध्यामिक उपलब्धि होती रहती है, लेकिन असली भगवत् भक्त की दृष्टि इन सब पर नहीं रहती।"** सतीशचन्द्र ने दृढ़तार्वूक कहा है, **"जप, ध्यान, पूजा, पाठादि साधना का चरम उद्देश्य नहीं है। साधक का**

एकमात्र लक्ष्य होगा भगवत्प्रेम प्राप्ति के लिए गुरुजी का आदेश पालन करना। शिष्य की साधना की तब तक जरूरत है, जब तक वह पूर्ण रूप से गुरु का अनुगत नहीं बन जाता। एकबार आश्रित हो जाने से शिष्य के लिए गुरु ही सब कुछ करते हैं। श्रीगुरुजी का पादपद्म आश्रय करके रहने से शिष्य को और कुछ भी नहीं करना पड़ता। गुरुजी की कृपा से शिष्य का सब काम धीरे–धीरे होता है।" इस महासत्य को सतीशचन्द्र ने उपलब्ध किया था, इसलिए गुरुजी का आश्रय पाने के बाद वे गुरुजी की सम्मति के बिना किसी भी कार्य को नहीं करते थे।

एकदिन उनके दर्शन के लिए संध्या के समय कई भक्त उपस्थित हुए, लेकिन उन्हें नहीं देखकर इधर–उधर ढूँढ़ने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि एक अंधेरे कमरे में मोमबत्ती एवं माचिस हाथ में लेकर गोसाँईजी के फोटो के सामने सतीशचन्द्र खड़े हैं। बत्ती न जलाकर इस तरह खड़ा रहने का कारण पूछने पर सतीशचन्द्र ने उत्तर दिया कि गोसाँईजी बत्ती जलाने का आदेश नहीं दे रहे हैं, इसलिए बहुत देर से इस तरह खड़ा हूँ। कोई दस मिनट बाद उन्होंने बत्ती जलाई। इससे पता चलता है कि जीवन के हर काम वे गुरुजी के निर्देश से ही करते थे। ऐसे गुरुनिष्ठ शिष्य निःसन्देह दुर्लभ हैं। महात्मा सतीशचन्द्र की यह घटना स्वामी श्री नारायणानन्द तीर्थ महाराज ने स्वयं प्रत्यक्ष की थी।

एकबार काशीधाम के श्रीश्री विजयकृष्ण मठ में वृन्दावनधाम से एक पण्डा आया था। साधारणतः पण्डे लोग साल में एकबार भक्तों के पास जाते हैं एवं जो कुछ प्रणामी मिले उसे अपने लिए एवं साधु सेवा में खर्च करते हैं। श्री दरवेशजी महाराज के शिष्य स्वामी गोविन्दानन्दजी उनको लेकर सतीशचन्द्र के पास गए। सतीशचन्द्र के पास उस समय अर्थ आदि नहीं था इसलिए वे पण्डे को कुछ भी नहीं दे पाए। गोविन्दानन्दजी जब पण्डे को लेकर नीचे उतर रहे थे, तब अचानक सतीशचन्द्र ने उनसे थोड़ा अपेक्षा करने के लिए कहा। सतीशचन्द्र ने एक परिचित व्यक्ति के पास से पैसा उधार लेकर पण्डे को प्रणामी दी। गोविन्दानन्दजी ने कहा, "आप तो पहले भी इस प्रकार उधार लेकर दे सकते थे ?" उस समय उन्होंने गोविन्दानन्दजी से कहा, "मेरे पास कुछ भी नहीं था। तुम लोग जब चले जा रहे थे उस समय अचानक गोस्वामी प्रभुजी ने प्रकाशित होकर कहा ब्रजवासी पण्डा आशा लेकर आया है – उसे कुछ देना चाहिए। पाँच रूपए उधार करके उनको दे दो। "(स्वामी गोविन्दानन्दजी के पास से संगृहीत)

सतीशचन्द्र साधना के तीन स्तरों की बात कहे हैं। पहले स्तर में शिशुभाव में जीव–सेवा। प्रत्येक जीव को भगवान की संतान सोचकर जाति, वर्ण का विचार नहीं करके सेवा करना। द्वितीय स्तर है, शास्त्रानुवर्तन एवं भगवदाराधना, तृतीय

स्तर में भगवान के साथ साधक का साक्षातरूप में संबंध स्थापित होता है। ये तीनों स्तरों को पार करके साधक अवस्था की समाप्ति होने से तब असली भगवद्–भजन आरंभ होता है। महात्मा सतीशचन्द्र ने अपने जीवन में इन सब स्तरों को पार किया था। उनकी भगवदाराधना के विषय में साधारण लोग कुछ भी नहीं जान सके थे।

गोस्वामी प्रभु कहे थे, "सतीशचन्द्र ने पिछले दो जन्मों में संन्यास–धर्म पालन किया हैं एवं वर्तमान जन्म उनका शेष जन्म है।" यह जन्म भी उन्होंने संन्यासी की तरह बिताया। जीवन के अंतिम 18 साल उनके घर में रसोई नहीं हुई थी। एक भक्त के घर से श्रीगुरुजी का प्रसादान्न भेजा जाता था। प्रतिदिन वे उसे अत्यन्त श्रद्धा के साथ ग्रहण करते थे। दीर्घ 18 साल की एकांत साधना एवं गुरुकृपा से उन्होंने भगवत्–प्रेम लाभ किया था। यही था उनका परमपुरुषार्थ।

भारत के महान् पुरुषों से उनका घनिष्ट परिचय था। आदर्श गुरुभक्त ऋषिकल्प सतीशचन्द्र के प्रति वे लोग गुरु की भांति श्रद्धा–भक्ति रखते थे। उनमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, भारत रत्न डा० राधाकुमुद मुखोपाध्याय, डा० हारानचन्द्र चाकलादार, डा० विनय कुमार सरकार, डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता, सर अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि मनीषीवृन्द थे। उनके अनन्यतम बाल्यबंधु सर आशुतोष मुखोपाध्याय की बात पहले ही कही गई है।

गोस्वामी विजयकृष्णजी ने सतीशचन्द्र से कहा था, "अंहिसा के पथ पर चलकर भारत वर्ष का स्वाधीनतालाभ संभव है एवं वह स्वाधीनता कल्याणकारी भी होगी।" इसलिए सशस्त्र क्रान्ति का सतीशचन्द्र ने कभी भी समर्थन नहीं किया था। गाँधीजी ने जब अंहिसा आन्दोलन प्रारम्भ किया तब उनके साथ सतीशचन्द्र का आन्तरिक मेल संस्थापित हुआ। सतीशचन्द्र की चिंतनधारा एवं लेखनी शक्ति अंहिसा आन्दोलन की सेवा में नियोजित हुई थी। सतीशचन्द्र अपने एकान्त सेवक कृष्णदास सिंहराय को गाँधीजी के सेक्रेटरी का काम करने के लिए भेजे थे।

1922 ई० में गाँधीजी के जेल जाने पर सतीशचन्द्र 'Young India' पत्रिका के संपादन में सहायता करने के लिए साबरमती आश्रम में जाकर कुछ दिन रहे। कुछ दिन बाद वे आश्रम से मुम्बई आए एवं वहाँ से कोलकाता लौटे। उन्होंने पाँच साल कोलकाता में बिताए। उस समय उनके 'प्रबन्धादि' विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाश होने लगी। बंगाल में चरखा का प्रचलन, रूई का उत्पादन बढ़ाना आदि विषयों के प्रचार के लिए उन्होंने काफी प्रयत्न किया था। वे 1920 ई० में कोलकाता छोड़कर गिरिडि होकर द्वारभंगा गए। वहाँ तीन साल रहकर फिर पटना में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के गाँव जेरादेई में कुछ दिन रहे। पटना में कई महीने बिताकर काशी आए एवं जीवन के अंतिम समय तक काशी में ही रहे। अध्यापक मालानि को उनके

काशीवास के अंतिम कई साल पास रहने का मौका मिला था। अध्यापक को सतीशचन्द्र ने सैकड़ों पत्र लिखे थे। उनमें आध्यात्मिक एवं अन्य अनेक विषय का अमूल्य रत्न भरा हुआ था।

गाँधीजी सतीशचन्द्र के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। असहयोग आंदोलन के बारे में गाँधीजी ने सबसे पहले सतीशबाबू से विचार–विमर्श किया था। तब से जीवन के अंतिम दिन तक दोनों में विशेष घनिष्टता थी। दोनों महात्माओं के बीच पत्र–व्यवहार नियमित चलता था। असहयोग आंदोलन के प्रारंभ में एवं 'Young India' के संपादन कार्य में सतीशचन्द्र ने गाँधीजी को विभिन्न रूप में सहायता की थी। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के माध्यम से दोनों में भाव–विनिमय होता था। गाँधीजी के नैतिक जीवन एवं अहिंसा नीति द्वारा सतीशचन्द्र विशेष प्रभावित हुए थे, लेकिन एक विषय में दोनों के बीच गुरुतर मतभेद था। सतीशचन्द्र परम गुरुभक्त थे, गुरु आज्ञा पालन ही उनका मूल मंत्र था। उन्होंने स्वयं को पूर्ण रूप में श्रीगुरु पादपद्म में समर्पित किया था। गाँधीजी विवेक को आश्रय करके जीवन संचालित करते थे एवं देश को नियंत्रित करते थे। यद्यपि गाँधीजी कहते थे कि विवेक की वाणी में भी कभी–कभी भूल हो सकती है, इसलिए युक्तिपूर्ण विचार द्वारा वे अपना कर्तव्य निर्धारण करते थे। सतीशचन्द्र कहते थे– **"गुरुजी का आदेश युक्तिविरुद्ध एवं विवेक के प्रतिकूल होने से गाँधीजी उस सिद्धान्त को नहीं मानते थे। सद्‌गुरु कृपा लाभ नहीं होने से कर्तव्य निर्णय के लिए विवेक या विचार के ऊपर निर्भर करना ही पड़ता है। सद्‌गुरु प्राप्ति के बाद विचार बुद्धि का कोई स्थान नहीं है।"** गाँधीजी ने आत्मविचार करते हुए कहा था कि उनके चित्तवृत्ति की धारा ऐसी थी कि उस समय उनके लिए गुरु प्राप्ति असंभव था। दो महापुरुषों में घनिष्टता रहने पर भी इस एक विषय में मतभेद रह गया।

स्वाधीनता संग्राम के समय आंदोलन के परिचालन के लिए गाँधीजी के पास काफी राशि आती थी। सतीशचन्द्र ने अध्यापक श्री कृपलानी के द्वारा गाँधीजी की सेवा के लिए एक सौ रुपए भेजे थे। इस विषय में उन्होंने गाँधीजी को पत्र में लिखा था, "देश–सेवा के लिए आपके पास अजस्र अर्थागम हो रहा है, लेकिन मुझे लगता है, आपकी सेवा के लिए कोई कुछ नहीं भेजता है। आपकी सेवा के लिए सामान्य राशि भेज रहा हूँ। कृपया आप इसे ग्रहण करें तो मुझे खुशी होगी।" रूपए पाकर गाँधीजी ने श्री कृपलानी से कहा कि तुम मेरी तरफ से श्री सतीशबाबू के चरणों में मस्तक रखकर कहना, "मैं उनके प्रीति का दान कृतज्ञता के साथ ग्रहण करके धन्य हुआ।" इससे पता चलता है कि गाँधीजी सतीशचन्द्र के प्रति कितनी श्रद्धा रखते थे। देश के कल्याण के लिए गाँधीजी का दृढ़ संकल्प देखकर सतीशचन्द्र उनका अत्यन्त सम्मान करते थे। उन्होंने 'गाँधी माहात्म्य' नामक अति

मूल्यवान ग्रंथ का अंग्रेजी में संकलन किया था। उसमें मनीषीगण द्वारा स्वाधीनता आंदोलन के प्राणस्वरूप गाँधीजी की प्रशंसा वर्णित है।

सतीशचन्द्र संन्यासी नहीं थे, या गेरूआ वस्त्र भी व्यवहार नहीं करते थे। लेकिन संन्यास का मूल धर्म उन्होंने पालन किया था। संपूर्ण रूप में वासना त्याग करना ही संन्यास है। अंहकार सब दुःख एवं बन्धन का प्रधान कारण है। सतीशचन्द्र ने अंह सत्ता को संपूर्ण रूप में ध्वंस करके श्रीगुरु के चरणों में आत्मसमर्पण किया था। इस तरह सतीशचन्द्र ने आदर्श संन्यासी का जीवन बिताया था। इस तरह श्रीगुरु की कृपा से उनका मानव–जन्म सफल हुआ। भारत स्वाधीन होने के कई महीने बाद 1948 ई० 18 अप्रैल को वाराणसी में सतीशचन्द्र ने श्रीगुरु पादपद्म स्मरण करते–करते मानव–लीला संवरण किया।

महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज ने कहा है, "**राष्ट्रीय आन्दोलन के नवीन युग प्रवर्तक के रूप में सतीशबाबू यथेष्ट उच्च अवस्था के थे लेकिन वर्तमान में बहुत कम लोग ही उनको पहचानते हैं या उनके बारे में जानते हैं। बंगभंग–आन्दोलन के समय डॉन सोसाइटी प्रतिष्ठित करने वाले उद्यमी पुरुषों में एवं स्वदेशी आंदोलन के प्रवर्तकों में उनका नाम सर्वप्रथम स्थान पर है। वे बंगीय 'नैशनल कॉलेज आफ एजुकेशन' प्रतिष्ठा के मूल केन्द्र बिंदु थे। श्री अरविन्द को राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्साह देने के लिए सतीशचन्द्र उनको बरोदा से कोलकाता लाये थे। सतीशबाबू के द्वारा गाँधीजी का नैतिक जीवन निष्ठा, शुद्ध वृत्ति, सात्विकता एवं आचार–व्यवहार आदि द्वारा प्रभावित हुआ था।**"

गाँधीजी एवं महात्मा सतीशचन्द्र के कार्य पद्धति की तुलना करते हुए डा० गोपीनाथ कविराज ने कहा है, "**गुरु का आदेश यदि अपनी युक्ति के विरूद्ध मालूम हो एवं अपने विवेक के प्रतिकूल हो तो गाँधीजी उसे कभी नहीं मानते थे। सद्गुरु की कृपा जब तक प्राप्त न हो तब तक विचार एवं विवेक का अवलंबन करना ही श्रेष्ठ उपाय हैं। इस तरह लौकिक दृष्टिकोण से गाँधीजी एवं तात्विक दृष्टिकोण से सतीशचन्द्र का आर्दश उचित है।**"

आचार्य सतीशचन्द्र विभिन्न समय में उनके अनुरागी छात्र एवं मित्रों को पत्र लिखते थे। उन पत्रों में उनकी आध्यात्मचिन्ता, समाजचिन्ता, देशात्मबोध आदि विषयों का आश्चर्यजनक परिपूर्ण विकास देखा जाता है। इस विषय में उन्होंने श्री शितिकंठ झा को अनेक पत्र लिखे थे। शितिकंठ झा ने पहले स्वाधीनता संग्राम में योगदान दिया। बाद में सतीशचन्द्र के संस्पर्श में आकर सोदपुर खादी प्रतिष्ठान के साथ दीर्घ 21 साल युक्त थे।

22 जनवरी, सन 1946 ई० में सतीशचन्द्र ने झा महाशय को लिखा था– "यदि हम पहले से श्री भगवान की इच्छा को जानकर या नहीं जानने से भी उसे जानने के प्रयास में लगे रहें एवं उसमें योगदान करें तो उसी में हमारा मंगल है क्योंकि ऐसा करने से वह कर्मप्रचेष्टा उनके कर्म या उनके आनुगत्य प्रसूत कर्म कहा जाएगा। यदि केवल सात्विक प्रेरणा से उस कर्म में योगदान करूँ एवं उसे उसी तरह परिचालित करूँ तब वह उनकी इच्छा का कर्म नहीं होकर हमारा अपना कर्म होगा।" (आचार्य सतीशचन्द्र पत्रावली से)

इस महासत्य को जानकर उन्होंने महात्मा गाँधी के स्वाधीनता आंदोलन की कर्मधारा की समालोचना करके कहा था, "महात्माजी संघबद्ध होकर जो परोपकार कर्म के लिए व्रती हुए हैं, वह उनके अंतर के सात्विक प्रेरणा प्रसूत नहीं होकर यदि भगवत निर्दिष्ट कर्म होता तो उस कर्म की Spiritual Quality अन्य प्रकार की होती। तब वह त्रिगुणातीत होता। उस कर्म के साथ श्री भगवान का Direct संयोग है या नहीं वह वे भी नहीं जानते, दूसरे भी नहीं जानते। केवल अनुमान किया जाता है कि उस कर्म के साथ श्री भगवान का योग है। यदि प्रत्यक्ष रूप से जानते कि उनका वर्तमान Independent Movement श्री भगवान द्वारा प्रेरित या अनुमोदित है तो आंदोलन संघबद्ध हो या न हो, कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि वहाँ श्री भगवान ही उस संघबद्ध आंदोलन के नेता हैं। जहाँ श्रीभगवान ही नेता है वहाँ योद्धा Personal या Independent रूप में युद्ध कर रहे हैं, ऐसा प्रश्न हीं नहीं होता।"

सतीशचन्द्र की इस वाणी में महान् सत्य प्रकाशित हुआ है जो उन्होंने सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करने के बाद प्रत्यक्ष अनुभव किया था। भगवान सद्‌गुरु रूप में अवतीर्ण होते हैं। गुरु प्राप्ति के बाद उनका सब कर्म प्रयास सद्‌गुरु शक्ति के द्वारा नियंत्रित हुआ था। इसका मूल कारण श्रीगुरु के प्रति उनकी पूर्ण निर्भरता एवं विश्वास। संपूर्ण आकाशवृत्ति के ऊपर निर्भर करके उन्होंने राजपुत्र जैसा निश्चिन्त जीवन व्यतीत किया था। गोस्वामी प्रभुजी के देह में रहते समय उनको जैसा कर्म करने का निर्देश मिलता था, उसी प्रकार प्रभुजी के देह त्याग के बाद भी ऐसा ही कर्म करने का निर्देश उनको मिलता था। अपना कर्तव्य या अकर्तव्य निर्णय की बात वे कभी भी स्वयं नहीं सोचते थे। सद्‌गुरु निर्देश के लिए वे प्रतीक्षा करते थे एवं निर्देशानुसार कार्य करते थे। उनके जीवन के सब कार्य सद्‌गुरु निर्देश से सुसंपन्न हुए थे। इसलिए वे निश्चित रूप से जानते थे कि अपनी क्षमता से कुछ भी नहीं होता। सब कार्य में भगवान का हाथ है। सब सद्‌गुरु की कृपा है।

उन्होंने श्रीभद्भगवद्‌गीता की वाणी को अपने जीवन में विकसित की थी। उनके प्रति सद्‌गुरु कृपावारि वर्षण जैसे हुआ था, ठीक उसी तरह अर्जुन के ऊपर

भी कृपावारि वर्षित हुआ था। जब तक अर्जुन सोच रहे थे कि वे ही युद्ध के कर्ता हैं तब तक वे मोहपाश में आबद्ध थे, लेकिन भगवान के उपदेश से बाद में यह मोह नष्ट हो गया था। भगवान ने अर्जुन से कहा था, "तुम युद्ध करने में डरो मत। तुम्हारे शत्रुओं को मैंने पहले ही मार डाला है। तुम मेरे यंत्रस्वरूप होकर काम करो। क्योंकि यह युद्ध मेरा ही कर्म है। तुम्हारे युद्ध नहीं करने से भी तुम्हारे शत्रुओं में से कोई नहीं बचेगा। इसलिए शत्रु वध करने से तुम्हारा पाप भी नहीं, पुण्य भी नहीं।" गीता की यह वाणी सतीशचन्द्र के जीवन में मूल प्रेरणादायक है। साधन (दीक्षा) मिलते ही उन्होंने श्रीश्री सद्‌गुरु के पास आत्मसमर्पण किया था। मोह नष्ट होने के बाद अर्जुन जैसे श्री भगवान के निर्देश में अपने को नियुक्त रखे थे, सतीशचन्द्र ने भी ऐसे गुरुकृपा प्राप्ति के बाद अपने को श्रीगुरुजी के निर्देश से परिचालित किया था। अपने जीवन में इस सत्य की उपलब्धि करके उन्होंने महात्मा जी को अनुप्राणित करने का विशेष प्रयास किया था। उन्होंने सुस्पष्ट रूप में शितिकण्ठ झा को पत्र में लिखा था, "महात्माजी क्या संघबद्ध होकर लोगों के मंगल साधन कर्म कर रहे हैं ? क्या उन्होंने उसमें personal रूप में योगदान किया है ? यह सब Real Issue नहीं हैं। वह कर्म श्री भगवान का कर्म है या नहीं, यही Real Issue है। यदि वह महात्मा जी का अपना कर्म हो तो वह सब Issue Personal या Impersonal विचार करना पड़ेगा। यदि वह कर्म श्रीभगवान की इच्छा द्वारा अनुमोदित या परिचालित हो तो वह कर्म त्रिगुणातीत होता है। तब वह Personal या Impersonal नहीं रहता, वह त्रिगुणातीत वस्तु कहलाती है।"

भारत के स्वाधीनता संग्राम में महात्माजी के नेतृत्व के बारे में सतीशचन्द्र ने आलोचना करते हुए एक पत्र में लिखा था– "हमारे जीवन के प्रत्येक विषय में श्रीभगवान का स्वतंत्ररूप में कुछ कहना है। लेकिन हम लोग त्रिगुण के प्रभाव के कारण अपने आप को Final कर्ता सोचते हैं एवं श्री भगवान की इच्छा के प्रति दृष्टि नहीं देते हैं। इसलिए श्रीभगवान की इच्छा (will) को नहीं जान सकते। ऐसी अवस्था में हमें वे एक Long Rope अर्थात लम्बी छूट देते हैं। स्वाधीनता के बारे में भी वही एक सिद्धान्त है। बापू ने परोपकार के लिए मन प्राण लगा दिया है लेकिन उनके भगवान की इच्छा नहीं जानने से, हम लोग भी उनकी इच्छानुसार सही रास्ता निश्चित नहीं कर पा रहें हैं।"

सतीशचन्द्र ने महात्माजी के बारे में और एक पत्र में लिखा है, **"महात्माजी शास्त्र एवं भगवत वाक्य की व्याख्या अपनी बुद्धि एवं विवेक से करते हैं। किसी सिद्ध महापुरुष की व्याख्या संपूर्ण रूप में स्वीकार नहीं करते। अपनी व्याख्या के साथ जो नहीं मिलता है, उसे वे नहीं मानते। जब तक भगवान का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप में (Direct) नहीं जाना जाता है, तब तक महात्माजी**

को उसी तरह चलना पड़ेगा। जब तक जीव साधक त्रिगुण के अधीन रहेंगे तब तक यही रास्ता ठीक है लेकिन जैसे ही वह त्रिगुणातीत व्यक्ति अर्थात सिद्ध महापुरुष का आश्रय प्राप्त करेगा, वह साधक सिद्ध महापुरुष के आदिष्ट विधि–निषेध मानेंगे। उस समय से साधक उस त्रिगुणातीत महापुरुष द्वारा परिचालित होंगे – ज्ञातरूप में या अज्ञातरूप में। मेरे हिसाब से बापू को भी अभी तक गुणातीत अवस्था की प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए वे द्वन्द के अधीन हैं। द्वन्दातीत अवस्था प्राप्त नहीं होने से वे प्रत्यक्ष रूप में भगवान की इच्छा नहीं जान सकेंगे।"

सतीशचन्द्र महात्माजी के बारे में कहते थे कि केवल ज्ञान एवं अपने विवेक पर निर्भर करके कोई महान् कार्य नहीं किया जा सकता। विवेक सर्वदा न्याय पथ पर परिचालित करेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ज्ञान भी कभी–कभी मोहग्रस्त होता है। अर्जुन के लिए भी हुआ था। इसलिए सिद्धमहापुरुष का आश्रय ग्रहण करने से साधक को और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उनका आश्रय ग्रहण करने से उनके ऊपर संपूर्ण निर्भरशील होने से साधक का कर्म त्रिगुणातीत होता है एवं वह कर्म सबका कल्याण साधन भी करता है। सतीशचन्द्र ने श्रीश्री सद्‌गुरु आश्रय पाने के बाद यह सत्य अनुभव किया था। महात्माजी को सिद्ध महात्मा का आश्रय प्राप्त न होने तक उनका कर्म पथ श्रीभगवान अनुमोदित है या नहीं, इस विषय में द्वन्द्व रह जाता है। इसलिए महात्मा सतीशचन्द्र ने कहा है "द्वन्द्वातीत होकर जीवनमुक्त पद प्राप्त होने से वह भगवान का उद्देश्य स्वयं जान सकता है। जीव की मुक्ति लाभ होने से रजस्तमो गुण संपन्न Personal Will – My Will अर्थात अपनी इच्छा नष्ट हो जाती है। इसलिए जब तक मनुष्य अपने Will के अधीन रहता है, तब तक कोई सिद्ध महापुरुष की शरण लेने की चेष्टा एवं प्रार्थना करने की विधि है।"

सतीशचन्द्र जानते थे कि महात्मा जी का कर्तृत्वाभिमान है, इसलिए वे जीवन्मुक्ति की अवस्था नहीं प्राप्त कर सके एवं उनका Personal Will अत्यन्त प्रकट है। इसलिए सतीशचन्द्र ने कहा है– "Personal Will नष्ट नहीं होने तक साधक How ever high he may be on the sattvik plane, can not hope to fill the part of a divine instrument or lieutenant अर्थात साधक कितनी उच्च अवस्था क्यों न प्राप्त करें उनकी अपनी इच्छा नष्ट नहीं होने तक वह भगवत इच्छा का यंत्र स्वरूप नहीं बन सकता।

भगवदिच्छा नहीं जानने तक कर्मी की कर्म पद्धति सफल या निष्फल होगी, इसके बारे में कर्मी कुछ भी नहीं जान सकता है। इस बारे में सतीशचन्द्र ने स्पष्ट कहा है, "वर्तमान Independence Movement परिचालन का Method साधक केवल

अपनी Personal सात्विक बुद्धि के सहारे कर रहे हैं। अर्थात् 'भगवतत्वविधान' प्राप्ति के पूर्व अर्थात् भगवत् राज्य परिचालन पद्धति जानने के पहले ही वे सत्वगुण के सहारे निर्णय कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि यह उनका प्रत्यक्ष ज्ञान या उपलब्धि नहीं है।"

यहाँ प्रश्न उठता है, जब तक 'भगवत्तत्वविधान' अर्थात् भगवान की क्या इच्छा है, यह ज्ञान प्राप्त नहीं होगा तब तक साधक की कर्म पद्धति क्या होगी ? इसके उत्तर में सतीशचन्द्र ने श्रीमद्भगवत्गीता के अष्टम् अध्याय के सप्तम श्लोक के उपदेश का अनुसरण करने को कहा है। उक्त श्लोक में पथ का निर्देश है –

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।

अनुवाद– अतः सर्वदा मुझे स्मरण करके युद्ध करो। मन, बुद्धि मुझे सौंपकर कर्म करने से मुझे ही प्राप्त करोगे।

गीता के इस निर्देशानुसार सतीशचन्द्र ने कहा है इस तरह गीतोक्त पंथ का अनुसरण करते–करते साधक का unliquidated अर्थात असमाप्त कर्मसमाष्टि क्रमशः क्षयप्राप्त होता रहेगा। इस प्रकार "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" होने से साधक त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त करेंगे। तब उनको भगवत दर्शन होगा एवं साथ–साथ 'भगवत्तत्वविधान' भी प्राप्त होगा। इसके बाद साधक भगवान के 'राज्य परिचालन प्रणाली' प्रत्यक्ष करेंगे एवं भगवान के उस कार्य प्रणाली के साथ किस तरह Co-operate करना होगा, इससे अवगत होंगे। उस समय से वे भगवान के Lieutenant अर्थात् प्रतिनिधि स्वरूप कार्य करते रहेंगे।"

सद्गुरु प्राप्ति के बाद सतीशचन्द्र को जो सत्यानुभूति हुई थी उसी के सहारे उन्होंने ये सब कहा था। श्रीमद्भगवत्गीता की महावाणी के साथ अपने जीवन को उन्होंने युक्त किया था। इसका निदर्शन उनके कार्य एवं उनकी बातों में मिलता है।

महात्माजी की कर्म पद्धति की समालोचना करके उन्होंने एक पत्र में लिखा है ,"महात्माजी की सब चेष्टा का Direction Worldlywise अर्थात् समाजमुखी है– भगवन्मुखी नही। श्रीभगवान पर निर्भरशीलता वे अवश्य चाहते हैं लेकिन यह Primary Factor (प्रमुख) नहीं है। अर्थात् 'भगवत् सेवा द्वारा समाज Reformer (सुधारक) का उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा', मुझे लगता है यह भावना ही महात्माजी की मूल गलती है।"

यहाँ सतीशचन्द्र की गुरु निर्भरशीलता की एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है – उल्लेखनीय है कि गोस्वामी प्रभु ने पुरी में रहते समय श्री जगन्नाथजी

के निर्देश से ऋण लेकर महा दानयज्ञ किया था। ऋण को चुकाने के लिए श्री जगन्नाथजी के निर्देशानुसार उन्होंने कुछ लोगों को भार दिया था।

1306 सन् (सन् 1899 ई०) के माह वैशाख में श्री हरकांत बन्द्योपाध्याय ने बेरिली से पुरी धाम में पत्र लिखा कि दानयज्ञ के लिए जो ऋण संग्रह किया गया था, उसे लौटाने के लिए विभिन्न स्थानों से अर्थ संग्रह शायद संभव नहीं होगा। उक्त बन्द्योपाध्याय महाशय का पत्र पाकर गोस्वामी प्रभुजी ने कई व्यक्तियों का नामोल्लेख किया एवं उन लोगों को तार करने का निर्देश दिये। उन लोगों में अनन्यतम शिष्य सतीशचन्द्र का नाम था। तार मिलते ही सतीशचन्द्र उनके बाल्यकाल के मित्र आलिपुर कोर्ट के पब्लिक प्रसिकिउटर श्री हेमेन्द्र मित्र के पास एक हजार रूपए उधार माँगने गए लेकिन उस समय उनके पास पैसा नहीं रहने के कारण वे नहीं दे पाए। हेमेन्द्र बाबू दो दिन सतीशचन्द्र को लेकर अपने मित्रों के पास गए, लेकिन द्वितीय दिन रात 10 बजे विफल होकर घर लौटकर सतीशचन्द्र सोचने लगे, "मैंने यथासाध्य चेष्टा की लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन तार जब गुरुजी ने किया है तो यह व्यर्थ नहीं हो सकता। उन्होंने मेरे लिए यह कर्तव्य निश्चित किया है, अतः किसी भी प्रकार से वे मेरा यह कर्तव्य पालन कराएँगे।" ऐसा विचार कर सुविश्वास से वे रात को निश्चिन्त होकर सो गए। मेरा और कोई कर्तव्य नहीं है। चुपचाप उस अर्थ प्राप्ति के लिए अपेक्षा करनी पड़ेगी। तृतीय दिन चुपचाप घर में बैठे रहे। चतुर्थ दिन 10 बजे अमिचांद (गोसाँईजी के शिष्य एवं सतीशचन्द्र के घनिष्ट सहयोगी) ने आकर कहा दीदीमणि (हेमेन्द्र मित्र की सहधर्मिणी) दुःखित हैं क्योंकि श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी उनके पास कुछ नहीं माँगे। आप निर्धन हैं और आपके पास ही अर्थ माँगे। उन्होंने अपने गहने भेज दिए है। यह बाजार में बंधक देकर आपको एक हजार रुपए लेने को उन्होंने कहा है। यह रुपए उधार नहीं, दान है। उसी क्षण सतीशचन्द्र गहना बंधक देकर रुपए ले आए। उसी दिन ग्यारह–साढ़े ग्यारह बजे टेलिग्राफिक मनिआर्डर के द्वारा उन्होंने रुपए भेज दिया। उसी दिन रात में सतीशचन्द्र ने हेमेन्द्र बाबू को Handnote लिख दिया। वे Handnote लेना नहीं चाहते थे। हेमेन्द्रबाबू ने कहा, "तुम रूपए कहाँ से पाओगे ?" सतीशचन्द्र ने कहा कि श्रीश्री गोस्वामी प्रभुजी देने के लिए कह रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने आपत्ति नहीं की। Handnote में तीन महीने का समय था। 18 दिन बाद रात 10 बजे सतीशबाबू ने हेमेन्द्र बाबू का पैसा लौटा दिया। निःस्व सतीशचन्द्र ने इतना पैसा किस तरह लौटाया, यह भी संपूर्ण गुरु कृपा की बात है। सतीशचन्द्र को एक अंग्रेजी ग्रामर की किताब लिखने के लिए Publisher के पास से 30 रुपए प्रति माह मिलता था। उस ग्रंथ का चतुर्थ संस्करण समाप्त होने पर पंचम संस्करण के लिए प्रकाशक ने सतीशचन्द्र से अनुमति माँगी एवं

सतीशचन्द्र भी राजी हो गए। गोस्वामी प्रभु को रूपए भेजने के दो हफ्ताह बाद वह Publisher सतीशबाबू के साथ Agreement करने आए। सतीशबाबू ने उनके पास एक हजार रूपए अग्रिम माँगा। Publisher समझ गए कि सतीशबाबू को पैसे की जरूरत है। इसलिए उन्होंने कहा कि अगर सतीशबाबू ग्रंथ की Copyright उनके नाम कर दें तो उसी वक्त वे सतीशबाबू को एक हजार रूपए देंगे। ठीक उसी समय गोस्वामी प्रभुजी की प्रेरणा से सतीशचन्द्र के मन में विचार आया कि यही करना उचित है क्योंकि उस ग्रंथ के चतुर्थ संस्करण के लिए अभी तक सतीशबाबू को 6 हजार रूपए मिल चुके थे। इसलिए उस पुस्तक के लिए और लोभ करना ठीक नहीं। गोस्वामीजी के इस प्रेरणा से सतीशचन्द्र ने Publisher को Copyright बेच दिया एवं उसी रात में हेमेन्द्रबाबू को पैसा वापस करके hand note वापस ले लिया।

गोस्वामी प्रभु के शिष्य सोचते थे कि सतीशचन्द्र जरूर कोई मंत्र शक्ति जानते हैं जिसके द्वारा आवश्यक अर्थ संगृहीत होता है। यह सोचकर सतीशचन्द्र के गुरुभाई तथा छात्र शांतिपुरवासी ज्ञानेन्द्र मुखोपाध्याय सतीशचन्द्र के पास उनके शिवपुर के घर में आया। अपने संसारिक अभाव दूर करने के लिए मंत्रशक्ति जानने के लिए वह सतीशचन्द्र से बारम्बार आग्रह करने लगा। उसने ऐसा कहा कि मंत्र नहीं बोलने से वह वहाँ से नहीं जाएगा। उसके साथ और दो गुरुभाई शांतिपुर के श्री विनय सान्याल एवं श्री अमिय सान्याल भी थे। वे भी मंत्र शक्ति जानने के लिए आए थे। सतीशचन्द्र ने सबसे कहा, "गोसाँईजी ने मुझे कोई मंत्र–तंत्र नहीं सिखाया है। केवल उनके ऊपर निर्भर रहने के लिए कहा है। वे कृपापूर्वक मेरा भरण–पोषण कर रहे हैं। यह सिर्फ उनकी कृपा है, क्योंकि वे जानते हैं कि मेरी निर्भरशीलता नहीं है, आदि।" उनकी बात पर विश्वास करके विनय एवं अमिय चले गए। लेकिन ज्ञानेन्द्र यह विश्वास नहीं कर सका। ज्ञानेन्द्र 12 दिन रहकर अन्त में यह स्वीकार किया कि मंत्र के सहारे सतीशचन्द्र अर्थ संग्रह नहीं करते हैं एवं चला गया।

गोस्वामी प्रभु के उपदेशावली में हैं 'नाहंकारात् परो रिपुः' – अंहकार से बढ़कर परम शत्रु नहीं है। यह सतीशचन्द्र के लिए देव वाक्य था। इस शास्त्र वाक्य की महिमा के बारे उन्होंने लिखा है – "गुरु–सज्जन–साधुओं की वाणी हैं कि अंहकार नाश जब तक न हो, तब तक मनुष्य को सुख–दुःख, मान–अपमान, जय–पराजय आदि द्विविधा (द्वन्द) के अधीन रहना पड़ता है। इसलिए अंहकार करके मनुष्य जो कुछ भी करे, उससे वह अशांति का राज्य त्याग करके शांति धाम में नहीं पहुँच सकता। उसे जन्म के बाद पुनः जन्म ग्रहण करके क्लेश ज्वाला भोगनी पड़ती है। मनुष्य अहंकार त्यागने से संसार ज्वाला से मुक्त होकर शांति

एवं चिदानन्द भोगने का अधिकारी होता है।"

उन्होंने कहा है, **"यह अहंकार त्याग करना कठिन है फिर भी भगवत् साधना द्वारा उसे नष्ट किया जा सकता है। भगवत् साधना के अनेक तरीकों में सहज तरीका है – माता–पिता की श्रद्धाभक्ति के साथ सेवा करना।"** इस विषय में सतीशचन्द्र ने कहा है, **"माता–पिता के प्रति श्रद्धाभक्ति रखना साधना विशेष है। इस साधना की प्रथम अवस्था में ममत्व बोध रह जाता है। मेरे पिता, मेरी माता ऐसा अंहकार या ममत्व बोध रहने से भी शास्त्र में कहा गया है कि वह अहंकार भगवत् साधन का अन्तराय नहीं बल्कि भगवत् साधना का श्रेष्ठ उपाय है।"** उनके इस उक्ति का मूल है गोस्वामी प्रभु का उपदेश **"माता–पिता प्रत्यक्ष देवता है। राम–कृष्ण जैसी उनकी सेवा–पूजा करनी चाहिये। इससे भगवान् लाभ किया जा सकता है। ऐसा नहीं कर सको तो भी माता–पिता के प्रति बहुत श्रद्धाभक्ति रखनी चाहिए एवं सर्वदा उनके अनुगत होकर चलना चाहिए।"**

माता–पिता प्रत्यक्ष देवता हैं एवं उनकी सेवा–पूजा से भगवान की प्रप्ति होती है। इस प्रसंग में सतीशचन्द्र ने एक विशेष घटना का उल्लेख किया है– श्री सुधांशु नामक हमारा एक गुरुभाई है। श्री गुरुजी जब 14/2, Sitaram Ghosh Street में रहते थे। हम लोग संध्या के समय उस भवन में जाकर संध्याकालीन कीर्तन में योगदान करते थे। संकीर्तन समाप्त होने पर रात आठ बजे सब घर लौटते थे। सुधांशु बाबू रात 10 बजे तक श्रीश्री गुरुजी के पास बैठे रहते थे। सुधांशु बाबू 1st या 2nd Year Medical College में पढ़ते थे। माता–पिता के खर्च से वे मेस में रहकर पढ़ाई करते थे। एकदिन गुरुजी ने सुधांशु बाबू से कहा, "क्या तुम माता–पिता की अनुमति लेकर मेरे पास रात 10 बजे तक रहते हो ? वे तुम्हारा खर्च चला रहे हैं इस उद्देश्य से कि तुम पढ़ाई करोगे। उनकी अनुमति के बिना तुम अधिक समय तक यहाँ नहीं रह सकते। यदि तुम पढ़ाई का खर्च चलाते तो अन्य बात थी।" सुधांशु ने उत्तर दिया "मेरा विचार है कि आपके पास अधिक समय तक रहकर आपका संग करने से मेरा पारमार्थिक मंगल होगा – इसलिए मैं बैठा रहता हूँ।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, **"तुमने मेरे पास से जो साधन प्राप्त किया है उससे तुम्हारा मंगल होगा यह सत्य है लेकिन तुम यह भी जान लो कि माता–पिता की प्रसन्नता लाभ करना विशेष जरूरी है। यदि तुम उन्हें प्रसन्न नहीं कर सको तो मैं तुम्हारा कोई मंगल साधन नहीं कर सकूँगा। उनकी अप्रसन्नता से तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा होगी। इसलिए तुम जितना हो सके उनके अनुगत होकर चलो। उनकी प्रसन्नता के लिए जितना हो सके, कोशिश करो।"** सतीशचन्द्र ने भी गुरुजी के निर्देश से

माता–पिता की जीवितकाल तक सेवा की थी।

इस विषय में स्मरणीय बात यह है कि पुत्र ममत्व बुद्धि से माता–पिता की सेवा करके भगवत् प्रप्ति करता है। भगवत् प्राप्ति के बाद जीव का ममत्व बुद्धि या अंहकार अर्थात 'मैं' 'मेरा' यह बोध चला जाता है। अंहकार नाश से जीव परम श्रेय प्राप्त करता है। सतीशचन्द्र ने अंहकार नाश के लिए विशेष गुरुत्व देकर डॉन सोसाइटी के एक छात्र बंधु को उपरोक्त पत्र में लिखा था।

पति–पत्नी का संबंध कैसा होना चाहिए इस विषय में सतीशचन्द्र का कहना है, **"प्रत्येक जीवात्मा उनकी सन्तान हैं (Vide Gita 14. 3-4 Verse)। यह स्मरण में रखकर पत्नी की सेवा करने से भगवत् सेवा अपने आप हो जाती है। यही वैराग्य प्राप्त करने का मूल उपाय है। ऐसा भाव नहीं रहने के कारण हम पत्नी को, पति–पुत्र को मेरा–मेरा कहकर भगवत् सेवा से दूर हट जाते हैं।"**

सद्गुरु–आश्रित महात्मा सतीशचन्द्र केवल साधना में ही मग्न नहीं थे। विभिन्न विषयों में उनके चिन्तनधारा का परिचय मिलता है। उस समय की भारतीय राजनैतिक अवस्था ने उनको स्थिर रहने नहीं दिया। महात्मा गाँधी की अहिंसा नीति एवं हिन्दुओं के विरुद्ध मुस्लिमों के हिंसात्मक युद्ध ने महात्मा सतीशचन्द्र के मन को प्रभावित किया। उन्होंने कई पत्रों में इस विषय पर अपने मनोभाव व्यक्त किए हैं। हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमान नेताओं का सर्वग्रासी मनोभाव उनकी दूरदर्शिता में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने 16–9–47 तारीख में शितिकण्ठ झा को एक पत्र में लिखा था, "अंग्रेज शासन का अवसान होने के पहले ही जिन्ना आदि Islam नेताओं ने क्या सोचा था, वह कह रहा हूँ"–"उन्होंने सोचा था मुसलमान लोग अंग्रेजों के उत्तराधिकारी हैं – मुसलमान लोग ही भारत के शासक थे। अंत में उन लोगों के हाथ से अंग्रेजों ने भारत मुकुट छीन लिया था। इसलिए मुसलमान लोग ही अंग्रेजों का वारिस होंगे, यह बात मुसलमान नेता गण सबको कहते थे।" सतीशचन्द्र का विचार था "मुसलमान लोगों की मूल इच्छा थी भारतीय हिन्दुओं के ऊपर प्रभुत्व विस्तारपूर्वक सारे हिन्दुस्तान पर कब्जा करना। इसलिए मुसलमान नेताओं ने हिंसात्मक नीति अवलम्बन किया जिसके दबाव में आकर कांग्रेस ने भारत को विभक्त कर दिया एवं मुसलमानों के लिए पृथक राष्ट्र पाकिस्तान बना। कांग्रेस नेताओं ने सोचा था, सांप्रदायिक शांति रक्षा के लिए भारत को द्विखण्डित करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है" लेकिन यहीं इसका अंत नहीं होगा। यह सतीशचन्द्र अच्छी तरह समझ गए थे एवं कांग्रेस नेताओं को सावधान करके उन्होंने लिखा था– "But Pakistan having once been achieved, the old ambition of Muslim political leaders for political domination' over the whole of Hindustan has naturally been whetted." भावार्थ– "किन्तु पाकिस्तान में एकबार

प्रतिष्ठत होने के पश्चात् मुस्लिम राजनैतिक नेता लोग पूरे हिन्दुस्तान के ऊपर पुनः अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लोगों को उत्तेजित करेंगे।" सिन्ध के करॉंची शहर में छात्र एवं युवकों को इकट्ठा करके उनलोगों को निम्नलिखित Slogan सिखलाया जा रहा था–

"हँस हँस के लिया पाकिस्तान।
अभी लड़के लेंगे हिन्दुस्तान।।"

महात्मा गाँधी की अहिंसा नीति भी व्यवहारिक नहीं है, यह भी उन्होंने पत्र में स्पष्ट रूप से कहा है। महात्माजी का विश्वास था कि एक पक्ष अंहिसा संग्रामी होने से शत्रु पक्ष की हिंसात्मक भावना का परिवर्तन अवश्य होगा। इस विषय में सतीशचन्द्र ने लिखा है, "यदि मुस्लिम नेताओं का मनोभाव यही हो कि हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के ऊपर मुस्लिम लोग प्रभुत्व विस्तार करेंगे तो उनको हिंसात्मक उपाय से ही राजनैतिक आकांक्षा पूर्ण करनी पड़ेगी। इसके सिवाय उनके लिए और कोई उपाय नहीं है। उस समय यदि उनसे कहा जाए– 'हिंसा त्याग करो एवं अंहिसा नीति का पालन करते हुए हिन्दुओं के साथ शामिल हो'– यह उपदेश उनके कानों में प्रवेश नहीं करेगा।"

महात्मा गाँधी की शिक्षा का मूल उद्देश्य है हिंसाश्रयी शत्रुपक्ष के मन का परिवर्तन कराना। ऐसी सहन शक्ति चाहिए जिससे मुस्लिम लोगों को अहिंसा नीति ग्रहण करना पड़े। महात्माजी का विश्वास था कि हिन्दुओं के हँसते हुए सब कष्ट झेलने से मुस्लिम लोग हिन्दुस्तान के ऊपर प्रभुत्व स्थापन की चेष्टा नहीं करेंगे एवं वे हिन्दुओं के साथ भ्रातृत्व स्थापन करेंगे। अंहिसा नीति से हिंसाश्रयियों के Change of heart अर्थात् मनोभाव का परिवर्तन संभव है, यह महात्मा गाँधी का विश्वास था। इस बारे में आचार्य सतीशचन्द्र ने कहा है, "सभी मुसलमान लोगों के मन का परिवर्तन कराके उन्हें अहिंसा नीति में प्रतिष्ठित करना संभव नहीं है।" उन्होंने एक पत्र में इसका कारण यह बताया है, "The Human Mind अर्थात् मनुष्य के मन का गठन जिस प्रकार है, उसके प्रति दृष्टि रखकर कहा जा सकता है कि ऐसा परिवर्तन on a mass scale अर्थात् सामूहिक रूप में संभव नहीं है।" सतीशचन्द्र की उक्ति से यह स्पष्ट है कि दो व्यक्तियों में संग्राम होने से यदि एकजन अहिंसा नीति का हो तो प्रतिपक्ष उसे आघात करते–करते अहिंसाश्रयी का वेदनायुक्त मन देखकर और हिंसाभाव मन में पोषण नहीं कर सकेगा। उसका Change of mind होना संभव है, लेकिन समग्र रूप में यह असंभव है।

विभिन्न समय में महात्मा गाँधी के साथ आचार्य सतीशचन्द्र का जो पत्र व्यवहार हुआ था, उनमें परस्पर श्रद्धा की भावना देखी गई है। 1946 ई० में

गाँधीजी के नोआखालि में अवस्थान के समय उनको लिखा गया सतीशचन्द्र के एक पत्र से महात्माजी को विशेष प्रेरणा मिली थी।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य सतीशचन्द्र के अनन्यतम छात्र थे। उन दोनों के पत्र विनिमय से गुरु के प्रति छात्र की आपार श्रद्धा का परिचय मिलता है। राजेन्द्र प्रसाद, गुरुजी को अपने गाँव जिरादेई ले गए थे। वहाँ सतीशचन्द्र कुछ दिन ठहरे थे। भारत विभाजन के पूर्व की सब घटनाएँ डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने पत्र में गुरुजी को लिखी थी। उस समय सतीशचन्द्र की उम्र 83 साल थी। वे समझते थे कि भारत को दो राष्ट्रों में विभक्त करने से शांति नहीं आएगी। उनका यह विचार डा० राजेन्द्र प्रसाद को लिखे एक पत्र से स्पष्ट हैं – "I am one of those who are not very hopeful that the transfer of political power would be quite a peace affair." उनकी इस भविष्य दृष्टि का परिचय कुछ ही दिनों में दो राष्ट्रों के संघर्ष से पता चल गया। वे स्वाधीन भारत के नागरिक के रूप में केवल 7–8 महीने थे। 1948 ई० के 18 अप्रैल काशीधाम में उनका देहांत हो गया।

विभिन्न प्रतिभासंपन्न सद्‌गुरु आश्रित महात्मा सतीशचन्द्र की बात लिखकर समाप्त नहीं किया जा सकता। स्वयं भगवान सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी उनके अध्यात्मजीवन की नाव के खेवय्या थे। इसलिए उनका अध्यात्मजीवन पूरा सफल था। उनके बारे में कोलकाता नेशनल लाईब्रेरी के डायरेक्टर आर० के० दासगुप्ता ने स्पष्ट रूप में कहा है– "There are some heroes in a nation's history who take care not to assume a heroic dimension, who move in firm but noiseless steps and who move to a high purpose which they desire should outstrip their own height. Satis Chandra Mukherjee is one of such heroes in the history of our national movement. He worked with passion, but he never allowed that passion to express itself in rhetoric. He was a valued leader of a great movement, but he scrupulously avoided publicity. He gave ideas to his people but he desired that these ideas were owned by those to whom he had given them. He pursued anonymity to fulfill the deepest urges of his soul. Few of younger generation of to-day would know anything about this man who was one of the great inspires of the Swadeshi Movement and worked ceaselessly to create and keep alive that spirit of idealism which sustained that movement" अर्थात्– जातीय इतिहास में कई महान् अधिनायक हुए हैं, जो बहुत सावधानी से अपनी महत्ता को छुपाकर बलिष्ठ, निःशब्द पदक्षेप से एक महत् लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए। हमारे स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में सतीशचन्द्र ऐसा

ही एक अधिनायक है। वे बहुत आवेग के साथ काम करते थे। लेकिन वह आवेग कभी भी प्रकाशित नहीं करते थे। वे एक बहुत बड़े आंदोलन के शीर्ष स्थानीय नेता थे लेकिन सावधानी से प्रचार से दूर रहते थे। वे अनेक व्यक्तियों को परामर्श देकर उत्साहित करते थे, लेकिन यह कार्य वे ऐसे करते थे कि लगता था वह परामर्श उस व्यक्ति का ही है। उन्होंने अति गोपनीयता के साथ हृदय की इच्छाओं को कार्य में रूपायित किया था। जो हमारे स्वदेशी आन्दोलन के प्रधान व्यक्ति थे एवं आन्दोलन को जारी रखने के लिए जिस आदर्श चिंतन धारा की आवश्यकता थी उसकी वे सृष्टि करते रहे एवं उसे जागृत रखने के लिए सर्वदा प्रयास करते रहे। उनके बारे में वर्तमान नवीन युग के युवक बहुत ही कम जानते हैं।

डॉन पत्रिका, डॉन सोसाईटी, भागवत् चतुष्पाठि आदि प्रतिष्ठा करके सतीशचन्द्र ने देश का कैसा कल्याण साधन किया था, इस बारे में दासगुप्त महाशय कहते हैं, "Rarely five years after the foundation of the Dawn Magazine Satis Chandra established the Dawn Society for training younger minds through a programme of lectures and classes which were addressed by the foremost figures in the contemporary letters like Rabindranath Tagore, Sir Gurudas Banerjee, Dinesh Sen, Brahmabandhav Upadhyay and Sister Nibedita. The Dawn Magazine and the Dawn Society soon became two very influential institutions which created the intellectual and moral atmosphere out of which emerged the Swadeshi Movement of 1905. They deepend popular awareness of the nation's problems and defined the principles and ideals of the new movement. Soon after the beginning of the Swadeshi Movement on 16th October 1905 Satis Chandra defined its economic objective with clarity and force which mark all his writings on the subject – अर्थात् डॉन पत्रिका प्रवर्तन के पाँच साल बाद सतीशचन्द्र ने डॉन सोसाइटी की प्रतिष्ठा की। इसका उद्देश्य था उस समय देश एवं समाज के प्रसिद्ध व्यक्तियों यथा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर् गुरुदास बन्द्योपाध्याय, दिनेश सेन, ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, भगिनी निवेदिता आदि मनीषीगण द्वारा प्रदत्त विभिन्न भाषण एवं शिक्षा के माध्यम से नवीन मन का गठन करना। बहुत ही कम समय में डॉन पत्रिका एवं डॉन सोसाइटी प्रभावशाली संगठन के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इनके प्रभाव से मानसिक एवं नैतिक परिवेश गठन में सहायता मिली। इसने 1905 ई० में स्वदेशी आंदोलन को प्रज्जवलित किया था। दोनों संगठन का उद्देश्य था जातीय समस्याओं के बारे में जनता को सचेतन करना एवं नए आंदोलन की नीति एवं आदर्श को व्यक्त करना। स्वदेशी आंदोलन शुरू होने के बाद ही 1905 ई० के 16 अक्टूबर को सतीशचन्द ने इन दोनों संगठनों के अर्थनैतिक उद्देश्य को

अपनी प्रांजल और दृढ़तापूर्वक भाषा में व्यक्त किया था।

इस स्वदेशी आंदोलन का उद्देश्य हत्या नहीं, दंगा नहीं, स्कूल–कॉलेज वर्जन नहीं या उस समय के शासकों को तंग करना नहीं था। इसका उद्देश्य केवल देश की संपदा बढ़ाना था–नैतिक, चारित्रिक, व्यवसाय भित्तिक, कृषि एवं अन्य इस तरह के विषयों पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया था। अर्थनैतिक संपदा बढ़ाना एवं देश के जनता की कार्यक्षमता बढ़ाना भी इस आंदोलन का उद्देश्य था। इस स्वदेशी आंदोलन के प्रधान उद्देश्य के बारे में सतीशचन्द्र ने कहा है, "The main object of the Swadeshi Movement is not to reduce our imports from England anyhow. No, its object is not to destroy trade but to develop our trade by developing our own resources, which is not possible without the help of that movement. we want with that help to produce our own goods, where it is possible to produce them and so increase the purchasing power of the people." अर्थात् "स्वदेशी आंदोलन का प्रधान उद्देश्य इंग्लैंड से हमारी आमदनी कम करना नहीं है। इसका उद्देश्य व्यवसाय ध्वंस करना नहीं है। हमारा उद्देश्य है जातीय संपदा वृद्धि करके हमारे देश के व्यवसायिक लेन–देन को बढ़ाना, जो इस आंदोलन के बिना संभव नहीं है। हम लोग चाहते हैं इस आन्दोलन के सहारे जहाँ भी संभव हो अपनी संपदा बढ़ाना, जिससे जनता की क्रयक्षमता बढ़े।"

इस बारे में श्री विनयकुमार की उक्ति विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने सतीशचन्द्र के महान् व्यक्तिसत्ता का परिचय बहुत ही कम शब्दों में कहा है। "He was one of the makers of the Bengali Revolution (1905-14) and a father of the Indian freedom movement" अर्थात् वे बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के एक प्रमुख संघटक थे तथा भारत के स्वाधीनता संग्राम के जनक थे। इस तरह महात्मा सतीशचन्द्र एक महान् व्यक्ति थे। सद्गुरु भगवान श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी ने उनको दीक्षा प्रदान करके जो शक्ति का अधिकारी बनाया था एवं देश में सुशिक्षा विस्तार, जातिगठन, छात्रगठन एवं देश सेवा के लिए जो निर्देश दिया था उसका पूर्ण रूप से उन्होंने पालन किया था।

उनके जीवन का एक संक्षिप्त चित्र नीचे अंकित किया जा रहा है–

5वीं जून,1865– हुगली जिला के बन्दीपुर गाँव में जन्म।

1879– कोलकाता विश्वविद्यालय से प्रविशिका परीक्षा में उर्त्तीण एवं प्रेसिडेन्सी कॉलेज में प्रवेश।

1886– अंग्रेजी भाषा में एम.ए.पास करना एवं शिक्षक का कार्य ग्रहण।

1887– बहरमपुर कॉलेज में प्रध्यापक का पद ग्रहण।

1890– कोलकाता विश्वविद्यालय से बी० एल० परीक्षा में उत्तीर्ण।

1890–92– हाइकोर्ट में वकालत।

27 सितम्बर,1893– श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण।

1895– भागवत् चतुष्पाठी–प्रतिष्ठा

1897– डॉन–पत्रिका प्रवर्तन।

1902– डॉन–सोसाइटी प्रतिष्ठा।

1906– जातीय शिक्षा परिष्द गठन।

1914– काशीधाम में ऋषि जीवन आरंभ।

1922– गाँधीजी के साबरमती आश्रम में गमन एवं साप्ताहिक पत्रिका Young India के कार्य में आत्मानियोग। दो महीने बाद कोलकाता लौटना।

1927– कोलकाता त्याग।

1929–30– द्वारभंगा में अवस्थान।

1930– काशीधाम में लौटना एवं स्थायी अवस्थान।

18 अप्रैल 1948– काशीधाम में महाप्रयाण।

****

वरिशाल रत्न श्री अश्विनीकुमार दत्त

वरिशाल रत्न अश्विनीकुमार दत्त, श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी के अनन्यतम शक्तिमान के शिष्य थे। इस विषय में इनकी तुलना डॉन सोसाइटी के प्रतिष्ठाता महात्मा सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एवं देशनायक विपिनचन्द्र पाल के साथ की जा सकती है। गुरु शक्ति प्राप्त करके उनके निर्देशानुसार चलकर ये लोग बंगाल, भारत तथा विश्व के इतिहास में अमर एवं स्मरणीय हो गए हैं।

अश्विनीकुमार का जन्म 1856 ई० के 25 जनवरी वरिशाल जिला के पटुयाखालि के अन्तर्गत वाटजोड़ा गाँव में हुआ था। उनके पिता ब्रजमोहन दत्त कोलकाता में छोटी अदालत के न्यायाधीश थे। यह काम उन्हें पसन्द नहीं था। वे स्वाधीनचेता थे, इसलिए गुलामी करके जीवन बिताना पड़ रहा है, ऐसा कहकर आक्षेप करते थे। वे स्वदेश प्रेमी एवं साम्यवादी थे। एकबार जिला के ज्वॉइंट मजिस्ट्रेट ने ब्रजमोहनजी के पालकी वाहकगण को अपनी पालकी ले जाने के लिए मजबूर किया था, इससे स्वाधीनचेता ब्रजमोहन को अत्यन्त चोट पहुँची। उन्होंने साहब के नाम पर शिकायत करके 30 रुपए क्षतिपूर्ति के तौर पर लिए थे। माता प्रसन्नमयी देवी भी तेजस्विनी नारी थीं। 1906 ई० में कोलकाता कांग्रेस के स्वदेशी शिल्पागार बड़ालाट द्वारा खोले जाने कि बात सुनकर वीर पुत्र की जननी ने कहा था, "यह कैसी बात है ? देश में क्या और कोई नहीं था कि स्वदेशी मेला अंग्रेज बड़ालाट खोलेंगे ?"

बाल्यकाल से ही अश्विनीकुमार का धर्मजीवन प्रांरभ हो चुका था। शैशव में ही वे देव–देवी की मूर्ति सपने में देखते थे। देव–स्थान की मिट्टी खिलाने से शिशु का रोग ठीक हो जाता था। उनका बाल्यकाल का प्रधान खेल था, देव–देवी का अभिनय एवं श्रीहरि का गीत कीर्तन। किशोर अवस्था में पिता के कर्मस्थल रंगपुर के स्कूल में मित्र भुवनेश्वर गुप्त के साथ प्रतिदिन थोड़ी प्रार्थना एवं सरल नीतिकथा की आलोचना होती थी। इस तरह बाल्यकाल से ही भगवत् प्रेम एवं विशुद्ध बंधुप्रीति ने उनका हृदय अधिकार कर लिया था। बहुत ही कम उम्र से उसमें धर्म संग्राम की सूचना हुई थी। यह इस घटना से प्रमाणित होता है :–

उस समय वे 14 साल के थे। एकबार कुछ दिनों के लिए माता–पिता से अलग किसी अन्य घर में थे। वहाँ के सब लोग इंद्रियासक्त एवं शराबी थे। वे

सुरापान करते समय अश्विनीकुमार को अत्यन्त प्रलोभन दिखाते थे। एकदिन सुरापान के समय वे लोग सुरा की महिमा वर्णन करके अश्विनीकुमार को थोड़ा सुरा पान करने के लिए बार–बार अनुरोध करने लगे। उन लोगों की बात सुनकर उनको सुरापान की इच्छा हुई एवं जैसे ही सुरापात्र पकड़ने के लिए उन्होंने हाथ आगे बढ़ाया, अचानक उनके विदेश के एक अन्तरंग मित्र की बात याद आई। वे दोनों प्रायः सुरापान की आलोचना करते थे। उस समय अचानक उनको वह सब बातें याद आने लगी। उन्होंने सोचा, "मैं क्या करने जा रहा हूँ ? अगर आज मैंने सुरापान किया, तो यह बात उसके पास क्या गुप्त रख सकूँगा ? यदि गुप्त रखूँ, तो मेरे जैसा विश्वासघातक और कोई नहीं होगा। जिसे इतना प्यार करता हूँ, उसके निकट कुछ भी गुप्त रखना नहीं चाहिए। उसके पास यह नहीं बताकर कैसे रहूँगा ? और बता देने पर क्या वह मुझसे प्यार करेगा ? इस सम्बन्ध में उसके साथ कितनी बातें की। वह मुझसे कभी प्यार नहीं करेगा। अब सुरापान करूँ या उसके प्यार की मर्यादा रक्षा करूँ ?" इस तरह उनके हृदय में आंदोलन चलता रहा। एकओर सुरा की मोहमयी प्रबल आकर्षणी शक्ति, दूसरी ओर पवित्र प्रेम का प्रगाढ आकर्षण। अंत में प्रेम की ही जीत हुई। जिस बालक मित्र के पवित्र प्रेम ने अश्विनीकुमार को सुरापान से निवृत्त किया था उसका नाम था, त्रिगुणाचरण सेन। बाद में ये अध्यापक भी प्रख्यात हुए।

"भक्तियोग" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में एक घटना से यह पता चलता है कि किस तरह उन्होंने क्रोध एवं हिंसा को परास्त किया था। उनकी अपनी घटना का यहाँ उल्लेख किया गया है। लेकिन उन्होंने अपना नाम गुप्त रखा था। उस समय वे कॉलेज में पढ़ते थे। घटना का वर्णन इस प्रकार है– "एक स्थान में दो युवक रहते थे। एक स्कूल में पढ़ता, दूसरा कॉलेज के उच्चश्रेणी में पढ़ता था। एकदिन किसी कारण से उनमें झगड़ा हुआ। दूसरे दिन स्कूल के प्रधान शिक्षक को इस बात का पता चला और उन्होंने स्कूल के छात्र को कॉलेज के छात्र से क्षमा माँगने को कहा। उस छात्र ने कहा, "मैंने कोई अपराध नहीं किया, यदि करता तो क्षमा माँगता।" ऐसा कहकर वह स्वाभिमान के कारण रोने लगा। यह छात्र पहले प्रतिदिन दूसरे छात्र के घर जाता था। झगड़ा होने के बाद से फिर नहीं गया। इससे उस दूसरे छात्र को भी बहुत कष्ट हो रहा था। वह जब भी उपासना करने बैठता, यीशु का महावाक्य उसके स्मरण में आता। वह सोचता था कि जब तक वह उस युवक से नहीं मिलेगा, तब तक भगवान उनकी प्रार्थना, भजन–स्तुति कुछ भी नहीं सुनेंगे। भगवान् प्रेममय हैं। हृदय में थोड़ा भी अप्रेम या हिंसा भावना के रहने से उनके उपस्थित होने का कोई उपाय नहीं रहता। यह सोचकर वह अस्थिर हो गया। उसको बुखार था। जैसे ही बुखार उतरा, उसने उस युवक के पास जाकर कहा, "भाई, हमारा मिलन होना आवश्यक है। हमलोग ऐसे हिंसा भाव को हृदय में क्यों

स्थान देंगे ?" स्कूल का युवक बहुत दुःख के साथ बोला, "ऐसा नहीं हो सकता, शीशा एकबार टूटने से क्या जोड़ा जा सकता है ?" यह सुनकर उस दिन वह यह कहकर चला आया कि, "मैं कल फिर आऊँगा। प्रतिदिन आऊँगा। जब तक मिलन न हो।" दूसरे दिन पुनः वह उसके घर गया, लेकिन वह उसे नहीं मिला। दूसरे दिन उस युवक के स्कूल में एक सभा का आयोजन किया गया। छात्रों के अनुरोध से कॉलेज का युवक वहाँ उपस्थित हुआ। एक छात्र ने रचना पाठ किया। पाठ समाप्त होने पर उस रचना के बारे में परिचर्चा के लिए अनुरोध किया गया। एक छात्र खड़ा होकर बोला, "आज हम लोग यहाँ रचना सुनने या उसके बारे में मत प्रकाश करने के लिए नहीं आए हैं। मैं एक दोस्त के अनुरोध पर यहाँ आया हूँ। उसे कुछ कहना है।" स्कूल का छात्र खड़ा होकर बोला," ये लोग मेरे अनुरोध से यहाँ आए हैं। उस दिन सब लोगों ने सोचा होगा कि मैंने उससे क्षमा माँग ली, लेकिन ऐसा नहीं हुआ एवं होने का कोई कारण भी नहीं है।" ऐसा कहकर उसके प्रति कर्कश बातें करने लगा। शिक्षक महाशय ने क्रुद्ध होकर उसे सजा देनी चाहा, लेकिन कॉलेज के छात्र के अनुरोध से ऐसा नहीं किया गया। आज वह दृढ़ होकर आया है–"मिलन करना ही होगा। मिलन नहीं होने से भगवान प्रार्थना नहीं सुनेंगे। प्रेम के देवता मन में हिंसा भावना रहने से कोई बात नहीं सुनेंगे।" किसी भी कर्कश भाषा से आज वह उत्तेजित नहीं होगा। उसका मन किसी भी कारण से विचलित नहीं हो रहा था। स्कूल के छात्र के बैठते ही कॉलेज के छात्र ने खड़े होकर फिर से मिलन की प्रार्थना की। स्कूल का छात्र जोर–जोर से श्वाँस लेते हुए बोला, "मिलन! मिलन ? मिलन नहीं हो सकता।" (Reconciliation! Reconciliation! Reconciliation cannot take place) इस बात पर कॉलेज का छात्र थोड़ा भी नाराज न होकर प्रेम की महिमा वर्णन करने लगा एवं उससे बार–बार क्षमा माँगने लगा। उसकी प्राणस्पर्शी बातों ने सबको व्याकुल कर दिया। वक्ता एवं श्रोता सबकी आँखें अश्रु परिपूर्ण थी। स्कूल का छात्र धीरे–धीरे उठकर अपनी किताबें टेबल से उठा लिया, तब उस कॉलेज के छात्र को बहुत दुःख हुआ। वह बार–बार कहने लगा "थोड़ी देर रुक जाओ, मेरी बात सुनो मुझे क्षमा कर दो, इतना निर्दय मत हो।" उसने सोचा था, स्कूल का छात्र उसकी कोई बात नहीं सुनना चाहता, इसलिए वह घर चला जा रहा है। लेकिन वास्तविक में ऐसा नहीं था। प्रेम सर्वजयी है। उसके मिलन की ह्रदय की बातों को सुनकर उससे और रहा नहीं गया। वह दौड़ते हुए कॉलेज के छात्र के पास गया एवं उसके दोनों हाथों को पकड़कर रोने लगा एवं "मुझे माफ कर दो" ऐसा कहते–कहते अस्थिर हो गया। यह आंतरिक मिलन फिर कभी आपसी विरोध के कारण क्षुब्ध नहीं हुआ था।

ईश्वर के विधान से इन दोनों में दीर्घकाल तक साक्षात् नहीं हुआ था। दोनों विभिन्न स्थान पर कार्यवश चले गए। बुढ़ापे में अचानक वाराणसी में उन दोनों का

साक्षात् हुआ। उस दिन वे दोनों बाल्यकाल की बातें स्मरण करके गले लगकर रोए थे। मित्र हरिचरण के आनन्दाश्रु से (कॉलेज के उस छात्र) अश्विनीकुमार का सीना सिक्त हो गया था। उक्त घटना से यह प्रमाणित होता है कि, अक्रोध द्वारा क्रोध को एवं प्रेम द्वारा हिंसा को पराजित किया जा सकता है। इस घटना से अश्विनीकुमार के हृदय की भावना प्रकट होती है।

1870 ई० में अश्विनीकुमार रंगपुर से प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कोलकाता आए एफ० ए० पढ़ने के लिए। 1873 ई० में एफ० ए० पास करके 1874 ई० में बी० ए० पढ़ते समय उनको पता चला कि, प्रवेशिका परीक्षा की अनुमति के लिए उनके अज्ञात में उनकी उम्र दो साल बढ़ा दी गई थी। बाद में उन्होंने इसे मिथ्याचरण जानकर प्रायश्चित स्वरूप बी० ए० पढ़ते समय एक साल कॉलेज में अनुपस्थित रहे। इस तरह कुछ दिनों के लिए विश्वविद्यालय के बन्धन से मुक्तिलाभ करके 18 साल के अश्विनीकुमार ने मात्र चार पैसा लेकर ग्रान्ड ट्रंक रोड पर बराबर चलना शुरू किए। कभी पेड़ के नीचे, कभी तालाब के पास, कभी खाली बैलगाड़ी में सोकर रात बिताते थे और एक–आध बार दिन में कभी किसी दयालु गृहस्थ के घर में आहार करके उनकी पथ परिक्रमा चली। इस तरह चलते–चलते वर्धमान पहुँचे। यहाँ एक व्यक्ति ने उनको पहचानकर हठपूर्वक वापस घर भेज दिया। 10 दिन बाद पिता के कर्मस्थल यशोर में वे पहुँचे। विभिन्न धर्मग्रन्थ पाठ, स्वल्पाहार–ग्रहण, एक मोटी किताब के ऊपर सिर रखकर बिना बिस्तर के केवल लकड़ी की चारपाई के ऊपर सोकर वे प्रायश्चित करने लगे। मकान के निकटवर्ती एक पेड़ के नीचे खड़े होकर कभी–कभी सार्वभौमिक धर्म एवं भगवत् तत्व की व्याख्या करनी उन्होंने शुरू की। यह व्याख्या शहर के सब लोग अति आग्रह के साथ सुनते थे। सत्य के प्रति ऐसी निष्ठा बाल्यकाल से ही उनमें प्रकाशित हुई थी। उसके बाद कृष्णनगर से वे बी० ए० पास किए फिर एम० ए० एवं बी० एल परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए।

पुत्र का भाव देखकर माता–पिता का मन चंचल हो गया और उन्होंने 1876 ई० में 9 साल की उम्र की एक बालिका के साथ अश्विनीकुमार का विवाह कर दिया। इस बालिका ने बाद में शिक्षा प्राप्त करके धर्म एवं साहित्य में विशेष दक्षता अर्जित की। उनके लेख एवं बातों में यह स्पष्ट रूप से पता चलता है। पति का धर्म एवं कर्म जीवन के पवित्र आदर्श को सफल करने के लिए उन्होंने असाधारण संयम का परिचय दिया। आदर्श वधु की मर्यादा एवं शालीनता की उन्होंने सर्वदा रक्षा की एवं पति के सहकर्मी लोग भी उन्हें अत्यन्त श्रद्धा करते थे। यह महीयसी महिला प्रसूति न होकर भी अनेक छात्र संतानों की "बड़ी माँ" होकर पति–वियोग के बाद 12 साल जीवित रहीं। उनकी इच्छा थी मृत्यु के बाद कोलकाता

कालीघाट श्मशानभूमि में निर्मित उनके पति के क्षुद्र स्मृति मंदिर के पाददेश में उनकी मृतदेह भस्मीभूत की जाए। उनके छात्र संतानों ने उनकी यह इच्छा पूरी की थी।

कृष्णनगर में छात्रावस्था में अंग्रेजी में "सनेट" लिखकर एकबार अश्विनीकुमार ने बंगाल के छोटालाट (गवर्नर) को अभिनन्दित किया था। बंगाली युवक की लिखित यह अंग्रेजी कविता सुनकर लाटसाहब काफी प्रसन्न हुए। अध्यापक रो साहब ने भी लेखक छात्र की लाट साहब के निकट अत्यन्त प्रशंसा की थी। अश्विनीकुमार की मेधा, पाण्डित्य एवं उत्साह देखकर छोटालाट ने स्वयं अश्विनीकुमार को डिप्टी मजिस्ट्रेट की नौकरी देने की इच्छा व्यक्त की ब्रजमोहन दत्त के पास। ब्रजमोहन यह नहीं चाहते थे कि उनका पुत्र भी उनकी तरह गुलामी करें। इसलिए उन्होंने विनय के साथ लाटसाहब से कहा कि उनका पुत्र वकील होकर स्वाधीन व्यवसाय करेगा। इससे उसकी यश वृद्धि होगी।

पिता की इच्छानुसार 1880 ई० से अश्विनीकुमार ने वरिशाल में वकालत शुरू की। लेकिन इससे पहले वे बी० ए० पास करके कुछ दिन श्रीरामपुर के पास चातरा विद्यालय में प्रधान शिक्षक थे। स्कूल के छात्रों ने देखा यह प्रधान शिक्षक प्रायः उनके समान उम्र के हैं एवं प्रचलित शिक्षकों जैसा कठोर नहीं हैं। यह सौम्यमूर्ति, विनीतवदन हेड मास्टर छात्रों के साथ घूमते थे। संध्या के समय नाव द्वारा नदी में वाच (नाव द्वारा एक प्रकार का खेल) खेलने जाते थे, फिर लड़के उनकी गोद में सिर रखकर गाना गाते थे। पुरातनपंथी अभिभावक यह सब देखकर व्यग्र हो उठे। एक अभिभावक ने आकर उनसे पूछा–"महाशय, लड़के लोग आपके सामने गाना गाते हैं, हँसी–मजाक करते हैं, क्या यह सब ठीक है ?" युवक हेड मास्टर ने हँसकर कहा, "क्यों महाशय भजन गाना कोई खराब काम नहीं है। स्वाभाविक विशुद्ध आनन्द का पथ बंद कर देने से ये लोग टप्पा (अश्लील गाने) गाएँगे। ये लोग तो मेरे पास भगवान की प्रार्थना संगीत गा रहे हैं। कुछ दिन बाद देखा गया कि इस नए हेड मास्टर के संपर्क में आकर लड़कों में नए जीवन का स्पंदन शुरू हो गया। उन्होंने कुछ दिन कृष्णनगर कॉलेजियेट् स्कूल के द्वितीय श्रेणी में अंग्रेजी एवं कॉलेज के प्रथम वार्षिक श्रेणी में इतिहास पढ़ाया था। इसके बाद 1880 ई० से वरिशाल में वकालत शुरू की। उनका वकालत व्यवसाय जमने में ज्यादा देर नहीं लगी। साधुता एवं विनम्रता से उन्होंने सबका हृदय जीत लिया था। अंग्रेजी भाषण के लिए उन्होंने यथेष्ट ख्याति अर्जित की थी एवं काफी अर्थ उपार्जन किया था। जब यह व्यवसाय क्रमशः बढ़ता जा रहा था, अचानक उन्होंने वकालत छोड़ दी। क्योंकि एक मुकदमा में मुवक्किल के स्वार्थ के अनुरोध से उनको झूठ का आश्रय लेना पड़ा था। उसके बाद उन्होंने अध्ययन, अध्यापन,

जनसेवा एवं भगवदाराधना में जीवन व्यतीत किया।

श्रीश्री रामकृष्णदेव से साक्षात्कार उनके जीवन की एक श्रेष्ठ घटना है। 1881 ई० में उन्होंने परमहंसदेव के दर्शन किए थे। चार–पाँच बार उन्होंने श्री रामकृष्ण देव का दर्शन किया था एवं उनके प्रगाढ़ स्नेह प्रसाद से कृतार्थ हुए थे। इस दर्शन से उनको जो कुछ प्राप्त हुआ था वह उनके द्वारा श्री रामकृष्ण देव के शिष्य "श्रीम" को लिखित निम्नोक्त पत्र से पता चलता है –

ठाकुर के साथ केवल चार–पाँच दिन साक्षात्कार हुआ था, लेकिन उतने कम समय में ऐसा हुआ था, मानो हम लोग एक ही श्रेणी के छात्र हैं। उनके पास से जैसे ही दूर जाता था, लगता था, "अरे! किसके पास गया था।" इन कुछ दिनों में जो कुछ देखा एवं मिला उससे यह जीवन मधुमय हो गया है। उस दिव्यामृतवर्षी आनन्द को संभाल कर हृदय रूपी पेटी में बंद करके रखा है। इस निःस्व व्यक्ति की यह अनमोल धरोहर है। उन्होंने और कहा है, "परमहंसदेव के पास जितनी देर तक रहता था ऐसा लगता था मानो रस–सागर में डुबकी लगा रहा हूँ। ठाकुर एकदिन उनको नरेन्द्र के साथ परिचय करने को कहा, लेकिन उस दिन सिर–दर्द के कारण नरेन्द्र उनसे बातें नहीं कर सके, बोले– फिर कभी मुलाकात होगी। इसके बाद प्रायः 10 साल बीत गए। स्वामी विवेकानन्द अलमोड़ा गए थे। अश्विनीकुमार भी उस समय वहीं थे। एकदिन अश्विनीकुमार ने स्वामीजी के द्वार पर एक तरूण साधु से पूछा, "नरेन्द्रनाथ दत्त हैं ? मुलाकात करेंगे ?" उत्तेजित होकर साधु ने कहा, "नरेन्द्रनाथ – इस नाम का यहाँ कोई नहीं है।" लेकिन स्वामीजी कौतूहुल पूर्ण जोर से बोले– "है! आइये।" अश्विनीकुमार ने अपना नाम बताया। नाम कहते ही दोनों गले लग गए। उस समय स्वामीजी का एक अमेरिकन शिष्य उनका जूता उतार रहा था। आश्चर्य की बात है, 10 साल पहले सिर दर्द के लिए स्वामीजी अश्विनीकुमार के साथ बातें नहीं कर सके थे। यह बात वे नहीं भूले थे। अश्विनीकुमार ने कहा, "इसलिए आज ठाकुर के नरेन्द्र के साथ बातें करने आए। पहले एक बात पूछना है, मद्रास (चेन्नई) में किसी ने आपको Pariah (अस्पृश्य) कहा था, आपने उनको "Pariah of Pariahs" कहा था– क्या यह सच है ? स्वामीजी ने कहा– **"हाँ सच है, लेकिन मैंने क्या कभी ऐसा कहा है कि, मेरा यह कहना सही है ?" अश्विनी कुमार ने हाथ जोड़कर कहा, "आज मैंने ठाकुर के अमेरिका विजयी विशुद्ध, नरेन्द्रनाथ (मानव श्रेष्ठ) को देखा। ठाकुर के चरणों में मेरा सहस्त्र प्रणाम।" सत्य कथन के प्रति इस तरह अश्विनीकुमार की श्रद्धा बराबर देखी गई।**

कानून–व्यवसाय करते समय वे केवल वकालत में ही समय नहीं बिताते थे। उन्होंने वकीलों में दूर्नीति दूर करने का प्रयास किया। उनकी प्रचेष्टा से वकीलों

का मद्यपान कम हुआ एवं नैतिक चरित्र का उत्कर्ष हुआ था। इस सूत्र से उनके साथ भारत हितैषी केन् एवं महामति स्टेंड साहब का पत्राचार हुआ था। वकालत छोड़ते समय वरिशाल के मजिस्ट्रेट रमेशचन्द्र दत्त ने एक सर्वांग सुन्दर विद्यालय स्थापना के लिए अश्विनीकुमार से अनुरोध किया।

ब्रजमोहन विद्यालय स्थापना की मूल प्रेरणा मिली थी रमेशचन्द्र दत्त से। उस समय वरिशाल में केवल एक सरकारी स्कूल था। वहाँ प्रचलित रीति से शिक्षा दी जाती थी। छात्र एवं शिक्षक के बीच कोई स्नेह–भक्ति का संपर्क नहीं था। परीक्षा पास करना ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य था। पाठ्यतालिका में धर्म एवं नीतिशिक्षा का नाम भी नहीं था। इसलिए अश्विनीकुमार एवं उनके पिता ने वरिशाल में एक ऐसे विद्यालय की स्थापना करना चाहा, जिसका उद्देश्य होगा एकसाथ विद्यानुशीलन एवं चरित्रानुशीलन। विद्यानुशीलन का मूल मंत्र होगा सत्य, प्रेम, पवित्रता। अश्विनीकुमार ने जब वकालत छोड़कर शिक्षकीय व्रत ग्रहण किया, तबसे इस विद्यालय का कार्य आरंभ हुआ। शिक्षक का सारा गुण उनमें विद्यमान था। वे काफी विद्वान थे, यह बहुत कम लोग जानते थे। संस्कृत, पाली, अरबी, फारसी भाषाओं में वे विशेष पारंगत थे। उन्होंने हाफेज एवं जलालुद्दिन रूमी की कविताओं का गद्यानुवाद अति सरलभाव में किया था। लेकिन दुःख की बात यह है कि, वह अमूल्य ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित है। उन्होंने पाली भाषा में रचित बौद्धग्रंथ का पाठ किया एवं सर्वप्रथम बौद्ध संघ में गणतंत्र मत का प्रमाण देखा था। उन्होंने लगभग 1907 ई० में छात्रों के समक्ष बौद्धसंघ में प्रचलित शलाका एवं बहुमत् प्राधान्य के बारे में विचार रखा था। उस समय पटना के पंडित काशीप्रसाद जयसवाल का प्रबंध प्रकाशित नहीं हुआ था। अश्विनीकुमार ने पालीग्रंथ से भारत का लुप्त इतिहास जानने की चेष्टा करने को कहा था अपने भतीजे अध्यापक सुकुमार दत्त एवं छात्र अध्यापक सुरेन्द्रनाथ सेन से। उनकी यह इच्छा उनके भतीजे ने पूरी की थी। वे लगातार हिन्दी एवं उर्दू भाषा में भाषण देते थे। स्वामी रामदास की मराठी भाषा में लिखी हुई "दासबोध" का उनको पाठ करते देख वरिशाल में आया हुआ एक मराठी सर्कसवाला चकित् हो गया था। सिख धर्मपुस्तक "ग्रंथसाहेब" का वे नियमित पाठ करते थे। बहुमुत्र रोगाक्रांत होने के समय उन्हें उड़िया भाषा में भी छोटी–छोटी किताबें पढ़ते हुए देखा जाता था। अंग्रेजी में उनका असाधारण ज्ञान था। एकबार उन्होंने छात्रों को एक फारसी कोटेशन की व्याख्या करके सुनाया था। इससे लगता है कि वे फारसी भाषा भी जानते थे। गोस्वामी तुलसीदास, स्वामी रामदास एवं तुकारामजी की भक्तिपूर्ण रचनाओं का पाठ करने के लिए उन्होंने हिन्दी एवं मराठी भाषा सीखी थी। इस तरह हाफेज के रसास्वादन के लिए पारसी सीखे थे। अध्यापन के समय जब वे

शेलि, ओयार्डस् ओयार्थ के रचनाओं की व्याख्या करते थे तब छात्रों में नया उत्साह देखा जाता था। वे वरिशाल के ब्राह्मसमाज में असाधारण भाषण देते थे। अंग्रेजी में 'Rejoicings in the Brahmo Samaj', 'Silver wedding of the East and the West', आदि विषयों पर उनके भाषण ने श्रोताओं को ईश्वरीय भाव में अभिभूत किया।

अश्विनीकुमार का केवल पाण्डित्य ही नहीं था। चरित्रबल भी उनकी श्रेष्ठ संपदा थी। वे छात्रों को जो उपदेश देते थे, उसे अपने जीवन में भी पालन करते थे। सत्य के प्रति उनकी असाधारण निष्ठा थी। परोपकार व्रत उनके जीवन का लक्ष्य था। जिन्दगी भर उन्होंने यह व्रत पालन किया था। बुढ़ापा में जब बहुमूत्र रोग से उनका शरीर दुर्बल हो गया था, एकदिन उन्होंने काशीपुर के रास्ते में एक मुसलमान को खून की उल्टी करते देखा, तुरंत उन्होंने अपने साथी को शहर से स्ट्रेचर लाने के लिए भेजा। लेकिन देर होने पर अगर रोगी की हालत और ज्यादा खराब हो जाए ऐसी चिन्ता कर वे रोगी को अपनी पीठ पर उठाकर शहर में ले आए। कुछ दिन बाद उस रोगी ने स्वस्थ होकर उनको लिखा था—"मेरी पीठ की चमड़ी से आपका जूता निर्माण करने से भी यह ऋण परिशोध नहीं होगा।"

उन्होंने श्रीरामकृष्ण, राजनारायण बसु, रामतनु लाहिड़ी आदि अनेक महापुरुषों का संग लाभ किया था। इन लोगों के आदर्श से उनका जीवन अनुप्राणित हुआ था। 'भक्तियोग' ग्रंथ में उन्होंने इन लोगों के बारे में लिखा हैं। केशवचन्द्र सेन एवं राजनारायण बसु के प्रभाव से वे ब्राह्मधर्म के प्रति आकृष्ट हुए एवं 1882 ई० में ब्राह्मसमाज के सदस्य बने थे। धर्म के प्रति आकर्षण के कारण 1886 ई० में प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी से उनको दीक्षा प्राप्त हुई। सद्गुरु के पास दीक्षा प्राप्त कर वे प्रेम, भक्तिरस में डूब गए थे। एकदिन उन्होंने "मरी—पर्वत" की चोटी से एक अदृश्यकण्ठ ध्वनि सुनी—"पी ले रे अवधुत मतवाला प्याला हरि—प्रेम रस का रे।" यह ध्वनि सुनकर वे जंगल के भीतर ही प्रेमाकुल हो गए थे। एकदिन कोलकाता के भीड़ भरे रास्ते के किनारे एक कुष्ठ रोगी को देखकर अपने साथी से कहा—"देखो, देखो, ठाकुर यहाँ कैसी मूर्ति में बैठे हैं।" कीर्तन में वे स्थिर नहीं रह सकते थे। उनका शरीर काँपता था। उनकी आँखों से अश्रुधारा बहती थी। प्रति शनिवार वे छात्रों के साथ प्रार्थना सभा में थोड़ा कुछ बोलने के बाद ही व्याकुल हो जाते थे और कुछ बोल नहीं सकते थे। उन्होंने यह प्रेम—मधु, जाति, धर्म, उम्र, पद, साधु, पापी कुछ भी विचार न करके सर्वजीव में वितरण किया था। यदि कोई कुसंग का परिणाम समझकर उनके पास जाता तो वे उनको सीने से लगाकर सांत्वना देते थे। आदि ब्राह्मसमाज के सभापति एवं ज्ञान कर्म—भक्ति के प्रतीक वृद्ध राजनारायण बसु ने एकदिन देवघर में अपने घर में अचानक अश्विनीकुमार को

देखकर तुरंत खड़ा होकर उनको सीने से लगा लिया था। एकदिन अस्सी वर्ष के एक हरिजन वृद्ध उनको देखने के लिए उनके घर आए एवं उनको देखकर अश्रु बहाने लगे। यह देखकर अश्विनीकुमार तुरंत उठे एवं वृद्ध को सीने से लगाए फिर अपने पास बैठाए। उन्होंने इस प्रेम द्वारा मनुष्य, भगवान, संसार एवं धर्म को एक सूत्र में बाँधा था। उन्होंने यशोर के गाँव–गाँव में घूमकर ब्राह्मधर्म प्रचार किया। श्रीमद्भागवत् पाठ करते–करते उनकी आँखें भर आती थीं। हाफेज की कविता पढ़ते–पढ़ते वे नृत्य करते थे। वे तन्मय होकर रूमी की आध्यात्मिक कविता का पाठ करते थे। वे थामस केम्पिस एवं उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Imitation of Christ' के भी परम भक्त थे। उनके धर्म में सांप्रदायिकता का स्थान नहीं था। यशोर में उन्होंने जो धर्मसभा प्रतिष्ठा की थी उसमें वैष्णव, शाक्त, मुसलमान, ईसाई आदि सब सम्प्रदाय का समान अधिकार था। उनमें भक्ति का असाधारण प्रकाश देखकर उनको अवतार रूप में कल्पना करने से वे ऐसे भक्तों का विरोध करते थे।

दीक्षा ग्रहण के बाद अपनी अवस्था सोचकर एकदिन उन्होंने सरलभाव से गोस्वामी प्रभुजी से कहा, "मुझे विभिन्न भावों के लोगों के साथ मिलना पड़ता है। कभी–कभी पार्टी में आहारादि करना पड़ता है। उच्छिष्ट एवं मांस का संस्पर्श त्याग करना कठिन है। तो क्या गुरु आज्ञा के उल्लंघन करने के पाप में मुझे डूबना होगा ?" अश्विनीबाबू की इस सत्य उक्ति से गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "आपको यह दो नियम नहीं मानने से भी चलेगा, कोई पाप नहीं होगा," अश्विनीकुमार ने नियमभंग की विशेष अनुमति प्राप्त करने पर भी, नियम पालन की दृढ़ता का त्याग नहीं किया था। (बंगला पत्रिका 'मंदिर', 5 वर्ष)

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के पास दीक्षा प्राप्ति के बाद उनका जीवन उन्नत से उन्नततर होने लगा। सत्य एवं न्याय प्रतिष्ठा के लिए वे दृढ़ हो गए। सच्चे एवं उन्नत मानव तैयार करने के कार्य में उनको प्रेरणा मिली। सुशिक्षा प्रचार एवं लोकसेवा उनके जीवन का व्रत था। उनके सत्य एवं न्यायादर्श से पूर्वबंग के छात्र एवं युवकगण अत्यन्त प्रभावित हुए थे। इसलिए उनको पूर्वबंग का "मुकुटहीन राजा" कहा जाता था।

पहले ही कहा गया है कि, वरिशाल के मजिस्ट्रेट रमेशचन्द्र दत्त के अनुरोध पर उन्होंने वरिशाल में एक स्कूल स्थापना की थी। बाद में (1889 ई०) वहाँ पिता के नाम पर ब्रजमोहन कॉलेज की स्थापना की थी एवं दीर्घ 25 वर्ष उन्होंने उस कॉलेज में बिना वेतन के कार्य किया था।

स्त्री–शिक्षा प्रचार के लिए 'बाखरगंज हितैषिणी सभा' एवं बालिका विद्यालय की स्थापना उन्होंने की। शिक्षा विभाग को काफी अर्थ देकर महिलाओं के लिए "ब्रजमोहन पुरस्कार" की व्यवस्था भी की।

वे सत्य एवं सुन्दर के उपासक थे। उनके जीवन में सामान्य विलासिता का भी स्थान नहीं था। कॉलेज के परिचालक होते हुए भी वे साधारण कपड़ा पहनकर आते थे, इसलिए अध्यापकों तथा छात्रों में भी पोषाक का आडम्बर नहीं था। एकदिन एक छात्र विलासबहुल पोषाक पहनकर कॉलेज में आया। कॉलेज के बरामदा में ही अश्विनीकुमार से उसका साक्षात् हुआ। अश्विनीकुमार ने उससे पूछा–"ऐसी पोषाक क्यों पहने हो ?" छात्र ने अविनीत रूप से कहा–"मेरी इच्छा"। अश्विनीकुमार ने गंभीर स्वर से कहा–"तुम अभी ऑफिस में जाओ एवं transfer ले लो।" छात्र के इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, "यह कॉलेज मेरा है। यहाँ विलासी बाबुओं का स्थान नहीं है।" युवक को कॉलेज से निकाल दिया गया। इसके बाद 13 वर्ष बीत गया। मद्रास (चेन्नई) कांग्रेस से लौटते समय अश्विनीकुमार पुरी में उतरे। वहाँ एक युवक ने परम समादर के साथ उनके आहारादि की व्यवस्था की थी। अश्विनीकुमार उस युवक को नहीं पहचाने। वरिशाल में लौटने पर उन्हें पुरी के उस युवक का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था–"13 वर्ष पूर्व विलासिता के लिए जिसको आप कॉलेज से निकाल दिए थे, मैं वही हूँ। आपके तिरस्कार से मुझे चेतना हुई एवं आप यह सुनकर जरूर खुश होंगे कि आज मैं विलासिता का पूर्ण रूप से वर्जन कर सका हूँ।" अश्विनीकुमार ने एकबार धोती पहनकर 1906 ई० के विख्यात कॉन्फरेंस में योगदान किया था। वहाँ इमारसन् साहब ने उनकी पोषाक की हँसी उड़ाई थी। उस दिन से वे प्रतिज्ञा किए कि कभी विदेशी कोट पेन्ट नहीं पहनेंगे। इसके बाद छोटालाट् बेलि एवं फिर लार्ड कारमाइकेल के पास से दो बार आमंत्रण आने से उन्होंने कहा था कि यदि धोती पहनकर जाने में उन लोगों को आपत्ति न हो तभी वे वहाँ जा सकते हैं। उनकी स्वदेशी भावना के प्रति गंभीर अनुराग का यह एक अपूर्व दृष्टांत है। सर आशुतोष मुखोपाध्याय ने धोती एवं चप्पल पहनकर कोलकाता विश्वविद्यालय कमीशन के कार्य के लिए सारा भारत भ्रमण किया था। मुखोपाध्याय महाशय के लौटने पर अश्विनीकुमार ने उनसे मुलाकात करके कहा था, "आपने धोती का सम्मान रखा है, इसलिए मैं बहुत खुश हूँ। मेरे विदेशी परिधान छोड़ने पर लोग कहते हैं, पागल है–पागलो जैसा विचार है। लेकिन आप हाईकोर्ट के प्रधान न्यायधीश हैं, आपकी मस्तिष्क की स्वस्थता के बारे में कोई शक नहीं करेगा।"

अश्विनीकुमार छात्रों के साथ मित्र जैसा व्यवहार करते थे। उनसे मिलने के लिए कोई कार्ड या चिट्ठी की जरूरत नहीं होती थी। वे सर्वदा दर्शक–गृह में ही बैठे रहते थे। उस कमरे की सब खिड़की एवं दरवाजा खुला रहता था। सारी बातें यानी कभी गंभीर राजनैतिक आलोचना, तो कभी गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य मनोरंजन गुहठाकुरता के साथ Mesmerism के संबंध में चर्चा भी वहीं होती थी।

रात अधिक होने पर नौकर आकर वहीं उनके लिए सामान्य बिस्तर बिछा देता था। दिन–रात वहाँ उनके अंतरंग छात्रों की चहल–पहल रहती थी। एक–एक दल छात्रों को लेकर वे घूमने जाते थे। उन लोगों के घर की बातें, उनके सुख–दुःख, कुअभ्यास आदि की सारी बातें उनके साथ हुआ करती थी। किसी भी बात को छात्र उनसे नहीं छिपा सकते थे। छात्रों के कल्याण के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। वे बालविवाह के घोर विरोधी थे। उनके एक छात्र को माता–पिता के अनुरोध से 16 वर्ष की उम्र में एक 13 वर्ष की किशोरी से शादी करनी पड़ी थी। इस घटना के लिए संकोच से वह तीन महीना तक उनके सामने नहीं आ सका। अंत में एकदिन उनके पास जाना ही पड़ा। उस समय उन्होंने ऐसा परामर्श दिया था जिससे उस छात्र का भविष्य नष्ट न हो। छात्रों के सुःख–दुःख की बात वे सर्वदा सोचते थे। सब छात्रों की आर्थिक अवस्था वे जानते थे एवं गुप्तरूप सें अनेक गरीब छात्रों का प्रतिपालन करते थे। एकबार उनके चन्द्रनाथ दर्शन के समय एक ब्राह्मण छात्र अपनी इच्छा से पाचक रूप में उनका साथी हुआ। चन्द्रनाथ में रहते समय रसोई का काम वह छात्र करता था। काम समाप्त होने पर वह उनके बिस्तर के एक किनारे में सो कर विभिन्न विषयों में बातें करता था। चन्द्रनाथ के बारे में सारी जानकारी प्राप्त करता था। उस समय एक विशिष्ट व्यक्ति भी चन्द्रनाथ गए थे। उन्होंने अश्विनीकुमार के साथ उस छात्र की ऐसी अभूतपूर्व घनिष्ठता देखकर कहा था, "इतने दिनों में समझा, ब्रजमोहन विद्यालय के छात्रों को कैसे असली मनुष्य होने की शिक्षा मिलती है।"

ब्रजमोहन विद्यालय में अश्विनीकुमार को श्रेष्ठतम सहकर्मी मिले थे। चिरकुमार भगवद्भक्त जगदीशचन्द्र, सेवाव्रती कालीशचन्द्र, ज्ञानयोगी रजनीकान्त, कर्मयोगी सतीशचन्द्र आदि लोगों ने विभिन्न समय में विद्यालय में योगदान किया था। इन लोगों का वेतन बहुत ही कम था। कॉलेज के अध्यक्ष रजनीकांत गुह का वेतन था मासिक 180 रूपए और सबको इससे भी कम वेतन मिलता था। लेकिन ये सब महात्मा अर्थ की लालच से वरिशाल नहीं गए थे। ये लोग अश्विनीकुमार के आदर्श से अनुप्राणित होकर गए थे। ये सब आदर्शवान शिक्षकों के बारे में नीचे कुछ विवरण प्रस्तुत है–

शहर के एक प्रांत में एक छोटी–सी कुटिया में रहते थे शिक्षक जगदीश मुखोपाध्याय। यशोर में पढ़ते समय अश्विनीकुमार के सत्य, प्रेम एवं पवित्रता के मंत्र में उन्होंने शिक्षा प्राप्त किया था। बी० ए० पास करके उन्होंने ब्रजमोहन विद्यालय के द्वितीय शिक्षक के रूप में अश्विनीकुमार के महाव्रत में योगदान दिया था एवं जिन्दगीभर ब्रह्मचारी रहकर कई लड़कों को अपनी कुटिया में माता की तरह लालन–पालन किया। अंग्रेजी, संस्कृत एवं विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर उनकी

असामान्य दक्षता थी। वे सर्वदा गंभीर ध्यान मग्न रहते थे। अंत में वे स्कूल के हेडमास्टर बने, कॉलेज में भी अध्यापन करते थे। प्रति रविवार गीता एवं अन्यान्य धर्मग्रंथों की व्याख्या सुनने के लिए उनकी कुटिया में भीड़ जमा हो जाती थी। अश्विनीकुमार के देहत्याग के 9 वर्ष बाद उसी कुटिया में शिक्षक जगदीश मुखोपाध्याय ने देहत्याग किया। बाद में वह कुटिया "जगदीश आश्रम" के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रसंग में संस्कृत के द्वितीय शिक्षक सौम्यमूर्ति पंडित कालीशचन्द्र विद्याविनोद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। एक लड़का गलत रास्ते में चल रहा था। उसे सुधारने के लिए पंडित महाशय रात में छिपे रहे एवं उसे कुसंग में जाते हुए देखते ही कान पकड़ कर उसे श्मशान में ले गए। तब उस लड़के ने रोकर उनके पाँव पकड़ लिया कि ऐसा काम वह फिर कभी नहीं करेगा। उस दिन से उसकी सुमति हुई। फिर कभी भी वह गलत रास्ते में नहीं गया। इस शिक्षक ने रोगी एवं दुःखी जनों की सेवा में मन–प्राण सौंप दिया था। शहर के घर–घर में घूमकर वे रोगियों को दवाई देते थे। रोगी का मल–मूत्र भी साफ करते थे। 1914 ई० में महाप्राण पंडित महाशय की अकालमृत्यु से वरिशाल में घर–घर में शोक छा गया था।

इन आदर्श शिक्षकों के संस्पर्श में आकर "ब्रजमोहन विद्यालय" का नाम सर्वत्र फैल गया। अश्विनीकुमार कॉलेज से एक पैसा भी ग्रहण नहीं करते थे लेकिन उसके लिए उन्होंने 35 हजार रूपए खर्च किए थे। ब्रजमोहन कॉलेज की ख्याति धीरे–धीरे समग्र बंगलादेश में फैल गई। एक विख्यात बंगाली राजकर्मचारी ने विद्यालय के छात्रों की सेवापरायणता देखकर कहा था–"इस वरिशाल में ही मैं मरना चाहता हूँ।" विद्यालय के छात्रों की सत्यनिष्ठा थी अभूतपूर्व। परीक्षा के समय चौकसी नहीं की जाती थी। शिक्षक छात्रों पर अपनी संतानों की तरह विश्वास करते थे। छात्रों ने भी इस विश्वास का दुरुपयोग नहीं किया था। बंगाल के सरकार ने इस विद्यालय को अर्थ–सहायता करनी चाही, लेकिन अश्विनीकुमार ने इसे स्वीकार नहीं किया। सेटेलमेन्ट विभाग के बड़े कर्त्ता सर बीट्सनबेल अश्विनीकुमार के बड़े अनुरागी थे। वे वरिशाल में आने के बाद ब्रजमोहन विद्यालय देखने जाते थे एवं सेटेलमेन्ट विभाग के कार्य के लिए उस विद्यालय के छात्रों को नियुक्त करते थे। उन्होंने छात्रों की कर्त्तव्यपरायणता एवं कर्मकुशलता की प्रशंसा करके अश्विनीकुमार को अनेक पत्र लिखे थे। इस विद्यालय के अनेक छात्रों ने उनके आदर्श में अनुप्राणित होकर शिक्षक रूप में अपना जीवन बिताया। बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के समय भारत के पश्चिमप्रांत में पंजाब से लेकर पूर्वप्रांत के असम तक प्रत्येक कॉलेज में ब्रजमोहन विद्यालय के एकाधिक आदर्श शिक्षकों को देखा गया था। बंगलादेश में ऐसा कोई स्कूल नहीं था जहाँ ब्रजमोहन विद्यालय के छात्र शिक्षक नहीं रहे हों। इन आदर्शवान छात्रों के द्वारा ही अश्विनीकुमार का

आदर्श एवं प्रभाव समग्र पूर्वोत्तर भारत में फैल गया था। इस समय कुछ दिन पहले से ही उन्होंने राजनैतिक आंदोलन में योगदान किया था। यह स्वदेशपरायण, आदर्श शिक्षक वरिशालवासियों के हृदय का राजा था। अचानक स्वदेशी आन्दोलन के समय सरकार की दृष्टि उन पर पड़ी। सरकार ने देखा कि मजदूर से लेकर लखपति भी उनकी आज्ञापालन करता है। वरिशाल के मुसलमान कृषक भी नवाब बहादूर के आदेश की अपेक्षा अश्विनीकुमार की आज्ञा को ज्यादा मानते थे। इसका एक छोटा–सा निदर्शन नीचे दिया जाता है–

"एक छोटे–से गाँव के अंग्रेजी स्कूल के शिक्षक ने वरिशाल के एक छात्र से पूछा–"Richman का अर्थ क्या है ?" उसने उत्तर दिया "धनी मनुष्य"। "greatman का अर्थ क्या है ?" "बड़ा आदमी।" "एक बड़ा आदमी का नाम बताओ"। वह छोटा–सा बालक कुछ भी नहीं सोच के उत्तर दिया "अश्विनीकुमार दत्त।" शिक्षक बहुत आनन्दित हुए। वास्तव में वरिशाल के लोग और किसी बड़ा आदमी की खबर नहीं रखते थे। अश्विनीकुमार ही उन लोगों के अपने आदमी थे। यह बात स्वदेशी आंदोलन के बहुत पहले की है। इसके बहुत दिन बाद स्वदेशी आंदोलन के समय एकदिन एक मोची वारिशाल के रास्ते में ढ़ोल बजाकर घोषणा कर रहा था, "राजा बहादुर के हवेली में सभा होगी, भाषण होगा।" पथिकों ने पूछा, "कौन भाषण देगा ?" "भाषण ? बाबू भाषण देंगे, और कौन देंगे ?" सब लोग जानते थे कि वरिशाल का एकमात्र बाबू (नेता) कौन हो सकता है ? फिर भी रहस्य बनाए रखने के लिए उसने पूछा–"कौन बाबू ?" मोची ढ़ोल बजाते–बजाते उत्तर दिया–"अश्विनीबाबू ?" "और कौन बाबू है ?" वरिशाल के छोटे–बड़े, धनी–निर्धन सब एक ही नेता का आदेश मानते थे। उन लोगों के सुख–दुःख में अश्विनीकुमार उनके पास जाते थे।

कहा जाता है, एकदिन निद्रित बालक अश्विनीकुमार के बिस्तर में साँप देखा गया। यह देखकर किसी ने भविष्यवाणी किया था कि यह बालक राजमुकुट प्राप्त करेगा। अश्विनीकुमार सचमुच वरिशाल के राजा थे। वरिशालवासियों ने उनको सोने का राजमुकुट नहीं पहनाया था, लेकिन उन लोगों के हृदय के सिंहासन में इस राजा का अभिषेक हुआ था। उस सिंहासन पर पार्थिव जगत का कोई राजा अधिकार नहीं कर सका। वे कभी–कभी मजाक से कहते थे–"एकबार छोटालाट बेलि वर्षा के समय मेरे सिर में छाता पकड़े थे। निर्वासन के समय चंवर की हवा मिली थी। लखनऊ जेल में सब कैदी लोग सोचते थे कि, मैं कोई सामन्त नरपति हूँ, क्योंकि मेरे स्वास्थ्य की खबर लेने छोटालाट हिउयेट् साहब उस जेल में आए थे। छत्र, चंवर, उपाधि सबकुछ मिल गया, बाकी था केवल राजदण्ड। क्यों, दीर्घ निर्वासन से यह भी पूरा हो गया।"

वे अन्याय सहन नहीं कर पाते थे। विदेशी शासको द्वारा भारत शोषण के विरुद्ध उन्होंने तीव्र प्रतिवाद किया था। स्वदेशी आंदोलन के समय उनका विक्रम देखकर विदेशी शासक डर गए थे। जो गुरुशक्ति प्राप्त करके देशनायक विपिनचन्द्र पाल ने भारत की गरिमा समग्र विश्व में प्रतिष्ठत की थी, उनके गुरुभाई अश्विनीकुमार दत्त ने भी गुरुशक्ति के बल से विदेशी शासकों के अन्याय के विरुद्ध सर्वशक्ति नियोग किया था। उनके नेतृत्व में एक ही साल में वरिशाल में विदेशी वस्त्रों की आमदानी तीन करोड़ रुपए कम हो गई थी। विभिन्न स्थान के 52 शराब की दुकानों में 51 दुकानें बंद हो गई थी। उनके प्रभाव से विलासी धनी लोगों ने भी शराब पीना छोड़ दिया। विवाहादि में भी विदेशी चीजों का व्यवहार करने का साहस सरकारी कर्मचारियों का नहीं था। उनके कार्य को रोकने के लिए फुलार साहब ने वरिशाल में गोरखा सैनिक तैनात किया। खुली तलवार हाथ में लेकर गोरखा सैनिकों के परिचालक वरिशाल के रास्ते में आगे–आगे चलते और उनके पीछे–पीछे हिमालय के निरक्षर सैनिक दल निर्विचार से आदेश पालन करते हुए चलते थे। अनेक अत्याचार हुए, दुकानें लूटी गईं, लोगों का मस्तक फटा, नारियों की सम्मान हानि हुई। लेकिन फिर भी विदेशी कपड़े तथा नमक के क्रेता या विक्रेता वरिशाल बाजार में नहीं मिले। जिलाशासक बदलने लगा। फुलार के बाद हेयर आया। हिन्दू–मुसलमान का प्रभेद–जहर छिड़का गया। अश्विनीकुमार अपमानित हुए, कॉन्फरेंस भंग हुई लेकिन वरिशाल नहीं टला। विदेशी शासकों ने सोचा, नए बाजार में विदेशी चीजें बेचेंगे। अनेक दुकानें बनाकर क्रेताओं के आकर्षण के लिए दुकानों की सजावट की गई। नहवत् वाद्य शुरू किया गया। लेकिन बड़ों की बात छोड़ो, बच्चों ने भी मुड़कर नहीं देखा। अश्विनीकुमार की शक्ति से सरकारी शक्ति इस तरह पराजित हुई थी।

ऐतिहासिक डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन महाशय अश्विनीकुमार की विपुल शक्ति देखकर कहे थे, "जिन्होंने ऐसा अघटन घटाया। निद्रित जाति की आँखों में जागरण लाया। उदासिनों के प्राण में दृढ़ संकल्प जगाया। वे कोई असाधारण महापुरुष होंगे इसमें सन्देह क्या ?" अश्विनीकुमार की शक्ति का परिमाण नहीं किया जा सकता। एक आदर्श नेता होने के सारे गुण उनमें थे। वे जो बोलते थे, वही करते भी थे। एकदिन दोपहर के आहार के बाद उनके बैठने के कमरे में एक दरिद्र मुसलमान को बेंच पर बैठे हुए देखकर उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखकर, पास में बैठकर कहा–"क्यों भाई, बहुत देर से आपको अकेले बैठा रखा हूँ ?" उस कमरे में और कोई नहीं था, बैठने के लिए दो कुर्सियां थी, उन कुर्सियों के ऊपर उपहार प्राप्त फटा हुआ तिब्बती मेष का चमड़ा था। दो टेबुल थी,जिस पर विश्व–विख्यात किताबों का ढेर था। विभिन्न भाषाओं के अखबार एवं चिट्ठियाँ,

दावात–कलम आदि बिखरा हुआ था। वहाँ एक चारपाई थी। उसके ऊपर एक दरी, एक सफेद चद्दर से ढका हुआ एवं दो तकिया था। आहार के बाद थोड़ी देर विश्राम के लिए अश्विनीकुमार वहीं बैठते थे। अश्विनीकुमार मुसलमान कृषक को बेंच पर बैठा हुआ देखकर और कहीं नहीं बैठकर उसके पास आकर बैठे। वह मुसलमान कृषक आनंद के साथ बोला,–"बाबू, आपके पास एक प्रश्न का उत्तर जानने आया था, लेकिन उसका उत्तर मुझे मिल गया। आप भाषण में कहते हैं, हम सब आपस में भाई–भाई हैं, इस बात की सत्यता पर मुझे शक था। लेकिन आप जब मेरे कंधे पर हाथ रखकर मेरे पास आकर बैठे तो मेरा सन्देह दूर हो गया। बाबू, आपको सलाम।" सब मनुष्य को वे समान दृष्टि से देखते थे, यह इसका प्रमाण है।

गोपाल नाम का एक मेहत्तर उनका शौचालय साफ करता था। गोपाल बहुत शराब पीता था। इसके लिए अश्विनीकुमार ने उसे कभी भी कुछ नहीं कहा, क्योंकि तूफान या बारिश जो भी हो गोपाल अपना कर्तव्य करता था। एक दिन भी उससे देरी नहीं होती थी। अश्विनीकुमार ने अत्यन्त मुग्ध होकर एकदिन सुबह गोपाल को देखकर बुलाया, "गोपाल, तू आ, तू मुझे गले लगा।" गोपाल अप्रस्तुत होकर खड़ा रहा। लेकिन वे गोपाल को गले लगाकार ही वहाँ से हिले। रामचन्द्र ने गुहक चंडाल को गले लगाया था, त्रेतायुग में। लेकिन इस कलियुग में भी वही आदर्श दिखाया अश्विनीकुमार ने मेहत्तर को गले लगाकर। उनके गुरुजी विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी के जीवन में भी ऐसे महाप्रेम का दृष्टांत है। एकदिन उनके हृदय में अत्यंत ज्वाला हो रही थी, वे दौड़ते हुए बाहर आए एवं एक कुली को देखकर पहले उसको साष्टांग प्रणाम किया फिर उसे गले लगाया, तब उनकी ज्वाला कम हुई। एकबार गोस्वामीजी ने तीर्थ यात्रा के पहले एक मेहत्तर को सांष्टाग प्रणाम कर अपनी यात्रा सफल होने का आशीर्वाद मांगा था। अश्विनीकुमार उसी महात्मा के शिष्य थे, इसलिए यह कहा जा सकता है, जैसा गुरु वैसा शिष्य। महाप्रेम के इस प्रकार के दृष्टांत ने हमारे जातीय इतिहास को उज्ज्वल किया है।

अश्विनीकुमार किसी का दिल नहीं दुखाते थे। एकदिन एक सिख युवक ने उनके घर में आकर देखा कि उनके टेबल पर अन्यान्य ग्रंथों के साथ 'गुरु ग्रन्थसाहेब' भी है। यह देखकर वह युवक बहुत दुःखी हुआ एवं बोला, "बाबू, आप 'ग्रन्थसाहेब' का इतना अनादर करते हैं ? यह ग्रन्थ क्या इस तरह रखना चाहिए ? इसको गद्दी पर चारों ओर तकिया घेरकर रखना चाहिए।" ग्रन्थ की अमर्यादा हुई है, यह अश्विनीकुमार नहीं सोचे थे। उन्होंने श्रीमद्‌भागवत् को जिस प्रकार रखा था, "ग्रन्थसाहेब" भी उसी प्रकार रखा था। लेकिन वे उस सिख युवक का दिल दुखाना नहीं चाहते थे। इसलिए उसीदिन ग्रंथसाहेब की गद्दी में स्थापना की। वह

युवक एक सामान्य द्वारपाल था। इससे पता चलता है कि अश्विनीकुमार के भीतर विश्वप्रेम का जागरण हुआ था। इसलिए एक सामान्य द्वारपाल को भी वे दुःख देना नहीं चाहते थे। उनकी मानव–प्रीति का और एक दृष्टांत है। अश्विनीकुमार के मन में स्वदेशी भावना के उदय होने पर उन्होंने अपने घर से सब विदेशी तस्वीरें हटा दी थी। लेकिन सामान्य पेन्सिल से बनी एक पशु की तस्वीर जिसे किसी छात्र ने उपहार दिया था उसको उन्होंने अच्छे फ्रेम पर बंधाकर रख दिया था। उन्होंने कभी भी इसका अनादर नहीं किया। इन सब विषयों में उनके महाप्रेम का परिमाप संभव नहीं।

अश्विनीकुमार वरिशाल के नेता थे। वहाँ के सब गाँव एवं कौन कहाँ रहता है, कौन कैसा है, ये सारी बातें उनको ज्ञात थी। उनके स्वर्गारोहण के एक महीना पूर्व उनके अनन्यतम शिष्य डा० सुरेन्द्रनाथ सेन एक तरुण छात्रबंधु को उनके पास ले गए थे। अश्विनीकुमार ने उस छात्र के गाँव का नाम पूछा। नाम जानने के बाद अश्विनीकुमार ने उसी गाँव के चार–पाँच व्यक्तियों के नाम बताए एवं उन लोगों के साथ छात्र का कैसा संपर्क है वह भी जान लिया। डॉ० सेन एवं वह छात्र समझ गए कि वरिशाल में कौन कहाँ रहता है यह अश्विनीकुमार को ज्ञात है।

अश्विनीकुमार वरिशालवासियों की सारी खबर रखते थे। उन लोगों के अभाव–अभियोग दूर करते थे। दुर्भिक्ष के समय अन्न की व्यवस्था करते थे। महामारी के समय गाँवों में चिकित्सक भेजते थे। सब मनुष्य उनके भाई थे। गृहस्थ सुफल पाने के लिए पेड़ का पहला फल उनके नाम पर मानते थे। संतान की कठिन बीमारी से मुक्ति के लिए जननी उनके चरण में प्रार्थना करतीं थीं। अश्विनीकुमार के निर्वासन के समय एक प्रवासी हिन्दी भाषी ब्राह्मण उनके नाम पर पूरी–सब्जी भोग लगाकर मनौती की थी। इससे पता चलता है कि वरिशालवासी उनको देवता मानते थे।

1906 ई० में स्वदेशी आंदोलन के समय वरिशाल में भीषण दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ा था। अश्विनीकुमार ने सहायता के लिए अपने नाम पर आवेदन प्रस्तुत किया। भारत के विभिन्न स्थानों से, बेलुचिस्तान से भी काफी राशि आई। 160 केन्द्र से कर्मीलोग रात–दिन परिश्रम करके 5,766 मन चावल, नकद 31,162 रू०, 3,510 जोड़ा कपड़ा वितरण किया था, 4,80,301 व्यक्तियों में।

उस समय वरिशाल के दक्षिण भाग में जल–दस्युओं (डकैतो) का हँगामा होता था। सरकारी प्रचेष्टा से भी यह हँगामा बंद नहीं हुआ था। लेकिन अश्विनीकुमार के नाम पर वे लोग सिर झुकाकर उनका आदेश पालन करते थे। 1906 ई० में दुर्भिक्ष के समय अश्विनीकुमार योग्य व्यक्ति द्वारा ग्रामवासियों के लिए चावल भेजते थे। एकदिन डा० निशिकांत बसु चावल से भरी एक नाव में दक्षिण

वरिशाल के एक गाँव की ओर रवाना हुए। संध्या के समय नाव ऐसी जगह पहुँची जहाँ चोरी–डकैती होती थी। नाविक लोग भी डरने लगे। उस समय कई अज्ञात लोगों को आसपास में घूमते देखा गया। निशिबाबू समझ गए थे कि इन लोगों का उद्देश्य क्या है। इसलिए उन्होंने बाहर आकर उन लोगों से कहा–"जानते हो यह नाव किसकी है ?" वे लोग पूछे "किसकी ?" निशिबाबू ने कहा–"यह बाबू का नाव है। उन्होंने गाँव में वितरण के लिए यह चावल भेजा हैं। मेरे साथ लोग नहीं है। अच्छा ही हुआ तुम लोग आ गए हो। चलो यह चावल गाँव में पहुँचा दो।" डकैत लोगों ने मजदूर का काम किया। सब चावल उतारने के बाद एक डकैत हाथ जोड़कर कहा–"हमलोग यहाँ क्यों आए थे, ये तो आप समझ गए हैं। लेकिन यहाँ ऐसा कोई नहीं है जो बाबू की नाव लूटे। आप समय पर मालिक का नाम नहीं बताते तो हम लोगों से बड़ा अपराध हो जाता।" दुर्भिक्ष के समय सिस्टर निवेदिता वरिशाल आई एवं अश्विनीकुमार का काम देखकर उन्होंने कहा, "ये स्कूल शिक्षक जिस असाधारण श्रृंखला के साथ काम कर रहे हैं, ऐसा आज से पहले मैंने कहीं नहीं देखा।"

स्वदेशी आंदोलन के समय ढाका के नवाब–बहादुर सरकार के प्रधान सहायक थे। जिला के विभिन्न हाट्–बाजार में जब विदेशी चीजों का स्थान नहीं हुआ, नवाब–बहादुर ने आदेश दिया– "मेरे स्थापित पुराने बाजार में विदेशी चीजों का क्रय–विक्रय होगा। किसी का आदेश नहीं माना जाएगा।" अश्विनीकुमार के निर्देश पर नदी के दूसरी ओर नया बाजार स्थापित किया गया। देखा गया कि, सब लोग नए बाजार में चले गए। पुराने बाजार में कोई नहीं गया। यद्यपि वहाँ अधिकांश मुसलमान रहते थे। नवाब के कर्मचारियों ने उन लोगों से कहा–"आश्चर्य की बात है, तुम लोग मुसलमान होकर, एक हिन्दू के आदेश के लिए नवाब का हुक्म अमान्य करते हो ?" उन लोगों ने निःसंकोच कहा–"हमारे सुख–दुःख की खबर बाबू रखते हैं। दुर्भिक्ष (अकाल) के समय हमें अन्न देते हैं। नवाबसाहब हमारे सुख–दुःख की खबर नहीं रखते। आज उनका हुकुम मानकर बाबू का दिल दुखाने से खुदा नाराज होंगे।"

एकबार वरिशाल के मजिस्ट्रेट फुलार साहब को अश्विनीकुमार का शरण लेना पड़ा था। वरिशाल पर नियंत्रण करने के लिए बंगाल एवं असम सरकार बेलुचिस्तान से फुलार को लाई थी। किसी के उत्तेजित करने से कुमिल्ला एवं जामालपुर के निरक्षंर मुसलमानों ने एक अमानुषिक कार्य किया। इससे पूर्व बंगवासी हिन्दुओं ने सोचा कि मुसलमानों का पुनः अत्याचार हो सकता है। इसलिए वे लोग आत्मरक्षा के लिए प्रस्तुत थे। एकदिन काशीपुर की ओर से गहरी रात में कोलाहल सुनाई पड़ा। सब लोग एक साथ लाठी लेकर काशीपुर की ओर

चलने लगे। फुलार साहब ने उन लोगों से पूछा– "तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?" उत्तर आया–"आत्मरक्षा करने।" साहब ने कहा– "मैं तो हूँ, डर किस बात का ? घर लौट जाओ।" उत्तर आया– "आज तुम्हारी बात नहीं मानेंगे, चाहो तो कल सजा देना।" उन लोगों में अनेक वकील भी थे। उन लोगों को वे भी निवृत्त नहीं कर सके। तब मजिस्ट्रेट फुलार साहब शांति रक्षा के लिए अश्विनीकुमार के घर गए। वरिशाल के अश्विनीबाबू ने जैसे ही छत पर खड़े होकर सबको घर लौटने का निर्देश दिया, उसी क्षण सब वापस लौट गए। इस तरह स्वदेशी आंदोलन के समय अश्विनीकुमार ने धोबियों से विदेशी कपड़े नहीं धोने को कहा था। यदि जमींदार उन लोगों को रहने नहीं दे या अत्याचार करें तो उन लोगों को रहने की जगह वे देंगे एवं सब अत्याचार से उन्हें बचायेंगे। धोबियों ने निश्चिन्त होकर उनके निर्देश का पालन किया।

अश्विनीकुमार छात्रों को उनकी शक्ति एवं रुचि अनुसार कार्य देते थे एवं तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे उनके कार्यों पर। वे जबरदस्ती किसी पर कार्यभार नहीं सौंपते थे। छात्रों के कल्याण के लिए निर्विकार होकर सब अपमान सहन करते थे। एकदिन अश्विनीकुमार एक पीड़ित मित्र की खबर लेने गए। वहाँ बातों–बातों में उनके एक प्रिय छात्र का प्रसंग आया। वह छात्र अस्वस्थ मित्र का रिश्तेदार था। उसके परिवार की आर्थिक अवस्था बहुत ही खराब थी। उस छात्र को पुलिस विभाग में नौकरी मिल सकती थी। अश्विनीकुमार ने उस पर कुछ कठिन गुरुतर कर्तव्यभार सौंपा था, इसलिए वह छात्र नौकरी करने के लिए राजी नहीं हुआ। अश्विनीकुमार को यह बात कहने पर अश्विनीकुमार ने मित्र से कहा, "उसकी इच्छा हो तो वह जाएगा, लेकिन मैं ऐसे लड़के को नहीं छोड़ूँगा।" कुछ देर बाद वह छात्र उनके पास आया, उन्होंने कहा, "क्यों रे दारोगा बनेगा ?" छात्र ने कहा, "मैं दारोगा बनना नहीं चाहता हूँ, लेकिन मेरे घर के लोग आपको बुरा कहते हैं। वे कहते हैं कि आप ही मुझे बरबाद कर रहे हैं।" उन्होंने हँसकर कहा, "बोलने दो, तुझे गाली तो नहीं दी ? ऐसी गाली सुनने का अभ्यास मुझे है।" भगवान् की कृपा से अश्विनीकुमार के उपदेश से चलकर उस लड़के को कभी आर्थिक कष्ट नहीं झेलना पड़ा।

स्वदेशी आंदोलन के समय अश्विनीकुमार असाधारण दक्षता के कारण कार्योपयोगी लोगों को चुनते थे। इस तरह उन्होंने असंख्य युवकों में स्वामी प्रज्ञानन्द को खोजा था। उनके प्रभाव से एक सामान्य कायस्थ दर्जी स्वदेशी आंदोलन का स्तंभ बना था। वे समझ गए थे कि केवल भाषण से काम नहीं होगा। संगीत एवं धर्मकथा से अच्छा काम हो सकता है। इसलिए उन्होंने उस्ताद मुसलमान कवियों द्वारा स्वदेशी संगीत की रचना कराई। इन संगीतों में पराधीनता

का क्लेश, उपाधि की असारता, गुलामी की हीनता एवं वरिशाल के साधारण मनुष्य का दर्द प्रकट हो उठा। उनमें मफिजुद्दिन वयाति का यह संगीत अनन्यतम था–"ए देबो, ता देबो बोले अबशेषे भुजंगिनीर पा देखाय"। अर्थात् ये देंगे, वो देंगे कहकर अंत में कुछ नहीं देता। उनकी प्रेरणा एवं उत्साह से वीरवर मुकुन्ददास ने स्वदेश यात्रा का संगीत रचा फुलार के नाम पर–

"फुलार, और क्या डराओगे ?
शरीर तुम्हारे अधीन है, मन तो स्वाधीन है।
हाथ बाँधोगे, पाँव बाँधोगे, या फाँसी दोगे,
मन को बाँधने की शक्ति नहीं है,
फुलार तुम्हारी ऐसी शक्ति नहीं है।" इत्यादि।

जब अशिक्षित गोरखा सैनिक वरिशाल आए अश्विनीकुमार की वाणी ने मुकुन्ददास के संगीत में प्रकट होकर वरिशाल को भरोसा दिया–

"माँ के नाम में नाव बहाया रे–
जिस दिन वह डुब जाएगा रे, जिस दिन डुब जाएगा–
उसदिन सूर्य चन्द्र ध्रुवतारा
सब डूब जायेगा रे, सब डूब जायेगा"।

उस समय मुकुन्ददास की स्वदेशी संगीत से केवल वरिशाल ही नहीं, समग्र बंगलादेश स्वदेशी भावना से काँप उठा था। 'मातृयज्ञ' नामक नाटक देखकर जनसमुदाय विदेशी शासकों का विरोध करने में दुविधा में नहीं पड़ा। जनसमुदाय क्रमशः नई–नई प्रेरणा लाभ करने लगे। विदेशी शासकों का उद्देश्य एवं उनके हिंसात्मक मूर्ति का परिचय जनसमुदाय के सामने आने में देर नहीं लगी। इस तरह मुकुन्ददास ने जनसमुदाय को जागृत किया। इसके लिए कई बार उनको जेल जाना पड़ा था एवं उनके कई प्रसिद्ध नाटकों का अभिनय भी बंद कर दिया गया था। अश्विनीकुमार की वाणी एवं उनके मन की भाषा मुकुन्ददास ने यात्राभिनय में व्यक्त की थी।

मुकुन्ददास की तरह और एक युवक का भी अश्विनीकुमार ने उद्धार किया था। उस युवक से बात करने में लोग घृणा बोध करते थे। लेकिन अश्विनीकुमार ने उस युवक के भीतर सुमधुर गीत एवं अभिनय करने की असाधारण शक्ति देखी। उन्होंने उस युवक के सब अपयश का जहर पी लिया एवं धीरे–धीरे युवक को नया जीवन दिया। कुछ दिनों में वह सर्वसाधारण में स्वदेशी भावना की शक्ति जगाने

लगा। जिसके साथ लोग घृणा से बात नहीं करना चाहते थे, आज उसकी बात सुनने के लिए लोग पागल हो रहे हैं। ऐसी सृष्टि–क्षमता थी अश्विनीकुमार की।

आदर्श मनुष्य तैयार के कार्य में अश्विनीकुमार सर्वदा ब्रजमोहन कॉलेज को सुसमृद्ध रखते थे। उनका अनन्यतम श्रेष्ठ प्रकाश था, कॉलेज लाइब्रेरी की मर्यादा–वृद्धि। अमेरिका एवं इताली की स्वाधीनता का इतिहास, हांगेरी की स्वाधीनता लाभ का प्रयास–परिचिति, फरासी क्रांति का इतिहास, जापान जागरण का इतिहास आदि अमूल्य ग्रंथों से उनका ग्रन्थालय पूर्ण था। उनके छात्रों ने उनके निर्देश से 19 ग्रंथों की रचना की थी, उनकी डायरी में 19 ग्रंथों का नाम लिखा था। लेकिन वह डायरी पुलिस के पास चली गई। उनके एक छात्र के पास निम्नलिखित 12 ग्रंथो का नाम मिला है–

1. फरासी क्रांति का इतिहास, 2. इताली की स्वाधीनता का इतिहास, 3. अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास, 4. हांगेरी की स्वाधीनता का इतिहास, 5. आधुनिक जापान का इतिहास, 6. इंग्लैंड के शासनतंत्र का इतिहास, 7. माराठा जाति का इतिहास, 8. सिख जाति का इतिहास, 9. राजपूतों का इतिहास, 10. भारतवर्ष का इतिहास, 11. महाभारत की विषयानुक्रमिक सूची, 12. रामायण की विषयानुक्रमिक सूची।

अश्विनीकुमार सोचते थे, एक पराधीन जाति को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए विभिन्न पराधीन देशों की स्वाधीनता का इतिहास जानना लाभदायक होगा। वे जानते थे, इन सब इतिहासों को पढ़कर अल्प शिक्षित बंगालियों के लिए उपयोगी बंगला भाषा में इतिहास लिखना बहुत जरूरी है। इसलिए उन्होंने लेखक चुने थे। एक वकील को फरासी क्रांति का इतिहास लिखने एवं अल्प शिक्षित युवक को इताली की स्वाधीनता का इतिहास लिखने का दायित्व दिया था। यह कार्य बंदरों द्वारा सागर बंधन का काम जैसा था, लेकिन, अंत में देखा गया उस युवक ने उच्चकोटि का इतिहास लिखा।

अश्विनीकुमार कार्य के लिए तरुण युवक एवं बालकों को ढूँढ़ते थे। बालक साधारणतः चंचल होते हैं, इसलिए अश्विनीकुमार को उन लोगों पर तीक्ष्ण नजर रखनी पड़ती थी। वरिशाल में चर्म–शिल्प प्रतिष्ठा होने पर अश्विनीकुमार किसी दूसरे स्थान का स्वदेशी जूता भी नहीं पहनते थे। केवल वहाँ का जूता पहनते थे। एकदिन एक तरूण छात्र ने उनको लिखा–"मैं जापान जाऊँगा मिट्टी शिल्प (Pottery) सीखने। मुझे अनुमति दीजिये, मैं Scientific And Industrial Association को आवेदन पत्र भेजूँ ?" अश्विनीकुमार जानते थे, उसके द्वारा व्यवसाय नहीं होगा, इसलिए उन्होंने लिखा–"मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा वह मस्तिष्क कुम्हार–शिल्प

में संलग्न रहे।" उनका इतना असामान्य व्यक्तित्व था कि उस युवक को आघात किए बिना उन्होंने उसे काम से विरत किया। वह युवक उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य करने लगा।

स्वदेशी आंदोलन के समय वरिशालवासी उनके नेतृत्व में जाग उठे थे। छात्र–शिक्षकगण केवल अध्ययन–अध्यापन ही नहीं करते थे, वे देश के लिए भी कार्य करते थे। एक शिक्षक ने स्वदेश–प्रेम की कविता लिखी, एक ने स्वदेशियों के क्लेश की कहानी लिखी, एक ने स्वदेशी–संगीत संग्रह किया। अध्यक्ष रजनीकांत ने भारतीय राजनैतिक अवस्था की पर्यालोचना शुरू की। अध्यापक सतीशचन्द्र ने "स्वदेशबांधव समिति" की शाखा गाँव–गाँव में खड़ी की। छात्रगण बाजार में विदेशी चीजों का प्रवेश रोकने लगे। इन सब कार्यों के लिए अश्विनीकुमार कर्मी नियोग करते थे। उनके लिए यश–अपयश का कोई प्राधान्य नहीं था। कार्य ही सर्वप्रधान विषय था। उनके अनुगत शिष्यों ने आनन्द के साथ उनका आदेश पालन किया था।

अश्विनीकुमार को एकबार उनके गुरुदेव श्री गोस्वामी प्रभुजी के सम्बन्ध में प्रवचन देने के लिए कहा गया। अश्विनीकुमार स्तंभित रह गए। उनके नेत्र सजल हो गए। थोड़ी देर पश्चात् भाव संवरण होने के बाद उन्होंने कहा–"मैं सभी विषय पर प्रवचन कर सकता हूँ पर जब गोसाँईजी के विषय में चिन्तन करता हूँ तब मेरी इन्द्रियां स्तब्ध हो जाती है एवं वाक्य, मन, कार्य सब निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस कारण उनके सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कह सकता।" अश्विनीकुमार के उपरोक्त शब्दों से उनके हृदय की भावना एवं आध्यात्मिक उच्च अवस्था की एक झलक दिखलाई पड़ती है।

अश्विनीकुमार राजनैतिक क्षेत्र में तिलक के मतानुवर्ती होकर सोचते थे कि, आवेदन–निवेदन से शायद काम बन सकता है। इसलिए उन्होंने "बंग भंग" आन्दोलन के बाद स्वदेशी आंदोलन के प्रथम युग में विदेशी शासकों को अनेक आवेदन भेजे थे। लेकिन इससे कोई सुफल नहीं मिला। तब वे अग्निमंत्र का उपासक होकर गा उठे–

अग्निमयी माँ, आज हम सब पुकारते हैं माँ !
विश्व में जो आग फैली है, थोड़ी दे दो माँ !
उस आग से मृत प्राणी जाग उठेंगे,
हम सब जलकर सोना बनेंगे!
भीषण दैत्यवंश को उस आग में ध्वंस करेंगे

अत्याचारी, हीन असुरों को, पृथ्वी पर नहीं रखेंगे
माँ! माँ! माँ!

अश्विनीकुमार ने वरिशालवासियों को यह शिक्षा दी थी, **"जो अत्याचार करता है, वह अन्याय करता है, जो सहन करता है, वह भी वही अन्याय करता है। कोई एकबार आघात करे तो उसको 10 बार आघात करने में संकोच मत करना।"** पाँच सौ वर्ष की पराधीन जाति के लिए उस समय यही शिक्षा जरूरी थी।

पूर्वी बंगाल एवं आसाम के प्रशासकगण उत्तेजित हो उठे क्योंकि विदेशी चीजें वरिशाल में नहीं बिकती थीं। वरिशालवासी, साहबों की बात भी नहीं मानते था। सरकार ने सोचा कि वरिशालवासी को वश में करने के लिए अश्विनीकुमार का निर्वासन एवं ब्रजमोहन कॉलेज को तोड़ना जरूरी है। फुलार ने नियम चालू किया, ब्रजमोहन कॉलेज के छात्रों को सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी एवं उन्हें सरकारी वृत्ति भी नहीं मिलेगी। फिर भी ब्रजमोहन कॉलेज छात्र–शून्य नहीं हुआ। देवप्रसाद घोष ने एंट्रांस परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके विश्वविद्यालय से पदक एवं पुरस्कार प्राप्त किया, लेकिन ब्रजमोहन कॉलेज का छात्र होने के कारण सरकारी वृत्ति उसे नहीं मिली फिर भी वह छात्र उसी कॉलेज में भर्ती हो गया। इस तरह वानारिपाड़ा उच्च अंग्रेजी विद्यालय का मेधावी छात्र मधुसूदन सरकार भी सरकारी वृत्ति से वंचित रहा फिर भी वह सरकारी कॉलेज में न जाकर ब्रजमोहन कॉलेज में भर्ती हुआ। फुलार ब्रजमोहन कॉलेज की कोई हानि नहीं कर सका। फुलार साहब ने कोलकाता विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर सर आशुतोष मुखोपाध्याय को ब्रजमोहन विद्यालय को बन्द करने के लिए पत्र लिखा। फुलार को यह पता नहीं था कि, आशुतोष मुखोपाध्याय जब हाईकोर्ट के वकील एवं सिनेट के साधारण सदस्य थे, उन्होंने ही इस ब्रजमोहन कॉलेज की स्वीकृति प्राप्ति के लिए अश्विनीकुमार को सहायता की थी। अश्विनीकुमार के प्रति श्रद्धा निदर्शनस्वरूप आशुतोष मुखोपाध्याय ने कॉलेज के विरुद्ध कुछ नहीं कहा। फुलार इस विषय में लाट्साहब के पास गए। पहले डा० पी० के० राय, विश्वविद्यालय की तरफ से अनुसंधान करने आए एवं कॉलेज के अनुकूल ही रिपोर्ट दी। इसके बाद प्रेसिडेन्सी कॉलेज के अध्यक्ष सर जेमस् एवं अध्यापक क्यानिंहाम् आए। अध्यक्ष जेमस् ने ब्रजमोहन कॉलेज की बहुत प्रशंसा की। अध्यापक क्यानिंहाम् ने लिखा, "मुझे यह समझ में नहीं आता कि बंगाल में "ब्रजमोहन विद्यालय" जैसा उत्कृष्ट विद्यालय रहने पर भी छात्रगण आक्सफोर्ड में शिक्षा के लिए क्यों जाते हैं ?"

क्यानिंहाम् ने विदेश में रहते हुए ही अश्विनीकुमार का नाम सुना था। वरिशाल में आकर उनका कार्य देखकर वे मुग्ध हो गए। एकदिन निर्जन में

अश्विनीकुमार के पास बैठकर उन्होंने उनकी जीवनी लिखी थी एवं यह वादा किया था कि अश्विनीकुमार के जीवितावस्था में कुछ भी प्रचार नहीं करेंगें। लेकिन युवक क्यानिंहाम अश्विनीकुमार के पहले ही पृथ्वी से विदा हो गए।

1818 ई० में बिना विचार से तीन आइन के अनुसार अश्विनीकुमार को निर्वासन दण्ड दिया गया था। उस समय क्यानिंहाम् ने इस अन्याय का प्रतिवाद करते हुए इग्लैंड में अपने मित्र को पत्र लिखा था। उनका यह मित्र पार्लियामेंट का सदस्य था एवं उसने यथासमय भारत सचिव के पास उस पत्र को पेश किया था। उस पत्र में क्यानिंहाम् ने अश्विनीकुमार के पवित्र चरित्र का उल्लेख करके लिखा था कि, इस पवित्र पुरुष को बिना विचार से निर्वासन दण्ड देने के कारण जन–साधारण में अंग्रेज सरकार के प्रति श्रद्धा घटी है। भारत सचिव ने उस पत्र को उच्चधिकारी के पास भेजा, लेकिन उन्होंने पत्र को महत्व नहीं दिया एवं क्यानिंहाम् को पदत्याग करने का आदेश दिया। क्यानिंहाम् ने सरकार का यह आदेश नहीं माना। सरकार ने उनको प्रेसिडेंसी कॉलेज से हटाकर छोटानागपुर में स्कूल इंस्पेक्टर बना दिया। वहाँ की रोगीली जलवायु में अस्वस्थ होकर उनको परलोक जाना पड़ा। इस मर्मान्तक संवाद से ब्रजमोहन कॉलेज के छात्रों एवं अध्यापकों ने शोकाकुल होकर अश्रु बहाये थे।

अश्विनीकुमार के निर्वासन के साथ–साथ ब्रजमोहन विद्यालय के समक्ष संकट उपस्थित हुआ। छात्र–अध्यापक एवं अभिवावक उद्विग्न हो उठे। उस समय विद्यालय के अध्यक्ष रजनीकांत गुह एवं विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर सर आशुतोश मुखोपाध्याय की आन्तरिक चेष्टा से विद्यालय चलता रहा। सरकार विद्यालय की स्वीकृति नहीं छीन सकी। स्वदेशी आंदोलन के समय रजनीकांत ने एक सभा में कई प्रबंधों का पाठ किया था, इसलिए उनको अदालत में हाजिर होना पड़ा था। उन्होंने कहा था, "मार खाकर भी मैंने शिकायत नहीं की क्योंकि अंग्रेजी की न्याय–निष्ठा पर मुझे आस्था नहीं है"। कॉलेज के भविष्य के बारे में सोचकर छात्रों ने ट्रांसफर लेना चाहा। रजनीकांत ने उन लोगों से कहा, "तुम लोग ट्रांसफर मत लो। निश्चिन्त होकर पढ़ाई करो। यह कॉलेज रहेगा। बांकिपुर राममोहन राय एकेडेमी स्थापना के लिए मैंने महीना में दस रूपए वेतन पर काम किया था। प्रयोजन होने पर फिर मैं दस रूपए वेतन पर काम करूँगा लेकिन ब्रजमोहन कॉलेज को नष्ट होने नहीं दूँगा।" एक व्यक्ति की दृढ़ता से कॉलेज बच गया। फिर से सरकार को व्यर्थ होना पड़ा। 1918 ई० में सरकार ने अश्विनीकुमार के लिए 3 आइन का सहारा लिया, क्योंकि 3 आइन की धारा में अपराध जानने की कोई व्यवस्था नहीं थी। निर्वासन के दो दिन पहले अश्विनीकुमार को इसके बारे में पता चला था। उस दिन सुबह 11 बजे कई अंग्रेज कर्मचारी, कई देशी सिपाहियों के

साथ अश्विनीकुमार के घर पहुँचे। उस समय अश्विनीकुमार घर में नहीं थे। संवाद मिलते ही वे घर लौटे। कुछ ही क्षण में पूरे वरिशाल में यह संवाद फैल गया। भीड़ एकत्र हो गई उनके प्रांगण में। सब लोग रोने लगे। जनता क्षुब्ध हो उठी। लेकिन अश्विनीकुमार के इसारे से सब शांत हो गए। अश्विनीकुमार ने तैयार होकर एक श्रीभद्भागवत हाथ में लेकर एकबार अंदर की ओर देखकर कहा– "लाजपत राय को जो हुआ था वही हुआ।" जैसे ही साहबों ने अश्विनीकुमार को ले जाने के लिए कदम बढ़ाये, एक पागल जैसा व्यक्ति नर कंकाल लेकर उनके सामने आकर खड़ा हुआ। पागल कंकाल की खोपड़ी साहबों के सामने पकड़कर हिलाकर कहने लगा, "यह अधर्म भगवान ज्यादा दिन नहीं सहेंगे। दो दिन बाद इसका परिणाम यही होगा जो मेरे हाथ में देख रहे हो।"

इस तरह वरिशालरत्न अश्विनीकुमार को लेकर गाड़ी रवाना हो गई। जनता रोते–रोते उनके पीछे–पीछे जाने लगी। नदी किनारे पहुँचते ही अध्यापक सतीशचन्द्र के भी जेल जाने की खबर मिली। उस दिन सारा शहर अनाहार में रहा। एक मिठाईवाले ने दो दिन उपवास किया। उस व्यक्ति को जब पता चला कि अश्विनीकुमार लखनऊ जेल में हैं, वह अपने गाँव से 80 मील पैदल चलकर उनकी खबर लेने गया एवं उनकी मुक्ति के लिए भगवान के पास पूरी–सब्जी की मनौती की। इससे पता चलता है कि वे कितने लोकप्रिय नेता थे। वरिशाल के इतिहास में 1908 ई० से 1909 ई० तक 14 महीने तक का समय अविस्मरणीय रहा।

राजनीति का काम किस तरह करना है, इस बारे में अश्विनीकुमार ने कहा–

1. स्वार्थ एवं संकीर्णता का जो घना अंधेरा हमारे हृदय में जमा है, उसे भगवतप्रेम की रोशनी से दूर करके वही रोशनी हाथ में लेकर हमें पवित्र युद्ध में अग्रसर होना पड़ेगा।

2. हमें ऋषिवाक्य की अवज्ञा करते हुए कोई भी हिंसात्मक कार्य नहीं करना चाहिए। सीना खोलकर गोली का आधात लेने के लिए प्रस्तुत रहेंगें, लेकिन हमारे शरीर वाक्य एवं मन द्वारा हिंसा की चेष्टा नहीं करेंगे। हम अपने संकल्प में अटल रहेंगें।

ऊद्यच्छेदेव न नमेदूद्यमोह्येव पौरूषम्
अप्यपर्वेन भज्येत न नमेदिह कहिचित्

—महाभारत, उद्योग 125 / 39

भावार्थ– उद्यम करो, घबराओ मत, उद्यम ही पौरूष है। असंधि स्थल में टूटने

पर भी कभी रूको नहीं।

गाँधीयुग के पूर्व ही अश्विनीकुमार ने राजनीतिक कर्म प्रतिष्ठा के लिए भगवत्प्रेम, अहिंसा एवं दृढता के नींव पर बंग युवा–समाज को जगाया था।

निर्वासन काल समाप्त होने पर अश्विनीकुमार वरिशाल लौट आए। उस समय सब लोग निर्वासन के बारे में लिखने के लिए उनसे अनुरोध किए थे। उन्होंने कहा था, "क्या लिखूँ ? लिखने योग्य ऐसा कुछ नहीं हुआ, Sorrows & Salitude कुछ भी अनुभव नहीं किया।" उस समय श्यामबाबू का 'Sorrows & Salitude' एवं मनोरंजन गुहठाकुरता का 'निर्वासन की कथा' प्रकाशित हुई थी। देशवासियों ने ऐसा ही कुछ लिखने के लिए अश्विनीकुमार से कहा था। शायद उस समय वे अन्य भावराज्य में थे। मनोरंजन गुहठाकुरता भी गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य थे। गोस्वामी प्रभुजी के इन सब शिष्यों की शक्ति एवं महिमा अवर्णनीय है।

निर्वासन से लौटकर अश्विनीकुमार फिर से देश सेवा के कार्य में लग गए। 'शिक्षा–स्वास्थ–विधायिनी' नाम से अपनी बुआ के वार्षिक तीन सौ रूपए एवं और कुछ अर्थ संग्रह करके उन्होंने गाँव में 80 पाठशाला खोली। कई तालाबों का संस्कार किया एवं बिनामूल्य दवाई वितरण की व्यवस्था की।

उस समय पार्लियामेन्ट सदस्य केइन साहब का मादकता निवारण आंदोलन एवं कर्नेल अलकट का थियोसफिकाल प्रवचन आदि विषयों में अश्विनीकुमार सहायता करने लगे। इसके साथ विदेश के श्रमिक नेता कियार हार्डि साहब, अमेरिकान पर्यटक फेलप्स् साहब एवं पेनेल साहब के वरिशाल आगमन में एवं उनके प्रवचन और कार्यों के बारे में अश्विनीकुमार ने सहायता की थी। इसके अलावा व्यावहारिक शिक्षालय के लिए विदेश में छात्र भेजना एवं इसके लिए अर्थ संग्रह अश्विनीकुमार के प्रयासों से ही होता था।

उनका आध्यामिक जीवन अत्यंत गूढ़ था। इतने बड़े शक्तिमान गुरु के शिष्य होकर उन्होंने कैसी आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त की थी, वह साधारण जन की जानकारी से परे था। विभिन्न समय में उनको विभिन्न रूप में देखा गया। अध्यापन के समय एक रूप, फिर धर्मालोचना के समय संपूर्ण भिन्न रूप। एकदिन वे जगदीश बाबू के घर में हिन्दी भक्तमाल पाठ करके व्याख्या कर रहे थे। मीराबाई की कथा पढ़ते–पढ़ते उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। श्रोताओं की अवस्था भी उसी प्रकार थी। उस ग्रन्थ में मीराबाई के उदयपुर लौटने की बात है। लेकिन मीराबाई के बहुत दिन बाद उदयपुर नगर स्थापित हुआ था। भक्तमाल का ग्रन्थकार भक्त थे, ऐतिहासिक नहीं, इसलिए सन् तारीख के प्रति उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। अश्विनीकुमार का एक इतिहास का छात्र उदयपुर के अस्तित्व के बारे में

ऐतिहासिक तथ्य वर्णन करके मीराबाई–उपाख्थान की अनैतिहासिकता के बारे में बोलने से भक्त अश्विनीकुमार का मन विक्षुब्ध हुआ। उस समय भक्तिरस में उनका मन डूबा हुआ था। उन्होंने कहा– "इसको यहाँ से निकाल दो, यह स्थान ऐतिहासिक के लिए नहीं है।"

अश्विनीकुमार भक्त थे, लेकिन उनके पास कर्म विमुख भक्ति का स्थान नहीं था। संसार में रहकर संसारी जीवों के लिए उन्होंने कर्म किया था। विवाहित होकर भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। संसार उनकी साधना में बाधा नहीं डाल सका। वे आनन्द के भंडार थे। निर्वासन हो या कोई भी समस्या, आनन्द उनका साथी था। बहुमूत्र रोग के कारण उनके शरीर में ज्वलन होने से वे अविचलित होकर कहते थे– "नहीं होगा ? शरीर तो एक चीनी का कारखाना हो गया है। थोड़ा गरम नहीं होने से चीनी कैसे बनेगा ? "अत्यंत अस्वस्थ अवस्था में भी वे चार पाँच मील पैदल चलते थे। चिकित्सकों के प्रश्नों के उत्तर में कहते थे – "आनन्द में हूँ जो"। छात्र बंधुओं को हँसते हुए कहते थे– "अरे मैं भी तो "तुम लोगों के समान उम्र का हूँ। मेरी उम्र मात्र सतरा (सत्तर) साल है। यह आनन्द एवं हँसी उनके जीवन में सर्वदा देखी गई। निर्वासन के समय लखनऊ जेल में बैठकर वे भवगदाराधना करते थे। अनेक ग्रंथों का पाठ करते थे, एवं संगीत के रूप में अपने मन की भावना लिखते थे। इस तरह लगभग 19 गीत उन्होंने लिखे थे। उसमें से एक अंतिम गीत निम्नानुसार है :

जब वे दया करते हैं तो कैसा हो जाता हूँ।
किसे कहूँ ये सब बातें सुनने से सब पागल कहेगें।
चाँद गोद में आ जाता है प्राण में मधु गिरता है।
हीरा मानिक को हृदय में देख सकता हूँ।
जिसे देखूँ उसे ही अच्छा लगता है।
सभी सुधा बरसाते हैं। सब भेद मिट जाता है।
शत्रु–मित्र में कोई भेद नहीं रहता।
नं जाने क्या पीकर यह दिल भाव–मग्न हो जाता है।
हाथ में धूल लेकर सौ–सौ बार चूमते हैं।

उक्त गीत में उनके उपास्य देवता का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने गुरु कृपा प्राप्त की थी। नीरव कारागार में बैठकर वंशीध्वनि सुनकर वे भाव मग्न हो जाते थे। उनके गुरुजी के शरीर में नहीं रहने पर भी उनकी कृपा सब शिष्यों पर बरसती थी। इसलिए उन्होंने श्री मनमोहन चक्रवर्ती को लिखा था; "माघोत्सव में यहाँ भी ठाकुर की उपस्थिति अनुभव कर रहा हूँ।" जेल में भी उन्होंने गुरु की

उपस्थिति अनुभव की थी। उन्होंने कहा था, "एकदिन ऐसा हुआ कि बहुत दिनों से अनाथ (भतीजा सुकुमार दत्त) की चिट्ठी नहीं मिली थी। बहुत कष्ट होने लगा। थोड़ी देर तक रोया, उसके बाद हँसी आई। सोचा मैं यह क्या कर रहा हूँ ? मैं क्या पागल हूँ ? क्षणभर के लिए उनको जिस मोह ने घेर लिया था, उसका अंत होते ही उनमें शुद्ध ज्ञान की रोशनी दिखाई दी। ऐसा मोह कभी–कभी साधकों को भी होता है। लेकिन गुरु कृपा से यह मोह दूर होने में देर नहीं लगती। कितने भाग्यवान पुरुष थे अश्विनीकुमार।

भगवान की वंशीध्वनि सुनकर उनका 'मैं' भाव अर्थात ममता बोध दूर हो जाता था। फिर अचानक वास्तविक जगत में लौटकर कहते –

तुम्हारी मधुर बंशी की धुन से,
मन का क्या होता है, मन ही जाने,
फिर मन मन में नहीं रहता– अरे मन चोर।

कभी–कभी आनन्दानुभुति का उदय होने पर कहते थे –

बादल की आड़ से झाँकता है कौन ?
लगता है उसे पहचानता हूँ, फिर
ऐसा लगता है कि पहचानता नहीं।

इन सामान्य उक्तियों में उनके अध्यात्म मनोभाव का परिचय मिलता है। अध्यात्म साधना का समय एवं सुयोग उनको नहीं मिला था। गुरुजी उनको परोक्ष रूप में मनुष्य तैयारी के कार्य एवं देश के सेवा कार्य में नियुक्त किये थे।

अश्विनीकुमार का कारावास अत्यन्त अभिनव था। उस समय के शासकों में सब निर्मम नहीं थे। इस विषय में कुछ प्रमाण उनके कारावास विवरणी में मिलता है। उनके काराकक्ष के बाहर एक नीम का पेड़ था। एकदिन जेल कर्तृपक्ष से उन्होंने कहा था– "उस नीम के पेड़ के नीचे वेदी रहने से पेड़ की छाया में बैठ सकते थे। लेकिन पास में ही एक शौचालय है। दुर्गन्ध से तो वहाँ बैठा नहीं जाएगा। वे यह सोच भी नहीं सके थे कि उनकी यह सामान्य इच्छा पूरी करने के लिए जेलर साहब अर्थ व्यय करेंगे। आश्चर्य की बात है, दूसरे दिन उन्होंने खिड़की से देखा कि इस शौचालय को तोड़ कर रोलर द्वारा समतल किया जा रहा था एवं नीम पेड़ के नीचे वेदी का निर्माण भी शुरू हो गया था।

अश्विनीकुमार स्वायत्तशासन विषय में कुछ दिनों के लिए वरिशाल कारागार के बे–सरकारी पर्यवेक्षक नियुक्त हुए थे। उस कारागार में वे मागन खाँ एवं आब्दुल नामक दो अपराधियों के संपर्क में आए थे।

हत्या के अपराध से मागन खाँ को फाँसी का दण्ड मिला था। तीन दिन बाद उसे फाँसी होने वाली थी। कारागार परिदर्शन करते समय अश्विनीकुमार ने देखा कि मागन खाँ निश्चित होकर सो रहा है। नींद टूटने पर अश्विनीकुमार ने उनसे पूछा, "मागन, तीन दिन बाद तुम्हें फाँसी होगी और अब भी तुम निश्चिन्त होकर सो रहे हो ?" मागन ने उत्तर दिया, "रोगाक्रान्त होकर भोगना नहीं पड़ रहा है। रस्सी की एक खींच से मरेंगे, इससे अच्छी मृत्यु और क्या है।" अश्विनीकुमार ने मागन की ओर देखकर चकित् होकर कहा था, "ऐसे वीर की मृत्यु कभी नहीं देखी।" आब्दुल नामक एक डाकू हथकड़ी तोड़कर पुलिस पहरा से भागकर अपने घर चला गया था। पुलिस ने उसको घर में घेर लिया। आब्दुल एक बड़ी कटारी लेकर घर की छत पर चढ़ा फिर वहाँ से कूदकर भागा, लेकिन पुलिस की गोली से आहत होने के कारणं वह पकड़ा गया। बाद में जब गोली निकालने के लिए उसको अचेत करने का प्रयास चलने लगा तब आब्दुल ने कहा "क्या कर रहे हो, जहाँ चाहों छुरी चला दो।" डाक्टर ने वही किया आब्दुल ने उफ तक नहीं की। बाद में उसको जिन्दगी भर के लिए निर्वासन दण्ड देने पर आब्दुल ने कहा, "मेरे बाकी जीवन का भार कौन लेगा ?" यह सुनकर अश्विनीकुमार ने कहा "वरिशाल में जन्म लूँगा निश्चित किया था, लेकिन किसके घर में आऊँ यह सोच रहा था। आज उसका संधान मिल गया।" वे इस प्रकार गुण ग्राही थे।

विदेशी चीजें वे व्यवहार नहीं करते थे, इसलिए ठंड के समय उनके लिए बनारसी कपड़े से एक रजाई बना दिया गया था। जब वे लखनऊ जेल में थे, तब वहाँ गरमी में उनको कष्ट होगा इसलिए प्रशासन ने 16 नौकरों को नियुक्त किया था उनको दिन–रात हवा करने के लिए। उनके लिए सरकार की इतनी चिन्ता देखकर उनको बहुत मजा आता था। इस बारे में उन्होंने एक कविता लिखी थी–

"मुझे शौक से कैदी बनाया है,
खाने–सोने की कितनी सुन्दर व्यवस्था की है।
पूर्व जनम् में शायद किसी के शौक की मैना थी।
नवाब इस लखनऊ में थे, इसलिए यहाँ लाया गया हूँ।
उस समय जो नवाब थे, इसबार लाट् है वह,
सोने का पिंजर अब गोरों की–जेल बन गया है।
वही अच्छा खाना, वही केला, वही अनार
वही पुराने आकर्षण से, फिर से आया हूँ।
उस समय वे जो कहते वही कहती, जो सुनाते वही सुनती

सोनामुखी मैना कहकर इसलिए प्यार करते थे।
अब वे जो कहेंगे वही कहूँगा, जो सुनाएँगे वही सुनूँगा।
वैसा दिन तो अब नहीं रहा, वैसी बुद्धि भी अब नहीं है।"

लखनऊ जेल में रहते समय उनसे मुलाकात के लिए साहब, न्यायाधीश एवं मजिस्ट्रेट आया करते थे। बाहर की कुछ खबरें भी उन्हें दी जाती थी। उन्होंने इन लोगों से सुना था कि उनकी मुक्ति के लिए पार्लियामेन्ट में आन्दोलन चल रहा है। उन्होंने अश्विनीकुमार से अनुरोध किया था कि इस आंगन में एक वृक्ष रोपण करना होगा जिससे हम लोग बोल सकें कि यहाँ अश्विनीकुमार का लगाया एक वृक्ष है। महात्मा अश्विनीकुमार जब वहाँ थे, तब एक पेड़ लगाये थे। पहले उन्होंने सम्मति नहीं दी एवं कहा कि मैं निःसन्तान हूँ मेरी कोई निशानी रहे यह भगवान की इच्छा नहीं। लेकिन साहबों ने उनकी बात नहीं सुनी। तब उन्होंने पूछा– कौन–सा वृक्ष लगाना पड़ेगा। साहबों ने कहा जो आपको पसंद हो। अश्विनीकुमार ने हँसकर कहा–मैं सरसों लगाऊँगा। मुक्ति के बाद उन्होंने कहा था – "सोचे थे, उन लोगों के घर में सरसों ही लगा दूँ।" बंगला भाषा में कहावत है 'सरसों का फूल देखना' इसका अर्थ है जिस प्रकार पीलिया रोग ग्रस्त मृत्यु के पूर्व सब तरफ पीला ही पीला देखता है, उसी प्रकार सरसों लगाने से अंग्रेज लोग सब तरफ पीला फूल देखेंगे अर्थात् उनका अन्त समय होगा। निर्वासन से लौटकर अश्विनीकुमार कॉलेज को लेकर व्यस्त हो गए लेकिन इस कॉलेज पर बंगाल सरकार की बुरी नजर थी। बंगाल सरकार के साथ–साथ अब भारत सरकार ने भी योगदान दिया। विद्यालय के गौरव रक्षा के लिए अश्विनीकुमार ने सरकारी अर्थ अभी तक नही नहीं लिया था लेकिन इस बार यह लेना ही पड़ा। उन्होंने सबको बुलाकर कहा, "इतने दिनों तक मैंने गैरसरकारी कॉलेज चलाने का प्रयास किया था। जीवन के अंतिम दिनों में आकर देख रहा हूँ, इस प्रकार यह नहीं चलेगा। ठीक है मैं और प्रयास नहीं करूँगा। वरिशाल के लोग दूसरा कॉलेज स्थापित करें।" लेकिन उनका संकल्प उनके सहकर्मियों, मित्रों एवं अध्यापकों ने ग्रहण नहीं किया। अध्यक्ष रजनीकान्त ने कहा "मैनें इतने दिनों तक इस कॉलेज के लिए काफी परिश्रम किया है। कॉलेज का नाम परिवर्तित होने से मैं यहाँ नहीं रहूँगा।" अंत में अश्विनीकुमार के साथ सरकार का समझौता होने के कुछ दिनों के भीतर ही रजनीकान्त, सतीशचन्द्र एवं और तीन स्कूल शिक्षकों की मृत्यु हो गई। इन लोगों के शोक में अश्विनीकुमार बालक की तरह रोये थे। उनकी माँ की मृत्यु होने पर भी वे इतना नहीं रोये थे। इतने दिन में उनका आदर्श एवं सपना टूट गया। उन्होंने मृत्यु के समय में भी इस कॉलेज की बात याद करके दीर्घश्वास छोड़ी थी।

वर्षों से अविराम कर्म करते–करते अश्विनीकुमार का शरीर क्रमशः अस्वस्थ

होने लगा। वे बहुमूत्र रोग से ग्रस्त हुए थे। प्रतिवर्ष कम–से–कम एकबार वे किसी स्वास्थ्यकर स्थान पर कुछ दिनों के लिए रहते थे। देश भ्रमण एवं तीर्थ दर्शन में उनका प्रबल आग्रह था। उनके जीवन की प्रधान साधना थी, भक्तियुक्त कर्म। 1921 ई० में पुरी से लौटकर विशाल प्रादेशिक कॉन्फारेंस के अभ्यर्थना समिति के सभापति के रूप में प्रवचन में कहे थे, "मेरा उद्यम का दिन समाप्त हो गया है। मेरे मन की उम्र यद्यपि 18 या 20 वर्ष है, लेकिन यह शरीर तो 66 में ही टूट पड़ना चाहता है। सत्य, प्रेम एवं पवित्रता का जो आदर्श लेकर ब्रजमोहन विद्यालय स्थापित किया था, वह आज नष्ट होने जा रहा है।" इस प्रसंग में स्कूल, कॉलेज एवं शहर के दुर्नीतियों का उल्लेख करके उन्होंने अत्यन्त दुःख अनुभव किया। उन्होंने सोचा था कि ब्रह्मचर्य व्रतधारी युवकदल तैयार होंगे, जो देश सेवा करेंगे। एकदिन उन्होंने कहा "शायद मुझे गाँवों के निम्न श्रेणी के लोगों के लिए काम करना था।" जेल जाते समय एक व्यक्ति ने उनको एक कापी देकर जीवनी लिखने के लिए कहा था। लेकिन वह कापी उसी अवस्था में जेल से लौट आई। आश्विनीकुमार ने कहा, "उस कापी का ऊपर का पन्ना मेरा जन्म एवं नीचे का पन्ना मेरी मृत्यु, बीच में जीवन – सब खाली (Blank) है।" वे सर्वदा मजाक करते थे, लेकिन शरीर की अक्षमता के कारण जब कर्म से विमुख होना पड़ता था एवं उनका आदर्श भंग होता था तब उनका मन दुःखी होता था। उस समय वे बहुत ही अस्वस्थ थे। चिकित्सा के लिए कोलकाता रवाना हो रहे थे। यात्रा के पूर्व उन्होंने कहा– "इसके बाद टेलीग्राफ के तारयोग से वरिशाल में आयेंगे।"

अस्वस्थ अश्विनीकुमार जीवन के अंतिम कई साल वरिशाल में नहीं थे। उनके जाने के बाद ब्रजमोहन कॉलेज की दुर्दशा और बढ़ गई। कोई नहीं सोचा था कि अश्विनीकुमार वरिशाल लौटेंगे। लेकिन वरिशाल के अंतिम कान्फारेंस में शिष्यों के अनुरोध पर अस्वस्थ शरीर में वे वरिशाल लौटे। उनका दुर्बल शरीर यह परिश्रम सहन नहीं कर सका। यहाँ से वे फिर कोलकाता लौट आए। वहाँ महाप्रयाण के पूर्व 15 महीने कभी बिस्तर में सोते थे, कभी घर में धीरे–धीरे चलते थे, कभी अर्धचेतन अवस्था में कहते थे, "ठाकुर मेरे साथ आँख–मिचौली का खेल कर रहे हैं।" उस समय अनेक छोटे–बड़े, देशी–विदेशी बंधु सर्वदा उनसे मिलने आते थे। स्वस्थ रहने से सबके साथ हास–परिहास करते थे। प्रायः उनके मुँह से 'शिवम्' एवं 'आनन्दम्' ध्वनित होता था। 1923 ई०, 6 नवम्बर सुबह उन्होंने कहा, "मुझे जमीन में खड़ा करा दो मैं थोड़ा नाचूँ।" दूसरे दिन अर्थात् 1330 बंगाब्द का 21 कार्तिक (1923 ई० का 7 नवम्बर) दोपहर लगभग 3 बजे वरिशाल रत्न अश्विनीकुमार का देहांत हो गया। देशबन्धु चितरंजन दास आदि नेता एवं हजारों लोग, शोकाकुल बालक, वृद्ध, युवा एवं महिलाओं ने उनका शवानुगमन किया। श्मशान प्रांगण संगीत एवं कीर्तन से गूँज उठा। उनकी भस्म उनके प्रिय जन्मभूमि में लाई गई थी।

प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का स्वहस्तलिखित उपदेश है – "ऐसा दिन नहीं रहेगा" अश्विनीकुमार के जीवन में यह पूर्णतः प्रकाशित हुआ था। वे आशावादी थे, लेकिन कभी–कभी निराशा की बात भी उनके मुँह से सुनी गई। उनका रचित 'कर्मयोग' ग्रन्थ अपूर्ण रहा। वरिशाल में उनके द्वारा स्थापित मेडिकल स्कूल बंद हो गया। ये सब बातें याद करके वे बहुत दुःखी होते थे। सबसे ज्यादा कष्ट उनको शिष्यों के आचरण से होता था। कितने यत्न एवं आदर्श के साथ उन्होंने उन लोगों को तैयार किया था, लेकिन अंत में वे सब आदर्श भ्रष्ट हो गए। उनके जीवितावस्था में ही ब्रजमोहन स्कूल की छात्र संख्या घट गई थी। कॉलेज का आदर्श नष्ट हो गया था। वरिशाल की विभिन्न अशुभ खबरें कोलकाता में उनको मिलती थी एवं उनका हृदय व्यथित होता था। अश्विनीकुमार थे कर्मवीर। कर्म ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। भगवत् भक्त मुक्ति कामना नहीं करता। भगवान की सेवा करने के लिए बार–बार जन्म ग्रहण करना चाहता है। अश्विनी कुमार ने भी निवार्ण की कामना नहीं की। देह त्याग के कुछ दिन पहले उन्होंने एक सरकारी वकील से कहा था, "निर्वाण नहीं चाहिए, मोक्ष कामना नहीं करता हूँ। फिर इस धरती पर आना चाहता हूँ। फिर परिश्रम करना चाहता हूँ कौन से देश में ? इस भारतवर्ष में, कौन प्रदेश में ? इसी बंगाल में, कौन जिला में ? यह भी बोलना पड़ेगा ? वरिशाल में, लेकिन एक बात नहीं कह सकता, किसके घर में जन्म लूँगा, पिता होने के उपयुक्त लोग तो और कोई नहीं दिखाई देते हैं। एक व्यक्ति था जिसे फाँसी दे दी गई। कौन था वह ? आब्दुल! आब्दुल दस्यु था, निर्मम नरहत्याकारी था। लेकिन वह अत्यन्त निर्भीक था। फाँसी के पहले रात में वह आराम से सो रहा था।" उनकी उक्तियों से यह पता चलता है कि वरिशाल के लिए उन्होंने जो कर्मसूची रचना की थी उसे असमाप्त रखकर वे नहीं जाना चाहते थे। इसलिए उस कार्य को संपन्न करने के लिए वे फिर वरिशाल में ही जन्म लेना चाहते थे।

स्वदेशी आंदोलन के समय देश के युवकों का नैतिक एवं सर्वकल्याणमय चरित्र गठन के लिए उनके लिखित 'भक्तियोग' नामक ग्रन्थ समग्र भारतवासियों के मन में विशेष प्रभाव विस्तार किया था। 'कर्मयोग', 'प्रेम' आदि ग्रन्थ भी उल्लेखनीय हैं।

वरिशाल ब्रजमोहन विद्यालय में 'भक्तियोग' के बारे में अश्विनीकुमार (1224 बंगाब्द में) ने कई प्रवचन दिए थे। 'भक्तियोग' ग्रन्थ में वे सब प्रवचन शामिल हैं। इस ग्रन्थ के बारे में आचार्य जगदीशचन्द्र मुखोपाध्याय ने कहा था, "यह भविष्य में जातीय संपत्ति के रूप में गृहीत हो सकता है।" मुखोपाध्याय महाशय की यह उक्ति सही है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस ग्रन्थ में भक्ति का मूलतत्व, उसका

लक्षण, विभिन्न अधिकारियों के लिए भक्ति का प्रकार भेद, भक्तिपथ का सहायक, भक्ति का क्रम एवं उत्कर्ष आदि विषयों की व्याख्या दृष्टांत के साथ सरल भाषा में की गई है।

इस ग्रंथ में संकीर्णता का स्थान नहीं है। इसमें उदार असांप्रदायिकता का भाव है। आत्मा को दृढ़ करने की नीति एवं सदुपदेश से पूर्ण है यह ग्रंथ। इसमें जाति भ्रष्ट एवं चरित्रहीनता का परिणाम वर्णित है। सुन्दर–सुन्दर दृष्टांत एवं कहानी के माध्यम से गुढ़ आध्यामित्क तत्वों का वर्णन किया गया है। उच्च आदर्श संस्थापन ही ग्रंथकार का अनन्यतम् उद्देश्य था। भोगपरायण मानवरूप पशु किस तरह नैतिक शक्ति के चरम शिखर पर आरोहण करके आदर्श चरित्रवान हो सकता है, उसका अनेक दृष्टांत इस ग्रंथ में है। इंद्रिय संयम भगवतभक्ति प्राप्ति का उपाय एवं मानवजीवन के लक्ष्यस्थल में पहुँचने के उपाय के बारे में अनेक मूल्यवान तथ्य इस ग्रंथ में है। आदर्श मनुष्य गठन के उपादानों को इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है।

भक्तियोग की द्वितीय धारा है दुर्गोत्सव तत्व एवं तृतीय धारा है प्रेम। दुर्गोत्सव तत्व में उन्होंने कहा है कि हृदय (अंतर) की भक्ति, पूजा का श्रेष्ठ उपकरण है। पुष्प, बिल्बपत्र, मूर्ति आदि बाह्य सहायमात्र। तृतीय धारा "प्रेम" में उन्होंने कहा है कि ईश्वर भक्ति एवं उनके सृष्ट जीवों के प्रति दया, मानव जीवन का चरम आदर्श है। ये दोनों प्रवचन बाद में उसी नाम से पुस्तकरूप में प्रकाशित हुआ था। 'भक्तियोग' की तरह 'कर्मयोग' एवं 'ज्ञानयोग' के बारे में भी वे कुछ कहना चाहते थे। बहुत दिन बाद मन की प्रबल इच्छा से कर्मयोग नामक एक छोटी पुस्तक प्रकाशित की थी। लेकिन ज्ञानयोग के बारे में वे कुछ नहीं कह सके। श्री मद्भगवतगीता के अवलंबन से उन्होंने कर्मयोग ग्रंथ में "कर्मतत्व" को अनेक शास्त्र वचन एवं युक्ति द्वारा सरलरूप में वर्णन किया हैं।

भक्ति किसे कहते हैं– इस बारे में लेखक ने प्रह्लाद एवं ध्रुव का दृष्टांत ग्रहण किया है। प्रहलाद के प्राण में पहले से ही भक्ति–प्राप्ति की असीम आकांक्षा थी। लेकिन ध्रुव ने पहले राजपद पाने के लिए तपस्या शुरू की थी। उनकी तीव्र तपस्या से भगवान ने आविर्भूत होकर वर मांगने को कहा, ध्रुव ने उत्तर दिया–

> स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोहहम्।
> त्वां प्राप्तवान् देव मुनीन्द्रगुह्यम्।
> काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नं।
> स्वामिन् कृतार्थोहस्मि वरं न याचे।।

–हरिभक्ति सुखोदय 7.18

भावार्थ– "राजपद पाने के लिए मैंने तपस्या शुरू की थी, लेकिन हे देव कितने मुनीन्द्र, योगीन्द्र तपस्या करके भी जिसे नहीं पाता है, आज मैंने उसे पाया हैं। काँच ढूँढ़ते–ढूँढ़ते अचानक मुझे दिव्यरत्न मिल गया। हे स्वामी मैं कृतार्थ हुआ। और कोई वर नहीं चाहिये। अब और कोई अभिलाषा नहीं है। केवल भगवान को चाहता हूँ, वर नहीं।"

–क्या अपूर्व परिणाम!

भक्ति के अधिकारी के बारे में दत्त महाशय महाभारत के शांतिपर्व एवं श्रीमद्भागवत से अनेक प्रमाणों का संग्रह किया है :

युवैव धर्मशीलः स्यात् अनित्यं खलु जीवितम् ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।।

–शांति पर्व 175–17

"यौवन में ही धर्मशील होना चाहिए, जीवन अनित्य है। कौन जाने आज किसकी मृत्यु होगी ? मृत्यु बालक को भी नहीं छोड़ती।" भक्तचूड़ामणि ने कहा है –

कौमारे आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रूवमर्थदम्।।

–भागवत 7 |6 |1

"बाल्यकाल से ही भागवत धर्म का आचरण करना चाहिए। जीवन कितने दिनों के लिए है ? मनुष्य जन्म दुर्लभ है, इसमें सफलकाम जीवन बिल्कुल अनिश्चित है।" इस पृथ्वी के महान–पुरुषों के बाल्यकाल में ही भगवद्भक्ति का परिचय मिलता है। बाल्यकाल में भक्ति उपार्जन नहीं करने से बाद में पश्चाताप करना पड़ता है। इसलिए किसी बालक को यह नहीं सोचना चाहिए कि बुढापे में भक्ति साधना करेंगे। भगवद् भक्ति में चांडाल आदि का भी आधिकार है। चांडाल कन्या शबरी इसकी उदाहरण है।

भक्तिलाभ के लिए बाहरी विद्या की जरूरत नहीं है। श्री रामकृष्ण परमहंस इसके उज्ज्वल दृष्टांत हैं। उनको तो कोई शास्त्र ज्ञान नहीं था, लेकिन उनके समान ज्ञानी भी मिलना असंभव है। माँ कहकर पुकारने में विज्ञान या कूटशास्त्र अध्ययन की जरूरत नहीं है। संसारी भक्तों के अनेक दृष्टांत हैं। राय रामानन्द, पुण्डरीक विधानिधि आदि इस विषय में उल्लेखयोग्य हैं।

भगवान की कृपा से भक्ति प्राप्त होती है। इस विषय में दत्त महाशय भक्तमाल ग्रंथ से एक मेहतर का दृष्टांत ग्रहण किए हैं। मेहतर कपट योगीवेश

धारण करके राजकन्या एवं आधा राज्य का अधिकार प्राप्त करने पर भी, विवेक के जाग्रत होने से कपट योगीवेश छोड़कर, प्रकृत भक्त बन गया था। भगवान की अपार करुणा से यह संभव हुआ था। उसी तरह एक व्याध के जीवन में भी परिवर्तन आया था। व्याध के कपट साधु वेश धारण करने पर पक्षी निःशंक रूप में उसके पास आने लगे। यह देखकर उसके मन में परिवर्तन आया एवं वह परम भक्त हो गया। महापापी जगाई–माधाई भी इसी तरह एक शुभ क्षण में भगवत्भक्त में बदल गए थे। आधुनिक युग में भी दत्त महाशय ने देखा हैं कि एक नीच वंशजात अत्यन्त बुरे आदमी के जीवन में भी परिवर्तन आया। उन्होंने ग्रन्थ में इस घटना का उल्लेख करके कहा है कि इस तरह का शुभ क्षण अनेक लोगों के जीवन में आया है। भगवान का नाम सुनते ही उसका जीवन परिवर्तित हो गया और कलंक नहीं रहा। अब वह वैद्य बन गया। एक रुपए से ज्यादा जो कुछ मिलता है वह ब्राह्मसमाज को दान करता है और एक रुपए से कम मिलने से अपना जीविका निर्वाह के लिए व्यय करता है।

भक्तिपथ में बहुत बाधा है। वह प्रतिक्षण भक्ति पथगामी को विभ्रान्त करने की चेष्टा करती है। इस बारे में दत्त महाशय ने कहा है, पहले कुसंग परित्याग करना पड़ेगा। वे नारद भक्तिसूत्र से उल्लेख करके कहते हैं – 'दुःसंग सर्वथैव त्याज्यः' यहाँ दुःसंग का अर्थ है कुचरित्र व्यक्तियों के साथ मिलन, कु–ग्रंथ अध्ययन, कुचरित्र–दर्शन, कुवाक्य एवं कुसंगीत श्रवण। कुसंग जैसा भक्ति विरोधी और कुछ नहीं है। इस बारे में नारदभक्तिसूत्र– 44 से "काम क्रोध मोह स्मृतिभ्रंश बुद्धिनाश सर्वनाश कारणत्" सूत्र उल्लेख करके उन्होंने कहा है, "कुसंग ही काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है।" श्री भद्भागवत्गीता से निम्नोक्त –

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोहभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

श्लोकद्वय का उल्लेख करके उन्होंने कहा है कि "विषयध्यान से आसक्ति, आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति भ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश एवं बुद्धिनाश से विनाश होता है।" इस बारे में उन्होंने यह भी कहा है कि काम क्रोध किसके हृदय में नहीं है ? सब लोग समय–समय पर काम–क्रोध द्वारा अभिभूत होते हैं, लेकिन दुःसंग से यह समुद्र का आकार धारण करता है। छोटी–छोटी लहरों का दमन करना आसान होता है, लेकिन समुद्र का दमन करना आसान नहीं है।

नारद भक्ति सूत्र (63) से 'स्त्रीधनिनास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम्' श्लोक का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि स्त्री के रूप, यौवन, भाव आदि का वर्णन–श्रवण नहीं करना चाहिए। धनी व्यक्ति के चरित्र–श्रवण से भोगासक्ति के कारण श्रोता का मन चंचल हो सकता है। नास्तिक चरित्र सुनने से भगवद् विषय में संशय उपस्थित होता है, मन चंचल होता है, मन मोहग्रस्त होता है। शत्रु चरित्र श्रवण से हृदय में क्रोध की उत्पत्ति होती है।

जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि उत्तेजित होता है, वैसा कभी नहीं देखो, नहीं सुनो, एवं स्पर्श नहीं करो। कु–दृश्य अर्थात् जिसके कारण कु–प्रवृत्ति का उदय होता है, वह कभी नहीं देखो। कुवाक्य, कुसंगीत कभी नहीं सुनो। इसलिए श्रुति में शिष्यों के साथ ऋषिगण प्रार्थना करते हैं –

भद्रं कर्णेभिः श्रुणूयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभर्यजत्राः।
स्थिरैरंगै स्तुष्टुवांसस्तनूर्भिव्यशेमहि देवहिंत यदायुः।।

–यजुर्वेद 25/21

"हे देवगण, हमारा कान हमेशा कल्याणकारी शब्द श्रवण करे, आँखें हमेशा श्रेष्ठ वस्तु का दर्शन करे। स्थिर–अंग विशिष्ट शरीर द्वारा तुम्हारी स्तुति करके हमें देवताओं की उम्र प्राप्त हो।" अर्थात् "कर्ण एवं चक्षु के सामने अभद्र कुछ उपस्थित नहीं होने से इंद्रिय चंचल नहीं होगी, इससे जितेन्द्रिय हो सकेंगे। जितेन्द्रिय होने से अंग स्थिर होगा। इंद्रिय जय करने से दीर्घायु प्राप्त कर सकोगे।"

इसके बाद काम, क्रोधादि षड्रिपु, सांसारिक दुश्चिन्ता, कपटता, वृथा वाक्यालाप की प्रवृत्ति, धर्माडम्बर आदि दोषों का वर्णन करते हुए उपसंहार में उन्होंने कहा है – ये सब काँटे कभी–कभी कपट रूप में उपस्थित होते हैं। कभी पाप भी पुण्य के रूप में आता है। कभी–कभी परम वैष्णव रूप में हमें कुमंत्रणा देता है। हमें सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। जैसे मानलो किसी ने अन्याय कार्य किया है या अपवित्र वाक्य कहा है लेकिन इसके लिए वह बिल्कुल अनुतप्त नहीं है। आपने इसका प्रतिवाद करना या सजा देना कर्तव्य समझा। कोई वैष्णव वेश में कहा "क्षमा कर दो, संसार में ऐसा बहुत कुछ हो रहा है, इसके लिए क्रोधित होने से क्या लाभ ? माफ कर दो।" यहाँ जिन्होंने पाप के विरुद्ध दण्ड धारण नहीं करने दिया, वास्तव में उन्होंने पाप को उत्साहित किया।उन्होंने यह नहीं समझा कि क्षमा के रूप में पाप को उन्होंने आश्रय दिया। दूसरा दृष्टांन्त– आप जानते हैं कि कोई कष्ट में है, लेकिन उसको नकद पैसा देने से वह अपव्यवहार करेगा। यह जानकर भी अगर आप पुण्य सोचकर उसको नकद पैसा दान करेंगे तो पुण्य वेश में पाप

आपका आश्रय करेगा। कभी–कभी काम या क्रोध के वश में आकर कार्य करने पर हम मन को सांत्वना देते हैं, कि मैंने अच्छा ही किया है, नहीं तो मेरे कर्तव्य कर्म में त्रुटि होती। यहाँ पाप, पुण्य का स्थान लेने के लिए विभिन्न तर्क उपस्थित कर रहा है। कपट वेशी पाप के बारे में इस प्रकार अनेक दृष्टांत हैं। इसलिए हमें सर्वदा सावधान होना चाहिए कि पाप किसी प्रकार की चतुरता से हमारे हृदय में प्रवेश नहीं कर सके।

भक्तिलाभ करने के उपाय के बारे में दत्त महाशय ने कहा है कि सर्वप्रथम आत्मचिन्ता का प्रयोजन है। "प्रतिदिन यदि हम लोग सोचेंगे कि हम लोग किस प्रकार जीवन बिता रहे हैं, कितना सत्कार्य किया, कितना असत् कार्य किया, पाप के साथ किस प्रकार संग्राम चल रहा है, ये सब सोचने से सब पता चल जाएगा।" साधक राम प्रसाद यह समझ गए थे, इसलिए उन्होंने गाया है "पाँच इद्रियों की पाँच वासनाएँ, कैसे घर करूँगा।" जो व्यक्ति इस अवस्था को समझकर मुक्त होने के लिए भगवान का नाम लेता है, उसे ही यथार्थ भक्त कहा जाता है। आत्मचिन्ता के प्रयोजन के बारे में उन्होंने कहा है– जो व्यक्ति एकांत में बैठकर अपने बारे में सोचता है, उसके मन में ये सब प्रश्न उदय होते हैं– मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? उनके साथ मेरा क्या संबंध ? माता–पिता मेरे कौन हैं ? वे मुझे इतना प्यार क्यों करते हैं ? पृथ्वी में इतने भाई–बन्धु कौन लाया ? अग्नि मुझे ताप क्यों देती है ? वायु मेरे शरीर को शीतल क्यों करती है ? पानी से मेरी प्यास क्यों बुझती है ? इस प्रकार अनेक प्रश्न उदय होकर उसके मन को तत्व चिन्ता की ओर अग्रसर करेगा। यह सब सोचने से यह पता चलता है कि एक प्रेममय शक्ति समग्र जगत् में कार्य कर रही है। इस शक्ति की उपलब्धि से इसके बारे में चिंतन शुरू होता है। मन उसके प्रति आकृष्ट तथा भक्तिपूर्ण हो जाता है। भक्त होने पर भी आत्मचिंतन जरूरी है। इस बारे में उन्होंने कहा है– ध्रुव ने राज सिंहासन के लिए साधना शुरू की थी। अंत में कामना छोड़कर दास हो गया। चैतन्यदेव का पंचसाधन अर्थात् सत्संग, कृष्णसेवा, भागवतपाठ, नाम, ब्रजवास उन पाँच विषयों में अनुरक्त होने से भी कृष्ण प्रेम का उदय होता है। 'नाम' के बारे में उन्होंने कहा है, "उपयुक्त गुरु के पास दीक्षा प्राप्त करने से जीवन में अनेक उपकार होता है। जिनको उपयुक्त गुरु मिला, वह भाग्यवान है।"

भक्तिलाभ के अन्य उपाय के बारे में आत्मनिवेदन एवं एकाग्रता साधन की बात कहते समय उन्होंने श्रीमद्भगवत्गीता से श्लोकांश उद्धृत करके कहा है–"काय, वाक्य, मन, इंन्द्रिय, बुद्धि एवं चित्त द्वारा जो कुछ किया जाता है सब परात्पर नारायण को अर्पण करो एवं कार्य, आहार, यज्ञ, दान, तपस्या जो कुछ करो, हे अर्जुन, सब मुझे अर्पण करो।"

भक्ति का क्रम एवं भक्त के लक्षण के बारे में उन्होंने श्रीमद्भागवत् एवं श्रीमद्भगवतगीता का उल्लेख कर कहा है – "श्रेष्ठ भक्त होने के लिए संसार त्याग करना जरूरी है, यह कहीं नहीं है। केवल यह मिला– सर्वोत्तम भक्त कभी भी विषयवासना को दिल में स्थान नहीं देता। कभी भी संसार धर्म द्वारा मोहित नहीं होता। उसके लिए शत्रु, मित्र, मान, अपमान, स्तुति, निन्दा सब समान है। श्रीमद्भगवतगीता में भगवान अर्जुन को संसार त्याग करने का उपदेश नहीं देते वरन् इसके विपरीत संसार के कार्य को त्याग नहीं करने का उपदेश देते हैं। लेकिन विषयवासनाहीन होकर शत्रु–मित्र, निंदा–स्तुति, मान–अपमान को समान ज्ञान करके गृहधर्म पालन करना होगा, दृढ़ रूप में बार–बार यही कहे हैं। श्रीकृष्ण धर्मरक्षा के लिए अर्जुन को दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध करने का उपदेश देते हैं, शत्रुता करने के लिए नहीं। धर्मरक्षा के लिए हमें भी अन्याय पर, अधर्म पर शासन करना चाहिए। कभी–कभी अन्यायकारी के विरुद्ध दण्डधारी भी होना पड़ेगा, लेकिन चित्त अविकृत रखना होगा, किसी भी तरह हृदय में हिंसा, क्रोध का स्थान नहीं होना चाहिए।"

प्रेमभक्ति श्रेष्ठ है। इसे मधुर रस कहा जाता है। दास्य, सख्य, वात्सल्य के बाद प्रेमभक्ति श्रेष्ठ भक्ति है। दास्यभक्ति में भक्त के मन में भगवान के प्रति दास भाव रहता है। सख्य भक्ति में भक्त भगवान को सखा रूप में भजन करता है। वात्सल्य भक्ति में भक्त भगवान को संतान रूप में देखते हैं। लेकिन प्रेम भक्ति का उदय होने से भक्त संपूर्ण रूप में भगवान के पास आत्मसमर्पण करता है, यही है मधुर रस। मधुर रस का विश्लेषण करते हुए दत्त महाशय ने कहा है– मधुर रस की बात और क्या कहूँ ? प्राण में मधुर रस संचारित होने से, सती जैसे पति बिना कुछ नहीं जानती, उसी तरह भक्त भी भगवान के बिना अन्य कुछ नहीं जानता है। भक्त भगवान में पूर्णरूप में आत्मसमर्पण करके कहता है–

"रूप लागि आँखि झुरे गुणे मन मोर।
प्रति अंग लागि काँदे प्रति अंग मोर।।"

–ज्ञानदास

भावार्थ – "भगवान का रूप देखने के लिए आँखों से अश्रु निकल रहे हैं। भगवत् गुणगान करते हुए मन विभोर हो जा रहा है। भगवान के प्रत्येक अंग (अर्थात् अणु–परमाणु आदि) के प्रति मेरा प्रत्येक अंग मिलन के लिए व्याकुल है। भगवत् भक्त का शरीर नाममय हो जाता है। उसके शरीर के अणु–परमाणु तक सर्वदा अपने आप 'नाम' करता रहता है। इसे ही अजपा कहते हैं।"

मधुर रस में भक्त अपने आपको संपूर्ण रूप में भूल जाता है। अपने बारे में

भक्त का कोई ज्ञान नहीं रहता है इसे परमा प्रीति कहते हैं। इस प्रीति के बारे में दत्त महाशय ने एक अति सुंदर निदर्शन दिए हैं– "विदुर की पत्नी एकदिन स्नान कर रही थी, श्रीकृष्ण 'विदुर' 'विदुर' पुकारते हुए विदुर के द्वार में उपस्थित हुए। विदुरपत्नी मधुर पुकार सुनकर प्रेमभाव में मस्त होकर बिना वस्त्र पहने ही श्रीकृष्ण के सामने खड़ी हो गई। श्रीकृष्ण ने अपना उत्तरीय उतारकर उसके अंग में डाल दिया। तब वह उस वस्त्र को लपेटकर अति व्याकुलता के साथ श्रीकृष्ण को घर में ले गई। घर में जाकर आनन्द से विवश हो गई। क्या करेगी, क्या नहीं करेगी, कुछ भी नहीं सोच सकती थी। अंत में पानी एवं केला ठाकुर के सामने रखी। आनन्द से विभोर होकर ठाकुर के श्रीहस्त में कभी केला तो कभी केले का छिलका दे दी। भक्त द्वारा जहर देने से भी ठाकुर वह ग्रहण करते हैं। भक्त का दिया केला एवं छिलका दोनों ही उनके लिए अमृत है। ठाकुर प्रसन्नता के साथ दोनों ही खा कर रहे हैं। विदुर राजसभा से आकर यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए। वे पत्नी को डांटने लगे। कुछ देर बाद जब उनकी पत्नी को ज्ञान हुआ तब वे लज्जित हो गई। इससे अच्छा प्रीति का दृष्टांत और क्या हो सकता है ?" उन्होंने और कहा है– "प्रेम जहाँ, क्रोध-स्वाभिमान भी वहाँ। श्रीगौरांग ने भी अनेक बार क्रोध एवं स्वाभिमान दिखाया है। साधक रामप्रसाद क्रोध एवं अभिमान से गाते है–

अर्थात– "तारा माँ! तुम मुझे इतनी यंत्रणा दे रही हो, मैं और माँ–माँ कहकर नहीं पुकारूँगा।"

इस तरह भक्त का स्वाभिमान जगत में अतुलनीय है। श्री रूपगोस्वामी के 'भक्तिरसामृतसिंधु' में जो पाँच प्रकार के भक्तिरस का विवरण है, उसे अत्यन्त सरल रूप में दत्त महाशय ने कहा है – "भक्तिरस पाँच प्रकार है– शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।" मधुर रस के बारे में सामान्य व्याख्या की गई है। अन्य चारों रसों के बारे में दत्त महाशय की उक्ति इस प्रकार है : –

"शांत भाव नहीं होने से भक्ति आरंभ नहीं होती, शांत रस भक्ति का पहला पद है। शांत रस के दो गुण हैं – ईश्वर में निष्ठा एवं संसार–वासना का त्याग....।

दास्य रस से भक्त के मन में ममता का संचार होता है – यहाँ भगवान प्रभु, भक्त दास......। सख्य रस में आत्मसम–ज्ञान, भगवान में संपूर्ण विश्वास, उनके साथ अलिंगन, प्रेम का विवाद, अभिमान, क्रीड़ा, कौतुक......। वात्सल्य रस में भगवान गोपाल, भक्त उनको संतान जैसा स्नेह करता है। गोद में लेता है............।" उक्त चारों भक्तिरसों के बारे में दत्त महाशय ने पौराणिक एवं आधुनिक अनेक दृष्टांत दिए हैं जिससे साधारण मनुष्य यह समझ सकें एवं इसका अनुसरण कर सकें। भक्तियोग में उन्होंने कहा है – भगवान स्वयं भक्त के दास हैं। श्रीमद्भागवत् में भगवान ने कहा है –

अंह भक्त पराधीनोह्यस्वतंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः।।

(श्रीमद्भागवत्–9,4,63)

मैं भक्त के अधीन हूँ, अतः पराधीन हूँ, मैं भक्तजन को बहुत प्यार करता हूँ, साधु–भक्तों ने मेरा हृदय ग्रास किया है। इसलिए मेरे हृदय के ऊपर मेरी कोई क्षमता नहीं है।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा।।

"मैं जिन लोगों के लिए परागति हूँ, उन साधु एवं भक्तों को छोड़कर मैं अपने आपको भी नहीं चाहता हूँ। मैं आत्यन्तिकी श्री भी नहीं चाहता।"

ये दारागार पुत्राप्ताप्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा माँ शरणं याताः कथं तां स्त्यक्तूमूत्सहे।।

(श्रीमद्भागवत् 9,4,65)

"जिन्होंने पत्नी, गृह, पुत्र, कुटुम्ब, प्राण, धन, इहलोक, परलोक आदि की ममता का त्याग करके मेरी शरण स्वीकार की है मैं किस तरह उन्हें त्याग दूँ ?"

मयि निर्वद्वहृदयाः साधव समदर्शनाः।
वशे कुर्वन्ति माँ भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।।

(श्रीमद्भागवत् 9,4,66)

"जैसे सती स्त्री सत् पति को वश में करती है, उसी तरह समदर्शी साधु लोग मुझे वश में करते हैं।"

मतसेवया प्रतीतं ते सालोक्यादिच्चतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोहन्यत् कालविद्रुतम।।

(श्रीमद्भागवत् 9,4,67)

"मेरी सेवा करके परितृप्त होकर उससे प्राप्त सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति भी वे नहीं चाहते, काल में विनष्ट होने वाले विषयों की बातें क्या कहूँ ?"

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

(श्रीमद्भागवत् 9,4,68)

"साधुगण मेरा हृदय एवं मैं साधुगणों का हृदय हूँ। ये मेरे अलावा और कुछ भी नहीं जानते हैं। मैं भी उन लोगों के अलावा और कुछ भी नहीं जानता हूँ।"

मोदिन्ति पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं मुर्भवति।

(नारद भक्ति सुत्र–71)

पितृगण आनन्द करते हैं, देवगण नृत्य करते हैं। वसुंधरा सोचती है, "अब तक मैं अनाथ थी आज सनाथ हूँ।" जहाँ ऐसा भक्त का पदक्षेप हो वह स्थान सोना बन जाता है, जो कुछ स्पर्श करे वह हीरा बन जाता है, जिस दिशा में देखता है वह दिशा ध्रुवलोक की ज्योति से पूर्ण होती है। उसके चारों ओर स्वर्ग बन जाता है। उसके प्रत्येक वाक्य से पापी के हृदय में कमल खिलता है, प्रत्येक कार्य से मन्दाकिनी की विमलधारा जगत को प्लावित करती है, प्रत्येक दिशा से इस पृथ्वी में पुष्प वर्षा होती है, देवगण भी उनके पास में स्थान मिलने से धन्य हो जाते हैं।

भक्त के बारे में अश्विनीकुमार ने ऊपर की उक्ति में सब कुछ कहा है। फिर वे सबको बुलाकर कह रहे हैं– एकबार आइए, हमलोग प्राण भरके भक्त एवं भगवान के युगल मिलन का इस जग में प्रचार करें। भगवान उस देवदुर्लभ मिलन का मनोहर रूप दिखाकर हमें मोहित करें, हम सब एकबार हरिध्वनि से सब दिशाओं को ध्वनित करें –

जयति जयति जगन्मंगलं हरेर्नाम।
जयति जयति जगन्मंगलं हरेर्नाम।।

–श्रीधर स्वामी कृत

शास्त्रसिंधु मंथन करके वरिशालरत्न अश्विनीकुमार दत्त ने 'भक्तियोग' नामक ग्रंथ लिखा था, आदर्श मानव सृष्टि के लिए। इस अमूल्य ग्रंथ का सामान्य परिचय यहाँ दिया गया है। अंत में हम लोग भी लेखक को प्रणाम करते हैं –

नमो भक्तप्रवराय वरिशालरत्नाय च।
देशप्रेमिकश्रेष्ठाय देशवरेण्यमनीशे।।

****

श्री भरतचन्द्र मुखोपाध्याय

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी जब देह में विराजमान थे उस समय उनके शिष्यों में से जिन लोगों ने निरापद भूमि प्राप्त की थी उनमें श्री भरतचन्द्र अनन्यतम थे। यह बात श्री दरवेशजी महाराज ने कहा था।

भरतचन्द्र ने ढाका नार्मल स्कूल में तीस वर्ष शिक्षक का कार्य किया था। अवकाश ग्रहण करने के बाद वे ब्रजधाम के राधाकुण्ड में लगभग पन्द्रह वर्ष गुप्त रूप से कठोर साधना में मग्न रहे। उनके समान सरल एवं निरभिमानी साधक बिरले मिलते हैं, गोस्वामी प्रभुजी ने उनके सम्बन्ध में कहा था कि यह इनका शेष जन्म है। लगभग 67 वर्ष की उम्र में उन्होंने नित्यलीला में प्रवेश किया। उनके सम्बन्ध में विशेष तथ्यादि प्राप्त नहीं होता है। उन्होंने अपने प्राप्त दर्शन एवं अनुभव आदि को गुप्त रखा। श्री दरवेश जी महाराज ने उनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा था उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

निरापद अवस्था के प्रसंग में दरवेशजी महाराज ने कहा था "जिस अवस्था के प्राप्त होने के पश्चात् साधक को फिर पतन होने का कोई डर नहीं रहता है उसे निरापद भूमि कहा जाता है।" पुराणों में व्यास देव, पराशर आदि महर्षि लोगों का दृष्टांत देते हुए उन्होंने कहा था कि पराशर आदि की तरह महान् साधकों का भी पतन हुआ था, पर बाद में इन लोगों ने निरापद भूमि प्राप्त की थी।

श्री दरवेशजी की दीक्षा वृन्दावनधाम में बंगला 1302 (सन् 1895 ई०) के 17 आषाढ़ में हुई। उस समय भरतचन्द्र राधाकुण्ड में साधना में मग्न थे। सौभाग्यवश उस समय दरवेशजी को भरतचन्द्र ने राधाकुण्ड में आने के लिए कहा। इस घटना का विवरण देते हुए दरवेशजी महाराज ने कहा था– वे उच्च स्तर के साधक थे। वे अत्यन्त शुद्धाचारी, निष्ठावान एवं परमवैष्णव थे। एकबार उन्होंने एक विशेष व्रत का पालन किया था। दिन में एकबार स्वयं खिचड़ी बनाकर भोग निवेदन के बाद वे प्रसाद लेते थे। जिस समय वृन्दावन में मेरी दीक्षा हुई उस समय मेरी उम्र केवल सत्रह वर्ष थी। मेरी दीक्षा होने पर भरत बाबू बहुत आनन्दित हुए एवं मुझे अपने निकट राधाकुण्ड में आने के लिए कहा। दीक्षा लेने के कुछ दिनों के बाद मैं उनके निकट गया। उनका बनाया हुआ खिचड़ी प्रसाद वहाँ पाकर परम तृप्ति लाभ किया। इस प्रकार का अपूर्व स्वादिष्ट भोजन इसके पूर्व कहीं भी नहीं पाया था। कौतुहलवश इस संबंध में भरतचन्द्र महाशय से पूछा कि यह खिचड़ी आपने किस विधि

से बनाया। इस तरह का स्वादिष्ट प्रसाद मैंने.आजतक कहीं भी नहीं पाया। इसके उत्तर में उन्होंने कहा, "खिचड़ी बनाकर मैं नित्य गोस्वामीजी को पहले भोग निवेदन करता हूँ। वे नित्य यहाँ आकर खिचड़ी लेते हैं।" उनकी बातों को सुनकर मैं पूर्णतः विश्वास नहीं कर सका क्योंकि उस समय मेरी उम्र कम थी। वृन्दावन में वापस आने के बाद गोस्वामीजी से इस संबंध में पूछने पर उन्होंने कहा, "भरत बाबू ने जब तुम्हें यह बात कही है तब तुम महाभाग्यवान हो। हाँ यह सत्य है कि मैं नित्य वहाँ जाकर खिचड़ी लेने के बाद यहाँ चला आता हूँ। यह बात तुम और किसी के निकट मत बोलना।" गोस्वामीजी जब तक थे यह बात मैंने किसी से नहीं कही। गोस्वामीजी के निकट उनके श्रीमुख से इसे सुनकर उनके प्रति मेरी दृढ़ भक्ति उत्पन्न हुई। मैंने एकाग्र भावना से साधन–भजन करना शुरू किया।

गोस्वामी प्रभुजी के अप्रकट होने के पश्चात् भी उनके चित्र या विग्रह के निकट भक्तिपूर्वक भोग निवेदन करने पर आज भी भोगग्रहण का स्पष्ट चिन्ह दिखलाई देता है। इस प्रकार का अनुभव हम सभी को बहुत बार हुआ है उनकी नित्य लीला आज भी चल रही है।

****

श्री ब्रजमोहन

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु ने कहा है, "स्वप्न में महात्मा लोग दर्शन देकर कभी–कभी कृपा करके मंत्र प्रदान करते हैं, कभी–कभी पूर्वजन्म में प्राप्त मंत्र भी प्रकाशित होता है। इस प्रकार मंत्र प्राप्ति के समय कुछ लोग भावावेश में रहते हैं। बाद में जब सम्पूर्ण रूप से उन्हें चेतना आती है तब प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर वे विस्मित हो जाते हैं।" इस तरह मंत्र प्राप्त होने पर भी प्रत्यक्ष सदगुरु के निकट मंत्र ग्रहण करने का नियम है स्वग्रं गोस्वामीजी का जीवन इसका प्रमाण है। उन्होंने कहा था–

जब मैं ब्राह्मसमाज में था, एकबार रात्रि के समय बैठा हुआ नाम–जप कर रहा था। उस समय निद्रा की तरह भावावेश में था। अचानक दरवाजे में किसी ने धक्का दिया। दरवाजा खोलते ही श्री चैतन्य महाप्रभु को सपार्षद भीतर आते हुए देखा। उनमें से एक महात्मा ने अपना परिचय देते हुए कहा, मैं अद्वैत आचार्य हूँ। ये श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द और साथ में श्रीवास आदि श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षदगण हैं। ये सभी यहाँ आए हैं। परिचय देने के बाद श्री अद्वैताचार्य ने कहा कि तुम्हारे ब्राह्मसमाज का कार्य प्रायः शेष हो चुका है। अब तुम श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करो। स्वयं महाप्रभु तुम्हें मंत्र प्रदान करेंगे। तुम स्नान करके आ जाओ।

विजयकृष्णजी जल्दी से स्नान करके आए और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें मंत्र प्रदान किया। मंत्र देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने पार्षदों सहित अदृश्य हो गए। उनके चले जाने के बाद विजयकृष्णजी की चेतना लौटी। वे सोचने लगे– मैं क्या स्वप्न देख रहा था ? कुछ देर चिंतन के बाद उन्होंने कुँए पर स्नान के बाद छोड़े गए अपने गीले वस्त्र देखे। उन्होंने सोचा कि यह कैसे हुआ ? शायद कोई प्रेतात्मा आकर परख कर रही होगी कि मैं किस प्रकार का ब्राह्म हूँ ? इस प्रकार नाना संशय उनके मन में आने लगे एवं इस घटना को वे सत्य नहीं मान सके। बाद में मानस–सरोवरवासी परमहंसजी ने उन्हें दीक्षा प्रदान की। तब इस घटना के संबंध में वे निःसंदेह हुए। श्री ब्रजमोहन के जीवन में इसी प्रकार की घटना घटी थी। घटना का विवरण कुंजबिहारी गुहठाकुरता के निकट ब्रह्मचारी कुलदानन्द ने प्राप्त की थी। श्रीश्री सदगुरू संग (चतुर्थ खण्ड) से इस घटना को यहाँ दिया जा रहा है–

कुंजबिहारी गुह ने ब्रह्मचारी कुलदानन्द से कहा था कि उनके कुल पुरोहित की गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा लेने की बहुत इच्छा हुई पर उनकी आर्थिक अवस्था ठीक न रहने से ढाका में गेण्डारिया आश्रम में जाना संभव नहीं हो रहा था। वे व्याकुल भाव से गोस्वामीजी के निकट प्रार्थना करने लगे। एकदिन पुरोहितजी रात में भोजन के बाद सो गए। अधिक रात में ब्रजमोहन! ब्रजमोहन! आवाज सुनकर घर के बाहर निकलकर उन्होंने गोस्वामीजी को खड़ा हुआ देखा। पुरोहित को उन्होंने कहा, शीघ्र स्नान करके आ जाओ, अभी तुम्हारी दीक्षा होगी। ब्रजमोहन स्नान करके आए। वस्त्र परिवर्तन के पश्चात् गोस्वामीजी के निर्देशानुसार चंडी देवी के मंदिर की तरफ वे अग्रसर हुए। मंदिर के पास आकर उन्हे गोस्वामीजी नहीं दिखे। जल्दी से मंदिर का दरवाजा खोलकर उन्होंने देखा कि गोस्वामीजी भीतर बैठे हुए हैं। गोस्वामीजी ने ब्रजमोहन को अपने सामने बैठने के लिए कहा एवं दीक्षा दी। दीक्षा के बाद ब्रजमोहन ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद जब उन्होंने सिर ऊपर किया तब गोसाँईजी नहीं दिखे। ब्रजमोहन थोड़ी देर तक इधर–उधर देखने के बाद घर में वापस आकर सो गए। सुबह उठने पर उन्हें रात की सब घटना याद आई। बाहर आकर जब उन्होंने अपने गीले वस्त्रों को पड़े हुए देखा तब उनका संशय दूर हुआ।

इस घटना का पूरा विवरण उन्होंने गुरुभाई रामकृष्ण गुह एवं रजनी बाबू सें कहा। उन लोगों ने गोस्वामीजी को पत्र लिखा। गोस्वामीजी ने उत्तर दिया– "घटना सत्य है, परन्तु उनको पुनः दीक्षा लेनी होगी।" बाद में किस समय उन्होंने दीक्षा प्राप्त की, इसका पूरा विवरण प्राप्त नहीं होता है।

****

श्री चन्द्रकान्त दत्त गुप्त

साधारणतः किसी के चरित्र और बाहरी आचरण देखकर लोग उसे साधु या असाधु कहते हैं। पर महात्मा लोग अन्तःकरण की अवस्था देखकर विचार करते हैं। दुराचारी व्यक्ति में यदि कपटता न हो तो महात्माओं की कृपा उन पर हो जाती है। किसी व्यक्ति ने एकदिन गोस्वामीजी से कहा, इतने दिनों से दीक्षा लेकर मेरा क्या हुआ ? चैतन्य महाप्रभु के समय दस्यु जगाई–मधाई का उद्धार हो गया था। उसकी बातों को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा, **"जगाई–मधाई के साथ तुम अपनी तुलना कर रहे हो ? जानते हो उनमें सरलता थी। उन्होंने अपने मान सम्मान की कभी परवाह नहीं की। वे दूसरों के आदर–अनादर के आकांक्षी नहीं थे। उनमें कपटता लेशमात्र भी नहीं थी। उन्हें अपने पाप कर्मों का केवल बोध नहीं था। महाप्रभु की कृपा से जब उनमें चेतना जागी तब अपने पाप कर्मों का उन्हें बोध हुआ। उस समय आन्तरिक पश्चाताप की ज्वाला से उनके पाप कर्म नष्ट हो गए। संसार के लोग इन्द्रियासक्त तथा विषयासक्त हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए अपने कुकर्मों को गुप्त रखते हैं। वे यह नहीं समझते कि जो अन्तर्यामी हैं उनके पास कुछ भी गुप्त नहीं रहता। आत्मविचार करके देखो। दीक्षा के पहले मन की क्या अवस्था थी और अब उनमें क्या परिवर्तन हो गया है।"**

दीक्षा प्राप्त कर गुरु आदेशानुसार साधना करने पर मनुष्य के चरित्र और विचारधाराओं में परिवर्तन होते हैं। जो अन्याय या पाप करने पर पहले आनन्द मिलता था, उसे करने पर अपने अन्तःकरण में ज्वाला उत्पन्न होगी। साधनशील व्यक्ति एक अदृश्य भगवत शक्ति की सहायता हर समय, हर परिस्थिति में अनुभव कर क्रमशः भगवान के ऊपर निर्भरशील हो जाता है। इस तरह आध्यात्मिक पथ में वह अग्रसर होते रहता है।

जगाई–मधाई पर जिस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृपा की थी। उसी प्रकार गोस्वामी प्रभुजी ने कृपा की थी चन्द्रकान्त पर। चन्द्रकान्त अत्यन्त दुराचारी होने पर भी सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त कर सम्पूर्ण परिवर्तित हो गए। सद्‌गुरु की कृपा सम्पूर्ण अहैतुकी है। कोलकाता में सुकिया स्ट्रीट में जिस समय गोस्वामीजी रहते थे उस समय आश्रम में एक कुलटा परिचारिका सफाई आदि का काम करती थी। उसके मन में गोस्वामीजी के निकट दीक्षा लेने की इच्छा हुई एवं गोस्वामीजी ने

यथा समय उसे दीक्षा प्रदान की। उस समय शोभाबाजार के एक सुचरित्र एवं गुणवान व्यक्ति के प्रार्थना करने पर भी गोस्वामीजी ने उसे दीक्षा नहीं दिया। इसे देखकर गोस्वामीजी के शिष्य मनीन्द्र मोहन ने उनसे कहा– "महाशय, आपलोगों का कार्य हम लोगों के लिए समझना कठिन है। कुलटा अन्नदा दासी को आपने दीक्षा दी, परन्तु सच्चरित्र आशुतोष दत्त को लौटा दिया ?" इसे सुनकर गोस्वामीजी ने कहा– **"देखो यह साधन सम्पूर्ण अहैतुकी है। जाति वंश या सच्चरित्रता आदि की बड़ाई करते हुए कोई इसके लिए दावा नहीं कर सकता। यह सम्पूर्ण भगवान की कृपा का दान है। वे दयापूर्वक जिसे देंगे उन्हें मिलेगा। इसके सिवाय मैं किस लिए आया हूँ। यह यदि तुम जानते तो इस प्रकार नहीं कहते। पापी लोगों के उद्धार के लिए ही मैं आया हूँ। इस कार्य को सम्पूर्ण करने के लिए श्री चैतन्य, श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैताचार्य सर्वदा मेरे पास आते हैं। तुम लोगों के कार्यालय में जिस तरह कर्मचारियों के नाम को तालिका रहती है, उसी तरह जिन्हें दीक्षा मिलेगी उसकी तालिका निश्चित है। इस तालिका में उल्लेखित व्यक्ति ही साधना का अधिकारी है अन्य नहीं। साधारण दीक्षा में राशि, नक्षत्र आदि जानकर उसके बाद दीक्षा का मंत्र स्थिर किया जाता है पर इस साधना में इस सबकी आवश्यकता नहीं है। दीक्षा प्रार्थी की राशि, नक्षत्र सभी सदगुरु जानते हैं।** (संदर्भ–बंगलाग्रन्थ प्रभुपाद विजयकृष्ण से)

चन्द्रकान्त बचपन से असत् लोगों के संस्पर्श में आकर पढ़ाई–लिखाई कुछ भी नहीं कर सके। उनका शरीर सुदृढ़ था। अपने जैसे कुछ लोगों को साथ लेकर सभी प्रकार के दुष्कर्मों को करते हुए उनका जीवन बीत रहा था। पूर्वजन्म के सुकृतिवश गोस्वामीजी की कृपा प्राप्त कर उनका जीवन सम्पूर्ण परिवर्तित हो गया। पुरीधाम में गोस्वामीजी के समाधि मंदिर में उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया। उस समय एकदिन गोस्वामीजी के शिष्य नागेन्द्रनाथ सामन्त ने दो चार गुरुभाईयों को साथ लेकर उनसे पूछा, "हमलोग सुने हैं कि यौवनकाल में आप अत्यन्त दुराचारी थे। उनसब कार्यों को त्यागकर आपने किस प्रकार गोसाँईजी की कृपा प्राप्त की, इसे सुनने की हम सभी की इच्छा है। यदि आप कृपापूर्वक इसे कहे तो हम बहुत अनुगृहित होंगे।" उनलोगों की बातों को सुनकर चन्द्रकान्त ने एकदिन दोपहर दो बजे से सन्ध्या छः बजे तक अपने जीवन की घटनाओं को संक्षेप में कहा। उनके कथित विवरण एवं 'महापातकी के जीवन में सदगुरू की लीला' ग्रन्थ के अवलम्बन से यह जीवनी लिखी गई है। ऊपरोक्त ग्रन्थ जब लिखा गया था उस समय चन्द्रकान्त जीवित थे इस कारण ग्रन्थ में उनका नाम मृगांकनाथ दिया गया है।

पूर्वी बंगाल के बरिशाल जिले के अन्तर्गत भारकुटी नामक गाँव में चन्द्रकान्त का जन्म हुआ था। बाल्यकाल में सुशिक्षा के अभाव से एवं असत् लोगों के संस्पर्श में आकर उनका स्वभाव विकृत एवं अस्वाभाविक हो गया। सभी प्रकार के कुकार्य उन्होंने किया। सुरापान, व्यभिचार, परस्त्रीहरण, मिथ्या मामला, गृहदाह, लूट–पाट आदि उनका नित्य कर्म था। प्रायः सौ लोगों की एक टोली बनाकर वे सभी प्रकार के दुष्कर्म करते रहते थे। इन लोगों के डर से किसी भी व्यक्ति का प्रतिवाद करने का साहस तक नहीं था। उनके कुछ कार्यो का विवरण देने पर उनका स्वभाव एवं चरित्र और स्पष्ट होगा। वे छल–बल–कौशल द्वारा अपने कुकार्य सम्पादित करते थे।

एक व्यक्ति के प्रति उनकी शत्रुता थी। किसी भी प्रकार से उसे तंग करने के लिए एकदिन अपने टोली के किसी व्यक्ति की गाय को उसके ग्वाल घर में रात के समय जाकर बांध दिए। दूसरे दिन सुबह थाने में जाकर खबर दिया गया। पुलिस आकर गाय को वहाँ बंधा देखकर उस व्यक्ति को पकड़कर ले गई। अपनी मंडली के लोगों की मिथ्या गवाही देने से उस व्यक्ति का कारावास हुआ। इस तरह एक निर्दोष व्यक्ति को फँसाकर चन्द्रकान्त बहुत आनन्दित हुए। शरविद्ध मृग को मृत्यु यंत्रणा में छटपट करते हुए देखकर जिस प्रकार शिकारी व्याध को आनन्द होता है उसी प्रकार चन्द्रकान्त का स्वभाव क्रूर हो गया था।

एकबार किसी गृहस्थ के घर की युवती पर उसकी नजर पड़ गई। उसके घर का घेरा एवं दरवाजा तोड़कर भीतर जाकर उन्होंने युवती का सर्वनाश किया। बेचारी युवती इस अन्याय कार्य का प्रतिवाद, भय से नहीं कर सकी। इस प्रकार की असंख्य घटनाओं के भीतर से उनका जीवन बीत रहा था।

किसी समय एक मालगुजार के अधीन में जमीन की देख–रेख के काम में वे नियुक्त हुए। मालगुजार के कई भाई थे। यद्यपि वे सब पृथक रहते थे पर विषय सम्पति एवं लगान आदि की वसूली एक साथ होती थी। चन्द्रकान्त जिस भाई के पास काम करते थे उनका महाजनी का कारोबार था। चन्द्रकान्त की सहायता पाकर वह व्यक्ति प्रजा लोगों को उधार देकर रूपया वसूली के समय कई गुना अधिक धन एकत्रित करता था। एकदिन इसी प्रकार एक व्यक्ति से कई गुणा अधिक अर्थ वसूल करने के लिए उसने चन्द्रकान्त को निर्देश दिया। चन्दकान्त उसके प्रस्ताव से राजी नहीं हुए। इसे लेकर उस मालगुजार ने चन्द्रकान्त को बहुत अपमान सूचक बातें कही। इसे सुनकर चन्द्रकान्त बहुत उत्तेजित हो गए एवं मालगुजार को धमकी देकर इसका बदला लेने का विचार किया। एकबार रात के समय लगभग पचास लोगों को साथ लेकर लाठी आदि अस्त्र सहित मालगुजार के ऊपर हमला करने के लिए वे नाव से निकल पड़े। पूर्वी

बंगाल में नदी बहुत ज्यादा होने से नाव ही आने-जाने का प्रमुख साधन है। गहन रात के समय अचानक इन लोगों ने मालगुजार के घर में हमला किया एवं पेटी का ताला तोड़कर दलील पत्र आदि के साथ हाथ-पैर बांधकर मालगुजार को नाव में चढ़ाकर भाग गए। मालगुजार के घर के पहरेदार इन व्यक्तियों के सामने आने में डर गए। वरीशाल जिले में छोटे-मोटे द्वीप सर्वत्र हैं जिसमें आने-जाने का साधन केवल नाव है। इस प्रकार किसी छोटे एकान्त द्वीप में मालगुजार को ले जाकर चन्द्रकान्त ने नजरबन्द करके रखा। मालगुजार इस प्रकार अपमानित होने पर आहार निद्रा आदि त्यागकर अनशन करने लगा। दो-चार दिनों में ही वह बहुत दुर्बल हो गया। अन्त में उसकी करूण दशा देखकर एक मुसलमान मालगुजार के कचहरी के पास उसे फेंककर चन्द्रकान्त वापस आ गए। पर सभी दलील दस्तावेज अपने पास रख लिए। मुसलमान मालगुजार ने उस व्यक्ति की रक्षा की एवं किस प्रकार चन्द्रकान्त के पास से दलील आदि उद्धार किया जा सके इसकी योजना बनाने लगे। अन्त में उन लोगों ने चन्द्रकान्त के पिता को बुलाकर कहा कि यदि चन्द्रकान्त सब दलील आदि वापस कर दे तो उसके नाम पर वे मामला नहीं करेंगे। चन्द्रकान्त के पिता ने भी किसी समय उसके पास रूपए उधार में लिए थे, उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाया और उसे माफ कर देने का वायदा करा लिया।

चन्द्रकान्त यद्यपि दुराचारी थे पर अपने पिता से डरते थे। पिता के निर्देशानुसार उन्होंने उनकी बात मान ली। यथा समय निर्दिष्ट दिन में मालगुजार अपने कुछ लोगों के साथ एक निर्दिष्ट स्थान में अपेक्षा करने लगे। चन्द्रकान्त दलील आदि के साथ अपनी नौका से आकर मालगुजार की नौका में देने के लिए गए। उस समय मालगुजार अपनी गुप्त योजना के अनुसार डकैत! डकैत!! चिल्ला उठे। उनके साथी लोग चन्द्रकान्त को पकड़ने के लिए बड़े। चन्द्रकान्त उन लोगों के चंगुल से किसी प्रकार अपने को मुक्त करके अपनी नाव में आकर दलील आदि सहित भाग गए। इस तरह मालगुजार के सभी आवश्यक कागजात चोरी हो जाने पर उसने चन्द्रकान्त के नाम पर फौजदारी अदालत में नालिश किया। पुलिस चन्द्रकान्त को पकड़ने के लिए तलाश करने लगी। चन्द्रकान्त फरार हो गए एवं नौ वर्ष तक अपने को विभिन्न स्थानों में छिपाकर रखे। इस तरह विभिन्न स्थानों में कुछ कुछ काम करते हुए वे अपने दिन गुजारने लगे। इस प्रकार भ्रमण करते हुए अन्त में मानिकदह नामक स्थान में विपिनबिहारी कर महाशय के मालगुजारी में काम करने लगे। इस समय गोस्वामी प्रभुजी भ्रमण करते हुए 1273 बंगाब्द (सन् 1866 ई०) में विपिन बिहारी के घर में आए। उस समय विपिन बिहारी ने दीक्षा प्राप्त की। यहीं पर चन्द्रकान्त ने गोस्वामीजी का प्रथम दर्शन किए। संन्यास ग्रहण

करने के बाद कुछ समय तक गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज के आचार्य रहे। उस समय उनके सौम्य मूर्ति का दर्शन कर चन्द्रकान्त मुग्ध हो गए। उन्होंने भी दीक्षा लेने के लिए गोस्वामीजी के शिष्य नवकुमार बागची महाशय से चर्चा की। बागची महाशय ने उन्हें कहा व्याकुल प्रार्थना करने पर प्रार्थना पूरी हो सकती है पर दीक्षा लेने के बाद शराब, माँस, जूठा आदि खाना बन्द करना पड़ेगा। इसे सुनकर चन्द्रकान्त निराश हो गए क्योंकि इन सबके बिना वे कैसे जीवित रहेंगे ? इस कारण उस समय वे दीक्षा प्रार्थी नहीं हुए।

इसके बाद उन्होंने यहाँ की नौकरी छोड़कर एक मुसलमान मालगुजार के यहाँ कुछ दिन काम किए। यहाँ भी कुछ दिन कार्य करने के बाद उनके व्यवहार के कारण उन्हें निकाल दिया गया। इस समय अपने जन्म स्थान के पास नारायणपुर नामक गाँव में गोविन्द्र चक्रवर्ती के संस्पर्श में आए। गोविन्द्र बाबू के दो पुत्रों में ललित चक्रवर्ती गोस्वामीजी के शिष्य थे। ललित बाबू बहुत सात्विक गुरुनिष्ठ एवं भजनशील थे। इस समय ललित बाबू का गोस्वामीजी के अनन्यतम् शिष्य मनोरंजन गुहठाकुरता के साथ परिचय हुआ। ललित बाबू के पिता ने अपने पुत्र के इस प्रकार धार्मिक आचरण से असंतुष्ट होकर उसे घर से निकाल दिया। उस समय ललित बाबू की बुआ ने पत्नी सहित ललित बाबू को अपने घर में रखा।

ललित बाबू के सात्विक आचरण एवं पूजा पाठ को देखकर चन्द्रकान्त बहुत प्रभावित हुए। ललित बाबू ने चन्द्रकान्त से कहा गोस्वामीजी सद्गुरु है। सद्गुरु सब समय अवतीर्ण नहीं होते। एकमात्र सद्गुरु ही शिष्य का सब पाप स्वयं ग्रहण कर शिष्य को मुक्त कर सकते हैं। ललित बाबू की बात सुनकर चन्द्रकान्त विस्मित होकर कहे कि क्या ऐसा संभव है ? पापी व्यक्ति के सब भार सद्गुरु किस प्रकार ग्रहण करते हैं ? इस प्रकार की क्षमता क्या किसी मनुष्य में संभव है ? गोस्वामी प्रभु का चित्रपट दिखलाते हुए ललित बाबू ने कहा कि हाँ यह संभव है। गोस्वामी प्रभु पाप–ताप ग्रहण करने में सक्षम हैं। इसे सुनकर चन्द्रकान्त के मन में उथल–पुथल मच गई। उनका आत्मविचार प्रबल हो गया। वे दिनरात सोचते रहते थे कि मेरा जीवन कितना धृणित है। मैं किस प्रकार चल रहा हूँ और ललित किस तरह जीवन व्यतीत कर रहा है। क्या मेरे उद्धार की आशा नहीं है ? उनके प्राणों में व्याकुलता बढ़ गई। अपने कृत कुकर्म एवं पाप के परिणाम को सोचकर वे अपने को धिक्कार देने लगे एवं उनके आँखों से अश्रु बहने लगे।

ललित बाबू चन्द्रकान्त की ऐसी व्याकुलता देखकर मुग्ध हो गए। वे भी चन्द्रकान्त को जकड़कर रोने लगे। ललित बाबू ने चन्द्रकान्त से कहा जब तक सद्गुरु का आश्रय प्राप्त न हो, तुम एक काम करो सर्वदा 'गोसाँईजी तुम मुझ पर दया करो' इस प्रकार प्रार्थना एवं मंत्र की तरह इसी को जप करते रहो। तुम्हारी

अभी जिस प्रकार मन की अवस्था है इसी प्रकार यदि आगे भी रहे तब निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि गोस्वामीजी तुम पर अवश्य ही कृपा करेंगे। चन्द्रकान्त उस समय बेकार थे। थोड़ा बहुत कुछ काम करते हुए किसी प्रकार घर का खर्चा चलाते थे। इस समय उन्हें वरिशाल में कार्य मिला। यहाँ आने के बाद वरिशाल के प्रसिद्ध वकील गोराचान्द दास के साथ परिचय हुआ। गोराचान्द दास भी गोस्वामीजी के शिष्य थे। उनके घर में गोस्वामीजी के चित्रपट को देखकर चन्द्रकान्त ने मन की व्याकुलता लेकर एकदिन चित्र लेने के लिए रात के ग्यारह बजे गोराचान्द्र बाबू के घर पहुँचे। गोराचान्द के पास नित्य पूजित चित्रपट के सिवाय अन्य चित्र नहीं था। चन्द्रकान्त का आग्रह देखकर उन्होंने अपने भतीजे के पास से एक चित्र लेकर उन्हें दिया। चित्र प्राप्त कर चन्द्रकान्त बहुत आनन्दित होकर प्रस्थान किए। इतनी रात में जिस तरह की व्याकुलता से चन्द्रकान्त नें चित्र माँगा था गोराचान्द बाबू के मन में उसके कारण को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने तुरन्त बाहर आकर चन्द्रकान्त का पीछा किया एवं उसे रोका। उन्होंने इस तरह चित्र माँगने का कारण चन्द्रकान्त से पूछा। चन्द्रकान्त रोते हुए अपने जीवन की सभी घटनाओं को बतलाने लगे। गोराचान्द बाबू इसे सुनकर भावमग्न हो गए। उन्होंने जकड़ करके चन्द्रकान्त को पकड़ लिया एवं अश्रु विसर्जन करने लगे। उनके शरीर में सात्विक विकार के लक्षण प्रकाशित होने लगे। गोराचान्द बाबू ने चन्द्रकान्त से कहा भाई आज शुभ दिन है, गोसाँईजी तुम पर अवश्य कृपा करेंगे। इस तरह रात्रि के ढाई बजे के बाद गोराचान्द बाबू अपने घर लौटे। चन्द्रकान्त वहाँ से किसी निर्जन स्थान की तलाश में सिद्ध सनातन दास द्वारा प्रतिष्ठित कालीबाड़ी में चले गए एवं मंदिर के बाहर बैठकर 'गोसाँई, तुम मुझ पर दया करो' इस तरह कहते हुए व्याकुल भाव से विलाप करने लगे। थोड़ी दूर में दो व्यक्ति सोये हुए थे। चन्द्रकान्त की आवाज से उन लोगों की नींद टूट गई। उन्होंने सोचा कि कोई पागल यहाँ आकर चिल्ला रहा है। उन्होंने चन्द्रकान्त को चिल्लाने से मना किया। पर चन्द्रकान्त भावावेश में उसी तरह विलखने लगे। उन लोगों ने और तंग नहीं किया और सो गए। इस तरह प्रायः आधा घन्टा बीत गया। अचानक चन्दकान्त को ऐसा लगा कि कोई उसके कंधे पर पीछे से हाथ रखा है एवं 'हरि ओम' 'गुरु ओम' ध्वनि कर रहा है। चन्द्रकान्त ने पीछे मुड़कर अंधेरे में एक स्थूल काय व्यक्ति को 'हरिओम' 'गुरु ओम' आवाज करते देखकर उनके चरणों को पकड़ लिया। अदृश्य पुरूष ने अपने चरणों को छुड़ा लेने की चेष्टा की। इस तरह दो–तीन मिनट बीत गए। इस समय चन्द्रकान्त ने कालीजी की मूर्ति की तरफ अपना सिर धुमाया उसी समय महात्माजी अदृश्य हो गए। उनके अदृष्य होते ही चन्द्रकान्त पागल जैसे होकर हाय–हाय कहते हुए इधर–उधर दौड़ने लगे पर वे नहीं मिले।

इस घटना के बाद चन्द्रकान्त अपने घर आ गए एवं गोस्वामीजी के चित्र की नियमित पूजा करने लगे। उनका मन गोस्वामीजी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। उस समय गोस्वामीजी कलकता में हेरिसन रोड में एक किराए के मकान में थे। पूजा की छुट्टी में वानारीपाड़ा के शिष्यगण कोलकाता जाने की तैयारी करने लगे। चन्द्रकान्त ने भी उन लोगों के साथ जाने का विचार किया पर चरित्रहीन, डकैत एवं दुष्ट व्यक्ति को कोई भी साथ में ले जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। पर पंडित दुर्गामोहन जी ने चन्द्रकान्त के चरित्र में परिवर्तन एवं उनकी व्याकुलता देखकर उन्हें साथ में ले जाने के लिए राजी हो गए।

चन्द्रकान्त सभी लोगों के साथ हेरिसन रोड में गोस्वामीजी के पास पहुँचे। उन्हें देखते ही वहाँ पर कई लोग चिल्लाने लगे कि इस डकैत को यहाँ कौन ले आया ? इसे यहाँ से निकाल दो। गोसाँईजी के पुत्र योगजीवन भी असन्तुष्ट होकर बोले कि गोसाँईजी अभी किसी को दीक्षा नहीं देंगे। इसे अभी अपनी जगह वापस भेज दो। इस प्रकार कठिन समस्या के समाधान के लिए ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी अग्रसर हुए। उन्होंने इन सब लोगों को समझाया कि यह व्यक्ति अपने प्राणों की व्याकुलता से वरिशाल से यहाँ तक आया है, उसे गोस्वामीजी के पास जाने में एवं बात करने देने में बाधा देना क्या उचित होगा ? अच्छा मैं जाकर गोस्वामीजी से पूछकर आता हूँ। ऐसा कहकर कुलदानन्दजी ने गोस्वामीजी के पास जाकर कहा कि एक व्यक्ति आपका दर्शन करने आया है। वह अपनी कुछ बातें आप से कहना चाहता है। क्या करूँ ? गोस्वामीजी ने कुलदानन्द जी के बातों को सुनकर कहा कि ठीक है उसे ले आओ, वह अपनी बातें कह सकता है।

दूसरे दिन शाम के समय चन्द्रकान्त को गोस्वामीजी के निकट लाया गया। गोस्वामीजी को देखते ही साष्टांग प्रणाम कर चन्द्रकान्त ने अपने कृत सभी कुकर्मो का वर्णन करते हुए किस तरह किसी का घर लूट लिया, किस प्रकार मिथ्या मामला करके लोगों को तंग किया, यहाँ तक कि परस्त्री हरण, दूसरों के घर में आग लगाना आदि सभी अकपट रूप से बोलते गए। इस घटना के समय गोस्वामीजी के अनन्यतम जीवनी लेखक अमृतलाल सेन महाशय उपस्थित थे। उन्होंने कहा था कि चन्द्रकान्त जिस समय अपनी जीवन की घटनाओं को कह रहे थे उस समय उनके शरीर में कंपन और आँखों से लगातार अश्रु बह रहे थे। गोस्वामीजी ने स्थिर भाव से सब कुछ सुना। अन्त में चन्द्रकान्त ने गोस्वामीजी से जो बातचीत की थी वह निम्न प्रकार थी–

चन्द्रकान्त– मेरे जैसे पापी के उद्धार का क्या कोई उपाय है ? गोस्वामीजी– क्या तुमने नहीं सुना है कि जगाई–मधााई का उद्धार हो गया था, रत्नाकर दस्यु

का उद्धार हो गया। देखों पर्वत के आकार का भी यदि रूई रहे तो भी थोड़ी सी अग्नि के संयोग से सब भस्म हो जाता है।

चन्द्रकान्त– तब मेरे लिए कुछ उपाय करिए।

गोस्वामीजी– अभी नहीं होगा। पहले तुम तीर्थ–दर्शन कर आओ।

चन्द्रकान्त– तीर्थ किसे कहते है, यह मैं नहीं जानता हूँ और मेरे पास तीर्थ में जाने के लिए रूपये भी नहीं है।

गोस्वामीजी– नहीं, तुम्हें तीर्थ दर्शन करना ही होगा। नहीं तो उचित नहीं होगा। मुँह में अन्न देने से ही पेट नहीं भरता है, उसे निगलना पड़ता है। ज्यादा नहीं, तारकेश्वर, बैद्यनाथ, मुँगेर, काशी एवं प्रयाग इन स्थानों का दर्शन करके आ जाओ। प्रत्येक स्थान में तीन रात्रि रहना। साधुओं का दर्शन करना एवं साधुओं की सेवा करना। अर्थ देने से ही साधुं सेवा नहीं होती, शरीर द्वारा भी सेवा की जा सकती है। काशी, प्रयाग बाद में जाने से होगा। अन्य तीर्थो का पहले दर्शन करके आ जाओ।

गोस्वामीजी से बातचीत हो जाने के बाद चन्द्रकान्त बहुत निश्चिन्त हुए पर अपनी आर्थिक अवस्था की चिन्ता करते हुए एक स्थान में बैठकर वे रोने लगे। उस समय गोस्वामीजी शौच, स्नान आदि के लिए गए थे। ब्रह्मचारी कुलदानन्द ने उन्हें सांत्वंना देते हुए अन्यत्र ले गए एवं गुरुभाइयों के पास से कुछ अर्थ संग्रह कर चन्द्रकान्त को तीर्थ–दर्शन के लिए निकल पड़ने के लिए उत्साहित किए। ब्रह्मचारीजी ने चन्द्रकान्त को रास्ते का पूरा विवरण दे दिए एवं पहले मुँगेर जाने को बोले। चन्द्रकान्त उसी समय गोस्वामीजी के आसन को प्रणाम करते हुए तीर्थ यात्रा में निकल पड़े।

चन्द्रनाथ पहले मुँगेर फिर बैद्यनाथधाम, तारकेश्वर आदि दर्शन करके गोस्वामीजी के निकट कोलकाता वापस आए। गोस्वामीजी ने चन्द्रकान्त से कहा तुम्हारा अभी भी दीक्षा लेने का समय नहीं हुआ है, समय होने पर तुम्हें समाचार मिलेगा। चन्द्रकान्त गोस्वामीजी के निर्देशानुसार घर वापस चले गए एवं नियमित रूप से गोस्वामीजी के चित्र की सेवा पूजा करने लगे।

पुरी में गोस्वामीजी के जाने के पश्चात् चन्द्रकान्त ने उन्हें पत्र लिखा। गोस्वामीजी ने उन्हें पुरी में आने का निर्देश दिया। पर चन्द्रकान्त के पास पुरी जाने के लिए रूपया नहीं था। वे जहाँ काम करते थे उस मुसलमान मालगुजार की पत्नी से चन्द्रकान्त ने कुछ रूपए लिए एवं पुरी में गोसाँईजी के पास पहुँचे। उसी दिन रात्रि एक बजे उनकी दीक्षा हो गई। दीक्षा के पहले गोसाँईजी जब 'हरि ओम' 'गुरू ओम' की ध्वनि करने लगे तब चन्द्रकान्त चौंक उठे। इसी प्रकार की ध्वनि उन्होंने

वरिशाल के निर्जन काली मंदिर में सुनी थी। वे समझ गए कि उस समय कृपा करके गोस्वामीजी ने ही उन्हें दर्शन देकर मधुर हरि ध्वनि सुनाया था। दीक्षा के समय अन्य नियमों के साथ चन्द्रकान्त को प्रतिदिन अपने पितृ पुरुषों को तर्पण करने का निर्देश दिया। इसके साथ–साथ अपनी माँ की प्रतिदिन फूल, चन्दन के द्वारा पूजा करना एवं प्रतिदिन उनका चरणामृत लेने का निर्देश दिया।

पुरी से अपने कार्यस्थल में वापस आकर चन्द्रकान्त उत्साहपूर्वक साधन–भजन करने लगे। उन्होंने पूजा के कमरे में गोसाँईजी के चित्र को रखने के लिए सीमेंट से एक वेदी बनाया एवं उसके पास तुलसी मंच बनाया। वेदी बनाने के दूसरे दिन सुबह चन्द्रकान्त ने देखा कि उस पर दो पैरों का गहरा निशान पड़ा है। उन्होंने सोचा कि शत्रुतावश किसी दुष्ट व्यक्ति ने यह कार्य किया है। उन्होंने इस दाग को मिटाने के लिए चेष्टा की पर सफल नहीं हुए। उनके भतीजे ने उन्हें कहा कि इस विषय में गोस्वामीजी से पूछ लेने से अच्छा रहेगा। चन्दकान्त को यह सुझाव अच्छा लगा। उन्होंने वैसा ही किया एवं उसी समय योगजीवन ने पत्र में लिखा कि गोसाँईजी ने कहा है कि उस पद चिन्ह की नित्य पूजा करे और उसके सामने आसन में बैठकर नाम जप करे।

गोसाँईजी का उत्तर पाकर चन्द्रकान्त समझ गए कि यह चरण चिन्ह सद्गुरु गोसाँईजी ने कृपा पूर्वक उसे दी है। गुरुदेव की पापी के ऊपर कृपा देखकर पदचिन्ह पर सिर रखकर वे फूट–फूटकर रोने लगे। अपने पूर्वकृत पाप कर्मों को सोचकर उनके भीतर आत्मग्लानि होती थी तथा शरीर एवं मन में तीव्र पश्चाताप की ज्वाला होती थी। इससे मुक्त होने के लिए ग्राम के वृद्ध, बालक, युवा जिसे भी देखते सबके पैरों में गिरकर वे रोते एवं पदधूलि ग्रहण करते थे। उनमें इस प्रकार के परिवर्तन को देखकर कुछ लोग सोचते थे कि यह कोई नई चाल तो नहीं चल रहा है ? पर अधिकांश लोग समझ गए कि महात्मा की कृपादृष्टि से इसके स्वभाव में परिवर्तन हो गया है। जिन सब लोगों के साथ उन्होंने खराब व्यवहार किया था, उनके चरणों में गिरकर वे क्षमा प्रार्थना करते। कुछ दिन वरिशाल में रहने के बाद उन्होंने अपने गाँव में ही रहने का विचार किया।

चन्दकान्त ने उस पदचिन्ह को वरिशाल में वकील गोराचान्द बाबू के घर में कुछ दिन तक रखे। उसके बाद अपने गाँव के घर में उस पदचिन्ह को स्थापित किए। कुछ समय बाद चन्द्रकान्त गोस्वामीजी के समाधि मंदिर पुरी में चले आए। पदचिन्ह की सेवा पूजा का भार अपनी भतीजी को दे दिए थे। योगजीवन जी इस पदचिन्ह को ढाका गेण्डारिया आश्रम में स्थापित करने के लिए कहा और कुछ गुरुभाई उसे समाधि मंदिर में रखने के लिए कहे। पर चन्द्रकान्त उसे अपने गाँव के घर में ही रख दिए। उनके पुरी में चले आने के कुछ दिनों के बाद अचानक

उस घर में आग लग गई एवं पदचिन्ह के ऊपर जलती हुई बांस, लकड़ी आदि गिरने से वह चिन्ह अस्पष्ट हो गया। इस समाचार को सुनकर चन्द्रकान्त बहुत दुःखी हुए। उन्होंने सोचा कि अपनी जिद के कारण इस प्रकार बहुमूल्य वस्तु को उन्होंने नष्ट किया। चन्द्रकान्त ने अपना शेष जीवन पुरी समाधि मंदिर में बिताए एवं यहीं शरीर त्याग दिए। चन्द्रकान्त के इस संक्षिप्त जीवन से यह प्रमाणित होता है कि सदगुरु की कृपा होने पर दुराचारी व्यक्ति का भी परिवर्तन संभव है। गोस्वामीजी ने करूणावश चन्द्रकान्त को चरणचिन्ह दिया था। इस प्रकार की कृपा उन्होंने स्थूल शरीर में रहते समय अन्य किसी शिष्य पर की थी, इसका प्रमाण नहीं मिलता। गीताजी में भगवान ने कहा है–

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्तितो हि सः।।

–अध्याय 9–30 श्लोक

भावार्थ– अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी यदि एकाग्र भाव से मेरी उपासना करे तब वह साधु कहलाता है क्योंकि परमेश्वर के भजन करने पर अवश्य ही उसका उद्धार हो जाएगा इस तरह निश्चयात्मिका बुद्धि उसकी है।

****

श्री नित्यगोपाल गोस्वामी

गोस्वामीजी जब जीवित थे, उसी समय दीक्षा देने का आदेश एकमात्र श्री नित्यगोपाल गोस्वामी ने प्राप्त किया था। पर कुछ दिनों के पश्चात् उनका आचरण सदाचार विरुद्ध होने से दीक्षा देने का अधिकार गोसाँईजी ने वापस ले लिया।

नित्यगोपाल के पिता का नाम कृष्णकमल गोस्वामी था। उन्होंने कई प्रसिद्ध गीति काव्य बंगला भाषा में लिखा था। श्री रामकृष्ण परमहंसजी के पास नित्य गोपाल अनेक बार गए थे। श्री रामकृष्ण देव उन्हें अत्यन्त स्नेह करते थे एवं उनका आधार बहुत शुद्ध है ऐसा कहे थे। पर श्री रामकृष्ण उन्हें दीक्षा या मंत्र आदि नहीं दिए। श्री रामकृष्ण देव के अप्रकट होने के पश्चात् उन्होंने श्री गोस्वामीजी से दीक्षा प्राप्त की। उनकी दीक्षा प्राप्ति के घटना बहुत आश्चर्यजनक है।

1299 बंगला सन् (सन् 1893 ई०), माघ महिने में गोस्वामीजी के निर्देशानुसार ढाका में अंतिम धूलट उत्सव हुआ। उस समय एकदिन नित्यगोपाल सुबह के समय गेण्डारिया आश्रम में आकर एक आम पेड़ के नीचे में ध्यानस्थ हो गए। उन्होंने अपने मन में गोस्वामीजी से प्रार्थना की– हे गोसाँई, तुम यदि श्री रामकृष्णदेव के साथ अभेद हो तो प्रत्यक्ष रूप से कृपा पूर्वक कुछ प्रमाण देते हुए परिचय दो।

गोस्वामीजी सुबह चाय लेने के पश्चात् साधारणतः अपने आसन में बैठे रहते थे एवं बाहर नहीं आते थे। उस दिन चाय लेने के बाद वे धीरे–धीरे टहलते हुए आम पेड़ के नीचे नित्यगोपाल के निकट आए एवं अपना चरण नित्यगोपाल के सिर पर थोड़ी देर रखकर अपने आसन पर जाकर बैठ गए। इस प्रकार गोस्वामीजी की कृपा का परिचय प्राप्तकर नित्यगोपाल के मन का संशय दूर हो गया एवं उन्होंने विशेष आकर्षण अनुभव कर गोस्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की। आश्रम में ही उनकी पत्नी एवं माताजी की भी दीक्षा हुई थी। दीक्षा के पश्चात् नित्यगोपाल ने पूछा– हमलोग जिस पद्धति से वंश परम्परा (कुलगुरु प्रथा) से दीक्षा देते आ रहे है उस प्रकार दे सकते है या नहीं ? गोस्वामीजी ने उत्तर दिया– हाँ, श्री चैतन्य महाप्रभु के पश्चात् आप लोग जिस पद्धति से दीक्षा देते आ रहे हैं, उस प्रकार दे सकते हैं। उस समय गोस्वामीजी के किसी शिष्य ने पूछा– हमलोग भी क्या दीक्षा दे सकते हैं ? गोस्वामीजी ने कहा– **"जिन्होंने यह साधना प्राप्त की है वे सभी दीक्षा दे सकते हैं। पर गुरु को आह्वान पूर्वक उनका आदेश मिलने पर दे**

सकते हैं। जो बिना आदेश के दीक्षा देंगे, उन्हें अत्यन्त कष्ट पाना पड़ेगा। (संदर्भ ग्रन्थ– बंगला भाषा में प्रकाशित 'श्रीश्री विजय कथामृत' लेखक नवकुमार विश्वास)

दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् नित्यगोपाल साधना में द्रुत उन्नति करने लगे। वे प्रायः गोस्वामीजी के निकट आते थे एवं प्राप्त दर्शन एवं संशय आदि की निवृत्ति किया करते थे। एकबार उन्होंने गोस्वामीजी से पूछा– प्राचीन ऋषियों एवं रूप सनातन आदि गोस्वामी लोगों में श्रेष्ठ कौन है ? गोस्वामीजी ने कहा– ऋषियों ने अपनी साधना द्वारा प्राप्त अनुभूतियों को मानव कल्याण के लिए शास्त्रों में कहा है। उन लोगों के लिपिबद्ध शास्त्रों को लेकर गोस्वामियों ने आलोचना की है। इन शास्त्रों को प्रमाण देते हुए इन लोगों ने (रूप, सनातन आदि ने) ग्रन्थ रचना की।

नित्यगोपाल की आध्यात्मिक उन्नति को देखकर गोस्वामीजी ने उन्हें यह दीक्षा देने का आदेश दिया। पर कुछ दिनों के पश्चात् उनका आचरण सदाचार विरूद्ध होने से दीक्षा देने की शक्ति को उन्होंने पुनः वापस ले लिया। इस संबंध में श्री दरवेशजी महाराज ने कहा था– गोसाँईजी के जीवित रहते समय ही नित्य गोपाल ने काफी लोगों को दीक्षा दिया था। पर कुछ दिनों के बाद उनका व्यवहार सदाचार विरूद्ध एवं गर्वित देखकर यह शक्ति गोंसाँईजी ने वापस ले लिया। इसका मूल कारण मैं ही था। (संदर्भग्रन्थ– 'दरवेश दर्शन' बंगला ग्रन्थ)

शास्त्रों में कथित आचरण को सदाचार कहा जाता है। ऋषि–मुनियों ने अपने अनुभूत सत्य को शास्त्रों में वर्णित किया है। इसका पालन आवश्यक है। भगवान सर्वशक्तिमान हैं, सर्वदा हैं, वे इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं परन्तु उन्होंने ही नियम बनाए हैं। इसलिए उसी अनुसार चलना आवश्यक है।

गोस्वामीजी कहा करते थे, पुरुष और किसी स्त्री को कभी भी एक कमरे में एकान्त में नहीं रहना चाहिए। बारह वर्ष से अधिक उम्र का पुत्र भी माँ के निकट शयन न करे। जिस कमरे में स्त्री अकेली है, उस कमरे में पुरुष को नहीं जाना चाहिए। स्त्रियाँ भी एकान्त में अन्य पुरुष के कमरे में न जायें।

गोस्वामीजी ने भागवत का यह श्लोक कहा था –

माता स्वस्त्रा दुहिंता वान विविक्तासनो वसेत् ।
बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।।

भावार्थ– माता, बहन अथवा कन्या के साथ भी निर्जन में रहना ठीक नहीं है। कारण बलवान इन्द्रिया ज्ञानी व्यक्ति को भी आकर्षित करती है। काशी के एक दण्डी स्वामीजी ने श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को पढकर मन में विचार किया कि

व्यासदेव ने ठीक नहीं लिखा। ज्ञानियों को कभी विकार नहीं आ सकते। दण्डी स्वामी जी ने भागवत के अपिकर्षति पाठ को काटकर 'नहि कर्षति' लिख दिया।

इनको शिक्षा देने के लिए प्रभु ने माया का विस्तार किया। एकबार दण्डी स्वामी जी अपनी कुटिया में अकेले थे। संध्या के समय बहुत वर्षा हुई एवं बिजली चमकने लगी। उसी समय उन्होंने देखा कि एक युवती वर्षा में भींगकर अति करूण स्वर में आर्तनाद करते हुए उनकी कुटिया के पास आई और शरण माँगी। उन्होंने उसे अपने कमरे में ही रहने के लिए कहा। पर युवती ने कहा कि मैं एक साथ कुटिया में नहीं रहूँगी। तब दण्डी स्वामी जी ने उसे कमरे में रहने के लिए कहकर स्वयं बाहर बरामदे में चले गए। रात्रि के समय वर्षा समाप्त हुई। तब दण्डी ने उसे कमरा खोलने को कहा परन्तु युवती ने कमरा नहीं खोला क्योंकि उसके असत् भाव को वह समझ गई थी। अन्त में दण्डी स्वामी कुटिया की छत, जो फूस की बनी थी, उसे हटाकर कमरे में अन्दर जाने का प्रयास करने लगे परन्तु वे छत के बीच में ही अटक गए, न नीचे जा सके और न बाहर निकल सके। बाद में सबेरा होने पर युवती ने बाहर निकलकर अन्य लोगों को बुलाया। सब लोग आश्चर्यचकित हो गए। जब दण्डी स्वामी को नीचे उतारा गया तब उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और भागवत के श्लोक को जहाँ उन्होंने काट दिया था, उसे पुनः ठीक करते हुए तीन बार 'अपि कर्षति' लिखा और व्यास देव से मन ही मन क्षमा प्रार्थना की। (संदर्भ ग्रन्थ 'महापांतकी के जीवन में सदगुरू की लीला' लेखक– हरिदास वसु)

शास्त्र में कथित ऋषि वाक्यों की मर्यादा न देने पर इस तरह कष्ट पाना पड़ता है। नित्यगोपाल साधना में उन्नत रहने पर भी ऋषि वाक्यों का पालन न करने से उन्हें कष्ट उठाना पड़ा। गोस्वामीजी सर्वदा कहते थे– ऋषि–मुनियों ने अपनी दूर दृष्टि से जिस सत्य की उपलब्धि की थी मानव कल्याण के लिए उन्होंने उसे शास्त्रों में लिखा है अतः उसे मानकर चलने से व्यर्थ की झंझटों का सामना नहीं करना पड़ता है।

****

श्री कृपानाथ मजुमदार

कृपानाथ जी के जीवन–कथा के संबंध में दो एक घटनाओं के सिवाय कुछ प्राप्त नहीं होता है। पर ये घटनाएँ अमूल्य हैं। गोस्वामीजी के गुरुदेव का नाम श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंसजी है। गया आकाशगंगा पहाड़ पर उन्होंने गोस्वामीजी को दीक्षा प्रदान की थी। उनका शरीर ब्राह्मण है एवं वे पंजाब के हैं। सिपाही विद्रोह के समय उन्होंने संन्यास लिया था। पहले वे नानक पंथी थे। बाद में वैदिक पन्थ में प्रविष्ट हुए एवं उसी साधना में सिद्धि प्राप्त किए। इस वैदिक पन्थ को ऋषि प्रदर्शित पथ भी कहा जाता है। वे मानस–सरोवर में रहते हैं।

तिब्बत प्रदेश में जो मानसरोवर है वहाँ सब कोई जा सकते हैं, पर यह शास्त्रोक्त मानस–सरोवर नहीं है। वह स्थान अत्यन्त दुर्गम है, साधारण लोग वहाँ कभी नहीं जा सकते। जो साधक योग साधना में सिद्ध है एवं शीत, ऊष्ण आदि द्वन्दों के अतीत हैं केवल वे ही मानस–सरोवर जा सकते हैं। सर्वसाधारण जिस मान सरोवर का दर्शन करते हैं इसे योगी लोग मान तलाब कहते हैं। वाल्मिकी रामायण में मान सरोवर का वर्णन मिलता है। (संदर्भ– श्री जगद्बन्धु मैत्र लिखित–'प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी ग्रन्थ' से)

कृपानाथ ने 1886 ई० 12 फरवरी को दरभंगा में गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा प्राप्त की थी। कृपानाथ दरभंगा राज स्कूल के प्रधान शिक्षक थे। एकबार ग्रीष्म कालीन अवकाश के समय वे गोस्वामीजी का दर्शन करने गेण्डारिया आश्रम गए। उस समय गोस्वामीजी ने उनसे अचानक पूछा– विगत पौष महिने में किसी महात्मा जी से आपकी क्या भेंट हुई थी ?

कृपानाथ आश्चर्यचकित हो गए, उन्होंने कहा– हाँ हुई थी।

गोस्वामीजी ने पूछा– वे आप लोगों को कैसे लगे ?

कृपानाथ– बहुत ही अच्छे लगे। इस प्रकार की सौम्य एवं मधुर मूर्ति साधारणतः दिखलाई नहीं पड़ती।

गोस्वामीजी ने उक्त महात्मा जी के सम्बन्ध में सब बातें जानने की इच्छा प्रकाश की। कृपानाथ ने कहा–एकदिन शाम के समय हमारे स्कूल के कुछ विद्यार्थियों ने मुझसे कहा कि महाशय! राजाराम बाबा के मठ (बागमती नदी के किनारे एवं शुभंकरपुर ग्राम में स्थित नानक साही मठ) में एक महात्मा जी आए हुए

हैं। हमलोग उनका दर्शन करने गए थे। उन्होंने आपके संबंध में जानकारी ली। विद्यार्थियों के निकट इसे सुनकर हम लोगों को भी साधु दर्शन की बहुत इच्छा हुई, तीन गुरुभाई एवं मैं उसी समय राजाराम बाबा के मठ में पहुँचे। वहाँ जाकर सुना कि महात्मा जी बाहर कहीं गए हैं। हमलोग उनके लिए कुछ देर अपेक्षा किए लेकिन जब वे नहीं आए तब वापस जाने के लिए मठ से बाहर निकले। बाहर आते ही महात्मा जी का दर्शन मिला। उन्हें प्रणाम करने पर उन्होंने हमलोगों को साथ लेकर मठ में प्रवेश किया। सब लोगों के बैठने के बाद उन्होंने कहा– आप लोग सब महापुरूष के आश्रित शिष्य हैं आप लोगों का दर्शन कर मैं पवित्र हो गया। महात्माजी की बात सुनकर हम सभी आश्चर्यचकित हो गए। हमलोग सोचने लगे कि हमें दीक्षा प्राप्त हुई है यह उन्हें कैसे पता चला ? वे हम लोगों के साथ सत्प्रसंग करने लगे। उस समय एक न्याय शास्त्र के पंडित जी उपस्थित हुए। उन्होंने महात्मा जी को प्रणाम तक नहीं किया एवं गर्वित भाव से कुछ जटिल प्रश्न करने लगे। महात्मा जी आनन्दित भाव से एवं मधुर वाक्यों में बहुत ही सुन्दर रूप से सभी प्रश्नों का समाधान कर दिए। महात्मा जी के असाधारण पाण्डित्य, गंभीर शास्त्र–ज्ञान एवं मधुर व्यवहार देखकर उनके प्रति हम सभी लोगों की प्रगाढ़ भक्ति उत्पन्न हुई। पण्डित जी के गर्वित भावना को देखकर हमें बहुत ही खराब लगा। महात्मा जी के सद्व्यवहार, पाण्डित्य एवं शास्त्रों की उचित व्याख्या सुनकर पण्डित जी का अंहकार टूट गया। जाते समय उन्होंने महात्मा जी को साष्टांग प्रणाम किया।

मैंने महात्मा जी से पूछा आप यहाँ कितने दिन रहेंगे ?

महात्मा जी ने कहा– सात–आठ दिन रहने की संभावना है। मैंने उन्हें यहाँ के ब्राह्मसमाज में आकर प्रवचन देने के लिए प्रार्थना किया एवं अपने घर में भोजन करने का निमंत्रण दिया। वे आनन्दपूर्वक सहमत हो गए। मैंने पूछा कि आप क्या लेंगे ? उन्होंने कहा कि आप जो आहार करेंगे मैं भी वही लूँगा। पर वह विशुद्ध हविष्यान्न होना चाहिए। उनके इस तरह निमंत्रण ग्रहण करने पर मैं बहुत ही आनन्दित हुआ।

यथा समय वे ब्राह्मसमाज में आए और बहुत अच्छा प्रवचन दिए। उनके प्रवचन का सारांश था– **तृष्णार्त व्यक्ति कूँआ, तालाब या सरोवर में जाकर तृष्णा दूर करता है। यदि कोई सोचे कि मैं दूसरे के जलाशय से पानी नहीं पीऊँगा, मैं स्वयं नया सरोवर बनाकर पानी पीऊँगा। उस निर्बोध व्यक्ति की चेष्टा जिस प्रकार कभी भी सफल नहीं होती है, धर्मराज्य में भी जो लोग सोचते हैं कि हमलोग ऋषि प्रदर्शित किसी भी पंथ का अवलम्बन नहीं करेंगे एवं स्वयं साधना पद्धति स्थिर कर वैसा ही चलेंगे, उस व्यक्ति की वासना**

उसी प्रकार कमी मी पूर्ण नहीं होती। धर्म—साधना करने के लिए अवश्य ही किसी महापुरूष द्वारा प्रवर्तित पन्थ का आश्रय लेकर चलना होगा। राजा राममोहन राय एक महापुरूष थे। वे वेदान्त आदि शास्त्रों से ब्रह्मोपासना की जो पद्धति प्रचलित किए हैं उसका अनुसरण करने पर धर्मलाम संमव है। उन्होंने ब्रह्मोपासना की शास्त्रोक्त जिस पद्धति का प्रचार किया है ब्रह्मोपासकों को उसके अवलम्बन से धर्म साधना करना आवश्यक है। (संदर्भ ग्रन्थ— 'प्रभुपाद विजयकृष्ण' लेखक—जगद्बन्धु मैत्र)

इस तरह उपदेश प्रदान करने के पश्चात् उन्होंने कृपानाथ के घर में भोजन किया। भोजन करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि उन्हें अभी पुरी जाना होगा। कृपानाथ ने पूछा कि सात—आठ दिन बाद उनका जाने का कार्यक्रम था, फिर अभी क्यों जा रहे है ? उन्होंने कहा— मेरी इच्छा इसी प्रकार थी, पर गुरुदेव के आदेशानुसार मुझे चलना पड़ता है। मैं स्वाधीन नहीं हूँ। पुरी जाने का आदेश मिला है और एक क्षण भी मैं नहीं रह सकता। वे उसी समय पुरी के लिए प्रस्थान किए।

कृपानाथ की बात सुनकर गोस्वामीजी ने कहा, **"वे मेरे गुरुदेव परमहंसजी थे। उन्होंने कृपापूर्वक आप लोगों को दर्शन दिया।"**

इस तरह भाग्यवान कृपानाथ गोस्वामीजी के गुरुजी का दर्शन पाकर धन्य हो गए। परमहंसजी का शरीर अत्यन्त प्राचीन है। वे कभी—कभी इस तरह अपने को गुप्त रखकर साधकों को आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। प्रयोजन न होने पर वे अपना परिचय नहीं देते।

इस घटना से प्रमाणित होता है कि महात्मा लोग गुप्त रूप से आते हैं एवं साधकों पर कृपा कर उन्हें आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। हमारे शास्त्रों में इसी कारण अतिथि एवं साधु लोगों की सेवा के लिए विशेष रूप से कहा गया है।

****

श्री लालबिहारी बसु

बंगला 1296 सन् (सन् 1890 ई०) के फाल्गुन महीने के किसी एकदिन ब्रह्मचारी कुलदानन्द अपने आसन में बैठकर पातंजलि योग–दर्शन का पाठ कर रहे थे। उस समय गुरुभाई लालमोहन आकर बोले, "क्या पढ़ रहे हो ?" कुलदानन्द बोले, "पातंजलि योग–दर्शन।" लालजी बोले, "तुम्हारी इस प्रकार दुर्मति क्यों हुई ? यह सब पढ़कर क्या होगा ? कुछ भी नहीं समझोगे। बेकार समय गवाँ रहे हो। 'नाम' करो। गुरुकृपा से सब शास्त्र नाम–जप द्वारा हृदय में प्रकाशित होगा।" कुलदानन्द प्रतिवाद करते हुए बोले, "कुछ भी पाठ न करने से केवल गुरुकृपा से या गुरु के वरदान से या देवी सरस्वती की कृपा से ज्ञान हो सकता है– यह बात इस युग में बच्चे भी नहीं बोलते हैं।" लालजी ने कहा– "यह मेरा कुसंस्कार नहीं है। वास्तव में गुरुकृपा से सब कुछ जाना जा सकता है। यह मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है।" कुलदानन्द पुनः प्रतिवाद करने लगे। लालजी उनके हाथ से पातंजलि–दर्शन लेकर ग्रंथ के प्रथम, मध्य एवं शेष पन्ने को केवल कुछ क्षणों के लिए देखा फिर वह पुस्तक मस्तक पर कुछ देर तक पकड़े रहे, पुनः वह पुस्तक कुलदानन्द के हाथ में देकर बोले– "ठीक है, तुम तो जानते हो कि मैं तो केवल शिशु–शिक्षा तृतीय भाग तक पढ़ा था। मेरे वर्णज्ञान से इस ग्रंथ का उच्चारण करना भी संभव नहीं है। तुम मुझे इस ग्रंथ से कहीं से भी प्रश्न पूछो, वहाँ जिस प्रकार लिखा है, मैं गुरुकृपा से उसी प्रकार कहूँगा।" यह सुनकर कुलदानन्द कौतुहलपूर्वक ग्रंथ के विभिन्न अध्यायों से 7–8 प्रश्न पूछे। टीका–टिप्पणी सहित ग्रंथ में जिस प्रकार लिखा है लालजी ने ठीक उसी प्रकार उत्तर दिया। कुलदानन्द ने विस्मित होकर लालजी से पूछा कि इस प्रकार अद्भुत शक्तिलाभ उनको कैसे हुआ ? लालजी बोले– "गुरुकृपा, 'गुरुकृपा हि केवलम्।' एकदिन गुरुभाई सुरेशचन्द्र सिंह महाशय के साथ उनके घर में मनोविज्ञान के सम्बन्ध में आलोचना कर रहा था। सुरेश बाबू अचानक उठकर घर के अंदर गए। मैं उनके बाहरी कमरे में बैठा रहा। टेबल पर एक मनोविज्ञान की किताब थी। सोच रहा था कि पढ़ाई नहीं किया, यदि पढ़ता तो इस पुस्तक में क्या है, सब जान सकता था। यह सोचकर पुस्तक को बार–बार प्रणाम करके सिर पर रखकर गुरुजी को स्मरण करने लगा। उस समय मेरे मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की अनुभूति हुई एवं ग्रन्थ का सम्पूर्ण ज्ञान, विचार, मीमांसा आदि मेरे मस्तिष्क में प्रवेश किया। ऐसा

क्यों हुआ, मैं नहीं जानता। उस दिन से किसी भी विषय में जानने की इच्छा होने पर वह विषय अपने–आप मेरे मस्तिष्क में प्रवेश करता है। यह गुरुकृपा के बिना क्या हो सकता है ? सुना है कि इस प्रकार की आकांक्षा से धर्म–जीवन की हानि होती है। कोई आकांक्षा न करके निश्चेष्ट और निर्भरता रखकर गुरुजी की ओर देखते रहना ही अच्छा है। महाशक्तिपूर्ण नाम मिला है। नाम करो–नाम करो–गुरुजी की कृपा से अखिल शास्त्र क्षण में तुम्हारे भीतर प्रकाशित हो सकता है। यह मेरी कल्पना नहीं है। सच कह रहा हूँ।" (संदर्भ ग्रन्थ–श्रीश्री सदगुरु संग) नाम एवं गुरुकृपा के प्रभाव को देखकर कुलदानन्द विस्मित हो गए।

बंगला 1279 सन् (1872 ई०) शांतिपुर के गोस्वामी पाड़ा में लालबिहारी बसु का जन्म हुआ। उनके पिता श्री रामगोपाल बसु थे। बाल्यकाल से ही लालजी ने विभिन्न सूफी सम्प्रदाय के सन्तों की कृपा प्राप्त की थी। आउल, बाउल, दरवेश एवं सहजिआ संप्रदायों में आना–जाना था। शांतिपुर में ही उनकी सामान्य बंगला एवं अंग्रेजी शिक्षा हुई थी। सामान्य शिक्षा प्रप्ति के बाद भी लालजी ज्ञानवान् थे। उनकी धर्मालोचना को सुनकर सबलोग विस्मित होते थे। कम उम्र में ही पूर्वजन्मार्जित अनेक योगैश्वर्य उनके भीतर प्रकाशित था।

तरूण अवस्था में वैराग्य उदय होने के कारण संसार के प्रति उनकी तीव्र वितृष्णा हुई। वे पागल की तरह इष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए इधर–उधर भटकते रहते थे। उस समय वे भाव विभोर होकर मंदिर, मस्जिद एवं विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते थे। मन की इस प्रकार चंचल अवस्था में उन्हें श्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी का दर्शन हुआ एवं उनके पास दीक्षा प्राप्त करके उनको एक नये पथ का संधान मिला। दीक्षा प्रदान करने के बाद गोस्वामी प्रभुजी ने शिष्य को योगैश्वर्य व्यक्त करने के लिए बार–बार मना किया था।

दीक्षा प्राप्ति के पूर्व जब वे सद्गुरु कृपा प्राप्ति के लिए अस्थिर हो उठे थे, उस समय उनके कुलदेवता श्री गोकुलचांद सपने में दर्शन देकर बोले थे कि शीघ्र ही उनको सद्गुरु प्राप्ति होगी। गोस्वामी प्रभुजी के पास अचानक दीक्षा हो जाने पर उन्होंने कुल देवता के सपने की सत्यता अनुभव की। उसके बाद लालजी अधिकांश समय गुरुजी के निकट रहते थे। दीक्षा प्राप्ति के बाद उनके जीवन में एक अलौकिक घटना हुई। एकदिन एक धर्मालोचना सभा में श्रीकृष्ण कथा सुनते–सुनते लालजी संज्ञाहीन हो गए। बहुत देर तक चेतना न आने से सब लोग सोचे कि लालजी ने प्राण त्याग दिया है। लालजी के पिता शोकाकुल होकर इधर–उधर दौड़ने लगे। सब लोग श्मशान यात्रा की व्यवस्था करने लगे। गोस्वामी प्रभुजी ने इस संवाद को सुनते ही लालजी के पिता से कहा कि उनका पुत्र महा भाग्यवान् है। वह समाधि अवस्था में है। गोस्वामीजी के निर्देश से लालजी

को घेरकर सब लोग संकीर्तन करने लगे। रात बीत गई लालजी शव की तरह पड़े रहे। गोस्वामी प्रभुजी के अलावा सबलोग लालजी के बारे में बहुत चिंतित हो गए। गोस्वामीजी ने दृढ़तापूर्वक कहा, "लाल के सम्बन्ध में चिन्ता करने या डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह ब्रह्मानन्द में मग्न है। अवश्य ही ऐसी घटना अन्य कहीं होने से लोग सोचते कि मृत्यु हुई है। आयोजनपूर्वक चिता की आग में जला देते। लेकिन मैं निश्चयपूर्वक बोल रहा हूँ कि लाल अत्यंत सौभाग्यवान् है। इसलिए इतनी देर तक ब्रह्मानन्द में मग्न है।" प्रातःकाल में लालजी की चेतना लौटी। वे उठकर बैठे। उस समय भी उनका चित नाम के रस में विभोर था। धीरे–धीरे संपूर्ण बाह्यज्ञान लौटा। माता–पिता का हृदय गोस्वामी प्रभुजी के प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता से पूर्ण हो गया।

लालजी की अलौकिक क्षमता देखकर धीरे–धीरे अनेक लोग उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। गुरुभाई लोग भी उनके पूर्वजन्म की स्मृति एवं योगैश्वर्य देखकर सोचने लगे कि गोस्वामी प्रभुजी साधन–सिद्ध हैं और लालजी नित्य–सिद्ध हैं। उस समय लालजी भी गुरु निर्देश भूलकर गुरुभाइयों को साधना में उत्साहित करने के लिए अपने योगैश्वर्य प्रकाश करने लगे।

लालजी भूत, भविष्य और वर्तमान जानते थे। इसका प्रमाण मिलता है वरिशाल निवासी श्रीवाणीकंठ महाशय को प्रदत्त लालजी के स्वहस्त लिखित बुद्धदेव के उपदेश से। बुद्धदेव ने पुत्र राहुल को जो उपदेश दिये थे वह उपदेशावली लालजी के सामने प्रकाशित होने पर उन्होंने उसे लिपि बद्ध की थी। उक्त आलेख गोस्वामी प्रभुजी को सुनाने पर प्रभुजी बोलें, घटना सत्य है अर्थात् बुद्धदेव ने राहुल को यही उपदेश दिया था। प्रायः दो हजार से अधिक साल पूर्व की घटना को लालजी किस प्रकार जान सके, इस प्रश्न के उत्तर में गोसाँईजी ने कहा था कि यह क्षमता लालजी में है। उक्त आलेख श्रीनवकुमार बागची के 'श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत' बंगला ग्रन्थ के द्वितीय खंड में विस्तृत रूप से मिलता है।

ब्रह्मचारी कुलदानन्द उस समय भागलपुर में साधना कर रहे थे। उस समय नाम–साधना में उनकी शुष्क अवस्था चल रही थी। यह अवस्था कैसे दूर होगी? यह सोचकर वे सर्वदा चिंतित रहते थे। उस दिन बंगला 1296 सन् (सन् 1890 ई०) सुबह आसन में बैठकर नाम कर रहे थे। किन्तु हृदय की ज्वाला से अस्थिर हो उठे। उस समय अचानक स्वामी हरिमोहन के साथ लालजी वहाँ आए। उन लोगों को देखकर कुलदानन्द ने विशेष आनन्दित होकर पूछा– "लाल अचानक तुम यहाँ पर कैसे आए ?" लालजी बोले, – "श्री वृन्दावन में गोस्वामीजी के साथ था। एकदिन अचानक तुम्हारा स्मरण हुआ एवं तुम्हें देखने के लिए प्राण अस्थिर होने लगा। मैं गोसाँईजी को बिना बताये पैदल चला आया।" बालक लालजी सुदूर

वृन्दावन से पैदल कैसे आये, यह सोचकर कुलदानन्द विस्मित हो गए। लालजी एवं स्वामी हरिमोहन के वहाँ आने से साधन–भजन एवं सतप्रसंग से कुलदानन्द अपार आनन्द के साथ दिन बिताने लगे। संकीर्तन के समय लालजी का भाव एवं आसन में समाधि अवस्था दर्शन से सबलोग मुग्ध हो जाते थे।

उस समय भागलपुर में वृद्ध पार्वती बाबू विशेष ज्ञानी एवं धर्मज्ञ व्यक्ति माने जाते थे। एकदिन कुलदानन्द लालजी को लेकर पार्वती बाबू के पास गए। लालजी के परिचय से पार्वती बाबू विशेष आनन्दित हुए एवं लालजी के सामने उन्होंने सांख्य, वेदान्तादि शास्त्र आलोचना के बाद 'अहं ब्रह्मास्मि' यह विचार प्रमाणित किया। लालजी कुछ नहीं बोले। बाद में लालजी को धर्म–प्रसंग में कुछ कहने के लिए पार्वती बाबू ने अनुरोध किया। लालजी ने लौकिक धर्म के बारे में दो–चार बातें बताने के बाद ऐसे गभीर तत्व में प्रवेश किया कि इस प्रसंग में कुलदानन्द ने लिखा है, "उनकी एक बात भी मैं समझ नहीं सका। देवव्रती, ब्रह्मज्ञानी एवं भगवत् उपासक महापुरुषगण मात्र गुरुकृपा से ही परम् तत्व लाभ करते हैं – यह प्रमाणित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, पाली, तिब्बती, अरबी एवं अन्यान्य भाषाओं के विभिन्न धर्मशास्त्र से वचन उद्धृत करके सनातन धर्म शास्त्र के साथ प्राचीन बौद्ध मत का मेल किया। मात्र सद्गुरु की इच्छा एवं कृपा से अनुगत शिष्य के हृदय में ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान एवं भगवत् भक्ति संचारित व प्रतिष्ठित होती है। लालजी ने यही स्पष्टरूप से प्रमाणित किया। पार्वती बाबू स्तंभित होकर लालजी के चरणों में साष्टांग प्रणामकर कहा कि आप मेरा उद्धार करने आये हैं। साधना की जिस भूमि से आप कह रहे हैं वह मेरी सीमाबद्ध संकीर्ण दृष्टि की पहुँच के बाहर है। आप मुझपर कृपा करें।" कुलादानन्द ब्रह्मचारी कृत 'श्रीश्री सद्गुरु' संग में इस घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि इसके बाद से पार्वती बाबू प्रायः लालजी का संग करने आते थे। स्वामी हरिमोहन ने संन्यास व्रत ग्रहण किया था। लेकिन संगदोष से आचार–भ्रष्ट हुए थे। उनको सही रास्ते में लाने के लिए लालजी ने कुछ योगैश्वर्य प्रकाश किया। योगैश्वर्य के प्रभाव से हरिमोहन एकदिन रात 10 बजे अकेले गंगा की तट से पैदल वृन्दावन में गोस्वामी प्रभुजी के पास चले गए।

ब्रह्मचारी कुलदानन्द के बहनोई मथुरबाबू लालजी का योगैश्वर्य देखकर आकृष्ट हुए एवं उनको एकदिन एकान्त में बुलाकर कुछ पारिवारिक प्रश्न पूछे। लालजी कुलदानन्द की मृत भगिनी को परलोक से बुलाकर अनेक गुप्त बातें सुनाईं। पत्नी के बारे में वह सब बातें मथुरबाबू के बिना और कोई नहीं जानता था। लेकिन लालजी के पास सब बातें सुनकर मथुरबाबू आश्चर्यचकित हो गए। मथुरबाबू की पत्नी की मृत्यु का कारण भी उन्होंने बताये। लालजी ने घर की

अशान्ति तथा भूत–प्रेत का अत्याचार दूर करने के लिए उन्हें प्रतिदिन हरिनाम संकीर्तन, तुलसी सेवा एवं साधु सज्जनों को साधन–भजन में सहायता आदि सत–कार्य करने का निर्देश दिया।

कुलदानन्द को लालजी ने निर्देश दिया था :– 1. डायरी लिखना बंद नहीं करो। भविष्य में इसकी आवश्यकता है। 2. साधना करो, खूब नाम करो, तुम संन्यासी बनोगे। 3. गुरुकृपा के बिना कुछ भी नहीं होगा, गुरु के प्रति एकनिष्ठ रहो एवं उनका संग करो। इसके अलावा कुलदानन्द के साथ लालजी की अनेक बातें हुई। कुछ दिन बाद लालजी अचानक किसी को कुछ कहे बिना भागलपुर से अन्यत्र चले गए। लालजी के चले जाने के कुछ दिन बाद कुलदानन्द की वृन्दावन में गोस्वामी प्रभुजी के साथ बात करते समय लालजी के योगैश्वर्य के बारे में चर्चा शुरू हुई। माता योगमाया देवी भी वहाँ उपस्थित थीं। उन्होंने कहा कि लाल के भीतर अनेक आश्चर्यजनक शक्तियाँ देखी गई है। अनेक लोगों को उनके अतीत जीवन की गुप्त बातें उसने बतलाया है जो उनलोगों के अलावा संसार में कोई नहीं जानता था। लाल की साधारण बातों में भी इस प्रकार आकर्षण शक्ति है जिससे सब लोग मुग्ध हो जाते हैं। जब योगजीवन गेण्डारिया आश्रम के कमरे में पढ़ता था, उस समय लाल गेण्डारिया के जंगल से ऐसा शब्द करता था कि उस शब्द के आकर्षण से योगजीवन पढ़ाई छोड़कर लाल के पास चला जाता था, इसलिए योगजीवन परीक्षा पास नहीं कर सका। कुलदानन्द ने भागलपुर में जो प्रत्यक्ष अनुभव किया था, लालजी के उन योगैश्वर्य के बारे में बोले। गोस्वामी प्रभुजी सब सुनकर बोले, "लाल को पुनः–पुनः यह सब करने निषेध किया था। बात नहीं मानता है इसके बाद धक्का खाकर सीखेगा।" कुलदानन्द ने उनके प्रति लालजी ने जो निर्देश दिया था उस प्रसंग में कहा – "लाल ने मुझसे पहले भी एकबार कहा था, इस बार भागलपुर में भी कहा कि गोसाँईजी वृद्ध हो गए हैं, इतने लोगों का बोझ वे कैसे वहन करेंगे ? इसलिए हम तीन जनों को भार दिये हैं, कुछ श्यामाकांत पंडित के ऊपर, कुछ बिहारी नामक एक पश्चिम देश के गुरुभाई के ऊपर एवं कुछ मेरे ऊपर।" मैंने पूछा कि मैं किसके भाग में हूँ ? लाल उत्तर में बोले कि तुम मेरे भाग में हो। सब सुनकर ठाकुर बोले, "अच्छा ऐसी बात है, बहुत हो गया। महापुरुषों की कृपा की एक बूंद प्राप्त कर बहुत उछलकूद कर रहा है। उस कृपा बिन्दु को उठा लेने पर अपना स्वरूप प्रकट हो जाएगा।" – ऐसा कहकर आसन में बैठकर गोसाँईजी थोड़ा दाहिने एवं बाँये तरफ हिले। मैं समझ गया आज प्रलय होगा। लाल के सब योगैश्वर्य समाप्त हुए। उसके बाद कुलदानन्द जब वृन्दावन, फैजाबाद एवं काशी होकर ढाका गेण्डारिया आश्रम में आये, उस समय लालजी के साथ यहाँ मुलाकात हुई। तब एकदिन कुलदानन्द को निर्जन जंगल

में ले जाकर लालजी उनसे पूछे, "भाई, गुरुजी के साथ मेरे बारे में कोई बात हुई थी क्या ? जो कुछ जानते हो मुझे बताओ।" कुलदानन्द ने लालजी को सब बताया। लालजी कुछ देर तक स्तंभित रहने के बाद बोले, "यथार्थ बोले हो, सर्वदा जो ब्रह्म–ज्योति मेरे निकट प्रकाशित होती थी, उस समय से बिल्कुल अन्तर्हित हो गई है। शक्ति की बात, ऐश्वर्य की बात तो छोड़ो, अब तो आत्मरक्षा करना भी मेरे लिये असंभव है। दिनरात अनुताप एवं यंत्रणा से तड़प रहा हूँ। गोसाँईजी ने मुझे अनेक बार सावधान किया था, लेकिन मैं उनकी बात नहीं माना। उनके निकट से आते समय भी उन्होंने मुझे कहा था – "लाल संपूर्ण ठंडी भूमि की घास पर चन्द्र किरण पहुँचने पर एक बूंद ओस जमा होती है। लेकिन अभिमान सूर्य के प्रकाश मात्र से वह क्षण में सूख जाती है। बहुत सावधान रहना। मैं उस समय गोसाँईजी की बात नहीं समझ सका था।" लालजी इस प्रकार बहुत देर तक कुलदानन्द के पास खेद व्यक्त करने लगे। लालजी के इस परिवर्तन को देखकर कुलदानन्द विस्मित हुए। भाद्र महीने में कुलदानन्द के साथ लालजी की उक्त बातें हुई थी। फाल्गुन महीने में जब कुलदानन्द अपने घर में थे, उनको संवाद मिला कि गेण्डारिया में सबके अज्ञात में विष पान करके लालजी ने आत्महत्या कर ली है। उस समय वे मात्र 17–18 साल के थे। लालजी की आत्महत्या के बारे में पूछने पर गोसाँईजी बोले, "देहपात होने के पहले ही उनको (आत्मा को) देह से हटा लिया गया है। इसलिए उनकी अपघात–मृत्यु नहीं हुई।"

लालजी के इस संक्षिप्त सरल जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि सद्‌गुरु की कृपा से साधक अनेक योगैश्वर्य लाभ कर सकता है, किन्तु इसका प्रयोग करने पर या अंहकार के उदय होने पर सब नष्ट हो जाता है। लालजी ने कुलदानन्द को जो कुछ कहे थे भविष्य में सब सत्य हुआ था। उनकी 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ सभी साधकों के लिये अमूल्य धरोहर है।

इस प्रसंग में गोस्वामी प्रभुजी का उपदेश विशेषरूप में स्मरणीय है। उन्होंने कहा था, **"नाम से ही सब होता है, श्वास–प्रश्वास में नाम अभ्यस्त होने से सब होता है। शरीर से मैं पृथक हूँ। इसका स्पष्ट बोध नहीं होने तक वह सब ज्ञान नहीं होता है। शरीर से स्वयं को पृथक समझने के लिए श्वास–प्रश्वास में नाम जप करना जरूरी है। श्वास–प्रश्वास में नाम करना सहज नहीं है। तीन चार लाख नाम करो या तीन चार करोड़ नाम करो, श्वास–प्रश्वास में नाम करने का उपकार और किसी से नहीं मिलेगा। इसकी उपकारिता अन्य प्रकार है। स्वाभाविक श्वास–प्रश्वास में एकबार नाम का अभ्यास हो जाने पर आत्मदर्शन होगा। शरीर से आत्मा पृथक जानकर स्थिर होने से आत्मा की विभिन्न प्रकार से क्षमता बढ़ती है। तब जीवात्मा**

अनेक अलौकिक कार्य आसानी से कर सकता है।"

"अनेक लोगों में यह देखा गया है कि ऐश्वर्य लाभ होते ही उसे प्रयोग करने के कारण वे नष्ट हो गए हैं। ऐश्वर्य लाभ से विभिन्न प्रकार की संपदा वृद्धि रोगारोग्य एवं इच्छानुसार अनेक अलौकिक कार्य करने की क्षमता मिलती है यह सत्य है, किन्तु धर्म लाभ के पथ में वह विघ्न एवं प्रलोभन का विषय है। ऐश्वर्य लाभ होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चलने से धीरे–धीरे विभिन्न आश्चर्यजनक अवस्था प्राप्त होती है। शक्ति प्रयोग करने से अल्प समय में उसका सर्वनाश होता है, धर्म नष्ट होता है एवं शक्ति भी संपूर्ण नष्ट हो जाती है। लेकिन वह ऐश्वर्य मनुष्य को इस प्रकार प्रलुब्ध करता है कि कुछ प्राप्त होते ही शक्ति प्रयोग की इच्छा बलवती होती है। इसलिए इस विषय में विशेष सावधानी रखना आवश्यक है।"

****

देश–नायक विपिनचन्द्र पाल

श्रीहट्ट जिले के पैल गाँव में प्रतिष्ठित कायस्थ वंश में बंगला सन् 1265 की 22वीं कार्तिक (1858 ई०, 7 नवम्बर) को विपिनचन्द पाल ने जन्म लिया था। श्रीहट्ट जिला उस समय ढाका विभाग के अधीन बंगलादेश में आ गया था। विपिनचन्द्र पाल रचित आत्मजीवनी ग्रंथ "सत्तर वर्ष" से जाना गया है कि उनके पूर्वज हिरणपाल वर्धमान जिले के अंतर्गत मंगलकोट से पैल गाँव में आकर रहने लगे थे।

रामचन्द्र पाल एवं नारायणी देवी थे विपिनचन्द्र के पिता और माता। पिता ढाका सब जज अदालत में पेशकार थे। बाद में मुंसिफ होकर यशोर जिले के किसी महकमा में उनका तबादला हो गया। वहाँ से वरिशाल की कोटेरहाट महकमा में तबादला हुआ। यहाँ पाँच वर्ष की उम्र में विपिनचन्द्र का विद्यारंभ हुआ था। किन्तु आनुष्ठानिक विद्यारंभ के पहले से ही उनके शैशव में शिक्षा आरम्भ हो गई थी। विपिनचन्द्र आत्मजीवनी में लिखते हैं– "मेरी बोली शुरू होते ही पिता अदालत से लौटकर मुझे गोद में बैठाकर संस्कृत श्लोक सिखाते थे। याद है, बाल्मीकि रामायण का आदि श्लोक –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत् क्रोंचमिथुनादेकमवधिः काम मोहितम् ।।

"सबसे पहले यह श्लोक कंठस्थ किया था। उसके बाद – राम राम हरे राम– श्री रामकमलापति, कृतिवासकृत रामायण का यह श्लोक सीखा था। चाणक्य के अनेक श्लोक भी उन्होंने मुझे सिखाए थे।" आनुष्ठानिक विद्यारंभ के बाद उनको 'शिशु बोध' नामक बंगला पुस्तक पढ़ाई गई। ग्रंथ में दाताकर्ण का उपाख्यान एवं विख्यात चाणक्य श्लोक 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते' ने शिशु के मन पर विशेष प्रभाव डाला। उनके अंग्रेजी आत्मजीवनी ग्रंथ में लिखा है– "वह सब पुरानी स्मृतियों पर जब दृष्टिपात करता हूँ तब ऐसा लगता है कि उस पुस्तक में कथित चाणक्य श्लोक से ही बाल्यकाल में मैंने गणतंत्र का पहला पाठ ग्रहण किया था।"

विपिनचन्द्र का शिक्षा–जीवन श्रीहट्ट में ही शुरू हुआ था। पहले वे एक

मौलवी के पास फारसी पढ़ते थे। विदेशी भाषा उनको पसंद नहीं थी। उसके बाद स्कूल–जीवन शुरू हुआ। 1868 ई० में स्कूल–जीवन के द्वितीय वर्ष में यद्यपि उनको डबल प्रमोशन मिला पर इसके बाद उच्च श्रेणी की पढ़ाई उन्हें बहुत कठिन लगी। स्कूल के हेडमास्टर श्रीदुर्गाकुमार बसु की सहायता से उनको अंग्रेजी भाषा में यथेष्ट अधिकार अर्जन का अवसर मिला था। उस महान् शिक्षक के निर्देश से उन्होंने पाठ्यतालिका के अलावा अनेक अंग्रेजी पाठ पढ़े थे, इससे साधारण शिक्षार्थी की अपेक्षा उनको अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत अच्छा हो गया।

श्रीहट्ट के सामाजिक एवं पारिवारिक वातावरण से बालक के मन में धार्मिक भावना का विकास हुआ। उनके गाँव के घर में होली एवं दुर्गोत्सव होता था। उस समय सब वहाँ जाते थे। महा उत्साह से विपिनचन्द्र इन सब अनुष्ठान में योगदान करते थे। बाल्यकाल के स्मृतिचारण में मिलता है– "दुर्गाषष्ठी की रात तक प्रतिमा में मिट्टी की मूर्ति बोध रहने से भी, सप्तमी को जब प्रातःकाल पुरोहित मंत्र पाठपूर्वक प्रतिमा में प्राण–प्रतिष्ठा करते थे, तब मूर्ति मिट्टी की पुतली जैसी नहीं लगती थी। पूजा के दिनों में यह मिट्टी की पुतली है यह सोच भी नहीं सकता था। देवता मनुष्य की तरह हैं किन्तु मनुष्य नहीं है, इतनी ही धारणा थी।" उनकी माता प्रति शनिवार शनि पूजा करती थीं, इसके अलावा मंगलचण्डी व्रत, सावित्रीव्रत, सूर्यव्रत आदि साल भर पालन करती थीं। बालक विपिनचन्द्र माँ के पास बैठकर व्रत कथा सुनता एवं प्रसाद पाकर खुश होता। इस बारे में उन्होंने कहा है– "यह सब पारिवारिक पूजा आदि से जो कुछ धर्म शिक्षा लाभ किया था यह शिक्षा किसी सम्प्रदाय की शिक्षा नहीं थी। यह भाव की शिक्षा एवं अनुभूति की शिक्षा थी।"

श्रीहट्ट विशेषतः वैष्णव प्रधान जगह थी। विपिनचन्द्र के पिता कृष्णमंत्र में दीक्षित थे। अतः शिशुकाल से विपिनचन्द्र के मन में भी वैष्णव बीज विद्यमान् था– जो यथासमय में अंकुरित होकर विशाल वृक्ष में परिणत हुआ।

विपिनचन्द्र जब दशम श्रेणी के छात्र थे, उनके मन में स्वदेश प्रेम जागा। 1871 ई० के शेषभाग में एक घटना से यह स्वदेश प्रेम उनके मन में जाग्रत हुआ। उस समय विदेश से सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण सुरेन्द्रनाथ के प्रति अंग्रेज सरकार के अन्यायपूर्ण आचरण को देखकर विपिनचन्द्र का मन क्षुब्ध हुआ। उस समय सुरेन्द्रनाथ श्रीहट्ट के सहकारी मजिस्ट्रेट बनकर आये थे। सुरेन्द्रनाथ की अवमानना देखकर विपिनचन्द्र ने आत्मजीवनी में लिखा है :–

"उस समय यह धारणा हुई थी कि अंग्रेजों की अदालत में यदि कोई बंगाली अंग्रेजों के गलत कार्यों का विरोध करता है, तो बंगाली को सुविचार मिलना असंभव है। इस प्रकार मेरे प्रथम यौवन में ही स्वदेश–प्रेम भावना का विचार प्रारंभ हुआ।"

विपिनचन्द्र की प्रवेशिका परीक्षा का फल आशानुरूप नहीं था। 1874 ई० में तृतीय श्रेणी में वे उत्तीर्ण हुए थे। देशात्मबोध के जागरण से, प्रचलित शिक्षा पद्धति के प्रति उनकी अश्रद्धा हो गई। इस कारण पढाई में उनका मन नहीं लगता था। 1874 ई० में बंगलादेश से पृथक होकर स्वतंत्र असम प्रदेश गठित होने पर असम सरकार ने असम की स्कूल से उत्तीर्ण छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की थी। इसलिए विपिनचन्द्र तृतीय श्रेणी में एंट्रेंस परीक्षा पास करने पर उनको मासिक दस रूपए हिसाब से वेतन मिलता था। उसके बाद उच्चतर शिक्षा लाभ के लिए वे सुन्दरीमोहन दास के साथ श्रीहट्ट छात्रावास में आये। यहाँ से कोलकाता आये एवं प्रेसिडेन्सी कॉलेज में शिक्षा प्रारम्भ की। 1875 ई० से 1878 ई० तक कोलकाता में विपिनचन्द्र का छात्र–जीवन व्यतीत हुआ। इस समय में ऐसी कई घटनाएँ हुई थीं जिससे उनकी जीवनधारा परिवर्तित हो गई। 1875 ई० के शुरू में वे प्रेसिडेन्सी कॉलेज में भर्ती हुए। उसी वर्ष ग्रीष्मावकाश में वे श्रीहट्ट अपने घर गए। उनके पहुँचने के दूसरे दिन सुबह उनकी ढाई साल की छोटी बहन ने उनकी गोद में देहत्याग किया। इससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ। महीने भर बाद हीं उनकी माता ने भी देहत्याग किया। इससे उनके जीवन में परिवर्तन देखा गया। इस प्रसंग में उन्होंने कहा है, "मेरी माता के परलोक प्राप्ति ने वास्तव में घर एवं परिवार के साथ मेरे हृदय एवं जीवन के बंधन को काट दिया।" हिन्दू धर्म का बंधन छिन्न करने के लिए 1877 ई० में उन्होंने ब्राह्मसमाज में योगदान किया। इस प्रकार घटनाओं के घात–प्रतिघात से विपिनचन्द्र के जीवन की दिशा परिवर्तित होने लगी। इस प्रसंग में स्मरणीय है कि 1875 ई० से 1878 ई० के बीच बंगलादेश में नवीन जातीयता–बोध का विस्तार हुआ था। इस नवीन जातीयता–बोध का मूल कारण विपिनचन्द्र के अनुसार उस समय के विदेशी चिन्ता एवं भावधारा के संस्पर्श से उत्पन्न नवजाग्रत बंगला साहित्य था। उन्होंने स्पष्ट कहा है– Bankimchandra was in a special sense the prophet of this renaissance. अर्थात् – विशेष अर्थ में इस नवजागरण के ऋषि थे बंकिमचन्द्र। इस पुनरूत्थान के युग में सत्य अनुसंधान करने में इच्छुक एवं समाज के सम्बन्ध में जानकार छात्रों के लिए एकाग्रता के साथ पाठ्य पुस्तकों में मनोनिवेश करना असंभव था।" विपिनचन्द्र ने स्वयं स्वीकार किया कि विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तकों में उनका मन नहीं लगता था। बंगदर्शन, आर्यदर्शन, ज्ञानांकुर आदि मासिक पत्रिकाए एवं दीनबंधु के नीलदर्पण, उपेन्द्रनाथ के शरत–सरोजिनी आदि ग्रंथों से स्वदेश सेवा की प्रेरणा उनको मिली थी। किन्तु उनका कोलकाता आने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। 1876 ई० के दिसम्बर माह में उनका संकल्प एफ० ए० या एल० ए० परीक्षा देने का था, लेकिन नवम्बर के शेष भाग में उनको चेचक हो गया, इसलिए परीक्षा

नहीं दे सके। अगले वर्ष गणित पास नहीं करने के कारण उत्तीर्ण नहीं हो सके। 1878 ई० में वे दूसरी बार परीक्षा के लिए तैयार हुए। उस समय पाँच दिनों तक परीक्षा होती थी। प्रतिदिन दो विषय की परीक्षा होती थी। पंचम दिन में प्रथम परीक्षा के बाद उनको प्रबल बुखार हो गया एवं दूसरे विषय की परीक्षा देना संभव नहीं हुआ। चार दिनों की परीक्षा में वे पास हो गए थे लेकिन पाँचवें दिन की परीक्षा नहीं देने के कारण सब व्यर्थ हो गया। विश्वविद्यालय के साथ उनका संपर्क यहीं समाप्त हुआ।

विपिनचन्द्र निष्ठावान हिन्दू घर की संतान थे लेकिन युग के प्रभाव से हिन्दू धर्म में प्रचलित विधि–निषेध के प्रति उनमें विरुद्ध मनोभाव का संचार हुआ। वे छुआछूत नहीं मानते थे। मेस में हिन्दू धर्म रक्षा के लिए नया नियम चालू होने पर वे मेस के बाहर नियम भंग करने लगे। इस विषय में डा० सुन्दरीमोहन दास जीवन के अंतिम समय तक उनके साथी रहे।

केवल खाद्य विचार में ही उनका यह विरोध सीमाबद्ध नहीं था, माता की मृत्यु के बाद एक महीना अशौच पालन में भी उनके मन ने विद्रोह किया लेकिन वे पिता को कष्ट देना नहीं चाहते थे इसलिए विद्रोही मन को बहुत कष्ट से उन्होंने शांत रखा। बाद में उन्होंने इसका कारण विश्लेषणपूर्वक बताया है– "इस बारे में विरोध का विशेष कारण यही था कि यह सब मेरा स्वेच्छानुरूप शोक प्रकाश नहीं था, यह सब समाज के बाहरी लोगों द्वारा मेरे ऊपर बलपूर्वक आरोपित किया गया था। मुझे लगता था इससे मेरी व्यक्तिगत स्वाधीनता का बोध आहत हो रहा है।" माता के श्राद्ध के पूर्व वे पारिवारिक पुरोहित एवं दो कुटुम्बों के साथ कोलकाता चले आए। पिता चाहते थे कि पुत्र माता का श्राद्ध गंगा किनारे बैठकर करे। 17 साल के किशोर विपिनचन्द्र ने हिन्दू शास्त्रों के अनुसार यथारीति मातृ श्राद्ध किया लेकिन श्राद्ध के पूर्व कोलकाता में रहते समय मांसाहार ग्रहण करके उन्होंने इस अशौचविधि का उल्लंधन किया। जिस समय वे श्रीहट्ट से कोलकाता आये थे, ब्राह्मसमाज के प्रति उनका कोई आकर्षण नहीं था। इस बारे में 'सत्तर वर्ष' नामक ग्रंथ में उन्होंने लिखा है, "हिन्दू धर्म के प्रति अब तक कोई विराग नहीं है। हिन्दू धर्म के साथ कोई विरोध नहीं हुआ था। विरोध था हिन्दू आचार–विचारों के साथ एवं हिन्दुओं के जाति विचार के साथ।" विपिनचन्द्र के ब्राह्म–धर्म ग्रहण के पीछे एक इतिहास है। केशव सेन स्थापित ब्राह्म छात्रावास मिर्जापुर स्ट्रीट में था। विपिनचन्द्र के एक कुटुम्बी वहाँ रहते थे। वे ब्राह्म थे। विपिनचन्द्र के कोलकाता आने पर वे उनको भी ब्राह्म करने की चेष्टा करने लगे, किन्तु विपिनचन्द्र राजी नहीं हुए। इसका कारण उन्होंने लिखा है– "मेरी प्रकृति इस प्रकार थी कि किसी विषय में मुझे राजी कराना कठिन था। अतः वह कुटुम्बी मुझे ब्राह्म करने के लिए

जितनी चेष्टा करने लगा, मैं उतना ही ब्राह्मसमाज का विरोधी होने लगा।" ब्राह्मसमाज के प्रति उनके आकर्षण का प्रधान कारण था सुन्दरीमोहन के साथ घनिष्ठता। श्रीहट्ट में रहते समय ही सुन्दरीमोहन ब्राह्मसमाज के प्रति आकृष्ट हुए थे। कोलकाता आकर वे नियमित भारतवर्षीय ब्राह्ममंदिर में योगदान करते थे। उस समय अभिन्न हृदय विपिनचन्द्र भी उनके साथ वहाँ जाते थे। इस समय उनके मन में साहित्य सेवा की प्रबल इच्छा हुई। इस बारे में मित्र के साथ चर्चा से उनको पता चला कि आधुनिक बंगला भाषा के श्रेष्ठ वक्ता केशवचन्द्र के भाषणादि सुनने से बंगला भाषा पर उनका अधिकार होगा। मित्र के इस उपदेश ने विपिनचन्द्र के मन में विशेष प्रभाव डाला। उस समय से वे ब्राह्ममंदिर में जाकर केशवचन्द्र के भाषण मन लगाकर सुनते थे। इस बारे में उन्होंने कहा है कि इस प्रकार अज्ञात में ब्राह्मसमाज का प्रभाव मुझपर पड़ना शुरू हुआ।

उस समय की एक घटना से वे ब्रह्मोपासना के प्रति विशेष आकृष्ट हुए। सुन्दरीमोहन उस समय मेडिकल कॉलेज के छात्र थे। 1876 ई० के अप्रैल या मई माह में उनको श्रीहट्ट जाना पड़ा। श्रीहट्ट जाने के लिए ढाका एवं नारायणगंज में प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। सुन्दरीमोहन के रवाना होने के बाद विपिनचन्द्र को संवाद मिला कि ढाका में भयानक हैजा फैल रहा है। यह सुनकर विपिनचन्द्र अत्यंत विचलित हो गए एवं मित्र के कल्याण के लिए नियमित प्रार्थना करने लगे। इस बारे में विपिनचन्द्र ने कहा है, "यही मेरे जीवन की पहली ब्रह्मोपासना थी। शैशव में आर्त होकर जिस प्रकार काली–दुर्गा आदि देवताओं के निकट याचना करता था, उसी प्रकार आर्त होकर पहले ब्रह्मोपासना शुरू की, किन्तु ब्रह्म क्या है ? इस प्रश्न का उदय नहीं हुआ था। पहले यौवन में मित्र के आकर्षण से ब्राह्ममंदिर जाना शुरू किया था। उसी प्रकार मित्र के लिए मजबूरी में ब्रह्मोपासना शुरू की। लोग जिसे धर्म कहते हैं उसके आकर्षण से नहीं।"

उसके बाद शिवनाथ शास्त्री के साथ उनका परिचय हुआ एवं एक साल के भीतर उन्होंने परिजनों को छोड़कर ब्राह्मसमाज में प्रवेश किया। अनन्तर शिवनाथ शास्त्री के व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर 1877 ई० के मध्यभाग में विपनचन्द्र ने ब्राह्मधर्म की दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ शरतचन्द्र राय, आनन्दचन्द्र मित्र, काली शंकर सुकुल, सुन्दरीमोहन दास एवं ताराकिशोर चौधरी ने भी ब्राह्मधर्म ग्रहण किया था। यही चौधरी महाशय परवर्ती जीवन में ब्रज विदेही संतदास काठिया बाबा नाम से प्रसिद्ध हुए थे। विपिनचन्द्र ने आत्म–जीवनी में इस दीक्षा ग्रहण का सुन्दर वर्णन किया है – "निराकार ब्रह्मोपासक होने पर भी शास्त्री महाशय कवि थे। प्राचीन क्रिया–कर्म के प्रति उनका संपूर्ण विराग नहीं था। अतः हमारी इस दीक्षा में उन्होंने प्राचीन हिन्दू यज्ञ का कुछ अनुकरण किया था। एक

पात्र में आग जलाकर काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, मूर्ति–पूजा, जाति भेद, पराधीनता आदि अपनी जो कुछ प्रवृत्ति है एवं पुरानी सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्था सब पीपल की पत्ती पर लिखकर उस आग में घृताहुति दी थी।

इसके पश्चात् शास्त्री महाशय रचित एक प्रतिज्ञापत्र में प्रत्येक व्यक्ति ने हस्ताक्षर किये। प्रतिज्ञापत्र का विषय समूह इस प्रकार था–

1. हम मूर्ति–पूजा नहीं करेंगे एवं प्रचलित मूर्ति–पूजा के साथ किसी प्रकार से संयुक्त नहीं रहेंगे।

2. हम वचन एवं कार्य से जाति भेद नहीं मानेंगे एवं यह कुप्रथा देश से दूर करने के लिए प्राणप्रण से चेष्टा करेंगे।

3. हम परिवार एवं समाज में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार देना स्वीकार करेंगे एवं इसकी प्रतिष्ठा करने की चेष्टा करेंगे।

4. हम 21 वर्ष से कम उम्र में विवाह नहीं करेंगे। 16 साल की कम उम्र की लड़की को पत्नी रूप में ग्रहण नहीं करेंगे एवं जिस विवाह में पुरुष 21 साल से कम उम्र का होगा एवं बालिका 16 साल से कम उम्र की होगी, उस विवाह में किसी प्रकार सहायता नहीं करेंगे एवं उनके साथ सम्पर्क नही रखेंगे।

5. हम यथा साध्य महिलाओं एवं जन–साधारण में शिक्षा विस्तार के लिए चेष्टा करेंगे।

6. हम अपने एवं देश के लोगों के स्वास्थ्य, शक्ति एवं शौर्य वृद्धि के लिए व्यायाम का प्रचार करेंगे एवं स्वयं अश्वारोहण, बन्दूक चलाना आदि अभ्यास करेंगे एवं देश में इस विद्या के प्रचार की चेष्टा करेंगे।

7. हम एक मात्र स्वायत्त शासन को ही विधाता निर्दिष्ट शासन व्यवस्था के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन वर्तमान अवस्था एवं भविष्यत् कल्याण के लिए जो विदेशी शासन प्रतिष्ठित है, उसके नियम कानून मान्य करेंगे किन्तु दुःख, दरिद्रता, दुर्दशा से पीड़ित होकर भी इस सरकार का दासत्व स्वीकार नहीं करेंगे। इसके साथ–साथ हमलोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि हमारा कोई स्वतंत्र धन संचय नहीं रहेगा। जो कुछ उपार्जन करेंगे वह सबकी साधारण संपत्ति होगी। इस साधारण धन कोष से हमारे परिवार वर्गों के आवश्यक खर्च की व्यवस्था होगी।

इस दीक्षा ग्रहण से विपिनचन्द्र के जीवन में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। ब्राह्मधर्म ग्रहण करके और ब्राह्म मंदिर में उपासना करने पर भी वे हिन्दू समाज का संपूर्ण रूप में परित्याग नहीं कर सके थे क्योंकि वे पिता के निर्देश से माता

का वार्षिक श्राद्धादि करते थे। इस विषय में पुरोहित का कार्य श्रीहट्ट अंचल के एक ब्राह्मण करते थे। विपिनचन्द्र के ब्राह्मधर्म ग्रहण के बाद ब्राह्मण उनका हिन्दू प्रथानुसार मातृ–श्राद्ध कराने के लिए राजी नहीं हुए। सहपाठीगण से पुत्र के इस परिवर्तन के बारे में पिता को पता चल गया। पिता के कहने पर भी शीत एवं ग्रीष्म की छुट्टी में वे घर नहीं आए। पुत्र के इस प्रकार व्यवहार के कारण पिता ने खर्च भेजना बंद कर दिया। उन्होंने यह भी सोचा कि इस पुत्र के द्वारा उनके वंश की रक्षा नहीं होगी। इसलिए पिण्डलोप (वंश नष्ट) के डर से 64 साल की उम्र में उन्होंने पुनर्विवाह किया। उसके कुछ दिन बाद उन्होंने पुत्र को बाकी महीनों का खर्च भेजकर 'प्राणतुल्येषु' सम्बोधन से सुदीर्घ (विस्तृत) पत्र लिखा। यही था पिता का अंतिम पत्र। इस सम्बोधन के अर्थ की व्याख्या करके आत्मजीवनी में विपिनचन्द्र ने लिखा है– "आज समझ रहा हूँ, उनके अंतिम पत्र में प्राणतुल्येषु सम्बोधन के भीतर कितनी गहरी वेदना छिपी थी। एक मात्र पुत्र के साथ हमेशा के लिए एक प्रबल मतभेद उत्पन्न हुआ। प्राचीन युग में पुत्र के संन्यास ग्रहण करके गृह त्याग करने पर माता–पिता के मन में जो तीव्र विरह–वेदना होती थी, ब्राह्मसमाज में प्रवेश करके मैंने पिता के मन को वही वेदना दी। इस प्रकार के मानसिक कष्ट के कारण पिता ने अपने अंतिम पत्र में मुझे 'प्राणतुल्येषु' सम्बोधन दिया। जब भी सत्य एवं धर्म के नाम पर नवीन एवं प्राचीन में आदर्श को लेकर संघर्ष होता है वहाँ इस प्रकार दुखान्त होता है। इन सब घटनाओं के बाद उनके पिता आठ साल जीवित थे। मृत्यु के पूर्व पिता के साथ श्रीहट्ट के पैल गाँव के घर में अंतिम साक्षात्कार के समय पिता, पुत्र को उनके नाम का अर्थ समझाए थे एवं कहे थे – संस्कृत एवं बंगला भाषा में विपिन शब्द का अर्थ है जंगल। चन्द्र अर्थात् चांद, विपिनचन्द्र शब्द का अर्थ अरण्य या जंगल का चांद। मेरे पिता कहते थे कि उस समय उनका गाँव जंगल की तरह था– बहिर्जगत में अपरिचित अज्ञात एक जनपद मात्र था। उनकी गंभीर आशा थी कि उनका पुत्र एकदिन इस अरण्य को अपनी प्रभा से आलोकित करेगा और उनको भी नाम यश का भागीदार बनाएगा।"

पिता से मुलाकात करने की प्रबल इच्छा जिस प्रकार पुत्र को थी, उसी प्रकार पिता भी व्याकुल थे। विपिनचन्द्र कोलकाता से श्रीहट्ट गए। बहुत दिनों के बाद पिता के सामने खड़े होने पर व्याकुल पिता के भीतर कोई अस्थिरता या उद्विग्नता के लक्षण नहीं दिखे। पुत्र द्वारा भूमिष्ठ होकर प्रणाम करने पर पिता आशीर्वाद देकर काम के बहाने से अन्यत्र चले गए। पिता–पुत्र के इस साक्षात्कार के बारे मे विपिनचन्द्र लिखते हैं, "उस संध्या में दीर्घकाल के बाद विद्रोही पुत्र को देखकर उस वात्सल्यपूर्ण पिता के हृदय में क्या तूफान बह रहा था, सोचकर आज भी रोमांचित होना पड़ता है। एक तरफ मुझे सीने से लगाने की गंभीर आकांक्षा, दूसरी

तरफ कितने धैर्य, संकल्प एवं असाधारण आत्म–संवरण की शक्ति, उस आकांक्षा को दबाने के लिए विवश कर रही थी। इस प्रकार की दुविधापूर्ण परिस्थिति में, काफी देर बाद पिता ने आत्म–संवरण करके पुत्र को बुलाकर कहा, "तुम्हारे बारे में क्या करना है, अभी भी निर्णय नहीं ले सका। आज रात में घर में अन्न ग्रहण मत करो, नास्ता करके रहो, कष्ट होगा लेकिन क्या करूँ कोई उपाय नहीं है ?" इसके बाद की घटना अत्यंत मर्मांतक है। विपिनचन्द्र लिखते हैं– "उन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया। उस दिन से मैं त्याज्यपुत्र हुआ।"

1878 ई० में उनके छात्र–जीवन का अवसान हुआ। उसी वर्ष साधारण ब्राह्मसमाज प्रतिष्ठित हुआ। विपिनचन्द्र ने इस नये समाज में योगदान किया। ब्राह्मसमाज गठन के लिए तत्व कौमुदी नामक बंगला पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित हुई। इसके साथ 'ब्राह्म पब्लिक ओपिनियन' नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई। इसी उद्देश्य से सिटी स्कूल नामक एक स्कूल भी प्रतिष्ठित हुई। ईश्वर के विधान से विपिनचन्द्र उपरोक्त कार्यों में योगदान न कर सके। कटक के एक स्कूल में वे प्रधान शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। 1879 ई० में वे कटक चले गए। इस अकादमी के प्रतिष्ठाता थे प्यारीमोहन आचार्य। वे स्कूल के स्वत्वाधिकारी भी थे। उस समय विपिनचन्द्र बीस साल के थे। इतनी कम उम्र के हेड मास्टर के लिए स्कूल का संचालन संभव है या नहीं, इस बारे में आचार्य महाशय चिंतित थे। विपिनचन्द्र स्कूल का सब कार्य सुचारू रूप से करने लगे। किन्तु स्कूल की परीक्षा के विषय में उनके साथ प्यारीमोहन बाबू का विरोध हुआ। विपिनचन्द्र ने स्कूल के चार छात्रों को प्रवेशिका परीक्षा के लिए निर्वाचित किया था। आशानुरूप फल नहीं मिलने के कारण एक छात्र परीक्षा के लिए निर्वाचित नहीं हुआ था। छात्र के विशेष अनुरोध पर भी विपिनचन्द्र ने उसको निर्वाचित नहीं किया। दुर्गा पूजा की छुट्टी में विपिनचन्द्र के कोलकाता चले आने पर उस छात्र ने आचार्य महाशय से विशेष अनुरोध किया। आचार्य महाशय ने उसको निर्वाचित कर दिया। पूजावकाश के बाद विपिनचन्द्र को यह पता चला। उन्होंने अपमान बोध किया एवं पद त्याग करके 1879 ई० के दिसम्बर महीने के आरम्भ में कोलकाता वापस लौट गए। शिक्षक रूप में प्रथम कर्म–जीवन के अवसान के बारे में उन्होंने लिखा है– "यह कर्म–जीवन संक्षिप्त होने पर भी यही थी मेरे जन–जीवन में प्रवेश की पहली सीढ़ी, इसलिए विश्व नियता के प्रति एवं जिन्होंने उनकी आज्ञानुवर्ती होकर मुझे एक उच्च अंग्रेजी विद्यालय का प्रधान शिक्षक का पद दिया था, उनके प्रति मैं चिर कृतज्ञ रहूँगा।

कार्यमुक्त विपिनचन्द्र को साधारण ब्राह्मसमाज के प्रचारक रामकुमार विद्यारत्न महाशय ने उत्तरी बंगाल में समाज के प्रचार कार्य के लिए बुलाया। विपिनचन्द्र

आनन्द के साथ विद्यारत्न महाशय के साथ जलपाईगुड़ी एवं सिलीगुड़ी अंचल में प्रचार कार्य करने लगे किन्तु कुछ ही दिनों में उन्हें कोलकाता लौटना पड़ा।

कोलकाता प्रवासी श्रीहट्ट के छात्रों ने 'सिलेट युनियन' नामक एक समिति का गठन किया एवं उसके अधीन एक उच्च अंग्रेजी विद्यालय स्थापना करने का उन्होंने संकल्प लिया। उस समय कटक अकादमी से विपिनचन्द्र के दो और सहकर्मी राजचन्द्र चौधरी एवं ब्रजेन्द्रनाथ सेन भी चले आए थे। सिलेट युनियन के परिचालकों ने तीनों शिक्षकों से उक्त विद्यालय का कार्यभार ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। उनके अनुरोध से अवैतनिक रूप में तीनों शिक्षक श्रीहट्ट जाकर 1880 ई० के जनवरी महीने में उच्च अंग्रेजी विद्यालय प्रतिष्ठित किया। विद्यालय का नाम था 'श्रीहट्ट जातीय विद्यालय'। उस समय विपिनचन्द्र 'परिदर्शक' नामक श्रीहट्ट के एक बंगला साप्ताहिक पत्रिका के संपादन का दायित्व भी पालन कर रहे थे। इस पत्रिका में प्रूफ संशोधन से लेकर मुद्रण आदि सभी कार्यों में उनको सहायता करना पड़ता था। इससे उनको अर्थ प्राप्ति नहीं होती थी। अतः विपिनचन्द्र उस समय भयानक आर्थिक संकट में दिन बिता रहे थे। अनेक समय उनको एकबार आहार करना पड़ा। इस संकट के समय विपिनचन्द्र के पितृबंधुगण, उनके समक्ष पिता का प्रस्ताव रखा था कि यदि विपिनचन्द्र अपने मित्रों को छोड़कर अकेले पिता के घर में वास करें तो वहाँ से स्कूल का कार्य, ब्राह्मसमाज का कार्य एवं पत्रिका का कार्य स्वाधीन रूप में संपादित कर सकेंगे। इस प्रकार पिता ने पुत्र को स्वधर्म में लौटाने की अंतिम चेष्टा की। किन्तु विपिनचन्द्र अपने पिता के मित्रों से बोले कि यदि ब्राह्म मित्रों को भी उस घर में रहने दिया जाए तब उनको पिता का प्रस्ताव मंजूर है। उनको ऐसा लगा कि पिता के प्रस्ताव ग्रहण करने से अपने विवेक एवं स्वाधीन धर्माचरण नीति के विरुद्ध विश्वासघात होगा। पुत्र का अभिप्राय जानकर पिता ने एक इच्छा–पत्र बनाया कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी संपत्ति की आय से उनके गाँव के घर में एक स्कूल एवं एक अस्पताल परिचालित होगा। यहीं पिता और पुत्र का रिश्ता संपूर्ण समाप्त हुआ।

केशवचन्द्र सेन ने 1880 ई० में 25 जनवरी को नवविधान नीति घोषणा की। केशवचन्द्र के भक्तवृन्द एवं साधारण ब्राह्मसमाज के सदस्यों ने इस विषय में विचार–विमर्श के लिए श्रीहट्ट में एक सभा का आयोजन किया। प्रायः सब शिक्षित व्यक्तिगण उस दिन सभा में उपस्थित थे। विपिनचन्द्र साधारण ब्राह्मसमाज के अनुरागी थे। उन्होंने संध्या 7 बजे से रात 11 बजे तक चर्चा में भाग लिया। दूसरे दिन सुबह से उनके मुँह से खून निकलना शुरू हुआ। चिकित्सक ने उनको विश्राम करने का निर्देश दिया। उपयुक्त चिकित्सा के लिए 1880 ई० के जुलाई महीने के शेष भाग में वे कोलकाता आए। कोलकाता के चिकित्सकों ने उनको पुनः श्रीहट्ट

न जाने का परामर्श दिया। इस प्रकार श्रीहट्ट का कार्य बन्द हो गया। श्रीहट्ट जातीय विद्यालय से उन्होंने पद त्याग किया। अल्प दिनों में बंगलौर के राय बहादुर अर्कट नारायण स्वामी मुदालिया के उच्च अंग्रेजी विद्यालय के परिचालकों के पास से उन्हें प्रधान शिक्षक का नियोग–पत्र मिला। इस विषय में शिवनाथ शास्त्री का विशेष हाथ था। जब शास्त्री महाशय साधारण ब्राह्मसमाज के धर्ममत प्रचार के लिए बंगलौर गए थे, उस समय नारायण स्वामी के साथ उनका विशेष परिचय हुआ था। शास्त्री महाशय के प्रभाव से नारायण स्वामी ब्राह्मसमाज के प्रति विशेष आकृष्ट हुए। उन्होंने एक योग्य ब्राह्म युवक को उनके स्कूल का प्रधान शिक्षक के रूप में भेजने के लिए शास्त्री महाशय को पत्र लिखकर अनुरोध किया था। श्रीहट्ट लौटने पर शिवनाथ शास्त्री ने विपिनचन्द्र को बंगलौर में नारायण स्वामी के स्कूल का दायित्व ग्रहण करने का निर्देश दिया। 1881 ई० के अगस्त महीने में वे बंगलौर जाकर यथारीति कार्यभार ग्रहण किये। उसी वर्ष दिसम्बर महीने में शिवनाथ शास्त्री के आश्रिता नृत्यकाली नाम की एक बाल विधवा के साथ विपिनचन्द्र का विवाह हुआ। इसके पीछे का इतिहास इस प्रकार है – नृत्यकाली ब्राह्मण कन्या थी। हिन्दू विवाह रीति से 8 वर्ष की उम्र में उनका विवाह हुआ था। 9 वर्ष की उम्र में विधवा होकर इलाहाबाद में वह ज्येष्ठ भ्राता के आश्रय में थी। वहाँ पर भाभी के विरोध के कारण रहना संभव नहीं हुआ। अंत में इलाहाबाद से कोलकाता जाकर शिवनाथ शास्त्री महाशय के संसार में नृत्यकाली ने कन्या के रूप में आश्रय लिया। शास्त्री महाशय एवं उनकी पत्नी ने तय किया था कि विपिनचन्द्र के नये कर्मक्षेत्र में प्रतिष्ठित होने पर उनके साथ नृत्यकाली का विवाह कराएंगे। उस समय ब्राह्मधर्म प्रचार के लिए शास्त्री महाशय बंगलौर से वहाँ गए एवं शुभ विवाह संपन्न हुआ।

विपिनचन्द्र ने बंगलौर में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों की मित्रता का लाभ अर्जित किया। सामाजिक परिवेश भी अच्छा था, लेकिन यहाँ उनका कर्म–जीवन दीर्घकाल स्थायी नहीं हो सका। कई घटनाओं से उनके आत्म–सम्मान को ठेस पहुँचने के कारण उन्होंने पद त्याग कर 1882 ई० के दिसम्बर महीने में कोलकाता चले आए। बंगलौर से लौटने के बाद साहित्य एवं देश–सेवा के कार्य में वे लग गए। वे देशवासियों की शिक्षा समस्या के बारे में चिंतित थे। स्वदेशी युग में जातीय शिक्षा परिषद् के संगठक एवं प्रचारक के रूप में रचनाओं एवं प्रवचनों द्वारा उन्होनें कार्य प्रारम्भ किया।

उनका विश्वास था कि नैतिक शिक्षा ही सब शिक्षा का मूल है एवं सनातन भारतीय आदर्श के अनुसार यही होना चाहिए। यह नैतिक शिक्षा देह, मन, इन्द्रिय, विभिन्न वैषयिक कर्म प्रयास एवं दिव्य आवेग, इन पाँच समन्वयों के ऊपर निर्भर

करती है– यही उनकी धारणा थी। उनका विश्वास था कि इन माध्यमों का यथारीति अनुशीलन एवं नियत्रंण होना जरूरी है। उनका सुचिन्तित विचार था कि छात्रों के चरित्र विकास के लिए अंग्रेज प्रवर्तित शिक्षा व्यवस्था अनुपयुक्त ही है, क्योंकि भारतीय जातीय जीवन एवं जातीय इतिहास के साथ इसका कोई संयोग नहीं है।

विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति की समालोचना करते हुए उन्होंने कहा था कि यह शिक्षा मौलिक शिक्षा कहलाती है पर केवल मौलिक शब्द के साथ इसका संयोग है और यथार्थ से वह दूर ही है। यह शिक्षा केवल हमारी स्मृति–शक्ति बुद्धि में थोड़ी सहायता करती है पर हमारी मेधा एवं बोध–शक्ति में सहायक नहीं है।

देश में सुशिक्षा विस्तार की परिकल्पना से 1906 ई० के मार्च महीने में जातीय शिक्षा परिषद् गठित हुई। परिषद् के संस्थापक थे गोस्वामीजी के शिष्य आचार्य सतीशचन्द्र मुखर्जी। परिषद् का उद्देश्य था जातीय नियंत्रणाधीन एवं जातीय धारा में साहित्य, विज्ञान एवं कारीगरी शिक्षा व्यवस्था का संगठन। शिक्षा के माध्यम के बारे में विपिनचन्द्र ने अपने एक प्रवचन में कहा है– "जातीय शिक्षा क्षेत्र में एक आवश्यक निषेध आरोपित होना चाहिए कि विदेशी भाषा शिक्षण का माध्यम नहीं होगा। जन–साधारण की मातृभाषा ही शिक्षण का माध्यम होगा। सर्वोपरि जातीय शिक्षा का उद्देश्य होगा जातीय भविष्य को उचित रूप से रूपान्तरित करना।" शिक्षा क्षेत्र में मातृभाषा ही शिक्षण का उचित माध्यम है, यह रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द प्रमुख मनीषीगण पहले ही कहते रहे हैं। पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान के प्रति विपिनचन्द्र की बिन्दुमात्र असहमति नहीं थी। उनके अनुसार सब ज्ञान ईश्वर प्रदत्त है। यूरोप का विज्ञान, दर्शन, कला यूरोपीय नहीं है सब ईश्वर प्रदत्त है। विद्या के क्षेत्र में जाति, वर्ण एवं विभिन्न देश का कोई स्थान नहीं है। इन सबकी उत्पत्ति एवं गठन जहाँ भी हो, ईश्वर की प्रत्येक संतान का इस पर जन्मसूत्र में अधिकार है। विपिनचन्द्र के इस कथन की सत्यता आधुनिक युग में सब देशों में देखी जा रही है। ज्ञान पिपासा की निवृत्ति के लिए छात्र एवं शिक्षकगण स्वतः प्रवृत्त होकर सर्वत्र आना–जाना कर रहे हैं। आधुनिक युग में भारतीय शिक्षा, सभ्यता एवं धर्म के प्रति पाश्चात्य जाति का विशेष आग्रह देखा जा रहा है।

1887 ई० से 1897 ई० तक का समय विपिनचन्द्र के जीवन में एक विशिष्टतम अध्याय है। उन्होंने 1883–1884 तक 'बंगाल पब्लिक ओपिनियन' पत्रिका के सह–संपादक के रूप में काम किया एवं साधारण ब्राह्मसमाज के प्रकाशित 'आलोचना' पत्रिका के संपादकीय एवं अन्यान्य दायित्वपूर्ण कर्मों में भाग लिया। उसके बाद वे 1887–88 तक लाहौर की 'ट्रिब्यून' पत्रिका के संपादक रहे।

लाहौर से कोलकाता लौटकर 'आशा' नामक एक मासिक एवं 'कौमुदी' नामक (1892–93) पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया। उन्होंने 1886 ई० में भारतीय जातीय कांग्रेस में योगदान दिया। 1887 ई० में तृतीय कांग्रेस अधिवेशन में अस्त्र कानून रद्द करने के पक्ष में भाषण दिया। 1888 ई० में जातीय कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में कुलीन समस्या प्रसंग में संशोधन प्रस्ताव पेश किया। राजनीति एवं सांवादिकता के साथ–साथ उनके कई मौलिक ग्रंथ भी विशेष उल्लेख योग्य हैं। 1884 ई० में 'शोभना' उपन्यास, 1885 ई० में 'भारत सीमांते रूस' 1887 ई० में 'भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया' नामक जीवनी ग्रंथ लिखा। 'सखा' संपादक 'प्रमदाचरण सेन' नामक और एक जीवनी ग्रंथ एवं 1894 सन् में 'भक्ति साधन' नामक बंगला अनुवाद संकलित ग्रंथ उन्होंने लिखे।

उनके व्यक्तिगत जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। अर्थाभाव के समय 1883 ई० मार्च महीने में उनकी पहली कन्या, 1884 के नवम्बर महीने में द्वितीय कन्या एवं 1885 ई० के नवम्बर में प्रथम पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। 1884 साल के दस महीने तक उनको 70 रुपए मासिक मिलता था। 'बंगाल पब्लिक ओपिनियन' का सह–संपादक के रूप में एवं 'मिहिर' पत्रिका में लेख देकर 20–25 रुपए मिलते थे। किन्तु 1884 सन् के शेष भाग में 'बंगाल पब्लिक ओपिनियन' बंद हो जाने पर वे मुख्य उपार्जन से वंचित हुए। उनके इस दुःसमय में कई श्रीहट्टवासी बंधु एवं कोलकातावासी एवं कोलकाता विश्वविद्यालय के कुछ छात्र विपिनचन्द्र को सहायता करने के लिए अर्थ प्रदायी अतिथि रूप में उनके परिवार में रहने की इच्छा व्यक्त की। विपिनचन्द्र के आनन्द के साथ सम्मति प्रदान करने पर अर्थाभाव दूर हुआ।

उनकी द्वितीय कन्या के यक्ष्मा रोगाक्रांत होने पर चिकित्सकों ने वायु परिवर्तन का निर्देश दिया। उस समय उनके प्रति अत्यंत स्नेह परायण महिला अबला बसु के पिता दुर्गामोहन दास ने अपने कैमक स्ट्रीट के घर में सपरिवार वास करने के लिए कहा। स्थान परिवर्तन से कन्या स्वस्थ होने लगी। इस घर में 1885 ई० के नवम्बर महीने में उनके प्रथम पुत्र का जन्म हुआ था। कुछ दिन बाद उनके गाँव के एक युवक के साथ मुलाकात हुई। युवक बोला कि उनके पिता कई दिनों से पुत्र का संवाद पूछ रहे थे एवं उनका स्वास्थ्य खराब हो गया है। यह संवाद पुत्र को देने के लिए उस युवक से बोले हैं। यह सब बातें उन्होंने अपने परम हितैषी दुर्गामोहन दास महाशय से कही। दास महाशय ने उनके पत्नी, पुत्र–कन्यागण को अपने पास रखा एवं आवश्यक खर्च देकर विपिनचन्द्र को पिता के पास भेज दिया।

दीर्घ नौ साल बाद अलौकिक रूप में पिता–पुत्र का मिलन हुआ। साक्षात्कार

के बाद ही पिता ने पुत्र को तुरन्त कोलकाता से पत्नी, पुत्र–कन्या को अपने घर में लाने का निर्देश दिया। पिता के आदेशानुसार विपिनचन्द्र 1885 ई० के शेष भाग में पत्नी, पुत्र–कन्या को लेकर पैल गाँव के पुराने घर गए। दुर्गामोहन दास महाशय ने उनके कोलकाता के ऋण परिशोधन का दायित्व ग्रहण किया।

घर पहुँचकर विपिनचन्द्र की पत्नी हैजा से आक्रान्त हुई। डा० सुन्दरीमोहन ने चिकित्सा का भार ग्रहण किया। दो सप्ताह तक मृत्यु के साथ युद्ध चला। चिकित्सक ने रोगी को मुर्गी जूस पिलाने को कहा। स्वधर्म निष्ठ पिता ने सब विधि–निषेध भूलकर विधर्मी पुत्रवधु को स्वयं जूस पिलाया। इस बारे में पुत्र विपिनचन्द्र बताते हैं– "बंगलादेश के एक प्राचीन पंथी हिन्दू वृद्ध के लिए यह सहज कार्य नहीं था। रोगी धीरे–धीरे स्वस्थ होने लगी। किन्तु इस संक्रामक व्याधि के जीवाणु किसी तरह पिता के शरीर में संचारित हो गए। अंतिम समय निकटवर्ती समझकर ग्राम के कुछ प्रमुख लोगों की उपस्थिति में उन्होंने एक नया इच्छा पत्र बनाया। विपिनचन्द्र की सौतेली माता एवं बहन को संपत्ति का एक निर्दिष्ट अंश मिला और इस इच्छा–पत्र के उत्तराधिकारी विपिनचन्द्र हुए एवं बाकी संपत्ति विपिनचन्द्र को मिली। पुत्र के बारे में पिता ने कहा कि पुत्र की धर्म के प्रति एकनिष्ठता देखकर वे मुग्ध हो गए हैं क्योंकि उसने जिस धर्म को विश्वास किया, निडर होकर उसकी ही शरण लिया है। वे निश्चिन्त हुए हैं कि उनकी पत्नी और कन्या के सम्मान की रक्षा पुत्र ही करेगा। उक्त बातें समाप्त होते ही उनकी चेतना लुप्त हो गई। 24 घंटे बाद दोपहर में थोड़ी देर के लिए उनकी चेतना लौटी। आँखें खोलकर अपने पास पत्नी एवं कन्या को देखकर बोले कि दोनों उनके पास रहने से अस्वस्थ बहू को पथ्य कौन देगा ? यह कहकर उन्होंने फिर आँखें बंद कर ली और नहीं खोली। इस तरह मृत्यु के पूर्व 1886 ई०, 24 जनवरी को पुत्र को सब दायित्व देकर, पिता इहलोक से विदा हुए।

विपिनचन्द की विमाता ने श्मशान कृत्य संपन्न किया। विपिनचन्द्र ने लोकाचार अनुसार शवदेह स्पर्श नहीं किये किन्तु हिन्दू संतान की तरह अशौच पालन किया। इस बारे में विपिनचन्द्र ने लिखा है कि मातृ वियोग एवं पितृ वियोग के बीच दस सालों के भीतर मैंने हिन्दू शास्त्र विहित पारलौकिक क्रिया की कठोरता के अन्तर्हित तात्पर्य को समझा एवं यह एक महान आदर्श है, यह अनुभव कर सका।

विपिनचन्द्र गाँव में नहीं रहे। पितृ श्राद्ध के बाद महकमा शहर हविगंज में रहने लगे। पैतृक जमींदारी देखने से उनको पता चला कि जमींदारी चलाने से सर्वदा सत्य का अनुसरण नहीं होगा। इससे उनके धर्मीय विश्वास एवं सामाजिक आदर्श पालन से वे विच्युत होंगे इसलिए जमींदारी कार्य में वे क्रमशः निरुत्साही

हो गए।

पिता के नाम पर वे एक उच्च अंग्रेजी विद्यालय के संचालन के विषय में अग्रसर हुए। आंतरिकता रहते हुए भी यह विद्यालय एक साल से ज्यादा न चला।

विपिनचन्द्र को हविगंज में रहने की इच्छा नहीं थी। उन्होंने पितृ संपत्ति प्रायः अर्ध मूल्य में बेचकर पितृ ऋण परिशोध किया एवं बाकी अर्थ लेकर कोलकाता चले आये। विपिनचन्द्र ने इस तरह बिना काम किए एक साल बिताया।

1888–89 ई० में विपिनचन्द्र के जीवन में निर्णायक मोड़ आया। उनको ऐसा लगा कि कोई अदृश्य शक्ति उनको नियंत्रित कर रही है। चिन्ता या कर्म में उस शक्ति के बिना उनकी कोई क्षमता नहीं है। धीरे–धीरे उनके मन से 'अहं' बोध लुप्त होने लगा। लाहौर से लौटने के बाद ईश्वर के बारे में अनुभव होने लगा। वे जिस पथ पर चलना चाहते थे कोई उनको उस पथ से भिन्न पथ पर ले जा रहा था। प्रथम जीवन में ईश्वर एवं जगत् के रहस्य के बारे में चिंतन द्वारा वे निर्गुणवादी हो गए थे, अब उनका निर्गुणवाद लुप्त हो गया एवं यह समझ में आने लगा कि ईश्वर ही एकमात्र कर्ता हैं, उनके विधान से सब कार्य होता है। ईश्वर की इच्छानुसार मनुष्य जीवन में सबकुछ हो रहा है। उस सर्वशक्तिमान ईश्वर को जानने के लिए उनका मन व्याकुल हो गया। इसी समय सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी से उन्हें दीक्षा प्राप्त हुई। 1895 ई० में विपिनचन्द्र ने दीक्षा प्राप्त की। उनको समझ में आया कि यह एक संपूर्ण नया जगत् है। केवल भाग्यवान् लोग ही इसे समझ सकते हैं।

दीक्षा प्राप्ति के पाँच साल पूर्व 1890 ई० में विपिनचन्द्र की पत्नी परलोक सिधार गई थी। उसी वर्ष अगस्त महीने में वे कोलकाता पब्लिक लाईब्रेरी के ग्रंथागारिक एवं संपादक नियुक्त हुए। विपिनचन्द्र ने सोचा था कि अमूल्य ग्रंथ पाठ करने से उनको आत्मानुशीलन का अवसर मिलेगा, लेकिन ईश्वर का विधान कुछ और था। थोड़े दिनों के भीतर उन्हें यह कार्य छोड़ना पड़ा। इस समय कोलकाता नगर पालिका के चेयरमैन ने उन्हें लाइसेंस इंस्पेक्टर का अस्थायी पद सौंपा। 1892–93 सन् के कुछ दिन इस पद में कार्य करने के बाद वे स्वयं पद त्याग दिए। इस बारे में आत्मजीवनी में उन्होंने लिखा है– "साहित्य एवं प्रचार कार्य के प्रति जीवन भर मेरा प्रबल आकर्षण था। इस आकर्षण ने सब विषय कर्म परित्याग कराकर साधारण प्रचारक रूप में ब्राह्मसमाज के कार्य में आत्म–नियोग करने पर मजबूर किया।"

नए अध्यात्मबोध के जागरण से विपिनचन्द्र जगत् एवं जीवनगत रहस्य भेद के लिए व्याकुल हो उठे। श्रीमद् भगवद्‌गीता पाठ से आत्मा के अविनश्वरत्व विषय

में संदेह नहीं रहा। अनन्तर उपनिषद् एवं वेदान्तसूत्र अध्ययन एवं वेदांतसूत्र के शांकर भाष्य के बंगानुवाद पाठ से भारतीय अध्यात्म ज्ञान राज्य में प्रवेश का पथ मिला। उनके लिए समग्र वेदान्त सूत्र अध्ययन संभव नहीं था फिर भी उन्होंने कहा है कि इस ग्रंथ के प्रथम कई सूत्र पाठ से ही मेरे मस्तिष्क एवं मन की धारणाएं बदल गई। मेरे सामने एक नया ज्ञान राज्य प्रकाशित हुआ एवं मेरी बंगला एवं अंग्रेजी रचना में एक नई शक्ति संचारित हुई।

भारतीय अध्यात्मचेतना में ब्राह्मधर्म का जागरण, राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र जैसे प्रमुख मनीषीगण के ब्राह्मधर्म प्रसार विषय में आत्म–नियोग एवं इस ब्राह्मधर्म के सर्वांगीन विकास में प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के बहुवर्षव्यापी ऐकांतिक प्रयास भारतीय धर्म साधना के इतिहास में उल्लेखनीय घटना है।

गोस्वामीजी ने भक्ति धर्म में दीक्षित होकर भी अपने गुरुजी स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंसजी के निर्देश से ब्राह्मधर्म प्रचार में आत्म–नियोग किया था। किन्तु संकीर्ण मनोभाव संपन्न ब्राह्मगणों के कारण उनको अंत में विदा लेना पड़ा। उस समय से वे स्वाधीन रूप में ब्राह्मधर्म प्रचार करने लगे। उनका कहना था "सत्य का अनुसरणधर्म ही ब्राह्मधर्म है।" जितने दिन प्रयोजन था, गुरुजी के निर्देश से ब्राह्मसमाज में रहते हुए उन्होंने ब्राह्मधर्म का प्रचार किया। उसके बाद गुरुजी के निर्देश से ब्राह्मसमाज त्यागकर सद्गुरु रूप में शक्ति संचार करने लगे। गोस्वामी प्रभुजी की तरह विपिनचन्द्र ने भी बाल्य एवं किशोरावस्था में वैष्णव परिवेश में पालित होकर, यौवन में ब्राह्मसमाज में प्रवेश किया था। ईश्वर के विधान से वे पुनः वैष्णव साधना के प्रति आकृष्ट हुए।

गोस्वामी प्रभुजी के पास दीक्षा ग्रहण के बाद यद्यपि विपिनचन्द्र की बहिरंग जीवनचर्या में विशेष परिवर्तन नहीं देखा गया परन्तु वे अंदर में परिवर्तन अनुभव करने लगे। उस समय से वे नियमित शास्त्र पाठ, स्तोत्र पाठ एवं नियमित गुरु संग करते थे। उन्होंने विषय कर्म पहले ही त्याग दिया था। आहार के विषय में नियंत्रण एवं एकबार स्वपाक आहार ग्रहण उनका आदर्श था। आमिष आहार पहले ही उन्होंने त्याग दिया था। रात में भूख लगने पर दुकान की पूरी खाते थे। उस समय विभिन्न विषयों में वे संयम पालन करने लगे। अहिंसा पालन व्रत ग्रहण करने के पश्चात् वे प्राणी वध, यहाँ तक कि खटमल या चींटी जैसे छोटे प्राणी पर भी आघात नहीं करते थे। आश्चर्य का विषय यह है कि जिस क्षण में उन्होंने निश्चय किया कि किसी प्राणी पर आघात नहीं करेंगे, उसी क्षण से सब हिंसक कीट भी हिंसाभाव भूल गए। केवल उनको ही नहीं, परिवार के किसी व्यक्ति को वे प्राणी परेशान नहीं करते थे। इस बारे में जीवन–स्मृति में उन्होंने कहा है– "अहिंसा का

अनुशीलन इस प्रकार करना पड़ेगा कि अंहिसा अनुशीलनकारी या अनुशीलनकारिणी की कायिक एवं मानसिक सत्ता उसकी प्रकृति का अंग हो जाए। यह अहिंसा राजनैतिक अहिंसा आन्दोलन की अपेक्षा निःसन्देह कुछ अतिरिक्त है। प्रतियोगिता परित्याग उनके जीवन का लक्ष्य हो गया क्योंकि वे समझ गए थे कि प्रतियोगिता में हिंसाभाव है। उनकी संचय स्पृहा भी नष्ट हो चुकी थी। कल के लिए संचय न रखकर वे प्रार्थीगण के मन की इच्छा पूरी करने लगे। इस नीति का सर्वदा पालन यद्यपि उनके द्वारा संभव न हो सका पर इसकी यथार्थता वे अनुभव करते थे। उनका यह मानसिक विवर्तन गुरुजी श्री विजयकृष्ण गोस्वामी की अनन्त कृपा का फल है यह बात उन्होंने विभिन्न प्रसंग में श्रद्धा के साथ बार–बार कही है। जीवन–स्मृति में वे कहते हैं– "गुरुजी की कृपा से ही उनके हृदय में प्राचीन शास्त्र ग्रंथादि के बारे में नए अर्थ बोध का उदय हुआ। दीक्षा ग्रहण के बाद दीर्घ 35 साल या और अधिक सालों तक वह अर्थ धीरे–धीरे उनके हृदय में प्रकाशित हो रहा है। उनके अनुसार यही है गुरुकृपा का सर्वापेक्षा विस्मयकारी अवदान।"

विपिनचन्द्र को अनुभव हुआ था कि गुरुकृपा एवं उनके विधान से ही उनका जीवन नियंत्रित हो रहा है। यद्यपि उन्होंने निर्जन में साधना नहीं की थी। इस प्रसंग में गोस्वामी प्रभुजी के और दो शिष्यों की बात उल्लेखनीय है– डॉन सोसाइटी के प्रतिष्ठाता आचार्य सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एवं सुसाहित्यिक और स्वदेश प्रेमी अश्विनीकुमार दत्त। सतीशचन्द्र को गोस्वामी प्रभुजी बोले थे कि वे स्वयं शिष्य के बदले साधना करेंगे और शिष्य को देश की सेवा के लिए निःस्वार्थ व्यक्ति तैयार करने के कार्य में आत्म–नियोग करना पड़ेगा। गुरुजी के निर्देश से सतीशचन्द्र शिक्षा द्वारा आदर्श तरुण तैयार करने में लग गए। गोस्वामी प्रभुजी विपिनचन्द्र को उस प्रकार मौखिक निर्देश नहीं दिये थे किन्तु उनकी प्रेरणा से ही विपिनचन्द्र ब्राह्मसमाज का कार्य लेकर यात्रा किये थे। गोस्वामी प्रभुजी सर्वदा कहते थे कि सत्यधर्म ही ब्राह्मधर्म है। इस सत्यधर्म के प्रचार के लिए वे स्वयं भारत के विभिन्न स्थानों पर गए। विपिनचन्द्र ने ब्राह्मसमाज के प्रचारक के रूप में 1898 ई० के सितम्बर महीने में विदेश यात्रा की। इस प्रसंग में स्मरणीय है कि श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द भी सत्य प्रचार के लिए इसके पहले विदेश गए थे। ब्रिटिश एण्ड फॉरेन युनिटेरियन एसोसियेशन ने ब्राह्मसमाज के प्रचारकों को आक्सफोर्ड न्यू मेनचेस्टर कॉलेज में दो साल तक शिक्षा ग्रहण के लिए वृत्तिदान की व्यवस्था की थी।

1898 सन् के अक्टूबर से 1899 सन् के जून महीने तक की शिक्षा समाप्त होने तक विपिनचन्द्र प्रति सप्ताह विभिन्न एकत्ववादी प्रचार मंच से प्रचारमूलक प्रवचन देते थे। कारलिसले एकत्ववादी भजनालय के रेभारेन्ड मि. ट्रेभार्स ने उनके

प्रचार मंच से विपिनचन्द्र को प्रवचन देने के लिए बुलाया। यहाँ प्रदत्त धर्म सम्बन्धित प्रवचन ब्रिटिश एण्ड फॉरेन युनिटेरियन एसोसियेशन के मुखपत्र में प्रकाशित हुआ। फलस्वरूप उनके प्रचार एवं भाषण दान का क्षेत्र इंग्लैंड एवं स्काटलैंड के एकत्ववादी सभी केन्द्रों में संप्रसारित हुआ। प्रति प्रवचन में उनको एक गिनी मिलता था एवं आक्सफोर्ड से आने–जाने का खर्च भी दिया जाता था। इस बारे में आत्म–जीवनी में वे लिखते हैं– "यह आर्थिक सहायता मेरे लिए उपेक्षणीय नहीं थी क्योकि इंग्लैण्ड से जो कुछ आय होती थी एवं भारत की विभिन्न पत्र पत्रिका में लेख देकर जो कुछ मिलता था, उससे कोलकाता में मेरे परिवार के पालन–पोषण की व्यवस्था होती थी। फिर भी इस सूत्र से ब्रिटिश दीप पुंज एवं मध्यवित्त अंग्रेज समाज के बारे में जो व्यापक एवं अंतरंग ज्ञानलाभ किया था, वह अत्यंत मूल्यवान था।" वे यह समझ गए कि केवल जीवनी एवं साहित्य पाठ से किसी जाति का पूरा परिचय नहीं मिलता है, अंग्रेज जीवन के प्रत्यक्ष संस्पर्श से यह सही रूप में जाना जा सकता है। आक्सफोर्ड वास के समय उनको विशेष रूप में पता चला कि वहाँ के विश्वविद्यालय में स्नातक पर्याय के साधारण शिक्षार्थी की शिक्षा और संस्कृति का मान भारतीय स्नातक की शिक्षा से निम्नस्तर का था। किन्तु विश्वविद्यालय पास करने के कई साल के व्यवधान में देखा जाता है कि भारतीय स्नातक गण का मान अंग्रेज स्नातकों की विद्या एवं बुद्धि की तुलना में बहुत नीचा हो जाता है। दोनों जाति के परवर्ती जीवन के आसपास के परिवेश ही इस भेद का कारण है। इस बारे में विपिनचन्द्र ने कहा, "इस घटना ने मेरे मन में गंभीर प्रभाव डाला एवं इस घटना से राजनैतिक स्वाधीनता एवं सामाजिक संस्कार के प्रति मेरी जीवन भर की तपस्या में एक नई शक्ति एवं प्रेरणा मिली।"

लंदन में पहुँचने के बाद मि. डब्ल्यु एस केइन एवं उनके सेक्रेटरी मि. ग्राव के साथ विपिनचन्द्र विशेषरूप से परिचित हुए थे। मि. केइन मादक निषेध संस्कारक एवं आदर्श राजनीतिविद् थे। इन लोगों से विपिनचन्द्र का परिचय भारत में ही हुआ था। 1898 ई० साल के बड़े दिन की छुट्टी में एवं दूसरे साल की इस्टर की छुट्टी में विपिनचन्द्र ने मि. केइन के साथ इंग्लैंड, स्काट्लैंड एवं वेलस के विभिन्न मादक निवारणी सभा में भाषण दिया। इसके लिए आने–जाने का खर्च, होटल खर्च एवं भाषण के लिए यथोचित दक्षिणा की व्यवस्था की मि. केइन ने।

विपिनचन्द्र एकबार मादक निवारणी प्रचारकार्य में मि. केइन के साथ ग्लासगो गए थे। उस समय स्काट्लैंड की जातीय मादक निवारण समिति का वार्षिक अधिवेशन चल रहा था। शहर के वृहत्तम् सभागृह में इस अधिवेशन का आयोजन किया गया था। विपिनचन्द्र के सभा मंच पर खड़े होते ही श्रोताओं ने स्वागत किया। भाषण समाप्ति के बाद भी कई मिनटों तक श्रोतागण उनका

उत्साह बढ़ाते रहे।

लंदन शहर की मादक निवारणी सभा में एक ही मंच पर दादाभाई नौरोजी के साथ विपिनचन्द्र ने प्रवचन दिया था। विपिनचन्द्र शेष वक्ता थे। उन्होंने भारत में मादक प्रचलन के बारे में स्थानीय जन–साधारण के मत ग्रहण की आवश्यकता को दृढ़ता के साथ रखा एवं उनसे निवेदन किया, "यदि तुमलोग अपने देश की तरह हमारे देश का शासन भार हमारे हाथ में न दे सको तो ईश्वर की सपथ लेकर बोल रहा हूँ कि जिस कुअभ्यास के लिए तुम लोग कष्ट भोग रहे हो, उस कुअभ्यास के हाथ से आत्मरक्षा का अधिकार हमें प्रदान करो।" उनके इस आकुल निवेदन पर सब लोग सभा में खड़े होकर उनका अभिनंदन करने लगे।

विपिनचन्द्र ने सोचा कि उनको राजनैतिक कार्य करने का अवसर नहीं मिल रहा है देश के कार्य में आत्म–नियोग की इच्छा से वे युनिटेरियन एसोसियेशन से त्याग पत्र देकर 1899 सन् के जून माह से इंग्लैंड में स्वाधीन रूप में कार्य करने लगे।

आर्य भारत की सत्य प्रतिष्ठा में स्वामी विवेकानन्द एवं विपिनचन्द्र पाल ने उच्च स्थान अर्जित किया था। स्वामीजी ने धर्म जगत् में भारत का सुनिर्दिष्ट सत्य प्रतिष्ठित किया था। विपिनचन्द्र ने सत्य प्रतिष्ठा का आंशिक कार्य ब्राह्मसमाज के आदर्श प्रचार द्वारा किया था एवं राजनैतिक मंच में विभिन्न प्रवचनों एवं लेखनी द्वारा उसे संपूर्ण किया था। विपिनचन्द्र उस समय से भारत की स्वायत्त शासन संपर्कित वास्तव समस्या की चिन्ता में आत्म–नियोग किये।

विपिनचन्द्र का कर्मक्षेत्र क्रमशः विस्तृत हो गया। जिन सब कार्यों के सम्बन्ध में वे कभी नहीं सोचे थे, चेष्टा भी नहीं किये थे, एक अदृश्य शक्ति भारत की महिमा एवं उसका सत्य परिचय पृथ्वी के लोगों के पास पहुँचाने की व्यवस्था कर रही थी। इस शक्ति के प्रेरणादायक थे उनके गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी। उनकी कृपा से ही सब क्षेत्र प्रस्तुत हो रहा था। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी भारत की अग्नियुग में अवतीर्ण हुए थे। भारतमाता को पराधीनता से मुक्त करने के लिए सर्वत्र प्रयास चल रहा था। इस परिवेश में आविर्भूत होकर श्रीश्री विजयकृष्ण केवल अध्यात्म लोक में ही विचरण नहीं कर रहे थे। उनकी चिन्ता, चेष्टा एवं कार्य था देश की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जिन लोगों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी है, उन्हें कल्याण के पथ पर प्रतिष्ठित करना। इस प्रसंग में अरविन्द घोष का नाम उल्लेखनीय है। उस समय यद्यपि वे ऋषि नहीं हुए थे। नवशक्ति के ऑफिस से ब्रिटिश सरकार ने अरविन्द धोष को बन्दी बनाकर बम मुकदमा में अभियुक्त बनाया। किसी प्रकार से अरविन्द घोष को बन्दी बनाकर सजा देना ही सरकार का उद्देश्य था। अरविन्द के पक्ष में बड़े–बड़े वकील मुकदमा लड़ रहे थे किन्तु अरविन्द निर्विकार थे। एकदिन प्रभुपाद

विजयकृष्ण के शिष्य मनोरंजन गुहठाकुरता के पुत्र चितरंजन गुहठाकुरता, जिन्हे अरविन्द घोष अत्यंत स्नेह करते थे, अरविन्द के साथ साक्षात् के लिए अदालत आए। उल्लेखनीय है कि चितरंजन 'वन्देमातरम्' आन्दोलन के प्रथम शहीद थे। अरविन्द घोष उनको एकांत में बोले, **"देखो ब्रिटिश सरकार जितनी भी चेष्टा करे उनकी क्षमता नहीं है कि मेरे केशाग्र स्पर्श करे। क्योंकि मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, जैसा कि तुम्हें प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, उसी प्रकार प्रतिदिन मुकदमा चलते समय मैं देखता हूँ, उस बकुल वृक्ष के एक तरफ वासुदेव श्रीकृष्ण और दूसरी तरफ श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी खड़े होकर संपूर्ण मुकदमा संचालन कर रहे हैं। गोस्वामी प्रभुजी मुझे आकर्षित कर रहे हैं, मानों बोल रहे हैं सशस्त्र क्रान्ति से भारत स्वाधीन नहीं होगा, भारत स्वाधीन होगा अन्य उपाय से, यह मैं अनुभव कर रहा हूँ। गोस्वामी प्रभुजी मंद–मंद हँसते हुए बोलते हैं 'कोई डर नहीं है, कोई डर नहीं है।'** अरविन्द धोष गुहठाकुरता से बोले, "मैं यह बात सबको नहीं कह सकता, तुम गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य हो इसलिए बोल रहा हूँ। गोस्वामी प्रभुजी के शिष्यगण भी उनको सही रूप में नहीं समझ सके – The truth of the future that Sri Bijoykrishna hid within himself, has not yet been revealed utterly to his disciples. A less discreet revilation prepares, a more concrete force manifests but where it comes when it comes non knoweth. अर्थात्– विजयकृष्ण गोस्वामीजी के भीतर भविष्य के जिस सत्य की वार्ता छिपी हुई थी, वह अभी भी उनके शिष्यों के समक्ष प्रकट नहीं हुई है। आंशिक विच्छिन्न रूप से अभिव्यक्ति, सुदृढ़ शक्ति के विकास में सहायता करती है। पर, 'कहाँ से और कब यह आयेगी' – यह कोई नहीं जानता।"

भावार्थ – जिस प्रकार सूर्योदय के समय पूर्वी आकाश में पहले सूर्य–किरणों की लालिमा दिखती है, और फिर थोड़ी देर बाद पूर्ण सूर्य प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार गोस्वामीजी के पूर्ण स्वरूप की अभी केवल आंशिक और विच्छिन्न अभिव्यक्ति हुई है। समय पर इसके परिपूर्ण प्रकाश को सभी अनुभव करेंगे। पर यह अनुभूति कहाँ पर और किस समय होगी, इसे कोई नहीं जानता।

ब्रिटिश सरकार हजारों चेष्टा करके भी प्रमाणाभाव के कारण श्री अरविन्द को सजा नहीं दे सकी। यद्यपि श्री अरविन्द ही उस काण्ड के नायक थे। उक्त घटना से देखा जाता है कि गोस्वामी प्रभुजी ने केवल साधन दीक्षा द्वारा शिष्य नहीं बनाये थे, उनकी दृष्टि सर्वत्र थी। जिससे भारत का कल्याण हो सके, जिससे देश–विदेश में भारत का सुनाम प्रतिष्ठित हो, जिससे पृथ्वी के मनुष्य भारत के वैशिष्ट्य को जान सके एवं उसका गौरव जगत में प्रतिष्ठित हो। इसके लिए उन्होंने आचार्य सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय (डॉन पत्रिका) विपिनचन्द्र पाल, अश्विनीकुमार दत्त आदि

शिष्यों को प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की थी। उनको पता था भारत सर्वदा अध्यात्म शक्ति से शक्तिशाली है। भगवान चरम क्रान्ति के पथ से अरिवन्द को उठा लाये। श्री अरविन्द समझ गए थे कि अध्यात्म पथ ही सर्वश्रेष्ठ पथ है। इसलिए वे चन्दननगर से पाण्डिचेरी जाकर तपस्या में डूब गए एवं जगत् के अनन्यतम् श्रेष्ठ साधक रूप में परिचित हुए। उस समय से वे महर्षि अरविन्द हुए उनकी मुखनिःसृत वाणी से केवल भारत का ही नहीं, समग्र विश्व का कल्याण साधित हुआ।

विपिनचन्द पाल एवं मनोरंजन गुहठाकुरता को संबोधित करते हुए अरविन्द धोष ने गोस्वामी प्रभुजी के बारे में कहा है – "If you ask who influanced Babu Bipin Chandra Pal, it was a sadhu. Among the other man who was in Bengal is the man who started the paper 'Navasakti' which is being prosecuted. You may not know his name here, but he is well- known throughout Bengal and he had done much to forward the Swadesi Movement, he is a man who lived the life of a sadhu and taken his inspiration and strength from that only source from which inspiration and strength can come. One thing I will ask you to observe and that is that there are very few who have not been influenced by the 'Touch of a sadhu'. (From – 'Mandir' monthly Bengali magazine)" श्री अरविन्द ने बारम्बार जिस साधु के बारे में कहा है वे थे प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी।

श्री अरविन्द घोष की उक्ति से जाना जाता है कि विपिनचन्द्र पाल गोस्वामी प्रभुजी से विशेष प्रभावित हुए थे। मनोरंजन गुहठाकुरता अग्नियुग के शुरू में 'नवशक्ति' दैनिक पत्रिका का प्रकाशन करते थे। इस पत्रिका के युगल संपादक थे मनोरंजन गुहठाकुरता एवं विपिनचन्द्र पाल। श्री अरविन्द द्वारा लिखित ज्वालामयी लेखों को विपिनचन्द्र पाल बंगला में अनुवाद करते थे एवं वह 'नवशक्ति' में छपता था। इसलिए इस पत्रिका के ऊपर ब्रिटिश सरकार की दृष्टि पड़ी।

विपिनचन्द्र 1900 सन् के फरवरी महीने में न्यूयार्क गए। उस समय अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द का यश फैल गया था। उस समय अनेक अमेरिकन स्त्री–पुरुष वेदान्त शिक्षा ग्रहण के लिए व्याकुल हुए थे एवं अनेक लोग उनका शिष्यत्व ग्रहण कर चुके थे। यहाँ उल्लेखनीय है कि विवेकानन्द के पूर्व केशवचन्द्र एवं प्रतापचन्द्र ब्राह्मसमाज के प्रचारक रूप में विदेश गए थे। केशवचन्द्र के अमेरिका नहीं जाने से भी अमेरिकावासी उनको जानते थे। किन्तु उन लोगों की प्रचारित वाणी में भारत के धर्म अथवा आदर्श की बात नहीं थी। उनके बातों से सुसंस्कृत एकत्व वादी ईसाई धर्म की वाणी व्यक्त होती थी। वे हिन्दूधर्म के पक्ष का समर्थन करने में संकोच बोध करते थे, इसलिए उस देश के लोग सोचते थे

कि हिन्दू धर्म में नैतिकता या आध्यात्मिकता कुछ भी नहीं है, केवल मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास एवं प्रचण्ड जातिभेद है। 1893 ई० में शिकागो धर्म महासम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने उनके इस विश्वास के विरुद्ध प्रथम प्रतिवाद किया। उस समय से पाश्चात्य देशों में हिन्दूधर्म के प्रति श्रद्धा जागृत हुई। वे वेदान्त की वाणी सुनने के लिए व्याकुल हुए। 'पिता नोहसि, पिता नोबोधि' तुम ही हमारे पिता हो – यह बोध जागृत करो। नमस्तेहस्तु – तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ। हे ईश्वर तुम हम सबके पिता हो। हम जहाँ भी हों, तुम हो हमारे एक मात्र पिता, इसलिए पृथ्वी के सब मनुष्य, हमलोग भाई–बहन हैं – Brothers and sisters हैं। उपनिषद् के इस सत्य को स्वामी विवेकानंद के मुख से सुनकर उस दिन पश्चिमी देश भारत एवं भारतवासियों के प्रति श्रद्धा से अवनत हुए। भारत संतान स्वामीजी ने पृथ्वी जीत ली। इस विजय का शुभफल भारत में भी अनुभव हुआ। इस बारे में विपिनचन्द्र ने कहा है– "स्वजाति के धर्म रक्षक एवं शक्तिमान वक्ता के रूप में स्वामी विवेकानन्द की विस्मयकर सफलता ने भारतवासी के मन में उल्लेखनीय प्रतिक्रिया सृष्टि करके हमारी जातीयता बोध में नई शक्ति एवं प्रेरणा का संचार किया। यही था विदेश में हमारा पहला प्रचार।"

अमेरिका में विपिनचन्द्र के निर्दिष्ट होटल में पहुँचते ही होटल अध्यक्ष ने उनसे कहा कि एक व्यक्ति बहुत दिनों से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। विपिनचन्द्र उनके पास गए। वह व्यक्ति विपिनचन्द्र को देखकर स्वयं उनके पास आये एवं हाथ मिलाकर बोले– "you have come from a great country. Sir, you are destined to be the teachers of the world, but you can not fulfil this destiny until you are able to look the world horizontally into the face." अर्थात् – **सर आप एक महान् देश से आए हैं। विधाता के निर्देश से जगत् के शिक्षादाता का स्थान आप लोग ही ग्रहण करेंगे। किन्तु जितने दिनों तक जगत् के अन्य लोगों के साथ एक मंच पर खड़े होकर उनके समकक्ष नहीं होंगे तब तक आप लोग विधाता के निर्दिष्ट स्थान को नहीं ग्रहण कर सकेंगे।"** विदेशी की इस बात से अमेरिका प्रवास के पहले दिन से ही विपिनचन्द के मन में एक विशेष प्रतिक्रिया की सृष्टि हुई। उन्होंने कहा है, "अमेरिकन होटल के पाठागार में उस अमेरिकन बंधु के अप्रत्याशित संवर्धना से शायद मेरे अज्ञात में मेरे भीतर एक नये सत्य, स्वदेशिकता ने जन्म लिया। उस समय से मुझे पता चला कि जब तक भारत दासत्व से मुक्त नहीं होगा एवं हम स्वाधीन स्वप्रतिष्ठित होकर सबके बीच खड़े न हो सकेंगे, तब तक हमारा दान जगत् के लोग ग्रहण नहीं करेंगे।"

अमेरिका में विपिनचन्द्र को सोसायटी की पक्ष से भाषण प्रदान का अवसर

मिला था, इससे समग्र अमेरिकावासियों के साथ परिचित होने का उन्हें सौभाग्य मिला। भारतवासी के बारे में उन लोगों के मनोभाव को जानकर विपिनचन्द्र ने उसके विरुद्ध उस दिन जिस कठोर सत्य को व्यक्त किया था, उससे वे लोग समझ गए कि भारतवर्ष की हालत अभी राख से दबे हुए अग्निकुंड जैसी है। घटना इस प्रकार थी– उस दिन प्रायः आठ–नौ हजार नर–नारी वोस्टन शहर की सभा में उपस्थित थे। उस सभा में विपिनचन्द्र के भाषण का आयोजन किया गया था। उस सभा में उनका परिचय देते समय एक धर्मयाजक बोले – "उनके ईसाई देश का ऐसा दुर्भाग्य है कि एक भारतवासी के पास शिष्टाचार के बारे में उपदेश ग्रहण करना पड़ रहा है।" स्वदेशवासियों के प्रति विदेशियों की अपमान सूचक बातों को सुनकर विपिनचन्द्र के हृदय में भीषण चोट पहुँची। स्वदेशप्राण वाग्मी विपिनचन्द्र प्रतिवाद करते हुए गरज उठे। उन्होंने कहा– "अमेरिका की क्या बात है, जिस यूरोप से अमेरिका का जन्म हुआ उस यूरोप के लोग जब पशु की तरह जंगल में घूमते थे, सभ्यता की शुरूआत नहीं हुई थी, उस समय, मैं जिस देश से आया हूँ उस देश के लोग सभ्यता की उच्चतम शिखर पर थे। उस प्राचीन सभ्यता के प्रतिनिधि के रूप में आप लोगों की इस नवजात शिशु सभ्यता के बीच खड़ा होकर जब मैं आप लोगों के अभिमान एवं स्पर्धा को देखता हूँ तो मुझे अपमान बोध नहीं होता है। यह बालक सुलभ स्पर्धा देखकर मन में आनन्द अनुभव करता हूँ।" इसके बाद मादक निवारण की प्रयोजनीयता के बारे में उक्त सभा में उन्होंने कहा, **"मूर्ख लोग सुरापान करते हैं, सुरापान की अपकारिता अनुभव करके हमारे पितृ पुरुषगण इसे महापातक रूप में निषिद्ध मानते थे। अतः हमारे देश में अंग्रेज के प्रवेश के पहले समाज के उच्च श्रेणी में सुरापान निवारण की चेष्टा अनावश्यक थी। केशवचन्द्र ने विदेश में तीस वर्ष पूर्व कहा था– जिस दिन अंग्रेज उनकी नई सभ्यता का सुसमाचार प्रचार के लिए एक हाथ में बाइबिल एवं दूसरी हाथ में ब्रांडी की बोतल लेकर हमारे सामने खड़े हुए, उस दिन से हमारे देश में भी सुरापान निवारण की चेष्टा आवश्यक हो गई। उस समय से हमारे समाज में भी सुरापान समस्या बढ़ी है। यही सत्य है किन्तु जब मैं यहाँ सुरापान निवारणी मंच से भाषण देता हूँ तब अपनी प्राचीन सभ्यता के नाम पर इन सब बातों को बोलता हूँ।"** स्वामी विवेकानन्द के बाद विपिनचन्द्र ही द्वितीय भारतवासी थे जिन्होंने पराधीन देश का मनुष्य होकर भी विदेश भूमि पर खड़े होकर पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध प्रतिवाद किया था।

भाषण प्रदान प्रसंग में विपिनचन्द्र विख्यात वार्नाड कल्ब के साथ युक्त हुए थे। यहाँ प्रवचन देते समय मिसेस ओलिबुल के साथ उनका विशेष परिचय हुआ। यह महिला अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के प्रचारकार्य में प्रधान सहायिका थी।

उसने स्वामीजी के साथ कोलकाता आकर विपिनचन्द्र का नाम सुना था। उस समय विपिनचन्द्र विदेश में थे। विपिनचन्द्र के अमेरिका आने पर उनके साथ मिसेस बुल का परिचय हुआ। एकदिन विपिनचन्द्र को मिसेस बुल ने अपने घर में आमंत्रित किया। उनके घर में मिस नोवेल (भगिनी निवेदिता) के साथ विपिनचन्द्र का परिचय हुआ। इस बारे में विपिनचन्द्र ने कहा है, "वह एक अद्‌भुत परिचय रहा। साक्षात् होने के साथ ही तर्क युद्ध शुरू हुआ था। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि उस तर्क युद्ध के लिए दोनों में किसी के मन में क्षणभर के लिए भी कटु भाव नहीं था।" पी० मित्र महाशय के पास सुना हूँ कि निवेदिता मेरा प्रसंग आने पर ही बोलती थी, "पाल के दांतों को लक्ष्य किया है क्या ? उनके दांत देखने से लगता है उनके भीतर बाघ छिपा है।"

इसके बाद भी विपिनचन्द्र के साथ भगिनी निवेदिता की कई बार मुलाकात हुई थी। हरबार दोनों में किसी न किसी विषय पर तर्कयुद्ध चला था। इतने में वोस्टन शहर के 'कांग्रेस ऑफ रिलिजिअन्स' के वार्षिक अधिवेशन में विपिनचन्द्र को हिन्दू धर्म एवं दर्शन के बारे में भाषण देने को आमंत्रण मिला। वहाँ अनेक तत्वजिज्ञासु मनीषी उपस्थित थे। भगिनी निवेदिता भी इस कॉन्फरेंस में उपस्थित थीं। विपिनचन्द्र के प्रवचन से निवेदिता के मन में जो प्रतिक्रिया हुई थी, उसके बारे में विपिनचन्द्र ने कहा है, "जब मैं भाषण दे रहा था, भारत की आध्यात्मिक चिंतन के गौरव की कहानी सुनकर निवेदिता के देह–मन–प्राण गर्व से भारी हो रहा था। मैं ब्राह्मसमाज का प्रतिनिधि था, यह निवेदिता उस समय भूल गई थी। कुछ दिन पूर्व उनके गुरु की आलोचना करने के कारण मेरे प्रति क्रोध की स्मृति तक उनके मन में नहीं रही – निवेदिता भारतवर्ष को जिस प्रकार प्यार करती थी, भारतवासी अपने देश को उतना प्यार दे सके या नहीं, इस बारे में संदेह है। मिसेस बुल के घर में हम प्रतिपक्ष रूप में मिले थे पर इस 'कांग्रेस ऑफ रिलिजिअंस' के अधिवेशन में हम दोनों इस प्रकार मित्रता के बंधन से आबद्ध हुए थे कि हजारों मतभेद रहने पर भी वह सर्वदा अटूट रहा।"

गुरुजी किस प्रकार शिष्य को सवार्थ सिद्धि की ओर ले जाते हैं, उसका अनन्यतम निदर्शन है विपिनचन्द्र का अलौकिक रूप में वाशिंगटन गमन एवं वहाँ भाषण प्रदान। घटना इस प्रकार है :

अमेरिका देश में जाकर विपिनचन्द्र को न्यूयार्क, वोस्टन, शिकागो, मिओविल, लूइबिल, सेन्टलुई आदि स्थानों से आमंत्रण मिला था। किन्तु वाशिंगटन में तब तक भाषण देने की व्यवस्था नहीं थी। वाशिंगटन जैसे ऐतिहासिक तथा मार्किन युक्तराष्ट्र की राजधानी न देखकर देश लौटना पड़ेगा यह सोचकर विपिनचन्द्र दुःखी हो रहे थे। अचानक न्यूयार्क के 80 वर्ष की एक वृद्धा साहित्य सेविका एवं

उनकी सेक्रेटरी मिस एलफिन इ फक्स की बात विपिनचन्द्र को याद आई। इनके साथ होटल में रहते समय परिचय हुआ था। उक्त महिला की चेष्टा से न्यूयार्क में प्रवचन की व्यवस्था हो गई। विपिनचन्द्र को संवाद मिला कि वाशिंगटन की फिलहारमनिक सोसाइटी के प्रयास से उनके भाषण की व्यवस्था की गई है। वाशिंगटन पहुँचने पर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर में उनके रहने की व्यवस्था की गई।

स्वामीजी की तरह विपिनचन्द्र ने भी उस भारतीय अध्यात्म चिंतन के सत्य को प्रकाशित कर अमेरिकावासियों के मन में युगांतर सृष्टि की थी। वे जानते थे कि अमेरिकन लोग डा० हैरिस साहब की 'जार्नल ऑफ स्पेकुलेटिव फिलासफी' पत्रिका पढ़कर भारतीय दार्शनिक चिंतन को ग्रीक दार्शनिक चिंतन की अपेक्षा निम्न स्तर का सोचते हैं। शांकर वेदांत के प्रचलित मायावाद का अर्थ ग्रहण करके डा० हैरिस ने हमारे देश के दार्शनिक चिंतन की असारता प्रमाणित करने की चेष्टा की थी। उन्होंने कहा था कि विश्व समस्या को मायावाद हल नहीं कर सका। मायावाद ने केवल वाक्य जाल द्वारा सृष्ट समस्याओं को ढकना चाहा है। वाशिंगटन की सभा में अनेक मनीषी उपस्थित थे। भाषण में विपिनचन्द्र ने प्रधानतः रामानुज एवं मध्व गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त को लेकर वेदान्त दर्शन को समझाया। वेदान्त दर्शन की इस व्याख्या को सुनकर सब लोग बार-बार आनन्द ध्वनि उच्चारण करते हुए विपिनचन्द्र को धन्यवाद देने लगे। विपिनचन्द्र के विचारों से डा० हैरिस विशेष रूप से प्रभावित हुए।

डा० हैरिस ने व्यक्तिगत रूप से विपिनचन्द्र से मिलने के इच्छुक हुए। विपिनचन्द्र उनके घर गए। विपिनचन्द्र के उनके घर में प्रवेश मात्र करने पर डा० ने उनको सादर अभ्यर्थना की एवं विनय के साथ कहा – "पश्चिम में हमलोग आपके भारतीय दर्शन में केवल मायावाद की बातें सुनते रहे हैं। शांकर वेदांत के बारे में ही हम थोड़ा-थोड़ा जानते हैं। इसके साथ और एक विशाल गंभीर चिंतनधारा बह रही है, इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए मैं कई सालों से भारतीय दर्शन की आलोचना किया करता था। आप मुझे माफ कर देना।"

इसके बाद विपिनचन्द्र का यश चारों ओर फैल गया। युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति मैक किनले के साथ भी विपिनचन्द्र का साक्षात्कार हुआ था। इस प्रकार विपिनचन्द्र ने सबका मन मोह लिया।

इसके बाद विपिनचन्द्र को वोस्टन शहर के 'मैसाचुसेटस मराल एजुकेशन सोसाइटी' में भाषण के लिए बुलाया गया। इस अधिवेशन में एक महिला सभानेत्री थीं। विपिनचन्द्र के सभा में उपस्थित होने के बाद एक वृद्ध क्रिस्तान पादरी ने

भाषण देते समय भारतवर्ष के बारे में कहा– "भारतवर्ष के लोग गाय की पूँछ चुम्बन को धर्म सोचते हैं। वे पवित्रता लाभ के लिए गोबर खाते हैं। गोमांस की अपेक्षा गोबर खाना उनको सही लगता है।" फिर अन्य धर्मों के बारे में उन्होंने अनेक बातें कही।

पादरी साहब का भाषण इतना अनुदार एवं असत्य था कि लोग सभागृह छोड़कर बाहर जाने लगे थे। उसके बाद विपिनचन्द्र की बारी थी। अधिवेशन के वे अंतिम वक्ता थे। पादरी साहब के भाषण से विपिनचन्द्र को भीषण चोट पहुँची। उन्होंने प्रतिवाद स्वरूप कहा– "माननीय सभानेत्री, समवेत भद्रमहिला एवं भद्रमहोदयगण, मैं आपके विचार से अधार्मिक हूँ। (हीदेन) जो ईसाई नहीं है, आपके विचार से वह अधार्मिक है। किन्तु मैं ईसाई नहीं हूँ यह बोलने में बिन्दुमात्र लज्जा बोध नहीं करता हूँ। दो साल पहले जब मैं देश छोड़कर यहाँ आया था उस समय ईसाई श्रोतृमण्डली के पास इसे स्वीकार करने में कुछ संकोच बोध होता था। किन्तु अब मैं ईसाई नहीं हूँ यह बोलने में मुझे गर्व बोध होता है। यह सब बोलने के लिए मैं इस सभा में नहीं आया था, पर ईश्वर का विधान इस प्रकार है।" उनकी बातें सुनकर जिन्होंने सभागृह त्याग किया था वे पुनः लौट आए एवं ताली बजाकर देकर वक्ता की अभ्यर्थना करने लगे।

उसके बाद विपिनचन्द पादरी साहब की उक्ति का जबाब देने लगे। पादरी साहब का कहना था कि ईसाई धर्म के बाहर नीति शिक्षा का कोई मूल नहीं मिलता है। विपिनचन्द्र ने कहा– "जो धर्म कहता है मनुष्य का जन्म पाप से हुआ है, वह धर्म नीति का मूल छेदन करता है। 'मनुष्य का जन्म पाप से एवं परिणाम अनन्त नरक' इस मतवाद को सभ्य समाज ने परित्याग किया है। नीति शिक्षा देना सभा का उद्देश्य है, किन्तु तुम्हारी नीति शिक्षा देखकर मैं विभ्रांत हो जाता हूँ। समझ में नहीं आता कि तुम लोग देवता हो या मूर्ख हो। बाइबिल में है – ईश्वर बोले थे 'रोशनी हो' साथ–साथ चारों ओर प्रकाश फैल गया था। तुम्हारे पादरी बोलते हैं 'साधु हो जाओ।' तुम सब साधु हो जाते हो। 'संयमी हो जाओ' बोलने पर तुम लोग संयमी हो जाते हो। यदि यह सत्य है तो तुम लोग मनुष्य नहीं, देवता हो। और यदि यहं सत्य नहीं है तो तुमलोग मूर्ख हो। कुछ भी नहीं समझते हो।" अनन्तर उन्होंने ईसाई ग्रन्थों की नीति कथा प्रचार के साथ उनके आचरणगत प्रभेद के बारे में उल्लेख किया। किन्तु इससे श्रोतृमण्डली के भीतर विरोध की भावना दिखलाई नहीं पड़ी। विपिनचन्द्र ने कहा– यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि मैंने उनकी सभ्यता एवं साधना के ऊपर इस प्रकार तीव्र आक्रमण किया फिर भी कोई क्रुद्ध नहीं हुआ। कोई सभा छोड़कर नहीं गया वरन बार–बार ताली बजाकर सभी मेरा समर्थन करने लगे।" इस प्रकार मानसिक उदारता अमेरिका के

अलावा और कहीं मिलेगा या नहीं संदेह है और आश्चर्य की बात यह है कि सभा सुबह शुरू हुई थी। सभाभंग के बाद विपिनचन्द्र होटल में लौटकर मध्याह्न भोजन के बाद जब बाहर आये तब देखा कि उनका भाषण संवाद पत्र में प्रकाशित हो गया है। उसके बाद वे जितने दिन वोस्टन में थे, प्रतिदिन अमेरिका के विभिन्न स्थानों से उनके भाषण के प्रसंग में पाठक–पाठिकाओं से पत्र मिलते थे। किसी ने धन्यवाद दिया है तो किसी ने ईसाई धर्म की नीति एवं सभ्यता का पक्ष लेकर समर्थन करने की चेष्टा की है। इसके साथ विभिन्न स्थानों से भाषण के लिए आमंत्रण पत्र भी मिलता रहा। किन्तु उनके देश में लौटने का समय हो गया था। जहाज का टिकट भी बन गया था। इसलिए उनके आमंत्रण की रक्षा संभव नहीं हुई। उन्होंने न्यूयार्क से लिवारपुर प्रस्थान किया। इस प्रकार विजयी वीर की तरह वे अमेरिका से भारत लौटे थे।

विपिनचन्द्र को हमने वाक्पटु, सुवक्ता एवं भारत के सम्मान रक्षक रूप में देखा है किन्तु जिस दिन एक भारतभक्त अज्ञातनामा व्यक्ति उनसे कहे थे कि भारतवर्ष ही 'टीचर ऑफ द वर्ल्ड' है पर पराधीन भारत को जगत् इस प्रकार कभी भी ग्रहण नहीं करेगा मानों उसी दिन से उनको स्वाधीनता अर्जन करने का मंत्र मिला।

देश–नायक के रूप में उन्होंने वृहत्तर कर्म–जीवन में आत्मप्रकाश किया था। स्वाधीनता प्राप्ति ही अभी सर्वप्रधान कार्य है। यह एक अमेरिकावासी के पास से जानकर उन्होंने कृतज्ञता के साथ कहा है, **"जातीय स्वाधीनता लाभ ही आधुनिक भारत की सब साधनों की अपेक्षा अभी मुख्य साधना है। इसे अपने सम्पूर्ण ज्ञान एवं भाव द्वारा नहीं जान सका था। मार्किन प्रवास से यही था मेरा सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ लाभ का विषय।"**

अब तक सांवादिकता साहित्य एवं धर्मीय प्रचार उन के लिए मुख्य साधना का विषय था पर विदेश से आने के पश्चात् राजनीति चर्चा उनकी साधना का मुख्य केंद्र हो गई। इसके फलस्वरूप 1901 सन् के 12 अगस्त को उन्होंने अंग्रेजी साप्ताहिक 'न्यू इंडिया' प्रकाशित किया। देशबन्धु चिरंजनदास एवं उनके भतीजे सत्यरंजनदास डायरेक्टर रूप में इसके साथ युक्त थे। इस साप्ताहिक का बहिरंग परिचय था आधुनिक चिंतनधारा जीवनचर्या की पर्यालोचना एवं साप्ताहिक विवरणी प्रदान, किन्तु इसका अंतरंग उद्देश्य था –" For God, Humanity and fatherland." 'न्यू इंडिया' नाम के नीचे यह मुद्रित रहता था। इस प्रकार विपिनचन्द्र पाल का 'न्यू इंडिया' पहले दो साल राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा आदि विषयों में मनोयोग दिया था, किन्तु 1904 ई० के जनवरी से बंग–भंग के विरूद्ध प्रतिवाद करने लगा। विपिनचन्द्र 1904 ई०, 7

जनवरी को प्रकाशित 'दि पार्टिशन ऑफ बेंगाल' शीर्षक लेख में बंग–भंग के विरुद्ध बोलने के साथ–साथ लार्ड कर्जन के उद्देश्य में भविष्यवाणी की, "य़द्यपि इस प्रकार के असंतोष का मूल्य अभी नहीं है फिर भी इसका एकत्रित फल ऐसा आकार धारण कर सकता है कि एकदिन उसे दमन करना सरकार के लिए असंभव होगा।" इस प्रकार दूरदर्शिता एवं भविष्यवाणी सचमुच विस्मयकर थी, इसलिए 1911 ई० के दिसम्बर में प्रबल विरोधी जनमत के कारण बंग–भंग रद्द हुआ था।

रविन्द्रनाथ इस पत्रिका के नियमित पाठक थे। पत्रिका की सांवादिकता के बारे में अपनी उच्च धारणा को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया– 'न्यू इंडिया' अंग्रेजी पत्रिका को हम श्रद्धा के साथ पढ़ते हैं। इसकी रचना में पाठक का मन बहलाने का सहज कौशल नहीं है। संपादक के लेखों में रस एवं गंभीरता है। उसमें बल का अभाव नहीं है फिर भी हर कदम पर संयम का परिचय मिलता है। उनके लेख दैनन्दिन संवादों की तुच्छता को भेद करके शीर्ष स्थान पर स्थित हैं।"

विपिनचन्द्र जिस उद्देश्य साधन के लिए आविर्भूत हुए थे उसका कार्य पूर्ण रूप से तब तक प्रारम्भ नहीं हुआ था। उस समय देश में स्वदेशी आंदोलन का अग्निमय युग प्रारंभ हुआ था किन्तु देश–नायकों के आपसी मतभेद के कारण कांग्रेसी राजनीति नरमपंथी एवं गरमपंथी दो शिविरों में विभक्त हो गई। सुरेन्द्रनाथ का 'बेंगाली', मोतीलाल का 'अमृतबाजार पत्रिका', काली प्रसन्न का 'हितवादी' आदि नरमपंथी दल का मुख्य पत्र था। गरमपंथी दल की इस प्रकार की कोई पत्रिका नहीं थी। विपिनचन्द्र ने कालीघाट के हरिदास हालदार एवं श्रीहट्ट के क्षेत्रमोहन सिंह की सहायता से 'प्रदीप' पत्रिका एवं क्लासिक प्रेस के स्वत्वाधिकारी बिहारीलाल चक्रवर्ती की सहायता से 'वन्दे मातरम्' पत्रिका गरमपंथी दल के मुख्य पत्र के रूप में 1906 ई०, 7 अगस्त को प्रकाशित किया। पत्रिका का मूल मंत्र था 'इंडिया फॉर इंडियान्स' मानों यह महात्माजी की 'क्वीट इंडिया' घोषणा की प्राक्वाणी थी। शक्तिशाली पत्रिका के लेखक थे विपिनचन्द्र, अरविन्द घोष, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, हेमेन्द्र प्रसाद घोष, विजय चटर्जी आदि। पत्रिका के परिचालन में श्री अरविन्द के अवदान के बारे में विपिनचन्द्र बताते हैं – "शुरू से ही ये अधिनायक इसके साथ युक्त थे। इनका निर्भीक मनोभाव, बलिष्ठ चिंतनधारा, स्पष्ट धारणा समूह एवं शुद्ध शक्तिशाली रचना कौशल ज्वालाप्रद उपहास एवं मार्जित रसिकता अतिक्रम करना किसी भी भारतीय या अभारतीय पत्रिका के लिए असंभव था। यह पत्रिका देश के भीतर एक शक्ति में रुपान्तरित हुई थी। इससे चाहे जितना भी भय करें या घृणा करें इसकी उपेक्षा करना किसी के लिए भी संभव नहीं था। अरविन्द थे इसके केन्द्रीय पुरुष, इसके अग्रनायक

आत्मा।" अरविन्द ने स्वीकार किया था, **"निष्क्रिय प्रतिरोध या पैसिम रेजिस्टेंस नीति के आदि प्रवक्ता विपिनचन्द्र ही थे। Bipin Chandra Pal, the prophet and first preacher of passive resistance.** सन् 1908 ई०, 30 अप्रैल को बम के आघात से मजफ्फरपुर में मिसेस एवं मिस केनेडि की मृत्यु हुई। गुप्तहत्या के प्रति विपिनचन्द्र का समर्थन नहीं था। 'वन्देमातरम्' पत्रिका में उन्होंने इसका उल्लेख किया था।

उस सन् के अगस्त महीने में विपिनचन्द्र दूसरी बार विदेश गए। उस समय से जीवन के अंतिम दिन तक उन्होंने कई पत्रिका का प्रकाशन एवं संपादन किया था। 1909 ई० सन् के मार्च महीने में 'स्वराज' नामक पाक्षिक पत्रिका लंदन से प्रकाशित हुई थी। 1911 ई० सन् के मार्च महीने में 'इंडियन स्टुडेन्ट' नामक और एक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित हुई। उसी साल सितम्बर महीने में लंदन से लौटकर 'हिन्दू रिव्यू' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका उन्होंने संपादित की। उसके बाद विपिनचन्द्र ने और किसी पत्रिका का स्वयं प्रकाशन नहीं किया था। लेकिन जीविका के लिए उन्होंने किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा परिचालित साप्ताहिक, दैनिक या मासिक पत्र–पत्रिका में संपादक रूप में कार्य किया था, किन्तु इस जीविका के साथ उनके आदर्श का संघर्ष होने पर वे उस पत्र या पत्रिका से अलग हो जाते थे। 1919–20 ई० में उन्होंने इलाहाबाद में 'दि डेमोक्रेट' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक एवं 'दि इंडिपेंडेन्ट' नामक अंग्रेजी दैनिक पत्रिका का संपादन किया था। उस समय कोलकाता से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक 'लिबर्टि' के संपादक रूप में भी वे कार्य किये थे। उसके बाद उनका शेष उल्लेखनीय अवदान था विख्यात अंग्रेजी दैनिक 'बेंगाली' के संपादक रूप में। सन् 1924, 17 जून से सन् 1925, 13 मई तक उन्होंने यह कार्य किया था। 1925 ई० में डा0 गोपालचन्द्र चटोपाध्याय के साथ मासिक पत्रिका सोनार बांगला के संपादक रूप में वे युक्त हुए। उनका सांवादिक जीवन का सर्वशेष संयोग था 'हिन्दू' नामक साप्ताहिक अंग्रेजी पत्रिका के साथ। 1932 ई० के फरवरी महीने के शेषभाग से उनके अंतिम दिनों तक यह संयोग रहा। इस पत्रिका का दायित्व ग्रहण करते समय उन्होंने घोषणा की थी, "मैं किसी संकीर्ण सांप्रदायिक उद्देश्य या आदर्श के साथ अपना कर्म युक्त नहीं कर रहा हूँ। मैं एक हिन्दू हूँ एवं अपने संप्रदाय की संस्कृति के लिए मैं गर्वित हूँ। किन्तु देश में अन्यान्य संस्कृति एवं संप्रदाय के मनुष्य हैं जो देश की साधारण जीवनधारा एवं यौगिक संस्कृति के तुल्य दावेदार हैं। इसलिए भारतवर्ष केवल हिन्दू का ही नहीं, मुसलमान, ईसाई, यहूदी एवं अन्यान्य संस्कृति एवं संप्रदाय के मनुष्य, जिन्होंने इस देश को वासभूमि रूप में ग्रहण किया है, भारतवर्ष समान रूप में उन सबका देश है।"

विपिनचन्द्र का सांवादिक जीवन यहीं समाप्त हुआ। अब देश–नायक रूप में उनका परिचय दिया जाएगा। 1885 ई० में भारतीय जातीय कांग्रेस का जन्म हुआ। अगले वर्ष कांग्रेस के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने श्रीहट्ट के प्रतिनिधि रूप में योगदान किया। चेन्नई में अनुष्ठित तृतीय अधिवेशन में उनका भाषण सर्व भारतीय ख्याति अर्जन किया था। तीस साल के युवक विपिनचन्द्र सभा में बोले थे– "मैं ब्रिटिश सरकार के प्रति आनुगत्य पोषण करता हूँ क्योंकि मैं स्वायत्त शासन पसन्द करता हूँ (उल्लास ध्वनि) मैं ब्रिटिश सरकार के प्रति अनुगत हूँ क्योंकि मैं कांग्रेस से प्यार करता हूँ।"

ब्रिटिश सरकार बंग–भंग में कृत–संकल्प होने पर कोलकाता टाऊन हाल में उपस्थित जनता ने बंग–भंग विरोधी आंदोलन का संकल्प लिया एवं प्रतिक्रियास्वरूप उसी सभा में विदेशी वस्तुओं के वर्जन का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। इसके साथ स्वदेशी आंदोलन का जन्म हुआ एवं सहस्त्र कण्ठों में ध्वनित हुआ बंकिमचन्द्र का 'वन्देमातरम्' संगीत, स्वदेशी आन्दोलन का मूल मंत्र था। उसी समय देश–नायक के रूप में विपिनचन्द्र का नवजन्म हुआ। 1904 ई० के शेषभाग से विपिनचन्द्र के मन में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मनोभाव सृष्टि हुई। 'न्यू इंडिया' में उन्होंने लिखा– "इंग्लैंड स्वेच्छापूर्वक भारतवासी को दीर्घकाल के दासत्व से मुक्ति लाभ में सहायता करेगा एवं यथेष्ट मूल्यवान स्वाधीन सरकारी संस्था समूहों को भारतवासीयों के लिए स्थापना करेगा – यह विश्वास था किन्तु अब वह आशा निर्मूल हो गई है। "उस समय विपिनचन्द्र बंग–भंग विरोधी आन्दोलन के प्रधान वक्ता थे एवं ब्रह्मबांधव उपाध्याय सहयोगी रूप में उनके साथ थे।

कोलकाता टाउन हाल में जो वर्जन (बायकाट) प्रस्ताव ग्रहण किया गया था, उस वर्जन नीति की संज्ञा विस्तारित रूप में विपिनचन्द्र ने 'न्यू इंडिया' में व्याख्या पूर्वक, विदेशी शासक जाति के साथ, सर्वप्रकार की सहयोगिता वर्जन की बात एवं स्वायत्त शासन लाभ ही भारतीय राजनैतिक आदर्श का चरम लक्ष्य, है यह घोषणा की।

स्वदेशी आंदोलन सम्पूर्ण बंगाल में फैल गया और इसके साथ सरकारी अत्याचार की बात का भी प्रचार होने लगा। वरिशाल ही था सरकारी स्वेच्छाचारिता का निकृष्टतम दृष्टांत स्थल, क्योंकि इस आंदोलन का यह वृहत्तम् केन्द्र था। पूर्वी बंगाल के वरिशाल में इस आन्दोलन की प्रबलता का कारण थे श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के अनन्यतम शक्तिशाली दो शिष्य वरिशालरत्न अश्विनी कुमार दत्त एवं मनोरंजन गुहठाकुरता। इन्होंने इस दिशा में दृढ़ता के साथ कार्य किया था। सरकार ने गोरखा सेना की सहायता से 'स्वदेशी' एवं 'वन्देमातरम्' के विरूद्ध सशस्त्र अभियान चलाया था। उस समय मनोरंजन गुहठाकुरता के पुत्र चितरंजन लाठी की चोट से घायल हो गए थे। वे वन्देमातरम् आन्दोलन के प्रथम शहीद माने जाते हैं।

सरकार के अत्याचार के विरुद्ध क्षुब्ध होकर भगिनी निवेदिता दृप्तकण्ठ में बोली थीं– "धिक्कार है मेरी जन्मभूमि का! Shame on my country of origin. जब तक भारत के संतानगण अपने त्याग एवं वीरत्व द्वारा बंगाल के इस अपमानजनक विभाजन चिह्न को मिटाने के लिए अंग्रेजों को मजबूर नहीं करता है एवं जब तक अंग्रेज हमारे साथ सम्मानीय व्यवहार नहीं करता है, तब तक हमारा संग्राम चलता रहेगा।" उल्लेखनीय है कि उस समय निवेदिता दार्जिलिंग में अस्वस्थ थीं। स्वामी विवेकानन्द के देहत्याग के बाद निवेदिता श्री रामकृष्ण मिशन के साथ संबंध तोड़कर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में शामिल हुई थीं। उस समय विपिनचन्द्र ने 'वन्देमातरम्' में घोषणा की कि ब्रिटिश नियंत्रणमुक्त स्वायत्त शासनाधिकार लाभ का उपाय है निष्क्रिय प्रतिरोध जिसका अर्थ है ऐच्छिक एवं अवैतनिक किसी भी सरकारी कार्य को अस्वीकार करने का संकल्प लेना, क्योंकि निष्क्रिय प्रतिरोध सार्थक होने से प्रचलित शासनयंत्र अचल हो जाएगा। 1906 ई० के प्रथम भाग में अरविन्द घोष ने बंगाल के इस आन्दोलन में योगदान दिया। इसके फलस्वरूप इस आंदोलन ने समग्र भारतवासी का हृदय स्पर्श किया। बंगाल के राजनैतिक आन्दोलन के प्राण पुरुष विपिनचन्द्र, अरविन्द, ब्राह्मबांधव, अश्विनी कुमार के साथ महाराष्ट्र केशरी बालगंगाधर तिलक एवं पंजाब केशरी लाला लाजपत राय युक्त हुए। भारत के स्वाधीनता संग्राम में लाल–बाल–पाल की भूमिका से सभी परिचित हैं।

1907 ई० विपिनचन्द्र के जीवन का एक प्रमुख समय था। उस साल के प्रथमार्द्ध तक उन्होंने समग्र बंगलादेश के साथ ही इलाहाबाद, वाराणसी, कटक एवं दक्षिणभारत का भ्रमण किया था। उनके प्रवचन से सभी स्थानों में लोगों के भीतर विदेशी शासकों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हुई। अंग्रेज शासकों की दृष्टि विपिनचन्द्र पर पड़ी एवं उन्हें राजद्रोही माना गया। 10 मई को लाला लाजपत राय को निर्वासन दण्ड का संवाद प्रकाशित होने पर अवशिष्ट कार्य असमाप्त रखकर विपिनचन्द्र कोलकाता लौटे। बंगाल में उन्हें दिग्वजयी वीर के रूप में सम्मान दिया गया। विपिनचन्द्र शक्ति उत्सव में भाषण देते समय 25 मई को कोलकाता में अनुष्ठित रक्षा काली मंदिर के सामने 108 श्वेत बकरे को बलि चढ़ाने का उपदेश दिये। श्वेत बकरे का अर्थ समझकर यूरोपीयगण एंग्लो इंडियन पत्र समूह में विपिनचन्द्र को दंडित करने का प्रयास किया। अल्प दिनों में फौजदारी मुकदमा में फँसाकर विपिनचन्द्र को जेल भेजा गया। इससे उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण अध्याय की शुरुवात हुई। सरकार ने स्वराज्य आन्दोलन को दबाने के लिए संवादपत्र की तरफ ध्यान दिया क्योंकि 'वन्देमातरम्' एवं 'युगांतर' पत्रिका में कुछ आपत्तिजनक सामाग्री छपी थी। 26 मई को वन्देमातरम् ऑफिस में तलाशी के समय वन्देमातरम् के साथ संयुक्त किसी व्यक्ति के उद्देश्य में विपिनचन्द्र का

लिखा एक पत्र पुलिस को प्राप्त हुआ। उस पत्र का पर्यवेक्षन करने के लिए चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की अदालत में विपिनचन्द्र को हाजिर होने का आदेश दिया गया। अदालत में विपिनचन्द्र शपथ लेने के पहले ही बोल उठे – "इस मुकदमा के लिए शपथ ग्रहण करना या अन्य किसी तरह अंश ग्रहण करना मुझे विवेक–सम्मत नहीं लगता है।" हाकिम द्वारा आपत्ति का कारण पूछने पर विपिनचन्द्र बोले, "इस फौजदारी मुकदमा के शुरू होने के समय से मैं मन–प्राण से यही विश्वास करता था कि इस प्रकार का कार्य अन्यायपूर्ण एवं जन–साधारण के लिए हानिकर है।" मुकदमा के दूसरे दिन भी उन्होंने अदालत के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। फलस्वरूप उनके विरुद्ध अदालत अवमानना का अभियोग भी चलाया। देशबंधु चितरंजनदास एवं रजतराय ने विपिनचन्द्र का समर्थन किया था। इस विषय में विपिनचन्द्र ने निर्भय होकर अदालत को जबाब दिया था– "फलाफल जो भी हो मैं उसकी परवाह नहीं करता। कानून की व्याख्या पर मैं खड़ा नहीं हूँ। मैं खड़ा हूँ अपने अधिकार के लिए, वह अधिकार प्रत्येक मनुष्य का जन्मगत अधिकार है एवं उसी अधिकार से मैं बोल रहा हूँ – मेरा विवेक इसके विरुद्ध है एवं मेरा विवेक इस प्रकार अन्यायपूर्ण फौजदारी मुकदमा में सहायता करने के लिए मुझे बलपूर्वक रोक रहा है। इसके लिए यदि मुझे सजा भी हो तो ठीक है।"

10 सितम्बर को विपिनचन्द्र को छः महीने के लिये बिनाश्रम कारादंड का आदेश मिला। ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने इस प्रसंग में 'संध्या' पत्रिका में लिखा, "हम लोगों के विपिनचन्द्र कल जेल गए हैं। जिनके नाम का उच्चारण करने पर समग्र भारत आलोड़ित होता है, जिनके राजनैतिक व्याख्यान से हिन्दुस्तान का जाति समूह मुग्ध है उसी विपिनचन्द्र को वे लोग कल जेल भेजे हैं। विपिनचन्द्र का यह कारावरण इतिहास में लिखा रहेगा। पुरुषानुक्रम से सब नर–नारी के हृदय में यह मुद्रित रहेगा।"

पहले प्रेसिडेंसि फिर वक्सर जेल में छः महीना कारावास के बाद विपिनचन्द्र 1908 ई०, 9 मार्च को रिहा हुए। निर्जन कारावास से उनके अन्तःकरण में विशेष परिवर्तन हुआ। उन्होंने भारत के जातीय आन्दोलन में भगवत्इच्छा का प्रकाश प्रत्यक्ष किया। यह केवल भारत के बंधन मोचन की ही नहीं, मानवात्मा की मुक्ति भी इसके अंतर्गत है, यह स्पष्ट रूप में उन्होंने घोषणा की। अरविन्द ने भी आलीपुर बम मुकदमा से मुक्तिलाभ के बाद उत्तरपाड़ा धर्मरक्षिणी सभा में यही बात कही थी। उन्होंने कहा था– **"विपिनचन्द्र पाल जब जेल से निकले थे, एक वाणी लाये थे वह वाणी थी दिव्य प्रेरणालब्ध वाणी। विपिनचन्द्र बक्सर जेल में जो प्रेरणालब्ध वाणी प्राप्त किये थे, ईश्वर ने आलीपुर में मुझे वही**

वाणी प्रदान की है।"

मुक्तिलाभ के बाद विपिनचन्द्र को कोलकाता के नागरिकों ने हावड़ा स्टेशन पर सम्मानित किया। कोलकाता में पाँच दिन तक नर–नारायण भोजन उत्सव मनाया गया। चेन्नई, महाराष्ट्र, बरोदा आदि स्थानों में आनन्द उत्सव मनाया गया।

'वन्देमातरम्' में श्री अरविन्द ने विपिनचन्द्र की कारामुक्ति के उपलक्ष्य में लिखा – **"आज हम विपिन पाल को नहीं ईश्वर प्रदत्त वाणी के प्रवक्ता का स्वागत कर रहे हैं। मनुष्य को नहीं जातीयतावाद की वाणी के मूर्तिमान कण्ठ का स्वागत कर रहे हैं। उनका स्वागतम् है, बारम्बार स्वागतम् है।"**

28 मार्च को उनके सम्मान में मोतीलाल धोष के सभापतित्व में फेडरेशन हाल के प्रांगण में एक अनुष्ठान हुआ। वहाँ उनको पाँच हजार रुपए देने का निर्णय होने पर विपिनचन्द्र व्यक्तिगत प्रयोजन से वह अर्थ लेने में राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं अर्ध गृही, अर्ध संन्यासी हूँ। कल क्या होगा, उसके लिए आज संचय नहीं करता। मैं अपने आप को देश माता के चरणों में अर्पण करके धन्य हुआ।" मेरा विवेक यह नहीं चाहता है इसलिए मैं यह अर्थ ग्रहण नहीं कर सकता। मेरी यह अस्वीकृति बंधु–महल में क्षमायोग्य है, यह मैं आशा रखता हूँ। इसलिए आप लोगों का दिया हुआ यह प्रीति उपहार मैं श्रद्धा के साथ आप लोगों के हाथ में प्रत्यर्पण कर रहा हूँ। यदि देश का कोई कार्य उपस्थित हो एवं आप लोगों का यह सेवक उस कार्य करने का उपयुक्त हो तो, आप लोगों की आज्ञानुसार यह अर्थ मेरे द्वारा खर्च होगा।"

विपिनचन्द्र सर्वदा देश के सेवाकार्य में व्यस्त रहते थे। वे अपने गुरुजी की तरह ईश्वर पर निर्भर रहते हुए सब कार्य करते थे। वे संचय करने के विरुद्ध थे। उनके परिवार को काफी कठिन परीक्षाओं के दौर से गुजरना पड़ा। विदेश में विपिनचन्द्र के रहते समय, देशबन्धु चित्तरंजनदास एवं कृष्णकुमार दत्त प्रति महीने सौ रुपए उनके परिवार वर्ग को देते थे।

भारत की राजनैतिक अवस्था के प्रचार के लिए 1908 के अगस्त में द्वितीय बार विदेश यात्रा के समय उनको यह अर्थ दिया गया। उस समय कई भारतीय देशभक्त विदेश में रहकर देश के लिए कार्य कर रहे थे। उन लोगों में श्यामजी कृष्ण वर्मा नामक एक भारतीय उस समय यूरोप में थे। किन्तु वे लोग संत्रासवादी थे अर्थात् राजनैतिक कारण से गुप्त हत्या के पक्ष में थे और इसके घोर विरोधी थे विपिनचन्द्र। अतः आदर्श के संघर्ष के कारण उन लोगों का समर्थन उन्होंने नहीं किया। विदेश की कुछ सभा में भाषण देकर 1911 सन् के सितम्बर महीने में वे देश लौटे। विदेश में रहते समय 'स्वराज' नामक स्व–संपादित पत्रिका में

विपिनचन्द्र ने लिखा था कि सरकारी दमननीति ही भारतवासी को बम बनाने की ओर ले गई है। इस लेख में राजद्रोह की आशंका से विपिनचन्द्र के मुम्बई में उतरते ही ब्रिटिश प्रशासन ने उनको एक महीने का श्रमशून्य कारादण्ड दिया। उन्होंने देश लौटने पर राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिए पुनः लेख प्रकाशित करना आरम्भ किया। 1916 ई० में लोकमान्य तिलक द्वारा भारत में होमरूल लीग स्थापित हुई। विपिनचन्द्र इस आन्दोलन में योगदान दिए एवं 1916 ई० में लखनऊ में अनुष्ठित कांग्रेस के सम्मिलित अधिवेशन में तिलक के साथ पुनः कांग्रेस में प्रवेश किये।

मुम्बई में 1918 ई०, 29 अगस्त की कांग्रेस सभा में भारतीय जन संस्कार के लिए जो परिकल्पना घोषित हुई, उससे ब्रिटिश सरकार को सावधान कराने के लिए 1919 ई० सन् जुलाई महीने में भारतीय जातीय कांग्रेस का एक प्रतिनिधिदल विदेश गया। उस प्रतिनिधि दल के नेता थे विपिनचन्द्र। उस संवर्धना सभा में विपिनचन्द्र श्रोतृमण्डली की उल्लास ध्वनि के बीच खड़े होकर बोले कि विदेश में उनका पहला कार्य होगा, "जलियावाला बाग के हत्याकांड की भयंकरता के बारे में ब्रिटेन को सावधान कराना एवं द्वितीय कार्य होगा संप्रति लार्ड सिंह का भारतीय नारी संबंध में प्रदत्त भाषण का प्रतिवाद करना।" इस बार विपिनचन्द्र ने विदेश जाने की अभिज्ञता से 'दि न्यू इकानामिक मिनेस टू इंडिया' नामक ग्रंथ की रचना की। अंग्रेज सरकार किस प्रकार अर्थनैतिक दासत्व में भारत को आबद्ध करना चाहती है एवं राजनैतिक बंधन पाश को दृढ़तर कर रही है, इस ग्रंथ में विपिनचन्द्र ने स्पष्ट बताया है। उन्होंने इस बंधन से बचने के लिए भारतीय श्रमिकों के लिए संगठन स्थापना करने का प्रस्ताव दिया और कहा कि भारतीय एवं ब्रिटिश श्रमिक के लिए समान पारिश्रमिक की व्यवस्था करनी होगी एवं काम करने का समय भी समान करना होगा। विपिनचन्द्र के इस भविष्य चिन्ता के फलस्वरूप 1920 ई० में ट्रेड युनियन कांग्रेस स्थापित हुई एवं 1926 ई० में इसकी कार्यावली विधि सम्मत की गई।

कृषि के ऊपर एकांत निर्भरशील न होकर उत्पादनमूलक शिल्पकर्म प्रवर्तन की प्रयोजनीयता के बारे में भी उन्होंने इस ग्रंथ में लिखा था। यंत्रचालित शिल्प को प्राधान्य देने के विरुद्ध उन्होंने सतर्क किया था कि यंत्र नियोग से प्रति 20 जन कर्मरत श्रमिकों के आधे श्रमिकों के कर्मच्युत होने की संभावना है। उन्होंने स्पष्ट कहा "आवश्यक द्रव्य उत्पादन के लिए व्यवहृत श्रम ह्रासकारक यंत्र समूह वास्तव में श्रमिकों के लिये उपवासकारक बन जाता है।" इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि यांत्रिकता के विरुद्ध इस प्रकार गाँधीजी, रवीन्द्रनाथ आदि सभी मनीषीगण ने भी सतर्क किया था।

संभवतः विपिनचन्द्र ही प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने गणतांत्रिक स्वराज को एक सुस्पष्ट संज्ञा दी थी। युक्त राष्ट्रीय व्यवस्था ही गणतंत्र विकास का असली पथ है, इसका निर्देश भी उन्होंने दिया था। इस उद्देश्य से भाषा की समानता पर प्रदेशों को संगठित करना होगा और ये प्रदेश भारतीय युक्तराष्ट्र के अंग होंगे। जिलों को भी इस प्रकार प्रबन्ध करके, गाँवों को उसी आदर्श पर गठित करना पड़ेगा। इस प्रकार से भारतीय युक्तराष्ट्र की मूल रचना होगी। विपिनचन्द्र ने कितने दिन पहले इस आदर्श की बात सोची थी, आज इसे सोचने से विस्मय का संचार होता है।

1921 ई० में विपिनचन्द्र वरिशाल में अनुष्ठित बंगीय प्रादेशिक सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में सभापति निर्वाचित हुए। उस सभा में उन्होंने असहयोग आंदोलन का समर्थन किया पर उसकी कार्य पद्धति से वे सम्मत नहीं हुए थे। इस बारे में उन्होंने विस्तृत व्याख्या एवं विश्लेषण किया एवं युक्त राष्ट्रीय व्यवस्था पर जोर लगाया। किन्तु प्रतिनिधि गण को वह मंजूर नहीं होने के कारण तीव्र मतभेद उभरे। इसी प्रकार विभिन्न मतभेदों के कारण से कांग्रेस के साथ उनका संपर्क नहीं रहा, एवं जन–जीवन के साथ वे विच्छिन्न होने लगे।

असहयोग आन्दोलन में उनके विरोध के कारण संवादपत्र, भाषण संस्थायें आदि उनके साथ असहयोग करने लगे। इस प्रकार विवेक के निर्देश पालन करने के लिए यद्यपि जन–समाज द्वारा वे उपेक्षित हुए किन्तु असंख्य दुःख, दरिद्रता एवं अपमान सहकर भी वे देशसेवा से बिन्दुमात्र पीछे नहीं हटे।

1923 ई० में विपिनचन्द्र ने भारतीय विधानसभा में योगदान के लिए निर्वाचन में भाग लिया। कांग्रेस प्रार्थी निर्मलचन्द्र उनके विरोधी थे। विपिनचन्द्र कांग्रेस प्रार्थी से प्रायः दुगुने अधिक वोट से निर्वाचित हुए। इससे पता चलता है कि देशवासी विपिनचन्द्र के प्रति कितनी अधिक आस्था रखते थे।

विपिनचन्द्र राजनैतिक कारण से गुप्त हत्या के विरुद्ध थे। इसलिए जब कुमारी वीणा दास गर्वनर स्टेनलि जेकसन की हत्या के लिए सचेष्ट हुई थी, विपिनचन्द्र इसके विरुद्ध थे। उन्होंने महात्मा गाँधी के आईन अमान्य आंदोलन का समर्थन नहीं किया था। उनका कहना था कि आइन अमान्य करने की प्ररोचना देने पर शायद सरकार को निष्क्रिय किया जा सकता है किन्तु एकबार यह अभ्यास होने पर परिवर्तित अवस्था में भी स्वस्थ परिवेश की सृष्टि नहीं की जा सकेगी। उन्होंने स्पष्ट कहा– "मैं गाँधी नीति का, गाँधी अभियान का विरोधी हूँ क्योंकि यह नीति एवं इस अभियान का लक्ष्य है, वर्तमान सरकार की सरकार हीन अवस्था या महात्मा का पुरोहित तंत्र सुलभ एकनायकत्व की प्रतिष्ठा करना।" किन्तु देश उस

समय महात्मा गाँधीजी के निर्देश से चलता रहा। इसलिए विपिनचन्द्र राजनैतिक मंच से हट गए। किन्तु किसी विषय पर या किसी के प्रति उनका अभियोग नहीं था। उनका अभिमत प्रकाश का अन्य उपाय न रहने से यूरोपीय परिचालित संवाद पत्र की सहायता उन्होंने ग्रहण की। 'स्टेट्समेन' ने लिखा "इन सब संवाद पत्रों में उन्होंने कोई अभियोग नहीं किया है क्योंकि विपिनपाल सब प्रकार के क्षोभ एवं असंतोष के ऊपर थे। दुःख का विषय यह है कि जिन्होंने भारत की सेवा में अपना सब कुछ दान किया हैं, एकदिन जिनके कण्ठ एवं लेखनी की वाणी से देशवासी ने जातीयता वाद के गभीर तात्पर्य की शिक्षा प्राप्त की थी, अब परिपक्व अभिमत के अधिकारी होने के कारण उनके द्वारा भारत की अधिकतर सेवा होती पर देशवासी द्वारा वे वंचित हुए।"

उनके जीवन का अंतिम समय आ गया था। संन्यास (Apoplexy) रोग से उनकों अचानक इहलोक त्याग करना पड़ा। 1932 ई०, 20 मई, शुक्रवार को दोपहर डेढ़ बजे उन्होंने देह त्याग किया। उस समय उनकी पाँच कन्या एवं तीन पुत्र थे।

विपिनचन्द्र ने असमान्य प्रतिभा लेकर जन्म ग्रहण लिया था। वे कौन थे ? क्या बोलते थे ? चिंतन की प्रेरणा कहाँ से मिलती थी ? इस बारे में उन्होंने स्पष्ट किया था – **"मैंने लिखते एवं बोलते समय सर्वदा अपने आप को शिष्यरूप में देखा है। शुरू में यह समझ नहीं सका था, लेकिन बार–बार यह अनुभव किया था कि कोई अन्दर से मेरी लेखनी एवं जिह्वा को अवलम्बन करके मुझे अनेक सत्य शिक्षा दे रहे हैं। इसलिए लोग जिसे मेरी रचना या मेरी उक्ति बोलते हैं, वह देखकर एवं सुनकर मैं स्वयं विस्मित एवं मुग्ध हो जाता हूँ। अपना लेख पढ़कर भगवत कृपा एवं भगवत प्रेरणा को देखकर विस्मय एवं आनन्द से कितनी बार अश्रु विसर्जन किया हूँ।"** वे सर्वदा गुरुजी से प्रेरणा प्राप्त करते थे। इसलिए चिन्तापूर्वक किसी कार्य में अग्रसर होने पर भी उसका परिणाम दूसरा हो जाता था। वे यह समझते थे कि कोई अदृश्य शक्ति उनको नियंत्रित कर रही है। कारावास के समय विपिनचन्द्र ने यह सत्यानुभूति की थी। इन सब साधकों ने भारत के धर्म के अन्तर्निहित सत्य को विश्ववासी के निकट प्रचार करके भारत का मुख उज्ज्वल किया है।

अनन्तर विपिनचन्द्र के अन्यान्य प्रतिभा एवं अवदान की बातें सूत्ररूप में उल्लेख किया जा रहा है–

अधिकांश बंगला रचना विपिनचन्द्र के नाम से ही प्रकाशित है किन्तु कभी–कभी श्री प्रेमदास बाबा जी, हरिदास भारती, श्रीः एवं विलातफेरत यह सब

नाम भी उन्होंने व्यवहार किये थे।

भारतीय अध्यात्म साधना में श्रीकृष्णतत्व का स्थान सर्वोच्च शिखर पर है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण नाम से समग्र भारत को एक सूत्र में आबद्ध किया था। उस समय मायावादी वेदान्तिकों ने अपना पथ गलत समझ कर श्रीकृष्णनाम में दीक्षित एवं प्रेम–भक्ति मार्ग के साधक होकर जीवन सार्थक किया था। पुरी के सार्वभौम भट्टाचार्य, काशी के प्रकाशानन्द सरस्वती प्रमुख वैदान्तिकगण महाप्रभु के मुख से कृष्णनाम सुनकर एवं उसकी महिमा जानकर वे भक्तिमार्ग में साधन करके परम साधक के रूप में परिचित हुए। कृष्णनाम से महाप्रभु ने दक्षिण भारत जय किया था। उत्तर भारत के विभिन्न संप्रदाय विभेद भूलकर कृष्णनाम से एकताबद्ध हुए। कृष्णनाम की अभूतपूर्व शक्ति से परिचित होकर सारे भारत ने महाप्रभु का आश्रय ग्रहण किया। उस समय से भारतीय साधकगण श्रीकृष्ण की आराधना करके अध्यात्म साधना में चरमोत्कर्ष लाभ कर रहे हैं। श्रीकृष्ण का अवलंबन करके अनेक कवि, साहित्यिक, नाट्यकार असंख्य रचना लिखकर यश प्राप्त किये हैं। साहित्यकारों की रचनाओं में श्रीकृष्ण–कथा का विशिष्ट स्थान है। इसलिए 19 वीं शताब्दि के मनीषी विपिनचन्द्र का लेख भी श्रीकृष्ण–कथा से पवित्र हो गया है।

'दि सोल आफ इंडिया' ग्रंथ में उन्होंने कहा है – **"जिस प्रकार यूरोप और अमेरिका की आत्मा ईसा मसीह हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भारत की आत्मा हैं। ईश्वर की प्राणशक्ति, आलोकशक्ति एवं प्रेमशक्ति श्रीकृष्ण के भीतर पूर्णरूप में प्रकाशित है। इसलिए श्रीकृष्ण को श्रेष्ठ एवं पूर्ण अवतार के रूप में मान्य किया जाता है।"**

उनके पूर्ववर्ती लेखकों के साथ श्रीकृष्णतत्व की आलोचना में उनके चिंतन का प्रभेद बताते हुए उन्होंने कहा, "इस आलोचना के शुरू में एक बात बोलना जरूरी है कि कृष्णतत्व एवं कृष्ण–चरित्र एक नहीं है। जिस कृष्ण–चरित्र की बात बंकिमचन्द ने लिखी है वह कृष्ण बाहर की वस्तु है, वह इतिहास का श्रीकृष्ण है। इतिहास का श्रीकृष्ण बाहरी वस्तु एवं श्रीकृष्ण का तत्व अंदर की वस्तु है। मुझे शास्त्र अध्ययन से श्रीकृष्ण का संधान नहीं मिला। अन्तर्जीवन की अभिव्यक्ति के साथ–साथ गुरुकृपा से धीरे–धीरे वह तत्व मेरे ज्ञान में प्रकाशित हो रहा है। विदेशी भाव एवं आदर्श ने हमारे चित्त में जो कठिन संशय उत्पन्न किया था, उसके उत्तर के रूप में हमें वैष्णवतत्व एवं वैष्णवी साधना का पथ मिला।"

निर्जन कारावास में उन्होंने यह तत्व प्राप्त किया था। 'आभास एवं आकांक्षा' नामक लेख में उन्होंने अनुतप्त होकर लिखा, "ठाकुर! यौवन में मैं अपनी संकीर्ण दृष्टि के कारण मोहबद्ध होकर परमतत्व को अमान्य करके पिता, माता, पितृलोक

सबसे एक प्रकार बिछुड़ गया था। आज यह तत्व पाकर, कृष्णनाम करके, इस राधा–गोविन्द नाम लेकर ठाकुर तुम्हारी अयाचित करूणा प्राप्त कर पिता, माता, पितृकुल, मातृकुल, कुलपुरोहित, कुलगुरु सबके साथ पुनर्मिलन से सुख एवं सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। ब्रह्म नाम से माता–पिता के प्राण में शायद वह आनन्द संचारित नहीं होता था। उनके इष्टनाम, प्रियनाम, साधितनाम अर्थात कृष्णनाम को इस अधम के मुँह से सुनकर उन लोगों को सहस्त्र गुना अधिक आनन्द एवं प्रीति हो रहा है।"

उस समय चारों ओर विपिनचन्द्र का नाम फैल गया था। उनको भय होने लगा, यदि अंहकार आ जाए तो सब ध्वंस हो जाएगा'। इसलिए व्याकुलता के साथ वे प्रर्थना करने लगे– "ठाकुर! इस हीन को तुम जिस प्रकार बढ़ाकर लोगों के सामने लाये हो इससे मुझे आनन्द नहीं होता ऐसा नहीं, किन्तु अंतर्यामी! तुम जानते हो यह आनन्द भय–विषाद मिश्रित है। प्रभो! यह मेरे पतन का कारण न बने। शेष रक्षा करो गुरो। शेष रक्षा करो! अनेक लोग अब मेरी योग्यता न होने पर भी मुझे बड़ा बना रहे हैं। अब यदि यह मस्तक बिल्कुल नीचा न हो जाय, यदि अब भी भूमि में न मिल सकूँ, यदि अब भी सत्य विनय प्राप्त न कर सकूँ तो और कब करूँगा ? दयाल प्रभु! दंभ, अहंकार सब नष्ट करो। इसलिए तुम्हारे चरणों में संपूर्ण आत्मसमर्पण करना चाहता हूँ। मुझे पूर्णरूप में स्वीकार करो। मेरा धर्माधर्म सब ग्रहण करो, जिससे 'सर्वधर्मान परित्यज्य' होकर तुम्हारे चरणों में शरणागत हो सकूँ, वही करो।" विपिनचन्द्र की यह प्रार्थना उनके गुरुजी श्री विजयकृष्ण गोस्वामी की कृपा से पूर्ण हुई थी। गोस्वामी प्रभुजी के उपदेश 'नाहंकारात् परोरिपुः' को विपिनचन्द्र अपने हृदय के साथ संयुक्त रखना चाहते थे। सामान्य अंहकार–अभिमान से सर्वनाश होता है। इसलिए गुरुजी के पास संपूर्ण रूप में उन्होंने आत्मसमर्पण किया।

'आचार एवं प्रचार' प्रबंध में, हिन्दू धर्म क्यों प्रचारक धर्म नहीं बन सका, इसके संबंध में उन्होंने कहा है– "अन्य धर्मों की निन्दा के बिना अपने धर्म का प्रचार नहीं होता। हिन्दू अन्य धर्म की निन्दा को महा अपराध समझता है।"

हिन्दू–धर्म मनुष्य को किस प्रकार देखता है, इस विषय में 'हिन्दू धर्मेर विचित्रता' बंगला ग्रंथ में विपिनचन्द्र लिखते हैं – **"हिन्दू जिसे धर्म कहता है वह वस्तु सनातन है। काल विशेष में उसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी, देश–विदेश की सीमा में वह धर्म आबद्ध नहीं है। वह धर्म तत्व "गुहायां निहितं" मानव प्रकृति के मूल में है और हृदय गुफा में प्रतिष्ठित होने के कारण यह धर्म सनातन एवं सार्वजीवन है। इसलिए मनुष्य की जाति अथवा धर्म का विचार किये बिना भक्ति करना ही इस धर्म का प्रधान अंग है। हिन्दू की दृष्टि में**

मनुष्य केवल मनुष्य नहीं, नारायण है।" उनकी चिन्ता एवं चेतना को प्रेरित किया था राममोहन राय के युक्तिवाद एवं श्री रामकृष्णदेव और प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामीजी द्वारा प्रतिष्ठित भक्तिवाद ने। इसलिए उनके धर्म एवं दर्शन संबंधी विचार, ज्ञानमिश्रित भक्तिमार्ग की प्रेरणा देते हैं।

समाजतत्व एवं समाजनीति के बारे में अनेक लेखों में विपिनचन्द्र ने समाजतत्व आलोचना में विज्ञान सम्मत युक्ति एवं तथ्य को मूल में रखा है किन्तु शास्त्र को कभी अमान्य नहीं किया।

विपिनचन्द्र के राजनीति एवं राष्ट्रदर्शन के बारे में पहले ही विस्तृत चर्चा की गई है। प्रायः बाल्यकाल से भारत की स्वाधीनता संग्राम के वे एक वीर सैनिक थे। भारत की जातीय कांग्रेस के जन्मलग्न से प्रायः पचास साल तक वे इसके प्रत्यक्षदर्शी एवं सक्रिय सदस्य थे। भारत वर्ष की राजनैतिक आंदोलन के हर कदम पर उन्होंने सक्रिय भाग लिया था एवं अगणित भाषणों में अपना मत अकपट और निर्भीकता के साथ व्यक्त किया था। साहित्य तत्व एवं साहित्य समालोचना के क्षेत्र में उनके विशेष पाण्डित्य का परिचय मिलता है। उनके व्यक्तित्व का अनन्यतम् विशिष्ट लक्षण था तत्वप्रियता एवं भाष्य प्रवणता। सत्यानुसंधान ही था उनके जीवन का व्रत और उसके साथ सूक्ष्मरूप में स्वदेश चर्या की समग्र साधना युक्त थी। तरुण अवस्था से वैष्णव साहित्य के प्रति उनका अनुराग था। बंगला 1319 सन् से 1324 सन् (सन् 1912 से 1917 ई०) के बीच वैष्णव साहित्य के बारे में उनकी अधिकांश रचना प्रकाशित हुई थी। बंगाली वैष्णवधर्म, राधिकार प्रेम, महाजन पदावली और कीर्तन, महाजन सिद्धांते प्रकृति पुरुष आदि अनेक वैष्णव प्रबंध रचना द्वारा उन्होंने वैष्णव साहित्य का तत्व निर्णय किया था।

विपिनचन्द्र के साहित्य के ऊपर वैष्णव साहित्य एवं बंकिम साहित्य का विशेष प्रभाव था। बंकिमचन्द्र की चिंतनधारा में विपिनचन्द्र को धर्मीय समन्वयवाद का परिचय मिला था। इस विषय में उन्होंने कहा है– "राजा राममोहन राय ने जिस कर्म को प्रारम्भ किया था, बंकिमचन्द्र ने उन कर्मों को आधुनिक समय एवं साधनोपयोगी करके परिपूर्ण करने की चेष्टा की। बंगाल के नवयुग प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने जो समन्वय धारा प्रवर्तित की थी, बंकिमचन्द्र ने उसी धारा को उनके धर्मतत्व एवं कृष्णचरित्र में प्रकाशित किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि विपिनचन्द्र की चिंतनधारा में बंकिमचन्द्र थे समन्वय के ऋषि। रवीन्द्र साहित्य आलोचना में प्रवृत्त होकर विपिनचन्द्र कहते हैं कि साहित्य समालोचना में साहित्यिकार के जीवन–चरित का विचार एवं आलोचना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा वह आलोचना अपूर्ण एवं अमूलक हो सकती है। इस प्रकार विपिनचन्द्र ने सुधीन्द्रनाथ ठाकुर, माइकेल मधुसूदनदत्त, हेमचन्द्र, नवीन सेन आदि प्रमुख बंगला

भाषा के साहित्यकारों की रचनावली की समालोचना की है एवं बंगला साहित्य साहित्य को उज्ज्वल किया है।

विपिनचन्द्र की प्रतिभा सीमाबद्ध नहीं थी। साहित्यिक प्रतिभा में 'जीवन चरित' रचना उनकी अनन्यतम बुद्धि का परिचायक है। उन्होंने अनेक जीवन–लेख की रचना की थी। उनका सुपरिचित 'चरित चित्र' ग्रंथ में आठ जनों की जीवनी संकलित थी। इसके अलावा विभिन्न पत्र–पत्रिका में और 15 जीवनी आलेख प्रकाशित हुए थे। इसके साथ ग्रंथाकार में प्रकाशित 'युगेर मानुष विजयकृष्ण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह रचना बंगला सन् 1329–30 (सन् 1922–23 ई०) में प्रर्वतक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'प्रवर्तक विजयकृष्ण' नामक ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन बंगला सन् 1341 (सन् 1934 ई०) में हुआ था। 'युगेर मानुष विजयकृष्ण' नाम से द्वितीय संस्करण का प्रकाश बंगला सन् 1372 (सन् 1965 ई०) में हुआ था। अंग्रेजी में लिखित 'सेंट विजयकृष्ण गोस्वामी' भी इस प्रसंग में उल्लेख योग्य है। श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी विपिनचन्द्र के मंत्रदाता गुरुजी थे। प्रवर्तक, साधक एवं सिद्ध तीन नामों से एवं तीन खण्डों में गोस्वामी प्रभुजी की सम्पूर्ण जीवनी रचना करना उनका संकल्प था, किन्तु प्रवर्तक अंश को लेकर केवल एक खंड वे संपूर्ण कर सके थे। उस खंड में गोस्वामी प्रभुजी की जन्म कथा से लेकर ब्राह्मसमाज के उपाचार्य पद में उनका अभिषेक एवं ब्राह्मसमाज के साथ उनके विरोध की सूचना तक विवरण मिलता हैं। ग्रंथ में सर्वत्र स्वाभाविकता है, कोई अलौकिकता का स्पर्श नहीं है। गुरुजी के प्रति शिष्य की आंतरिक श्रद्धा का निदर्शन इस ग्रंथ में है। इस ग्रंथ के एक स्थान में उन्होंने लिखा है–

एकदिन एक जिज्ञासु ने महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीजी के निकट अपने जीवन के आदर्श के अनुसरण करने के पथ में उपस्थित विघ्नों के बारे में उल्लेख करते हुए व्याकुलता व्यक्त की। गोसाँईजी ने उससे कहा, **"किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, कोई भय नहीं है। समय होने पर सब विघ्न अपने आप हट जाएगा। कोई महिला जब प्रथम गर्भवती होती है, तब कैसे संतान प्रसव करेगी, यह सोचकर चिंतित होती है। किन्तु ईश्वर का विधान इस प्रकार है कि समय होने पर प्रसूता के शरीर का सभी अंग संतान प्रसव के उपयोगी हो जाता है एवं किस प्रकार संतान प्रसव हुआ यह उसको पता नहीं चलता। धर्म–जीवन में भी इस प्रकार होता है। मनुष्य अपनी दुर्बलता, अक्षमता एवं बाहर की प्रतिकूल अवस्था देखकर कैसे धर्मलाभ होगा, यह सोच भी नहीं सकता। किन्तु समय होने पर भगवतकृपा से सब विघ्न अपने आप हट जाता है। अंदर बाहर सब सिद्धि लाभ के अनुकूल हो जाता है। तब कैसे उसको इष्टलाभ हुआ एवं उसकी आकांक्षा पूरी हुई, यह समझ भी नहीं सकता एवं**

इस अघटन को होते हुए देखकर भगवान की अपार दया का निदर्शन पाकर भक्ति एवं कृतज्ञता से व्याकुल हो उठता है। भय नहीं है, कुछ मत सोचो, समय आने पर सब विघ्न अपने आप हट जाएगी।"

विपिनचन्द्र ने कहा है–"गोस्वामी महाशय की इन बातों को जीवन में कभी नहीं भूलूँगा। इस प्रकार आशा की बातें और किसी के पास से नहीं सुनी।"

यह उल्लेखनीय है कि प्रश्नकर्ता स्वयं विपिनचन्द्र थे। महात्मा विजयकृष्णजी से आश्वासन प्राप्त कर विपिनचन्द्र गुरु निर्दिष्ट पथ में अग्रसर होने लगे। बक्सर जेल में रहते समय उन्हें भगवत् निर्देश प्राप्त हुआ। उसके बाद से उनमें विशेष परिवर्तन देखा गया। यहाँ विपिनचन्द्र द्वारा प्राप्त भगवत् निर्देशों के सम्बन्ध में श्री अरविन्द ने जो कुछ कहा था, उसका उल्लेख किया जा रहा है। उन्होंने कहा था, "विपिनचन्द्र जब जेल से निकले थे एक वाणी लेकर आए थे। वह वाणी थी दिव्य प्रेरणालब्ध निर्देश। विपिनचन्द्र ने बक्सर जेल में जो वाणी प्राप्त की थी, ईश्वर ने अलीपुर जेल में मुझे वही वाणी प्रदान की।"

श्री अरविन्द को जो वाणी मिली थी, उसका संकेत उनके जेल से छूटने के बाद उत्तरपाड़ा में उनके दिए गए भाषण में मिलता है। उस वाणी में दो निर्देश थे–

प्रथम वाणी– मैंने तुम्हें एक कार्य दिया है वह है इस जाति की उन्नति में सहायता करना। शीघ्र वह समय आएगा जब तुम्हें जेल के बाहर जाना होगा, क्योंकि मेरी ऐसी इच्छा नहीं है कि इस बार तुम दोषी प्रमाणित हो जाओ अथवा दूसरों को जिस प्रकार अपने देश के लिये कष्ट भोगते हुए समय बिताना पड़ेगा, तुम भी उसी प्रकार करो। मैंने तुम्हें एक कार्य के लिये बुलाया था और तुमने जो निर्देश मांगा था वह यही है। मैं तुम्हें आदेश दे रहा हूँ। जाओ, मेरा कार्य करो।

द्वितीय वाणी– **इस एक वर्ष निर्जन में रहते समय तुम्हें कुछ ऐसी चीज दिखाई गई है जिसके संबंध में तुम्हें सन्देह था, वह है हिन्दू धर्म की सत्यता। इस धर्म को ही मैं जगत् के सामने ला रहा हूँ। ऋषि, सन्त, अवतार आदि के भीतर से इस धर्म को ही मैं सम्पूर्ण रूप से तैयार कर रहा हूँ। अब इस जगत् के सभी जाति के भीतर मेरा कार्य सम्पन्न होने के लिए जा रहा है। मेरी वाणी के प्रचार करने के लिए ही इस जाति को उठा रहा हूँ। यह है सनातन धर्म, तुम इस धर्म को पहले उचित रूप से नहीं जानते थे। पर अब मैं इसे तुम्हारे निकट प्रकाशित कर रहा हूँ। तुम्हारे भीतर जो अविश्वास था, नास्तिकता थी, उसका उत्तर दिया गया है क्योंकि मैंने तुम्हें प्रमाण दिया है, भीतर और बाहर, स्थूल और सूक्ष्म में प्रमाण दिया है एवं उस**

प्रमाण से तुम संतुष्ट हुए हो। जब तुम जेल से बाहर जाओगे तब जाति को सर्वदा यह वाणी सुनाना कि सनातन धर्म के लिये ही वे आगे बढ़ रहे हैं, अपने लिये नहीं। समस्त जगत् के लिये, उनकी उन्नति हो रही है। मैं उन्हें स्वाधीनता दे रहा हूँ जगत् की सेवा के लिए। अतएव जब कहा जा रहा है कि भारत उन्नति करेगा, इसका अर्थ है सनातन धर्म की उन्नति होगी। जब कहा जाता है भारत महान् होगा, उसका अर्थ है सनातन धर्म महान् होगा। जब कहा जाता है भारत अपने को संवर्धित और प्रसारित करेगा, इसका अर्थ होगा सनातन धर्म अपने को वर्धित और प्रसारित करेगा। इस धर्म के लिये एवं इस धर्म के द्वारा भारत जीवित है। धर्म की वृद्धि का अर्थ है देश की उन्नति करना। मैंने तुम्हें दिखाया है कि मैं सर्वत्र, सभी मनुष्य एवं सभी वस्तुओं में विराजित हूँ। मैंने दिखाया है कि इस आन्दोलन के भीतर भी मैं विराजित हूँ एवं जो लोग देश के लिए कार्य कर रहे हैं केवल उन्हीं के मध्य में ही मैं काम कर रहा हूँ ऐसा नहीं, जो लोग उनका विरोध कर रहे हैं, उनके पथ में बाधा डाल रहे हैं उनके मध्य भी मैं काम कर रहा हूँ। सभी के भीतर मैं ही काम कर रहा हूँ दूसरे लोग चाहे कुछ भी सोचें, चाहे जो कुछ भी क्यों न करें, वे मेरे लक्ष्य प्राप्ति में सहायता के सिवाय कुछ भी नहीं कर सकते। वे लोग भी मेरा ही कार्य कर रहे हैं, वे मेरे शत्रु नहीं है, वे मेरे यंत्र हैं। तुम अपने सभी कार्यों के भीतर से अग्रसर हो रहे हो। किस तरीके से यह हो रहा है इसे बिना समझे अग्रसर हो रहे हो। तुम एक कार्य करने की चेष्टा करना चाहते हो पर दूसरा कार्य कर डालते हो। तुम एक परिणाम या फल की आशा करते हो पर तुम्हारी चेष्टा का परिणाम दूसरा या विपरीत होता है। शक्ति आविर्भूत हुई है एवं जाति के भीतर प्रवेश की है। बहुत दिन पहले से मैं इस उत्थान के लिये आयोजन कर रहा था, अभी उसका समय आया है। अभी इसे मैं पूर्णता की ओर परिचालित करूँगा।

श्री अरविन्द कथित इसी वाणी को विपिनचन्द्र ने भी प्राप्त किया था। इसका प्रमाण मिलता है जेल से निकलने के बाद उनके कार्यों एवं लेखों से। क्रमशः वे राजनैतिक कार्यों से विच्छिन्न होते गए एवं आध्यात्मिक साधना में डूब गए। उनके लेखों में भारत के भविष्य के सम्बन्ध में एवं अग्रसर होने के पथ की रूपरेखा मिलती है। कटक में भाषण देते समय भावी भारत के संविधान के बारे में वे बोले थे– "प्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत सब प्रदेशों को लेकर स्वतंत्र राज्य समूह गठित होगा। शायद वह भाषा या जातीयता अनुसार होगा। अमेरिका के युक्तराष्ट्र की तरह एक केन्द्रीय सरकार के अधीन में राज्य समूह रहेगा। देशीय राज्य समूह भी उसी प्रकार एक ही केन्द्रीय कर्तृत्वाधीन रहेगा। समग्र राष्ट्र के

नियामक होंगे प्रेसिडेन्ट या राष्ट्रपति। वे अमेरिका युक्तराष्ट्र के राष्ट्रपति की तरह क्षमतासंपन्न होंगे। विपिनचन्द्र की यह भविष्यवाणी कितनी सत्य है यह सोचकर विस्मय होता है। इसलिए इतिहास के अध्यापक हरिदास मुखोपाध्याय ने विपिनचन्द्र पाल के सम्बन्ध में कहा है–**"आज 1950 ई० से हम एक निर्वाचित राष्ट्रपति के अधिनायकत्व से भारत में सार्वभौम प्रजातंत्र प्राप्त किये हैं किन्तु हम उस व्यक्ति को स्मरण नहीं करते हैं जिन्होंने वर्तमान शताब्दि के उस लग्न में स्वाधीन प्रजातंत्री भारत की रूपरेखा हमें उपहार दिये थे।"**

भारत वर्ष तथा बंगाल में जन्मग्रहण करके विपिनचन्द्र अपने आप को सौभाग्यवान सोचते थे। अपनी आत्मजीवनी में उन्होंने लिखा है–

"भारतवर्ष में जन्मग्रहण किया, यह सौभाग्य की बात है। यदि पुनः संसार में जन्म लेना हो तो भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करना चाहता हूँ। सुख समृद्धशाली किसी अन्य देश में जन्म ग्रहण नहीं करना चाहता। भारतवर्ष के बंगाल में जन्म ग्रहण किया यह और भी सौभाग्य की बात है। सर्वोपरि इस युग में जन्म ग्रहण किया, यह परम् सौभाग्य की बात है। मृत जाति किस प्रकार नवजीवन प्राप्त करती है, यह इस युग में बंगाल में जन्म लेकर अपनी आँखों से देखा है। ऐसा परम् सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं होता।"

विपिनचन्द्र की इस असाधारण शक्ति के पीछे थी गुरुकृपा, जिसके सहारे वे अग्रसर हुए एवं उनको सफलता मिली। अपने स्वार्थ के प्रति उनका कोई आग्रह नहीं था। वे भविष्य के लिए कुछ संचय नहीं करते थे। देश के कार्यों में सर्वदा व्यस्त रहते थे, अपने परिवार प्रतिपालन के बारे में वे कभी भी नहीं सोचते थे। उनको शक्ति कहाँ से मिलती थी, यह सोचकर वे चकित हो जाते थे। उनके गुरुजी श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी देश–विदेश में भारत की सत्य–प्रतिष्ठा के लिए उनका परिचालन करते थे। जो सत्य का दीपक विपिनचन्द्र जला गए हैं वह निर्वापित न होकर क्रमशः उज्ज्वल से उज्ज्वलतर हो, प्रत्येक भारतवासी का यही काम्य है।

गुरुजी के संबंध में 'युगेर मानुष विजयकृष्ण' बंगला पुस्तक में विपिनचन्द्र की उक्ति इस प्रकार है– **"गोस्वामी महाशय सिद्धि लाभ के बाद जो साधन प्रचार किये थे वह माधुर्य का साधन है। इस साधन को हमारे वैष्णव महाजन गण ब्रज का साधन कहते हैं। यह साधन श्रीमन् महाप्रभु प्रवर्तित अनर्पितचरी भक्ति साधन है। अनर्पितचरी भक्ति साधन की यह धारा सूख गई थी। कदाचित् किसी विरल भक्त के जीवन में फल्गु नदी की बालू के भीतर पानी की तरह गुप्त रूप में प्रवाहित होती थी। जिस ऐश्वर्य**

द्वारा जगत् को आच्छन्न देखकर महाप्रभु ने ऐश्वर्यविहीन गोपी प्रेम का आदर्श प्रचारित किया था, उस ऐश्वर्य ने वैष्णव समाज को भी आच्छन्न कर दिया है। ब्रज का भाव एवं ब्रज की साधना लुप्त हो गई है। ब्रज भाव की मूल बात यह है कि इसमें अलौकिकता का कोई स्थान नहीं हैं। ब्रज भक्ति के साध्य श्रीकृष्ण द्विभुज मुरलीधर हैं, वे चतुर्भुज या षड्भुज नहीं हैं। वे श्रीकृष्ण यदु नन्दन श्रीकृष्ण नहीं किन्तु श्रीनन्द नन्दन श्रीकृष्ण हैं। वे द्वारका या कुरूक्षेत्र के श्रीकृष्ण नहीं हैं किन्तु श्रीवृन्दावन के श्रीकृष्ण हैं।

"वृन्दावन परित्यज स कश्चित् नैव गच्छति।"

– जीव गोस्वामी।

ये श्रीकृष्ण वृन्दावन परित्याग करके कभी कहीं नहीं जाते हैं। यह वृन्दावन माधुर्य की लीला भूमि है, यहाँ ऐश्वर्य को प्रवेश का अधिकार नहीं है। देवतागण भगवान के ऐश्वर्य विकार है गोस्वामी महाशय इस ब्रज प्रेम का प्रचार करने आए थे।"

इस प्रकार से उक्त ग्रंथ में उन्होंने गुरुजी के प्रति श्रद्धा एवं गुरुजी का भाव और आदर्श प्रकाश किया है।

****

श्री हरिदास बसु

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य ने कुलीन ग्रामवासी सत्यराज खान एवं उनके पुत्र रामानन्द बसु को प्रति वर्ष पट्टडोरी बनाकर नीलाचल लाने का आदेश दिया था। आज्ञा देकर उन्होंने थोड़ी पट्टडोरी नमूना स्वरूप उनको देकर विशेष रूप से कहा था कि डोरी अत्यंत मजबूत होनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि श्रीजगन्नाथजी को इसी पट्टडोरी से बांधकर मन्दिर से बाहर लाकर रथ पर विराजित किया जाता है। महाप्रभु का यह आदेश पाकर सत्यराज बसु एवं रामानन्द आनन्द के साथ प्रतिवर्ष रथ के पहले गुण्डिचा में भक्तगण के साथ पट्टडोरी लेकर जाते थे।

कुलीन ग्रामवासियों ने हरिदास ठाकुर की सेवा एवं संग लाभ किया था। हरिदास ठाकुर महाप्रभु के आत्मा के समान थे, इसलिए कुलीन ग्रामवासी रामानन्द, यदुनाथ, पुरुषोत्तम शंकर विद्यानन्द आदि सब ग्रामवासी श्रीचैतन्य के प्रिय थे एवं उनके प्राण धन थे। केवल यही नहीं प्रभु कहते थे, कुलीन ग्राम का कुत्ता भी उनका प्रिय है। कुलीन ग्रामवासी भाग्यशाली थे, क्योंकि वहाँ का सुअर, चरवाहा. डोम भी कृष्ण नाम गाता था। यह सब श्री हरिदास ठाकुर के नाम–जप के प्रभाव से हुआ था।

बंगला सन् 1261 (1854 ई०) को 10 वीं चैत्र कुलीन ग्राम के विख्यात बसु वंश में श्री हरिदास बसु ने जन्म ग्रहण किया। उनके पिता का नाम विश्वरूप बसु एवं माता का नाम क्षेत्र मनिदासी था। बंगाल के राजा आदिशूर के यज्ञ के समय ब्राह्मणों के साथ कान्यकुब्ज से जो पाँच जन कायस्थ बंगदेश में आकर निवास किये थे, उनमें से एकजन का नाम दाशरथी बसु था। वे ही उक्त बसु वंश के आदिपुरुष थे। हरिदास बसु महाशय के तीन ज्येष्ठ भ्राता और दो अनुज एवं एक भगिनी थी। शैशव में पितृहीन होने पर पितृस्नेह से वे वंचित हुए थे। कुछ दिन बाद वे मातृहीन हो गए। इसलिए पितामही उनका लालन–पालन करने लगीं। अति बाल्यावस्था में वे पितामही को भी खो दिये। ज्येष्ठ भ्राता राधेगोविन्द बसु के अत्याचार से हरिदास बसु को गृहत्याग करना पड़ा। उनके अन्य भाइयों की मृत्यु हो गई। रामयदु बसु नामक उनके एक चाचा थे। उनकी कोई संतान नहीं थी। वे उत्तरी बंगाल के दिनाजपुर जिला के सदर सिविल कोर्ट में आमिन का काम करते थे। वे भतीजे को दिनाजपुर ले गए एवं उनका प्रतिपालन करके उपयुक्त पढ़ाई की भी व्यवस्था कर दी। हरिदास बसु महाशय बताते थे– "ऐसा सहृदय

प्रेमवान मनुष्य मैंने कभी नहीं देखा, उन्होंने मुझे प्राणापेक्षा अधिक स्नेह दिया।" उस समय दिनाजपुर की जलवायु स्वास्थ्यप्रद नहीं थी। इसलिए बालक हरिदास बसु को प्रायः बुखार हो जाता था। इससे उनका पिल्हा, यकृत आदि बढ़ने लगा एवं पेट की पीड़ा एवं रक्ताल्पता भी देखी गई। इस प्रकार दुरारोग्य पीड़ा से आक्रांत होकर वे रोग यंत्रणा भोगते थे और देश के घर में बहिन् एवं कनिष्ठ भ्राता पर बड़े भाई के अत्याचार की बात सुनकर अश्रु विसर्जन करते थे। अन्य भाई अकाल मृत्यु वरण किये थे। मध्यम भ्राता की विधवा पत्नी को अपने पित्रालय में आश्रय ग्रहण करना पड़ा था।

उस समय एक अलौकिक घटना हुई। रोग यंत्रणा भोग करते–करते जब हरिदास बसु का अंतिम काल उपस्थित हुआ, उस समय एकदिन सपने में उनको अचानक एक दवाई लेने का निर्देश मिला। वह दवाई लेकर वे सम्पूर्ण रोगमुक्त हुए। उनके बड़े भाई का अत्याचार केवल घर में ही सीमाबद्ध नहीं था। वे ग्रामवासियों पर भी अत्याचार करने लगे। ग्रामवासी क्रुद्ध होकर प्राण संहार के लिए गुप्त रूप में उनके ऊपर आक्रमण किये किन्तु सफल नहीं रहे। अर्थ बल से घमंड के वश ग्रामवासियों के साथ विवाद करने के कारण उनके विरुद्ध मुकदमों का अंत नहीं था। माता इन सबसे निवृत्त होने के लिए बोलतीं, तो कभी–कभी वे भी प्रहृत होती थीं। माता के प्रति बड़े भाई के दुर्वाक्य की बात स्मरण होने पर सबका हृदय विदीर्ण हो जाता था। अंत में जननी की अकाल मृत्यु हो गई। दिनाजपुर की पढ़ाई समाप्त होने पर हरिदास बसु हुगली कॉलेज में भर्ती हुए। कॉलेज से कभी–कभी घर जाकर वे भैया को समझाते थे, किन्तु बड़े भाई छोटे भाई की बात नहीं सुनते थे। वरन् दुर्वाक्य बोलकर भाई को कष्ट देते थे। जननी की मृत्यु के कुछ दिन बाद छोटा भाई भी मर गया। अब केवल हरिदास बसु, उनकी विधवा भगिनी एवं भ्रातृजाया जीवित रहे। मनुष्य का सब दिन समान नहीं जाता। इसलिए ग्रामवासी के साथ मुकदमा करते हुए बड़े भैया निःस्व हो गए एवं मातृशाप से शय्याशायी होकर रोग यंत्रणा से तड़पने लगे। उस समय एक मात्र भाई हरिदास के अलावा उनकी सेवा सुश्रुषा के लिए कोई नहीं था। कर्तव्य अनुरोध से हरिदास बसु भैया की सुश्रुषा में व्रती हुए।

हरिदास बसु थे नीति परायण और स्वाधीनचेता। ग्रामवासियों के साथ उनका सहयोग का भाव था। एकबार उनके भैया डकैती मुकदमा में अभियुक्त हुए। उस समय हरिदास बसु बोलपुर के वकील थे। भैया को बचाने के लिए उनको अनेक प्रयास एवं अर्थव्यय करना पड़ा था। गाँव के प्रत्येक लोग भैया के विरुद्ध थे। केवल हरिदास बसु की प्रार्थना से ग्रामवासियों ने मुकदमा उठा लिया। फिर भी विचारक ने कुछ अर्थदण्ड देकर उन्हें छोड़ दिया।

भक्त वैष्णव वंश में हरिदास बसु का जन्म हुआ था। दिनाजपुर जिले के गवर्नमेंट स्कूल में उनकी स्कूल शिक्षा समाप्त हुई। उस समय श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी ब्राह्मधर्म प्रचार के लिए भाषण देने दिनाजपुर आए। उनका तेजस्वी व्याख्यान सुनकर हरिदास बसु मंत्रमुग्ध हो गए एवं उनके मन में अनास्वदित एवं अपूर्व एक भाव उदय हुआ।

हुगली कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने पर हरिदास बसु बोलपुर में मुन्सेफी अदालत में वकालत करने लगे। उस समय ब्राह्मधर्म प्रचारक श्री अघोरनाथ चट्टोपध्याय के निर्मल चरित्रगुण से उनके प्रति वे आकृष्ट हुए एवं ब्रह्मोपासना ही असली धर्म है, यह समझकर प्रचलित हिन्दूधर्म के प्रति उनकी आस्था नहीं रही। उस समय से नवविधान ब्राह्मसमाज में, फिर कभी साधारण ब्राह्मसमाज में वे उपासना करते थे। रामपुरहाट में प्रतिष्ठित ब्राह्म मंदिर के उत्सवादि में वे योगदान देते थे। वे विश्वभारती के आजीवन सदस्य थे। दीपेन्द्रनाथ ठाकुर के साथ उनकी घनिष्ठता थी। दीपूबाबू प्रायः घोड़ागाड़ी में हरिदास बसु के कचहरी पट्टी के घर में जाते थे एवं ब्राह्मधर्म प्रसंग में समालोचना और भाव का आदान–प्रदान करते थे। एकबार रामपुरहाट में ब्राह्मसमाज के उत्सव में निमंत्रित होकर गोस्वामी प्रभुजी आए। उस समय हरिदास बसु वहाँ उपस्थित थे। इस प्रकार ब्राह्म संग के अलावा अन्य संग उनको कुसंग लगता था।

इस समय शांतिनिकेतन आश्रंम के ब्रह्मोपासना का कार्य महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के निर्देश से अघोरबाबू करने लगे। अघोरबाबू के साथ हरिदास बसु की पहले से ही घनिष्ठता थी, अतः वे नित्य उस आश्रम में ब्राह्मोपासना करते थे। ब्राह्मधर्म से प्रभावित होने पर उन्हें हिन्दूधर्म असार, मिथ्या और कपटपूर्ण लगा। क्रमशः हिन्दुओं के प्रति विशेषतः गुरु, पुरोहित, साधु–संन्यासी, शास्त्र, ब्राह्मण, ठाकुर देवता के प्रति उनका विरुद्ध मनोभाव होने लगा।

सद्‌गुरु प्राप्ति के कुछ दिनों के बाद गोस्वामी प्रभुजी ब्राह्मसमाज परित्याग करके हिन्दू धर्मानुसार साधन–भजन करने लगे इससे उनके ऊपर हरिदास बसु की श्रद्धा भक्ति नहीं रही। आत्मविचार द्वारा उन्होंने अनुभव किया कि उनके जीवन में कुछ भी उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई है। उस समय वे चिंतित हो उठे। पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, आत्मा–परमात्मा क्या यह सब कुछ भी नहीं है ? जब मन इस प्रकार चंचल हुआ तब उन्होंने पार्थिव आमोद–प्रमोद से मन बहलाने की चेष्टा शुरू की। किन्तु क्रमशः अधिकतर दुःख उनको आच्छन्न करने लगा, जीवन क्रमशः अशान्तिमय हो गया। उन्होंने आत्महत्या का संकल्प लिया किन्तु ईश्वर जिस पर कृपा करते हैं, उसकी मृत्यु या कोई अमंगल नहीं हो सकता। हरिदास बसु के जीवन में यह सत्य हुआ। सब अशुभ विषय धीरे–धीरे अन्तर्हित होने लगा। इस

विषय में उनको बोलपुर के निकटवर्ती रायपुर निवासी हेमेन्द्रनाथ सिंह, उनकी पत्नी सुशीला देवी एवं साधु अधोरनाथ का संग मिला। उस सत्संग एवं अलौकिक शक्ति ने उनको प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के पाद पद्म में पहुँचा दिया। उन्होंने बंगला सन् 1296 (सन् 1889 ई०) के 3 रे कार्तिक त्रयोदशी तिथि में दीक्षा प्राप्त की। आश्चर्य की बात है कि ब्राह्मसमाज में रहते समय तंत्र शास्त्रोक्त एक मनपसन्द मंत्र वे बहुत दिनों से जप करते थे। गोस्वामी प्रभुजी ने उनको वही मंत्र प्रदान किया इससे हरिदास बसु परम् संतोष प्राप्त किए।

दीक्षा प्राप्ति के बाद वे नियमित ब्रह्मोपासना करने लगे। उस समय अनेक घटनाएं होने लगी। किन्तु वे सब गुरुजी की इच्छा से हो रही है, यह उनको पता नहीं था। संध्या के समय जब वे ब्रह्मोपासना करते थे, उस समय उनके पड़ोसी वृद्ध वैष्णव यशोदानन्दन सिंह करताल बजाकर 'भलि गोराचांदेर आरती ध्वनि' इस पद से संगीत शुरू करते। मनुष्य की पूजा एवं करताल की उच्च ध्वनि उनको असह्य लगती थी। किसी भी उपाय से मन स्थिर न कर पाने से वे क्रोधित हो जाते थे। एकदिन क्रोधवश आसन छोड़कर उठते ही कोई उनका हाथ पकड़कर बोला, "छिः क्या उपासना त्याग करना चाहिए ? बैठकर नाम–जप करो।" वे पुनः आसन में बैठकर नाम जपने लगे। एकदिन ब्रह्मोपासना के समय नीचे कोलाहल हो रहा था, क्रुद्ध होकर पत्नी के साथ उन्होंने विवाद किया। फिर क्रोध वश कांपते–कांपते श्रीवृन्दावन से आये हुए वकील रसिककृष्ण घोष के घर गए। हरिदास बसु बोले कि आप श्रीवृन्दावन से आये हैं आपसे मिलने आया हूँ। बातचीत करते समय रसिकबाबू बोले कि सनातन गोस्वामी भजन में विघ्न होने पर सोचते थे कि उन्होंने भगवान के निकट कोई अपराध किया है, इसलिए विघ्न हो रहा है। इसे सुनकर हरिदास बसु खड़े हो गए एवं बोले आज संध्या के बाद उपासना के समय घर में कोलाहल हो रहा था। मैंने उपासना परित्याग करके पत्नी के साथ झगड़ा किया एवं रास्ते में भ्रमण कर रहा था। भगवान कृपा करके मुझे आपके पास लाये। आपने मुझे उपदेश प्रदान किया। मैं कृतार्थ हो गया।

गुरुजी के प्रति ब्राह्मसमाज के अत्याचार की बात वे जानते थे। उस समय गोस्वामीजी के अर्थाभाव की बात स्मरण करके वे अत्यंत कष्ट अनुभव करते थे। उपासना के समय उन्होंने सोचा, "मैं गुरुकृपा भिक्षा कर रहा हूँ किन्तु गुरुजी की अवस्था के प्रति नजर नहीं देता हूँ। ऐसी दिखावटी भक्ति अत्यंत घृणित है।" क्रमशः मन विषादपूर्ण हो गया, और रहा नहीं गया। उन्होंने दो बार श्रीवृन्दावन में गोसाँईजी को मनीआर्डर भेजे। पैसा मिलते ही गोस्वामीजी दाऊजी के मंदिर में दे दिये। प्राप्त रसीद के साथ शिष्य को एक पत्र मिला। उसमें लिखा था– "गोस्वामी महाशय किसी का मनीऑर्डर या चिट्ठी ग्रहण नहीं करते हैं। पैसा भेजने

की इच्छा होने पर माता योगमाया देवी के नाम से भेज सकते हैं। इस निर्देशानुसार शिष्य माता योगमाया देवी के नाम से राशि भेजने लगे और वे भी शिष्य को आशीर्वाद युक्त प्रत्युत्तर देती थीं। माता योगमाया देवी के देहत्याग के बाद वे श्री योगजीवन के नाम से रूपया भेजते थे।

बंगला 1298 सन् (सन् 1891 ई०) में पूजा की छुट्टी में वर्धमान ब्राह्म सम्मेलन से निमंत्रित होकर वे वर्धमान गए। वहाँ उनको पता चला कि गोस्वामी प्रभुजी ढाका में हैं। यह जानकर वे ढाका रवाना हुए। यह उनकी पहली पूर्वी बंगाल यात्रा थी। ट्रेन में एक युवक के साथ उनका परिचय हुआ। उस युवक ने उनसे कहा ढाका जाने की आवश्यकता नहीं है, दोलाईगंज स्टेशन में उतरकर कुछ दूर पैदल जाने से गेण्डारिया आश्रम है, वहाँ गोस्वामी प्रभुजी हैं। वह युवक उनको साथ में लाकर आश्रम का दरवाजा दिखाकर चला गया। आश्रम में प्रवेश करके उन्होंने देखा, गोसाँईजी खड़ाऊ पहनकर आंगन में भ्रमण कर रहे हैं। परम् समादर से शिष्य को पास बुलाकर उन्होंने कुशलादि प्रश्न किये और श्री योगजीवन से बोले कि दिनभर से हरिदास बाबू का आहार नहीं हुआ है, शीघ्र पांव धोने का पानी एवं कंबल दो। शिष्य ने कंबलासन में बैठकर पिस्ता, अनार, किसमिस विविध फल एवं संदेश का नाश्ता किया। कुछ देर बाद योगजीवन ने उनको भोजन के लिए बुलाया। हरिदास बसु बोले कि वे सबके साथ बाद में आहार करेंगे। गोसाँईजी के शिष्य राधारमण बाबू के बाहर के घर में उनके शयन की व्यवस्था की गई। आश्रम में अनेक गुरुभाइयों से उनका परिचय हुआ। आश्रम की सब व्यवस्था देखकर उनको विस्मय होने लगा। उस समय हरिदास बसु ने अपनी ज्येष्ठा कन्या सरोजिनी देवी का ब्राह्मसमाज में विवाह करने की अनुमति मांगी, तब गोसाँईजी बोले, "ब्राह्मसमाज नाम का कोई समाज नहीं है एवं आपको स्वयं कुछ अनुष्ठान नहीं करना पड़ेगा। घर में बड़े भाई हैं, कुटुम्ब परिजन हैं, वे विवाह देंगे। समाज किसे कहते हैं ? जहाँ चाचा, ताउ, मामा आदि कुटुम्ब रहते हैं वही समाज है। एकजन कोयेटा का, एकजन वर्मा का, एक जन चेन्नई का, एकजन शिमला पहाड़ का यह सब लेकर समाज नहीं होता।"

हरिदास बसु के पूर्वज सत्यराज खान एवं रामानन्द को श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिवर्ष जगन्नाथदेव की पट्टडोरी भेजने का निर्देश दिये थे। हरिदास बसु ने इसे भेजना बंद कर दिया था। इस विषय में गोसाँईजी द्वारा शिष्य से पूछने पर उन्होंने कहा, "काठ के ठाकुर को रेशम की रस्सी से बांधना ? यह क्या है ? भगवान को कोई रेशम की रस्सी से बांध सकता है ?" उत्तर सुनकर गोसाँईजी चुप हो गए। वे समझ गए कि इस ब्राह्म शिष्य की अज्ञानता दूर करने में समय लगेगा। इसलिए उन्होंने शिष्य को समझाने की कोशिश नहीं की। उस समय गोस्वामी प्रभुजी के

आश्रम में विभिन्न देवी–देवताओं की पटमूर्ति देखकर एवं कीर्तनादि सुनकर शिष्य का मन दुःखित होने लगा। अतः ढाका में रहना निष्प्रयोजन समझकर वे गुरुजी से विदा लिये एवं भग्न हृदय में बोलपुर रवाना हुए।

बोलपुर में उनकी ब्रह्मोपासना यथारीति चलने लगी, बड़े दिन की छुट्टी में गोसाँईजी को देखने के लिए उनका मन पुनः व्याकुल होने लगा। उस समय गुरुजी कोलकाता में श्याम बाजार में थे। वे कोलकाता गए। गोसाँईजी का निर्दिष्ट पता उन्हें नहीं मालूम था। श्यामाकांत पंडित महाशय छत से गुरुभाई को देखकर उनको घर ले आये। उस समय गोसाँईजी ने उनको चैतन्य चरितामृत एवं चैतन्य भागवत पढने का निर्देश दिया। छुट्टी के समय कुछ दिन गुरुजी के पास रहकर वे बोलपुर लौटे। प्रतिदिन स्नान के बाद उपासना के समय चैतन्य चरितामृत का एक परिच्छेद वे पढ़ते थे। बंगला 1299 सन् (सन् 1892 ई०) की पूजा की छुट्टी में गोस्वामी प्रभुजी के आकर्षण से वे ढाका चले गए। गोसाँईजी ने उनको आदर के साथ स्वीकार किया। गोसाँईजी के पास दीक्षा प्राप्त करने पर भी पूर्व संस्कारवश वे ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों को उचित समझते थे। हिन्दू देवी–देवताओं के विग्रह आदि को देखने से उनका मन घृणा से भर जाता था। उस समय गुरुभाइयों के साथ एकदिन ढाकेश्वरी माँ का दर्शन करने गए। वहाँ बलिदान एवं पूजा देखकर हिन्दूधर्म के प्रति उनकी अश्रद्धा बढ़ गई।

आश्रम में एक कुटिया में गोसाँईजी पहले साधन–भजन करते थे। वहाँ एक विशाल जहरीला सांप गोसाँईजी के शरीर में एवं मस्तक पर चढ़ता था। गोसाँईजी की जननी एक फकीर के आवेश से कभी–कभी पागल हो जाती थी। उस समय एकदिन देवी में वह भाव होने पर उक्त कुटिया में उनको रखा गया था। दादी को उस कुटिया में रखते देखकर वे भयभीत हो गए एवं दुश्चिन्ता से पूरी रात नहीं सोये। एकदिन गुरुजी के पास 'कृष्णस्तु भगवान स्वयंम' सुनकर इस बारे में गुरुजी के साथ तर्क करने लगे, गोसाँईजी असंतुष्ट हुए। इससे दुःखित होकर गुरुजी से विदा लेकर वे बोलपुर चले आए।

बोलपुर आकर साधन–भजन पूर्णरूप में चलने लगा। गुरुकृपा से कुछ दिनों में उनको आत्मदर्शन हुआ अर्थात एकबार, दिन के एक बजे उन्होंने अपने आपको अपने सामने देखा, दर्पण में भी इतना स्पष्ट नहीं दिखता, इस प्रकार दर्शन होने लगा। गुरुजी के साथ मतभेद रहने पर भी उनके प्रति आपार आकर्षण था शिष्य का। गुरु के दर्शन के लिए वे व्याकुल हो उठते थे। बंगला 1300 सन् (सन् 1893 ई०) के भाद्र महीने में पत्नी की दीक्षा के लिए, कोलकाता सुक्रिया स्ट्रीट में गुरुभाई राखाल बाबू के घर में गोसाँईजी के पास ले गए। यथा समय पत्नी को दीक्षा प्राप्ति हुई। शिष्य हरिदास बसु गुरुजी का सान्निध्य लाभ के लिए रात में गोसाँईजी के

कमरे में रहे। उन्होंने देखा कि गुरुजी पूरी रात आसन में बैठे रहते हैं। अब उन्होंने समझा कि उनके गुरुजी निन्दा–प्रशंसा के ऊपर हैं। लौकिक कोई विषय उनको स्पर्श नहीं करता। उनको स्पष्ट पता चला कि उनके गुरुजी निःसन्देह एक महापुरुष हैं। फिर वे मूर्तिपूजा क्यों मानते हैं ? इस बारे में सोचते–सोचते उनके मन में प्रश्न उठा कि जो निताई–गौर, राधा–कृष्ण भजन करते हैं, क्या उनको भी धर्मलाभ होता है ?

बंगला 1300 सन् (सन् 1894 ई०) के पौष महीने में गोसाँईजी के निर्देश से वे प्रयाग कुंभ मेले में गए। वह स्थान उनके लिए अपरिचित था। किन्तु दोपहर ढाई बजे इलाहाबाद स्टेशन पहुँचकर उन्होंने श्री योगजीवन को देखा एवं यह भी पता चला कि गुरुजी उनको लेने के लिए पुत्र को भेजे हैं। इस घटना से वे विस्मित होकर सोचने लगे कि उनके गुरुजी अवश्य सर्वज्ञ एवं दिव्यदृष्टि संपन्न हैं। संध्या के समय गुरुजी के पास जाकर शिष्य ने उन्हें प्रणाम किया एवं गोसाँईजी आनन्द व्यक्त करके कुशलादि पूछे। उनके कमरे में ही शिष्य के आसन एवं शयन की व्यवस्था की गई। दूसरे दिन गोस्वामी प्रभुजी के साथ त्रिवेणी में उन्होंने स्नान किया। गुरुजी उनको संकल्प करके स्नान करने कहे थे किन्तु उन्होंने संकल्प नहीं किया। इस संकल्प वाणी में कितने मुनि, ऋषि, साधु, संन्यासी एवं महात्मागण को स्मरण करके उनसे आशीर्वाद की प्रार्थना रहती है किन्तु तब तक ब्राह्मसमाज के संस्कारों के कारण गुरुजी के निर्देश का तात्पर्य वे नहीं समझ सके थे। उसके बाद उन्होंने गुरुजी एवं गुरुभाइयों के साथ दशाश्वमेध घाट एवं उसके पास वेणीमाधव मंदिर गए। उक्त स्थानों में सबको प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करते देखकर ब्राह्म हरिदास बसु अवाक् हो गए। अंत में लज्जा की खातिर एकबार प्रणाम करके सबके पीछे–पीछे घूमने लगे।

अनेक शिष्यों के साथ गोसाँईजी कुंभमेले में आए थे। उनका आकाशवृत्ति व्रत था, इसलिए प्रतिदिन जो कुछ आता था, सब उसी दिन व्यय होता था, कभी भी कुछ संचित नहीं रहता था। सबकी सेवा का भार गोसाँईजी ने ग्रहण किया था। हिसाब–किताब का भार था हरिदास बसु एवं देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती के ऊपर। एकदिन गोसाँईजी के निर्देश से शिष्यों से भिक्षा के रूप में 160 रुपए प्राप्त हुए। इस प्रकार शिष्यों से भिक्षा लेकर वह रूपया उन्होंने आसन के नीचे रख दिये। प्रार्थी का आगमन होने लगा। उन्होंने भिक्षा का पैसा शाम तक सब दान कर दिया। इस प्रकार सब अर्थ खत्म होने पर हरिदास बसु चिंतित हो गए, यह सोचकर कि उन लोगों का भोजन अब किस प्रकार होगा ? किन्तु वे चकित् होने लगे कि प्रतिदिन भक्तों द्वारा लाये गए भोजन से या कहीं निमंत्रित होकर उन लोगों का राजसिक भोजन चलने लगा। उन्होंने देखा अर्थहीन गुरुजी शिष्यों को

राजभोग्य द्रव्यों से प्रतिपालन कर रहे हैं।

कीर्तन के समय गोसाँईजी एवं गुरुभाइयों के मधुर–भावयुक्त नृत्य देखकर एवं कभी–कभी गोसाँईजी को इष्ट दर्शन से भावमग्न होकर अपनी जटा हाथ में लेकर अति मनोहर आरती करते देखकर हरिदास बसु के मन में भावांतर उपस्थित हुआ। उन्होंने जिन लोगों के प्रति निकम्मा दल बोलकर उपहास एवं अश्रद्धा व्यक्त की थी, उनका अकृत्रिम प्रेम देखकर विमोहित हो गए। उनको लगा कि इन लोगों का जन्म सार्थक है। इनके चरण धूल से जीवन धन्य होगा। ये लोग मनुष्य नहीं स्वर्ग के देवता हैं। गुरुभाइयों के प्रति उनमें प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई। आत्मविचार करके उन्होंने देखा कि उनके भीतर कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे वही नीरस काष्ठ ही रह गए। वे समझ गए कि लोगों को धोखा देने का वकालती व्यवसाय ही इसका कारण है। उन्होंने सोचा कि मिथ्या वकालती से 50 रूपया वेतन की नौकरी बहुत अच्छी है। शिष्य को दुःखी देखकर गोसाँईजी बोले कि दुःख मत करो, समय पर सब ठीक हो जायेगा।

कुंभ मेला समाप्त होने के कुछ दिन बाद हरिदास बसु गुरुजी की अनुमति लेकर बोलपुर आए। गोसाँईजी प्रयाग से नवद्वीप आए श्रीमन् महाप्रभु का जन्मोत्सव दर्शन करने के लिए। वहाँ से कोलकाता लौटने पर बंगला 1300 सन् (सन् 1894 ई०) के चैत्र महीने में हरिदास बसु उनसे मिले। वहाँ कई दिन गुरुसंग करने के बाद बोलपुर आने की अनुमति मांगने पर गुरुजी श्यामाकांत पंडित महाशय को दिखाकर बोले, "इनको साथ में ले जाइये। बोलपुर में इनके लिए एक कुटीर एवं मेरे लिए भी एक कुटीर बनायेंगे। मैं भी बोलपुर में रहूँगा।" यह सुनकर शिष्य गुरु को प्रणाम करके श्यामाकांत बाबू को साथ लेकर बोलपुर गए। गुरुभाई के साथ एकत्र साधन–भजन में वे निरत हुए। श्यामाकांत बाबू गुरु आज्ञा से भिक्षान्न ग्रहण करते थे। बोलपुर के पूर्वप्रांत में एक छोटी नदी के किनारे एक झरना था। झरना का पानी मीठा एवं स्वास्थ्यप्रद था। हरिदास बसु उस झरने के पास पंडित महाशय के लिए एक पूर्वद्वारी घर, गुरुजी के लिए उसी प्रकार का घर एवं अपने लिए एक दक्षिणद्वारी घर बनाया। घर तैयार न होने तक पंडित महाशय गुरुभाई के घर के पास एक घर में रहते थे। बंगला 1301 सन् (सन् 1894 ई०) के आषाढ़ महीने में एकदिन सुबह 8 बजे हरिदास बसु बैठकखाना में बैठे थे। वहाँ श्यामाकांत पंडित महाशय एवं अनेक मुवक्किल थे। इस समय एक भिखारी के "निताई गौर सीतानाथ दया करो हे।" यह नाम गान शुरू करते ही हरिदास बसु के शरीर के भीतर भयानक तूफान शुरू हो गया। वे स्थिर नहीं रह सके। इस बारे में उन्होंने लिखा हैं, "हाथ से कलम गिर गई। मैंने आँखें बंद कर ली, अब नासिका द्वारा बाहर से प्रबल वेग में हवा मेरे अंदर प्रवेश करने लगी, ऐसा लगा मानो

एकघर वायु ने मेरे अंदर प्रवेश किया, पुनः बहिर्गमन के समय भी उसी प्रकार वायु बाहर आने लगी। इस प्रकार उस दिन महाशुभक्षण में उनके भीतर गुरुशक्ति या कुंडलिनी शक्ति की क्रिया प्रकाशित हुई। श्वास–प्रश्वास की तीव्रता कम होने पर अपने को एक नया मनुष्य लगा।"

इस घटना के पश्चात् उन्होंने अनुभव किया कि रिपु के अर्थात काम, क्रोध आदि अत्याचार नष्ट हो गए। निन्दा–प्रशंसा, लाभ–हानि, कामना–वासना आदि सब लुप्त हो गया। अंदर में आनन्द का स्रोत बहने लगा। प्राकृत विषय में उनका कोई आकर्षण नहीं रहा, कार्य करने की शक्ति यहाँ तक कि हस्ताक्षर करने की शक्ति भी नहीं रही। प्रायः एक महीना तक उनकी ऐसी अवस्था चली। उसके बाद वे सीताराम घोष स्ट्रीट में गोसाँईजी का दर्शन करने गए। वहाँ गुरुजी को अपनी अवस्था के बारे में जानकारी देकर उन्होंने अनेक प्रश्न पूछे एवं गुरुजी ने उन सब प्रश्नों के उत्तर दिये।

प्रश्न– आप मेरे भीतर क्या किये थे ? मैं निताई–गौर या राधा–कृष्ण को नहीं मानता हूँ, फिर भी उनका नाम सुनने पर वह मुझे बिल्कुल अभिभूत कर देता है।

उत्तर– आप मानें या न मानें, जिनको मानना था वे मान गए हैं। अब आपको कान पकड़कर मनवाएंगे। वे जब आपके अंदर हँसेंगे तब आप भी हँसेंगे, जब वे आप के अंदर रोयेंगे आप भी रोयेंगे, उनके नाचने से आप भी नाचेंगे।

प्रश्न– मेरे इष्ट मंत्र के साथ निताई–गौर या राधा–कृष्ण का कोई संबंध नहीं है, फिर भी इनका नाम मुझे क्यों व्याकुल करता है ?

उ०– आप इनको अलग सोचते हैं किन्तु वास्तव में ये अलग नहीं, सब एक हैं।

प्रश्न– दीक्षा तत्व क्या है ?

उ०– जीवात्मा एवं परमात्मा एक ही शरीर में अवस्थान कर रहे हैं। मातृगर्भ से भूमिष्ठ होने के साथ–साथ भगवान की मायाशक्ति द्वारा जीव आच्छन्न हो जाता है। वह सोचता है मैं कर्ता हूँ। भगवान कर्ता हैं, यह बोध उसका नहीं रहता। जो "प्राणस्य प्राण चक्षुस्य चक्षु" हैं उनको बिल्कुल भूल जाता है। जिस प्रकार सूर्य बादल से आच्छादित रहता है, उसी प्रकार जीव मायाशक्ति द्वारा आच्छन्न रहता है। गुरु शिष्य में प्रविष्ट होकर यह माया मेघ अपसारित करते हैं एवं परमात्मा को जाग्रत करके शिष्य के भीतर प्रतिष्ठित करते हैं।

प्र०– गुरु किस प्रकार जीवात्मा को इस माया मोह से मुक्त करते हैं ?

उ०– कृपादृष्टि द्वारा।

प्र०– परमात्मा शरीर में किस रूप में अवस्थान कर रहें हैं ?

उ०– शक्ति रूप में।

प्र०– हमें क्यों पता नहीं चलता ?

उ०– वह शक्ति जागृत नहीं होने के कारण मनुष्य को पता नहीं चलता।

प्र०– वह शक्ति किस प्रकार जागृत होती है ?

उ०– किसी प्रवल शक्ति संपन्न महापुरुष द्वारा यह शक्ति जगानी पड़ती है।

प्र०– प्रबल शक्ति संपन्न महापुरुषगण यह शक्ति कैसे जगाते हैं ?

उ०– दिया में तेल और पलीता (बांती) रहने पर भी वह स्वयं जल नहीं सकता। एक ज्वलंत दीये के संस्पर्श में लाना पड़ता है। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के भीतर शक्ति है किन्तु वह जागृत नहीं रहती। प्रबल शक्ति संपन्न महापुरुष के प्रबल शक्ति के संस्पर्श में वह जाग उठती है। इसे ही शक्ति–संचार कहते हैं।

प्र०– क्या मनुष्य स्वयं यह शक्ति नहीं जगा सकता ?

उ०– कभी नहीं, बुद्धदेव जैसा होने पर संभावना है।

प्र०– यह शक्ति जागृत नहीं होने से क्या हानि है ?

उ०– साधन–भजन का फल स्थायी नहीं होता। कुछ दिन साधन–भजन द्वारा एक अच्छी अवस्था प्राप्त करने पर वह ज्यादा दिन स्थायी नहीं होती।

प्र०– मंत्र प्रदान की क्या आवश्यकता है ?

उ०– मंत्र शब्द नहीं है। मंत्र के प्रतिपाद्य देवता को गुरु मंत्र में समन्वित करके शिष्य को प्रदान करते हैं। मंत्र भी परमात्मा की तरह शक्ति स्वरूप है। मंत्र एवं मंत्र के प्रतिपाद्य देवता एक है।

प्र०– सिद्धमंत्र क्या है ?

उ०– जिस मंत्र का जप करके महात्माओं ने सिद्धिलाभ किया हैं, उसे सिद्धमंत्र कहा जाता है।

प्र०– आपने मुझे क्यों दीक्षा प्रदान की ?

उ०– मैं त्रिताप ज्वाला से दग्ध हुआ हूँ। आप लोग भी मेरी तरह त्रिताप ज्वाला से दग्ध हो रहे हैं, अपना दुःख देखकर आप लोगों के दुःख निवारण के लिए दीक्षा प्रदान की है। अपनी रूप यौवन संपन्ना पत्नी को जिस प्रकार कोई अन्य किसी को देना नहीं चाहते, उसी प्रकार अनेक कठोर साधना द्वारा प्राप्त यह धन भी कोई अन्य किसी को नहीं देना चाहता है। आप लोगों का बहुत कष्ट देखकर मैंने दीक्षा दी है।

प्र०— क्या शिष्य के लिए गुरु का कोई दायित्व है ?

उ०— हाँ है, जब तक शिष्य का उद्धार नहीं होगा, तब तक गुरु का भी उद्धार नहीं होता है। इसलिए यदि गुरु को पुनः जन्म ग्रहण करना आवश्यक हो तो उनको जन्म ग्रहण करना होगा।

प्र०— गोसाँई आप ऐसा कार्य क्यों किए ? क्या आपको और कोई नही मिला ? इस महापातकी को क्यों दीक्षा प्रदान की ?

उ०— मैं प्रतिदिन आप लोगों की पूजा करता हूँ। भगवान की प्रतिष्ठा करके क्या पूजा किये बिना रखा जा सकता है ? आप लोगों की देह अब पूजा घर है, इष्ट देवता की वहाँ प्रतिष्ठा की है। अभी आप लोगों के साथ उनका परिचय नहीं है। वे कितने आदरणीय धन हैं, वह आप लोग नहीं जानते। आप लोग अभी उनका आदर यत्न नहीं कर सकेंगे, इसलिए प्रतिदिन मैं उनकी पूजा करता हूँ।

प्र०— क्या प्रत्येक शिष्य के भीतर उनकी पूजा करनी पड़ती है या एक स्थान में ?

उ०— एक स्थान में पूजा करने से ही होता है।

प्र०— उनकी पूजा किस प्रकार करना पड़ती है ?

उ०— गुरु प्रदत्त नाम—जप ही उनकी असली पूजा है।

प्र०— गुरु के बिना क्या भगवत् प्राप्ति का कोई उपाय नहीं है ?

उ०— गुरु के बिना भगवत् प्राप्ति असंभव है, भगवान को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की कृपा प्राप्त करना भगवान का नियम है।

प्र०— सद्गुरु किसे कहते हैं ?

उ०— मनुष्य शरीर में भगवान का आवेश।

प्र०— क्या आप सद्गुरु हैं ?

उ०— हाँ।

प्र०— साधारण गुरु द्वारा क्या भगवत प्राप्ति असंभव है ?

उ०— हाँ, साधारण गुरु अनर्थ का कारण हैं।

प्र०— हमारे देश में जो कुलगुरु, कुल दीक्षा देते हैं उनकी उस दीक्षा द्वारा क्या शिष्य का कोई उपकार होता है ?

उ०— हाँ. अनेक उपकार होता है। कुलगुरु के निकट दीक्षा लेकर निष्ठापूर्वक

भजन करने पर अनेक उपकार होता है। ये गुरु लोग एक प्राचीन प्रणाली की रक्षा करते हैं। इससे देश का काफी कल्याण हो रहा है।

प्र०– क्या सद्‌गुरु का आविर्भाव सर्वदा होता है ?

उ०– नहीं, जब धर्म की अत्यंत ग्लानि होती है, केवल उसी समय सद्‌गुरु का आविर्भाव होता है।

प्र०– आप हमें जो साधन दिये है उससे क्या लाभ होगा ?

उ०– इस पृथ्वी में जितने प्रकार की साधन प्रणाली प्रवर्तित है, उससे मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह सब प्राप्त होगा एवं इसके अतिरिक्त प्रेम–भक्ति प्राप्त होगी।

प्र०– कितने दिनों में यह अवस्था प्राप्त हो सकती है ?

उ०– 2 दिन, 10 दिन, 2 साल, 10 साल, 50 साल, प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर वह अवस्था प्राप्त होगी।

प्र०– प्रारब्ध कर्म कैसे समाप्त होगा ?

उ०– भगवान के नाम से।

प्र०– क्या हम लोगों का नामापराध है ?

उ०– नहीं।

प्र०– क्या नामापराध होगा ?

उ०– नामापराध गुरुजी नष्ट कर दिये हैं।

प्र०– यदि नाम करते समय मन में कुचिन्ता करें तो क्या नाम का फल मिलेगा ?

उ०– हाँ अवश्य मिलेगा, नाम शब्द नहीं है शक्ति है। वस्तु की शक्ति कहाँ जाएगी ?

प्र०– यह साधन कहाँ था ?

उ०– निर्जन पहाड़ में जिस प्रकार क्षुद्र नदी मनुष्य की आँखों से दूर किसी अज्ञात स्थान से धीरे–धीरे प्रवाहित होती है, उसी प्रकार यह साधन अति सावधानी से संन्यासियों के भीतर गुप्त रूप से गुरुपरंपरा में इतने दिन से चला आ रहा था। यह साधन गृहस्थ लोगों को कभी नही मिला था। देश की अत्यंत दुर्दशा देखकर महापुरुषों ने इसे गृहस्थ लोगों को प्रदान किया।

प्र०– क्या हमें और कर्मसूत्र में आबद्ध होना पड़ेगा ?

उ०— नहीं, गुरु ने कर्मसूत्र छिन्न कर दिये हैं। कर्मसूत्र छिन्न नहीं होने तक जीव का उद्धार नहीं होता।

प्र०— श्रीमन् महाप्रभु का नाम मुझे अभिभूत करता है, क्या वे भगवान हैं ?

उ०— **वे पूर्णतम् भगवान हैं। यह साधन उनका अपना साधन है।**

इस प्रकार मन के संशय छिन्न होने पर बसु महाशय का जीवन धन्य हो गया।

प्रारंभ में श्री चैतन्य चरितामृत पाठ उनको अच्छा नहीं लगता था। पर अब जितना पढ़ते, उतना नया अर्थ बोध होता। गुरु आज्ञा से यह ग्रन्थ वे नित्यपाठ करते थे। इस ग्रंथ में उनके पूर्व पुरुष के सम्बन्ध में उल्लेख रहने के कारण ग्रंथ एवं ग्रंथ कर्ता के प्रति उनकी आपार श्रद्धा उत्पन्न हुई। महाप्रभु ने कुलीन ग्रामवासी को अनेक सम्मान प्रदान किया था। वह सब बातें भी इस ग्रंथ में हैं, इसलिए उनको बहुत आनन्द मिलता था। उनके दशम पुरुष पूर्वज का नाम लक्ष्मीकांत बसु था। दिल्ली के बादशाह ने उनको सत्यराज खान उपाधि दी थी। सत्यराज खान एवं रामानन्द बसु महाप्रभु से साधना के बारे में पूछने पर महाप्रभु कहे, "कृष्ण सेवा, वैष्णव सेवन, निरन्तर करो कृष्ण नाम संकीर्तन" चैतन्यचरितामृत में यह उक्ति देखकर हरिदास बसु ने घर में कृष्ण सेवा, वैष्णव सेवा एवं नित्य नाम—संकीर्तन की व्यवस्था की। उनके मुंशी मृदंग बजाते थे और श्यामाकांत पंडित महाशय मूल गायक थे। संध्या का सब कार्य बंद करके उन्होंने बैठक खाना में नाम—कीर्तन प्रारम्भ किया।

बंगला 1301 सन् (सन् 1894 ई०) के भाद्र महीने में गोसाँईजी के शिष्य हरिमोहन चौधरी बोलपुर आए। उनके इस संकीर्तन में योगदान देने पर विपुलभाव की तरंग प्रारम्भ हो गई। बसु महाशय ने संकीर्तन के समय पंडित महाशय एवं हरिमोहन बाबू के अंग में अष्ट सात्विक भाव के लक्षण दर्शन किये। भावावेश से मूर्छित हो जाने पर वे पुष्प चंदन से उनकी चरण पूजा करते थे। इस संकीर्तन से मद्य, माँसभोजी, व्यभिचार परायण अधिकांश लोग परिवर्तित हो गए। हरिमोहन बाबू कुछ दिन बोलपुर में रहकर श्रीवृन्दावन चले गए।

प्रबल गुरुशक्ति का अनुभव करने पर भी हरिदास बसु शांतिनिकेतन में नियमित ब्रह्मोपासना करते थे। एकदिन पंडित महाशय को साथ लेकर वे वहाँ गए किन्तु वहाँ कुछ खाद्य ग्रहण करके घर लौटने पर दोनों बुखार से पीड़ित हो गए। पंडित महाशय बोले कि उच्छिष्ट (जूठा) भोजन ही इसका कारण है। कुछ दिनों में बसु महाशय स्वस्थ हो गए लेकिन पंडित महाशय को प्रायः दो महीने तक रोग यंत्रणा भोगनी पड़ी। सद्गुरु आश्रित लोगों को जूठा भोजन करने पर इस प्रकार कष्ट होता है।

गुरु शक्ति प्रकाश होने के बाद से सब कुछ परिवर्तित होने लगा। अब देवमूर्ति अथवा चित्रपट दर्शन से बसु महाशय को परम तृप्ति मिलती थी। साधु–संन्यासी दर्शन से प्राण भर जाता था। अब शास्त्र अभ्रान्त बोध होने लगा एवं उनको शास्त्र पाठ से अपार आनन्द मिलने लगा। जूठा भोजन न हो जाय, इस कारण उन्होंने सबके साथ में या एक थाली में आहार करना बन्द कर दिया। साधु दर्शन से गुरुशक्ति जागृत होती थी। पत्नी, पुत्र, परिजन एवं संसार भार स्वरूप बोध होने लगा। गुरुशक्ति इस प्रकार उनको बलपूर्वक नए रूप में तैयार करने लगी। आश्चर्य का विषय यह है कि गोस्वामी प्रभुजी शिष्य के मत के विरुद्ध उनको कुछ करने कभी नहीं बोले। उन्होंने गुरुजी के निकट अनेक वादानुवाद किये थे। अब वह सब सोचकर उनको लज्जा बोध होने लगा।

हरिदास बसु का कहना था, "पृथ्वी के सब दुःसाध्य कार्यों में गुरु प्रदत्त नाम जप करना सर्वापेक्षा कठिन है। किन्तु गुरुशक्ति प्रकाश होने पर वह शक्ति सहायक बनकर नाम को परिचालित करने लगी। गुरुशक्ति नाम का सहायक न होने से नाम करना विड़म्बना मात्र है किन्तु वह शक्ति धीरे–धीरे बढ़ने लगी और भीतर आनन्द एवं उत्साह का संचार होने लगा।"

बंगला 1301 सन् (सन् 1894 ई०) की पूजा की छुट्टी में वे गुरुजी के श्रीचरण दर्शन के लिए गुरुभाई पंडित महाशय को लेकर कोलकाता सीताराम घोष स्ट्रीट के घर गए। शिष्य को देखकर गोसाँईजी ने बहुत आनन्द व्यक्त किया। उस समय दिनरात गुरुजी के पास वे रहते थे और उनके जीवन की अलौकिक घटनावली सुनकर विस्मित होते थे। छुट्टी समाप्त होने पर गुरुजी से विदा लेकर वे बोलपुर चले आये।

इस साधना के प्रति उनका इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि वे सोचने लगे पृथ्वी के सब लोग यदि गोस्वामी प्रभुजी के निकट जाकर शांतिलाभ करके भगवत् उपासना में जीवन बितायें तब मुझे तृप्ति होती। बंगला 1301 सन् के माघ महीने (सन् 1895 ई०) में उनके संबंधी कालीकृष्ण सरकार, रामकृष्ण सरकार एवं कन्या सरोजिनी दासी को दीक्षा के लिए गुरुजी के पास ले गए। कोलकाता में उपस्थित होकर गुरुजी को प्रणाम करते ही गोसाँईजी उनकी शारीरिक एवं पारिवारिक कुशलवार्ता पूछे। शिष्य ने बताया अब मेरी शारीरिक अवस्था ठीक है किन्तु समय–समय पर विशेष उपासना में मैं शांतिनिकेतन जाता हूँ। शांतिनिकेतन जाने से मुझे बुखार हो जाता है। गोसाँईजी के साथ बात करके उन्हें पता चला कि जूठे टेबुल पर चाय के साथ उच्छिष्ट आहार और स्वरुचि भोज ग्रहण से उनकी यह दुर्गति हो रही है। गुरुजी की बात सुनकर वे सावधान हो गए। उसके बाद उन्होंने अनुभव किया कि ईष्टमंत्र जप से जो फल मिलता है, ब्राह्मसमाज की उपासना से

उसका अंश मात्र भी लाभ नहीं होता, इसलिए उन्होंने ब्राह्मोपासना परित्याग किया एवं उनका शांतिनिकेतन जाना भी बंद हो गया। श्रीचैतन्य चरितामृत में है कि कुलीनग्राम के भाग्य की सीमा नही है। वहाँ के सुअर, चरवाहा, डोम भी कृष्ण नाम गाता है। इस बात से बसु महाशय को संदेह उपस्थित हुआ कि जो व्यक्ति कभी कुलीनग्राम में गए नहीं, वे इस ग्राम के बारे ऐसी उच्च धारणा कैसे पोषण कर सकते हैं ? इस विषय में गोसाँईजी से पूछने पर उनको जानकारी मिली कि महाप्रभु कुलीनग्राम गए थे। उल्लेखनीय है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु के अन्तरंग भक्त हरिदासजी इस ग्राम में काफी समय रहे थे। उनके प्रभाव से यह गाँव धन्य हो गया था।

पंडित महाशय के साथ वे श्यामसुन्दरजी के दर्शन के लिए शांतिपुर गए। विग्रह दर्शन के साथ ही उनके भीतर प्रबल गुरुशक्ति की क्रिया शुरू हुई। प्राणायाम का गर्जन शुरू हो गया, आँखों से आँसू बहने लगे, विविध अंगचेष्टा देखी गयी। वे अपने आप को नहीं संभाल सके। श्यामसुन्दरजी के भोग के समय यह घटना हुई थी। गोसाँईजी के कुटुम्ब के लोग एवं समवेत स्त्री–पुरुषगण यह देखकर अचंभित हो गए। प्रस्तर मूर्ति में इस प्रकार भगवत् प्रकाश देखकर बसु महाशय को नवजीवन लाभ हुआ। शांतिपुर में रात्रि यापन के बाद उन्होंने नवद्वीप दर्शन किया एवं पंडित महाशय के साथ कोलकाता आये। गुरुजी को प्रणाम करते ही गोसाँईजी शिष्य को श्यामसुन्दरजी के दर्शन की बात पूछे। हरिदास बसु पहले मूर्तिपूजा स्वीकार नहीं करते थे। विग्रह को निर्जीव काष्ठ, पत्थर आदि सोचते थे, किन्तु श्यामसुन्दरजी के दर्शन के बाद उन्हें समझ में आ गया कि इस प्रकार के जाग्रत विग्रह समूह का इतने दिनों तक अनादर करके उन्होंने भूल की है, इसलिए गोसाँईजी के प्रश्न का उत्तर देते समय लज्जित भाव से बोले, "श्यामसुन्दरजी की बात और क्या कहूँ ? उनके वस्त्र का थोड़ा अंश देखकर मैं अपने को संभाल नहीं सका, उनकी दया की बात और क्या कहूँ ? इस पातकी के ऊपर उनकी इतनी दया!" शांतिपुर एवं नवद्वीप परिक्रमा से शिष्य समझ गए कि उनके गुरु त्रिकालज्ञ हैं।

कई दिनों बाद बसु महाशय पंडित महाशय एवं परिवार वर्ग सहित बोलपुर वापस आए फिर बंगला 1301 सन् (सन् 1895 ई०) के फाल्गुन महीने में श्रीवृन्दावन धाम गमन किये। गोसाँईजी के भाद्र महीने में वृन्दावन से लौटने पर बसु महाशय पूजा की छुट्टी में सपरिवार गुरु दर्शन के लिए गए। उस समय गोसाँईजी 14/2 सीताराम घोष स्ट्रीट में अवस्थान कर रहे थे। उस समय बसु परिवार के कुछ व्यक्तियों ने साधन प्राप्त किया था। उसके बाद बोलपुर में उनके घर में प्रायः नाम–संकीर्तन होता था। बंगला 1302 सन् (सन् 1895 ई०) के पहले पौष को

सूर्योदय के समय उनको एक पुत्र लाभ हुआ। उस समय गोसाँईजी ढाका में थे। संतान के भूमिष्ठ होते ही उन्होंने शिष्यों के निकट यह बात कही थी। महापुरूषगण दिव्यदृष्टि से सब देख सकते हैं, कुछ भी उनको अविदित नहीं रहता है। बंगला 1302 सन् (सन् 1896 ई०) के माघ महीने में बोलपुर में बसु महाशय के घर में श्रीमान् अद्वैतप्रभु के आविर्भाव दिवस के उपलक्ष्य में धुलट उत्सव शुरू हुआ। बोलपुर एवं पार्श्ववर्ती गाँव से असंख्य कीर्तन दलों ने योगदान दिया। दिनरात मृदंग–करताल की ध्वनि एवं भक्तवृन्दों की उल्लास ध्वनि होने लगी। 9 वीं माघ सप्तमी के दिन नगर–कीर्तन शुरू होने पर बोलपुर में अपूर्व एवं अद्भुत भाव की सृष्टि हुई। उस दिन गृहस्थ लोग एवं दुकानदारों ने बतासा आदि मिठाई की हरिलूट दिये थे। बाजार में एक छटाक मिठाई भी नहीं बची। हरिदास बसु महाशय के घर में अंसख्य लोगों ने उस दिन प्रसाद पाया।

उनके पूर्वज प्रतिवर्ष जगन्नाथदेव की पट्टडोरी देते थे, किन्तु हरिदास बसु अज्ञानतावश इसकी आवश्यकता नहीं समझे थे। अब इसकी महिमा समझ कर स्वयं उद्योगी हुए। बांकुड़ा से दक्ष शिल्पी लाकर उनसे पट्टडोरी बनवाकर भेजने लगे। फिर स्वयं सीख लिए एवं अपने हाथों से पट्टडोरी बनाकर भेजने लगे।

पहले ही उनको आत्मदर्शन हुआ था। अब उनका देवदर्शन शुरू हुआ और एक–एक योगांग भी प्रकाशित होने लगी। गुरुदत्त नाम से यह सब अपने–आप होने लगा। इस विषय में गुरुजी से पूछने पर उन्होंने कहा, "यह सब गुरु प्रदत्त नाम का प्रभाव है। इसे ही राजयोग कहा जाता है।"

बंगला 1303 सन् (सन् 1896 ई०) ज्येष्ठ महीने में गोसाँईजी 45 नं. हैरिसन रोड में थे। पत्नी एवं पुत्र के साथ हरिदास बसु के गुरुजी के पास उपस्थित होने पर गोसाँईजी ने शिशु को माँ की गोद से नीचे उतारने को कहा। शिशु को गोद से उतारने पर वह पहले गोसाँईजी का वस्त्र पकड़कर खींचा, उसके बाद जमीन से घिसटकर श्रीमद् भागवत आदि भक्ति शास्त्रों को स्पर्श करके पुनः माँ की गोद में चला गया। गोसाँईजी इस विषय का तात्पर्य समझाये। गैरिक वस्त्र आकर्षण का अर्थ वैराग्य एवं भक्ति शास्त्र स्पर्श का अर्थ है भक्ति अर्थात शिशु वैराग्य एवं भक्ति की प्रार्थना कर रहा है। शिष्यों ने बसु महाशय से कहा गोस्वामी महाशय ने पहले ही इस बालक का परिचय बता दिया है कि ये आपके पूर्व पुरुष लक्ष्मीकांत बसु हैं। गोसाँईजी ने आदरपूर्वक उसका नाम गोपीजन वल्लभ रखा।

उस समय गोसाँईजी के आसन पर देव–देवी की मूर्ति, ध्वजा, ब्रजांकुश चिह्न, हरिनाम की अपने–आप छाप देखकर बसु महाशय चकित होते थे। उस समय उनकी माला–तिलक धारण करने की इच्छा हुई। एकदिन एक गुरुभाई उनको माला–तिलक लगा दिये। गुरुशक्ति के प्रभाव से उनके भीतर क्रमशः वैष्णव

भावना प्रकट होने लगी। कृष्ण–कथा, कृष्ण–लीला, गौरांग–लीला उनको अत्यंत मधुर लगने लगी। वैष्णव दर्शन से प्राण पुलकित हो उठता था। उनका यह परिवर्तन देखकर गोसाँईजी मुस्कराते थे। एकदिन गोसाँईजी ने शिष्य को गया के रघुवरदास बाबाजी की साधन में उन्नत अवस्था एवं उनके पतन के विषय में बोले। शिष्य यह सुनकर अत्यंत भयभीत होकर बोले, "मैं अत्यंत अपराधी एवं पापी हूँ। आपने मेरी अनेक विपत्ति से रक्षा की है एवं कर रहे हैं। मुझे अत्यंत भय हो रहा है, मेरे प्रति कृपादृष्टि रखें।" गोसाँईजी बोले, "तुम्हें कुछ कहना नहीं होगा।"

बोलपुर आश्रम में पंडित महाशय के साथ सरलनाथ ने भी योगदान दिया था। उनके संगलाभ से एवं अन्यान्य भक्तगणों के साहचर्य से बसु महाशय के अंतर में सर्वदा आनन्द का स्त्रोत प्रवाहित होता था। अश्विन महीने में पूजा की छुट्टी में गुरु दर्शन के लिए वे कोलकाता गए। उस समय उन्होंने गुरुजी की जांघ में राधा–कृष्ण का सुन्दर चित्र और आसन पर निताई–गौर के चित्र देखे। इस विषय में शिष्य के प्रश्न करने पर गोसाँईजी ने कहा, **"भगवत् भक्त के रक्त, माँस, अस्थि, मज्जा सब में भगवान का नाम अंकित हो जाता है। भगवत भक्त द्वारा व्यवहार किया गया वस्त्रादि भी नामांकित हो जाता है। जिस वृक्ष के नीचे या घर में वे नाम करते हैं, उस वृक्ष की जड़, शाखा, पत्ती, घर के ईंट, दीवाल आदि सब चीजों में भगवान का नाम अंकित हो जाता है। श्रीवृन्दावन की यमुना में मुझे एक वैष्णव की अस्थि मिली थी जिस पर हरि नाम अंकित था।"** उन्होंने सुना था कि श्रीवृन्दावन के किसी वृक्ष के पत्र में राधाकृष्ण का नाम लिखा है। एक समय शिष्य यह सब नहीं मानते थे किन्तु अब गोसाँईजी के आसन, वस्त्र, देह में भगवान का नाम एवं चित्र अंकित देखकर अविश्वास का कारण नहीं रहा। पहले अहंकार के वशवर्ती होकर गुरु की अवज्ञा की थी, अब वह सब बातें याद करने से अपने ऊपर उन्हें घृणा होने लगी। स्वकृत अपराध के लिए अपने को शत्–शत् धिक्कार देकर गोसाँईजी से वे बोलें – "गोसाँईजी, मैं तो नरक में चला गया था। मैंने जो अपराध किया है उससे नरक में भी स्थान नहीं मिलता। आप परम दयालु हैं, मुझे महानरक में पतित होते देखकर कृपापूर्वक मेरा केश पकड़कर अपने चरणों में ले आये हैं। आपके बिना क्या मेरी रक्षा होती ? उसके बाद शिष्य गुरु के निकट उनके व्यवहृत कौपीन या बहिर्वास या अन्य कुछ वस्तु की प्रार्थना किये। दयाल गोसाँईजी के जिस गेरुए वस्त्र खंड पर भगवान का नाम और मूर्ति अंकित हुई थी, वही वस्त्र खण्ड आसन से उठाकर उन्होंने स्वयं शिष्य को प्रदान किये। शिष्य ने वह वस्त्रखंड मस्तक पर ग्रहण किया फिर बोलपुर लाकर वे यत्नपूर्वक इसकी रक्षा एवं पूजा करने लगे।

बंगला 1303 सन् (सन् 1896 ई०) बड़े दिन की छुट्टी में बसु महाशय गुरु

दर्शन के लिए कोलकाता गए। साधन एवं उसके उपकार के संबंध में अनेक बातें हुई। गोसाँईजी ने शिष्य को श्री अद्वैतप्रभु का जन्मोत्सव करने का उपदेश एवं नियम प्रणाली बताई। छुट्टी समाप्त होने पर शिष्य बोलपुर आकर प्राणप्रण से साधन–भजन करने लगे। पंडित महाशय एवं सरलनाथ भी उनके साथ थे। उस वर्ष 20 माघ (सन् 1897 ई०) से बोलपुर में उन्होंने अद्वैतप्रभु का जन्मोत्सव शुरू किया। बसु महाशय ने तीन प्रभु के तीन आसन एवं गुरुजी के लिए एक आसन की स्थापना की। 26 वें माघ तक प्रतिदिन प्रातःकाल में मंगल आरती से लेकर रात के दो प्रहर तक संकीर्तन, भोगराग निवेदन आदि में किस प्रकार समय बीतता था, किसी को पता नहीं चलता। संकीर्तन के समय भावोच्छावास से मानो प्रलय उपस्थित होता था। 27 वीं माघ नगर–संकीर्तन में भक्तगण के उद्दण्ड नृत्य से मानो धरती कांप उठती थी। तीन बजे कीर्तन लौटने पर दधिमंगल एवं हरिलूट के बाद कीर्तन समाप्त होता था। स्नानाहार के अंत में भक्तगणों का विश्राम एवं संध्या से रात नौ बजे तक नर–नारायण भोजन के बाद उत्सव की समाप्ति होती थी।

उस समय उनकी जन्म–भूमि कुलीनग्राम भक्ति शून्य हो गई थी। ग्रामवासियों का अनाचार, दलबाजी, मुकदमा आदि से ग्राम भ्रष्ट हो गया था। बसु महाशय उनके कल्याण के लिए यहाँ नाम–संकीर्तन प्रवर्तन किये। उनके बड़े भाई ने भी उसमें योगदान दिया। बसु महाशय समय–समय पर कुलीनग्राम जाकर ग्रामवासियों को धर्मोपदेश देते थे। कुछ ही दिनों में कुलीनग्राम ने सुंदर रूप धारण किया और ग्रामवासीगण को एक नए जीवन का संधान मिला।

फाल्गुन महीने में शिवरात्रि की छुट्टी में बसु महाशय दो कन्या, ज्येष्ठ जामाता एवं सास को दीक्षा के लिए कोलकाता ले गए। गोसाँईजी के पास जाकर वे एक धनी कुटुम्बी के घर में ठहरे थे। सौभाग्यवशतः उस धनी कुटुम्बी को हरिदास बसु के संसर्ग से एक नया रास्ता मिला। वे बसु महाशय के प्रभाव से धर्म के पथ पर चलने लगे। बसु महाशय समझ गए कि सत्संग एवं सदालाप की महिमा अनन्त है। 19 वीं फाल्गुन को दीक्षा कार्य संपन्न हुआ। उसके बाद गुरु–शिष्य में अति मनोरम चर्चा हुई। गोसाँईजी केवल महाष्टमी के दिन स्नान करते थे। इस बारे में शिष्य के मन में प्रबल जिज्ञासा का उदय हुआ। गोसाँईजी बोले, "भक्ति की प्रबलता से मस्तिष्क से एक प्रकार का रस निकलकर जिह्वा में आता है। यह सुधाक्षरण होने से नहाने की जरूरत नहीं पड़ती।" शिष्य को और जानकारी मिली कि वह सुधा का एक बूंद खाने से बहुत दिनों तक भूख नहीं रहती। उसका स्वाद कभी लवणाक्त, कभी तिक्त, कभी मधुर होता है– यह सब सुनकर शिष्य आश्चर्यचकित हो गए। गोसाँईजी भी बोलपुर में अद्वैतप्रभु के जन्मोत्सव की बात

शिष्य के पास सुनकर आनन्द व्यक्त करने लगे। उसके बाद गुरु से विदा लेकर शिष्य बोलपुर चले आए।

पहले ही कहा गया है कि उनके पूर्वपुरुष सत्यराज खान प्रतिवर्ष श्रीमन् महाप्रभु के निर्देश से जगन्नाथदेव की पट्टडोरी लेकर पुरूषोत्तम धाम गमन करते थे। रास्ते में अनेक विपद् के कारण कभी–कभी धाम तक वे नहीं जा सकते थे। इसलिए उन्होंने कुलीनग्राम में श्रीश्री जगन्नाथदेव की सेवा स्थापना की थी। जिस वर्ष वे नहीं जा सकते थे, तब किसी के द्वारा पट्टडोरी भेज देते थे।

बंगला 1304 सन् (सन् 1897 ई०) के रथोत्सव में बसु महाशय बोलपुर से संकीर्तन दल लेकर कुलीनग्राम आये। संकीर्तन दल के नृत्य एवं उल्लास ध्वनि से ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ कि ग्रामवासी सभी इस संकीर्तन में मग्न हो गए।

कुलीनग्राम की बातें सुनकर वहाँ जाने के लिए मुक्तकेशी देवी एवं पंडित श्यामाकान्त, हरिदास बसु महाशय के साथ अपराह्न में कुलीनग्राम पहुँचे। हरिदास ठाकुर के पाठ के आंगन में संकीर्तन शुरू हुआ एवं प्रायः सम्पूर्ण रात्रि संकीर्तन के साथ भावपूर्ण नृत्य चला। संकीर्तन के समय किसी–किसी ने अनेक देव–देवी का दर्शन किया था। पंडित महाशय एवं मुक्तकेशी देवी ने कुलीनग्राम एवं पार्श्ववर्ती ग्राम के श्रीविग्रह दर्शन किये। उसके बाद बसु महाशय उनको लेकर बोलपुर गए।

बंगला 1304 सन् (सन् 1897 ई०) में बड़े दिन की छुट्टी में वे सबको लेकर गुरु दर्शन के लिए कोलकाता गए। उनमें उनके घर के नौकर, पाचक आदि सभी थे। सबको गुरुजी के चरणों में आश्रय मिले यही थी उनकी इच्छा। गुरुजी को प्रणामपूर्वक बोलपुर एवं कुलीनग्राम की सब बातें उन्होंने व्यक्त की। साधन प्राप्ति से सबकी अभिलाषा पूरी हुई। छुट्टी समाप्त होने पर वे बोलपुर वापस गए।

कोलकाता से लौटकर बसु महाशय श्रीमद्अद्वैत प्रभु के जन्मोत्सव का आयोजन करने लगे। उत्सव के 21 दिन पहले से इस बार संकीर्तन शुरू हो गया। 8 वीं माघ संध्या में आसन स्थापित हुआ। पूर्व वर्ष की तरह इस बार भी नगर कीर्तन में महाभाव की सृष्टि हुई। इस विषय में बसु महाशय की उक्ति विशेष उल्लेख योग्य है। उन्होंने कहा था कि घटना का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। यह सब घटना अपनी आँखों से न देखने से विश्वास करना कठिन है। उस समय कुलीनग्राम एवं बोलपुर में गोस्वामी महाशय ने महाशक्ति प्रकाशित की थी। उस शक्ति के बल से इस प्रकार घटना संघटित हुई थी। कुलीनग्राम हरिदास बसु का जन्म स्थान था, इसलिए पंडित महाशय ने ग्रामवासियों के प्रति हरिदास बसु का कर्तव्य स्मरण कराया। वह ग्राम भक्ति प्रधान ग्राम था। किन्तु काल प्रभाव से ग्रामीणों का अधःपतन हो गया था। बहुत दिन बाद संकीर्तन से उन लोगों की पूर्व

स्मृति जागृत हुई। उन लोगों को दीक्षित कराने के अभिप्राय से बसु महाशय ने बडे भैया को पत्र लिखा। बड़े भाई ने लिखा कि यदि भाई कोलकाता यातायात आदि सब व्यय भार लेवें तो कुलीनग्राम के लोगों को वे भेज सकते हैं। पत्र का उत्तर मिलते ही बसु महाशय उद्योगी हुए। रामपुरहाट से उनकी दीदी भी आईं। बंगला सन् 1304 (सन् 1897 ई०) के शिवरात्रि के उपलक्ष्य में कचहरी बंद रहती है इसलिए 8 वी फाल्गुन को सुबह वे कोलकाता रवाना होगें, उन्होंने कुलीन ग्रामवासियों को पत्र में यह निवेदन किया। 8 वीं फाल्गुन को पंडित महाशय एवं दीदी को लेकर कोलकाता रवाना होकर जब वे मेमारी स्टेशन में उपस्थित हुए तब उन्होंने देखा कि कुलीनग्राम के स्त्री–पुरुष, बालक–बालिका से स्टेशन भरा है। यह देखकर वे चिंतित हो गए। उन लोगों में चोर, दस्यु, लम्पट, गुण्डे, नाई, ग्वाला, डोम आदि सब थे। यहाँ तक कि कुछ व्यक्ति अपनी उप–पत्नि को भी लेकर आये थे। उन लोगों को देखकर वे सोचने लगे कि गोसाँईजी के पास इन लोगों को ले जाने से तिरस्कृत होना पड़ेगा। इस संबंध में परामर्श के लिए एकांत में पंडित महाशय से पूछने पर उन्होंने कहा– "इन लोगों की प्रकृति क्या गोसाँईजी नहीं जानते हैं ? उनको कुछ बोलने की जरूरत नहीं है। उनसे अज्ञात क्या है ? उनके आकर्षण के बिना ये लोग कैसे आ सकते हैं ?"

पंडित महाशय की बातों से वे शांत हुए। हावड़ा स्टेशन पर सब लोगों को रखकर वे अकेले गोसाँईजी के पास जाकर उनको प्रणाम करके एक किनारे में बैठे। उस दिन शिव चर्तुदशी थी। कमरे में अनेक लोग थे। शिव चतुर्दशी की कथा प्रसंग में पशु हत्याकारी शिकारी व्याध का महादेव की कृपा से कैसे उद्धार हुआ, वह प्रसंग गोस्वामीजी ने कहा। कथा पूर्ण होने पर बसु महाशय गोसाँईजी से बोले-- "देवादिदेव महादेव कृपापूर्वक केवल एक शिकारी व्याध का उद्धार किये थे। आज सौ–सौ व्याध कुलीनग्राम से आपके पद प्रांत में उपस्थित हुए हैं, अब मेरे भोलानाथ क्या करेंगे ? इसे सुनकर गोसाँईजी बोले– "कल सुबह 8 बजे सबको बैठा देना। उनके निर्देश से सबलोग निर्दिष्ट समय पर प्रस्तुत हो गए। गोसाँईजी उपदेश प्रदान करके दीक्षा प्रदान शुरू किये। दीक्षा प्राप्ति के साथ–साथ कोई रोने लगा, कोई सिर ठोकने लगा, किसी का प्राणायाम चलने लगा, कोई लुढ़कने लगा। महा प्रलय उपस्थित हुआ। गोसाँईजी जयगुरु! जयगुरु!! बोलकर सबको शांत करने लगे। प्रायः आधा घंटा बाद सब स्थिर हुए। हरिदास बसु एवं अन्य सब लोग यह दृश्य देखकर विस्मित हो गए। आहार आदि के बाद सबको कुलीनग्राम भेज दिया गया। गोसाँईजी बोले, "पुनः तुम्हारा पुराना कुलीनग्राम बन गया। उसके बाद अघोरनाथ चट्टोपाध्याय, बसु महाशय के बड़े भैया की पत्नी एवं कन्या ने दीक्षा ग्रहण की। अघोरबाबू के दीक्षा प्राप्ति से बसु महाशय आनन्दित

हुए। इस प्रकार उनके कुटुम्ब, परिजन, बंधु, दास–दासी कोई भी गोसाँईजी की कृपा से वंचित नहीं हुए। गोस्वामीजी ने कहा– "तुम जगन्नाथ की पट्टडोरी दिये हो, इसलिए जगन्नाथदेव कृपापूर्वक तुम्हारे कुटुम्ब परिजनों पर कृपा किये हैं। गोस्वामी प्रभुजी ने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया था किन्तु जगन्नाथ दर्शन नहीं हुआ था। इसबार पुरी जाने के लिए वे व्याकुल हो उठे। इसलिए एक स्टीमर एवं दो नाव भाड़े पर लिया गया। बसु महाशय गुरुजी के साथ जाना चाहते थे। किन्तु गोसाँईजी बोले, "हरिदास बाबू पुरी नहीं जायेंगे। उनके ऊपर अनेक दायित्व है। अर्थोपार्जन के लिए उनको बोलपुर जाना पड़ेगा।" बंगला सन् 1304 की 23 वीं फाल्गुन को गोस्वामी प्रभुजी रवाना हुए। उनके साथ सरलनाथ एवं पंडित महाशय भी गए। अब हरीदास बसु अकेले हो गए। उन लोगों के विरह से अति कष्ट में उनका दिन बीतने लगा।

जगन्नाथदेव के पंडों में कुछ दुष्ट प्रकृति के थे। वे अर्थ के लिए कुछ भी कर सकते थे। हरिदास बसु महाशय प्रतिवर्ष पट्टडोरी दे रहे थे। उस समय पुरी के राजा ने श्रीगांरी पंडा भुवन मिश्र से कहा कि यदि बसु वंश के लोग गरीबी के कारण पट्टडोरी देने में असमर्थ हो तो राजकोष से अर्थ देकर लाना पड़ेगा। इसका फायदा लेकर भुवन पंडा, हरिदास बसु के निकट से पट्टडोरी लेकर राज सरकार से बसु महाशय के नाम से अनेक अर्थ ले लेते थे। इस प्रकार बंगला 1305 सन् (सन् 1898 ई०) की पट्टडोरी अर्थ के लिए पंडे ने नहीं दिया था। गोस्वामी प्रभुजी इस बारे में हरिदास बसु से राजस्टेट के मैनेजर प्राइस साहब को पत्र लिखने बोले। बसु महाशय का पत्र मिलते ही प्राइस साहब भुवन पंडे को गिरप्तार करके उनसे सब पैसा वसूल किये और उनके विरुद्ध फौजदारी मुकदमा करना तय किये। पंडा, बसु महाशय का शरणापन्न हुआ। साहब से विशेष अनुरोध पूर्वक बसु महाशय ने पंडे को फौजदारी मुकदमा से मुक्त कराया। यह भुवन पंडा गोस्वामी प्रभुजी पर विष प्रयोग के षड़यंत्रकारी लोगों में थे। विष प्रयोग के कुछ दिनों के पश्चात उस पंडे एवं उसके पुत्र की मृत्यु हुई थी। बंगला सन् 1305 (सन् 1898 ई०) की भाद्र महीना में बसु महाशय के द्वितीय पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। कुछ दिन बाद शिशु कठिन पीड़ाग्रस्त हुआ। उसके जीवन की आशा नहीं रही। एकबार रात तीन बजे हरिदासबाबू की दीदी, भाई के पास आकर बोलीं, "गुरुजी प्रकाशित होकर बोले हैं कि हरिलूट एवं नाम–संकीर्तन से बच्चा ठीक हो जाएगा।" तदनुसार सुबह हरि लूट दिया गया एवं नाम–संकीर्तन शुरू हुआ। शिशु क्रमशः स्वस्थ हो गया। इस प्रकार गुरुकृपा देखकर हरिदास बसु आँसू बहाने लगे।

गोस्वामी प्रभुजीके निर्देश से बसु महाशय बोलपुर में वकालती करने लगे। गुरु अदर्शन से व्याकुल होकर वे गुरु का स्मरण करके 'नाम' लेकर बोलपुर में

रहने लगे। 2–4 दिन के अन्तर में पंडित महाशय का पत्र मिलता था। गुरुजी पर विष प्रयोग के संवाद से अत्यंत विचलित होकर वे पुरी यात्रा की तैयारी करने लगे। उस समय पंडित महाशय के एक पत्र से उन्हें पता चला कि गोसाँईजी थोड़ा स्वस्थ हुए हैं।

बंगला सन् 1306 (सन् 1899 ई०) की 20 वीं ज्येष्ठ उनको तार से संवाद मिला कि गोसाँईजी स्वस्थ हैं। किन्तु 23 वीं ज्येष्ठ को पुनः तार में संवाद मिला कि गोस्वामी प्रभुजी 22 वीं ज्येष्ठ रात नौ बजकर 20 मिनट पर देह त्याग दिये हैं। गुरुजी के साथ और साक्षात्कार नहीं होने के कारण वे अत्यंत शोकाकुल हो गए। उन्होंने सोचा कि इस जीवन का अब सब सुख समाप्त हो गया है।

गुरुजी के तिरोधान के बाद पंडित महाशय श्रीवृन्दावन के गोविन्द कुंड में कुटीर बनाकर तपस्या करने लगे। उनका साक्षात् करने की इच्छा से बसु महाशय गुरुभाई चन्द्रकांत दत्त एवं कुटुम्ब परिजनों के साथ तीर्थ पर्यटन में गए। क्रमशः गया में पिण्डदान, आकाशगंगा पहाड़ और बुद्ध गया दर्शन, काशी विश्वनाथ दर्शन के बाद वे श्रीवृन्दावन पहुँचे। पंडित महाशय ने संवाद पाकर उनके जाने से पहले ही घर आदि की व्यवस्था की थी। पंडित महाशय से मिलकर बसु महाशय परमानन्द लाभ किये। वे सब मिलकर श्रीधाम के विग्रहादि एवं अन्यान्य दृष्टव्य स्थानों के दर्शन और पंचकोशी परिक्रमा किये। बसु महाशय रज में लोटपोट करने लगे, रासस्थली में साष्टांग प्रणाम करते समय एक दोना उनके छाती पर गिरा। गुरुभाई मयूरमुकुट बाबा के दर्शन से हरिदास बसु मुग्ध हो गए। चौसठ महंत के समाधि दर्शन के समय बसु महाशय एक समाधि के पास आकर उच्च स्वर में रोने लगे। पंडित महाशय ने एक अभिज्ञ व्यक्ति से समाधि के बारे में पूछा। मालूम चला कि वह समाधि हरिदास बसु के पूर्वज रामानन्द बसु की थी। इस प्रकार आत्मिक योग की अनुभूति सचमुच अद्भुत है। मथुरा के विश्राम घाट में आरती दर्शन किये। श्रीवृन्दावन एवं गोकुल के सब दृष्टव्य स्थान दर्शन करके एकदिन उन्होंने माधुकरी भी की थी।

बाद में पंडित महाशय के साथ वृन्दावन से बोलपुर आये एवं साधन–भजन से आनन्द के साथ दिन बिताने लगे। कुछ दिन बाद पंडित महाशय पुरी समाधि मंदिर में चले गए। इससे हरिदास बसु पुनः निःसंग हो गए एवं 'नाम' लेकर पड़े रहे।

बंगला सन् 1307 (सन् 1900 ई०) के ज्येष्ठ महीने में गोस्वामी प्रभुजी के तिरोभाव उत्सव में योगदान के लिए वे पुरी गए। उस समय वे नीलमणि वर्मन के घर पर थे जहाँ गोसाँईजी अंतिम समय में थे। गोस्वामी प्रभुजी के समाधि आवृत्त वस्त्र पर अप्राकृत चिह्न देखकर वे मुग्ध हो गए। पंडित महाशय के साथ समुद्र स्नान किये

एव अन्यान्य दृष्टव्य स्थानों के दर्शन किये। भोग निवेदन के बाद गोसाँईजी के आसन पर चरण चिह्न देखकर वे समझ गए कि गोसाँईजी अभी भी सेवा पूजा सब ग्रहण करते हैं। इसके बाद वे बोलपुर प्रत्यागमन किये। कुछ ही दिनों में गोसाँईजी के शिष्य वानारिपाड़ा के ललितबाबू बोलपुर आये। उन्होंने गुरुभाई के लिए पृथक घर की व्यवस्था की। वे सर्वदा मौन रहते थे। विशेष प्रयोजन होने से लिखकर उत्तर देते थे। कुछ दिन इस प्रकार बीतने पर उनको एकिउट ब्रंकाइटिस रोग हो गया। उन्होंने डाक्टर को नही दिखाना चाहा एवं अपने कुटुम्ब परिजनों को खबर भेजने के लिए मना कर दिये। ललितबाबू संकीर्तन पसंद करते थे। बसु महाशय ने प्रतिदिन संकीर्तन की व्यवस्था की। क्रमशः रोग बढने लगा। एकदिन सूर्योदय के समय उन्होंने देह त्याग किया। ललितबाबू की परलौकिक हितार्थ बसु महाशय एक महोत्सव किये।

बोलपुर में नाम–संकीर्तन का प्रवाह धीरे–धीरे कम होने लगा। पंडित महाशय, सरलनाथ एवं अन्यान्य गुरुभाईगण के अन्यत्र चले जाने के कारण संकीर्तन बंद हो गया। अब 'नाम' ही उनका सहारा था। वे समझ गए कि गोस्वामीजी की अलौकिक शक्ति से इतने दिन बोलपुर में संकीर्तन का आनन्द एवं महाभाव का प्रकाश देखा गया। अब उसकी आवश्यकता नहीं है, इसलिए बंद हो गया। बसु महाशय जीवन्मृत अवस्था में दिन बिताने लगे।

इसके बाद बसु महाशय के संसार में अशांति शुरू हो गई। बंगला सन् 1312 (सन् 1905 ई०) में परमात्म तत्व प्रकाशित हुआ। विशेषतः नाम करते समय परमात्मा की अनुभूति प्रबलतर होती थी। इस तत्व लाभ से माया का बंधन शिथिल होने लगा और रस स्वरूप भगवान को प्राप्त करने के लिए उनकी व्याकुलता बढने लगी। वे साधन–भजन में मग्न हो गए। विषय कर्म से अवकाश लेकर एवं पत्नी के ऊपर संसार का दायित्व देकर वे निश्चिन्त होंगे, ऐसा निर्णय किये।

इतने में एक जटिल समस्या का उन्हें सामना करना पड़ा। उनके तृतीय जामाता अमरनाथ मित्र को व्यवसाय के लिए उन्होंने तीन हजार रूपए दिए थे। उस समय बसु महाशय का प्रचुर यश था। अमरनाथ ससुरजी को व्यवसाय में युक्त किये एवं दुकान का नाम रखे 'हरिदास बसु एण्ड कम्पनी'। बसु महाशय मलेरिया रोग से आक्रांत हुए एवं जामाता की लोहा दुकान में 22 हजार रूपए का ऋण हो गया। क्रमशः दुकान बंद हो गई एवं ऋण बढकर 27 हजार हो गया। उन्होंने ऋण परिशोध के लिए अनेक चेष्टा की किन्तु कोई फल नहीं हुआ। चारों ओर से उनके नाम से शिकायत होने लगी। विपदा कभी अकेले नहीं आती। उनके परिवार में महासंकट उपस्थित हुआ। उनकी पत्नी दुश्चिंता से रोगग्रस्त हो गई। इस तरह उस सुखी परिवार में भीषण परिवर्तन देखा गया। उनके अनुगतगण शत्रुता करने

लगे। अदालत ने उनको बन्दी करने का निर्देश दिया। गुरुजी ने एक समय कहा था, "ज्वलन्त अग्नि के भीतर से तुम लोगों का पथ है। "उन्होंने समझा कि अब वह समय आ गया। इसलिए गुरुजी को स्मरण करके नाम को आराध्य किये। नाम एवं गुरु शक्ति के आविर्भाव से उन्होंने सब यंत्रणा सहन की। उस समय वे अनेक स्वप्न देखते थे। उनको विश्वास था कि उनको भिखारी नहीं होना पड़ेगा–गोसाँईजी अवश्य व्यवस्था करेंगे किन्तु संसार के अर्थाभाव के कारण दुश्चिंता से पत्नी बहुमूत्र रोग से आक्रांत हुई। बंगला सन् 1321 (सन् 1914 ई०) के पहले मार्गशीर्ष को पत्नी ने मानवलीला संवरण किया। पत्नी वियोग के बाद श्रीमद्अद्वैतप्रभु का जन्मोत्सव था। बसु महाशय सोचे इस बार नियम रक्षा के लिए केवल प्रभुगण की पूजा एवं भोग देंगे। किन्तु उस समय गुरुभाई चन्द्रकांत दत्त, नीलरतन पाल, गौर किशोर गोस्वामी बोलपुर आये एवं उत्सव का दायित्व ग्रहण किये। यथा समय सब व्यवस्था हो गई एवं उत्सव सुसंपन्न हुआ। नीलरतन बाबू को अतिसार रोग हो गया एवं उत्सव के कुछ दिन बाद उन्होंने देह परित्याग किया। बसु महाशय नाम का आश्रय करके पड़े रहे। अंत में उनकी पारिवारिक अशांति दूर हो गई। विरोधी जमींदारों के साथ मत विरोध मिट गया। मुकदमा रफा हो गया। ऋणदाता गण उनका अर्थाभाव देखकर अनेक पैसा छोड़ दिये। उन्होंने सब संपत्ति बेचकर ऋण परिशोध किया। किसी को कुछ नहीं बोलना पड़ा। सब अपने–आप ठीक हो गया। यह सब देखकर वे चकित हो गए। बसु महाशय सत्य अनुभव करके बोले हैं, "मुझे आग में जलना पड़ा है। अब मैंने नया जीवन प्राप्त किया है। अब मैं शांति राज्य का यात्री हूँ। धन, मान, विषय–वैभव, पुत्र आदि सब आसक्ति का सुदृढ़ बंधन छिन्न हो गया। दया, परोपकार, परदुःख कातरता, सेवा, प्रेम, आदर, यत्न, मर्यादा प्रदान, क्षमा आदि सत् प्रवृत्ति समूह जागृत हुई। गुरुजी केवल मेरे परकाल का भार ही ग्रहण नहीं किये हैं, उन्होंने तो मेरे इहकाल का भार भी ग्रहण किये हैं। मैं निश्चिन्त हूँ।" उनको नई–नई अवस्था का लाभ होने लगा। भगवान के नाम का मधुर आस्वादन क्रमशः अनुभूत होने लगा। नाम का प्रवाह प्रबल से प्रबलतर होने लगा। उस समय वे नामानन्द से विभोर हो गए। उनकी उम्र 80 वर्ष हो गई थी। पार्थिव जीवनावसान के लिए कुछ कारण की आवश्यकता होती है। बसु महाशय को कैंसर हो गया। यद्यपि वे भयानक कष्ट एवं यंत्रणा भोग रहे थे पर उनको देखकर पता नहीं लगता था। उन्होंने किसी के पास भी रोग यंत्रणा की बात नहीं की। मृत्यु के 15 दिन पहले से वे पानी भी नहीं पी सके। बंगला सन् 1341 की 20वीं भाद्र (सन् 1934 ई०) ईस्वी को अपराह्न में अपने घर में मानवलीला संवरण किये। उनका पार्थिव देह ट्रेन के द्वारा त्रिवेणी घाट पर ले जाकर दाह संस्कार किया गया।

बसु महाशय का अनन्यतम् मूल्यवान बंगला ग्रंथ "महापातकीर जीवने सद्गुरु

लीला" है। इस ग्रंथ का अब हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो गया है।

सद्गुरु के बारे में बसु महाशय ने संक्षेप में कहा है, **"धर्म संस्थापन के लिए जिस मनुष्य देह में भगवान का आवेश होता है, उस मनुष्य को सद्गुरु कहते हैं। भगवान के आदेश के बिना मनुष्य सद्गुरु नहीं हो सकता। मनुष्य देह में भगवान का आवेश होने पर मनुष्य भगवत् लाभ करता है। कोयला में अग्नि संयोग करने पर जिस प्रकार कोयला और अग्नि में कोई प्रभेद नहीं रहता उसी प्रकार मनुष्य देह में भगवान का आवेश होने पर मनुष्य और भगवान में कोई प्रभेद नहीं रहता। इसलिए नाम, नामी एवं नामदाता अभिन्न वर्णित हुआ है।"**

'महापातकीर जीवने सद्गुरु लीला' ग्रंथ अनुधावन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महापातकी भी सद्गुरु कृपा से अति शक्तिमान साधक बन सकते हैं।

****

श्री श्रीधरचन्द्र घोष

जब कोई अवतार या महापुरूष धर्म संस्थापन के लिए नर देह धारण करते हैं, उस समय अनेक लोग उनके लीला सहचर रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। जिन्होंने भी श्रीधर के दर्शन किये हैं, गुरु के प्रति श्रीधर का विश्वास एवं निर्भरता देखकर विस्मित हो गए एवं उनको गोस्वामी प्रभुजी के लीला सहचर रूप में चिह्नित किये।

बंगला सन् 1259 (सन् 1852 ई०) के कार्तिक महीने की उत्थान एकादशी के दिन फरीदपुर जिले की भांगा सबडिवीजन के सदरदी गाँव में श्रीधर का जन्म हुआ था। उनके पिता थे धनंजय घोष एवं माता उमासुन्दरी थी। उनके पिता दरिद्र एवं संबलविहीन थे। उनके संसार में सर्वदा अभाव रहता था, किसी प्रकार से उनका दिन बीतता था।

दरिद्र पिता की सुसंतान श्रीधर शैशव से ही साधु प्रकृति के थे। उनका हृदय कोमल एवं धर्म प्रवण था। उनका कुल विग्रह का नाम था श्रीधर ठाकुर। बाल्यकाल से इस विग्रह के प्रति बालक का आंतरिक ममत्वबोध था। प्रतिदिन जब पुरोहित पूजा करते थे, श्रीधर विग्रह के पास बैठकर आँसू बहाते थे।

घर के पास एक विद्यालय में बालक श्रीधर का विद्यारंभ हुआ। धीरे–धीरे पढ़ाई चलती रही। कुछ वर्ष बाद प्रवेशिका परीक्षा के लिए उनको कोलकाता जाना पड़ा। उस समय श्री विजयकृष्ण गोस्वामी उपवीत त्याग करके ब्राह्मधर्म का प्रचार कर रहे थे। सर्वत्र उनका नाम फैल गया था। धर्मतत्व पत्रिका से यह जानकर किशोर श्रीधर का चित्त व्याकुल होने लगा। गोस्वामीजी के दर्शन के लिए उनके आवास पहुँचे श्रीधर को निराश होकर लौटना पड़ा क्योंकि गोसाँईजी उस समय धर्म प्रचार के लिए पंजाब गए थे। उस समय श्रीधर 16–17 साल के थे। गोस्वामीजी का दर्शन नहीं मिलने पर श्रीधर ने केशवचन्द्र सेन महाशय से भेंट की। उस समय केशवचन्द्र इंग्लैंड से लौटे थे। श्रीधर ने अपनी डायरी में लिखा है– "मैंने उनके निकट जाकर पूछा कि आप लोगों के इस धर्म का क्या मत है ? उन्होंने मुझसे कहा, "एक सत्य स्वरूप परमेश्वर की उपासना करना एवं पृथ्वी के सब नर–नारी को भ्राता–भगिनी ज्ञान से एवं ईश्वर को पिता स्वरूप जानकर सार्वभौमिक धर्म संस्थापन करना ही हमारे ब्राह्मधर्म का मत है। इस धर्म में जाति विचार नहीं है।" उनके पास यह धर्ममत सुनकर मेरा मन आकृष्ट हुआ। मैंने

तत्कालीन नियमानुसार माघोत्सव के पहले 10–12 जन के साथ ब्राह्मधर्म ग्रहण किया।"

इसके बाद ब्राह्मधर्म के प्रति श्रीधर का अनुराग क्रमशः बढ़ने लगा। एकदिन ब्राह्मगण के साथ मिलकर विभिन्न आलोचना के बाद प्रचारकगण के साथ आहार किये थे श्रीधर। उन लोगों के आहार दर्शन करने के लिए कई महिलाएँ द्वार में खड़ीं थी। माता योगमाया देवी भी पुत्र योगजीवन के साथ वहाँ उपस्थित थीं। इस प्रकार गोस्वामीजी के दर्शन से पहले श्रीधर को माता योगमाया देवी का दर्शन मिला था। प्रथम दर्शन के दिन से ही माता योगमाया देवी के प्रति श्रीधर में अत्यंत श्रद्धा भाव उत्पन्न हुआ था।

श्रीधर कोलकाता से देश लौट आये। पिता की दरिद्रता के कारण उच्च शिक्षा का अवसर नहीं मिला। उनको अदालत में पुलिस की नौकरी करनी पड़ी। उनका काम था गाँव में घूम कर परवाना जारी करना। इस कार्य से एकबार उन्हें खालिया में एक व्यक्ति के घर जाना पड़ा। वहाँ रात्रिवास के समय उन्होंने एक दरिद्र की दुःख कथा एवं क्रंदन सुना। इस दरिद्र के घर में खाद्यान्न नहीं था। कन्या का विवाह नहीं हो रहा था। दरिद्र पिता का करुण क्रंदन सुनकर श्रीधर का कोमल प्राण विगलित हुआ। उन्होंने बिना प्रण लिये उनकी कन्या से विवाह के लिए प्रस्ताव रखा। कन्या उस समय मातुलालय में थी। श्रीधर ने कन्या को एकबार देखना भी नहीं चाहा। इस प्रस्ताव से कन्या के पिता सम्मत हो गए। श्रीधर के पिता की अनुपस्थिति में ही श्रीधर का विवाह हो गया। श्रीधर के पिता ने इस विषय में पुत्र को कुछ नहीं कहा।

श्रीधर का स्वभाव अत्यंत सरल प्रकृति का था। विश्वास–प्रवणता उनके जीवन की विशिष्टता थी। धर्मलाभ के लिए वे इतने व्याकुल थे कि जिसके पास जो कुछ भी सुनते, उसी पर विश्वास कर लेते थे एवं उसी अनुसार कार्य करते थे। एक समय एक पादरी साहब अपना अभीष्ट पूर्ण करने के लिए प्रतिदिन श्रीधर को ईसाई धर्म की गुण गाथा सुनाने लगे। पादरी का धर्म व्याख्यान सुनकर श्रीधर मुग्ध हुए एवं ईसाई धर्म ग्रहण करने का निर्णय लिये। दीक्षा के दिन पादरी साहब जर्डन नदी का पानी श्रीधर को स्पर्श करने के लिए बोले। उस पानी की उपकारिता पूछने से साहब बोले कि वह पानी मुनष्य का पाप–ताप नष्ट करके मन में शांति देता है। यह सुनकर श्रीधर बोले, "साहब मैंने सुना है कि गंगा पानी से भी पाप–ताप नष्ट होता है। किन्तु मैंने कभी परीक्षा नहीं की। मैं पहले एकबार गंगा स्नान करूँगा। यदि उससे शांति नहीं मिली तो जर्डन नदी का पानी स्पर्श करूँगा। श्रीधर ने गंगा स्नान किया। गंगा स्नान करते ही उनको इतनी शांति का अनुभव होने लगा कि ऐसी शांति उनको कभी नहीं मिली थी। इसलिए आनन्द

के साथ बहुत देर तक श्रीधर गंगास्नान किये। उल्लेखनीय है कि स्नान के बाद उनको ईसाई धर्म ग्रहण की इच्छा नहीं हुई। वे सामान्य नौ रुपए वेतन पर पुलिस कांस्टेबल का कार्य करते थे किन्तु कभी सत्य से भ्रष्ट नहीं हुए। एकबार उनकी पत्नी गहनों के लिए हठ करने लगी। श्रीधर शांत रूप में बोले – "मेरे वेतन से तो संसार भी नहीं चलता। मुझे गहना खरीदने का पैसा कहाँ से मिलेगा ?" पत्नी बोली, "तुम्हारे जैसे काम करने वाले पुलिस कर्मचारी किस प्रकार अपने पत्नी को अनेक गहनें दिये हैं। क्या तुम एक दो गहने भी नहीं दे सकते ?" पत्नी की इस बात से क्रुद्ध होकर श्रीधर बोले कि अच्छा तो तुम मुझे रिश्वत लेने के लिए बोल रही हो। यह कहकर उन्होंने रिश्वत लेना एवं उसमें सहायताकारी को पेनल कोड के अपराध मूलक धारा को दिखाते हुए बलपूर्वक पत्नी का हाथ पकड़कर बोले, "इस धारा के अनुसार मैं तुम्हें गिरफतार करता हूँ, चलो अभी तुमको थाना ले जाऊँगा।" सरला पत्नी उनकी इस बात को सुनकर भय से रोने लगी। श्रीधर ने सत्यनिष्ठा की उपकारिता एवं विलास आकांक्षा की अपकारिता के बारे में उपदेश देकर पत्नी को शांत किया। उसके बाद पत्नी ने फिर कभी पति से भोग–विलास की बात नहीं कही।

विवाह के कुछ दिनों के बाद उनके पिता का देहांत हो गया। श्रीधर की विमाता अर्थात सौतेली माँ उनके पास रहती थी। श्रीधर की डायरी से पता चलता कि पिता की वात्सरिक श्राद्धादि सम्पन्न होने पर एकबार रात में उन्होंने पत्नी से कहा कि तुम मेरी विमाता के साथ् झगड़ा करती हो एवं विमाता भी तुम्हारे साथ झगड़ा करती हैं। मैं जिनकी सेवा के लिए इस संसार में था वे पिता अब संसार नें नहीं है। मेंरी विमाता अब विधवा है। तुम झगड़े के समय सर्वदा बोलती हो कि आप मेरी सास नहीं हैं, उनके साथ तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। परिश्रांत होकर घर लौटने पर जब तुम घर में नहीं रहती हो, माँ मेरा हाथ पकड़कर रोती है एवं तुम्हारी निन्दा करके बोलती है कि तुम उनकी बात नहीं सुनती। हिन्दू समाज के नियमानुसार दिन में तुमसे बात करने का नियम नहीं है। तुम भी मेरे साथ दिन में बात नहीं कर सकती, किन्तु रोते–रोते अन्न परोसती हो। धर्मानुसार यदि पत्नी पति को रोते–रोते अन्न परोसती है तो उस घर में शांति नहीं रह सकती। मैं और इस घर में नहीं रहूँगा। नौकरी के लिए जलपाइगुड़ी में छोटे चाचा के पास चला जाऊँगा। यह कहकर श्रीधर पत्नी को त्याग करके जलपाईगुड़ी चले गए। 1880 सन् के जनवरी महीने में श्रीधर जलपाईगुडी आकर पुलिस की नई नौकरी ले लिये।

इस घटना के बाद श्रीधर ने ससुरजी को लिखा कि मैंने पत्नी को त्याग दिया है और घर नहीं जाऊँगा। आपकी कन्या को आप घर ले जाकर प्रतिपालन

करें। उसके साथ मेरा संपर्क नहीं है। इस घटना के कुछ दिनों के पश्चात जब श्रीधर जलपाइगुड़ी में चाचा के घर में थे, चाचा के परिवार के लोग एवं श्रीधर के ससुराल वालों ने गुप्त रूप से श्रीधर के पुनः विवाह की व्यवस्था की। ससुर जी एवं साला उनकी पत्नी को पालकी में लेकर आये। पालकी से निकलकर उनकी पत्नी घर में प्रवेश की। उस समय श्रीधर के चाचा और चाची बोले श्रीधर आज तुमको द्वितीय विवाह करना पड़ेगा। श्रीधर बोले, "मैं ब्राह्म हूँ, द्वितीय विवाह नहीं कर सकूँगा।" यह सुनकर सब हँसते हुए बोले कि तुम्हें द्वितीय विवाह करना ही पड़ेगा। इस प्रकार सबके अनुरोध से श्रीधर द्वितीय विवाह करने राजी हुए एवं उनकी पत्नी के साथ ही पुनः विवाह अनुष्ठान आदि किया गया। इसके पश्चात् ब्राह्मसमाज के लोगों ने उनका नाम सदस्य तालिका से काट दिया।

जलपाईगुड़ी में कांस्टेबल का कार्य करते समय सैनिक विभाग के एक कर्मचारी जिला पुलिस विभाग के प्रधान पदाधिकारी बनकर जलपाइगुड़ी आये। उनके अन्याय आचरण एवं मनमानी से कर्मचारीगण तंग आ गए। एकदिन श्रीधर को कानून बहिर्भूत किसी कार्य को करने के लिये उस पदाधिकरी ने आदेश दिया किन्तु श्रीधर ने उनका आदेश पालन नहीं किया। एक सामान्य कर्मचारी के इस प्रकार व्यवहार से पुलिस के पदाधिकरी ने क्रुद्ध होकर श्रीधर पर गोली चलाने के लिए बन्दूक उठाई। श्रीधर तीव्र गति से उस बन्दूक को पकड़कर दृढ़ता के साथ बोले कि यह सैनिक विभाग नहीं है। श्रीधर की तेजस्विता एवं सत्यानुराग का परिचय पाकर साहब का क्रोध जाता रहा एवं उन्होंने श्रीधर का परिचय जानना चाहा। उत्तर में श्रीधर बोले कि मेरा अन्य कोई विशेष परिचय नहीं है। कोलकाता में ब्राह्म नामक एक नया धर्म चालू हुआ है, मैं उस धर्म (संप्रदाय) का सामान्य एक व्यक्ति हूँ। उस घटना से वे श्रीधर को विशेष सम्मान देने लगे।

ब्राह्मधर्म प्रचार कार्य में एकबार वहाँ के वार्षिक उत्सव में श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जलपाईगुड़ी आये। ब्राह्मसमाज की रीति अनुसार उपासना कार्य गोसाँईजी ने किया एवं ब्राह्मधर्म के सम्बन्ध में युवकों को समझाया। उन लोगों के नैतिक जीवन की उन्नति साधन के विषयों पर उन्होंने दो प्रवचन दिये। उस समय गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज में थे एवं उन्हें सद्गुरु की प्राप्ति नहीं हुई थी। गोस्वामीजी ब्राह्म लोगों के साथ एकदिन त्रिस्ता नदी के निकटवर्ती किसी गाँव में करताल–मृदंग सहित ब्राह्मधर्म का प्रचार किये। उस समय गोस्वामीजी के प्रथम दर्शन से श्रीधर मुग्ध हो गए। उस समय श्रीधर का मनोभाव निम्नांकित विवरणी से जाना जाता है– "उनके दर्शन से मेरे भीतर वैराग्य की एक विशेष अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। वे जितने दिन यहाँ थे संसार का कोई भी कार्य मुझे अच्छा नहीं लगता था। एकदिन दफ्तर जाकर मुझे ऐसा लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ है। ऐसा सोचते–सोचते मैं

गोस्वामी महाशय के निकट गया। जाकर देखा कि वे ध्यानस्थ बैठे हैं। प्रायः 12 बजे से अपराह्न 5 बजे तक वे ध्यानावस्था में रहे। उनकी आँखें बन्द थी। ऐसा लग रहा था मानों प्राचीन किसी महायोगी का दर्शन कर रहा हूँ। उनकी प्रशांत मूर्ति देखकर ऐसा लगा कि वे आनन्द सागर में डूबे हुए हैं। उनकी तत्कालीन मूर्ति मेरे हृदय में आज भी अंकित है।"

ब्राह्मसमाज का उत्सव समाप्त होने पर गोस्वामीजी वहाँ के ब्राह्म धर्मावलंबी जलालुद्दीन मियां के घर में कुछ दिन थे। श्रीधर आधिकांश समय वहाँ जाकर धर्मालोचना करके आनन्द लाभ करते थे।

गोस्वामीजी के दर्शन के बाद श्रीधर के मन में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि उन्होंने संसारादि त्याग करके गोस्वामीजी के साथ रहने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु गोस्वामीजी बोले, "मेरे साथ वास करने का समय अभी नहीं हुआ है। संसार के साथ संग्राम करके संसार में ही रहना होगा। समय की प्रतीक्षा करो। यदि भगवान की इच्छा होगी तो समय पर मेरे साथ रह सकोगे। श्रीधर को इस प्रकार निर्देश देकर वे सिलिगुड़ी ब्राह्मसमाज में गए। किन्तु श्रीधर गोस्वामीजी का विरह सहन नहीं कर सके। वे ऑफिस में बिना बताये सिलिगुड़ी चले गए। वहाँ जाकर देखे कि गोस्वामीजी भक्त मण्डली को उपदेश दे रहे हैं, "संसार में सब अनित्य है, केवल ईश्वर सत्य है। संसार के सब कार्य मिथ्या हैं, ईश्वर की उपासना एवं उनका प्रिय कार्य करना ही मनुष्यों का कर्तव्य है। परलोक तथा मृत्यु की चिन्ता करना प्रतिदिन के कर्तव्य कार्यों में एक प्रधान कर्तव्य है।" उपदेश देकर संध्या होने पर गोस्वामीजी वेदी पर बैठकर उपासना करने लगे। उपासना के बाद उपदेश न देकर कहने लगे– "मैं क्या देख रहा हूँ ? एक ज्योतिर्मय धाम वहाँ कुछ लोग क्या बोल रहे हैं और क्या कर रहें हैं ? हे ईश्वर मैं कुछ भी नहीं समझ रहा हूँ, मुझ पर दया करो।" यह कहकर वे पुनः–पुनः दयामय ईश्वर! दयामय ईश्वर!! यह नाम उच्चारण करने लगे।

उपासना समाप्त होने पर सिलिगुड़ी के एक ब्राह्म बन्धु श्री आनन्दचन्द्र राय के घर में सबलोग आहारादि करके विश्राम किये। श्रीधर भी वहाँ रह गए। रात में एक सपने के माध्यम से श्रीधर को निर्देश मिला कि ऊर्ध्वरेता एवं शीतल शोणित हो जाओ। यह दो शब्द उन्होंने पहले कभी नहीं सुने थे। इसका अर्थ पूछने पर गोस्वामीजी उत्तर दिये, "इन दो शब्दों का अर्थ जानने के लिए ऊर्ध्वरेता एवं शीतल शोणित बनने की चेष्टा करो।" यह कहकर उन्होंने श्रीधर से बोले, "तुम शीघ्र मुँह धोकर जलपाईगुड़ी जाओ। तुम्हारे ऑफिस का काम नहीं करने से विशेष अपराध होगा। "आश्चर्य की बात है कि उस दिन गोस्वामी प्रभुजी द्वारा श्रीधर को शीघ्र जलपाईगुड़ी नहीं भेजने से उनको कारादण्ड हो जाता क्योंकि वे पुलिस का

कार्य करते थे और उस दिन एक खूनी अपराधी एवं साक्षीगण को जिला जज साहब की अदालत में ले जाने का भार उनके ऊपर था।

गोस्वामीजी की प्रार्थना एवं भाषण सुनकर श्रीधर का वैराग्यभाव बढ़ गया और संसार त्याग करने के लिए मन व्याकुल होने लगा किन्तु गोस्वामीजी उनको कुछ दिन और संसार में रहने का निर्देश दिये। इस प्रकार श्रीधर का साधन एवं कर्म चलने लगा।

ब्राह्मसमाज के वार्षिक उत्सव में गोस्वामीजी पुनः जलपाईगुड़ी आये। उस समय गोस्वामीजी दार्जिलिंग ब्राह्मसमाज के उत्सव में योग दिये थे एवं जलपाईगुड़ी, सिलिगुड़ी, सैदपुर आदि स्थानों में ब्राह्मधर्म का प्रचार किये।

उस समय गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग पहाड़ के दुर्जयलिंग मन्दिर के निकट एक बौद्ध योगी का दर्शन किया। घटना इस प्रकार है– एकबार रात में जंगल के पास से जाते समय उन्होंने थोड़ी दूर पर एक उज्ज्वल ज्योति देखी। वे तुरन्त वहाँ गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक बौद्ध योगी आसन में ध्यानस्थ हैं। उनके मस्तक से वह अपूर्व ज्योति निकलकर चारों ओर प्रकाशित हो रही है। यह अदभुत दृश्य देखकर गोस्वामी महाशय विस्मित होकर योगी की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे। कुछ देर बाद योगी का ध्यान भंग हुआ। ध्यानभंग होते ही योगी के मस्तक की दिव्य ज्योति अन्तर्हित हो गई। गोस्वामीजी द्वारा योगी को प्रणाम पूर्वक ज्योति के बारे में पूछने पर योगी बोले– "साधन बल से कुलकुंडलिनी शक्ति जब षट्चक्र भेद करके मस्तक के सहस्त्रदल पद्म में पहुँचती है तब मस्तक से यह ज्योति प्रकाशित होती है। "योगी की बात सुनकर गोस्वामी महाशय् ने पुनः वह जयोति दर्शन की इच्छा व्यक्त की। उनकी प्रार्थना सुनकर योगी ने पुनः ध्यानस्थ होकर ज्योति प्रकाशित की। गोस्वामीजी उस योगी के निकट दीक्षा प्रार्थी हुए। गोस्वामीजी की बात सुनकर योगी बोले– "मेरी दीक्षा प्रदान की क्षमता नहीं है। नर्मदातट पर मेरे गुरुजी हैं। आप उनके पास दीक्षा के लिये प्रार्थना करें। (संदर्भ ग्रन्थ, 'प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी' – श्री जगदबंधु मैत्र) गोस्वमीजी के निकट श्रीधर ने इस लामा योगी की बात सुनी थी। गोस्वामीजी भी उस समय सद्गुरु के संधान में व्याकुल होकर भ्रमण कर रहे थे। श्रीधर की तीव्र आकांक्षा देखकर गोस्वामीजी दार्जिलिंग ब्राह्मसमाज के एक निर्जन स्थान में श्रीधर को भगवान का एक नाम देकर बोले, "यह नाम सर्वदा जप करना। गहरी रात में जब जगत् शांत हो जाएगा, उस समय परमेश्वर सर्वत्र विद्यमान हैं, ऐसी चिन्ता करके ब्राह्मधर्म की उपासना पद्धति के अनुसार ध्यान करना।" ऐसा उपदेश देकर गोस्वामीजी कोलकाता चले गए। श्रीधर गोस्वामीजी के निर्देशानुसार चलने लगे।

इस घटना के कुछ दिन बाद पंजाब से आये एक सिद्ध फकीर के साथ श्रीधर

की मुलाकात हुई। उनका नाम कंबली साहब था। उनकी उम्र सौ वर्ष से अधिक थी। वे रणजित सिंह के बाल्य बंधु थे। फकीर श्रीधर को देखते ही हँसते हुए बोले, "तुम्हारी पत्नी के गर्भ से एकबार मृत कन्या निकली थी। अभी तुम्हारी पत्नी गर्भवती है। इस गर्भ को किसी परी ने आवृत्त किया है। वह परी तुम्हारी पत्नी एवं गर्भस्थ संतान को ले जाएगी। यदि तुम चाहो तो मुझे कुछ बकरी का माँस, भैंस का घी एवं लोबान ला दो, मैं एक दवाई बनाकर तुम्हारे पत्नी एवं संतान की रक्षा कर सकता हूँ।" अपरिचित फकीर की बात सच थी। इसलिए उसके प्रति श्रीधर की भक्ति बढ़ गई। किन्तु प्रबल वैराग्य के कारण वे फकीर साहब से बोले, "पत्नी–पुत्र से मुझे क्या करना है ? आपके हाथ में जो माला है वह मुझे प्रदान करें। मैं परमेश्वर का नाम इस प्रकार जपना चाहता हूँ। पत्नी–पुत्र रहने से सर्वदा जप नहीं कर सकूँगा।" फकीर साहब को श्रीधर के तीव्र वैराग्य का परिचय मिला। श्रीधर को त्रिश्रोता नदी के पास वे ले गए एवं फकीरी प्रथानुसार साधन देकर चले गए। फकीर साहब के चले जाने के कुछ दिन बाद श्रीधर की पत्नी हैजा रोग से परलोक गमन की। मृत्यु के समय पत्नी ने पति से दो प्रतिज्ञा कराई थी –

1– जबतक जीवित रहेंगे, वेतन ग्रहण करके कहीं भी नौकरी नहीं करेंगे।

2– पुनः विवाह नहीं करेंगे।

श्रीधर पत्नी की उक्त बातों की हमेशा रक्षा किये थे।

पत्नी के तिरोधान से श्रीधर का और कोई बंधन नहीं रहा। वे नौकरी छोड़ दिये एवं गोस्वामी प्रभुजी के पास जाने के लिए तैयार हुए। श्रीयुत रामकुमार विद्यारत्न महाशय उस समय जलपाईगुड़ी आये थे। श्रीधर उनके साथ कोलकाता चले गए।

इस घटना के कुछ दिन पूर्व गोस्वामी प्रभुजी बंगला 1290 सन् (सन् 1883 ई०) के भाद्र महीने में गया में मानस–सरोवर के परमहंसजी के पास दीक्षा प्राप्त करके एवं आश्विन महीने में संन्यास ग्रहण करके कोलकाता लौटे थे।

श्रीधर गोस्वामी प्रभुजी के पास गए। उन्होंने कहा श्रीधर बाबू आपको पत्नी वियोग हुआ है, जीवन की अनेक घटनाओं को पार करके मेरे पास आये हैं, ठीक है अब हम दोनों ईश्वर की उपासना करेंगे। उपासना के बाद गोस्वामीजी की पत्नी योगमाया देवी का दर्शन करके श्रीधर शिशु की तरह रोने लगे। उनका क्रंदनवेग कम होने पर गोस्वामीजी उनको आदर पूर्वक शान्त किये एवं चाय व डबलरोटी खिलाये।

इस समय श्रीधर ब्राह्मपल्ली में कुछ दिन थे। प्रतिदिन मध्याह्न आहार के बाद गोस्वामीजी के पास जाते थे। एकदिन देखे कि गोस्वामीजी भागवत पाठ कर रहे

हैं। श्रीधर संस्कृत नहीं जानते थे। किन्तु राग के साथ शब्द उच्चारण उनको सुनने में बहुत अच्छा लग रहा था। पाठ सुनते–सुनते श्रीधर अचानक अचेत हो गए। ज्ञान होने पर उन्होंने देखा कि कई ब्राह्म बंधु उनके पास हैं एवं गोस्वामीजी सोंठ का चूर्ण उनके छाती में और पांव के नीचे मालिश कर रहे हैं। श्रीधर को इस प्रकार मूर्छा रोग था। श्रीधर की अवस्था देखकर गोस्वामीजी कई मित्रों से अर्थ भिक्षा किये एवं श्रीधर को कुछ दिन उनके पास आहार करने के लिए कहे। एकदिन उपासना के बाद श्री योगमाया देवी एक पात्र में दूध एवं कुछ डबलरोटी श्रीधर को आहार के लिए देकर बोलीं, "तुम्हारा शरीर दुर्बल है एवं मूर्छा रोग हुआ है। तुम कुछ दिन गया में आकाशगंगा के बाबाजी के निकट वास करके स्वस्थ हो सकते हो।" इस प्रकार माता योगमाया देवी के साथ श्रीधर का यह पहला वार्तालाप था।

गोस्वामीजी के दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ब्राह्मसमाज के अनेक लोग गोसाँईजी मूर्ति पूजक हो गए हैं' इस प्रकार विभिन्न समालोचना करने लगे। यह सब सुनकर श्रीधर का मन भी विक्षिप्त हो गया। वे कुछ दिन गोस्वामीजी से दूर चले गए। बंगला 1291 सन् के चैत्र महीने से बंगला 1292 सन् (सन् 1885 ई०) वैशाख–ज्येष्ठ महीने तक दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों को सहायता करने के लिए साधारण ब्राह्मसमाज से रामकुमार विद्यारत्न, कुंज बिहारी सेन आदि के साथ श्रीधर भी विभिन्न स्थानों में गए एवं सेवाकार्य में आत्म–नियोग किये। पत्नी वियोग के बाद उन्होंने पुलिस की नौकरी छोड़ दी थी। बंगला 1292 सन् (सन् 1885 ई०) के भाद्र महीने में सैदपुर के ब्राह्मसमाज के वार्षिक उत्सव में श्रीधर ने योगदान दिया था। उस समय श्रीधर को एक साधु का अचानक दर्शन मिला। साधु उनको श्रीश्री नित्यानन्द महाप्रभु के जन्म–स्थान एकचक्रा गाँव जाकर दर्शन करने के लिए कहे। उस समय श्रीधर ब्राह्मसमाज के प्रचारक होने की आशा में श्रीयुक्त रामकुमार विद्यारत्न महाशय के साथ भ्रमण करते थे।

एकबार रामपुरहाट ब्राह्मसमाज के उत्सव में श्रीधर गए थे। वहाँ उन्होंने देखा कि वैष्णव साधुओं का दल श्रीश्री नित्यानन्द प्रभुजी के जन्म–स्थान एकचक्रा गाँव के उत्सव में जा रहा है। श्रीधर भी उनके साथ चलने लगे। श्रीधर एक साधारण वेश में हाथ में एकतारा यंत्र लेकर ब्राह्मसमाज का प्रिय गाना गा रहे थे।

मन एकबार हरि बोलो, हरि हरिबोले भवसिंधु पारे चलो।

जले हरि, स्थले हरि, अनल–अनिलेहरि हरिमय भूमण्डल।।

उनके भजन को सुनकर वैष्णव साधुओं ने उनका परिचय पूछा। उत्तर में उन्होंने कहा कि मैं एक ब्राह्म हूँ। हम जाति भेद नहीं मानते, भगवान का अवतार

नहीं मानते, प्रतिमा पूजा नहीं मानते, पूर्वजन्म नहीं मानते। वैष्णव साधुओं ने कहा, "बाबा! तुमने जब हरिनाम किया है, अपने आप को ब्राह्म या जो भी कहो– तुम वैष्णव हो।" कुछ दूर जाने के बाद श्रीधर ने देखा कि सब नंगे पांव चल रहे हैं केवल उनके पांव में जूता है। श्रीधर भी जूता फेंककर नंगे पांव चलने लगे।

पहले दिन सबके साथ श्रीधर ने भी एक गाँव में आश्रय लिया। उस गाँव में हरिदास जी नाम के एक साधु के आश्रम में श्रीधर उनका दर्शन करने के लिए गए। अनेक बातें हुई। साधु जितनी बार बोले "गौर–निताई अवतार हैं" श्रीधर उतनी बार प्रतिवाद करके बोले– "वे अवतार नहीं, महात्मा थे।" अंत में साधु हरिदास जी तेजी के साथ बोले, "तुम जब यहाँ आये हो, तुम्हें एकदिन गौर–निताई भजना ही होगा।" श्रीधर ने कहा कि बाद में क्या होगा, नहीं जानता हूँ।, अभी उनको महात्मा ही मानता हूँ। शाम को वह फिर साधु के पास गए। उस समय साधु तुलसी परिक्रमा कर रहे थे। साधु की छाती के निकट श्रीधर ने एक तीव्र ज्योति देखी। श्रीधर चकित होकर सोचने लगे कि साधु उनको क्या अलौकिक दर्शन कराये! अवतार विषय में और वितर्क न करके श्रीधर चले आये।

एकचक्रा गाँव पहुँचकर एकबार रात में श्रीधर मंदिर प्रांगण में बैठकर गाना गा रहे थे– "मन एकबार हरिबोलो।" अचानक देखे कि मंदिर में गौर–निताई विग्रह नृत्य करते–करते श्रीधर के सामने आये एवं नृत्य करने लगे। गाना समाप्त होते ही दोनों विग्रह अदृश्य हो जाते थे, फिर गाना गाने पर दोनों विग्रह जागृत होकर उनके सामने आकर नृत्य करने लगते। ऐसा कई बार हुआ। उसके बाद श्रीधर ने देखा कि गाना गाने से भी विग्रह नहीं आ रहा है। श्रीधर का मन उस दृश्य को पुनः देखने के लिए व्याकुल हो उठा। वे पुनः–पुनः गाना गाने लगे किन्तु कुछ भी नहीं देख सके। उन्होंने भावोन्मत होकर करताल फेंक दिये। अचानक उस समय उन्हें दैववाणी सुनाई पड़ी की कोन्नगर में नगेन्द्रनाथ चट्टोपध्याय के साथ साक्षात् करो।

इस घटना से श्रीधर पागल–से हो गए। कहाँ किस प्रकार दिन बीता कुछ भी उनको याद नहीं था। जब चैतन्य हुआ उन्होंने देखा एक चौकीदार उनको थाना में ले जा रहे हैं। उनके शरीर में वस्त्रादि कुछ भी नहीं था। थाना के मुसलमान दरोगा ने उनको पहनने के लिए कपड़ा दिया। धीरे–धीरे श्रीधर की संपूर्ण चेतना लौटी। उनके हिसाब से प्रायः 10–12 दिन उन्माद अवस्था में बीता था। दोरागा बाबू सब सुनकर उनको श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का संग करने के लिए कहे। श्रीधर को उनकी बातों पर आस्था नहीं हुई, क्योंकि गोस्वामीजी कुछ दिन पूर्व गया में मानस–सरोवर के परमहंसजी के पास दीक्षा लाभ किये थे। इसलिए गोस्वामीजी के प्रति श्रीधर की श्रद्धा कम हो गई थी। उस समय अनेक

ब्राह्म लोग गोस्वामीजी मूर्ति पूजक हिन्दू हो गए हैं, सोचकर उनसे दूर रहने लगे। दारोगा बाबू श्रीधर के कोलकाता जाने की व्यवस्था कर दिये। कोलकाता में वे ब्राह्म बंधुओं के पास ठहरे।

कुछ दिन बाद कोन्नगर ब्राह्मसमाज का उत्सव था, उस समय ब्राह्मधर्म प्रचारक श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय महाशय वहाँ आचार्य का कार्य करते थे। दैववाणी स्मरण करके महेन्द्रनाथ मित्र के साथ श्रीधर कोन्नगर उत्सव में गए। संध्या के समय जब श्री नगेन्द्रनाथ उपासना शुरू किये, श्रीधर ने आँखें बन्द करके ध्यानस्थ होकर देखा– "पूर्व दिशा आलोकित हो गई है, वहाँ अनेक नर–नारी ध्वजा और पताका लेकर विशाल संकीर्तन कर रहे हैं और उनको हाथ बढ़ाकर बुला रहे हैं।" श्रीधर यह दृश्य देखकर चौंक गए। एकबार ऐसा दृश्य देखकर वे पागल जैसे हो गए थे। फिर वही दृश्य देखकर श्रीधर आँखें खोल दिये। पर उन्होंने वही दृश्य देखा। उपासना मंदिर से निकलकर वे गंगा किनारे भ्रमण करने लगे किन्तु उनकी आँखों के सामने वही दृश्य था। उपासना के बाद श्रीधर ने नगेन्द्रबाबू को घटना का वृत्तांत सुनाया। नगेन्द्र बाबू बोले, "ढाका यहाँ से पूर्व दिशा में है। तुम जो कीर्तन देखे हो, वह गोसाँई का कीर्तन है। जो लोग तुम्हें हाथ बढ़ाकर बुला रहे थे वे तुम्हारे गुरुभाई और गुरुबहन थे। तुम ढाका जाकर गोसाँई को घटना का परिचय देकर दीक्षा के लिए प्रार्थना करो।" यह बात श्रीधर को अच्छी नहीं लगी। दूसरे दिन उत्सव में योगदान के लिए ढाका से श्री मन्मथनाथ वहाँ उपस्थित हुए। श्रीधर उस संकीर्तन दल में मन्मथबाबू को भी देखे थे। श्रीधर इस घटना से अत्यंत चिंतित हुए किन्तु कुछ भी निश्चय नहीं कर सके। उन्होंने नगेन्द्र बाबू से पुनः निर्देश माँगा। नगेन्द्र बाबू उनको पुनः गोसाँईजी के पास दीक्षा लेने का निर्देश दिये। मन्मथबाबू गोसाँईजी के शिष्य थे। पर इससे भी श्रीधर का मन नहीं माना क्योंकि उनकी धारणा थी कि गोसाँईजी ब्राह्मसमाज छोड़कर मूर्तिपूजक हो गए हैं। इसलिए वह ढाका न जाकर कोलकाता चले गए।

उस समय कोलकाता के पास दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण परमहंस रहते थे। ब्राह्मसमाज के कुछ लोग प्रायः उनके पास जाते रहते थे। उन लोगों के पास श्री रामकृष्णदेव का नाम सुनकर श्रीधर उनके पास दीक्षा प्रार्थी हुए। श्री रामकृष्णदेव बोले, **"सद्गुरु के पास यदि दीक्षा लेना है तो विजय के पास जाओ।"** श्रीरामकृष्णदेव की बातों से श्रीधर का मन स्थिर हुआ एवं उन्होंने ढाका जाकर गोस्वामीजी के पास दीक्षा प्राप्त किया।

इस प्रकार पत्नी वियोग के दो साल बाद श्रीधर बंगला 1292 सन् (सन् 1885 ई०) में सद्गुरु प्राप्त किये। श्रीधर के विभिन्न स्थानों में दीक्षा प्राप्त करने पर भी शांति क्यों नहीं मिली ? इस प्रश्न का सही उत्तर मिलता है गोस्वामी प्रभुजी के

जीवन से। उन्होने सद्‌गुरु के पास दीक्षा प्राप्त करके एक समय कहा था, "पवित्र स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करके जीवन सार्थक करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम ब्राह्मसमाज में आया था। वहाँ करुणामय की कृपा से अनेक सत्य एवं प्रभूत उपकार प्राप्त करके धन्य हुआ। मेरी अल्प शक्ति द्वारा जितना संभव था मुझसे परिश्रम कराये। उनके और उनके संतानगण की सेवा से जीवन धन्य हो गया। क्रमशः अनेक आपद्–विपद् से उत्तीर्ण होकर विभिन्न सत्य प्राप्त करने में समर्थ हुआ। उपासना, प्रार्थना, ध्यान–धारणादि करना सीखा। एक वाक्य में कहने से ब्राह्मसमाज का आश्रय प्राप्त होने पर नवजीवन प्राप्त करके मेरा उद्धार हो गया। किन्तु मेरे मन की प्यास नहीं बुझी क्योंकि तब भी मेरे प्राण के प्रियतम देवता को हृदय में बैठाकर पूजा नहीं कर सकता था। उपासना के समय उनका जागृत आविर्भाव अनुभव करके चरितार्थ होता था। मन में अभूतपूर्व आनन्द, आशा और शांति प्राप्त करता था यह सत्य है किन्तु यह अवस्था दीर्घकाल तक स्थायी नहीं होती थी। अनेक समय उनसे विच्छिन्न होकर रहना पड़ता था, तब अत्यंत क्लेश होता था।"

"श्रद्धेय केशवचन्द्र महाशय की कन्या के विवाह आंदोलन के कुछ दिन पूर्व मैं बागआंचड़ा ग्राम में था। अकेले रहने के कारण आत्मदृष्टि अपेक्षाकृत सूक्ष्म हुई एवं मैंने प्रत्यक्ष किया कि मेरे जीवन की प्राकृत धर्मावस्था अतिहीन है। अवसर मिलने पर एवं लोगों के अनजाने में कोई भी पाप कार्य मुझसे हो सकता है अर्थात उस समय भी पाप एवं आसक्ति का मूल जीवित था जो अवसर मिलने पर आसानी से मुझे घोर पापानुष्ठान में प्रवृत्त कर सकता था। ऐसी हीन अवस्था देखकर मेरा मन शंकित हो उठा। इतने दिन तक धर्मचिन्ता, आलोचना, उपासना, ध्यान–धारणादि एवं विभिन्न देश–विदेश में धर्म प्रचार करके हाय मेरी अवस्था ऐसी ही है! धर्म का मूल क्या है ? निश्चिन्त होने का उपाय क्या है ? क्या संपूर्ण निरापद भूमि नहीं है ? इस प्रकार प्रश्न मन में उदय होने लगा। **समझा कि ब्रह्मलाभ एवं उनके साथ दिनरात रहने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। उनके साथ मेरे प्राण के संयोग के बिना इस महाव्याधि की और कोई दवाई नहीं है।"**

"उस दवाई के संधान में मैं विभिन्न स्थानों में भ्रमण करता रहा। कर्ताभजा संप्रदाय के कई श्रद्धेय धर्म बन्धुओं के साथ में प्राणायाम शिक्षा प्राप्त किया, उनके निकट अनेक धर्म कथा सुना एवं अनेक उपकार मिला। किन्तु उससे भी मेरे मन की आकांक्षा नहीं मिटी। मेरे अंतर की वस्तु वहाँ भी नहीं मिली। विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए अघोरपंथी गण के पास गया। वे साधक थे किन्तु उनके नरमांसाहार एवं अन्यान्य विषयों में मेरी रुचि नहीं हुई। कापालिकों का व्यवहार और भी भयानक था। रामायत्, शाक्त, वैष्णव, बाउल, दरवेश, मुसलमान फकीर

एवं बौद्ध योगी सबके पास गया, किन्तु कहीं भी मेरे मन की प्यास नहीं बुझी। अंत में ईश्वर की कृपा से 'गया' तीर्थ के आकाशगंगा पर्वत में एक नानकपंथी महात्मा कृपापूर्वक मुझे योगधर्म में दीक्षित किये। **उस समय से मेरे जीवन में एक अपूर्व अवस्था प्राप्त हुई है। अवश्य मैं देवता हो गया हूँ यह नहीं कह सकता, किन्तु यह नहीं बोलने से अकृतज्ञता होगी कि मेरा अभाव मोचन हो गया है एवं मैं एक अनन्त राज्य के द्वार में उपस्थित हूँ। सामने क्या देख रहा हूँ, वह भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता।"**

गोस्वामी प्रभुजी की इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब तक सद्‌गुरु का आश्रय नहीं मिलता तब तक मन की प्यास नहीं मिटती एवं अप्राकृत भगवत् प्रेम लाभ नहीं होता।

दीक्षा प्राप्ति के बाद श्रीधर सर्वदा गोस्वामीजी के साथ रहते थे। बंगला 1293 सन् (सन् 1886 ई०) से गोस्वामी प्रभुजी के साथ श्रीधर कोलकाता, दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि स्थानों में भ्रमण करके मार्च महीने के शेष भाग में मोतिहारी आये। गोस्वामी प्रभुजी के साथ श्रीधर घटक महाशय के घर में ठहरे। वहाँ एकदिन श्रीधर लोटा लेकर मैदान में शौच के लिए गए। दूर से हिमालय का दृश्य देखकर उन्होंने इतना आकर्षण अनुभव किया कि लोटा वहीं रखकर हिमालय दर्शन के लिए निकल पड़े। रास्ते में एक साधु के साथ साक्षात्कार हुआ। साधु पशुपतिनाथ दर्शन में जा रहे थे। श्रीधर उनके साथ चलने लगे। संन्यासी की मंद गति श्रीधर को पसंद नहीं आयी उन्होंने तेज गति से चलना शुरू किया।

श्रीधर कौपीन, बहिर्वास एवं मार्किन का कुर्ता पहने थे। ठण्ड के लिए यह उपयोगी नहीं था। रास्ते में चलते–चलते वृक्ष के नीचे रात्रियापन के लिए आश्रय लिये। रात बढ़ने के साथ–साथ श्रीधर ठण्ड से कांपने लगे। क्रमशः उनका हाथ पैर ठंड के कारण अकड़ने लगा। श्रीधर गुरुजी को स्मरण करके 'नाम' जपने लगे। कुछ देर बाद एक संन्यासी अचानक वहाँ उपस्थित हुए। संन्यासी मृतप्राय श्रीधर का हाथ–पांव रगड़ना शुरू किये। बहुत देर में शरीर का ताप बढ़ने लगा और वे हाथ–पाँव हिलाने में समर्थ हुए। अचानक संन्यासी ने "इस जंगल में कोई भक्त है, धूनी का सामान ले आओं।" ऐसा कहकर कई बार चिल्लाया। दो पहाड़ी व्यक्ति दो गठरी सूखी लकड़ी ले आये। संन्यासी पत्थर रगड़कर अग्नि से धूनी जलाये एवं श्रीधर को सेंकने लगे। कुछ देर बाद श्रीधर का शरीर स्वस्थ हुआ। श्रीधर को ठीक होते देखकर साधु अदृश्य हो गए। अवशिष्ट रात्रि श्रीधर धूनी के सामने बैठकर गुरुजी की करुणा के बारे में सोचने लगे।

सुबह होने पर श्रीधर पुनः पथ चलना शुरू किये। एक झरने के पास आकर उन्होंने देखा कि वही साधु कमंडलु हाथ में लेकर खड़े हैं। अचानक रास्ते में अपने

जीवनदाता साधु का दर्शन करके वे आनन्द के साथ उनको प्रणाम करने के लिए दौड़े। साधु उनको स्थिर होने का संकेत दिये एवं अपने ओंठ में अँगुली रखकर श्रीधर को बात करने से मना किये। साधु का भाव देखकर श्रीधर विस्मित हो गए और बात करने का साहस नहीं किया। फिर साधु ने अपना जलपूर्ण कमंडलु श्रीधर को देकर पथ पर चलने का निर्देश दिये। कुछ देर बाद साधु पुनः अदृश्य हो गए। साधु श्रीधर को इस तरह जलपूर्ण कमंडलु क्यों दिये ? श्रीधर कुछ भी नहीं समझ पाये, वे अग्रसर होने लगे। उस दिन श्रीधर को एक भीषण चढ़ाई को पार करना पड़ा। रास्ते में कहीं भी पानी नहीं था। जितना ऊपर चढ़ने लगे उतनी ही प्यास बढ़ने लगी। श्रीधर कमंडलु का पानी पीने लगे। साधु की इस प्रकार अयाचित करुणा से श्रीधर का हृदय द्रवित हो गया। इस तरह गुरुजी की कृपा का स्मरण करते हुए वे अग्रसर होने लगे।

इसके बाद श्रीधर एक धर्मशाला में आश्रय लिये। वहाँ कई कापालिक साधु थे। वह धर्मशाला नेपाल में था। वहाँ साधुओं ने हिमालय को साक्षात् महादेव कहा। श्रीधर बोले कि हिमालय एक पर्वत मात्र है महादेव नहीं। इस बात पर श्रीधर के साथ साधुओं का भीषण तर्क हुआ। साधु लोग उत्तेजित होकर बोले, "तुम्हारी बुद्धि पशु के समान है, तुमको हम काली माता के पास बलि चढायेंगे।" यह कहकर उन्होंने श्रीधर को स्नान कराया एवं काली मंदिर के पास ले गए। श्रीधर भय से सोचने लगे कि आज इनके हाथ से मेरा प्राण जायेगा। वे 'जय माँ काली' कहकर कालीमूर्ति के सामने साष्टांग देकर अचेत हो गए। उसके बाद क्या हुआ श्रीधर कुछ नहीं जानते थे। ज्ञान होने पर उन्होंने देखा कि एक स्त्री एक बालक के साथ मंदिर में पूजा करने के लिए आकर श्रीधर को बोल रही है "बाबा उठो, यह सब निवेदन कर दो।" श्रीधर काली माता को निवेदन करके पुनः उस धर्मशाला में आये। वहाँ साधु लोगों को देखकर उन्होंने पूछा मुझे क्यों बलि नहीं चढ़ाया ? साधु लोग बोले कि काली माता की अनुमति नहीं मिलने के कारण हमने बलि नहीं चढ़ाया। तुम्हें सद्गुरु प्राप्त हुआ है किन्तु अब तक पशुबुद्धि क्यों नहीं गई है ? साधुगण की बात सुनकर श्रीधर सोचने लगे कि उन लोगों को कैसे पता चला कि मुझे सद्गुरु प्राप्त हुआ है।

श्रीधर पशुपतिनाथ एवं अन्यान्य तीर्थस्थानों का दर्शन करके मोतिहारी आये एवं वहाँ से कोलकाता आये। गोस्वामीजी मोतिहारी से लौटते समय श्रीधर के ट्रेन का किराया पाँच रुपए घटक महाशय को दिये थे। कोलकाता में श्रीधर को देखकर नवकुमार बाबू बोले कि श्रीधर नेपाल से दिव्यकांति लेकर लौटा है। एकदिन कथा प्रसंग में श्रीधर बोले थे कि नेपाल के रास्ते में जिस साधु ने जंगल में उनके जीवन की रक्षा की थी एवं जलपूर्ण कमंडलु प्रदान किये थे, वे महात्मा

अर्जुनदास की तरह दिखने में ठीक थे।

महात्मा अर्जुनदास जी का विवरण 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' ग्रन्थ में मिलता है। यहाँ अर्जुनदास जी का सामान्य परिचय दिया गया है।

बंगला सन् 1300 (सन् 1884 ई०) के कुंभमेले में महात्मा अर्जुनदास सर्वदा गोस्वामी प्रभुजी के पास रहते थे। वे गोस्वामी प्रभुजी के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखते थे। अर्जुनदास सर्वदा पागल की तरह इधर–उधर घूमते रहते थे। इस कारण सब लोग उन्हें खेपाचांद कहते थे। गोस्वामी प्रभुजी खेपाचांद के बारे में बोले थे, "वे त्रिकालज्ञ, षड़ैश्वर्यशाली, विदेह–मुक्त महापुरुष हैं। अपनी इच्छानुसार आकाश मार्ग में यत्र–तत्र विचरण कर सकते हैं। केवल स्वयं ही नहीं, और दो व्यक्ति को दोनों हाथ में लेकर शून्य में जा सकते हैं। मुझे अल्प समय में श्रीवृन्दावन, काशी, द्वारका, सेतुबंध रामेश्वर, पुरी आदि स्थानों में भ्रमण कराये हैं। इनकी प्रेम–भक्ति की अवस्था भी असाधारण है। पंचभाव में से किसी भी भाव को इच्छानुसार प्राप्त करके आस्वादन कर सकते हैं।" पंचभाव का अर्थ है शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। अर्जुनदास जी विचित्रभाव में रहते थे। उनकी बाहरी अवस्था जड़ोन्मत्–पिशाचवत् थी।

1887 ई० के फरवरी से अप्रैल महीने तक श्रीधर भी गोस्वामी प्रभुजी के साथ वर्धमान, गया आदि स्थानों से होकर दरभंगा आये एवं कुछ दिन वहाँ रहे। एकदिन भ्रमण करते–करते श्रीधर शहर से बाहर चले गए। वहाँ उनके साथ एक संन्यासी का साक्षात्कार हुआ। संन्यासी मात्र एक काला कंबल ओढ़े हुए थे। साधु के साथ साक्षात् होते ही दोनों, परस्पर प्रेम में मग्न हो गए। मानों बहुत दिनों का परिचय है। साधु एक पैसे का मुर्रा खरीदकर श्रीधर को आधा दिये और आधा स्वयं खाये। प्रायः आधा घंटा साधु श्रीधर के साथ सत्प्रसंग में बिताकर चले गए। किन्तु जाते समय उनमें श्रीधर के प्रति प्रेम का कोई चिह्न नहीं देखा गया। श्रीधर लौटकर गोस्वामीजी से यह घटना बोलने पर उन्होंने कहा, **"काला कंबल ओढ़े बाबाजी का नाम गुरुप्रसाददास है। वे मेरे गुरुभाई हैं। साधुओं में दया रहती है, पर माया नहीं रहती। एकबार एक साधु ने रास्ते में एक पीड़ित व्यक्ति को देखकर अति यत्नपूर्वक उसकी सेवा की, अनेक चेष्टा से उसे स्वस्थ किया। किन्तु पीड़ा उपशम होते ही उसको परित्याग करके चला गया। उनके उस समय के मनोभाव को देखकर ऐसा लगा कि उनके भीतर माया का चिह्न नहीं है। जब तक पास में थे कर्तव्य बोध से सेवा और यत्न किये। पीड़ा आरोग्य होने पर विश्वजननी के तत्वावधान में रखकर निश्चिन्त होकर प्रस्थान किये। वे जानते हैं भगवान ही सबके रक्षाकर्ता एवं पालनकर्ता हैं।"** गुरुजी के पास साधु का परिचय जानकर श्रीधर धन्य हो गए। दरभंगा में रहते

समय श्रीधर प्रायः विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते रहते थे एवं पूछने पर कहते थे जनकपुर गए थे या कभी अन्य स्थान में।

श्रीधर गोस्वामी प्रभुजी के नित्य संगी थे। वे स्वाधीन रूप से अपने भाव में मस्त रहते थे, रहने की या खाने की कोई चिन्ता उनको नहीं थी। ढाका में अवस्थान के समय माता योगमाया देवी इस शिष्य के आहार के लिए अन्नादि रख देती थीं एवं पुनः रसोई करने के पहले वह अन्य किसी को दे देती थीं। केवल एकदिन ही नही कितने ही दिन इस प्रकार होता रहता था। किन्तु उनके इस प्रकार के व्यवहार से माता श्री योगमाया देवी कभी असंतुष्ट नहीं हुई। श्रीधर के इस प्रकार के आचरण को देखकर गुरुभाई लोग उन्हें पगला श्रीधर कहते।

गेण्डारिया आश्रम में अवस्थान के समय कुछ दिन श्रीधर की उन्मत्तता बढ़ गई थी। चन्द्रोदय के साथ–साथ श्रीधर के पागलपन की सूचना होती थी। चन्द्र आसमान में जितना ऊपर उठता श्रीधर का पागलपन भी बढ़ता जाता था। एकादशी से पूर्णिमा तक श्रीधर कहाँ किस अवस्था में रहेगा, कोई नहीं कह सकता था। किन्तु श्रीधर का यह पागलपन किसी धर्मानुष्ठान को लेकर होता था। कभी–कभी धर्मबुद्धि से लोकाचार विरुद्ध कार्य भी करते थे एवं निर्भीक और सरलता के साथ सभी से इसकी चर्चा भी करते थे। मधुर प्रकृति श्रीधर उन्माद अवस्था में भी सबके प्रिय थे। श्रीधर सर्वदा आनन्द में मग्न रहते थे। अपनी उन्माद अवस्था के कारण के संबंध में एक समय गुरुभाइयों को उन्होंने कहा था कि अलौकिक दर्शनादि प्राप्त कर सबके निकट व्यक्त करने से ऐसा हुआ है। यह उन्माद उनके जीवन के अंतिम समय तक समय–समय पर होता था।

पहले ही उल्लेख किया गया है कि माता श्री योगमाया देवी श्रीधर को अत्यंत स्नेह करती थी। श्री योगमाया देवी की वृन्दावन धाम प्राप्ति के बाद श्रीधर गोस्वामी प्रभुजी के साथ हरिद्वार आये थे। उस समय एकदिन श्रीधर हरिद्वार में ब्रह्मकुंड के पास बैठकर जननी योगमाया देवी को स्मरण करके मातृहीन बालक की तरह रोदन कर रहे थे। माता योगमाया देवी अकस्मात् दिव्य देह में गंगावक्ष में आविर्भूत होकर शिष्य संतान को सांत्वना देकर कहने लगीं, "तुम मेरे लिए क्यों रो रहे हो ? देखो मैं तो वर्तमान हूँ। मेरे लिए मत रो। तुम्हारे ऊपर मेरी विशेष दृष्टि है। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ। यह आश्वासन देकर श्रीधर से उन्होंने कहा– तुम अभी भी गोस्वामी प्रभु को मनुष्य सोचते हो ? किन्तु वे मनुष्य नहीं हैं। मुझे उनसे अलग मत सोचना। मैं उनकी धर्म पत्नी हूँ। यदि अलग सोचोगे तो तुम्हें धर्म लाभ नहीं होगा। तुम्हें याद है जब हमलोग काशी में थे तुमको एक रुपए का एक कंमडलु खरीद कर मैंने दिया था। धर्म लाभ करने के लिए स्वभाव को सर्वदा कमंडलु के पानी की तरह शांत और शीतल रखना चाहिए। और कीट के

प्रति भी हिंसा मत करो। अज्ञात से यदि कोई चींटी भी पद दलित हो जाय, इसलिए भगवान के निकट क्षमा प्रार्थना करना। धर्मार्थी के लिए संपूर्ण अहिंसक रहना आवश्यक है।" श्रीधर को यह सब उपदेश देकर श्री योगमाया देवी अन्तर्हित हुईं। इस प्रकार योगमाया देवी का अप्राकृत दर्शन एवं उनके वचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त कर धन्य हुए थे श्रीधर।

श्रीधर कभी–कभी एकतारा बजाकर गाते थे। गोस्वामी प्रभुजी उनके संगीत की प्रशंसा करके बोले थे, "श्रीधर का स्वर बड़ा सात्विक है। उसको ताल–मात्रा या राग–रागिनी का बोध नहीं है किन्तु भावावेश में जब एकतारा बजाकर गाता है तो एकतारा और उसके गीत में ऐसा लय होता है कि लगता है सैकड़ो भ्रमर एक साथ गुंजन कर रहे हैं।

बंगला सन् 1304 (सन् 1897 ई०) में कोलकाता हैरिसन रोड में गोस्वामी प्रभुजी के अवस्थान काल में श्रीधर चेचक से आक्रांत हुए। उस समय वहाँ गोस्वामी प्रभुजी की कन्या शांतिसुधा देवी अपने पुत्र दाऊजी के साथ थी। चेचक संक्रामक रोग है, इसलिए योगजीवन ने गोस्वामी प्रभुजी को श्रीधर को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव दिया। गोस्वामी प्रभुजी क्रुद्ध होकर योगजीवन से बोलें, "तुम कैसे मनुष्य हो। जो जीवन भर हमारे आश्रय में है, उसको अब कहाँ भेजोगे ? कोई यदि सेवा न करे तो मैं स्वयं उसकी सेवा करूँगा। उसको तीसरी मंजिल की सीढ़ी के पास के अलग कमरे में रख दो, कोई उधर मत जाना।" उस समय ब्रह्मचारी कुलदानन्द के मँझले भाई श्री शारदाकांत महाशय ने उनकी सेवा की थी।

इस प्रसंग में उल्लेख करना आवश्यक है कि बंगला सन् 1302 (सन् 1895 ई०) में श्रीधर पैदल नवद्वीप से कालना होकर काटोआ गए थे। उस समय एकबार रात के समय एक भक्त वैष्णव के घर में वे अतिथि हुए। वैष्णव गृह में भगवान के आसन के पास एक पुराना ग्रंथ देखकर गृहस्वामी की अनुमति लेकर श्रीधर वह ग्रंथ पाठ करके स्तंभित हो गए। वह ग्रंथ गृहस्वामी के आदि पुरुष श्री परमानन्द दास द्वारा लिखित था। उस ग्रंथ में एक अध्याय का नाम था श्रीश्री महाप्रभु को श्री अद्वैत प्रभु का अभिशाप। श्रीधर उक्त ग्रंथ से वह अध्याय लिखकर लाये थे। उस समय गुरुभाइयों ने वह लेख पढ़ा था। श्रीधर के चेचक से आरोग्य लाभ करने पर गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से रोगी का सब कपड़ा, बिस्तर एवं ग्रंथादि जला दिया गया। उस समय श्रीधर का वह लेख भी नष्ट हो गया था। दरवेशजी महाराज वह ग्रंथ पाने के लिए नवद्वीप, कालना एवं काटोआ जाते समय सब गाँवों में परमानन्द के वंशधर का संधान किये थे। किन्तु वे सफल नहीं हुए। अंत में दरवेशजी उस ग्रंथ की विषयवस्तु के ऊपर "श्री अद्वैत अभिशाप" नामक एक छोटे काव्य ग्रन्थ की रचना किये। उस काव्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

"संन्यास ग्रहण के बाद जब महाप्रभु श्री वृन्दावन यात्रा करने का विचार किये, उस समय नित्यानन्द प्रभु उनको शांतिपुर में अद्वैतप्रभु के घर में बुलाकर ले आये थे। दस दिन अद्वैतप्रभु के घर में महामहोत्सव हुआ। परमानन्द दास अद्वैतप्रभु के घर में सीता ठाकुराणी के अत्यंत प्रिय भृत्य थे। दसवें दिन में रसोई करते समय सीता ठाकुराणी कुछ सामान लाने के लिए उसे बाजार भेजीं।

रास्ते में परमानन्द ने देखा कि एक प्रकाण्ड आँवला वृक्ष के नीचे महाप्रभु बैठे हैं और अद्वैतप्रभु क्रोधित होकर उनसे कुछ कह रहे हैं। आँवला वृक्ष के पास झाड़ी में छिपकर परमानन्द ने उनकी बातें सुनी एवं बाद में उसे ग्रंथ में लिखकर रखा। उस ग्रंथ का विषय निम्नरूप था–

अद्वैतप्रभु शांतिपुर में रहने के लिए महाप्रभु से बारम्बार अनुरोध किये। महाप्रभु बोले कि वे पुरी में रहेंगे क्योंकि शांतिपुर उनके पूर्वाश्रम नवद्वीप के पास है। बारम्बार अनुरोध करने पर भी महाप्रभु राजी नहीं हुए। अद्वैतप्रभु क्रुद्ध होकर उस समय उनको अभिशाप दिये– "तुम सबकी बात उपेक्षा करके नीलाचल जा रहे हो इसकी सजा भोगनी पड़ेगी। मेरे वंश में तुम्हें पुनः जन्मग्रहण करना पड़ेगा। दस दिन तुम घर में बिताए हो, इसलिए मेरे दसवें पीढ़ी में तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा। इस बार सती पत्नी विष्णुप्रिया को बिना दोष के छोड़कर जा रहे हो। उस बार वह तुमको छोड़कर चली जाएगी। इसका प्रतिफल मिलेगा। उसका मंदिर बनाकर घर–घर में ब्रह्मपूजा प्रचार करना पड़ेगा। शची माताजी का दर्द तुम नहीं समझे, वे तुम्हारे वियोग से पागल–सी हो गई। उस समय तुम्हारी माँ पगली होगी। इस बार शांतिपुरवासीं को रुलाये हो, उस बार शांतिपुर के रास्ते में रोते हुए घूमना पड़ेगा। कोई तुम्हारा साथ नहीं देगा, लोग तुम पर धूल फेकेंगे, उपहास करेंगे। निन्दा–ग्लानि तुम्हारा भूषण होगा। उस समय संतानगण तुम्हारे साथ में रहेंगे। जीवों को दुःख से उद्धार करने के लिये पाप का बोझ अपने सिर पर वहन करना पड़ेगा। जीव में शक्ति संचार करना पड़ेगा।"

अद्वैतप्रभु का अभिशाप सुनकर महाप्रभु मौन रहे क्योंकि उनको पुनः जन्मग्रहण करना पड़ेगा।

उक्त अद्वैत अभिशाप के साथ गोस्वामी प्रभुजी के जीवन का अद्भुत मेल है। अद्वैतवंश में दशम पुरुष में विजयकृष्ण गोस्वामीजी का जन्म हुआ। शांतिपुर के लोगों ने ब्राह्म हो जाने के कारण उनका बहुत अपमान किया। पत्नी योगमाया देवी शरीर त्याग करके पहले चली गईं एवं उनकी माता पगली थी। उनकी सेवा उन्हें करना पड़ा। इस ग्रंथ से प्रमाणित होता है कि श्री अद्वैतप्रभु के अभिशाप के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु को विजयकृष्ण गोस्वामीजी के रूप में आना पड़ा।

इस मूल्यवान तथ्य को श्रीधर ने संग्रह किया था, इस कारण गोस्वामी प्रभुजी के भक्तगण के निकट श्रीधर चिरस्मरणीय हैं।

श्रीधर के जीवन कथा का सम्पूर्ण विवरण नहीं मिलता। उनके बारे में विभिन्न ग्रंथों में अनेक घटनायें मिलती है। नीचे उन घटनाओं का उल्लेख किया गया है–

1. बारदी के लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के दर्शन में जाते समय श्रीधर का कांड–

श्रीधर के भीतर अपना–पराया भेद नहीं था। एकबार गुरुभाई विपिनबिहारी राय महाशय यक्ष्मा रोग से आक्रांत होकर प्राण भय से सहमकर बारदी के ब्रह्मचारीजी के साथ साक्षात् के लिए यात्रा किये। उनके साथ श्रीधर एवं और कई गुरुभाई थे। विपिनबाबू उत्कृष्ट मिष्टान्न एवं चार फजलि आम लेकर नाव में जा रहे थे। बीच रास्ते में एक जगह नाव रखकर कुछ आहार संग्रह के लिए विपिनबाबू गुरुभाईयों के साथ बाजार गए। नाव में केवल श्रीधर थे। दिन के शेष भाग में कई भिखारी बालकों ने आकर श्रीधर के पास कुछ आहार मांगा। श्रीधर चारों आम उन लोगों को दे दिये। विपिनबाबू लौटते समय रास्ते में भिखारियों के हाथ में उन आमों को देखकर अत्यंत दुःखी हुए। विपिनबाबू अर्थ के विनिमय में भिखारियों से आम लेकर नाव में आकर श्रीधर को खूब डांटे। श्रीधर ने कहा, "ब्रह्मचारीजी के कहने से मैं दिया हूँ। जाओ उनसे पूछो।" यह सुनकर वे चुप हो गए।

संध्या के समय दिया जलाने के लिए पलीता(बांती) नहीं था। श्रीधर के पास एक पोटली में अनेक फटा कपड़ा रहता था। जैसे ही विपिनबाबू श्रीधर की पोटली से एक फटा कपड़ा निकाला, श्रीधर जोर से चिल्लाते हुए विपिनबाबू के जाँघ में दांत से काट दिये एवं पकड़े रहे। सब लोग पागल श्रीधर को छुड़ाने की कोशिश किये। अंत में नाविकों के निर्देश से कुछ लोग श्रीधर के पीठ में दांत से काट दिये। इस समय अचानक विपिनबाबू को छोड़कर श्रीधर 'जय निताई, जय निताई' कहकर नदी में कूद पड़े। श्रीधर को तैरना नहीं आता था। उनको बचाने के लिये कई लोग पानी में कूद पड़े। अनेक चेष्टा के बाद श्रीधर को नाव में उठाया गया। इस प्रकार पूरी रात उद्वेग में बीती। सुबह सब लोग बारदी के ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए गए। श्रीधर उनके साथ नहीं गए। वे थोड़ी देर बाद एक गठरी घास, सिर पर लेकर ब्रह्मचारीजी के पास गए। श्रीधर वह घास की गठरी ब्रह्मचारीजी के पास रखकर 'इसे खा लो, इसे खा लो' ऐसा कहकर साष्टांग प्रणाम किया। यह देखकर सब हँसने लगे। श्रीधर बोले, "शास्त्र जानते हो ? 'गो ब्राह्मण हिताय च' अर्थात गाय की प्रिय वस्तु ब्राह्मण को प्रिय है।" श्रीधर की यह अद्भुत व्याख्या सुनकर सब लोग हँसने लगे।

विपिनबाबू द्वारा अपने रोग की बात का उल्लेख करने पर लोकनाथ

ब्रह्मचारीजी बोले, "श्रीधर तेरे जाँघ में दाँत से काटा है न ? खून निकला है न ? उससे ही तेरा रोग ठीक हो जाएगा। श्रीधर क्यों काटा, यह क्यों नहीं पूछा ?" सबके प्रश्न के उत्तर में श्रीधर बोले कि सब लोगों के बाजार चले जाने पर उनको अप्राकृत संकीर्तन ध्वनि सुनाई दी। उसके पश्चात् उन्होंने देखा कि लोकनाथ बाबा चार ऋषि बालकों के साथ नाव के पास आकर बोले, "मेरे लिए जो चार आम रखा है वह इन लोगों को दे दो।" इसलिए उन्होंने विपिनबाबू का आम दे दिये थे। उसके बाद उन्होंने देखा आकाश में संकीर्तन दल आ रहा है। ब्रह्मचारीजी उस समय उनको निर्देश दिये कि विपिनबाबू के जाँघ में दाँत से काटकर खून निकाल दो, उससे उसका रोग ठीक हो जाएगा। श्रीधर इसलिए खून नहीं निकलने तक विपिनबाबू की जाँघ दाँत से पकड़े रहे। फिर श्रीधर ने देखा महाप्रभु एवं नित्यानन्द प्रभु के साथ गोस्वामीजी 'हरिबोल हरिबोल' कहते–कहते जा रहे हैं। उस संकीर्तन में शामिल होने के लिए वे 'जय निताई, जय निताई' कहकर नदी में कूद पड़े थे। श्रीधर की यह सब बातें सुनकर सब अभिभूत हो गए।

2. गुरुजी के प्रति श्रीधर का आकर्षण–

श्रीवृन्दावन में एकदिन सामान्य बात को लेकर श्री कामिनीबाबू के साथ श्रीधर का झगड़ा हुआ। कामिनीबाबू ने श्रीधर को खूब डाँटा एवं कहा, "सावधान, झगड़ा करने से मार खाओगे। श्रीधर यह सुनकर दौड़ते हुए एक पुलिस के पास जाकर बोले– "बंगाल से एक भयंकर डकैत हमारे कुंज में आया है। वह मुझे मार डालना चाहता है, जल्दी उसको पकड़ो नहीं तो हम सबको मार डालेगा।" पुलिस कुंज में आई। श्रीधर कामिनीबाबू को दिखाकर बोले– "इसको पकड़ो।" कुंज के कुछ लोग श्रीधर पागल है, ऐसा कहकर पुलिस को विदा किये।

गोस्वामी प्रभुजी यह सब सुनकर श्रीधर को खूब डाँटे एवं बोले कि कामिनीबाबू के पास क्षमा माँगो अथवा कुंज से चले जाओ। श्रीधर बोले, "जिसने मुझे मारना चाहा, उसका कोई दोष नहीं हुआ। वह डकैत नहीं है ? डकैत को पुलिस के पास देना क्या अपराध है ? इसके लिए क्षमा! मैं डकैत के पास क्षमा कभी नहीं माँगूगा।"

गोस्वामी प्रभुजी श्रीधर को डाँटते हुए कहे, "तुम अभी यहाँ से निकल जाओ।" उत्तेजित श्रीधर भी "ऐसे संग में और नहीं रहूँगा। अभी जा रहा हूँ।" कहकर कुंज से बाहर चले गए।

कुछ देर तक इधर–उधर घूमकर श्रीधर रोते–रोते गोस्वामी प्रभुजी के पास आकर उनके चरणों में गिर पड़े। गोस्वामी प्रभुजी श्रीधर से लौटने का कारण पूछे तो श्रीधर जोर से रो–रोकर कहने लगे – क्या करूँ ? आप को छोड़कर नहीं रह

सकता। गोस्वामीजी अश्रुपूर्ण आँखों में श्रीधर के सिर में हाथ रखकर बोले– "तो जाओ, क्षमा माँगो।", श्रीधर ने तुरंत कामिनीबाबू के पास जाकर क्षमा माँगी।

3. एकबार गोस्वामीजी वृन्दावन जाने वाले थे। प्रभुजी श्रीधर से बोले, "श्रीधर हमलोग वृन्दावन जा रहे हैं, सब लोगों का जाने का खर्च नहीं है। तुमको साथ में नहीं लेंगे। तुम यहीं रहो।" श्रीधर यह सुनकर क्रुद्ध होकर बोले, "घर कुटुम्ब विषय–संपत्ति सब छुड़ाकर ले आये । अब बोल रहे हैं साथ में नहीं लेंगे। अच्छा मैं लाठी लेकर द्वार पर बैठा रहूँगा, देखता हूँ कौन जाता है ? टाँग तोड़ दूँगा।" श्रीधर की बात सुनकर गोस्वामी प्रभुजी उनको शांत किये एवं साथ में ले गए। गुरु के प्रति ऐसा अभिमान करने का अधिकार कितने शिष्यों को होता है ?

गुरुजी के प्रति श्रीधर का असाधारण प्रेम, प्रगाढ़ भक्ति एवं अटल विश्वास था। इसलिए वे कभी झगड़ा करते, तो कभी अपनी मनपसंद बात नहीं होने से गुरुजी की बातों का प्रतिवाद भी करते थे। ऐसा बाहरी अविनीत आचरण गुरुजी के प्रति उनकी असामान्य अनुराग का निदर्शन है।

4. श्रीधर की परदुःखकातरता–

श्रीधर किसी का दुःख कष्ट देखने से अत्यंत दुःखी हो जाते थे। उनके पास जो कुछ रहता दुःखी को दे देते थे। अपने पास देने के लिए कुछ नहीं रहने से दूसरों के पास व्याकुल होकर प्रार्थना करते थे एवं जो कुछ मिलता उसे दुःखी को देकर उसका दुःख कम करने की चेष्टा करते थे। ऐसा लगता कि उनको ही कष्ट हो रहा है। गोस्वामी प्रभुजी के साथ दरभंगा में रहते समय एकदिन श्रीधर गुरुभाई नवकुमार बागची के पास एक मोटा जीन कपड़े का कुर्ता मांगकर कंगाल को दे दिये। गुरुभाई के पास ऐसा तीन कुर्ता था। श्रीधर एक–एक करके मांग कर सब कंगालियों को दे दिये।

5. श्रीधर का निःस्वार्थ भाव एवं पागलपन–

(क) गोस्वामीजी के निर्देश से कुलदानन्दजी नित्य हवन करते थे। हवन के लिए वे घी संग्रह करके रखते थे। एकदिन कुलदानन्दजी आसन में बैठकर आँखें बन्द करके नाम–जप कर रहे थे। श्रीधर धीरे–धीरे आकर हवन के लिए रखे घी को धूनी के अग्नि में डाल दिये। आग तेजी से जलने लगी। ब्रह्मचारीजी यह देखकर श्रीधर को बोले, "यह क्या– यह क्या हो रहा है ? श्रीधर– देख ! आग को देख!! बोलकर अपने आसन पर जाकर बैठ गए। कुलदानन्द के क्रुद्ध होकर दो–चार बातें बोलने पर श्रीधर ने कहा– "अरे स्वार्थ बुद्धि से कुछ करने से दोष होता है। तुम स्वार्थ के लिए हवन करते हो, आग में घी डालते हो। मैं तो ऐसा नहीं करता। मेरा संपूर्ण निःस्वार्थ भाव है।" श्रीधर की बात सुनकर कुलदानन्दजी

और क्रुद्ध होकर बोले– "अच्छा अब चुप हो जाओ, नहीं तो मार खाओगे, निःस्वार्थ होने का फल मिलेगा।" श्रीधर अच्छा अब चुप रहूँगा, कहकर आँखें बन्द कर लिये। श्रीधर की इस प्रकार उपेक्षा भाव देखकर कुलदानन्दजी उत्तेजित हो उठे एवं उनको मारने के लिए हाथ उठाये। उनके हाथ से लगकर स्याही दान से स्याही भागवत ग्रन्थ पर जा गिरी। इससे कुलदानन्द के मन में बहुत कष्ट हुआ। इस घटना के बाद गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से कुलदानन्दजी को कुछ दिन हरिद्वार में जाकर साधना करनी पड़ी थी।

(ख) गेण्डारिया आश्रम में एकदिन सुबह रसोई का भंडार शून्य हो गया। सुबह उठकर नानी श्री मुक्तकेशी देवी व्यस्त होकर श्रीधर से बोली, "श्रीधर अब ध्यान–धारणा से नहीं चलेगा। आसन से उठो, भंडार शून्य है। बाजार जाओ, नहीं तो रसोई नहीं बन सकेगी।"

श्रीधर पैसा लेकर बाजार गए। बाजार से क्या लाना है, उन्होंने नहीं सुना। दस बजे तक प्रतीक्षा करने के बाद नानीमाँ दूसरों से दाल, चावल माँगकर रसोई शुरू की। श्रीधर नहीं आये। सब लोगों के आहार के बाद जब दोपहर दो बजे, गोस्वामी प्रभुजी आम के पेड़ के नीचे बैठे थे, उस समय श्रीधर एक बोझ लेकर आम के पेड़ के नीचे धूनी के सामने बैठ गए एवं पाँच–छः मिनट बाद मुट्ठी भर धूप धूना, चन्दन आदि 'अग्नेय स्वाहा' कहकर आग में आहुति देने लगे।

गोस्वामी प्रभुजी यह देखकर मुस्कराने लगे, कुछ नहीं बोले। नानी श्रीधर का कांड देखकर बोलीं, "पागल, यह क्या किया ? इससे क्या दिन चलेगा ? श्रीधर तेजी के साथ बोले, "आप क्या बोल रहे हैं ? जठरानल तो अनल है। आग में आहुति देने से क्षुधा रहती है क्या ? शास्त्र जानते हो ?" श्रीधर की बात सुनकर गोस्वामी प्रभुजी हँसते हुए बोले, "आपने बाजार करने के लिए श्रीधर को पैसा दिये थे। श्रीधर उस पैसा से धूप–धूना लाकर जठरानल में आहुति दे रहे हैं।" सब लोग हँसने लगे। नानी, "पैसा क्या किया ?" कहकर गाली देने लगी। श्रीधर आसन से उठकर नानी को बोलने लगे, "बहुत बात हो गई, अब चलिये भोजन दीजिये। बहुत देर हो गई है, मुझे क्या भूख नहीं लगती ? गाली से पेट नहीं भरता।" श्रीधर का मस्तिष्क गरम हुआ है सोचकर नानी ने उन्हें ले जाकर भोजन कराया।

(ग) एक समय गोस्वामी प्रभुजी अभयबाबू के घर में कई दिन रहे थे। एकदिन श्रीधर अभयबाबू से पैसा माँगे। अभयबाबू ने पाँच रुपए दिये। श्रीधर रूपया लेकर निकल पड़े। दोपहर के तीन बजे श्रीधर घर लौटकर गोस्वामी प्रभुजी के कमरे में प्रवेश किये। एक गुरुभाई पूछे कि क्यों श्रीधर रूपया लेकर क्या किया ? गोस्वामी प्रभुजी ने पूछा कि रूपया किस लिए ? शिष्य ने अभयबाबू के रुपया देने के बारे में सब बातें कही। गोस्वामी प्रभुजी बोले, "कुछ पूछे बिना, माँगते ही श्रीधर को

रूपया देना ठीक नहीं हुआ। सबकी मर्यादा है। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ रूपया व्यय करना चाहिए। नहीं तो इसकी मर्यादा नष्ट होती है। अभयबाबू के इस प्रकार अर्थ का अपव्यय करने से उन्हें अर्थ का कष्ट भुगतना पड़ेगा।"

गोस्वामी प्रभुजी की इस बात को सुनकर श्रीधर हँसकर पाँच रूपया निकालकर अभयबाबू के हाथ में देकर बोले– "लीजिए आपका रूपया लीजिए।" अभयबाबू ने कहा– "तो लिया क्यों था ?" श्रीधर ने कहा, "रूपया पास में रहने से शरीर एवं मन की अवस्था कैसी होती है, यह देखने के लिए रूपया लिया था। अब आप का रूपया आप संभालिये। मैं भी बच गया।"

(घ) कुलदानन्द और सतीश को श्रीधर का अप्राकृत वृक्ष दिखाना –

1297 बंगला सन् (1890 ई०) में जब गोस्वामी प्रभुजी वृन्दावन में थे एकदिन उन्होंने श्रीधर से कहा कि कुलदा को मथुरा में मनमोहन के घर में ले जाओ। कुलदा कभी मथुरा मे मनमोहन नहीं गया है। वह अस्पताल कहाँ पर है नहीं जानता है। मनमोहन थे मथुरा अस्पताल के असिस्टेन्ट सर्जन। स्वामी हरिमोहन अस्वस्थ अवस्था में कुछ दिन उनके घर में थे। गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से श्रीधर कुलदानन्द एवं सतीश को लेकर गुरुभाई को देखने के लिए निकल पड़े। मथुरा से लौटने पर गोस्वामी प्रभुजी कुलदानन्द से पूछे, "क्या श्रीधर तुम्हें सही रास्ता से ले गया था ? कुछ गड़बड़ तो नहीं किया ?" कुलदानन्द ने उत्तर दिया, "यहाँ से निकलकर 'चलो, मथुरा चलो, तुमलोगों को मथुरा दिखायेंगे' – ऐसा कहकर श्रीधर बहुत तेजी के साथ उल्टी दिशा में चलकर वंशीवट में उपस्थित हुए। वहाँ से हमें यमुना किनारे राधाबाग में ले गए एवं वहाँ जंगल में प्रवेश करके बोले, "सीधा चलो। हम बोले, यहाँ पर रास्ता कहाँ है ? किधर जायें? श्रीधर जंगल में हम लोगों को लेकर एक ही स्थान में बार–बार घूमने लगे। हमलोग समझ गए कि श्रीधर का मस्तिष्क गरम हुआ है।

इस प्रकार दुर्भोग भोगते–भोगते अंत में हम एक विस्तृत मैदान के सामने उपस्थित हुए एवं श्रीधर से पूछे भाई श्रीधर मथुरा और कितनी दूर है ? श्रीधर रास्ते में एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखाकर बोले – इसे प्रणाम करो, इस वृक्ष का गोसाँईजी ने अन्वेषण किये हैं। हम लोगों ने वृक्ष को प्रणाम करके देखा, वृक्ष के सर्वांग में देवमूर्ति है, नीचे जड़ की तरफ स्पष्ट रूप में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि की मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ इतनी स्पष्ट थी कि मिट्टी की बनी पुतली की तरह लगती थी। वृक्ष में इतने स्पष्ट देव मूर्तियाँ कैसे उत्पन्न हो गई यह सोचकर आश्चर्य में पड़ गए। सतीश एवं मैं मूर्तियाँ देख रहे थे। अचानक श्रीधर मैदान के बीच से दौड़ने लगे। हमलोग उसके पीछे–पीछे चलकर एक बस्ती में पहुँचे। बस्ती पार करने के बाद फिर एक मैदान में ले गए।

अंत में हमलोग मथुरा में मनमोहन बाबू के घर पहुँचे। स्वामी हरिमोहन का दर्शन किये। वे अब थोड़ा स्वस्थ है। आरोग्य लाभ करके यहाँ चले आयेंगे। श्रीधर मनमोहन बाबू से हमारे लिये स्वल्पाहार लाने के लिए पैसा लेकर बोले– "भाई तुम लोग बैठो मैं तुम्हारे लिए चना लेकर आता हूँ। यह कहकर श्रीधर सीधा स्टेशन चले गए। हमारे नाश्ते के पैसा में वृन्दावन का टिकट खरीद कर सीधा श्रीवृन्दावन चले आये। हमलोग बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा करते रहे, फिर वापस चले आये।

गोस्वामी प्रभुजी यह सब सुनकर हँसने लगे। कुलदानन्द लिखे हैं, धन्य श्रीधर! तुम धन्य हो, साधन–भजन की अपेक्षा तुम्हारा पागलपन ही श्रेष्ठ है!!

इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि उस अप्राकृत वृक्ष के बारे में गोस्वामी प्रभुजी बोले थे– पंचकोशी परिक्रमा के समय वह वृक्ष देखा था। तब तक उस वृक्ष के प्रति किसी की नजर नहीं पड़ी थी। मेरे साथियों को वह देव मूर्तियाँ दिखाने से उन लोगों ने इसका प्रचार किया। अब पंडे लोग वह वृक्ष दिखाकर यात्रीगण से पैसे लेते हैं। यह सुनकर कुलदानन्द बोले कि वह वृक्ष बड़ा अद्‌भुत है। सुना है ये सब देव–देवी सचमुच उस वृक्ष में हैं। देव–देवीगण जंगल में वृक्ष का आश्रय लेकर क्यों रहेंगे ? गोस्वामी प्रभुजी उत्तर दिये, **"अरे कितने देव–देवी, ऋषि–मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए लालायित हैं। यहाँ प्रत्येक रज कण में महाविष्णु हैं।"**

गोस्वामी प्रभुजी के पास यह सब सुनकर कुलदानन्द आश्चर्य में पड़ गए। श्रीधर के कारण उनको अप्राकृत वृक्ष का दर्शन हुआ, यह जानकर धन्य हुए।

6. श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी द्वारा श्रीधर की गुरु–निष्ठा की परीक्षा :–

लोकनाथ ब्रह्मचारीजी भक्तगण की समय–समय पर परीक्षा करते थे। एकबार अनेक लोगों के सामने श्रीधर से उन्होंने कहा– "अरे, तूने इतने दिन गोसाँई के पास रहकर क्या लाभ किया ? जो स्वयं अंधा है, वह दूसरों को किस प्रकार पथ दिखलाएगा ? अंधा गुरु का संग छोड़ दे। तू छः महीना मेरे पास रह जा। मैं तुझे ब्रह्मज्ञान दूँगा और उर्ध्वरेता भी कर दूँगा।" श्रीधर यह सुनकर चिल्लाकर उनके सामने जाकर अत्यंत क्रोधपूर्वक बोले – "अरे साला ब्रह्मचारी! साला का बेटा साला ब्रह्मचारी!! तुम महापुरुष हो ? मेरे गुरु को अंधा बोल रहे हो ? वे कुछ नहीं कर सकते ? तुम मुझे ब्रह्मज्ञान दोगे। उर्ध्वरेतां बनाओगे ? अरे साला यह देख तेरे जैसा अनेक ब्रह्मचारी मेरे बाल में लटक रहे हैं।" श्रीधर यह सब कहकर बर्हिवास लंगोट सब खोलकर ब्रह्मचारी के ऊपर फेंकने लगे।

ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर श्रीधर को आलिंगन करके बाले– "सहीं बोला है, सहीं बोला है। तेरी अवस्था देखकर आज मुझे बड़ा आनन्द मिला। शांत हो

जा।" उस समय एक कुत्ता ब्रह्मचारीजी के दरवाजे के सामने उल्टी कर रहा था। ब्रह्मचारीजी श्रीधर से बाले– "अच्छा तुझे ब्रह्मज्ञान हुआ है न ? वह उल्टी खा तो देखें ? श्रीधर तुरन्त उल्टी खाने लगे। ब्रह्मचारीजी श्रीधर को आदर के साथ अपने आसन में ले जाकर बैठाकर विभिन्न प्रकार के आहार देकर बोले– "आ तू भी खा, मैं भी खाता हूँ। आज मैं तेरे साथ खाऊँगा। तुझे यथार्थ ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है। गुरुनिष्ठा होने पर और कुछ बाकी नहीं रहता।"

कुलदानन्द श्रीधर के पास से यह घटना सुनकर पूछे– "अच्छा वह उल्टी तुम कैसे खाये ?" श्रीधर ने कहा– "अरे उल्टी कोई खा सकता है ? मैंने देखा कि खीर मिश्रित चीवड़ा है, खाते समय भी वही स्वाद मिला। यह सब गोसाँईजी की कृपा के बिना क्या हो सकता है ?"

श्रीधर की बात सुनकर कुलदानन्द चकित हो गए। लोकनाथ ब्रह्मचारीजी की बातों से यह प्रमाणित होता है कि श्रीधर साधारण पागल नहीं थे। महापुरुषगणों में आत्मगोपन के लिए कोई उन्मादवत्, कोई जड़वत्, कोई पिशाचवत् व्यवहार करते हैं।

7. गुरु के प्रति श्रीधर का निःस्वार्थ प्रेम –

गोस्वामी प्रभुजी के वृन्दावन में रहते समय प्रतिदिन सुबह श्रीधर एवं अभय बाबू दोनों ग्वाला के घर दूध लाने जाते थे। प्रतिदिन वे दूध पीकर दूध अच्छा है कि नहीं जाँच करके दूध लाते थे। एकदिन श्रीधर कटोरी में दूध लेकर जैसे ही दूध पीये। उनको बहुत अच्छा लगा। उस उच्छिष्ट दूध की कटोरी लेकर वे घर आये एवं बांये हाथ से गोसाँईजी का मस्तक पकड़कर दाहिने हाथ में वह उच्छिष्ट दूध की कटोरी गोसाँईजी के मुँह में लगाये। गोसाँईजी भी वह दूध पीकर दूध की बहुत प्रशंसा किये।

यह दृश्य देखकर सब लोग विस्मित हो गए। गुरु के प्रति श्रीधर का इतना प्रेम था कि उच्छिष्ट खिलाने में भी कुछ संकोच बोध नहीं किया।

8. गुरुजी के भीतर श्रीधर को इष्ट दर्शन –

श्रीधर के देहत्याग के दो–एकदिन पूर्व महेन्द्रनाथ मित्र उनको निर्जन में बोले यदि सरल भाव से कहो तो पूछता हूँ– "तुम्हारी दीक्षा के बाद ठाकुर के बारे में क्या–क्या विशेष घटना प्रत्यक्ष किये हो ? उत्तर में श्रीधर बोले– "साधन प्राप्ति के बाद ठाकुर को साष्टांग दिया, सिर उठाकर देखा षड्भुज मूर्ति धारण करके वे खड़े हैं। मैं मुग्ध हो गया। अन्य एक समय उनके शरीर में श्रीकृष्ण–बलराम का एक साथ दर्शन किया। समयान्तर में पुनः उनके षड्भुज रूप का दर्शन किया था।"

शास्त्र में है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

गुरु के भीतर इष्ट मूर्ति का दर्शन मिलना साधना की उच्चावस्था का लक्षण है इस विषय में काई संदेह नहीं है।

9. एकदिन गोस्वामी प्रभुजी के पास लोग बैठे थे एवं विभिन्न सत्प्रसंग हो रहा था। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा– "अहिंसा, सत्य एवं इन्द्रिय निग्रह यह तीन मानव का यथार्थ धर्म है। यह लाभ न होने तक किसी उच्च अवस्था का अधिकारी होना संभव नहीं है।" गोस्वामी प्रभुजी की यह बात सुनकर कुलदानन्द ब्रह्मचारी आत्मविचारपूर्वक सोचे कि क्या उनकी कोई उन्नति नहीं हो रही है। उन्होंने गोसाँईजी से पूछा, "मेरी क्या उन्नति नहीं हो रही है ?" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "सबकी उन्नति हो रही है। भगवान के राज्य में कोई भी वस्तु एक ही अवस्था में नहीं रहती। उन्नति अवश्य हो रही है" – कुलदानन्द थोड़ा उत्तेजित होकर बोले, "हम कैसे समझें कि उन्नति हो रही है ? पहले जो पाप कार्य करता था अब भी करता हूँ। पहले जिस चिन्ता–कल्पना को घोर अपराध सोचता था अभी भी उसमें सुख मिलता है। इस प्रकार सब विषयों में अवनति देख रहा हूँ।" गोस्वामी प्रभुजी बोले, "इससे उन्नति की बाधा नहीं होती है यह सब बाहरी है। आत्मा की उन्नति प्रतिदिन प्रतिक्षण हो रही है। अभी जिसको पाप या पुण्य कह रहे हो, यह सब संस्कार है। वास्तव में यह सब कुछ नहीं है। यह पाप है, यह पुण्य है, यह सुख है, यह दुःख है, इस प्रकार संस्कार में आबद्ध होने के कारण हमें कष्ट मिलता है और अपनी उन्नति नहीं देख सकते हैं। जिस प्रकार वृक्ष अपने–आप बढ़ता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी हमारी इच्छा–अनिच्छा, कृत–कर्म पर निर्भर न करके उन्नति लाभ करती है। वृक्ष में कीड़ा लग सकता है, कोई शाखा तोड़ सकता है– किन्तु वृक्ष का बढ़ना बंद नहीं होता। पाप–पुण्य जो भी कहो वह कुछ नहीं है, वह संस्कार मात्र है। इसके लिए दुःखी होना या वृथा अशांति भोगना ठीक नहीं है। स्वभाव जो करा ले वह करने दो, जो होता है होने दो, केवल देखते रहो। अशांति क्यों भोगते हो ? जो भी करो, यह निश्चित जानों कि अवनति नहीं हो रही है – आत्मा की उन्नति क्रमशः हो रही है। सर्वदा विचारपूर्वक चलना है। अंदर में जो कुछ संस्कार है, उसका स्फुरण अवश्य होगा, किन्तु आत्मा की उन्नति नहीं हो रही है, ऐसा मत सोचो। शम्, संतोष, विचार द्वारा आत्मा की उन्नति उपलब्ध होती है। काम–क्रोधादि आत्मा को स्पर्श नही कर सकते। आत्मा अनंत उन्नतिशील है।"

कुलदानन्द ने कहा– "आत्मा की उन्नति हो या अवनति हो, यदि मैं नहीं

समझा तो क्या लाभ है, मुझे जिससे कष्ट अनुभव होता है, वह त्रिताप ज्वाला दूर नहीं होने तक मैं उन्नति नहीं समझता।" श्रीधर पास में बैठकर सब सुन रहे थे। कुलदानन्द की बात खत्म होने पर श्रीधर हँसते हुए बोले– "अरे वह सब कुछ नहीं है, सब ठीक हो गया है।" श्रीधर की बात सुनकर गोसाँईजी बोले– क्यों श्रीधर, क्या बोल रहे हो ?

श्रीधर ने कहा कि हमारे देश में एक हकीम थे। वे नाई थे किन्तु हकीमी करते थे। एकबार तेज बुखार में पड़े हुए एक रोगी को देखकर उन्होंने कहा– "यह रोग कुछ भी नहीं है, दवाई ले जाओ, तीन दिन में रोग ठीक हो जायेगा। चौथे दिन आकर आरोग्य स्नान कराऊँगा" रोगी नियमित रूप से दवाई खाने लगा। किन्तु रोग क्रमशः बढ़ने लगा। चौथे दिन घर में रोना शुरू हो गया। हकीम आकर बाहर से चिल्लाने लगे, "अरे सब तैयार है न ? आज आरोग्य–स्नान करायेंगे।" सब लोग हकीम को रोगी के पास ले गए। रोगी उल्टी–सीधी बातें कर रहा था। कभी बेहोश हो जा रहा था तो कभी–कभी ज्ञान होने पर 'ओह, आह, प्राण निकल गया'– बोलकर, चिल्ला रहा था। हकीम उसका हाथ खींचकर बोलने लगे, "अरे तू ठीक हो गया है। उठो आरोग्य–स्नान कराना है।" रोगी बोल रहा है कि यंत्रणा सहन नहीं होती, प्राण निकल रहा है। किन्तु हकीम बोलते रहे कि अरे ठीक हो गया है! उठो आरोग्य स्नान कराना है!!" श्रीधर की बात सुनकर गोसाँईजी खूब हँसने लगे एवं बोले– **"सुख–दुःख, पाप–पुण्य, यह सब संस्कार है। संस्कार मिथ्या है, विचार द्वारा समझकर शांत होने की चेष्टा करो। गोसाँईजी फिर बोले, "स्वभाव में जो संस्कार है वह अवश्य व्यक्त होगा। किन्तु श्वास–प्रश्वास में नाम करने से देह–मन निर्मल होता है, चित्त शुद्ध होता है। तब दैहिक, मानसिक कोई संस्कार नहीं रहता।**

बंगला 1309 सन् (1802 ई०) में श्रीधर कुछ दिन कोलकाता में श्री जगद्बन्धु मैत्र महाशय के घर में थे। 12वीं मार्गशीर्ष त्रयोदशी तिथि में अकस्मात् बुखार से पिड़ित होकर रात 10 बजे के बाद श्रीधर गुरुभाइयों से बार–बार कहने लगे– "तुम लोग मेरे पास आज रहो। आज मैं देहत्याग करूँगा।" बुखार से श्रीधर का मस्तिष्क गरम हो गया है, इसलिए श्रीधर ऐसा बोल रहे हैं, सोचकर किसी ने उनकी बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

प्रातःकाल में श्रीधर की खबर लेने के लिए सब लोग जाकर देखे कि श्रीधर ने साष्टांग प्रणाम करते हुए देहत्याग किया है। उनका इस प्रकार साष्टांग प्रणाम अवस्था में देहत्याग करना, देखकर सब लोगों की यह धारणा हुई कि श्रीधर किसी का दर्शन पाकर साष्टांग प्रणाम करके देहत्याग किये।

गुरुभाइयों ने उनका पवित्र देह सुसज्जित करके नीमतला घाट में ले जाकर अग्नि संस्कार किये। श्रीधर अपुत्रक थे। पुरी, गेण्डारिया आश्रम एवं वृन्दावन धाम में श्रीधर के स्मरण में महोत्सव संपन्न हुआ। गोसाँईजी की कृपा से सुन्दर रूप से सब कार्य सम्पन्न हो गया।

इस प्रकार गोस्वामी प्रभुजी के एक महान् प्रिय शिष्य के पार्थिव जीवन का अवसान हुआ। श्रीधर के बारे में कुलदान्दजी लिखे हैं, "स्वाभाविक अवस्था में श्रीधर को भजन पारायण, शांत, निष्ठावान्, विश्वासी एवं अति मधुर प्रकृति के एक भाव–मग्न महापुरुंष के अलावा और कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

एकदिन श्रीधर गोस्वामी प्रभुजी से प्रार्थना किये, "प्रभु आप सब पर कृपा कर रहे हैं, मेरे फरीदपुरवासियों के लिए क्या किये ?" यह सुनकर गोसाँईजी गंभीर कंठ में उत्तर दिये – **श्रीधर कोई चिन्ता नहीं है। सबसे पहले फरीदपुरवासियों की जागृति होगी। बंगलादेश में लाखों से अधिक नाम–ब्रह्म का मंदिर प्रतिष्ठित होगा।"**

पूर्वी बंगाल के फरीदपुर में धर्म के नवजागरण का इतिहास जो जानते हैं, केवल वे लोग गोस्वामी प्रभुजी के कथन की सत्यता उपलब्ध करेंगे। फरीदपुरवासी लोग असंख्य महापुरुषों की कृपा पाकर धन्य हुए हैं।

एकबार श्रीधर ने गोस्वामीजी से प्रार्थना की, "वृन्दावन में यमुनाजी के तट पर मेरा शरीर छुटे।" इसे सुनकर गोस्वामीजी ने कहा – "इस प्रकार की प्रार्थना नहीं करना चाहिए। श्रीधर ने कहा – "क्यों ? श्रीकृष्ण में अनुराग हो, ऐसी प्रार्थना तो की जा सकती है ?" गोस्वामीजी ने कहा– **"ऐसी प्रार्थना मी मत करो, कुछ मी प्रार्थना नही करनी चाहिए, केवल यही कहो" – "हे प्रभु! तुम्हारी मंगलमय इच्छा ही पूर्ण हो!!"**

****

श्रीश्री सरलनाथ गुहठाकुरता

प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी के पुरुषोत्तम धाम पुरी में दानयज्ञ के प्रधान सेवक थे सरलनाथ। सरलनाथ के पिता रामचन्द्र गुहठाकुरता वरिशाल जिला के वानरिपाड़ा गाँव में वास करते थे। दो पुत्र सरलनाथ एवं यदुनाथ को बाल्यकाल में मातृ वियोग हो गया। यदुनाथ ने भी कम उम्र में परलोक गमन किया। सरलनाथ का जन्म बंगला सन् 1275 (सन् 1868 ई०) अनुमान किया जाता है।

सरलनाथ ने गाँव के स्कूल में सामान्य पढ़ाई की थी। वानरीपाड़ा में कम उम्र में उनका विवाह हुआ था। उस समय ब्राह्मधर्म की उपासना एवं प्रार्थना में वे प्रायः योगदान करते थे। वे ब्राह्मधर्म ग्रहण किये थे। इसलिए उनको समाज से निकाल दिया गया। उनके पिता ने उन्हें पुनः समाज में लौटाने की चेष्टा की थी। समाज के लोगों ने सरलनाथ एवं अन्यान्य ब्राह्म युवकों से पूछा – तुम लोगो ने नीच जाति के साथ एकत्र भोजन किया है या नहीं ? जिन ब्राह्म युवकों ने नीच जाति के साथ एकत्र भोजनादि अस्वीकार करके मिथ्या बोला, समाज के परिचालकों ने सब जानते हुए भी उनको ग्रहण किया। किन्तु सरलनाथ कभी मिथ्या नहीं बोलते थे, इसलिए उनको समाज ने ग्रहण नहीं किया। साथ–साथ पिता ने भी उनका परित्याग किया। उस समय वे पोस्ट–आफिस में नौकरी करते थे। गोस्वामी प्रभुजी का नाम उस समय सर्वत्र प्रसिद्ध था। वानरीपाड़ा में सत्यकुमार गुहठाकुरता ने गोस्वामीजी से सर्वप्रथम दीक्षा प्राप्त की थी। उसके बाद सरलनाथ एवं गाँव के अनेक लोगों ने दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा के बाद गोस्वामी प्रभुजी सरलनाथ से बोले, "तुम एक काम ठीक करते हो तो दस भूल करते हो, सरकारी नौकरी करके क्या जेल जाओगे ? नौकरी छोड़ दो।" गुरुजी के निर्देशानुसार सरलनाथ नौकरी छोड़कर उनके साथ रहने लगे। उनका शरीर अत्यंत अस्वस्थ था। वे अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। सांसारिक बुद्धि या स्वार्थी भाव उनका नहीं था। गोस्वामी प्रभुजी की सेवा के लिए वे सदा तत्पर रहते थे। साधारणतः गोस्वामीजी के कमरे की सफाई करना, शौचालय में पानी देना, आश्रम के रास्तादि की सफाई– आदि कार्य वे अत्यंत निष्ठा के साथ करते थे। सरलनाथ देश वापस नहीं गए थे, इसलिए सर्वत्र प्रचार हुआ था कि गोस्वामीजी सरलनाथ को नौकर का काम कराने के लिए रखें हैं। गृहस्थ जीवन में सरलनाथ की एक कन्या थी।

रामचन्द्र गुहठाकुरता अपने गाँव के सर्व साधारण के निकट गोस्वामी प्रभुजी की आलोचना सुनकर कोलकाता आये एवं सरलनाथ से देश लौटने के लिए अनुरोध किया। सरलनाथ को एकबार गाँव में भेजने के लिए उन्होंने गोसाँईजी से प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि सरलनाथ के वापस न जाने से उन लोगों को सर्वत्र गोसाँईजी की निन्दा सुननी पड़ेगी। गोस्वामी प्रभुजी उत्तर दिये, "मेरी निन्दा आप लोगों को सुनना ही पड़ेगा, सहन नहीं हो तो कान में अँगुली रखकर चले जाना। सरलनाथ के द्वारा अब संसार का कार्य नहीं होगा। वह देश जाकर क्या करेगा ?" रामचन्द्र गुहठाकुरता द्वारा सरलनाथ को एकबार देश भेजने के लिए बारम्बार अनुरोध करने पर गोस्वामी प्रभुजी ने सरलनाथ को देश जाने के लिए कहा। सरलनाथ के अनिच्छा व्यक्त करने पर गोस्वामीजी बोले, "तुम्हें एक साल देश में रहना पड़ेगा। आज ही रवाना हो जाओ। एक साल चुपचाप पड़े रहना।" गोस्वामी प्रभुजी की यह बात सुनकर सरलनाथ उसी वक्त अपना कंबल आदि लेकर स्टेशन चले गए। उस समय गाड़ी नहीं थी, सब लोगों के मना करने पर भी सरलनाथ देश जाने के लिए उसी क्षण निकल गए।

वानरीपाड़ा में सरलनाथ अपने घर के खुले बरामदा में एक चटाई बिछाकर रहने लगे। उस समय वानरीपाड़ा के अनेक लोग गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा प्राप्त किये थे। सब लोगों की प्रचेष्टा से गाँव में एक मनोरम आश्रम की स्थापना हुई थी। सरलनाथ कभी आश्रम में या गुरुभाइयों के घर जाकर आहारादि करते थे। गुरुभाई लोग प्रायः उनके साथ सत्संग में समय बिताते थे। सरलनाथ अपनी पत्नी एवं संसार की कोई खबर नहीं रखते थे। सर्वदा बरामदे में रहने के कारण पत्नी भी उनके साथ बात नहीं कर सकती थी। पत्नी ने दो–एक बार बात करने की चेष्टा की, किन्तु जैसे ही सरलनाथ को पता चलता कि पत्नी बात कर रही है, वह उठकर अन्यत्र चले जाते थे। इस प्रकार एक साल बिताकर सरलनाथ कोलकाता में गोस्वामी प्रभुजी के पास लौट गए। गोस्वामी प्रभुजी ने पूछा, "घर में कैसे रहे ?" सरलनाथ बोले, "जैसे रखे थे।" उसके बाद से वे गोस्वामी प्रभुजी के पास रहने लगे।

45 नं० हेरिसन रोड के घर में अवस्थान के समय एकदिन गोसाँईजी ने सरलनाथ को पीने का पानी लाने के लिए कहा। गोसाँईजी के लिए गंगाजल घड़े में रखा जाता था। सरलनाथ ने देखा कि घड़े में पानी नहीं है। वे तुरन्त कलश लेकर हावड़ा की गंगा की ओर चले। किन्तु आश्चर्य की बात है थोड़ी दूर जाते ही सरलनाथ ने देखा कि मोड़ (हेरिसन रोड एवं आमहार्स्ट स्ट्रीट) के पास गंगा देवी आविर्भूत हैं। सरलनाथ घड़ा भर कर गंगाजल ले आये। सरलनाथ कैसे इतने कम समय में गंगाजल ले आये ? जगद्बन्धु बाबू ने गोसाँईजी से पूछा। गोसाँईजी बोले,

"सरलनाथ की भक्ति से गंगादेवी आविर्भूत हुई थीं। वही जल सरलनाथ लाये हैं।" सब लोग सरलनाथ की गुरु भक्ति देखकर विस्मित हो गए।

कोलकाता में गोस्वामी प्रभुजी के पास गुरुभाइयों के साथ एकत्र रहने में सरलनाथ कुछ अशांति बोध कर रहे थे। उस समय गुरुभाई हरिदास बसु के साथ कुछ दिनों के लिए वे बोलपुर आये। यहाँ निर्जन स्थान में साधन–भजन करने के लिए हरिदास बसु ने एक छोटा आश्रम निर्माण किया था। उस आश्रम में साधारणतः गुरुभाई श्यामाकांत पंडित महाशय रहते थे। सरलनाथ एवं पंड़ित महाशय अपने–अपने कमरे में रसोई करके खाते थे। किन्तु सरलनाथ प्रायः दाल–चावल जला देते थे, इसलिए पंड़ित महाशय उनकी सहायता करते थे। बोलपुर का यह आश्रम शहर से प्रायः 2 किलोमीटर की दूरी पर था। पंडित महाशय एवं सरलनाथ प्रायः हरिदास बसु के घर में कीर्तन के समय आते थे। सरलनाथ अच्छा नाम–संकीर्तन करते थे। इसलिए उनके आने से बोलपुर में संकीर्तन बहुत अच्छा होने लगा। नाम–संकीर्तन के समय भाव की प्रबलता से सब लोग अस्थिर हो जाते थे। भाव के आवेश में सरलनाथ के दोनों हाथ पीछे की तरफ जाकर पक्षी के पंख की तरह हो जाते थे। भावावेश में एक प्रकाण्ड पक्षी की तरह वे चलते थे एवं तीव्र विकृत आवाज गले से आती थी। संकीर्तन के समय सरलनाथ की ऐसी अवस्था के सम्बन्ध में पूछने पर गोस्वामी प्रभुजी बोले थे, "सरलनाथ के शरीर में गरूड़ पक्षी का आवेश होता है। इस कारण ऐसा होता है।" सरलनाथ प्रतिदिन मृदंग वाद्य सीखने के लिए आश्रम के निकटवर्ती भुलुक गाँव में जाते थे। रास्ते में एक कुलटा स्त्री सरलनाथ को मुग्ध करने की कई बार चेष्टा की थी, किन्तु सफल नहीं हो सकी। बोलपुर के जन–साधारण सरलनाथ के प्रति अत्यंत श्रद्धा भक्ति रखते थे। उनका तीव्र वैराग्य एवं विशुद्ध चरित्र देखकर सब लोग मुग्ध हो जाते थे।

वृन्दावन में रहते समय एकदिन सुबह गोस्वामी प्रभुजी बोले कि एक कील की आवश्यकता है ? श्रीधर उस समय मच्छरदानी के भीतर बैठकर नाम कर रहे थे। सरलनाथ दौड़कर श्रीधर के मच्छरदानी का कील निकालकर गोसाँईजी को दे दिये। सरलनाथ के श्रीधर के कमरे में आने पर श्रीधर क्रुद्ध होकर बोले, "क्या ठाकुर ने मेरे मच्छरदानी का कील निकालने के लिए कहा था ? इस बात पर दोनों का झगड़ा फिर मारपीट शुरू हुई। नवकुमार बाबू गोस्वामीजी की अनुमति के बिना कुछ दिन मौन थे। उन लोगों का बीच–बचाव करते समय उनकी शिखा उखड़ गई। यह देखकर और एक गुरुभाई दोनों हाथ कमर में रखकर नाचने लगे। नवकुमार बाबू ने गुस्से से उनकी पीठ पर जोर से मारा। कोलाहल सुनकर गोस्वामीजी ने श्रीधर एवं सरलनाथ को बुलाया। प्रभुजी श्रीधर से बोले, "तुम अभी

यहाँ से चले जाओ।" फिर सरलनाथ को डाँटते हुए बोले, "सेवा अभिमान से तुम अकारण ही लोगों को उद्वेग देते हो। मैं आज से तुम्हारी सेवा ग्रहण नहीं करूँगा। तुम्हारे लिए प्रतिदिन पंचकोशी परिक्रमा करना ठीक है।" नवकुमार बाबू के बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा।

नवकुमार बाबू ने सोचा कि श्रीधर के प्रति सुविचार नहीं हुआ। वे घटना का यथावत् विवरण एक कागज में लिखकर गोस्वामी प्रभुजी को देने गए। प्रभुजी बाले कि मुझे कोई साक्ष्य या प्रमाण की जरूरत नहीं है। इससे नवकुंमार बाबू के मन के अभिमान को चोट पहुँची। वे ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप में खाली पांव और एक वस्त्र में, अर्थ–हीन अवस्था में निकल पड़े। उनके परिधान में उस समय गरम वस्त्र था। स्वामी देवप्रसाद उनको लौटाने की चेष्टा करके विफल हुए।

श्रीधर राधाकुंड तक जाकर उसी दिन संध्या के समय लौट आये। प्रभुजी ने उनसे पूछा, "क्यें श्रीधर! तुम लौट आये ?" श्रीधर बोले, "आपने चले जाने के लिए कहा था, चला गया। लौटने के लिए मना तो नहीं किये ?" उनकी बात पर गोसाँईजी हँस दिये।

खबर लेकर पता चला कि नवकुमार आगरा होकर कानपुर चले गए हैं। चार–पाँच दिन बीत गए, सरलनाथ की कोई खबर नहीं मिली। नानी मुक्तकेशी देवी सबसे कहने लगी कि एक–बार सरलनाथ की खबर लो। वह क्या कर रहा है ? क्या खा रहा है ? किन्तु कोई नहीं सुनता था। अंत में उन्होंने गोसाँईजी से कहा। प्रभुजी आश्रमवासी लोगों को बोले, "सरलनाथ को आने बोलो।" काफी ढूँढने के बाद सरलनाथ मिले। चार खूंटी के ऊपर पत्तों की छावनी बनाकर उसके नीचे यमुना के किनारे वे भींगे बालू पर पड़े थे। उन्होंने गुरुभाईयों से कहा, "यदि ठाकुर मेरी सेवा नहीं ग्रहण करेंगे तो इस जीवन–धारण की सार्थकता क्या है ? यमुना में डूब जायेंगे सोचा था किन्तु आत्महत्या महापाप है, इसलिए प्रतिदिन पंचकोशी परिक्रमा करता हूँ और पानी में मिट्टी मिलाकर खाता हूँ। अब प्राणवायु निकलने से सब ठीक हो जाएगा।" गुरुभाइयों ने जब कहा कि ठाकुर ने तुम्हें बुलाया है, उनके शरीर में तुरन्त शक्ति आ गई। दौड़कर सबसे पहले वे कुँज में पहुँच गए। उनको देखकर गोसाँईजी बोले, "सरलनाथ, कमंडलु भरकर पानी ले आओ बड़ी प्यास लगी है।" सरलनाथ ने तुरन्त पानी लाकर गोस्वामीजी को दिया। सरलनाथ का इस प्रकार भाव देखकर सब चकित् हो गए।

बंगला सन् 1304 (सन् 1898 ई०) की फाल्गुन महीने में गोस्वामी प्रभुजी एवं अन्यान्य लोगों के साथ सरलनाथ भी पुरी गए थे। पुरी में उन्होंने गोस्वामीजी के साथ विभिन्न मंदिर आदि के दर्शन किये। वे साधन–भजन में अधिंकांश समय बिताते थे। एकदिन गोस्वामी प्रभुजी श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिए मंदिर में उपस्थित

हुए। जगन्नाथ मंदिर में उन्होंने अनेक रुपए दान किये। विमलामाई के मंदिर दर्शन के बाद अवशिष्ट रुपए दान किये। फिर वे मुक्ति मंडप में बैठे। उनको रूपया दान करते देखकर भिखारियों ने प्रार्थी होकर उनको घेर लिया। गोस्वामी प्रभुजी सरलनाथ से बोले, "सरलनाथ देखो तो कितने रुपए होने से इन लोगों को विदा किया जा सकता है। सरलनाथ ने हिसाब लगाकर कहा पाँच सौ रुपए होने से इन लोगों को विदा किया जा सकेगा।" उस समय गोस्वामी प्रभुजी के साथ अनेक शिक्षित, बुद्धिमान एवं धनी व्यक्ति थे किन्तु किसी से कुछ नहीं कहकर उन्होंने सरलनाथ से कहा सरलनाथ मुझे 500 रुपए ला दो। सरलनाथ 'जो आज्ञा' कहकर रुपए लाने चले गए। सरलनाथ जगन्नाथजी के मंदिर के सिंह दरवाजे से निकलकर सामने एक कपड़े की दुकान में अपरिचित दुकानदार से बोले, "अरे भाई! तुम मुझे 500 रुपए दे सकते हो ? गोस्वामी प्रभुजी ने माँगा है।" दुकानदार ने सरलनाथ की ओर देखा पर कुछ भी नहीं पूछा। गोस्वामी प्रभुजी पहली बार पुरी आये थे इसलिए सब लोग उनको नहीं पहचानते थे फिर भी दुकानदार दीनबन्धु ने संदूक खोलकर सरलनाथ को 500 रुपए दे दिये। सरलनाथ ने रुपए लाकर गोस्वामी प्रभुजी के हाथ में दिये। गोस्वामीजी भी रुपए कहाँ से और कैसे मिले कुछ भी नहीं पूछे। उन्होंने प्रार्थीगण को प्रार्थनानुसार रुपए दे दिये।

उसके बाद गोसाँईजी ने पुरीधाम में रुपए, कपड़ा, कंबल आदि हजार–हजार रुपए दान में दिये थे, वह सब सरलनाथ ने संग्रह किया था। वे विभिन्न दुकानों से रुपया, वस्त्रादि संग्रह करके गुरुजी के हाथ में देते थे। जो लोग रास्ते में बेचते हैं, वे भी सरलनाथ को अनेक रूपया उधार दिये थे। कपड़ा समाप्त हो जाने से दुकानदार अन्य स्थान से कपड़ा लाकर सरलनाथ को देते थे। उस समय एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने विशेष दान करना निश्चित किया। 'एमार मठ' दान का स्थान स्थिर किया गया। उत्तम महाप्रसाद, कपड़ा, कंबल एवं लोटा वितरण के लिए संग्रह करना शुरू किया गया। किन्तु किसी दुकानदार को नकद नहीं दिया गया। सब उधार में लाया गया, दीनबन्धु कपड़ा वाला कपड़ा, कंबल आदि कटक से लाकर सरलनाथ को देने लगे। लोटा वितरण हेतु संग्रह करने के लिए अन्य शिष्यों ने चेष्टा की किन्तु दुकानदारों ने लोटा नहीं दिया। अंत में पुरी के मजिस्ट्रेट जगतचन्द्र राय एवं मुन्सिफ किशोरी मोहन सेन की जमानत पर लोटा मिला। पुरी में गोसाँईजी को सब लोग जटिया बाबा कहते थे।

गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था कि एक महीने में यह ऋण परिशोध किया जाएगा। प्रभुजी के पास प्रतिदिन मनीआर्डर से रुपया आने लगा। पोस्ट–आफिस में जटियाबाबा के नाम पर रूपया लेन–देन के लिए अलग विभाग खोलना पड़ा। गोस्वामी प्रभुजी ने भक्त सरलनाथ को ही ऋण परिशोध का भार दिया। सरलनाथ

ने किसके पास से कितने रुपए उधार लिये थे उसका कोई हिसाब नहीं रखा था। सरलनाथ प्रत्येक दुकानदार के पास जाकर पूछते थे कि भाई कितना रूपया देना है। जिसने जितना माँगा सरलनाथ ने दे दिया। इस प्रकार सरलनाथ ने सब दुकानदारों के ऋण का परिशोध किया। लोटा के लिए हाकिम शिष्यगण उत्तरदायी हुए थे। लोटेवालों को रूपया पाने के लिए कई बार हाकिमों के पास दौड़ना पड़ा था। हाकिमगण ने हिसाब देखकर पैसा दिया था। इस प्रसंग में दीनबंधु कपड़े वाले ने कहा था – "मैने क्यों सरलनाथ को 500 रुपए दिया था, कह नहीं सकता। मेरे मन में अपने–आप एक प्रेरणा जागी और सरलनाथ के रूपया माँगते ही दे दिया।" इस विषय में गुरुजी के प्रति सरलनाथ का दृढ़ विश्वास प्रकाशित होता है। गुरुजी ज्योंहि बोले कि सरलनाथ रुपया ले आओ, सरलनाथ रुपया कहाँ से लायेंगे ? कुछ भी नहीं सोचे एवं रूपया लाने चले गए। गुरुजी के ऊपर सरल विश्वास एवं पूर्ण निर्भरता के बिना कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता है। गोसाँईजी ने सरलनाथ के संबंध में कहा था, "श्रीरामचन्द्र के अश्वमेघ–यज्ञ के घोड़े की तरह सरलनाथ मेरे दान–यज्ञ का घोड़ा है।" थोड़े दिनों में ऋण परिशोध हो गया। गोस्वामी प्रभुजी ने ऋण परिशोध का संवाद सुनकर सरलनाथ को पुनः सब दुकानदारों से पूछने के लिये भेजा। सरलनाथ सब दुकानों से पूछकर उनको संवाद देने के बाद प्रभुजी निश्चिन्त हुए।

गोसाँईजी को किसी ने विष दिया है, यह जानकर सरलनाथ के मन में बहुत चोट पहुँची। इस घटना के बाद वे दिन–रात लाठी लेकर दरवाजे पर पहरा देते थे। गोसाँईजी के देहांत के बाद सरलनाथ गुरु विरह से बार–बार मूर्च्छा में जाने लगे। धन्य सरलनाथ। धन्य गुरुजी के प्रति तुम्हारा आकर्षण!

इस दान यज्ञ से गोस्वामीजी की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर ईर्श्यावश पन्डों ने उन्हें महाप्रसाद में विष मिलाकर दे दिया था। बंगला सन् 1306 के 22वें ज्येष्ठ (सन् 1899 ई०) को गोस्वामी प्रभुजी का देहावसान होने पर उनके देह को पुरी में नरेन्द्र सरोवर के उत्तर दिशा में समाधिस्थ किया गया। उस समय से समाधि की सेवा पूजा चलने लगी। गोस्वामी प्रभुजी के पुत्र श्री योगजीवन गोस्वामी समाधि आश्रम के प्रथम संचालक रहे। समाधि आश्रम में उस समय कई साधकों के साथ सरलनाथ भी रहते थे। एकबार श्री योगजीवन गोस्वामी को अर्थ की जरूरत थी। उन्होंने सरलनाथ को कहा कि पुरी के दुकानदार तुम्हारे परिचित हैं एवं तुमपर विश्वास करते हैं, तुम उनसे कुछ रुपए उधार ले आओ। सरलनाथ बोले– "मैं उधार नहीं माँग सकूँगा। जब गोस्वामी प्रभु मुझे रुपए उधार करने बोलते तब मेरे मन में कोई संशय नहीं होता था, उस समय ऐसा लगता था कि मैं जहाँ भी जाऊँ रूपया मिलेगा। अब मेरे मन में विभिन्न संशय उपस्थित हो रहे हैं। ऐसा लग रहा

है कि मैं विदेशी हूँ – मेरी नौकरी या विषय संपत्ति कुछ भी नहीं है, मैं कैसे उधार मागूँ ? और लोग भी मुझे क्यों उधार देंगे? इस प्रकार विभिन्न संशय उपस्थित हो रहे हैं। रूपया उधार करना मेरा काम नहीं है, मैं उधार नहीं कर सकूँगा।" सरलनाथ की बातों से यह प्रमाणित होता है कि वे गोस्वामी प्रभुजी के ऊपर एकांत निर्भरशील थे। इस कारण उन्हें विशेष शक्ति देकर परिचालित किया था।

पुरी में कुछ दिन अवस्थान के बाद सरलनाथ बोलपुर में कुछ दिन रहे। उस समय गुरुभाई हरिदास बसु ने उनसे कहा, "भाई तुम्हारा अपना कोई नहीं है। तुम जीवन के अवशिष्ट दिन यहीं बिताओ। दोनों भाई एक साथ साधन–भजन में दिन बितायेंगे।" सरलनाथ एक स्थान में अधिक दिन नहीं रह सकते थे। इसलिए गुरुभाई की बात से कुछ दिन बोलपुर में रहकर फिर अन्यत्र चले गए। वे कभी–कभी पुरी समाधि आश्रम में भी वास करते थे।

वे समाधि क्षेत्र की एक छोटी कटीर में अकेले रहते थे। बैठकर 'नाम' नहीं कर सकते थे, इसलिए लेटे हुए सर्वदा 'नाम' करते थे। एकबार पुरी में हरिदास बसु से सरलनाथ बोले – "मैं यहाँ नहीं रह सकूँगा। मेरे भीतर सुधाक्षरण होती है, इससे अत्यंत नशा होता है। मैं बिस्तर से नहीं उठ सकता, इससे आश्रम के लोग क्रुद्ध होते हैं। भोजन का समय होने पर ये लोग मुझे बार–बार बुलाकर मेरी अवस्था नष्ट कर देते हैं। आश्रम के लोग कहते हैं कि दिन–रात केवल सोते रहोगे! आहार के समय रोज बुलाना पड़ता है। हरिदास बसु ने पूछा कि सुधाक्षरण के समय तुम्हारी अवस्था कैसी होती है ? सरलनाथ बोले, "उस समय अत्यंत नशा होता है। 'नाम' चलता रहता है। मैं बिस्तर से नहीं उठ सकता, बाह्यज्ञान प्रायः नहीं रहता। मैं लेटा रहता हूँ, ऐसा लगता है कि मेरे ऊपर धीमी–धीमी बारिश हो रही है। मेरा शरीर शीतल हो जाता है। यह सुधाक्षरण रोज नहीं होता। इसका कोई निर्दिष्ट समय भी नहीं है। इसका स्वाद कभी तीखा, कभी लवणाक्त, तो कभी मीठा लगता है।"

सरलनाथ की बात सुनकर हरिदास बसु आश्रमवासियों से बोले कि आहार के लिए सरलनाथ को बुलाने की जरूरत नहीं है। वे लोग उनका आहार रख देंगे। सरलनाथ जब चाहेंगे तब आकर खा लेंगे। यही व्यवस्था हुई। अन्य एकदिन सरलनाथ हरिदास बसु से बोले, "भैया मैं एक दृश्य प्रायः देखता हूँ। गुरुदत्त नाम मेरे सामने प्रकाशित होता है, बड़े–बड़े अक्षरों में नाम मानों बिजली द्वारा लिखा गया है। कुछ देर बाद वह नाम प्रणव में परिणत होता है। फिर वह प्रणव गुरु रूप में परिणत होता है। बार–बार ऐसा होता रहता है। भाई ऐसा क्यों होता है ?" उनकी बात सुनकर हरिदास बसु बोले "नाम–नामी और नामदाता एक ही तत्व है– गुरुजी कृपापूर्वक तुम्हें वही दिखा रहे हैं। तुम अति भाग्यवान हो।" सरलनाथ

के बारे में गुरुभाई हरिदास बसु की उक्ति अति सत्य है। साधना में उच्चावस्था प्राप्त करने पर इस प्रकार सुधाक्षरण एवं इष्ट दर्शन होता है। सरलनाथ इस प्रकार भाव में तन्मय होकर सुधारस में डूबे रहते थे।

सरलनाथ एक स्थान में अधिक दिन नहीं रह सकते थे। वे 7–8 साल कोलकाता में थे। उस समय प्रायः वे गुरुभाई श्री हेमेन्द्र मित्र के बागानबाड़ी में (मनोहर पुकुर रोड) आते थे एवं कीर्तन और सत्संग में दिन बिताते थे। उसके बाद उन्होंने ढाका गेण्डारिया जाकर जीवन के अंतिम कई साल बिताये। गेण्डारिया में वे गुरुभाई राधारमण गुह महाशय एवं उनके जामाता राजेन्द्र बल महाशय के घर में दीर्घकाल रहे। उस समय वे किसी के साथ विशेष साक्षात्कार या बातचीत नहीं करते थे। कोई पत्र आने से बिना पढ़े फाड़कर फेंक देते थे। सर्वदा 'नाम' में मग्न होकर रहते थे। वे अपना मुखमण्डल वस्त्रावृत रखते थे। दीर्घकाल इस प्रकार बिताकर सरलनाथ ने प्रायः 60 साल की उम्र में अपने चिर आराध्य स्थान गेण्डारिया में देह त्याग दिया।

****

श्री अश्विनीकुमार सामन्त

अश्विनीकुमार सामन्त गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य थे। उनके कुछ लेख मंदिर पत्रिका के प्रथम वर्ष, 8 वी संख्या में प्रकाशित हुए थे। उस लेख के साथ उनके कुछ सपनों के बारे में यहाँ उल्लेख किया गया है।

अश्विनीकुमार सामन्त ने वर्धमान जिले के बोकड़ा गाँव में जन्म लिया था। एक समय गोसाँईजी ने कहा था कि देवेन्द्र सामन्त के परिवार से जो आयेगा, उसको दीक्षा मिलेगी। कोई अनुमतिं की जरूरत नहीं है। उस समय वर्धमान जिले के अनेक लोगों ने गोसाँईजी से दीक्षा प्राप्त की थी। अश्विनीकुमार ने भी उस समय दीक्षा प्राप्त की थी। गोसाँईजी ने उनको गिरिधारीजी की पूजा करने का आदेश दिया था। तदनुसार वे गिरिधारीजी की पूजा करते थे। उस समय से गुरुभाईयों में गिरिधारी अश्विनीकुमार नाम से वे परिचित हुए।

कार्तिक महीने में देहरादून में बहुमूत्र रोग से वे परलोक गमन किये। उनके पुत्र निताई चांद ने पिता की मृत देह का अंतिमसंस्कार हरिद्वार में गंगा किनारे किया। श्राद्धादि भी हरिद्वार में किया गया।

श्री नगेन्द्र सामन्त ने कहा था कि श्रीयुत सारदाकांत बंद्योपाध्याय जब पुरी आश्रम के सेवायत् थे, उन्होंने अश्विनीकुमार से अपने जीवन की कुछ घटनाओं को लिखने के लिए अनुरोध किया। अश्विनीकुमार ने सारदाकांत को जो कुछ लिखकर दिया था वही नीचे दिया गया है। मैंने सारदाकांत से यह संग्रह किया। देहत्याग के समय उनकी उम्र लगभग 73 साल थी। श्री अश्विनीकुमार द्वारा लिखित विवरण–

मैं 16–17 साल की उम्र में कोलकाता में पढ़ता था। उस समय श्रीश्री गुरुजी का प्रथम दर्शन किया। दर्शन के साथ मेरा चित्त उनके प्रति आकृष्ट हुआ। उस समय उन्हें गुरुरूप में मैंने आत्मसमर्पण किया। बंगला सन् 1301 (सन् 1894 ई०) के तीन बैशाख को नवद्वीप से लौटकर जब गुरुजी कोलकाता सुकिया स्ट्रीट में राखालदास राय चौधरी महाशय के घर में थे, उस समय उनकी कृपा प्राप्त किया। श्रीश्री गुरुजी ने कृपापूर्वक मुझे एक ऐसी आनन्दमय अवस्था में रखा था कि मैं भाषा में वर्णन नहीं कर सकता। उस समय अपने–आप बिना चेष्टा से गुरुदत्त 'नाम' चलता था एवं मैं अत्यंत आनन्द में रहता था। मुझे ऐसा लगता था कि

भगवान प्राप्त करना बहुत आसान है। पढ़ाई करना मेरे लिए संभव नहीं हुआ क्योंकि किसी भी विषय में मनः संयोग करने से अपने–आप 'नाम' चलता था। साधन करते समय अपने–आप प्राणायाम तेज गति से शुरू हो जाता था। एकबार रात में मैं साधन कर रहा था। नाम करते–करते ऐसा आनन्द अनुभव किया जिसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। मैंने सोचा यह आनन्द कहाँ से आ रहा है ? और कौन आस्वादन कर रहा है ? किसी पार्थिव आनन्द के साथ इसकी तुलना नहीं की जा सकती। ऐसी आनन्दमय अवस्था रहने से कोई पार्थिव आनन्द आकर्षित नहीं कर सकता। स्त्री संसर्गादि सुख तुच्छ एवं नश्वर बोध होता था। इस प्रकार तीव्र सुखानुभूति जीवन में कभी नहीं मिली। यह गुरुजी की विशेष कृपा से ही संभव हुआ था। साधन मिलने के 5–6 महीने तक ऐसी आनन्दमय अवस्था में रहा था। मुझे लगता था पृथ्वी के सब लोगों को गोस्वामी महाशय के पास ले जाऊँ। सब लोग क्यों गोस्वामी महाशय के निकट दीक्षा नहीं ले रहे हैं ? इसके लिए बड़ा कष्ट अनुभव करता था। उस समय देवेन्द्रनाथ सामन्त द्वारा (संपर्क में मेरा भतीजा) मेरी साधना की अवस्था के बारे में श्री गुरुजी से पूछने पर उन्होंने कहा, "यह अति आदर की अवस्था है, आदर नहीं करने से नहीं रहेगी। माता–पिता की प्रसन्नता के ऊपर यह अवस्था निर्भर है।" उस समय गुरुजी से एकदिन पूछा, "शौच या पेशाब के समय नाम कर सकते हैं या नहीं ?" उत्तर में उन्होंने कहा कि यह नाम सर्वदा किया जा सकता है।

मेरी यह अवस्था अधिक दिन नहीं रही किन्तु नाम सहज रूप में चलता था एवं मैं शांति प्राप्त करता था। एकबार मैं गुरुजी से बोला कि मुझे सर्वदा नाम करने की इच्छा होती है। उन्होंने कहा, "तुम्हारे माता–पिता से कहो कि गाँव के बाहर में एक कुटिया बना दें। कुटिया बनने के बाद यहाँ आना, जो करना है मैं कह दूँगा।" किन्तु भय से मैं माता–पिता को यह बात बोल नहीं सका। और एकबार मैंने उनसे कहा था कि मुझे अन्यत्र जाकर साधन–भजन करने की इच्छा होती है। उत्तर में उन्होंने कहा, "अभी एक घर है बाद में पाँच हो सकते हैं।" उसके बाद मैं इस बारे में और कुछ पूछ नहीं सका।

उसके बाद मैं केम्बेल मेडिकल स्कूल में भर्ती हुआ। यहाँ मृत देह को काटना पड़ता था, इस कारण वैराग्यवश पढ़ने में अनिच्छा व्यक्त करने पर गोसाँईजी ने कहा कि तब अन्य कार्य करो। मैं पढ़ाई छोड़कर सांसारिक कार्य करने लगा। तालुकदारी एवं तिजारती हमारा पैतृक कारोबार था। मैंने उनसे कहा कि यह कार्य मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। उन्होंने कहा, "अभी अभिभावक लोग हैं, अभी कार्य करो, नहीं तो भविष्य में सूद के साथ वसूल होगा।" उन्होंने और कहा था कि प्रजा लोगों को ऊपरी तौर पर क्रोध दिखाओगे, किन्तु मन में उनके प्रति असंतुष्ट नहीं

होना। मैं पढ़ाई छोड़कर विषय कर्म करने लगा। नाम करना मुझे अच्छा लगता था। श्रीश्री चैतन्य–चरितामृत आदि ग्रंथ दीक्षा प्राप्ति के पहले अच्छे नहीं लगते थे, किन्तु दीक्षा पाने के बाद अत्यंत मधुर लगता थे।

जब गुरुजी पुरीधाम नीलमणि बर्मन के घर में थे, उनकी कृपा से मैं वहाँ गया था। उस समय एकदिन मैंने उनसे कहा कि पहले नाम करना अच्छा लगता था और मैं बहुत देर तक नाम करता था, अब उस प्रकार अच्छा नहीं लगता है तथा मैं अधिक समय तक नाम नहीं कर सकता। उन्होंने कहा, "एक–दो बार नाम करने से ही होगा।" पुनः मुझे पूर्वावस्था कैसे मिल सकती है ? यह पूछने पर उन्होंने कहा, "गोपाल की नहीं तो गिरिधारी की पूजा करना होगा। गोपाल यहाँ मिलेगा, गोपाल की पूजा करने से अभिषेक करना पड़ेगा। गिरिधारी–शिला श्रीवृन्दावन में मिलती है। वह अभिषिक्त रहती है। उसे अभिषेक करने की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान करके जल और तुलसी देकर जो नाम मिला है, उसी नाम द्वारा पूजा करना एवं कुछ मिष्ठान्न भोग देना, और कोई विधि–निषेध नहीं है।" इस सम्बन्ध में माता–पिता के भय से मैंने अनेक दिन गिरिधारी पूजा करने का साहस नहीं किया एवं पूजा नहीं कर सका– गुरुजी से पूछा। उन्होंने कहा कि जब पूजा करने के लिए कहा है तो पूजा करना ही होगा। मातापिता कुछ नहीं कहेंगे। पुरी धाम में उनके साथ मेरा अंतिम साक्षात्कार हुआ और यह बात हुई। उसके बाद बंगला 1306 (सन् 1899 ई०) की ज्येष्ठ महीने में उनके देहत्याग के बाद माघ महीने में मैं श्रीवृन्दावन गया। वहाँ श्रीश्री गोर्वद्धन पर्वत में मुझे स्वप्न दृष्ट शिला प्राप्ति हुई एवं मैं उनकी उस समय से पूजा कर रहा हूँ।

श्रीश्री गुरुजी के कृपा से पुरीधाम में एक दो अपूर्व घटना हुई थी, उसका वर्णन कर रहा हूँ।

मैं और श्रीपतिचरण जब पुरी में गोसाँईजी के पास पहुँचे, उन्होंने उसी समय नरेन्द्र सरोवर में स्नान एवं श्रीश्री जगन्नाथदेव का दर्शन कराने के लिए श्री युक्त सारदाबाबू को आदेश दिया। सारदाबाबू ने तदनुसार हमें स्नान एव दर्शन कराया। जगन्नाथ दर्शन करके घर में विश्राम कर रहा था। उस समय स्वप्न में देखा, "नीला आकाश विभिन्न देव–देवी से पूर्ण एवं गतिशील है।"

एकदिन सौभाग्य से श्रीश्री गुरुजी के साथ श्री मंदिर दर्शन करने गया था। उनके साथ जगन्नाथदेव दर्शन कर रहा था, देखा कि सिंहासन में जगन्नाथदेव का विग्रह नहीं है वहाँ एक श्यामवर्ण विशाल पुरुष बैठे हैं। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। गोसाँईजी घर में आकर बोले, "आज देखा! एक विशाल पुरुष सिंहासन पर बैठे हैं।"

एकदिन उनके साथ समुद्र स्नान के लिए गया, स्नान के बाद जब उनका अंग पोंछा जा रहा था, उनके श्रीअंग से एक अपूर्व सुगंध मिली थी।

मेरे बारे में कुछ निर्देश –

1– एकदिन सीताराम घोष स्ट्रीट के घर में उनके पास बैठकर अपने उद्धार के लिए मन में प्रार्थना कर रहा था। अचानक उन्होंने कहा, "भूख लगी है तो क्या दोनों हाथों से खाओगे ?"

2– अन्य एकदिन उसी घर में प्रभुजी ध्यानस्थ बैठे हैं। मैं थोड़ी दूर में बैठकर वे किस प्रकार आसन में बैठते हैं अर्थात कौन पांव के ऊपर कौन पांव है देख रहा था। उन्होंने अचानक मेरी ओर देखकर कहा, "कैसे हँसिया पकड़ना है वह ठीक करते–करते समय बीत गया। फसल नहीं काट सका।"

3– उसी घर में एकदिन अपने–आप बोले, "पूर्व जन्म की कर्मरूप कूड़ाराशि के नीचे आग लगाई गई है अभी धुंआ निकल रहा है, फिर एकबार जोर से जलकर सब समाप्त हो जाएगा।

4– और एकदिन बोले, "ऐसी अवस्था होगी तब सोचोगे कि मैंने ऐसा तो कुछ नहीं किया। जिससे ऐसा हुआ ?" अर्थात जब आध्यात्मिक अवस्था खुल जाएगी तब इस प्रकार विचार आएगा।

5– एकदिन बोले, "एक जंगल को जलाने के लिए जिस प्रकार विभिन्न स्थानों में आग लगानी पड़ती है, वैसा ही किया गया है।

6– सीताराम घोष स्ट्रीट के घर में मैं उनके सामने जमीन पर बैठकर 'नाम' कर रहा था, अचानक उन्होंने कहा, "आसन में बैठकर 'नाम' करना चाहिए।"

7– एकदिन अपने–आप उन्होंने मुझसे कहा कि 11 बजे भोजन करना, घर में ही रहना, भगवान की कृपा क्या समझोगे।

कुछ घटनायें –

1– एकदिन पुरीधाम के नीलमणि बर्मन के घर में रहते समय श्रीमंदिर की ओर जाते समय बोले, "अब मार–पीट के दिन आ रहे हैं। जो धर्म पथ पर रहेंगे, उनको कष्ट होगा। इस देश के लोग जितना आंदोलन करेंगे, कानून उतना कठोर होगा। हिन्दू–मुसलमान में कभी एकता नहीं होगी। हमलोग जिनको माता कहकर पूजा करते हैं, वे लोग उनको काट कर खाते हैं।

2– कोलकाता के सीताराम घोष स्ट्रीट के घर में एकदिन एक स्त्री (उनकी परिचित) उनका साक्षात् करने आई। उस समय केवल मैं वहाँ उपस्थित था।

उन्होंने मुझे बाहर जाने के लिए बोलते हुए कहा, "एक मुक्त पुरुष और लंपट, ये दोनों महिलाओं की ओर देख सकते हैं। मुमुक्षु का वह अधिकार नहीं है।"

3– एक समय उनके पास सुना था कि वे एकबार नाव के साथ पद्मा नदी में डूब गए थे। उस समय वे नदी के नीचे तल में पहुँच गए थे। पद्मा की मिट्टी स्पर्श होने से उन्होंने सोचा कि वे जीवित हैं। मर जाने से स्पर्श ज्ञान नहीं रहता। उस समय उन्होंने भविष्य जीवन का जो चित्र देखा था, अभी वही हो रहा है।

4– सीतराम घोष स्ट्रीट के घर में एकदिन दोपहर 3–4 बजे कोट, पैंट, एवं जूता पहनकर एक वृद्ध व्यक्ति को गोस्वामी प्रभुजी के कमरे में आते देखा। पता करने पर बाद में मालूम चला कि उनका नाम श्रीयुत् पार्वतीचरण राय (रिटायर्ड डेपुटि) एवं गोस्वामी प्रभुजी के पूर्व परिचित ब्राह्मबंधु हैं। अब मेम से विवाह करके विदेशवासी हो गए हैं। अन्यान्य बातों के बाद उन्होंने कहा कि विदेश में रहते समय कोई महापुरुष ने उनको सपने में एक मंत्र प्रदान किया था। वह मंत्र प्रतिदिन रात में वे शयन करने के पूर्व जप करते थे। एकबार रात में मेम के बिस्तर पर आने के पहले वे मंत्र जाप कर रहे थे। अचानक देखा कि पूरा घर पीतवर्ण रोशनी से आलोकित हो गया। फिर एक देवी मूर्ति प्रकाशित हुई। देवी एवं उनके बीच एक सूक्ष्म परदा–सा था। उन्होंने भय से आँखें बंद कर ली एवं फिर देखा कि देवी नहीं है किन्तु घर पीतवर्ण रोशनी से पूर्ण है। उसके बाद उन्होंने गोस्वामी महाशय से पूछा, "वह देवी कौन थी ?" गोसाँईजी बोले यहाँ दश महाविद्या की तस्वीर लगी है, उनमें से कोई है कि नहीं देखिये। उन्होंने देखकर कहा कि वह देवी भुवनेश्वरी थीं। उसके बाद उन्होनें गोस्वामी प्रभुजी से कहा कि विदेश में उन्होंने तीन महापुरुषों को सपने में देखा था। उनमें से एक महात्मा ने कहा, "गो बैक टू इंडिया" "मेरा दृढ़ विश्वास है कि उन तीन महापुरुषों में एक आप थे। आप बोलिये कि यह सत्य है या नहीं ?" गोस्वामी महाशय के स्वीकार करने के पश्चात् पार्वती बाबू ने कहा, "उस प्रत्यादेश के अनुसार मैं मेम को विदेश में छोड़कर भारत में आपके पास आया हूँ। सुना है, आपने भगवान को प्राप्त किया है ? क्या आप उनको दिखा सकते हैं ?" गोसाँईजी ने उत्तर दिया, "किसी धनी व्यक्ति का द्वारपाल यदि अपने मालिक को अपने घर ले जाने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना करे तो उस मालिक को द्वारपाल के घर में जाना जिस प्रकार असंभव नहीं है, उसी प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान आ सकते हैं किन्तु आप विश्वास नहीं करेंगे, कहेंगे गोसाँई ने जादू दिखाया है।" फिर गोसाँईजी बोले कि जब वे ब्राह्म थे, एकदिन रात में अकेले कमरे में ध्यान कर रहे थे। ऐसा लगा कि कोई दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। उन्होंने द्वार खोलकर देखा कि श्रीमन् महाप्रभु एवं उनके पार्षदगण खड़े हैं। उन लोगों का दर्शन करके उनका बाह्यज्ञान लुप्त हुआ। श्रीचैतन्य महाप्रभु को

दिखाते हुए श्रीअद्वैतप्रभु ने उन्हें स्नान करने के लिए कहा। स्नान करके आने के बाद श्रीश्री महाप्रभु ने उनको दीक्षा प्रदान की। उसके बाद वे अन्तर्हित हो गए। ज्ञान होने पर मुझे आश्चर्य हुआ एवं घटना पर सन्देह हुआ किन्तु मेरा भींगा मस्तक एवं भीगा कपड़ा देखकर संशय दूर हुआ। मैं ऐसा नास्तिक था कि महाप्रभु को भगवान रूप में नहीं पहचाना। अब समझ रहा हूँ कि वे पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं। पार्वती बाबू गोसाँईजी से निकट दीक्षा हेतु प्रार्थना की। गोसाँईजी बोले, "यहाँ आपको दीक्षा प्राप्ति नहीं होगी।" पार्वती बाबू गोसाँईजी के गुरुजी के पास दीक्षा प्राप्ति के लिए अनुरोध करने लगे। गोसाँईजी बोले, "वहाँ भी आपको दीक्षा नहीं मिलेगी। आप हरिद्वार जाकर सुबह–शाम गंगा किनारे भ्रमण करें। आपके गुरुजी स्वयं आपको बुलाकर दीक्षा प्रदान करेंगे।" पार्वती बाबू के अष्टसिद्धि की बात बोलने से उन्होंने कहा, "मेरे गुरुजी वह सब सिद्धि मुझे दिखाए हैं। वह सब कुछ नहीं है, पंचभूत का कार्य मात्र है। जिस प्रकार कंपन से जल विस्तृत होता है उसी प्रकार। उससे मुग्ध नहीं होना चाहिए। शांति एवं संतोष लाभ की चेष्टा करें। वह भगवान के सिवाय और कहीं नहीं मिलेगा। यह उनका अपना है।" उल्लेखनीय है कि गोसाँईजी के निर्देश मानकर पार्वती बाबू हरिद्वार गए थे एवं वहाँ गंगाजी के किनारे स्वामी भोलानन्द गिरीजी से उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने विदेश में स्वप्न में जिन तीन महात्माओं को देखा था उनमें भोलानन्द गिरिजी भी थे। यथा समय उनसे दीक्षा प्राप्त कर पार्वती बाबू धन्य हो गए।

हुगली जिले के मलयपुर निवासी गुरुभाई जगबन्धु सामन्त से सुना था कि गोसाँईजी जब सीताराम घोष स्ट्रीट के घर में थे, उस समय एकदिन प्रभुजी शौच से आते समय थक गए एवं बरामदे में बैठकर बोले, "भगवान की नित्यलीला किस प्रकार है जानते हो, किसी लोक में आज रामचन्द्र रावण वध कर रहे हैं, तो किसी लोक में नृसिंह रूप में हिरण्यकशिपु का वध कर रहे हैं। किसी अन्य लोक में भगवान रामलीला कर रहे हैं। हमलोग जिस प्रकार नाटक देखने जाते हैं, उसी प्रकार देवतागण और ऋषिगण बोलते हैं कि चलो आज उस लोक में भगवान रासलीला कर रहें हैं, देखकर आते हैं। यदि कहो कि आपको कैसे पता चला ? मैं कहता हूँ मेरे जैसा अंहकार त्याग करो तुम लोग भी मेरे जैसा कहोगे।"

श्री गुरुवे नमः

मैंने उनकी कृपा से कई आश्चर्यजनक सपने देखे थे। वह लिख रहा हूँ –

(1) साधन प्राप्ति के कुछ दिन बाद मैं ससुराल गया था। वहाँ रात में पत्नी के साथ शयन किया था, सपना देखा कि श्रीश्री गुरुजी मुझे घोड़े की चाबुक से

जोर–जोर से मार रहे हैं। उस चाबुक से आग की चिनगारी निकल रही थी। उस समय मुझे ऐसा लगा कि उनकी शक्ति का अपमान किया इसलिए मार रहे हैं। मैं अचेत हो गया।

(2) एक समय में किसी कार्य के लिए रानीगंज शहर में था। वहाँ एकबार दिन में सपना देखा एक अपूर्व मुकुट शोभित प्रशांत काली मूर्ति का मस्तक आकाश मण्डल आच्छादन करके प्रकाशित है।

(3) एकबार रात में सपने में एक अपूर्व लोक दर्शन किया। वहाँ की जमीन में मिट्टी नहीं विद्युत की तरह उज्ज्वल कोई पदार्थ था। किन्तु उससे आँखों में चकाचौंध नहीं होता। वहाँ पाँच वर्ष के छोटे–छोटे बालकों को उज्ज्वल वेश में खेलने के लिये तैयार होते देखा।

(4) एकदिन सपना देखा, श्रीश्री गुरुजी ने मुझे सामने बैठाकर हवन की भस्म द्वारा मेरे लालट पर तिलक बनाया फिर प्रणव लिखकर कहा, यह देव मंदिर है। फिर एक रक्त पुष्प लेकर मेरे मस्तक पर लगाया। ॐ जैसा तिलक बनाया था।

(5) मैं जब श्रीश्री गिरीधारी की पूजा करता था, एकबार रात में सपना देखा कि किसी पूजा के स्थान में अनेक बलिदान हुआ है। उनके खून से वह स्थान भीषण रक्तवर्ण हो गया है। यह देखकर मैं रोते–रोते शांतिपुर की ओर जाने लगा। शांतिपुर जाकर आनन्दकिशोर गोस्वामी के पुत्र का घर कहाँ है पूछा। वहाँ के लोगों ने मुझे पूज्य पाद श्रीश्री गुरुजी का घर दिखाया, मैं पागल की तरह रोते–रोते उनके पास गया। वे खड़े थे। मैंने उनके नाभि में हाथ लगाया। उस समय देखा अनेक गुरुभाई उनके पास खड़े हैं। प्रभुजी उन लोगों से बोले "यह बैकुण्ठ से ब्रजप्रेम प्राप्त करने के लिए आया है। इसलिए मैंने उसको गिरिधारी शिला पूजा करने कहा है।" आश्चर्य की बात है उस समय मैं जानता नहीं था कि गुरुजी आनन्दकिशोर गोस्वामी महाशय के पुत्र हैं एवं ब्रजप्रेम शब्द का अर्थ भी नहीं जानता था। उस समय उम्र बहुत कम थी।

(6) श्रीश्री गिरिधारी पूजा के बर्तन एवं पूजा गृह मेरी एक चाची की लड़की साफ करती थी। उसकी उम्र 13–14 साल थी। वह एकबार, दिन के समय बर्तन साफ करके पूजा घर में रखकर प्रणाम कर रही थी। उस समय उसने अचानक भावमग्न होकर देखा कि श्रीश्री गुरुजी अनेक लोगों के साथ संकीर्तन में नृत्य कर रहे हैं। उसके बाद उन्होंने उसे बैठने के लिये कहा एवं उसको दीक्षा प्रदान की। दीक्षा का मंत्र उस समय गुरुजी जो मंत्र अधिक देते थे वही मंत्र था। छोटी बलिका ने वह मंत्र संस्कृत में कैसे प्राप्त किया, यह आश्चर्य लगा।

(7) मैंने एकबार सपने में एक गौरवर्ण महापुरुष को देखा। मैंने उनसे

रोते–रोते कहा, "मैं बड़ा पापी हूँ, मुझ पर कृपा करिये।" उन्होंने कहा, "तुम पापी कैसे ? तुम्हारी पाप करने की क्षमता नहीं है। तुम्हारे गुरुजी तुम्हारे आगे–आगे गमन करते हैं।"

(8) एकबार एक महापुरुष बोले, "श्री भगवान की कौमोदकी गदा तुम्हारी सर्वदा रक्षा करती है, तुम क्यों डरते हो ?" आश्चर्य की बात है, उस समय मैं कौमोदकी गदा भगवान की गदा है यह नहीं जानता था।

(9) बंगला सन् 1341 (सन् 1934 ई०) की जन्माष्टमी के समय रात में शाहजहांपुर में एक अपूर्व सपना देखा था। पुरीधाम की समाधि की तरह विस्तृत समतल समाधि के ऊपर एक विशाल पुरुष शयन किये हुए हैं। उनको देखकर मैं और मेरा एक कुटुम्बी उनके पास जाने लगे। किन्तु उन्होंने हाथ से इशारा करके जाने से मना किया। कुछ देर बाद कुटुम्बी के अन्यत्र चले जाने पर उन्होंने हाथ से इशारा करके मुझे बुलाया। मैं उनके पास गया। उन्होंने कहा, "अश्विनी जो जिस वस्तु को माँगता है उसको वही मिलती है।" उस समय देखा आकाश की दक्षिण दिशा में अपूर्व उज्ज्वल वर्ण से शोभित एवं आकाश मण्डल विभिन्न वृक्षों से शोभित है। और भी अनेक दृश्य देखे वह वर्णनातीत है। मैं मुग्ध होकर देख रहा था। इतने में एक अपूर्व सुन्दर रथ अनेक मणिरत्नों से सुशोभित एवं विचित्र ध्वज पताका से शोभित दिखा। उस रथ के पीतवर्ण से आकाश मण्डल प्रकाशित हो गया, वाक्य द्वारा उस शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उस अद्‌भुत दृश्य को देखकर मैं जय प्रभु! जय प्रभु!! कहते कहते जाग गया। जाग्रत होकर भी जय प्रभु! जय प्रभु!! कह रहा था। मैं 'नाम' करने लगा। ऐसा जागृत दृश्य मैंने और कभी नहीं देखा। जय प्रभु तुम्हारी जय हो।

(10) एकबार सपने में गुरुजी प्रत्यादेश किये – "धर्म की सरल सत्य बातों का पालन नहीं करने से धर्म पथ में अग्रसर होना संभव नहीं है।"

(11) श्रीश्री गुरुजी के जीवितावस्था में भय से मैंने कभी उनके स्पर्श करने का साहस नहीं किया। इसलिए मेरे मन में बड़ा क्षोभ था। एकदिन सपने में उन्होंने कृपापूर्वक छाती पर श्रीचरण रखा था। वह चरण बहुत कोमल एवं सुखस्पर्शी था, इससे मेरे मन का कष्ट दूर हो गया।

(12) एकदिन सपने में एक महापुरुष बोले, "तुम्हारी उम्र 26 साल है न ? छत्तीस साल की उम्र में तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। गड़बड़ भी हो सकता है।" निद्राभंग होने पर हिसाब जोड़कर देखा कि गर्भ से हिसाब करने से मेरी उम्र उस समय 26 वर्ष होती है।

अन्य प्रसंग

श्रीश्री गुरुजी जब हेरिसन रोड के घर में थे, उस समय हरिद्वार के पूज्य स्वामी भोलानन्द गिरि महाराज एक साल तक बड़ा बाजार में हेरिसन रोड के पास एक धनी व्यक्ति की तीसरी मंजिल पर रहते थे। उस समय एकदिन मैं उनका दर्शन करने के लिए गया। उनको साष्टांग प्रणाम करते ही उन्होंने कहा, "इसके एक प्रणाम से सात पुरुष चन्द्रलोक में चले गए।" फिर उन्होंने कहा, "तुम्हारे हृदय में भगवान आ रहे हैं किन्तु बैठने का स्थान नहीं मिलने के कारण चले जाते हैं। किस प्रकार, जानते हो ? एक सभास्थल में यदि राजा आये तो उनको यत्नपूर्वक सम्मान के साथ उच्चासन में बैठाना पड़ता है, नहीं तो राजा चले जाते हैं, उसी प्रकार भगवान को भी हृदय में बैठने का स्थान नहीं मिल रहा है, प्रवृत्ति (आसक्ति) से हृदय भरा है। तुम मेरे मन की बात नहीं जानते हो किन्तु मैं तुम्हारे मन की सब बातें जानता हूँ। तुम गोसाँईजी के घर से साधु दर्शन के लिए यहाँ आये हो। यदि तुम प्रतिदिन भगवत्‌गीता का एक श्लोक याद करो तो तुम भी मेरी तरह मन की बात जान सकोगे।"

(2) श्रीश्री गुरुजी जब कोलकाता के कम्बलिया टोला के घर में थे, उस समय वे अस्वस्थ थे। तब साधु खेपाचंद (अर्जुनदास) वहाँ आए थे। उस समय एकदिन खेपाचांद श्रीश्री गुरुजी के सामने प्रणाम करके उठते समय मेरी जाँघों पर हाथ रखकर मेरी आँखों में स्थिर दृष्टि रखकर बोले, "अरे तेरा तो उद्धार हो गया।" फिर 'मेरा राम' कहकर हाथों से आरती करने लगे। उल्लेखनीय है कि साधु खेपाचांद त्रिकालदर्शी और सिद्ध महात्मा थे। 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग ग्रन्थ' में इनका उल्लेख है।

****

श्री हेमेन्द्रनाथ मित्र

एक समय मनोहर पुकुर रोड का बागानबाड़ी गोसाँईजी के शिष्य एवं भक्तों का मिलन क्षेत्र था। गोसाँई शिष्यगण यहाँ रात्रिवास करते थे एवं सेवा–पूजा व कीर्तनादि में योगदान देते थे। इस बागानबाड़ी के गोसाँईजी के मंदिर में गुरुभाई लोग सत्संग कर सकें, इस उद्देश्य से हेमेन्द्रनाथ मित्र महाशय ने सुव्यवस्था की थी। भक्तों की सेवा के प्रति मित्र महाशय की विशेष दृष्टि थी। उनके आंतरिक व्यवहार से आकृष्ट होकर गुरुभाई–बहन लोग निःसंकोच यहाँ चले आते थे। यहाँ विशेष तिथि में कीर्तन होता था एवं अनेक लोगों की भीड़ भी होती थी।

हेमेन्द्रनाथ का जन्म बंगला 1273 सन् के 10 वीं श्रावण (सन् 1866 ई०) में हुआ था। वे मेधावी छात्र थे। सर आशुतोष मुखोपाध्याय, सतीश मुखोपाध्याय आदि उनके सहपाठी थे। हेमेन्द्रबाबू एम० ए० पास करने के बाद लॉ पास करके वकालत शुरू किये। कम समय में ही सर्वत्र उनका सुनाम फैल गया था। उस समय स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। अलीपुर कोर्ट के पब्लिक प्रोसीक्यूटर आशु विश्वास स्वदेशी क्रांतिकारियों द्वारा मारे गए। ब्रिटिश सरकार ने हेमेन्द्र बाबू को इस पद पर नियुक्त किया एवं आश्वासन दिया कि आशु विश्वास को जितने अंग रक्षक मिले थे उसका द्विगुण संख्यक अंग रक्षक उनको दिये जायेंगे। हेमेन्द्र बाबू ने सरकार को जबाब दिया कि उनको एक भी अंगरक्षक की जरूरत नहीं है। हेमेन्द्र बाबू के मन में दृढ़ विश्वास था कि उनके रक्षाकर्ता स्वयं गोसाँईजी हैं। वे सर्वदा कहते थे – "My duty is to prosecute for the public not for the Government." उनकी मेघाशक्ति एवं कानूनी विद्या में पारदर्शिता के लिए अनेक स्वदेशी आन्दोलनकारियों को सरकार के हाथ से मुक्ति मिली थी। जिन स्वदेशी क्रान्तिकारियों ने आशु विश्वास की हत्या की थी, वे लोग हेमेन्द्र बाबू को प्रणाम करते थे। श्री अरविन्द घोष के विख्यात आलीपुर बम काण्ड में हेमेन्द्र बाबू ने श्री अरविन्द के पक्ष में एवं सरकार के विरुद्ध जिस साहस का परिचय दिया था, आलीपुर कोर्ट की दीवार पर श्वेत पत्थर की फलक में आज भी वह लिखा है।

सर आशुतोष ने जब अपनी विधवा कन्या के पुनर्विवाह में हेमेन्द्र बाबू को आमंत्रित किया था तब समाज के अनेक लोगों ने सोचा था कि हेमेन्द्र बाबू नहीं आएंगे। विवाह के समय जब हेमेन्द्र बाबू आये तब आशुतोष बाबू अत्यंत आनन्दित होकर कहने लगे, "कायस्थ शिरोमणि हेमेन्द्र बाबू जब इस विवाह में आये हैं तब

समाज इस विवाह को अवश्य मान लेगा।" इस विवाह में योगदान के लिए हेमेन्द्र बाबू को विरूप समालोचना सुननी पड़ी थी, किन्तु दृढ़चेता हेमेन्द्र बाबू ने सब सहन किया था।

धर्म के प्रति एवं साधु–संन्यासीगण के प्रति हेमेन्द्र बाबू की आंतरिक श्रद्धा थी, स्वामी प्रेमानन्द भारती महाराज उनके मित्र थे। स्वामी विवेकानन्द के बाद भारती महाशय अमेरिका गए थे एवं भक्ति धर्म का प्रचार किया था। भारती महाशय प्रायः हेमेन्द्र बाबू के घर आते थे।

एकबार एक हिन्दी भाषी साधु को मर्यादा पूर्वक हेमेन्द्र बाबू अपने निवास पर लाये एवं खूब सेवा किये। जाते समय साधुजी ने हेमेन्द्र बाबू को आशीर्वाद दिया था कि शीघ्र उनको सद्गुरु लाभ होगा। इस घटना के बाद हेमेन्द्र बाबू के भीतर धर्म चेतना की वृद्धि हुई एवं वे सद्गुरु प्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठे। उस समय श्री रामकृष्णदेव के शिष्य महेन्द्रनाथ (श्री 'म') के पास सर्वप्रथम गोसाँईजी की बात उन्होंने सुनी। उन्होंने हेमेन्द्र बाबू को गोसाँईजी के पास दीक्षा ग्रहण करने के लिए कहा।

हेमेन्द्रबाबू की दीक्षा के प्रसंग में 'मंदिर' पत्रिका में प्रकाशित तथ्य में उल्लेख किया गया है –

हाई कोर्ट के वकील हेमेन्द्र बाबू ठाकुर के बारे में चर्चा करते–करते बोले– एकदिन मित्र अतुल चंपटी ने एकदिन आकर मुझसे कहा, "कोलकाता में एक महापुरुष आये हैं खबर रखते हो ? चलो उनका दर्शन करें।" हेमेन्द्र बाबू पूछे– वे कौन हैं ? अतुलबाबू ने कहा कि उनका नाम विजयकृष्ण गोस्वामी है। मैंने कहा कि वे तो स्वधर्म त्यागी ब्राह्म हैं, उनका क्या दर्शन करना ? अतुल बोला – ठीक है, चलो एकबार दर्शन करना, दर्शन में तो कोई दोष नहीं है। यह कहकर वह मुझे ले गया। उस समय वे राखाल बाबू के घर में थे। आश्चर्य की बात है जैसे ही मैंने कमरे में प्रवेश किया, मेरे मन में एक सुन्दर अपूर्व भाव प्रवेश किया। मैंने साष्टांग होकर ठाकुर को प्रणाम किया। प्रणाम करने के साथ एक अपूर्व विद्युत प्रवाह तीव्र गति से मेरे शरीर में प्रवाहित होने लगी। मैं भावविभोर होकर डेढ़ घंटा तक एक कोने में चुपचाप बैठा रहा। अंत में सुस्थिर होकर चला आया एवं सोचने लगा कि मेरे जैसे पापी पर क्या वे कृपा करेंगे ? मैंने सतीश से (डॉन पत्रिका के सतीश मुखोपाध्याय) इस बारे में अनुरोध करके बोला – "क्या वे मेरे जैसे पापी पर कृपा करेंगे ?"

सतीश ने कहा, "तुम लोग जिस प्रकार पाप–पुण्य का विचार करते हो महापुरुषगण उस प्रकार नहीं करते। वे अनुरोध–उपरोध की अपेक्षा भी नहीं

रखते। सतीश के उपदेश से उनके निकट दीक्षा प्रार्थना किया। उन्होंने कृपापूर्वक दीक्षा प्रदान की।

अमेरिका से आने के पश्चात् एकदिन स्वामी विवेकानन्द को सम्मान देने के लिए टाउन हाल में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा के पक्ष से मेरा एक मित्र बोला कि तुम्हें वहाँ भाषण देना पड़ेगा। मैंने कहा कि इस विषय में परसों कहेंगे। गुरुजी का अभिप्राय जानने के लिए मैं सीताराम घोष स्ट्रीट के घर में गया। गोस्वामीजी उस समय वहाँ पर थे। जाकर मन में आया कि उनको क्या पूछना है ? वे तो सब जानते हैं, यदि वे अपने–आप बोलने के लिए कहें तो बोलूँगा। मैंने ऊपर जाकर प्रणाम किया और एक किनारे में बैठा रहा। मोहिनी बाबू का पाठ समाप्त हुआ। किसी ने कहा कि आज स्वामी विवेकानन्द की अभ्यर्थना के लिए टाउनहाल में भाषण होगा। यह सुनकर ठाकुर मेरी ओर अंगुली दिखाकर बोले – "यदि यहाँ से कोई सभा में जाकर केवल रामकृष्ण परमहंसजी का गुणानुकीर्तन करे तो मैं बहुत संतुष्ट होता।" यह सुनकर मैं ठाकुर को साष्टांग प्रणाम कर निकल पड़ा एवं यथा समय वहाँ जाकर भाषण दिया। जब बाहर निकला तो गणेशबाबू मुझे कहा – "आज तुम्हारा भाषण सर्वोत्कृष्ट हुआ है।" मैंने कहा कि सुरेन्द्रनाथ आदि से मेरा भाषण कैसे अच्छा हो सकता है ? उन्होंने कहा "नहीं सचमुच तुम्हरा भाषण सर्वोत्कृष्ट रहा।" मैंने सोचा, जिनकी कृपा से यह हुआ है, उसे तो सर्वोत्कृष्ट होना ही पड़ेगा।

इस प्रकार एकदिन मैं मुकदमे में प्रतिवादी पक्ष का वकील था। उन लोगों ने बैरिस्टर लाया था। साहब विचारक, साहब वादी, जीतने की कोई संभावना नहीं थी। राखालबाबू के घर के पास से अदालत जा रहा था। अचानक ठाकुर को प्रणाम करने की इच्छा हुई। मैंने उसी पोषाक में ठाकुर को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मुस्कराते हुए मुझे देखा। मैं आनन्दित होकर नीचे आया एवं प्रतिवादी से कहा कि और कोई डर नहीं है, मुकदमा जीत गया। ऐसा ही हुआ था।"

"मैं समय–समय पर ठाकुर के पास जाकर एक कोने में बैठा रहता था, किसी के साथ बात नहीं करता था। अपने–आपको बड़ा पापी बोध होता था। वहाँ से आने के पश्चात् छः–सात दिन उसी नशे में रहता था। वे जो भी कुछ कहते थे, उसमें कोई संदेह नहीं रहता था। 'वेद वाक्यवत्' लगता था।"

हेमेन्द्र बाबू के उक्त विवरण से श्रीगुरुजी के प्रति उनके विश्वास का परिचय मिलता है। उनकी पत्नी सरलाबाला देवी कोलकाता की सुप्रसिद्ध दत्त परिवार की थीं। वे भी गोसाँईजी की मंत्र शिष्या थीं। उनकी दीक्षा के समय गर्भस्थ संतान मतिन्द्र ने भी दीक्षा प्राप्त की थी। कोलकाता के बाहर से आने वाले गुरुभाई कोलकाता आने से हेमेन्द्र बाबू एवं उनकी पत्नी के आग्रह से वे अपने कुटुम्ब के

घर में न रहकर बागानबाड़ी में रहते थे।

गोसाँईजी के शिष्यों में जगत्बन्धु मैत्र महाशय, सरलनाथ गुहठाकुरता, रेवतीमोहन सेन आदि अनेक लोग सर्वदा यहाँ आते थे एवं रहते थे। हेमेन्द्र बाबू जीवन के अंतिम भाग में गोसाँईजी की कथा सर्वदा सुनना चाहते थे। गोसाँईजी की लीला कथा सुनते–सुनते उनकी आँखों से अश्रुधारा बहती थी। उनके पुत्र भालो बाबू बोलते थे अंतिम दिनों में रोग यंत्रणा बढ़ने के साथ–साथ उनका गुरु के प्रति समर्पण भावना बढ़ने लगी। वे सर्वदा गुरु प्रदत्त 'नाम' स्मरण एवं चिंतन में लगे रहते थे। अंत में बंगला सन् 1330 के 24 वीं भाद्र (1924 ई०) को रेवतीबाबू के श्री हरिनाम संकीर्तन श्रवण करते हुए एवं श्रीगुरुनाम का जप करते–करते वे परलोक गमन किये। उस समय अनेक भाग्यवान व्यक्तियों ने उस कमरे में गोसाँईजी का आविर्भाव अनुभव किया था।

****

साधु राधिकानाथ राय

[संदर्भ– साधु राधिकानाथ राय के सम्बन्ध में यह लेख श्री दरवेशजी महाराज ने 'मंदिर' पत्रिका (तृतीय वर्ष) में प्रकाशित किया था। 'मंदिर' पत्रिका से यह लेख संग्रह करके यहाँ दिया जा रहा है।]

बंगला 1293 सन् (सन् 1886 ई०) के वैशाख महीने में काकिना के राजा महिमा रंजन रायबहादुर के निमंत्रण से गोस्वामी प्रभुजी ने काकिना के ब्राह्मसमाज प्रतिष्ठा उत्सव के उपलक्ष्यं में वहाँ गमन किया था। कुछ दिन पूर्व गोसाँईजी गया धाम में दीक्षा एवं काशी धाम में संन्यास ग्रहण के बाद कोलकाता वापस आये थे। यहाँ पर कोलकाता ब्राह्मसमाज के साथ मतभेद होने के कारण उन्होंने समाज परित्याग किया एवं पूर्व बंगाल ब्राह्मसमाज के आह्वान से वहाँ पर प्रचारक पद ग्रहण किया एवं ढाका में रहने लगे। अनेक धर्मपिपासु सज्जनगण उस समय उनके निकट योगसाधन ग्रहण करके धन्य हो रहे थे। उस समय काकिना के राजा के आह्वान से उन्होंने वहाँ गमन किया। उनके साथ कंगाल फकीरचांद का कीर्तन दल, मनोरंजन गुहठाकुरता, नवकुमार बागची, पंडित श्यामाकांत, गायक ब्रजबाबू एवं साधारण नवविधान समाज के कई ब्राह्म भी थे। काकिना का उत्सव महा समारोह के साथ संपन्न हुआ था। काकिना के राजा महिमारंजन राय ने गोस्वामी प्रभुजी से योगदीक्षा प्राप्त की। उस समय काकिना के राजपंडित श्रीश्वर विद्यालंकार, उनके पुत्र अध्यापक एवं प्रसिद्ध वेदान्तिक श्री कोकिलेश्वर भट्टाचार्य एवं राज परिवार के और राजस्टेट के अनेक कर्मचारी गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा प्राप्त किये थे।

साधु राधिकानाथ राय काकिना राजस्टेट के कर्मचारी थे। उस समय उन्होंने पत्नी एवं कन्या के साथ गोसाँईजी के श्रीचरण में आश्रय प्राप्त किया था। राधिकाबाबू का कोई पुत्र नहीं था। कुछ दिनों से वैषयिक कार्य उनको अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने सपरिवार काशीधाम में वास करने का संकल्प किया। राजाबहादुर यह जानकर काशी में उनके अन्न–क्षेत्र एवं संपत्ति का मैनेजर नियुक्त करके, राय महाशय को काशी भेज दिये। उस समय से राधिकाबाबू सपरिवार काशीधाम में वास करने लगे। वे उत्कृष्ट संगीतज्ञ और कवि थे। उस समय मैं भी काशीधाम में वास करने लगा एवं राय महाशय के साथ मित्रता सूत्र में आबद्ध

हुआ। राय महाशय परम उदार एवं परदुःख कातर थे। कुछ समय उनका संग करने से मन की सब ग्लानि नष्ट होकर मन–प्राण आनन्द से भर जाता था। श्री गुरु चरण में उनका असीम अनुराग देखकर विस्मित होता था।

राधिकाराय महाशय ने किस प्रकार आश्चर्यजनक रूप से देहत्याग किया था, यह बताने के लिए ही यह आलेख प्रस्तुत किया जा रहा है। वह एक अपूर्व और अद्‌भुत घटना थी एवं मैं उसका प्रत्यक्षदर्शी एवं साक्षी हूँ। बंगला 1328 सन् का माघ महीना था। उस दिन रटन्ती चतुदर्शी थी। प्रातःकाल में किसी के पास से राय महाशय का पत्र मिला। उन्होंने लिखा था – "आज संध्या में राम कमल भट्टाचार्य का कीर्तन होगा, काकिना के घर में। जानता हूँ कि आप पदावली कीर्तन सुनना नहीं चाहते हैं– सिद्धान्त विरोधी वर्णन होने के भय से। किन्तु आज अवश्य आयेंगे, यही अनुरोध है।" राय महाशय के साग्रह आह्वान से संध्या के कुछ पूर्व काकिना के राजसत्र घर में उपस्थित हुआ।

देखा बड़े प्रांगण में दरी बिछाकर कीर्तन हो रहा है। रामकमल कीर्तनियां कीर्तन शुरू किये थे। राय महाशय और कई सज्जन सभा में उपस्थित हैं। मुझे देखकर राय महाशय ने मुझे पास में बुलाकर कहा – "कई दिनों से मन उदास हो रहा है। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। इसलिए आज रामकमल को माथुर कीर्तन गाने के लिए बुलाया है।" यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य लगा। मैं जानता था रसज्ञ राय महाशय माथुर कीर्तन कभी पसंद नहीं करते थे। वे कीर्तन में विरही राधा का हृदय स्पर्शी विलाप सहन नहीं कर सकते थे। पदावली कीर्तन की माथुर पाला गान कहीं हो रहा है, इसे जान लेने पर वे उस स्थान में नहीं जाते थे। आज उन्होंने स्वयं माथुर कीर्तन का आयोजन किया है सुनकर मुझे आश्चर्य लगा। उनकी बातों में विरह की हाहाकार ध्वनि थी, उसने मेरे चित्त को आघात किया। माथुर कीर्तन में, श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर श्रीराधाजी एवं गोपियों के विरह का वर्णन रहता है।

कीर्तन शुरू हुआ। ढाई घंटे बाद पालागान समाप्त हुआ। राय महाशय आँखें बंद करके चुपचाप गाना सुनते रहे। गाना समाप्ति के बाद अधिकांश लोग चले गए। मैं भी घर जाऊँगा सोच रहा था, उस समय राय महाशय रामकमल से बोले– कीर्तन तो समाप्त हुआ। अब आप अपने एक–दो गाने सुनाइये। रामकमल पुनः गाना शुरू किये। उसका पहला पद आज भी मुझे याद है। "नामेर बातास लागले गाये, मानुष कि आर मानुष थाके। श्वास श्वासे नामाभासे नामी आसे नामेर डाके।"अर्थात नाम की हवा लगने पर मनुष्य क्या फिर मनुष्य रह सकता है! श्वास–प्रश्वास में नाम चलने पर नाम की शक्ति से नामी प्रकट होता है। गाना शुरू होते ही राय महाशय भावपूर्ण उद्दण्ड नृत्य करने लगे। बहुत देर तक नृत्य

एवं कीर्तन चला। नृत्यकारीगण एक–एक करके नृत्य बन्द किये किन्तु राय महाशय का भावपूर्ण उद्दण्ड नृत्य नहीं रुका। मैं एक किनारे में खड़ा होकर राय महाशय के मधुर नृत्य दर्शन करने लगा। उनकी प्रकाण्ड देह कांप रही थी। दृष्टि शून्य की ओर तथा अर्ध निमीलित नयन थे। वह एक स्वर्गीय दृश्य था। इस प्रकार नृत्य करते–करते राय महाशय अचानक खड़े हो गए। ऐसा लगा कि आसमान में कुछ दर्शन करके विस्मित होकर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। वे कांपते हुए दक्षिण हस्त उठाकर अँगुली से निर्देश करके आसमान में कुछ दिखा रहे थे। उपस्थित जनमण्डली उनके इशारे पर आसमान की ओर देखने लगी। राय महाशय का मुखमण्डल हँसी से उज्ज्वल हो उठा मानों कितने दिनों की खोई हुई वस्तु मिल गई है। इस प्रकार कुछ क्षण देखकर उस अवस्था में साधु राधिकानाथ अचानक गिर पड़े। गिरने के साथ–साथ उनकी प्राण वायु निकल गई। ऐसा लगा मानो कोई आकर उनको बुलाकर ले गया।

गिरने के साथ–साथ राय महाशय को पकड़ा। कीर्तन बंद हो गया। सबलोग उनके पास आये। डाक्टर बुलाया गया लेकिन वृथा। देहपात के पहले ही राय महाशय नाम करते–करते, नामी के रूप दर्शन करते–करते, नामी के साथ नामातीत राज्य में चले गए।

एक चारपाई के ऊपर आँगन में राय महाशय की देह को शयन कराया गया। उनकी कन्या ने गोसाँईजी की पटमूर्ति उनके सिर के पास रख दी। हमलोग प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगे।

प्रातःकाल में संवाद पाकर सब गुरुभ्रातागण एवं राय महाशय के परिजन आये। उस समय सरलनाथ काशी में रहते थे। सरलनाथ आश्चर्यपूर्वक मृत राय महाशय के मुखमण्डल का निरीक्षण करने लगे। मैंने सरलनाथ से पूछा – क्या देख रहे हो सरलनाथ ? सरलनाथ मुझे अँगुली निर्देश से राय महाशय के मुखमण्डल एवं गोसाँईजी के पट का मुखमंडल दिखाकर बोले, "क्या दिखाई नहीं दे रहा है ? अंधे हो गए हो क्या ?"

मैंने विस्मित भाव से देखा कि मृतक का मुखमंडल एवं गोस्वामीजी का मुखमंडल बिल्कुल एक है – कुछ भी अंतर नहीं है। साधु राधिकानाथ ने अंतिम समय में श्री गुरुमूर्ति दर्शन करते–करते, उनकी आकृति प्राप्त की थी। परम् भागवत भाग्यवान् राय महाशय को ठाकुर ने प्रकार ग्रहन किया है देखकर देह–मन–प्राण आनन्दित हो उठा। हे भाग्यवान् पुरुष! क्या तुम्हारे जैसा सौभाग्य इस अधम को मिलेगा ?

****

श्री नरेन्द्रचन्द्र पाल

(लेखक – स्वामी असीमानन्द सरस्वती)

[संदर्भ – यह लेख 'गोस्वामी प्रभु की अपार करुणा' शीर्षक से मंदिर (26वर्ष) पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।]

17 जुलाई 1966 ई० सन् सुबह आश्रम में बैठा था। एक व्यक्ति ने आकर कहा– आपके साथ कुछ बातें करनी है। मैंने कहा – कहिये। उन्होंने कहा – मेरा नाम है नरेन्द्रचन्द्र पाल। मेरे पिता का नाम जगतचन्द्र पाल एवं माता का नाम विधुमुखी पाल था। माता–पिता भगवान श्री विजयकृष्ण जी के मंत्र शिष्य थे। माता–पिता की दीक्षा के समय मैं दो या तीन साल का बालक था। कोलकाता हेरिसन रोड के घर में माता–पिता को दीक्षा प्राप्ति हुई थी। माता–पिता की दीक्षा किस प्रकार हुई थी, मैं पहले आपको वही कहूँगा। माता अति भक्तिमती महिला थीं एवं गोसाँईजी के प्रति परम श्रद्धाशीला थी। यमुनामायी माँ मेरी माता की सखी थीं। किन्तु पिता गोसाँईजी के घोर विरोधी थे।

हमारा घर पूर्व बंगाल के ढाका जिला में एकदुयारिया गाँव में था। एकदिन माँ ने पिता से घर में कीर्तन का आयोजन करने के लिये कहा। पिता राजी हुए एवं रात में कीर्तन की व्यवस्था हुई। बहुत सुन्दर कीर्तन हुआ था, उस समय पिता ने देखा कि गोसाँईजी कीर्तन में नृत्य कर रहे हैं। विशाल शरीर, सिर में जटा सांप के फण की तरह खड़ी हो गई है। पिता यह देखकर अचेत हो गए किन्तु इससे भी पिता दीक्षा के लिए राजी नहीं हुए। माँ व्याकुल होकर गोसाँईजी से सर्वदा प्रार्थना करती थी – "ठाकुर इन्हें राजी करा दो।"

कुछ दिन बाद एकदिन मध्याह्न भोजन के बाद पिता घर में एक छोटे टूल पर बैठे थे। अचानक देखा कि गोसाँईजी दरवाजे पर दोनों हाथ रखकर खड़े हैं एवं क्रोधित नेत्रों से पिता की ओर देख रहे हैं। गेरुआ वस्त्र धारण किये जटाजूट समन्वित वह मधुर विशाल मूर्ति देखकर पिता अचेत हो गए। चेतना लौटने के बाद पिता सोचने लगे कि कुलगुरु छोड़कर उनके पास कैसे दीक्षा ग्रहण करें ? कुछ दिन मन में संघर्ष चला। अचानक एकदिन मन की गति बदल गई। माँ को लेकर दीक्षा ग्रहण करने के लिए कोलकाता जाने को वे तैयार हो रहे थे पर पुनः उनके मन में प्रश्न उठा – कुलगुरु त्याग करने से अपराध तो नहीं होगा ? उसी समय

अचानक उनके कुलगुरु आकर उनसे बोले – "तुमलोग गोसाँईजी के पास दीक्षा ले सकते हो।" वे सद्गुरु हैं। तुम लोग रवाना हो जाओ।" माता–पिता निश्चिन्त होकर कोलकाता पहुँचे।

गोसाँईजी उस समय हेरिसन रोड के घर में थे। माता–पिता ने वहाँ पहुँचकर गोसाँईजी को प्रणाम किया। मुझे गोसाँईजी के पांव पर लिटा दिया। गोसाँईजी स्थिर दृष्टि से आधा घंटा तक मेरी ओर देखते रहे। गोसाँईजी की दृष्टि हटा लेने पर मैं उठ गया। माताजी के लिए पिता ने दीक्षा प्रार्थना की। गोसाँईजी मेरी माताजी से बोले – "कल तुम्हारी दीक्षा होगी। सुबह गंगास्नान करके आ जाना।" उसके बाद पिता दीक्षा प्रार्थी हुए। गोसाँईजी बोले – "आप पहले काली घाट में काली दर्शन, गंगा स्नान, तीर्थ भ्रमण आदि करें। फिर गया में पितृ–पुरुषगण को पिण्डदान करें।" पिता यह सुनकर व्याकुल होकर रोने लगे। गोसाँईजी ने हँसकर कहा– "ठीक है, तुम भी कल गंगास्नान करके आ जाना। कल दोनों को एक साथ दीक्षा मिलेगी।"

दूसरे दिन माता–पिता गंगास्नान करके दीक्षा लेने के लिए उपस्थित हुए। दीक्षा लेने के लिए जब वे आसन पर बैठे थे, मैं उस समय माता की गोद में बैठा था। गोसाँईजी कुछ नहीं बोले। इस प्रकार माता–पिता ने दीक्षा प्राप्त की। वहाँ उपस्थित गोसाँई शिष्यगण बोले – "मेरी भी दीक्षा हो गई, और कहीं दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं होगी।"

जब मैं बड़ा हुआ गोसाँईजी ने तब शरीर छोड़ दिया था। माँ ने मुझे पूज्यपाद अश्विनी वैरागी (स्वामी ब्रह्मानन्द) के पास दीक्षा लेने के लिए भेजा। मेरे जाते ही उन्होंने कहा– "तुमको दीक्षा देने का अधिकार मुझे नहीं है। यथा समय नाम स्मरण होगा। तुम राधाकृष्ण की युगल मूर्ति की पूजा करो, जब तक नाम स्मरण नहीं होता तब तक 'हरेकृष्ण' नाम जप करो।" मेरा मन मंत्र के लिए व्याकुल रहा। अचानक एकदिन सपने में महाप्रभु का दर्शन मिला। मेरे साथ और कई मित्र थे। उन्होंने सबको बुलाया किन्तु कोई नहीं गया। मैं अकेले उनके पास गया। उन्होंने मुझे मंत्र बोल दिया। कुछ देर तक मंत्र का जप किया फिर भूल गया। उन्होंने पुनः स्मरण कराया। इस प्रकार तीन बार उन्होंने मंत्र स्मरण कराया किन्तु मैं भूल गया। चौथी बार उनसे पूछने पर उन्होंने कहा – "अभी जाओ यह मंत्र तुम्हें अपने आप स्मरण होगा।" उस समय से दिनरात व्याकुल चित्त में मंत्र स्मरण कराने के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ किन्तु मंत्र स्मरण नहीं हो रहा है। इस प्रकार अस्थिरता में अचानक एकदिन मन में आपके पास आने की प्रेरणा अनुभव हुई। आप बताइये मैं क्या करूँ ? मुझे वह नाम कैसे स्मरण होगा ? पूज्या शांतिदीदी, यमुनादीदी एवं गेण्डारिया आश्रमवासीगण का विशेष स्नेह लाभ लिया है।

श्री नरेन्द्रचन्द्र पाल

श्री नरेन्द्रचंद्र की मनोव्यथा को सुनकर मैनें उनसे कहा– "आप भाग्यवान् हैं, परम दयालु गोसाँईजी ने आपके माता–पिता के दीक्षा के पूर्वदिन दृष्टि द्वारा शक्ति संचार किये थे। दूसरे दिन माता की गोद में बैठकर आपको यथारीति दीक्षा प्राप्त हुई थी। नाम भूलने के लिए आपको जीवनभर जो दुःख मिला है उसी से आपका प्रारब्ध क्षय हो गया है। आपकी व्याकुलता, मनोव्यथा एवं आँसुओं ने मुझे व्याकुल किया है। आप गोसाँईजी के शिष्य हैं। आप मेरा प्रणाम स्वीकार करिये। आपका मंत्र आप गोसाँईजी की कृपा से कल ही जान जाएँगे।"

उन्होंने कहा – "किन्तु कैसे जप करना है यह तो नहीं जानता हूँ।"

मैंने कहा– "वे ही सब व्यवस्था करेंगे, आप को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, आप निश्चिन्त रहें।" मेरे पीछे की दीवार पर गोसाँईजी की तस्वीर लगी थी। वे स्थिर दृष्टि से उस तस्वीर को देखने लगे एवं गोसाँईजी से प्रार्थना करके बार–बार प्रणाम करने लगे। इधर 12 बज गए। आश्रम में भोजन करने की घंटी बजी। वे हताश एवं मौन होकर बैठे थे। मैंने कहा – "आहार की घंटी बजी है। आप भोजन लेकर आइये।" उन्होंने कहा – "भोजन नहीं लेने से भी चलेगा।" गोसाँईजी की चिन्ता से उनका बाहर–भीतर पूर्ण था। इसलिए भोजन की चिन्ता नहीं थी। भोजन करने के लिये जाने की इच्छा उनकी नहीं थी। सम्बुद्धानन्द को बुलाकर कहा– "इनको भोजन घर में सावधानी से ले जाओ। अस्वस्थ शरीर है। रक्तचाप अधिक है, इसलिए चल नहीं सकते हैं।" सम्बुद्धानन्द उनको ले गया। दिनभर रहे। उनका मन आश्रम से नहीं जाना चाहता था। गोसाँईजी के चित्र के सामने वे खड़े रहते थे। उनका दर्शन शेष नहीं हो रहा था। गोसाँई की कृपा से दूसरे दिन उनको खोया हुआ धन मिल गया। अर्थात मंत्र स्मरण हो गया।

इस घटना का उल्लेख करते हुए स्वामी असीमानन्दजी महाराज ने कहा था कि उस दिन नाम स्मरण के पश्चात् उनका नाम स्वतः अखण्ड रूप से चलता रहा। अर्थात उनका अजपा–जप (नाम) शुरू हो गया।

****

माता योगमायादेवी

श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बाद बंगाल में अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया था। उनमें सद्गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी अनन्यतम थे। माता योगमाया देवी उनकी सहधर्मिणी के रूप में आई थीं। उनका जीवन विभिन्न अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण है। तपस्या एवं भगवत् कृपा के बिना आध्यात्मिक तत्व जानना असंभव है। कोई विश्वास नहीं करता है, इसलिए ये सब सत्य नहीं है, ऐसा सिद्धान्त नहीं करना चाहिए।

माता योगमाया देवी का जन्म सन् 1259 (1852 ई०) के 16 भाद्र महीने की कृष्णा द्वादशी तिथि में बुधवार को हुआ था। उनका जन्म नदिया जिले में शिकारपुर के पास दहकुल नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम रामचन्द्र भादुड़ी एवं माता का नाम मुक्तकेशी देवी था। उनकी छोटी बहन का नाम था नवकुमारी। नवद्वीप के उसुदपुर गाँव के क्षेत्रनाथ बाग्ची के साथ नवकुमारी की शादी हुई थी। रामचन्द्र भादुड़ी नीलकुठि में कम वेतन की नौकरी करते थे। उनकी पत्नी एवं दो संतानों को लेकर उनका संसार था। अत्यन्त साधारण रूप में वे संसार यात्रा निर्वाह करते थे। लेकिन ढाका गेण्डारिया आश्रम में सन् 1323 (सन् 1916 ई०) के पहले बैशाख में प्रकाशित 'योगमाया ठाकुरानी' नामक ग्रन्थ में उल्लेखित है कि भादुड़ी महाशय उत्तरबंग के नाटोर सरकार के अधीन आमीन का काम करके अत्यन्त कष्ट से जीवन निर्वाह करते थे।

माता योगमाया देवी पहली संतान थी, इसलिए माता–पिता का उनपर सहज स्नेह था। इस कन्यारत्न को पाकर गरीब ब्राह्मण दम्पत्ति के आनन्द की सीमा नहीं थी। माता–पिता के स्नेह में देवी बड़ी होने लगी। शिशुओं में अनुकरण प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है। मुक्तकेशी देवी पति को 'ओगो' कहकर बुलाती थी। शिशु कन्या भी पिता को 'ओगो' कहकर बुलाने लगी। कन्या के मुँह से यह शब्द सुनकर वे बहुत खुश होते थे, लेकिन पिता कन्या के मुँह से बाबा शब्द सुनना चाहते थे। कन्या को अनेक प्रलोभन दिखाकर भी वे सफल नहीं हुए, लेकिन इससे पिता के मन में दुःख नहीं हुआ। कन्या को लेकर वे बहुत ही आनन्द के साथ दिन गुजार रहे थे। लेकिन यह आंनद दीर्धस्थायी नहीं हुआ, द्वितीय कन्या नवकुमारी देवी के जन्म के एक महीना बाद ही भादुड़ी महाशय परलोक सिधार गए। पति की मृत्यु के बाद मुक्तकेशी देवी बहुत ही कष्ट से संतानों को पालने लगीं।

शिशुकाल से ही योगमाया देवी अत्यन्त शांत स्वभाव की थीं। खेलते समय छोटी बहन नवकुमारी के साथ कभी–कभी झगड़ा होने पर भी वह दीर्घस्थायी नहीं होता था। भोजन द्रव्य लेकर दोनों बहनों में मत विरोध होने पर भी योगमाया देवी बड़ी बहन होकर शासन के रूप में भी नवकुमारी पर कभी हाथ नहीं उठाती थी। उस समय योगमाया देवी एक विशेष खेल खेलती थी। वह खेल इस प्रकार था– रामचन्द्र भादुड़ी की मृत्यु होने पर उनकी शवदेह वस्त्राच्छादित करके घर के आंगन में रखी गई थी एवं उनकी माता मृत पुत्र के पास बैठकर 'रामरे, बापरे, कहाँ चला गया रे', कहकर रो रही थी। कन्या योगमाया देवी ने इस विषय को खेल के उपकरण रूप में ग्रहण किया था। वह उनकी सम उम्र की मातुल कन्या को जमीन में सुलाकर वस्त्रावृतपूर्वक दादी को अनुकरण करके "रामरे रामरे" कहकर रोने का अभिनय करती थी। देवी के इस खेल को देखकर उनकी दादी एवं मातृदेवी क्षणभर के लिए शोक दुःख भूल जाते थे। देवी की बातों से सब लोग आकृष्ट होते थे। उनका मधुमय मुखमंडल देखकर सबका मन प्रफुल्ल हो उठता था। इसलिए उनको देखते ही सबको गोद में लेने की इच्छा होती थी। उनको सीने से लगाकर उनकी शोकसंतप्त माता एवं दादी अपना दुःख भूल जाते थे।

भादुड़ी महाशय के तिरोधान के बाद बहुत कष्ट से मुक्तकेशी देवी संसार चला रही थीं, लेकिन ज्यादा दिन उनको कष्ट नहीं भोगना पड़ा। उस दहकुल में ही श्रीश्री अद्वैताचार्य के कुलपावन वंशधर श्रीमदाचार्य विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुजी का मातुलालय था। गोस्वामी प्रभुजी की जननी स्वर्णमयी देवी जैसी असाधारण दयावती थीं, उसी प्रकार दयावती थीं उनकी बहन भवसुंदरी देवी। पित्रालय में अवस्थान के समय दोनों की दृष्टि उस भादुड़ी परिवार पर पड़ी। वे यथासाध्य अर्थ सहायता करने लगे। इस तरह कुछ दिन चलने के बाद उस परिवार को स्थायीरूप में क्लेशमुक्त करने के लिए योगमाया देवी के साथ विजयकृष्ण का विवाह कर मुक्तकेशी देवी का भी भरण पोषण का भार लेना तय किया विजयकृष्ण की जननी स्वर्णमयी देवी ने। स्वर्णमयी देवी के पति आनन्द किशोर परलोक गमन कर गए थे, इसलिए माता स्वर्णमयी देवी विजयकृष्ण की एकमात्र अभिभाविका थी। भवसुंदरी देवी ने उनकी इच्छा को मुक्तकेशी देवी को अवगत कराया। मुक्तकेशी देवी ने भी इस विवाह में सम्मति प्रदान की। एकदिन शुभलग्न में प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के साथ योगमाया देवी का विवाह हो गया। उस समय योगमाया देवी की उम्र छह साल एवं गोस्वामी प्रभुजी की उम्र 18 साल थी। इस विवाह में तय हुआ कि मुक्तकेशी देवी बालिका कन्या को छोड़कर नहीं रह सकेंगी, इसलिए वे भी स्वर्णमयी देवी के संसार में रहेंगी। मुक्तकेशी देवी दहकुल छोड़कर कन्या के संसार में चली आईं।

यह विवाह गुड़िया के ख़ेल की तरह था। विवाह का अर्थ एवं उद्देश्य कुछ भी योगमाया देवी नहीं समझती थी। बड़ों के निर्देश से योगमाया देवी ने हँसते–हँसते, नाचते–नाचते गोस्वामी प्रभुजी के गले में वरमाला अर्पण की। हुलुध्वनि एवं उपस्थित नारीवृन्दों के आनन्दोच्छवास से परिवेश मुखरित हो उठा। शुभदृष्टि के समय स्त्रियों ने कौतुक देखने के लिए जो आदेश किया, सरला बालिका वही करने लगी। चारों ओर कौतुहल बढ़ने लगा। इधर गोस्वामी प्रभुजी ने सलज्ज होकर बालिका पत्नी का सब उपद्रव सहन किया। इस तरह श्रीमती योगमाया देवी अपनें जन्म जन्मांतर के आराध्य देवता श्रीमद् विजयकृष्ण के साथ परिणय सूत्र में आबद्ध हुईं।

स्वर्णमयी देवी ने कुछ भी अर्थादि नहीं लेकर पुत्र का विवाह समारोहपूर्वक किया था। शांतिपुर में अनेक कुटुम्बी लोग आए थे। नववधू को नानाविध अलंकार द्वारा सुसज्जित किया गया था। विचित्र पाट की साड़ी एवं मुखमंडल पर चंदन चित्रण से वधू के रूप ने अपूर्व शोभा धारण की। ढोल, कॉसि, दामामा, नगाड़ा, बंशी आदि विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे। सर्वदा "दीयताम् भुज्यताम्" सुनाई दे रहा था। इस तरह से महामहोत्सव चला शांतिपुर में।

वर मात्र तरुण किशोर एवं वधू नाबालिका इस युगल रूप से उज्ज्वल हो उठा विवाह का दिन। विवाह का समारोह समाप्त होने पर कुटुंबियों ने अपने–अपने गंतव्य स्थान की ओर प्रस्थान किया।

पहले ही कहा गया है कि मुक्तकेशी देवी उनकी दूसरी कन्या सुश्री नवकुमारी देवी को लेकर शांतिपुर में स्वर्णमयी देवी के संसार में रहने लगीं। योगमाया देवी 6 वर्ष की उम्र में ससुराल में आकर सर्वदा प्रफुल्ल चित्त से खेल में मग्न रहती थी। ससुर, जेठ को देखकर घूंघट काढ़ना– देवी इस परंपरा की रक्षा नहीं कर पाती थी। नग्न देह में दिन–रात खेलती रहती थी। लज्जा या भय कुछ भी उनमें नहीं था। एकदिन इस तरह खेलते समय जेठ आये, लेकिन बालिका वधू कुछ भी नहीं समझी। सास स्वर्णमयी देवी ने वधू को वस्त्रांचल द्वारा सिर ढंकने को कहा। वधू वस्त्र द्वारा सिर ढँकते ही कटि वस्त्र गिर गया। यह देखकर माता–पुत्र दोनों हँसने लगे। देवी को समझ में नहीं आया कि ये लोग क्यों हंस रहे हैं, इसलिए देवी सास की ओर देखने लगी। जेठ मृदु हंसकर चले गए। सास ने देवी को आदर एवं स्नेह करते हुए कपड़ा पहना दिए एवं गोद में लेकर आदर करने लगी, फिर अनेक खिलौने लाकर दी। जेठ को देखने से घूंघट करना चाहिए, यह जानकर देवी नग्नावस्था में घूंघट डालकर बैठी रहती थी। खेलने के लिए साथी नहीं मिलने से एवं पति का साथ नहीं मिलने से देवी जेठ ब्रजगोपाल गोस्वामी को साथ में खेलने के लिए हठ करती थी। बात नहीं सुनने से कभी–कभी

उनका गला पकड़कर झूलने लगती थी। सब लोग कहते कि "अरे जेठ को छूना नहीं चाहिए छोड़ दे, छोड़ दे" तब देवी शंकित होकर भागती थी।

पति सर्वदा पढ़ाई में व्यस्त रहते थे, यह देवी को अच्छा नहीं लगता था। देवी चाहती थी पति भी साथ मे खेले, लेकिन यह नहीं हो रहा है, देखकर एकदिन पति के पाठाभ्यास के समय देवी उनके पास जाकर बोली – दिन–रात इतना क्यों पढ़ते हो ? मेरे साथ क्यों नहीं खेलते हो ? देवी की बात पर ध्यान नहीं देने पर देवी को क्रोध आता था। कोई उपाय नहीं देखकर देवी किताबों के ऊपर लेटकर हँसती रहती थी एवं धीरे–धीरे पति से कहती थी – "देखो कैसे तुम्हारी पढ़ाई बंद कर दी।" बालिका की चपलता देखकर प्रभुजी हँसते थे एवं माताजी से कहते – "देखों माँ तुम्हारी छोटी लड़की ने मेरी किताबें छीन ली है, वह मेरी बात नहीं सुन रही है।" पुत्र की बात सुनकर स्वर्णमयी देवी बालिका वधू को सीने से लगाकर ले जाती थी। कभी–कभी पति की पढ़ाई के समय चुपके–से कमरे में जाकर अचानक पीछे से पति की आँखों में हाथ रखकर कहती– "कहो तो मैं कौन हूँ।" इससे प्रभुजी हँसते रहते थे। रात में प्रभुजी जब पाठ करते थे, तो देवी चुपके–से आकर दिया बुझा देती थी। इस तरह प्रभुजी के साथ देवी चपलता करती थी।

कभी पाठ में विलग्न पति के स्नानाहार में विलम्ब होते देखकर बालिका धीरे–धीरे पति के अज्ञात में उनके पीछे से आकर उनको तेल लगा देती थी। तब प्रभुजी को पढ़ाई से निवृत्त होना पड़ता। पति के साथ देवी का इस तरह का सरल स्नेहपूर्ण आचरण देखकर सब लोग आनन्दित होते थे। एकदिन देवी पति से बोली– मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ सिखा दो। प्रभुजी ने कहा 'आर्यपुत्र' कहकर पुकारोगी, यह सर्वदा स्मरण रखना। देवी उसी दिन से पति को 'आर्यपुत्र' कहकर सम्बोधन करती थी। उनका यह अभ्यास बहुत दिनों तक था। बालिका वधू की यह बाल–लीला बहुत ही मधुमय थी।

देवी की उम्र वृद्धि के साथ–साथ प्रभुजी ने देवी को पढ़ाना–लिखाना शुरू किया। इसके साथ दया, लज्जा, शीलता आदि के बारे में भी प्रभुजी देवी को उपदेश देते थे। पति के पास शिक्षा ग्रहण के समय देवी स्वाभाविक विनय एवं नम्रता के साथ पति से इस तरह बातें करती थी कि पास के लोग भी नहीं सुन सकते थे। देवी इतनी नीची आवाज में बातें करती थी कि कभी–कभी प्रभुजी भी नहीं सुन सकते थे। इसलिए देवी को बार–बार बोलना पड़ता था। प्रभुजी के उच्च स्वर में बोलने से देवी बहुत संकुचित होती थीं।

जब देवी 9 वर्ष की थीं, एकबार रात में प्रभुजी की भाभी ने कौतुहल वश देवी को सुन्दर कपड़े एवं गहनों से सजाकर प्रभुजी के शयन कक्ष में भेजा। यह देखकर

प्रभुजी ने भाभीजी से कहा– "क्या तुम दूती बनकर श्रीमती को सजाकर मिलन मन्दिर में ले आई हो ? "प्रभुजी की यह बात सुनकर भाभीजी ने हँसते हुए प्रस्थान किया। धीर पदक्षेप में बालिका वधु प्रभुजी के सामने आई। प्रभुजी ने देवी को पास में आते देखकर कहा– "तुम ने महिला होकर रात में अकेले पुरुष के कमरे में आकर अन्याय किया है, अभी चली जाओ।" यह सुनकर देवी हँसकर बोलीं –"अरे! तुम तो मेरे पति हो, तुमने तो मुझसे विवाह किया है।" देखा जाता है, मानसिक वृत्ति का सर्वांगीण विकास होने से पहले ही देवी प्रभुजी को पतिरूप में जान गई थी। परवर्तीकाल में इस प्रसंग में देवी ने एकदिन कहा था– "पत्नी पति के बिना अन्य पुरुष को क्षणभर के लिए भी हृदय में स्थान दे सकती है, यह मैं विश्वास नहीं करती।" देवी की इस बात से उनकी मानसिक स्थिति एवं भावना प्रकट होती है। बालिका वधू से इस तरह की उक्ति सुनकर प्रभुजी विस्मित हो गए, फिर कौतुक करने के लिए बोले, "पति के कमरे में खाली हाथ नहीं आना चाहिए, कुछ आहार लेकर आना चाहिए।" यह सुनकर सरल बालिका जननी के पास जाकर सब बोली, जननी ने भी विशेष आनन्द अनुभव किया एवं अगले दिन रात में एक पात्र में विभिन्न मिठाई देकर कन्या को प्रभुजी के शयनागार में भेजा। उस समय प्रभुजी के बाल्यसाथी अघोरनाथ गुप्त महाशय वहाँ उपस्थित थे। देवी को आहार पूर्ण पात्र लेकर कमरे में प्रवेश करते देखकर प्रभुजी ने अघोरनाथ की ओर अंगुली दिखाकर देवी से कहा कि ये उनके भाई हैं, इसलिए मिठाई दोनों को बांट दें। यह सुनकर देवी दोनों को मिठाई बांटकर चली गई। इस तरह प्रायः प्रभुजी की ज्येष्ठ भ्रातृवधू मिठाई का पात्र देकर देवी को प्रभुजी के शयनागार में भेजती थी एवं छिपकर दोनों की बातें सुनती थी। दोनों की बातें इतनी मधुर थीं कि जननी मुक्तकेशी देवी भी अपनी पद–मर्यादा भूलकर दरवाजा के पीछे छिपकर उन लोगों के बातें सुनती थीं।

इस तरह योगमाया देवी का मधुर बाल्यकाल बीत गया। इसके बाद उनको जीवन की कठोर समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्होंने पति के आदर्श पर अविचल निष्ठा रखकर सब कुछ मान लिया था। उनको नारी जीवन की कठोर से कठोरतर परीक्षा का सामना करना पड़ा था। शांतिपुर के गोस्वामीगण श्री अद्वैताचार्य के वंशधर होने से, कुलगुरु का कार्य ही उनका प्रमुख पेशा था। शिष्यलोग जानते थे कि गोस्वामीगण ही उनके उद्धारकर्ता हैं। साल में एक–दो बार गुरु लोग शिष्यों के घर भ्रमण करते थे। इससे जो अर्थ आदि मिलता था वही इन लोगों की आजीविका थी। गोस्वामी प्रभुजी के एक पैतृक शिष्य ने एकबार उनके पदपूजा करने के बाद हाथ जोड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से एवं सरल भक्तिभाव से भवसागर से पार कराने के लिए प्रार्थना की। गोस्वामी प्रभुजी ने इस विषय में

शिष्यों का अंधविश्वास, साधारण कुलगुरु की धृष्टता एवं अपनी अक्षमता अनुभव की। उनके मन में सत्य का अनुसरण करते हुए यह विचार आया कि **आज तक मेरी स्वयं के दुःखों से निवृत्ति नहीं हुई है। मैं कैसे दूसरे लोगों का उद्धार कर सकता हूँ ? इस प्रकार आत्मविचार करते हुए उसी दिन से उन्होंने पैतृक कुलगुरु का कार्य करना बन्द कर दिया।** आजीविका का साधन बन्द हो जाने पर वे कोलकाता में मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गए एवं चिकित्सा व्यवसाय द्वारा परिवार का भरण पोषण चलाने का विचार किया। यहाँ रहते समय वे ब्राह्मसमाज के संपर्क में आए एवं महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के निकट ब्राह्मधर्म ग्रहण कर लिया। उस समय के हिन्दू समाज में धर्म संबंधित विभिन्न भ्रम, कुसंस्कार एवं जातिभेद का दुष्परिणाम देखकर उनके मन में अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने ब्राह्मसमाज के सिद्धान्त के अनुसार मूर्ति पूजा, जातिभेद आदि परित्याग कर दिया। पूर्णरूप में जाति का अभिमान परित्याग करके समग्र मानव–जाति को भातृरूप में ग्रहण करने के लिए अपना उपवीत (जनेऊ) भी उन्होंने त्याग दिया। इससे हिन्दू समाज में जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हुआ। सब लोग गोस्वामी प्रभुजी की निन्दा करने लगे। प्रभुजी के रास्ते में निकलने पर कोई उनके ऊपर धूल फेंकता, कोई गाली देता तो कोई मारने जाता। गोस्वामी प्रभुजी के बड़े भाई ब्रजगोपाल ने गोस्वामी हिन्दू समाज द्वारा उत्तेजित होकर अपने भाई को त्याग दिया। इस तरह गोस्वामीजी को जातिच्युत किया गया। यह सब देखकर देवी के भीतर किसी प्रकार की उत्तेजना अथवा कोई प्रतिवाद सूचक बात या पति के प्रति श्रद्धाभक्ति एवं प्यार में कोई कमी नहीं हुई। गोस्वामी प्रभुजी को देवी को लेकर अपना घर छोड़ना पड़ा। उनकी कुछ आय नहीं थी। इस अवस्था में केवल ईश्वर की कृपा पर निर्भर करके प्रभुजी ने शांतिपुर त्याग दिया। उनकी सास मुक्तकेशी देवी भी उनके साथ चली गईं।

उस समय देवी बहुत छोटी नहीं थी। वह पति की अवस्था समझती थीं, इसलिए उन पर कोई दोषारोपण नहीं किया। केवल अश्रुपूर्ण नेत्रों से पति को देखती रहती थी एवं नीरव भाषा में उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करती थीं एवं उनके सारे अपमान धरित्री की तरह सहन करती थी। प्रभुजी के बड़े भाई ब्रजगोपाल गोस्वामी के प्रति भी देवी ने कोई अश्रद्धा प्रदर्शित नहीं की। धीर, स्थिर एवं प्रशांतरूप में देवी पति के साथ घर छोड़कर चली आईं। जो नारी विपत्ती के समय में भी प्रसन्न चित्त से पति का साथ देती है, वह नारी समाज में पूजनीय होती है। इससे पता चलता है, देवी गोस्वामी प्रभुजी की योग्य पत्नी थीं। वह धर्म परायण थीं। भगवान के प्रति उनकी अगाध भक्ति एवं सुगंभीर निष्ठा थी। वे सर्वदा सेवा परायण होकर पति के पास रहती थीं। किसी भी अवस्था में उन्होंने पति के विरुद्धाचरण नहीं किया। पति सेवा उनके जीवन का व्रत था। जीवन के

अंतिम समय तक वे इस व्रत का पालन करती रहीं। उन्होंने अपने आपको पति के श्रीचरण में उत्सर्ग किया था।

ऐसी सर्व–गुणसंपन्ना रमणी बहुत कम दिखलाई पड़ती है। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था, – "मैंने अनेक कठोर तपस्या द्वारा जो अवस्था प्राप्त की है, उसने (योगमाया देवी) केवल मेरी सेवा करके वही अवस्था प्राप्त की।" रमणीगण नारायण ज्ञान में पतिसेवा करके भगवान को प्राप्त कर सकती हैं लेकिन मनुष्य बुद्धि द्वारा भक्ति करने से यह अवस्था प्राप्त करना संभव नहीं। पतिव्रता की महिमा शास्त्र में भी कही गई है। वहाँ पतिव्रता को ही श्रेष्ठ कहा गया है। जो नारी पति को नारायण रूप में स्वीकार कर भक्तिपूर्वक निर्विचार भावना से पति आज्ञा का पालन करती है उसे पतिव्रता कहते हैं। देवी सर्वदा मधुर भाषिणी थी। वह अधिक बातें नहीं करती थी। वह वृक्ष की तरह सहनशील एवं धरित्री जैसी धीर थीं। दुःख में भी वह कभी विचिलित नहीं होती थी। उनको दारिद्रता में रहकर अनेक कष्ट झेलने पड़े थे, लेकिन उनके मन में कभी भी उदासी नहीं आई। अनाहार रहते हुए भी उनको अप्रसन्न नहीं देखा जाता था। किसी को पता भी नहीं चलता था कि वे उपवासी हैं।

देवी बहुत दयालु थीं। दीन–दुःखी को देखने से उनका हृदय दुःखी होता एवं वे तुरंत उन लोगों के अभाव दूर करने की चेष्टा करती थी। सब लोग उनके अपने थे – उनमें अपने–पराये का बोध नहीं था। आश्रम में अनेक लोग रहते थे। देवी सभी का अपनी संतान की तरह प्रति पालन करती थीं। अपनी संतान एवं आश्रम–वासियों में उनके लिए कोई भेद नहीं था। सबको समान आहार मिलता था। एक मात्र पुत्र योगजीवन को भी सबके साथ समान अंश मिलता था। देवी थी सदानन्दमयी। उनके मुखमण्डल पर सर्वदा हँसी एवं स्नेहपूर्ण पवित्र मातृभाव विराजमान रहता था। क्षणभर के लिए उनके पास बैठने से प्राण स्निग्ध हो जाता था। उनकी सौम्यमूर्ति के दर्शन से हृदय आनन्द से भर जाता था।

योगमाया देवी बंगला सन् 1269 में शांतिपुर समाज द्वारा परिवर्जित होकर पति एवं माँ के साथ कोलकाता आई। सब कुटम्बियों एवं मित्रों ने उनका परित्याग किया, केवल गोस्वामी प्रभुजी के बहनोई किशोरीलाल मैत्र महाशय ने उनका त्याग नहीं किया। इसलिए गोस्वामी प्रभुजी की बहन को भी शांतिपुर के घर में स्थान नहीं मिला। मैत्र महाशय पत्नी को भी कोलकाता ले आए। पटलडांगा स्ट्रीट के साधारण एक घर में सब लोग एक साथ रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन पारिवारिक ब्राह्म उपासना होती थी। एक महीना बाद गोस्वामी प्रभुजी की बड़ी बहन बोलीं, मूर्ति की उपासना से ब्रह्मोपासना उनको ज्यादा पसन्द है। उसने भी ब्रह्मोपासना शुरू की। पहले पूजा न करके जैसे पानी भी नहीं पीती थी, अब भी ब्रह्मोपासना

किए बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करतीं। मैत्र महाशय जिस प्रकार सांसारिक कष्ट में थे, उपासना में गंभीर अनुराग नहीं रहने पर कोई भी इस प्रकार कष्ट सहन नहीं कर सकता। इस बारे में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा है – "धर्म के लिए मनुष्य कितना दुःख सहन कर सकता है वह मैंने उनके जीवन में प्रत्यक्ष किया। पाँचों संतानों के साथ यह कष्ट सहन करना वास्तव में असंभव था, इसमें कोई संदेह नहीं है। मूर्तिपूजा एवं हिन्दूमतानुसार पुत्र का विवाह करने से मैत्र महाशय को सहस्र मुद्रा प्राप्त होती, लेकिन सत्य पालन के लिए वह अर्थ उन्होंने तृणवत् परित्याग किया। धर्मराज्य का यह अति सुन्दर दृश्य है। उन लोगों का कष्ट देखकर अपना कष्ट सामान्य लगता था।"

गोस्वामी प्रभुजी के कोलकाता आने की खबर सुनकर पंडित शिवनाथ शास्त्री, डा० रामप्रसाद सेन आदि ब्राह्म प्रभुजी से मिलने के लिए किशोरीलाल मैत्र महाशय के घर आए। सब लोग माता योगमाया देवी से मिलकर बहुत आनन्दित हुए। शास्त्री महाशय ने गोस्वामी प्रभुजी की ओर अंगुली दिखाकर देवी से पूछा "वह तुम्हारे कौन है ?" देवी उत्तर दी, "वह मेरे आर्यपुत्र है।" बालिका वधू के मुँह से यह उत्तर सुनकर शास्त्री महाशय बहुत प्रसन्न हुए। गोस्वामी प्रभुजी के ब्राह्मसमाज में प्रवेश करने पर भी उनके परिवार में प्राचीन हिन्दू रीति–नीति प्रचलित थी। शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्मगण बाल–विवाह विरोधी थे, लेकिन देवी के नम्र व्यवहार, उनकी सरल पतिनिष्ठा देखकर एवं देवी के मुँह से सनातन सत्य वाक्य श्रवण करके बाल–विवाह के बारे में कुछ नहीं बोले।

अब तक देवी किसी प्रतिष्ठान में नहीं पढ़ी थीं। गोस्वामी प्रभुजी ने देवी को ब्राह्मबालिका विद्यालय में भर्ती कर दिया। यहाँ कभी गोस्वामी प्रभु, कभी उनके बाल्यबंधु अघोरनाथ गुप्त महाशय शिक्षा प्रदान करते थे। एकदिन ब्रह्मानन्द केशव सेन आदि कई ब्राह्म उस विद्यालय में बालिकाओं की परीक्षा लेने आए। केशवचन्द्र ने योगमाया देवी को हिंसा शब्द का अर्थ पूछा। हिंसा के बारे में देवी का कोई संस्कार नहीं था, इसलिए वह मौन रहीं। बार–बार पूछने पर देवी ने कहाँ – "हिंसा कौन है ? उसका घर कहाँ है ? वह कहाँ रहता है ?" यह उत्तर सुनकर सब लोग हँसने लगे। देवी अपने आप को अपराधी सोचकर मस्तक नीचा करके खड़ी रहीं। केशवचन्द्र द्वारा देवी को हिंसा का अर्थ समझाने की चेष्टा करने पर साधु अघोरनाथ ने उन्हें रोका और कहा कि बालिका में अबतक हिंसा का संस्कार नहीं आया, अतः इस निर्मल प्राण में हिंसा का स्वरूप नहीं जानना ही अच्छा है। हिंसा भयानक रिपु है। धर्मपथ में सर्वदा हिंसा का त्याग करना चाहिए। बुद्धदेव ने कहा है, "अहिंसा परमो धर्मः।" अहिंसा नीति के कारण भारत आज भी धर्म गुरु के आसन पर है। शांतिपुर से विताड़ित होने के समय चारों ओर हिंसा

की आग फैल गई थी, लेकिन उस आग ने देवी को स्पर्श तक नहीं किया। संपूर्ण हिंसा शून्य होकर उन्होंने जन्म लिया था एवं जिन्दगी में कभी भी हिंसा भावना ने उनको स्पर्श नहीं किया था। इस बारे में प्रभुजी के अनन्यतम शिष्य श्रीधर घोष महाशय ने कहा था, "मैंने माता योगमाया देवी के बारे में विचार करके देखा है कि जीवन में कभी भी उनमें परनिंदा, दूसरों का अनिष्ट करने की चेष्टा या हिंसा भाव नहीं देखा गया।" गोस्वामी प्रभुजी को ब्राह्मधर्म प्रचार का दायित्व दिया गया। इसलिए वे केशवचन्द्र सेन द्वारा स्थापित प्रचारक निवास में योगमाया देवी एवं मुक्तकेशी देवी के साथ रहने लगे। प्रभुजी को ब्राह्मधर्म प्रचार के लिए सर्वत्र परिभ्रमण करना पड़ता था। उनके परिवार के भरण–पोषण का भार ब्राह्मसमाज पर देकर प्रभुजी दूर–दूर तक ब्राह्मधर्म प्रचार करने लगे। लेकिन देवी, माता के साथ विभिन्न जाति के एवं संपूर्ण अनजान लोगों में दिन गुजारती थीं। कभी किसी के साथ क्षणभर के लिए भी संपर्क खराब नहीं हुआ।

निराकार ब्रह्मोपासना क्या है, यह बहुत दिनों तक देवी नहीं समझ पाई थीं। जाड़े की एक रात में गोस्वामी प्रभुजी द्वारा ब्रह्म के स्वरूप के बारे में देवी से प्रश्न करने पर देवी ने कहा कि ब्रह्म निराकार है। इसके बाद निराकार शब्द का अर्थ पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि ब्रह्म शालिग्राम की तरह गोलाकार है। देवी शालिग्राम चक्र को भगवान का स्वरूप मानती थी, इसलिए सरलरूप में देवी ने यह उत्तर दिया। उत्तर सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने सोचा कि उनकी इतने दिनों की शिक्षा व्यर्थ हो गई। इसलिए नाराज होकर एक घड़ा ठंडा पानी देवी के शरीर में डाल दिये। पति की नाराजगी का कारण देवी नहीं समझ सकी। मुक्तकेशी देवी ने कन्या को सुखे वस्त्र पहनाकर निराकार ब्रह्मतत्व समझाया।

इस तरह विभिन्न सुख–दुःख के साथ देवी ने यौवन प्राप्त किया। गोस्वामी प्रभुजी बाल्यकाल से अत्यन्त संयमी पुरुष थे। माता के अनुरोध पर विवाह किया था। संसार में रमने की इच्छा उनको एकदम नहीं थी। अधिकतर समय परिवार से विच्छिन्न होकर वे प्रचार कार्य करते थे। दीर्घकाल पति से अलग रहकर भी उनमें पति के प्रति भक्ति में कमी नहीं हुई। अपने लिए उन्होंने कभी भी पति के धर्म कार्य में बाधा नहीं डाली। अपने भोग विलास के लिए उन्होंने कभी भी पति से कोई प्रार्थना नहीं की। पति स्वेच्छा प्रवृत्त होकर जो कुछ देते, देवी उसे आनन्द के साथ ग्रहण करती थी। इस बारे में देवी ने एकबार गोस्वामी प्रभुजी के अनन्यतम शिष्य विधुभूषण मजूमदार महाशय की पत्नी से कहा था– "मैंने कभी भी पति से किसी भोग्य वस्तु की कामना नहीं की। तुम लोग भी पति का अकपट प्यार पाने के लिए उनसे कुछ कामना नहीं करना।" कुछ दिन बाद देवी की प्रथम कन्या संतोषिणी का जन्म हुआ। इससे देवी के हृदय में मातृभाव जाग्रत हुआ एवं देवी

चरित्र की मघुरता और बढ़ गई। गोस्वामी प्रभुजी को संसार देखने का समय हीं मिलता था। देवी को ही सबकुछ देखना पड़ता था। ब्राह्मसमाज से जो अर्थ िलता था, उससे परिवार की शाकान्न की व्यवस्था हो सकती थी लेकिन अतिथि ाने पर प्रायः परिवारवर्ग को निराहार ही रहना पड़ता था। संसार में किस प्रकार र्थाभाव था, इसका एक निदर्शन नीचे दिया गया है –

एकदिन गोस्वामी प्रभुजी निर्जन में उपासना के लिए सुबह कांकुड़गाछि ोगोद्यान में चले गए। उपासना में दो प्रहर बीत गया। तृतीय प्रहर में उनको बहुत ूख लगी उन्होंने एक जलाशय से पानी पीया। शाम को घर में आकर देखा कि वहाँ भी अर्थाभाव के कारण रसोई नहीं हुई है। मुक्तकेशी देवी ने एक कुटुम्ब के पास से थोड़ा–सा चावल लाकर देवी को दिया एवं स्वयं कुँआ का पानी पी लिया। प्रभुजी यह सब देखकर सो गए। उसी समय यदुनाथ चक्रवर्ती नाम के एक ब्राह्म गोस्वामी प्रभुजी के साथ धर्म प्रसंग करने आए। उनके जेब में डेढ़ पैसा था। उससे मुर्रा खरीदकर तीनों ने एक–एक मुट्ठी खाया। दूसरे दिन ब्राह्म कांतिबाबू ने चक्रवर्ती महाशय से यह घटना सुनकर आठ आने प्रभुजी के पास भेजे। उस अर्थ से देवी ने चीजें खरीदकर खाना बनाया। उस समय दो अतिथि आए। एकजन तीन दिनों से भूखा है जानकर उनलोगों को भोजन कराया गया। इसके बाद गोस्वामी प्रभुजी ने भोजन किया एवं अवशिष्टांश देवी एवं उनकी माता ने ग्रहण किया। इसके बाद मुक्तकेशी देवी को पूजा के बर्तन बेचकर खाद्य सामग्री संग्रह करनी पड़ी। इस तरह देवी को प्रायः अनाहार तथा अर्धाहार में दिन बिताना पड़ता था। आश्चर्य की बात यह है कि सांसारिक अभाव के कारण देवी में कोई मलिनता नहीं दिखाई दी। इसके लिए वह कभी भी पति से कुछ नहीं बोलीं। इस बारे में शिष्य श्यामाकांत चट्टोपाध्याय से गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था, "उनकी (योगमाया देवी की) सहायता से ही मैं धर्मपथ पर अग्रसर हो सका। नारी जाति में जो मोहिनी शक्ति है, उसे अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करने से पुरुष धर्मपथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। लेकिन उसने एकदिन भी मेरे पास कोई भोग्यवस्तु की कामना नहीं की। मेरे संसार के अर्थाभाव के कारण मैंने उनको कभी भी अप्रसन्न नहीं देखा। इसके लिए उन्होंने कभी भी मुझे दोषी नहीं बताया। उनके आचार–व्यवहार में भी बिन्दुमात्र क्षोभ प्रकाशित नहीं हुआ।" देवी सीतादेवी की तरह हँसते हुए गोस्वामी प्रभुजी का छाया की तरह अनुगमन करती थी। पति के सुख–दुःख के साथ उन्होंने अपने आप को मिला दिया था। अपनी स्वाधीनता पति में विसर्जन करके देवी निश्चिन्त थीं। इसलिए पार्थिव सुख–दुःख उनको विचलित नहीं करते थे। गोस्वामी प्रभुजी ने अर्थाभाव के कारण ढाका में धर्मप्रचार के साथ–साथ चिकित्सा व्यवसाय शुरू किया। पर ज्यादा दिन यह व्यवसाय वे नहीं कर सके। कई साल

बाद भगवत् निर्देश से उन्होंने पुनः भिक्षा की झोली कंधे में ले ली थी। अतः देवी को अर्थाभाव में ही संसार यात्रा निर्वाह करनी पड़ी। अयाचित रूप में जो कुछ मिलता उससे संतुष्ट होकर सब कार्य चलाती थीं। उनकी कोई विलासिता नहीं थी। उनकी संतानों ने भी माता के आदर्श का पालन किया। किसी भी कारण से उनके संसार में शांतिभंग नहीं हुई। साधु श्रीधर ने उनके संसार चित्र का इस तरह अंकन किया – (उस समय गोस्वामी प्रभुजी भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज में अवस्थान कर रहे थे।) "ब्राह्मपल्ली में अवस्थान के समय हम लोग अधिकांश समय गोस्वामी महाशय के निकट रहते थे। प्रातः उठकर निर्जन में उपासनादि समाप्त करके गोस्वामी महाशय के पास बैठता था। उस समय गोस्वामी प्रभुजी भक्तमालादि ग्रन्थ पाठ करते थे। प्रतिदिन यातायात के कारण गुरुमाता योगमाया देवी मुझे विशेष रूप से पहचानती थी। लेकिन स्वभाव से वह इतनी लज्जाशील थीं कि प्रायः मेरे साथ बात नहीं करती थी। इस पल्ली की अन्यान्य ब्रह्मिकागण मेरे साथ स्वाधीन रूप में बातें करतीं एवं यूरोपीय महिलाओं के अनुकरण से पैर में जूता एवं माथे में टोपी लगाकर ब्राह्मसमाज में जाती थीं। लेकिन माता योगमाया उस प्रकार नहीं थी। उनमें कुछ विशेषता दिखलाई पड़ती थी। इसलिए उनके प्रति मेरी श्रद्धा भक्ति अधिक थी। एकबार संध्या के समय भ्रमण करते–करते माता योगमाया के घर में जाकर देखा, माताजी संतानादि को लेकर बरामदे में बैठी हैं। मैं भी उनके पास बैठ गया। माताजी कन्या श्री शांतिसुधा से बोली, "एक ब्रह्मसंगीत गाओ।" यह बात उन्होंने इस तरह कही थी कि मैं समझ गया, मुझे सुनाने के लिए ही गाने को कहा गया था। आश्चर्य की बात है कि पल्ली के अन्यान्य घर में जाने से महिलाएं मुझसे पूछती थीं "श्रीधरबाबू कैसे हैं ?" एवं वे प्रायः धर्मकथा कहते थे, लेकिन माता योगमाया के पास कभी कोई उपदेश या धर्म कथा नहीं सुनी। उनके घर जाते ही उन्होंने मुझसे कुछ पूछे बिना कन्या द्वारा ब्रह्मसंगीत सुनाया। मैं जब भी गोस्वामी प्रभुजी से मिलने जाता था, माता योगमाया किस प्रकार संतानादि प्रतिपालन करती हैं, किस प्रकार गृहकार्यादि संपन्न करती हैं, यह जानने के लिए उनके कार्यादि के प्रति ध्यान देता था। मैंने देखा अधिकांश समय वे अतिशय शांत भाव से गृहकार्यादि संपन्न करती थीं। उनकी संतानों ने भी अन्य बच्चों की तरह क्या खायेंगे ? क्या पहनेंगे ? कहकर शोर मचाकर कभी भी गृह शांति भंग नहीं की। इसलिए माता योगमाया के प्रभाव से उनका घर शांति का आलय जान पड़ता था।" कभी–कभी उनके घर में आहारादि करने पर उनके अर्थाभाव के बारे में मुझे पता चला। मैं सोचता था, यदि मेरे पास पैसा होता तो मैं इनकी सहायता करता। एकबार माघोत्सव के समय एक ब्राह्म ने मेरे हाथ में एक अठन्नी (आठ आना) दे कर कहा, – "श्रीधर तुम इससे कुछ खरीद के खाना।" उसी समय मैंने माता

योगमाया की कन्या सुश्री शांतिसुधा को ब्राह्म बालिकाओं के साथ भ्रमण करते देखा। मैंने वह पैसा उसके हाथ में दिया। कुछ देर बाद शांतिसुधा मेरे हाथ में पैसा देकर बोली, "श्रीधरबाबू, मेरी सहेली के जन्मोत्सव में उपासना होगी। तुम उसके लिए कुछ माला एवं उत्कृष्ट खाद्य द्रव्य खरीद दो।" मैं उसके हाथ से पैसा लेकर माता योगमाया के घर गया। पैसा उनको देकर कहा – "मैंने यह पैसा आप की कन्या को दिया था, उसने इससे किसी बालिका की जन्मोत्सव के लिए फूल–माला एवं खाद्य द्रव्य खरीदने को कहा। इससे मैंने जाना कि आप की कन्या अर्थ का सद्व्यवहार करना नहीं जानती है। इससे आप प्रयोजनीय द्रव्यादि खरीदना।"

इतने दिनों तक माता योगमाया को पति के पास बैठकर बात करते नहीं देखा था। एकदिन गोस्वामी महाशय के घर जाकर देखा कि योगमाया देवी गोस्वामी महाशय के पास बैठकर हँस–हँसकर उनसे बातें कर रही थीं। यह देखकर उस समय मेरा वहाँ रहना उचित नहीं है, ऐसा विचार करके अन्यत्र चला गया। फिर एकदिन उनके घर जाकर देखा योगमाया उनकी सन्दूक खोलकर वस्त्रादि सजा रही हैं और गोस्वामी महाशय उनके पास खड़े होकर उस सन्दूक में से एक रेशमी वस्त्र की ओर अँगुली दिखाकर हँसते हुए कहे, "वह उत्तम पट्ट वस्त्र मुझे दे दो। मैं गैरिक रंग करके पहनूँगा।" तीन चार सालों में यह दो दिन गोस्वामी महाशय एवं योगमाया देवी को बातें करते देखा। लेकिन उस ब्रह्म पल्ली के अन्य परिवारों में, ब्राह्मसमाज में स्त्री स्वाधीनता रहने के कारण साहबों के अनुकरण से पति–पत्नी इच्छानुसार बातें करते थे। प्राचीन हिन्दुओं की भावना उनमें नहीं देखी जाती थी। केवल गोस्वामी महाशय के परिवार में ही वह भावना देखी जाती थी।

गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य भक्त श्रीधर द्वारा अंकित माता योगमाया देवी के संसार चित्र के दर्शन से पाठक का मन विस्मय से अभिभूत हो जाता है। माता का सहज सरल जीवन देवलोक में भी दुर्लभ है। गोस्वामी प्रभुजी के धर्मोत्कर्ष का प्रधान सहायक कारण माता योगमाया देवी थीं।

गोस्वामी प्रभुजी जब गुरु की खोज में व्याकुल होकर भारतवर्ष में सर्वत्र भ्रमण कर रहे थे, उस समय योगमाया देवी संतानों के साथ ब्राह्मसमाज के आश्रय में पति के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। उस समय देवी केवल भगवान की कृपा पर निर्भर थीं। देवी अपने स्वार्थ के लिए पति के धर्मकार्य में बाधा नहीं डालती थीं। यह उनके चरित्र का अनन्यतम गुण था। कुछ दिन बाद एकबार अचानक योगमाया देवी को खबर मिली कि उनके पति संन्यासी होकर गया के आकाशगंगा पहाड़ में रघुवरदास बाबाजी के आश्रम में अवस्थान कर रहे हैं। खबर मिलते ही देवी ने अपनी माता को लेकर आकाशगंगा पहाड़ पर जाकर देखा कि गोस्वामी

प्रभुजी आश्रम के पास एक गुफा में ध्यान कर रहे हैं। पति के धर्म कार्य में बाधा न देकर दूर से पति को प्रणाम करके आश्रम के एक प्रांत में वे बैठी रहीं। उस समय वे मौन रही। व्यवहार में भी कोई अस्थिरता नहीं थी। पति उनके बारे में क्या उपदेश दें, यह सुनने की वह प्रतीक्षा कर रही थीं। कुछ देर बाद रघुवरदास बाबाजी ने उनका परिचय पाकर उनसे कहा,"गोस्वामीजी का ध्यानभंग होने में देर है। संध्या हो रही है, अतः आज आप लोग शहर में चले जाइये, बाद में आईये।" योगमाया देवी अपनी माता के साथ शहर के वासभवन में लौट गईं।

ध्यानभंग होने पर गोस्वामी प्रभुजी बाबाजी से परिवार वर्ग का आगमन संवाद सुनकर दूसरे दिन सुबह उन लोगों के पास गए। उस समय प्रभुजी का मुण्डित मस्तक श्रीअंग गेरुआ वसन द्वारा सुशोभित देखकर योगमया देवी की अन्तरात्मा काँप उठी। संन्यासी पति के मुखमंडल पर गंभीर उदासीनता, निश्चल दृष्टि एवं मंथर गति देखकर देवी धीरे–धीरे पति के श्रीचरण में गिरकर बोली– "आप ने मुझे कभी परित्याग न करने ही प्रतिज्ञा ली थी। तो फिर ये वेश क्यों ग्रहण किया ?"

उत्तर में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "मैंने तुम्हारा परित्याग नहीं किया। संसार में धर्मकार्य में विघ्न होता है, इसलिए कुछ दिन इस तरह रहना चाहता हूँ।" योगमाया देवी पति से यह सुनकर कोई उत्तर नहीं दे सकी, केवल मौन रहकर अश्रु विसर्जन करने लगी। गोस्वामी प्रभुजी उनकी ओर ध्यान न देकर उदासीन होकर सास से एक–दो बातें कहकर आकाशगंगा पहाड़ चले गए।

उस समय देवी की मानसिक अवस्था का एक मात्र निदर्शन इतिहास में मिलता है, जब निमाई पंडित अर्थात श्री चैतन्य महाप्रभु विष्णुप्रिया देवी एवं शचीमाता को छोड़कर गए थे। प्रायः पांच सौ वर्ष पहले विष्णुप्रिया देवी की मानसिक अवस्था की पुनरावृत्ति हुई जननी योगमाया देवी के भाग्य में। शक्तिमयी जननी योगमाया देवी धीर–स्थिर चित्त से सब कुछ सहन करती रहीं एवं संतानों को लेकर अपने कर्तव्य का पालन करती रही। अचानक एकदिन गोस्वामी प्रभु ने देवी के पास आकर कहा, "और क्लेश नहीं पाना पड़ेगा। तुम भीषण परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई हो। मेरे गुरुजी ने कृपापूर्वक तुम्हें साथ में रखने का आदेश दिया है। उन्होंने कहा है, तुम्हारे द्वारा मेरे धर्मकार्य में कोई विघ्न नहीं होगा।" योगमाया देवी पति के मुँह से अभूतपूर्व अभयवाणी सुनकर आनन्दाश्रु से पति के पदद्वय सिक्त करने लगीं। प्रभुजी ने देवी को धीरे–धीरे भूमि से उठाकर अश्रु पोंछकर मधुर वचन से सांत्वना दी। जिनकी अपार करूणा से यह असंभव संभव हुआ तथा भयंकर अग्निपरीक्षा उत्तीर्ण होकर क्षण में सब मनः क्लेश दूर हो गया, उस अनन्त कृपामय पति के गुरुजी को देवी कृतज्ञतापूर्ण चित्त से बार–बार प्रणाम करने लगीं। वे मानस नेत्र में महापुरुष को देखते–देखते कृतज्ञता से अभिभूत हो गईं।

इसके बाद योगमाया देवी गोस्वामी प्रभुजी के साथ कोलकाता आईं। उसी समय से गुरुजी के आदेश से गोस्वामीजी जाति वर्ण विचार किए बिना सब संप्रदाय के दीक्षार्थियो को योगसाधन देने लगे। उनके साधना की असाधारण शक्ति देखकर ब्राह्मसमाज के अनेक लोग उनके शिष्य होने लगे। कुछ दिन बाद प्रभुजी को योगमाया देवी एवं संतानादि के साथ मानिकदह जाना पड़ा वहाँ के जमींदार विपिनचन्द्र राय को साधन प्रदान करने के लिए। उसके बाद रंगपुर जिले के अंतर्गत काकिना के राजा रायबहादुर महिमा रंजन महाशय के आमंत्रण पर गोस्वामी प्रभुजी योगमाया देवी एवं कई शिष्यों के साथ वहाँ के ब्राह्म मंदिर प्रतिष्ठा के उत्सव में योगदान करने गए। काकिना का कार्य समाप्त होने पर प्रभुजी कामाख्या पीठ दर्शन के लिए कामाख्या गए। योगमाया देवी भी साथ में थीं। विभिन्न स्थानों में पति के साथ रहकर उनकी सेवा परिचर्यादि करके देवी को तृप्ति लाभ हुआ। कामख्या से ढाका लौटने पर देवी ने गोस्वामी प्रभुजी से दीक्षा के लिए प्रार्थना की। प्रभुजी ने सम्मति प्रदान की। देवी शुभ समय की प्रतीक्षा करने लगी। अंत में ढाका प्रचारक निवास में रहते समय एकदिन गोस्वामी प्रभुजी ने यथारीति शक्तिसंचार के साथ देवी को दीक्षा प्रदान की। देवी के भीतर सुप्त योगशक्ति के विकास से उनके शरीर में कंपन होने लगा। धीरे–धीरे अश्रुपुलकादि सात्विक भावों का विकास होने लगा। कुछ क्षण बाद दिव्य दृष्टि में कुछ देखकर पागल की तरह "ये तो वही है", "ये तो वही है" कहते–कहते वे अचेतन हो गईं। प्रभुजी ने उनकी पीठ पर हाथ रखकर कान में हरिनाम सुनाया। चैतन्य हाने पर देवी विस्मित होकर बोलीं – "वही सफेद दाढ़ी एवं लाल मुँह वाले महात्माजी को मैंने फिर देखा।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा – "तुम भाग्यवती हो। तुमने दीक्षा के समय श्री अद्वैप्रभुजी का दर्शन किया है। बाल्यकाल में उन्होंने ही कृपापूर्वक तुम्हें दर्शन दिया था, लेकिन उस समय मैं उनकी मर्यादा रक्षा नहीं कर सका।" इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि, बाल्यकाल में एकदिन देवी सफेद दाढ़ी एवं लाल मुखमंडल विशिष्ट एक महापुरुष का दर्शन करके अचेत हो गई थीं। ज्ञान होने पर देवी ने पति को इस बारे में बताया। गोस्वामी प्रभुजी ने उस घटना को मर्यादा न देकर "यह सब कुछ नहीं है" कहकर देवी का भय दूर करने की चेष्टा की थी। उस दिन की घटना आज गोस्वामी प्रभुजी के पास स्पष्ट हुई।

साधन प्राप्ति के बाद माता योगमाया के जीवन में विभिन्न परिवर्तन देखे गये। उनके भीतर धर्म के गूढ़ तत्वों का विकास होने लगा। पति की गुरु एवं इष्ट देव के रूप में उपलब्धि करके प्रायः वे उनकी पुष्प चन्दनादि द्वारा पूजा करती थीं। पति के साथ दैहिक संबंध छिन्न हो गया। परम दयाल ब्रह्मानन्द परमहंसजी ने केवल साथ में रहने की अनुमति दी थी। गोस्वामी प्रभुजी ने जब संन्यास ग्रहण

किया था तब उनकी सर्वकनिष्ठ संतान प्रेमसखी (कुतुबुड़ी) ढाई साल की थी।

साधारणतः संन्यासी लोगों को पत्नी के साथ रहना निषिद्ध है, लेकिन समर्थी साधक के लिए यह नियम अचल है। स्वयं महादेव ने योगीश्वर होकर भी पार्वती को अंक में स्थान दिया था। महादेव पार्वती के भीतर उनके इष्ट को देखते थे। प्राचीन ऋषि मुनि लोग भी इसी तरह रहते थे। योगमाया देवी एवं गोस्वामी प्रभुजी ने वही आदर्श दिखाया। गोस्वामी प्रभु ने भी पत्नी–पुत्र के साथ एकत्र वास करके संन्यास धर्म का पालन किया था। योगमाया देवी दीक्षा प्राप्ति के बाद पति के साथ दैहिक संबंध भूलकर पति की गुरु एवं इष्टदेव के रूप में सेवा करती थी। गोस्वामी प्रभुजी को संन्यास धर्म पालन करने में कोई विघ्न नहीं हुआ। इस विषय में प्रभुजी ने एकाधिक बार सुस्पष्ट रूप में उनके शिष्यों से कहा था।

माता योगमाया देवी के दीक्षा ग्रहण के कुछ दिन बाद एकदिन प्रभुजी सपरिवार श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गए थे। आसन ग्रहण करने के पश्चात् श्रीरामकृष्ण देव के पूछने पर गोस्वामी प्रभुजी ने उनके परिवार का परिचय दिया। परमहंसदेव ने विस्मय के साथ कहा – "तुमने पत्नी–पुत्रादि के साथ रहकर धर्म की इस तरह उच्चावस्था प्राप्त की है ? तुम तो जनक ऋषि का धर्मयाजन कर रहे हो। मेरी धारणा थी, तुम संसार से उदासीन होकर केशव बाबू के साथ रहते हो। तुम धन्य हो। तुमने जो आदर्श दिखाया वह वर्तमान युग में दुर्लभ है।" कुछ देर बाद परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने योगमाया देवी को लक्ष्य करके कहा–"**विजय तुमने कितने दिन पहले इनको साधन दिया है। इनके भीतर अद्भुत शक्ति देख रहा हूँ। साक्षात् महाशक्ति के आविर्भाव से मेरे भीतर जो भाव उदय होता है, इनको देखकर वही भाव हो रहा है।**" यह कहकर उन्होंने योगमाया देवी को माँ संबोधन करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

इससे यह स्पष्ट है कि दीक्षा ग्रहण के बहुत ही कम समय में देवी ने अपूर्व साधनशक्ति प्राप्त की थी।

गोस्वामी प्रभुजी उनके गुरुजी के निर्देश से ब्राह्मसमाज में रहकर अपना साधन–भजन एवं सत्य सनातन ब्राह्मधर्म प्रचार करते थे। प्रचार के लिए उनको विभिन्न स्थान पर जाना पड़ता था। उस समय माता योगमाया भी संतानों को लेकर प्रभुजी के साथ सब धर्म कार्य में सहायता करती थीं। कुछ दिन बाद कोलकाता ब्राह्मसमाज के साथ गोस्वामी प्रभुजी का मतांतर होने के कारण उन्होंने प्रचारक का पद त्याग दिया एवं ढाका चले गए। वहाँ पूर्वबंग ब्राह्मसमाज ने उनका आचार्य पद पर वरण किया। प्रभुजी योगमाया देवी के साथ ढाका प्रचारक निवास में रहकर अपना कर्तव्य पालन करने लगे। कुछ दिन बाद इस ब्राह्मसमाज के साथ भी मतभेद होने के कारण गुरुजी के निर्देश से ब्राह्मसमाज त्याग करके ढाका

एकरामपुर में एक घर किराए पर लेकर स्वाधीन रूप में साधन–भजन करने लगे। यहाँ उनके शिष्य एवं भक्तवृन्द आते–जाते थे। माँ योगमाया देवी सबको संतान वात्सल्य से समादर करती थी। अपने हाथों से रसोई करके सबको परितृप्तिपूर्वक भोजन कराती एवं स्वयं जूठा (उच्छिष्ट) साफ करती थीं। उनके स्नेह में इतनी आन्तरिकता थी कि शिष्य एवं भक्तगण अपना घर–परिवार–परिजन छोड़कर सर्वदा प्रभुजी का संग करते थे। माता योगमाया देवी का अतुलनीय वात्सल्य, प्राचीन युग के ऋषि एवं ऋषि–पत्नियों की याद दिलाता है। इस विषय में कुछ घटनाओं का नीचे उल्लेख किया गया है जिससे माता योगमाया देवी का स्नेह–वात्सल्य स्पष्ट होता है –

एकबार कई शिष्य शांतिपुर बाबला में श्री अद्वैतपाट दर्शन के लिए शाम को रवाना हुए। संध्या के समय तूफान एवं बारिश शुरू हो गई। माँ योगमाया देवी का मन अत्यंत चंचल हो उठा। उन्होंने शिष्यों के प्रत्यावर्तन के कोई लक्षण नहीं देखकर पति को लालटेन देकर उन लोगों का अनुसंधान करने भेजा। रास्ते में प्रभुजी के साथ शिष्यों की मुलाकात हुई। घर पर आकर सबने देखा माता योगमाया उन लोगों के लिए व्यग्र होकर केवल घर के अन्दर–बाहर चहलकदमी कर रही थीं।

गोस्वामी प्रभुजी शिष्यों की विरूपता देखने से कठोर शासन करते थे। एकबार एक शिष्य को शासन करने के लिए आश्रम से निकाल दिया एवं साथ–साथ यह भी कहा कि यदि कोई उसको किसी प्रकार की सहायता करेगा तो उसे भी आश्रम त्याग करना पड़ेगा। दोषी निराश्रय शिष्य आहार के लिए अत्यंत क्लेश पाने लगा। गोस्वामी प्रभुजी के शासन के कारण किसी भी शिष्य ने उसको सहायता करने का साहस नहीं किया। लेकिन माँ योगमाया देवी के प्राण दुःखी हो उठे। उस शिष्य संतान की दुरावस्था देखकर अंत में देवी स्थिर नहीं रह सकी। वह छिपाकर उसे आहार वस्तु देती थीं। जितने दिनों तक प्रभुजी ने उसे क्षमा करके आश्रम में रहने की अनुमति नहीं दी, माता योगमाया देवी उसको छिपाकर खाद्यवस्तु देती रहीं।

भक्त श्रीधर ने स्वयं कहा था, "मानस सरोवर स्थित महात्मा परमहंसजी का आदेश प्राप्त करके गोस्वामी महाशय ने साधन देना शुरू किया। मैंने साधन लेने के लिए ढाका गमन किया। दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनके घर में अवस्थान करने लगा। योगमाया देवी अपने हाथों से रसोई बनाकर मुझे भोजन कराती थीं। साधन प्राप्ति के बाद मेरा अचानक परिवर्तन हुआ। मैं प्रायः जंगल में पागल की तरह घूमता रहता था। उस समय अनेक लोग मुझे वायुग्रस्त कहते थे। कोई मुझे पागल भी कहता था। उस पागल अवस्था में माता योगमाया देवी मुझे सहानुभूतिपूर्वक

भोजन कराती एवं सांत्वना देती थीं।"

एकबार माँ योगमाया देवी ने सुना कि एक गर्भवती शिष्या अरुचि के कारण कुछ भोजन नहीं कर रही है। यह सुनकर देवी वहाँ जाकर शिष्या को आहार कराने बैठीं। बाँयें हाथ में एक लाठी लेकर देवी स्वयं उसको आहार कराने लगी उन्होंने कहा, "नहीं खाने से पीठ पर लाठी पड़ेगी। वह शिष्या गुरुमाता का असाधारण वात्सल्य देखकर मुग्ध हो गई एवं सब खाद्य ग्रहण कर ली। शिष्या ने फिर कभी आहार में अनिच्छा व्यक्त नहीं की।

एक शिष्या को पितृवियोग होने पर माँ योगमाया ने उनके घर जाकर केवल सांत्वना नहीं दी, उसके साथ बैठकर हविष्यान्न भी ग्रहण किया। पितृवियोग के आघात से वह शिष्या अनाहार ही रहेगी, इसलिए देवी ने यह पथ अवलंबन किया। निर्दिष्ट समय तक माँ योगमाया देवी उसके साथ हविष्यान्न ग्रहण करती रहीं।

प्रत्येक विषय में शिष्य – शिष्याओं के प्रति माँ योगमाया देवी का अगाध स्नेह दिखाई देता था। पतिस्नेह से वंचिता किसी निराश्रया शिष्या को माँ प्रतिदिन स्नान करातीं, वस्त्र पहनातीं, केश–विन्यास कर देतीं, फिर अपने पास बैठाकर आहार करातीं। इस प्रकार अनेक घटनाओं से माँ के असामान्य शिष्य वात्सल्य का परिचय मिलता है।

बंगाब्द 1295 सन् (सन् 1888 ई०) के भाद्रमहीने के जन्माष्टमी तिथि में गोस्वामी प्रभुजी एकरामपुर का घर छोड़कर शिष्यों द्वारा निर्मित गेण्डारिया आश्रम में चले आए। वहाँ वे संपूर्ण स्वाधीन रूप में अपना धर्म प्रचार करने लगे। उनके धर्म–प्रचार में प्रधान सहाय थी श्रीमती योगमाया देवी। आश्रम के भीतरी सभी कार्य देवी स्वयं करती थीं। प्रातः काल से रात दस बजे तक विभिन्न कार्यों में देवी अपने को संलग्न रखती। रात में भोजन के बाद कन्या शान्तिसुधा एवं प्रेमसखी (कुतुबुड़ी) के साथ अपने शयन कक्ष में वे जाती थीं। आहार के बाद रात 12 बजे तक गोस्वामीजी अपने साधन कुटीर में ध्यान मग्न रहते थे एवं रात्रि 12 से 3–4 बजे तक माता योगमाया देवी के कमरे में ध्यान मग्न रहते थे। माता योगमाया देवी भी पृथक आसन पर बैठकर उस समय साधना में मग्न रहती थीं। इस तरह दीर्घकाल उन्होंने कठोर साधना की थी।

दिन के समय देवी प्रतिदिन गोस्वामीजी की पूजा करती थीं। देवी किस प्रकार प्रभुजी की पूजा करती थी एवं उस समय दोनों में किस प्रकार भाव सृष्टि होता था, यह उन लोगों के अज्ञात में वनारिपाड़ा निवासी शिष्य सत्यकुमार गुह महाशय की पत्नी श्रीमती योगमाया गुह ने देखा था। नीचे उनकी प्रदत्त विवरणी दी गई है –

श्रीश्री गुरुजी एवं माँ योगमाया देवी कुछ दिन कोलकाता सुकिया स्ट्रीट में थे। उस समय कई दिनों के लिए उन लोगों के चरणप्रांत में रहने का सौभाग्य हुआ था। उस समय मैं देखा करती थी कि माता योगमाया देवी दिन के प्रायः 11 बजे फूल चन्दनादि लेकर आसनघर के बगल के कमरे में प्रवेश करती थीं। उस समय वहाँ कोई नहीं रह सकता था। एकदिन मेरा कौतुहल हुआ कि माता योगमाया देवी फूल चन्दनादि से उस कमरे में क्या करती है ? देखना ही पड़ेगा। यह सोचकर मैं उस कमरे की खिड़की के पीछे छिप गई। माँ ने एक थाली में फूल चन्दन एवं कुछ आहार लेकर उस कमरे में प्रवेश किया। कुछ क्षण बाद गुरुजी वहाँ आए। माता योगमाया देवी ने पहले ठाकुर को प्रणाम किया फिर उनके सामने बैठकर विभोर होकर फूल चन्दनादि द्वारा उनके पदयुगल की पूजा करने लगी। उस समय माँ के आँखों से प्रेमाश्रुधारा बह रही थी। ठाकुर धीर–स्थिर अटल होकर आँखें बन्द करके उनकी पूजा ग्रहण कर रहे थे। पूजा के बाद माँ योगमाया ने कुछ खाद्य द्रव्य खिला दिये। ठाकुर ने अवशिष्ट फूल चन्दनादि देवी के मस्तक पर अर्पण किए एवं चन्दन का टीका लगा दिये। इस प्रकार पूजादि समाप्त होने पर देवी ने पुनः ठाकुर को प्रणाम किया एवं उनके भुक्तावशिष्ट लेकर चली गई। उस दिन दोनों में साक्षात् हर–पार्वती की तरह जो भाव दिखा था, वह इतना मधुर एवं गंभीर था कि शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह दृश्य स्मरण करके अब भी शरीर मन पुलकित होता है। दाम्पत्य प्रेम में इतना उच्चभाव है, इससे पहले मुझे पता नहीं था।" माँ योगमाया ने केवल गेण्डारिया में ही नहीं, ढाका, शांतिपुर आदि विभिन्न स्थान में भी इस तरह गोस्वामी प्रभुजी की पद–पूजा की हैं। मुक्तकेशी देवी ने भी कहा था कि पदपूजा करते समय कभी–कभी देवी भावमग्न होकर अचेत हो जाती थी। गोस्वामी प्रभुजी उच्चस्वर में हरिनाम सुनाकर उनको चैतन्य करते थे। संसार का सब काम करके नियमित पतिसेवा की ओर देवी का ध्यान रहता था। इस बारे में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था "मुझे कठोर साधन–भजन करके धर्म लाभ करना पड़ा और उन्होंने (श्रीमती योगमाया) एकमात्र मेरी सेवा द्वारा धर्म लाभ किया। मैंने 12 वर्ष निद्रा त्याग करके साधन किया और उन्होंने 12 वर्ष निद्रा त्याग करके मेरी सेवा की।"

देवी एक पुत्र एवं चार कन्या संतानों की जननी थीं। संतानों के प्रति स्नेहशील होकर भी उनके प्रति आसक्त नहीं थी। उनकी जीवितावस्था में प्रथम कन्या संतोषिणी देवी एवं तृतीया कन्या प्रेममाला ने परलोक गमन किया। इससे वे बिन्दु मात्र विचलित नहीं हुई थी। एकबार एकमात्र पुत्र योगजीवन गोस्वामी प्रबल डेंगु ज्वर से आक्रांत होकर 10–12 घंटा अज्ञानावस्था में था। चिकित्सकों ने कहा तीन–चार घंटा में चेतना नहीं लौटने से जीवन हानि हो सकती है।

गोस्वामी प्रभुजी पुत्र के भावी अमंगल की आशंका करके चिन्ताग्रस्त हो गए। उन्होंने योगमाया देवी से कहा – "तुम तो जीवन (योगजीवन) शून्य होने जा रही हो। यही सोच रहा हूँ।" यह सुनकर देवी ने कहा, "जीवन शून्य होना है तो होंगे, इसके लिए तुम क्यों सोच रहे हो ? जिन्होंने दिए हैं, लेना हो तो वे लेंगे, इसके लिए तुम ऐसा मत करो। लोग तुम्हें क्या कहेंगे ?" देवी के मुँह से दृढ़तापूर्ण महासत्य सुनकर प्रभुजी निश्चिन्त हुए। पुत्र के बारे में देवी थोड़ा भी विचलित नहीं हुई थी। रोगी धीरे–धीरे चैतन्य प्राप्त करके रोगमुक्त हुआ।

देवी की संतानें उनसे बहुत डरती थी। देवी ने कभी भी क्रोधवश उन लोगों को नहीं मारा या गाली नहीं दी। स्नेहप्रवण होकर भी संतानों के पास वे गंभीर रहती थीं। इसलिए वे माता का स्नेह पाने के लिए व्यग्र रहते थे। संतानों की शासन प्रणाली के बारे में उन्होंने शरतकामिनी देवी से कहा था– "देखो, तुम लोग शासन करते समय बच्चों को कभी हाथ मत लगाओ। दो–एक बार हाथ लगाने से वे और तुमसे डरेंगे नहीं। इससे शासन का सुफल नहीं मिलेगा। बच्चों के अन्याय आचरण करने पर तुम ऐसा भाव व्यक्त करो कि तुम उनके प्रति बड़े ही असंतुष्ट हो। ऐसा करने से वह तुम्हें संतुष्ट करने के लिए प्रयास करेंगे होगों। तब तुम उनसे जो कहोगे, वे लोग वही करेंगे। बच्चों को मन में बहुत प्यार करो लेकिन उनके सामने प्यार मत दिखाओ। ज्यादा प्यार दिखाने से बच्चों को वश में करना कठिन होगा।"

देवी के घर में विलासिता का कोई स्थान नहीं था, लेकिन उनका घर सर्वदा साफ रहता था। आवश्यक द्रव्यादि यथास्थान में सुरक्षित रहते थे, वस्त्रादि सर्वदा साफ रहते। इस बारे में देवी कहती थीं, **"शरीर के साथ मन का योग है। शरीर अपवित्र रहने से मन में अपवित्र बोध होता है। परिधेय वस्त्रादि साफ नहीं रहने से मन मलिन होता है।"**

पाप किसे कहते हैं, एक शिष्या के इस प्रश्न के उत्तर में देवी ने कहा था– **"जो कार्य तुम सबके सामने व्यक्त नहीं कर सकते हो, तुम्हारे लिए वही पाप है।"**

माता योगमाया देवी स्वल्पभाषिणी एवं संयतवाक् थी। कोई उनके मन की बात नहीं समझ सकता था। अयाचित होकर किसी को उपदेश देना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। संसार एवं धर्म विषय में उन्होंने पुत्र कन्याओं को जो उपदेश दिए थे उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं –**"संसार में निर्भीक रहकर उनका (भगवान) नामगान करो। संसार में जिनके प्रति जो कर्तव्य करना है करो, पर कोई अन्याय नहीं करो। अन्याय देखने से मना करो। ध्यान रखना किसी की**

बातों में आकर भगवान से बिछुड़ न जाना। विनय एवं धैर्य को साथी करो। भगवान जैसे रखें, उसी में संतुष्ट रहना। संसार में किसी भी तरह सुखी होना कठिन है। यदि शांति चाहो तो उनकी ओर ध्यान रखकर जीवन बिताओ, संसार में अर्थादि कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। केवल एकमात्र भगवान चिरस्थायी हैं। किसी भी अवस्था में उनके प्रेम में कोई परिवर्तन नहीं होता। उनसे ही चिरसुखी हो सकोगे।"

"दूध उत्तम वस्तु है, लेकिन एक बूंद गोमूत्र से नष्ट हो जाता है। मित्रता भी उसी प्रकार है।"

"दिन के अंत में एकबार आहार करके भी यदि पति एवं पत्नी के भीतर आपस में पवित्र प्रेम रहता है, उसमें ही आनन्द है। मनुष्य शरीर में कुछ–न–कुछ दोष अवश्य रहेगा। सम्पूर्ण दोषहीन कोई नहीं रहता। उसको क्षमा करना चाहिए। हम लोग हर पल कितना अपराध करते हैं। भगवान क्षमा नहीं करते तो क्या कोई जीवित रह सकता था ? प्राण चला जाए वह भी अच्छा, तो भी स्त्रियों को पति की बातें साध्यानुसार सुनना चाहिये। एकदिन तो जीवन का अंत होगा ही ? वह पति के लिए होने से धन्य हो जाओगे।"

"गुरु कृपा सर्वदा सबके प्रति रहती है। विश्वास नहीं रहने के कारण हम लोग कष्ट पाते हैं। जो सर्वदा सहायक हैं, उनको मन–प्राण समर्पण करने से सुख शांति मिलती है। संसार में एक–के–बाद एक अशांति का आगमन होता है। तुम लोगों से अनुरोध है कि यह मोहजाल भेद करके चिर शांतिमय धाम 'जो अभय पद है उसका आस्वादन कर सकूँ' यही मन की कामना हो।"

निन्दा एवं स्तुति में समज्ञान भक्ति का प्रमुख लक्षण है। योगमाया देवी के चरित्र में यह लक्षण विशेष रूप में था। एक घटना से इसका परिचय मिलता है। घटना इस प्रकार है– उस समय गोस्वामी प्रभुजी गेण्डारिया में थे। एकदिन ढाका के प्रसिद्ध वकील ईश्वरचन्द्र घोष ने कीर्तनोत्सव में सपरिवार गोस्वामी प्रभुजी को निमंत्रण दिया था। माता योगमाया देवी एवं शिष्यों को लेकर गोस्वामी प्रभुजी वहाँ गए। महिलाएँ योगमाया देवी को फूल चन्दन से सुशोभित करके उनके अपूर्व माधुर्य को देखकर अतिशय आनन्द प्रकाश कर रही थी। इससे देवी में कोई विकार नहीं था। वह लकड़ी की मूर्ति की तरह खड़ी रहीं। उनका यह निर्विकार भाव देखकर महिलाएँ विस्मित हो गई।

देवी में कभी मलिन या विषाद ग्रष्त भाव नहीं देखा गया। उनकी सम उम्र

की गोस्वामी प्रभुजी की एक शिष्या के प्रति उनकी अधिक घनिष्टता देखकर कोई अन्य शिष्या उन पर दोषारोपण करने लगी। यह देखकर माता मुक्तकेशी देवी ने, कन्या को पक्षपात दोष से सावधान कर दिया। योगमाया देवी ने हँसते हुए कहा, "माँ इन सब लोगों की बात नहीं सुनना ही अच्छा है। किसी भी अज्ञात कारण से एक मनुष्य का किसी दूसरे मनुष्य के प्रति अधिक प्यार हो सकता है। इसमें क्या दोष है ? अपने भीतर की भावना सही रहनी चाहिये। लोगों की बातों से क्या फर्क पड़ता है ?"

महाभारत में उल्लेख है कि द्रौपदी एक थाली अन्न से अनेक लोगों को भोजन करा सकती थी। आश्चर्य का विषय यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आधुनिक युग में माता योगमाया देवी के जीवन में भी वह घटना देखी गई।

एकबार गेण्डारिया आश्रम में आश्रमवासियों के मध्याह्न भोजन के समय 10–12 अतिथि आए। मध्याह्न भोजन का समय परिवर्तन न करके अतिथिगण को आश्रमवासियों के साथ ही भोजन करने के लिए कहा गया। माता योगमाया ने स्वयं परोस कर सबको भोजन कराया। भोजन के बाद सब लोग चले गए। योगमाया देवी गोस्वामी प्रभुजी का प्रसाद ग्रहण करके सेवा के लिए उनके पास गईं। गोस्वामी प्रभुजी ने देवी से कहा – "देखो आज तुमसे एक बात पूछ रहा हूँ, सही उत्तर दोगी ?" देवी ने प्रश्न को जानने की इच्छा व्यक्त की। प्रभुजी ने कहा – "निर्दिष्ट खाद्य से अतिरिक्त 10–12 जन का भोजन आज कैसे संभव हुआ ?" देवी ने कोई उत्तर नहीं दिया। बार–बार पूछकर भी उत्तर न पाकर प्रभुजी ने कहा – "समझा, और बोलना नहीं पड़ेगा। तुमने दृष्टिशक्ति से सब पूर्ण कर रखे थे। आज जितने भी लोग उपस्थित होते तुम सबको भोजन करा सकती थी।" देवी सलज्ज भाव से बोलीं, "आपके आश्रम में अतिथि – अभ्यागतों का अभाव नहीं है। दोपहर हो या रात जब जितने लोग उपस्थित हों, आप सबको आहार करने को कहते हैं लेकिन मैं इस कमजोर शरीर से और परिश्रम नहीं कर सकती। अब आप यदि सबके सामने ये सब बातें कहेंगे तो मेरे द्वारा काम नहीं होगा। आप ब्राह्मण द्वारा रसोई करा लीजिये।"

उन लोगों की इन बातों के समय पुत्र योगजीवन उपस्थित थे। देवी का उत्तर सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने जोर के साथ कहा– **"देखो योगजीवन, मैं कह रहा हूँ। मेरी बात पर विश्वास करो। मेरे और उनके (योगमाया देवी) बीच बिन्दुमात्र भेद नहीं करो। मेरे भीतर जो कुछ देखकर तुम लोग आकृष्ट हो रहे हो, उनके भीतर भी वह सब कुछ परिपूर्णरूप में है। जो व्यक्ति उनको मुझसे भिन्न मानेंगे, वह मुझे कभी नहीं समझ पाएँगे। देखो मेरी यह बात मत भूलो। गुरु वाक्य अवहेलना मत करो"** आदि।

अन्य समय एक दूसरी घटना के समय गोसाँईजी ने कहा था, "साक्षात् अन्नपूर्णा की तरह उनकी अनेक क्षमता हैं।" सास के मुँह से एक घटना सुनकर गोस्वामी प्रभुजी ने ऐसा कहा था।

एकबार श्रीवृन्दावन में रहते समय चार–पाँच शिष्य स्थायी रूप में प्रभुजी के साथ सर्वदा रहते थे। जननी योगमया देवी पीतल की हंडी में रसोई करती थीं। उस पात्रमें 7–8 लोगों से ज्यादा लोगों का भोजन नहीं बन सकता था। लेकिन प्रायः अतिथि अभ्यागतों की संख्या अधिक होने से भी उस पात्र में प्रस्तुत अन्न से ही देवी सबको भोजन करा देती। ऐसी घटना एक–दो दिन नहीं प्रायः होती थी। कभी–कभी किसी की दृष्टि इस अलौकिक घटना के प्रति पड़ जाती थी, लेकिन माता योगमाया अपनी शक्ति प्रकाश नहीं करना चाहती थी।

गेण्डारियावासिनी गोस्वामी प्रभुजी की शिष्या (राधारमन गुह महाशय की पत्नी) ने माँ को साक्षात अन्नपूर्णा कहा है। माँ के बारे में उनसे पूछने पर उन्होंने कहा था, "माँ की बात क्या पूछ रहे हो बाबा ? उनकी दया, धैर्य, लज्जाशीलता, विनय, सरलता आदि बोलकर समाप्त नहीं की जा सकती। वह साक्षात् अन्नपूर्णा थी। यह हम समझ के भी पकड़ नहीं पाए। कितने दिन उन्होंने सामान्य आहार से मेरी क्षुधा निवृत्ति की, उसका हिसाब नहीं है। श्रीवृन्दावन जाते समय उन्होंने एकदिन एक ग्लास शरबत बनाकर स्वयं थोड़ा पीया एवं बाकी मुझे दिया। वह शरबत पीने के साथ–साथ मेरी भूख–प्यास सब दूर हो गई। उस समय मैं नहीं समझी थी। उनके साथ आहार करते समय मुझे भूख नहीं लगी थी। मैं साश्चर्य माँ से बोली– "माँ ये क्या किया ? थोड़ा शरबत पिलाकर मेरी भूख दूर कर दी।" यह सुनकर उन्होंने थोड़ा हँसकर इस प्रसंग को टालना चाहा। आहा कितनी मधुर थी वह हँसी! उनके चाल–चलन, बातें, हास–परिहास आदि सब मधुमय होता था। इस अभागिनी के प्रति उनके आंतरिक स्नेह स्मरण करने से मेरा शोकाकुल ह्रदय आनन्द से नृत्य करता है एवं सब ज्वाला मिट जाती है।"

"एकदिन किसी कारण से मुझे अरवा चावल आहार की जरूरत थी। मेरे घर में उस दिन अरवा–चावल नहीं था। संग्रह करने के लिए आश्रम में माँ के पास गई। उन्होंने देखा भण्डार शून्य है। उस समय आश्रम के सब लोग भोजन कर चुके थे, केवल माँ बाकी थी। वे अपना अन्न मुझे आहार करने बोली। मैं राजी नहीं हुई। वे बोली – "ठीक है, आओ यह अन्न दोनों मिलकर भोजन करें।" माँ को कम होगा। सोचकर मैं राजी नहीं हुई। तब माँ बोली – "तो मैं भी नहीं खाऊँगी।" यह सुनकर मैं जल्दी से नौकर को चावल लाने भेज दी एवं माँ से बोली – "माँ तुम आहार कर लो। मैंने चावल लाने के लिए नौकर को भेज दिया है। चावल लाने पर मैं रसोई करके आहार करूँगी।" चावल लाने के बाद रसोई करके मेरे खाने के बाद

उन्होंने आहार किया। इस प्रकार कितनी बार उन्होंने मेरे प्रति दया भाव का परिचय दिया, वह नहीं कहा जा सकता। क्या फिर उनसे साक्षात् होगा ? तुम लोग यह आशीर्वाद दो कि मैं उनके पास जा सकूँ।"

एकबार गोस्वामी प्रभुजी सबके साथ लोकनाथ ब्रह्मचारी के दर्शन के लिए बारदी गए थे। माँ योगमाया को देखकर ब्रह्मचारीजी के भीतर शिशु–भाव जागा एवं उन्होंने देवी के साथ मातृवत आचरण किया। माँ ने ब्रह्मचारीजी को एक रेशम का कपड़ा दिया। ब्रह्मचारीजी ने उसे मस्तक पर स्पर्श कर उसी क्षण उसे कौपीन एवं बहिर्वास बनाकर पहन लिए। ब्रह्मचारीजी के माँ योगमाया देवी के हाथ से खाने की इच्छा व्यक्त करने पर देवी उनको शिशु की तरह पास में बैठाकर खिलाने लगी एवं उनके अनुरोध से देवी भी खाने लगी। ब्रह्मचारीजी ने देवी से कहा– "अच्छा, अब मैं अपने हाथों से खाऊँ ? कई बार खाने के बाद तुम मेरा हाथ पकड़कर कहोगे– "बेटा और मत खाओ, अस्वस्थ हो जाओगे।" ब्रह्मचारीजी के इस तरह कई बार खाने के बाद देवी मातृभाव से ब्रह्मचारीजी का हाथ पकड़कर बोली, "और मत खाओ, अस्वस्थ हो जाओगे।" यह सुनकर ब्रह्मचारीजी गंभीर आनन्दसूचक ध्वनि ओहो! ओहो! कहकर समाधिस्थ हो गए।

उक्त घटना वात्सल्य रस का निदर्शन है, इसमें कोई संदेह नही। माता योगमाया देवी को देखकर ब्रह्मचारीजी के भीतर मातृभाव का उदय होना एवं उनके आचरण से देवी में संतान वात्सल्यभाव का आविर्भाव, यह दो स्वर्गीय भाव प्रकाश से एक महा अलौकिक दृश्य की सृष्टि हुई थी, उसदिन आश्रम में। अध्यात्म जगत में यह विरल घटना है।

श्रीमद् योगजीवन गोस्वामी के विवाह का प्रस्ताव होने पर योगजीवन ने उस विषय में तीव्र प्रतिवाद किया। माँ ने पुत्र को पास में बुलाकर कहा – देखो, योगजीवन! विवाह करने से तुम्हारे धर्मकार्य में कोई विघ्न नहीं होगा। एकबार तुम्हारे लिए आई, तुम्हारा विवाह देखने के लिए क्या फिर दूसरी बार जन्म लेना पड़ेगा ? मेरी वासना अपूर्ण नहीं रखो, विवाह करो। योगमाया देवी की उक्ति अत्यंत गुरुत्वपूर्ण है।

विवाह के बाद दूसरे दिन आश्रम में संकीर्तन की व्यवस्था की गई थी। संकीर्तन में अपूर्व भाव की सृष्टि हुई थी। गोस्वामी प्रभुजी महाभाव में विभोर होकर नृत्य करने लगे। उनके नृत्य एवं हरिनाम ध्वनि से चारों दिशा कांप उठी। उस समय माता योगमाया देवी भावमग्न हो गईं। उन्हें लाकर प्रभुजी के बायें तरफ स्थापित किया गया। गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य विधुभूषण मजूमदार महाशय राधाभाव में विभोर होकर "जय राधारानी, जय ब्रजेन्द्र नन्दन" कह रहे थे। जय घोष सुनकर योगमाया श्रीकृष्ण प्रेम में विवश होकर प्रभुजी के बांयें तरफ निश्चेष्ट

पुतली की तरह खड़ी रहीं। प्रभुजी समाधिस्थ होकर अवस्थान कर रहे थे। इतने में ब्रह्मधर्म प्रचारक नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय महाशय की पत्नी अदृश्य शक्ति के प्रभाव से पानी भरा हुआ कलश लेकर गोपीभाव से नृत्य करते–करते माँ योगमाया देवी एवं गोस्वामी प्रभुजी के श्री चरणयुगल प्रक्षालन करते–करते कीर्तन करने लगी। उस समय दर्शकों एवं श्रोताओं के भीतर एक अपूर्वभाव का संचार हुआ। अप्राकृत जगह में भावमग्न होकर कोई नृत्य कर रहा था, कोई रो रहा था, कोई भूमि पर लुढ़क रहा था। कीर्तन के बाद में अन्न–महोत्सव के बाद पुत्र एवं कन्या का विवाह अनुष्ठान समाप्त हुआ।

विवाहोत्सव समाप्त होने पर योगमाया देवी, पति, पुत्र एवं पुत्रवधू शांतिपुर आए। यहाँ रहते समय एकदिन अचानक गुरुदेव परमहंस जी ने गोसाँईजी को उसी समय काशी जाने का निर्देश दिया। गोस्वामीजी तुरन्त देवी के पास से कुछ रुपए लेकर अकेले काशी चले गए। इस घटना में गोसाँईजी ने काशी जाने का असली कारण गुप्त रखा था जिसके कारण माँ योगमाया देवी के साथ उनकी थोड़ी बहस भी हुई। इस घटना के बाद यथाशीघ्र देवी भी पुत्र को लेकर काशी पति के पास पहुँच गई। देवी की सामान्य त्रुटि भूलकर प्रभुजी ने उनको काशी में रहने की अनुमति दी। माँ योगमाया देवी प्रभुजी के साथ प्रतिदिन गंगास्नान, विश्वेश्वर, अन्नपूर्णादि दर्शन करती थी। उस समय देवी परमानन्द के साथ दिन बिता रही थीं। वहाँ कोलकाता मानिकतला की प्रसिद्ध माताजी के साथ देवी का साक्षात्कार हुआ। माताजी भी उस समय काशी में वास कर रही थी। माताजी गोस्वामी प्रभु एवं माता योगमाया के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखती थीं। इस तरह कुछ दिन बीत गए। माँ प्रभुजी के साथ अयोध्या पहुँची श्रीरामचन्द्र की जन्मभूमि दर्शन के लिए। वहाँ शिष्य डा० हरकांत बंद्योपाध्याय के घर पर सब लोग ठहरे थे। शिष्य अतीव श्रद्धाभक्ति से गुरुजी एवं माता योगमाया की सेवा करके स्वयं धन्य हो गए। अयोध्या के प्रमुख मन्दिर आदि दर्शन करके माता योगमाया देवी प्रभुजी के साथ श्रीवृन्दावन जाकर गोपीनाथ बाग में 'दाऊजी कुँज' में अवस्थान करने लगीं, बंगाब्द 1296 सन् में। श्रीवृन्दावन में साधु श्रीधर, सतीशचन्द्र (पगला सतीश) आदि चार–पाँच शिष्य प्रभुजी के साथ रहते थे। आश्रम गृह का कार्य, रसोई, परिवेषण सब काम माता योगमाया देवी स्वयं करती थीं।

संध्या के समय में प्रभुजी के साथ योगमाया देवी भी यमुनापुलीन, राधाबाग आदि स्थान में भ्रमण करके श्रीश्री गोविन्दजी, गोपीनाथजी, मदनमोहनजी आदि विग्रहों की आरती दर्शन करके आश्रम लौटती थीं। इसके बाद रसोई करके सबको भोजन करातीं।

भाद्र महीने में गोस्वामी प्रभुजी ने कई शिष्यों को लेकर श्रीकृष्ण लीला स्थलों

का दर्शन करने के लिए ब्रज परिक्रमा के लिए यात्रा की। दो–तीन दिन बाद माँ योगमाया साधु श्रीधर को लेकर राधाकुण्ड में प्रभुजी के साथ मिलीं। श्रीवृन्दावन परिक्रमा के बाद गोस्वामी प्रभुजी सर्वदा साधन–भजन में मग्न रहते थे। प्रभुजी के निर्देश से उस समय एकदिन गोस्वामीजी ने माँ योगमाया देवी को कहा –"गुरुजी की इच्छा नहीं है कि तुम अभी वृन्दावन में रहो। गेण्डारिया आश्रम में अभी तुम्हारा रहना आवश्यक है। वहाँ योगजीवन की पत्नी बसन्तकुमारी और छोटी कन्या प्रेमसखी (कुतुबुड़ी) के पास अभी तुम्हें रहना पड़ेगा। मुझे एक वर्ष वृन्दावन में अभी रहना है। देखते–देखते एक वर्ष पार हो जायेगा।"

गोस्वामीजी के निर्देश पर वापस जाने की अनिच्छा रहने पर भी 1296 सन् पौष महीने में देवी को वापस आना पड़ा। गेण्डारिया में रहते समय वे सर्वदा अपने पति एवं गुरु के विरह में उनके ध्यान में ही तन्मय रहती थीं। वृन्दावन में दामोदर पुजारी के कुंज में भोजन का बहुत कष्ट था। एकदिन रात्रि के समय जब देवी आसन में बैठी थी, उस समय अचानक सामने गोस्वामीजी को उन्होंने प्रत्यक्ष किया। गोस्वामीजी ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, "अभी आषाढ़ माह चल रहा है, देखते–देखते एक वर्ष व्यतीत हो जाएगा। तुम तो जानती हो अभी मैंने एक व्रत लिया है। इस समय तुम्हारा वृन्दावन में न आना अच्छा होगा। मेरी चिन्ता मत करना। पर यदि वृन्दावन आने की तीव्र इच्छा हो तो फिर क्या करोगी – चली आना।" गोस्वामीजी के अदृष्य होने के बाद योगमाया देवी ने स्पष्ट उत्तर पाने की आशा से एक पत्र वृन्दावन में लिखा–"मैं शीघ्र वृन्दावन जाना चाहती हूँ। और मेरी परीक्षा मत लो। मैं अत्यंत क्लेश में हूँ।" उत्तर में गोस्वामी प्रभुजी ने लिखा, "अभी वृन्दावन आने की कोई जरूरत नहीं है।" निषेध पत्र पाकर माता योगमाया देवी का मन बहुत उदास हो गया। उन्होंने गृह कार्यादि का परित्याग कर दिया। योगिनी–वेश धारण करके कभी गोस्वामी प्रभुजी के साधना कुटीर में, या कभी पास में आम के पेड़ के नीचे बैठकर साधन–भजन में समय बिताने लगी। किसी के साथ बातें नहीं करती थीं। आहारादि भी प्रायः नहीं करती थीं। उनका शरीर क्रमशः अस्वस्थ होने लगा। सब लोग उनके जीवन की आशंका करने लगे। उन्होंने शय्या परित्याग कर दिया। ढाका के भीषण मच्छरों में भी मच्छरदानी व्यवहार नहीं करती थी। पति विरह से जीवन्मृत सी हो गईं। गेण्डारियावासी श्री कामिनीमोहन वसु महाशय की पत्नी शरत्कामिनी वसु माता योगमाया देवी के सखी स्वरूपा थीं। उनके साथ योगमाया देवी मन की बातें कहकर शांति लाभ करती थीं। दोनों में इतनी घनिष्टता थी कि किसी कारण से शरत्कामिनी देवी के आश्रम में नहीं आने से माता योगमाया देवी स्वयं उनके घर जाती थीं।

माता योगमाया देवी के कुटीर में निर्जन साधन के समय एकमात्र शरत्कामिनी

देवी उनके साथ रह सकती थीं। उस समय माँ की साधन अवस्था के बारे में शरतकामिनी ने कहा है– "माँ के साथ कुटीर में साधन करते समय उनके भीतर जो अद्‌भुत भाव अनुभव किया, वह जीवन में और कभी नहीं हुआ और देखेंगे या नहीं, नहीं जानती। नाम–साधना करते–करते उनमें अश्रु, कंपन आदि सात्विक भावों का विकास देखा जाता था। भावावेश में माँ कभी रोती, कभी इतनी जोर से हँसती कि पूरे आश्रम में वह प्रतिध्वनित होता। मैं विस्मय एवं भय से अभिभूत हो जाती। भाव संवरण करके कभी–कभी वे एकतारा बजाकर सुमधुर स्वर में गातीः–

भावार्थ –

मोह आवरण करो उन्मोचन,
प्राण भरके एकबार तुम्हें देखें।
तुम्हें देखने के लिए हे नाथ,
नयन प्यासे, हृदय व्याकुल है।
छिपना पसन्द करते हो सर्वदा,
हे दयामय गुण का सागर,
तुम्हारी प्रेम–रीति अति सुकोमल है।
ऐसा और कहीं नहीं देखी,
छिप–छिपकर समाचार लेते हो,
मेरे लिए कितना सोचते हो,
यह प्रेम रहस्य कौन समझेगा ?
यह बुद्धि का अगम्य है।
ऐसे उपकारी बंधु को,
नहीं देखकर कैसे रहूँ।
गुण द्वारा वशीभूत, विमोहित चित
तुम्हारे पास जाता है।

"उनके सुमधुर गीत सुनकर मेरे प्राण में अपूर्व भाव उदय होता। मैं भी उनके साथ गाने लगती। गाते समय माँ की आँखों से अश्रुधारा बहती एवं कण्ठस्वर रुद्ध होने लगता। उनके मुखमण्डल पर एक अपूर्व स्निग्ध रक्तिमाभा छा जाती थी। मैं महानन्द से ये सब दर्शन करती थी। वे बातें प्रायः नहीं करती थी। जब भी कुछ

कहती, गोस्वामी प्रभुजी की बातें कहतीं। उस समय माँ के भाव दर्शन करके कृष्ण विरह से कातर राधारानी का स्वतः स्मरण होता था।"

इस तरह कई महीने बीत गए। उन्होंने श्रीवृन्दावन जाने की अनुमति प्रार्थना करके पुनः पति को पत्र भेजा। उत्तर में प्रभुजी ने लिखा– "तुम्हारे पुरुष होने से कोई चिन्ता नहीं थी। स्त्री हो, इसलिए असुविधा है। ढाका से तुम्हारा पत्र पाकर मन अस्थिर हो गया। तुम्हारे यहाँ आने से ऐसा लगता है कि कोई विघ्न होगा। विशेषतः तुम्हारे यहाँ आने से मुझे थोड़ा बन्धन में रहना पड़ेगा। यदि एकान्त ही आना चाहते हो तो झूलन के समय या रासयात्रा के समय आना। आने के एक महीना पूर्व मुझे संवाद देना। मुझे सुखी करने की जरूरत नहीं है। "तुम लोग सुखी रहो।"

(पोस्टऑफिस के सील की तारीख, 6 मार्च, 1890 ई०, वृन्दावन)

अन्त में माता योगमाया ने श्रीवृन्दावन जाना निश्चित किया। यह संकल्प लेकर आश्रम से रवाना होते समय राधारमण बाबू की पत्नी उनके विरह की बात सोचकर अस्थिर हो उठी एवं उनकी साथी होने के लिए हठ करने लगीं। देवी उनको साथ लेकर एवं पुत्र, कन्या प्रेमसखी के साथ ढाका से कोलकाता आईं। वहाँ देवी ब्राह्मधर्म प्रचारक नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय महाशय के वासभवन में ठहरीं। इसके 2–3 दिन पूर्व श्रद्धेय कामिनीमोहन वसु महाशय श्रीवृन्दावन से ढाका लौटते समय उक्त चट्टोपाध्याय महाशय के घर आए। उन्होंने देवी को श्रीवृन्दावन का सब संवाद देकर कहा "आप वृन्दावन जा रही हैं, लेकिन वहाँ गोस्वामी प्रभुजी का जिस प्रकार त्याग भाव देखा, उससे आपके मन में क्लेश तो नहीं होगा ? यदि उन्होंने किसी प्रकार अनादर भावना प्रकट की तो बहुत दुःख का विषय होगा।" यह सुनकर माता योगमाया देवी ने उत्तर दिया –"मेरे अदृष्ट (भाग्य) में जो है वही होगा। मैं अवश्य जाऊँगी।" उन्हें श्रीवृन्दावन यात्रा की तैयारी करते देखकर राधारमण बाबू की पत्नी ने देवी से कहा– "माँ तुम जैसी व्यग्र होकर उन्मत्त की तरह जा रही हो, लगता है तुम अब नहीं लौटोगी। क्या तुम नहीं लौटोगी, माँ ?" देवी ने कहा– "मेरी सब वासना पूर्ण हो गई है, सब आशा मिट गई है। मेरी और यहाँ लौटने की इच्छा नहीं है। यदि वे (गोस्वामी प्रभु) लौटे तो उनके साथ लौट सकती हूँ। मुझे और किसी के लिए मोह नहीं है। केवल वृद्धा माता के लिए कष्ट होता है। तुमसे अनुरोध है कि तुम उनकी देख–भाल करना।"

बंगाब्द 1296 सन् (सन् 1890 ई०) आषाढ़ महीने में जननी मुक्तकेशी देवी की सब बाधा उपेक्षा करके योगमाया देवी पति के पास आ गई, लेकिन वहाँ जाकर देवी निराश हो गई, क्योंकि गोस्वामी प्रभुजी उन्हें साथ रखने के लिए राजी नहीं

हुए। पति की इस प्रकार उपेक्षा से उन्हें बहुत दुःख हुआ। एकदिन उन्होंने अत्यंत दुःख से श्रीधर से कहा– "श्रीधर, मेरी अवस्था कोई नहीं समझता। गया में जब उनको (गोस्वामी प्रभु) साधन मिला था, उस समय कोलकाता में संवाद आया कि वे संसार छोड़कर संन्यासी हो गए हैं। यह सुनकर मैं माँ के साथ गया गई। वहाँ आकाशगंगा पहाड़ में उनको संन्यासी वेश में देखा। पति, स्त्रीजाति का एकमात्र आश्रय होता है। जब पति संन्यासी हो जाए तो स्त्री की अवस्था पुरुष नहीं समझ सकता। गया में वास कर रही थी, उस समय अचानक एकदिन मेरे पास आकर वे बोले, "तुम्हारे साथ एकत्र साधन करना पड़ेगा, मैं तुमको त्याग नहीं कर सकूँगा।" ऐसा कहकर मुझे साथ में लेकर कोलकाता गए। उस समय से हम दोनों एकत्र साधन–भजन कर रहे थे। अब वे जिस प्रकार भाव दिखा रहे हैं, लगता है मेरी उपेक्षा करके संन्यासी हो जाएँगें। मुझे छोड़कर संन्यासी होने से उनका कोई धर्म नहीं होगा।" साधु श्रीधर से ये सब कहते–कहते अचानक उनकी आँखें लाल हो गईं एवं वे क्रोधित होकर बोली, "मुझे छोड़कर संन्यासी होने से वे जिस अवस्था प्राप्ति के लिए चेष्टा कर रहे है, उसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे। उन्हें पुनः संसार में जन्म लेना पड़ेगा।"

माँ की बातें सुनकर साधु श्रीधर ने विभिन्न बातों से उनको शांत किया। एकदिन पति से उन्होंने कहा, "मैं आपके पास आई, लेकिन आप तो मेरे साथ बात भी नहीं करते। अब मैं क्या करूँ ?" प्रभुजी ने उनको एक घर किराये पर लेकर रहने को कहा।

पति के मुँह से ऐसी उपेक्षा की बात सुनकर देवी कातर होकर बोली, "आप को छोड़कर मैं नहीं रह सकूँगी। मैं आपके पास ही रहूँगी।" उनकी बातों से प्रभुजी ने अत्यंत असंतोष व्यक्त करते हुए कहा, "अभी मैंने जो आश्रम ग्रहण किया है एवं जिस प्रकार चल रहा हूँ उसमें तुम यहाँ नहीं रह सकती। मुझे और तंग मत करो।" पति के मुँह से ऐसा अप्रिय वाक्य सुनकर देवी अत्यंत दुःखी होकर बोली ठीक है, "मैं आपको और तंग नहीं करूँगी। अभी आपके घर से चली जा रही हूँ।" देवी ने वह रात अन्य घर में बिताईं। दूसरे दिन उन्होंने सुबह पुत्र से कहा, "तू (प्रेमसखी) कुतू को लेकर ढाका चला जा। माँ के मनोभाव को देखकर आश्रम के सब लोग चिन्तित हो गए। उन लोगों ने सोचा कि देवी किसी से कुछ नहीं कहकर शायद कहीं चली जाएँगी। शिष्यों ने देवी के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि रखी। दूसरे दिन सुबह, कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी शौचागार से आकर कुएँ के सामने मुँह धो रहे थे। माता योगमाया शयन कक्ष से बाहर आकर उनसे बोली– कुलदा, यमुना जाओगे ? ब्रह्मचारीजी ने सम्मति देकर माँ से पूछा – "वे जाएँगी कि नहीं ?" देवी ने उत्तर दिया – "हाँ जाऊँगी, तुम जाओ, तुम्हारा लोटा मुझे दो। ब्रह्मचारीजी ने देवी को

लोटा दिया। देवी लोटा लेकर कुएँ के पास जाकर मुँह धोने लगीं, एवं ब्रह्मचारी की ओर देखने लगी। ब्रह्मचारीजी यमुना में नहाने के लिए वस्त्रादि लेकर पहले दाऊजी के मंदिर में प्रणाम किया, इतने में माँ अदृश्य हो गईं। बहुत देर तक उनको नहीं देखकर सब लोग चिंतित हुए। ढूँढ़ना शुरू हुआ। लेकिन माँ कहीं नहीं मिली। ब्रह्मचारीजी ने अत्यंत विचलित होकर गोस्वामी प्रभुजी के पास माँ के लिए प्रार्थना की एवं काफी ढूँढ़ने पर भी माँ के कहीं नहीं मिलने का समाचार दिया। क्षणकाल स्थिर रहकर गोस्वामी प्रभुजी बोले, "उनको और नहीं पाओगे। उनको परमहंसजी (गुरुजी) ले गए हैं।" ब्रह्मचारीजी ने पूछा "परमहंसजी माँ को क्यों ले गए ?" प्रभुजी ने कहा, "कल जब मैंने उनको अन्यत्र रहने के लिए कहा, वह राजी नहीं हुई। मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। उन्होंने मुझे कहा, 'इसके लिए क्यों व्यग्र हो रहे हो ? कोई चिन्ता नहीं है। कल ही मैं उनको अन्यत्र ले जाऊँगा।' उनको ढूँढ़ना वृथा है।" ब्रह्मचारी ने कहा, "क्या माँ अब यहाँ नहीं लौटेंगी ?" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा– "उनको कोई मोह नहीं है, केवल कुतू के लिए थोड़ा आकर्षण है। कुतु के लिए आ भी सकती हैं। अभी इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। आना, न आना उनकी इच्छा।"

ब्रह्मचारी जी ने आश्चर्य होकर कहा– परमहंसजी कैसे ले गए ? उनको तो वहाँ नहीं देखा। माँ मुझसे केवल कुछ ही हाथ दूर थीं। कुछ सेकेण्ड के लिए मैंने आँखें फेरी। घूमकर देखा माँ नहीं है। परमहंस जी आने से तो दिखाई देते। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा– "परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे, उनको कैसे देखोगे ? वे सूक्ष्म शरीर में उनको ले गए।

ब्रह्मचारीजी ने फिर पूछा– "परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे, लेकिन माँ का स्थूल शरीर क्षण में परमहंसजी किस प्रकार ले गए ? गोस्वामी प्रभुजी ने जिज्ञासा शांत करते हुए कहा– "उनके लिए सब संभव है। योगीगण इच्छामात्र से यह स्थूल भूत को सूक्ष्म में बदल सकते हैं। सूक्ष्म भूत को भी स्थूल कर सकते हैं। शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके क्षण में उनको ले गए।

ब्रह्मचारीजी– परमहंसजी माँ को कहाँ ले गए ? उनको वे श्रीवृन्दावन में सूक्ष्मशरीर में रखे हैं या अन्य कहीं ले गए ?

गोस्वामी प्रभुजी– वृन्दावन में क्यों रखेंगे ? परमहंसजी उनको मानस–सरोवर ले गए।

ब्रह्मचारीजी– क्या मानस–सरोवर में माँ सूक्ष्म शरीर में है ?

गोस्वामी प्रभुजी– क्यों ? वहाँ जाकर फिर जैसी थी, वैसी हैं।

ब्रह्मचारीजी– क्या मानस–सरोवर में परमहंसजी अकेले रहते हैं या अन्य कोई रहता है ?

गोस्वामी प्रभुजी– वहाँ अनेक ऋषि–मुनि एवं देवी–देवता हैं।

ब्रह्मचारीजी– अब वहाँ रहकर माँ क्या करेंगी ?

गोस्वामी प्रभुजी– साधन–भजन करेंगी, आनन्द करेंगी, वहाँ जाने के बाद वापस कोई नहीं आना चाहता।

ब्रह्मचारीजी– मानस–सरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ देवी–देवता, ऋषि–मुनिगण रहते हैं ?

गोस्वामी प्रभुजी– नहीं, यह वह मानस–सरोवर नहीं, भूगोल में जो मान–सरोवर पढ़ा है। वह तो "मानतालाब" हैं। मानस–सरोवर बहुत दूर हिमालय पर स्थित है।

ब्रह्मचारीजी– क्या हम लोग मानस–सरोवर नहीं जा सकते ?

गोस्वामी प्रभुजी– इस शरीर में कैसे जाओगे ? पथ अतिशय दुर्गम है। योगेश्वर्य के बिना वहाँ नहीं जाया जा सकता। साधारण लोग जिसे मान–सरोवर समझते हैं, वहाँ जाना आसान है। वह तो मानस–सरोवर नहीं है। मानस–सरोवर कैलास के पथ में है।

ब्रह्मचारीजी– माँ कुतु के लिए क्या लौटकर आएँगी ?

गोस्वामी प्रभुजी– यह कहा नहीं जा सकता, उनकी इच्छा से वह थोड़ा मोह दूर भी हो सकता है।

इस तरह तीन दिन बीत गए। कुलदानंद ब्रह्मचारीजी के हरिवंशग्रंथ में एक कागज का टुकड़ा मिला। उसमें लिखा था– "मैं जा रही हूँ, मुझे ढूँढ़ना मत।" सब लोगों ने सोचा उन्होंने यमुना में देह विसर्जित कर दी है।

तीन दिन बाद मध्याह्न के समय ब्रह्मचारीजी ने गोस्वामी प्रभुजी से पूछा– "इतने दिन हो गए माँ की कोई खबर नहीं मिली। क्या वे वापस नहीं लौटेंगी ?"

गोस्वामी प्रभु– मैंने तो कहा है, कुतु के प्रति सामान्य आकर्षण है। यदि आएँगी तो कुतु के लिए। जो महात्मा उनको ले गए हैं उनकी इच्छा से वह आकर्षण भी दूर हो सकता है। इसलिए उनके लौटने के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

ब्रह्मचारीजी– महात्मा लोग तो माँ का आकर्षण दूर करेंगे। कुतु बच्ची है। माँ के प्रति उसकी तो माया है।

गोस्वामी प्रभु– क्या कुतु को माँ के लिए कष्ट हो रहा है ?

ब्रह्मचारीजी– वह तो पता नहीं चलता। कुतु के चाल–चलन बातों से लगता नहीं कि एकबार भी माँ की याद उसे आती होगी। माँ यहाँ रहने के लिए आईं थी। उनके इस तरह चले जाने से सबको बहुत कष्ट हुआ।

गोस्वामी प्रभु– उनके इस तरह जाने से अच्छा ही हुआ है। इससे कोई हानि नहीं होगी, मंगल ही होगा। इस बार श्रीवृन्दावन आने से वापस लौटना संभव नहीं। वह अपने स्थान पर रह जाएँगी। इसलिए मैंने उनको श्रीवृदावन आने के लिए बार–बार मना किया था।

उस समय कुतु आकर ठाकुर से बोली – "बाबा, माँ तो पाठ सुनने आती हैं। प्रायः माँ को देखती हूँ। आज भी माँ को मैंने वहाँ देखा।"

गोस्वामी प्रभु– वह कहाँ थी ? कैसी दिखीं ?

कुतु– क्यों ? माँ हमारे पास ही तो बैठी थी, इस शरीर में नहीं। शायद आज माँ हमारे कुँज में आएँगी।

गोस्वामी प्रभु– आ सकती हैं।

ब्रह्मचारीजी ने कुतु से पूछा– कुतु, क्या माँ के लिए कष्ट होता है ?

कुतु– कष्ट क्यों होगा ? माँ को नहीं देखने से कष्ट होता। प्रायः माँ को देखती हूँ। देखो, आज माँ आएँगी।

संध्या के कुछ पूर्व कुतु के साथ गोस्वामी प्रभुजी की ये सब बातें होने के समय एक वृद्धा आकर बोली– "अरे यहाँ कौन है ? तुम लोगों की माँ गोसाँई हमारे घर में बैठी हैं। कब आई, कहाँ से आई, कुछ नहीं जानती। उनको घर में देखकर मैं तुम लोगों के पास आई हूँ।"

गोस्वामी प्रभुजी ने योगजीवन को बुलाकर कहा– तुम अभी जाओ और उनको ले आओ।

इस कुँज से दो मकान बाद एक गरीब गृहस्थ के घर पर माँ बैठी थीं। योगजीवन ने वहाँ जाकर माँ को घर लाया। माँ के शरीर में विशेष परिवर्तन नहीं दिखा। केवल वह गेरूआ वसन पहनी थीं। माँ ने गोस्वामी प्रभुजी को प्रणाम किया। प्रभुजी ने भी बहुत संतोष के साथ माँ के साथ बातें की, लेकिन इतने दिन माँ कहाँ, किस प्रकार थीं, इस बारे में कुछ नहीं पूछा।

गोस्वामी प्रभुजी रातभर बारामदे में रहते थे। मच्छरों का उपद्रव था। माँ योगमाया पंखा लेकर पूर्ववत् गोस्वामी प्रभुजी को हवा करने लगी। उस समय

योगजीवन, श्रीधर आदि ने माँ के आकस्मिक अदृश्य होने के विषय में जानना चाहा। माँ बोली– परमहंसजी पाँच महापुरुषों के साथ आए थे। वे लोग छह–सात हाथ लंबे थे एवं सबके माथे में पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना ले गए और कहा, "यहाँ स्नान करो।" मैंने स्नान किया। उसके बाद वे लोग मुझे कहाँ, किस प्रकार ले गए – मैं कुछ नहीं जानती। थोड़ी देर बाद मैंने देखा, मैं पहाड़ पर हूँ। बड़ा ही सुन्दर स्थान, परमहंसजी ने उन पाँच महापुरुषों को मेरे रक्षक के रूप में नियुक्त किया था। वे लोग सर्वदा मेरे पास रहते। मैं इच्छानुसार भ्रमण कर सकती थी। वहाँ मन में कोई उद्वेग या अशांति नहीं होती थी। बड़ा आनन्द का स्थान है। उन्हीं लोगों ने मुझे यहाँ वापस पहुँचाया। माँ से पूछा गया कि क्या आप यहाँ आना चाहती थीं ? माँ बोली, "क्या वहाँ से आने की इच्छा होती है ? क़भी–कभी कुतु की याद आती थी।"

(संदर्भ ग्रन्थ–श्रीश्री सद्‌गुरुसंग)

गोस्वामी प्रभुजी द्वारा उक्त विवरण सुनकर हर्ष व्यक्त करने पर योगमाया देवी ने आनन्दित होकर पूरा विषय वर्णन किया। आनन्द परिवेश में रात बीत गई। माँ के अदर्शन से व्याकुल शिष्यगण दूसरे दिन माता योगमाया देवी का अपूर्व रूप लावण्यमयी देवी रूप में दर्शन किया। उन्होंने देवी का अनेक बार दर्शन किया था लेकिन उस दिन उनके निकट बैठकर जो अपार्थिव आनन्द एवं अभूतपूर्व शांतिरस आस्वादन किया, इससे पहले उन्होंने कभी ऐसा अनुभव नहीं किया था। अपनी जननी के बारे में प्रभुपाद योगजीवन महाशय ने उस समय जो मंतव्य व्यक्त किया था, वह विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा– "लौटने के बाद माता के भीतर मैंने एक आश्चर्यजनक विशेषता देखी। उनके चेहरे पर एक अपूर्व माधुरी शोभित हो उठी है। उनका स्वाभाविक सुप्रसन्न मुखकमल शत गुणा प्रफुल्लतर हो गया है। हम लोगों के बारे में बिल्कुल ही उदासीन हो गई हैं। हम उनकी संतान हैं, लगता है यह बात उन्हें विस्मृत हो गई है। मेरी छोटी बहन कुतुबुड़ी के प्रति भी बिन्दुमात्र माया नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इन सब कारणों से उनके प्रति हमारी (संतानों की) श्रद्धा–भक्ति बिन्दुमात्र कम नहीं हुई, वरन् पूर्वापेक्षा सौ गुणी बढ़ गई। अब हम उनके साथ बातें करके जिस प्रकार अपार्थिव सुखशांति अनुभव कर रहे हैं, पहले कभी ऐसा अनुभव नहीं किया। वे पूर्वापेक्षा अधिक अपनी हो गईं। मायातीत होने से मनुष्य ऐसी अवस्था प्राप्त करता है, यह पहले सपने में भी कल्पना नहीं की।"

उल्लेखनीय है कि परमहंसजी के पास से लौटने के बाद माता योगमाया देवी पहले की तरह गोस्वामी प्रभुजी के साथ वास करने लगीं। पहले एकत्र वास करते समय दोनों में बहुत कम बातें होती थी। लेकिन अब विभिन्न प्रकार से सत् प्रसंग

करके वे रात बिताते थे। इस घटना से सब आवरण मिट गए। माता योगमाया दीर्घकाल मनःक्लेश के बाद अब सुखी जीवन बिता रही थीं।

गोस्वामी प्रभुजी ने इससे पहले कहा था कि माँ के साथ में रहने से आश्रम की मर्यादा नष्ट होती है। अब उनको साथ में रखा है। यह प्रभुजी की अपनी इच्छा या परमहंसजी का आदेश है, यह पता नहीं चला। इस विषय में कुलदानन्दजी के पूछना शुरू करते ही गोस्वामी प्रभुजी थोड़ा हँसते–हँसते कहने लगे, "कुछ दिनों पूर्व एकदिन गुरुजी मुझे सूक्ष्म शरीर में लेकर पहाड़ में घूमने लगे। फिर मुझे मंदार पर्वत में ले गए। वहाँ कृपापूर्वक उन्होंने मुझे उर्ध्वरेता कर दिया। बहुत दिनों से मेरी उर्ध्वरेता होने की इच्छा थी। मैंने वह अवस्था प्राप्त करने पर उनके (योगमाया देवी के) लिए विशेष रूप से प्रार्थना की। गुरुजी ने कृपापूर्वक उन्हें भी वह अवस्था दे दी। बाद में एकदिन गुरुजी ने मुझसे कहा, – "तुम संपूर्ण निरापद हो। पहाड़ में रहो या घर में रहो, सर्वत्र तुम्हारी एक ही अवस्था है। उन्हें तुम यहीं रखो, अच्छा होगा।" गुरुजी के आदेश से ही उन्हें यहाँ लाया गया। मैं तो उत्तरकुरू चला जाऊँगा ऐसा सोचा था।

ब्रह्मचारीजी– क्या उत्तरकुरू जाना संभव है ?

गोस्वामी प्रभु– क्यों संभव नहीं ? लेकिन बहुत कष्ट है।

ब्रह्मचारीजी– सुनते हैं, मानस–सरोवर एवं कैलास में कोई नहीं जा सकता।

गोस्वामी प्रभु– क्यों नहीं जा सकता ? हठयोग का अच्छा अभ्यास रहने से संभव है, नहीं तो वहाँ जाना असंभव हैं।

ब्रह्मचारीजी ने एकबार माता योगमाया देवी को उनके दर्शन आदि के संबंध में कुछ बताने कहा था। इस प्रसंग पर उन्होंने कहा– **"देखो धर्म जगत में यदि धनी होना चाहते हो तो कृपण (कंजूस) होना। अपने प्राप्त दर्शन अनुभूति के संबंध में कोई चर्चा नहीं करना।"** यह मूल्यवान वाणी सभी साधकों के लिए उपयोगी है।

एकदिन माता योगमाया देवी एवं सतीशचन्द्र गुह महाशय की मातृदेवी आदि श्रीश्री गोविन्द देवजी के दर्शन के लिए गए। उस समय अचानक गुह महाशय की जननी ने योगमाया देवी को अपूर्व रूप लावण्यामयी आठ वर्ष की बालिका रूप में देखा। उनके पदतल आलता रंजित, परिधान में लाल चेली का कपड़ा एवं सर्वांग में उज्ज्वल अंलकार राशि थी। वे अलंकारादि एवं नूपूरादि की झंकार से चारों और मुखरित करके द्रुत पद से मंदिर की ओर जा रही हैं। मानो वह श्रीमती ब्रजसुंदरी होकर निकुंज में अभिसार के लिए जा रही हैं। अचानक योगमाया देवी का यह रूप देखकर सतीशबाबू की जननी "ये क्या! ये क्या देख रही हूँ!!" कहकर अचेत

होकर गिर पड़ी। योगमाया देवी एवं मुक्तकेशी देवी ने अनेक कष्ट से उनका चैतन्य संपादन कर आश्रम में लौट आईं। बाद में उनके भावान्तर का कारण पूछने पर उन्होंने पूरी घटना का वर्णन किया। यह अभूतपूर्व घटना सुनकर मुक्तकेशी देवी ने कन्या को स्नेह भर्त्सना के स्वर में कहा। –"तू अन्य लोगों के पास प्रकाशित होती है, मेरे पास क्यों नहीं ?" माँ की बात सुनकर सलज्ज होकर देवी ने उत्तर दिया, "माँ एकबार प्रकाशित होने से क्या वह रह सकता है ?" योगमाया देवी की इस प्रकार की बात से मायिक देह परित्यागपूर्वक राधाकृष्ण की नित्य लीला की सखी रूप में परिणति का संकेत मिलता है।

एकदिन योगमाया देवी सतीशबाबू की माता से बोली– "देखो, इसबार गेण्डारिया जाकर एक नई चीज दिखेगी। वहाँ पर नामब्रह्म अर्थात्–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस प्रकार नाम ब्रह्म प्रतिष्ठित होगा एवं शंख, घंटा मृदंग करताल की ध्वनी के साथ धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपकरणों के साथ पूजा प्रतिष्ठा होगी।

गोस्वामी प्रभुजी के साथ माता योगमाया का एकत्र वास करना अनेक साधु उचित नहीं सोचते थे। ब्रज विदेही श्री रामदास काठियाबाबा ने उन लोगों से कहा था– **"महाराज समर्थ पुरुष हैं, इससे उनकी बिन्दुमात्र हानि नहीं होती। तेजस्वी व्यक्ति सब कुछ कर सकते हैं। आग भी भक्षण कर सकते हैं। महादेव ने विष पान किया था। तेजस्वी के पास कुछ भी रोषपूर्ण नहीं। गोसाँईजी उद्द्वरेता निष्काम पुरुष हैं। वे निष्काम भाव से पत्नी के साथ एकत्र वास करते हैं।"**

संदर्भ ग्रन्थ– (जगदबंधु मैत्र– प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी)

माता योगमाया देवी आनन्द के साथ सबकी सेवा करती थीं। गोस्वामीजी जब अकेले थे, दाऊजी का प्रसाद ग्रहण करते थे। इससे उनको क्लेश होता था एवं शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया। यह देखकर माँ योगमाया ने उनके आहार के लिए स्वतंत्र व्यवस्था की। रसोई के बारे में उनकी विशेष दक्षता थी। इसलिए स्वयं विभिन्न अन्न व्यंजन प्रस्तुत करके पति–पुत्र शिष्य आदि सबको आहार कराने लगीं। इधर दाऊजी उनके हाथों का बना आहार खाने के लिए उनको सपने में बोले– "तुम लोग अच्छा भोजन करते हो, मुझे नहीं देते। मुझे भी देना।" उस दिन

से माता योगमाया देवी प्रस्तुत अन्न व्यंजन से दाऊजी को भी भोग देती थीं।

एक छोटा–सा पात्र था। देवी एक पात्र अन्न, एक पात्र दाल, एक पात्र सब्जी बनाती। कोई वस्तु दुबारा नहीं बनाती थीं। लेकिन भोजन के समय जितने लोग उपस्थित रहते, सब लोग संतोषपूर्वक भोजन करते। उनके भोजन के पूर्व जितने भोजनार्थी उपस्थित रहते, उसी अन्न –व्यंजन से सब लोग भोजन करते थे। देवी के भोजन करने से ही सब समाप्त हो जाता था। इस प्रसंग में महाभारत के द्रौपदी की बात स्मरणीय है।

ब्रजमण्डल–परिक्रमा महापुण्यजनक कार्य है। बंगाब्द 1297 सन् के 27 श्रावण (सन् 1890 ई०) वनयात्रा के समय गोस्वामी प्रभुजी शिष्यों के साथ परिक्रमा पर निकले। उस समय भगवती योगमाया देवी उनके साथ थीं।

1297 सन् के माघ मास (सन् 1891 ई०) के प्रथम भाग में एकबार रात में कई महापुरुषों ने गोस्वामी प्रभुजी के पास उपस्थित होकर कहा, "आज हिमालय के मुक्तिनाथ तीर्थ में उत्सव होगा। हम वहाँ जा रहे हैं, तुम हमारे साथ चलो।" उन लोगों के साथ जाने के लिए गोस्वामी प्रभुजी तैयार हो रहे थे। उसी समय माता योगमाया प्रभुजी से बोली – "मैं भी तुम लोगों के साथ जाऊँगी। मुझे ले चलो।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा कि वे लोग सूक्ष्म देह में वहाँ जाएँगे। देवी की वह क्षमता नहीं है। माता योगमाया बोली, "आपलोग चाहें तो मुझे ले जा सकते हैं", ऐसा कहकर वह जाने के लिए अत्यंत आग्रह करने लगी। देवी का आग्रह देखकर प्रभुजी ने कहा कि अभी देवी की जो अवस्था है, उससे वह सूक्ष्मदेह में वहाँ नहीं जा सकेंगी। अवस्था नहीं खोलने से स्थूल देह से लिंग शरीर में नहीं निकाला जा सकता। प्रभुजी की बात सुनकर देवी बोलीं– "आप चाहे तो मेरी अवस्था खोल सकते हैं। मेरी अवस्था खोल दीजिए।" गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "तुम जो चाह रही हो, उसे पाने से फिर संसार में एवं शरीर में आबद्ध नहीं रहना चाहोगी। उस अवस्था को प्राप्त होने से तुम मोह मुक्त हो जाओगी। एक ऐसा राज्य तुम्हारे सामने प्रकट होगा, जिसे देखकर तुम मुग्ध हो जाओगी। ब्रह्मानन्द में डूब जाओगी। भगवान की नित्यलीला दर्शन करके विभोर हो जाओगी। तुम्हारी अवस्था खोल देने से तुम शरीर में बद्ध नहीं रहना चाहोगी। तुम्हारी वृद्धा माता एवं बालिका कन्या है। तुम्हारे कलेवर परित्याग करने से उन लोगों की अवस्था शोचनीय होगी।"

गोस्वामी प्रभुजी के पास इसे सुनकर भी देवी बार–बार व्याकुलता व्यक्त करने लगीं। उनकी कातरता से गुरुदेव परमहंसजी ने कहा, "इनकी अवस्था खोल देने का समय हो गया है"– यह कहकर माता योगमाया देवी की अवस्था खोल दी। देवी माया आवरण से मुक्त हो गई एवं सब अध्यात्मतत्व उनके निकट

प्रकाशित हुए। वह भगवान की नित्यलीला दर्शन की अधिकारी होकर उस लीला की अंगीभूत हो गई। उसके बाद देवी ने उनलोगों के साथ सूक्ष्मदेह में मुक्तिनाथ गमन किया एवं वहाँ का उत्सव दर्शन करके श्रीवृन्दावन लौट आईं।

गोस्वामी प्रभुजी के श्रीवृन्दावन में अवस्थान के समय वहाँ कुँभ मेला हुआ था। उन्होंने एक महीना कुँभ मेला दर्शन एवं साधु संग के बाद माता योगमाया देवी से कहा– "गुरुजी ने मुझे एक साल वृन्दावन वास करने का आदेश दिया था, वह पूर्ण हो गया। अब मेरी हरिद्वार जाने की इच्छा है। वहाँ का कुँभमेला देखकर ढाका जाएँगे। तुम इस प्रकार आयोजन करो।" यह सुनकर माँ बोली, "आपलोग हरिद्वार जाना चाहते हैं, जाइये। मैं नहीं जाऊँगी। मैं यहीं रहूँगी।" गोस्वामी प्रभुजी ने देवी से पूछा कि देवी कहाँ रहेंगी ? माँ बोली, "इस देह को लेकर सब गोलमाल है। उसे छोड़ देने से ही सब मिट जाएगा। मैं शरीर त्याग करके नित्यलीला में अंगीभूत होकर इस धाम में वास करूँगी।" यह सुनकर प्रभुजी बोले, "तुम्हारी वृद्धा माता एवं बालिका कन्या है। तुम्हारे अभी देहत्याग करने से वे शोक मग्न हो जाएंगे। यह तो तुम्हें सोचना चाहिये।" पति की बात सुनकर देवी बोली, "संसार में कोई किसी का नहीं है, सब अपना–अपना कर्म भोग रहे हैं। कौन किसकी माँ, कौन किसकी संतान ? ये सब माया का संबंध है। माया छूट जाने से किसी के साथ संबंध नहीं रहता। मैं किसी के लिए बंधी नहीं हूँ।"

पति से यह कहकर उन्होंने पंचाग देखकर 10 फाल्गुन देहत्याग का दिन निश्चित किया। उसदिन त्रयोदशी, श्रीमान् नित्यानंद प्रभुजी की आविर्भाव तिथि थी। उस दिन सुबह से उल्टी शुरू हुई। अंत में वह विसूचिका में परिणत हुई। गोस्वामी प्रभुजी जानते थे कि उस दिन देवी देहत्याग करेंगी। प्रतिदिन की तरह उस दिन भी प्रभुजी आहार के बाद साधु दर्शन के लिए गए थे। उनके आश्रम लौटने के पहले ही संध्यालग्न में माता योगमाया देवी ने देहत्याग की। देह से निकलकर देवी पति के पास गई एवं उनके साथ साक्षात् के बाद नित्यलीला में प्रवेश की। गोस्वामी प्रभुजी शीघ्र आश्रम लौटे एवं उनकी देह सत्कार करने के लिए निर्देश करने लगे। माँ की पवित्र देह को अबीर, कुमकुम, पुष्प, चन्दन से सुसज्जित करके यमुनातट में यथाविधि सत्कार किया। उस दिन था 1297 सन् (सन् 1891 ई०) के 10 फाल्गुन, संध्याकाल। सत्कार के बाद उनकी अस्थि संग्रह की गई। प्रभुजी के निर्देश से योगजीवन अस्थि का कुछ अंश हरिद्वार के गंगा में विसर्जन कर अवशिष्टांश ढाका ले जाकर मन्दिर प्रतिष्ठापूर्वक वहाँ नामब्रह्म स्थापन किया। एकादश दिवस में देहत्याग के उपलक्ष में गोस्वामी प्रभुजी श्रीवृन्दावन में महोत्सव संपन्न करके हरिद्वार चले गए। देवी की श्रीवृन्दावन धाम प्राप्ति के बाद गोस्वामी प्रभुजी ढाका में जामाता जगद्बन्धु महाशय को जो पत्र

लिखे थे, वह नीचे दिया गया है –

।। ॐ हरिः ।।

श्रीवृन्दावनधाम,
दाऊजी मंदिर,
गोपीनाथ बाग।

कल्याणवरेषु,

10 वीं फाल्गुन संध्याकाल में श्रीमती योगमाया देवी ने उनकी चिर प्रार्थनीय सिद्ध देह लाभ किया है। अविश्वासी लोग इसे मृत्यु कहते हैं। लेकिन एकबार विश्वासयुक्त आँखों से देखो, योगमाया आज सखिवृन्द में क्या अपूर्व सौन्दर्य लाभ कर रही हैं।

श्रीमती शांतिसुधा से कहना, कि शोक न करे। यह शोक की बात नहीं है, अति आनन्द की बात है। अनेक सौभाग्य से मनुष्य इसे प्राप्त करता है। 21 फाल्गुन यहाँ उनके नाम से उत्सव होगा। उसके बाद ढाका यात्रा करेंगे। श्रीमती शांतिसुधा यदि श्राद्ध करना चाहती है, तो आनन्द उत्सव करके दुःखी कंगालों को भोजन कराना। माँ शांति! शोक मत करो, आनन्द करो। मैं शीघ्र जा रहा हूँ।

आशीर्वादक

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

माता योगमाया के देहत्याग के बाद जामाता जगद्बंधु मैत्र गोस्वामी प्रभुजी से जननी की देहत्याग के बारे में पूछने पर गोस्वामी प्रभुजी ने कहा – "अवस्था प्राप्त करने के बाद जब वे (योगमाया देवी) नित्यलीला में प्रविष्ट हुई तब वे और वृन्दावन परित्याग करना नहीं चाहीं। उन्होंने मेरे पास देह त्याग की इच्छा व्यक्त की। मैंने पुत्र, कन्या एवं वृद्धा जननी की बात कहकर देहत्याग करने मना किया था। उन्होंने कहा कौन किसका पुत्र ? कौन किसकी माता ? ये तो सब माया का खेल है। मेरे भीतर बिन्दुमात्र माया या ममता बोध नहीं है। मैं देहत्याग करके नित्यलीला में प्रवेश करूँगी।"

(संदर्भ ग्रन्थ–जगद्बन्धु मैत्र–प्रभुपाद विजयकृष्ण)

श्रीमती योगमाया देवी के तिरोभाव–उत्सव समाप्त करके गोस्वामी प्रभु श्रीधर

आदि शिष्यों के साथ हरिद्वार में कुंभमेला दर्शन के लिए गए एवं एक निर्दिष्ट दिन श्रीवृन्दावन से संगृहीत माता योगमाया देवी की भस्मास्थि का स्वहस्त गंगा में विसर्जन किया। इस प्रसंग में साधु श्रीधर की बात उल्लेख योग्य हैं। माता योगमाया देवी के देहावसान के बाद भक्त श्रीधर अत्यन्त दुःखी होकर एकदिन हरिद्वार के ब्रह्मकुंड के पास बैठकर माता योगमाया देवी को स्मरण कर मातृहीन बालक की तरह रुदन करने लगे। अचानक माता योगमाया देवी ने गंगा से दिव्यदेह में आविर्भूत होकर शिष्य संतान को सांत्वना देकर बोली, **"तुम मेरे लिए क्यों रो रहे हो ? मैं मरी नहीं। ये देखो मैं वर्तमान हूँ। तुम लोग मेरे शरीर को यमुनातट पर अग्निद्वारा भस्मीभूत करके पंचभूत में लय किए हो। अब मैं मुक्त होकर ब्रह्माण्ड में सर्वत्र गमन कर सकती हूँ। इतने दिन शरीर में बंधा रहने के कारण जो नहीं कर सकती थी, अब इच्छानुसार सब कुछ कर सकती हूँ। मेरे लिए नहीं रोना, तुम्हारे ऊपर मेरी विशेष दृष्टि है।"**

साधु श्रीधर से ये सब कहकर माता योगमाया देवी लीन हो गई।

साधु श्रीधर के प्रति योगमाया देवी का उक्त कथन एवं उपदेशावली अत्यंत तात्पर्यपूर्ण है। उस समय माता शरीर में नहीं थी। लेकिन भक्त संतान शिष्य की कातरता से माता ने गंगा से उठकर भक्त को दर्शन दिया।

हरिद्वार के कुंभमेला समाप्त होने पर शिष्यों के साथ गोस्वामी प्रभुजी ढाका गेण्डारिया आश्रम में गए। श्रीश्री नित्यानन्द प्रभुजी के आदेश से उन्होंने वहाँ एक मंदिर निमार्ण कराया। उस मंदिर में श्रीश्री योगमाया देवी की भस्मास्थि समाधिस्थ करके उस पर नामब्रह्म प्रतिष्ठापूर्वक नित्यपूजा की व्यवस्था की। उस समय से आश्रम में शंख, घंटा, मृदंग, करताल की ध्वनि एवं धूप, दीप, नवैद्य के साथ नामब्रह्म की पूजा होती है एवं योगमाया देवी के नाम से भोग दिया जाता है। यह नामब्रह्म –

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

श्रीमती योगमाया देवी के श्रीवृन्दावन प्राप्ति के बाद गोस्वामी प्रभुजी को एक सर्व–जन हितकर प्रत्यादेश प्राप्त हुआ था। कलियुग पावनावतार श्रीश्री नित्यानन्द प्रभु उस समय गोस्वामी प्रभुजी के पास प्रकट होकर ढाका गेण्डारिया आश्रम में योगमाया देवी की अस्थि समाधिस्थ करके उस पर मंदिर निमार्णपूर्वक श्रीश्री नामब्रह्म प्रतिष्ठा करके उसकी पूजा करने के लिए प्रत्यादेश किया। नामब्रह्म का प्रतिनिधि क्या है ? पूछने पर उपरोक्त नाम ब्रह्म शब्द स्वर्णाक्षर में प्रभुजी के सामने प्रकाशित हुआ था।

नामब्रह्म– पूजा के प्रत्यादेश– प्रसंग में श्रीश्री नित्यानन्द प्रभु ने कहा था, "नामब्रह्म ही कलि का एकमात्र देवता हैं, यह नामब्रह्म एवं आचार्यपूजा कलियुग में घर–घर में प्रतिष्ठित होगी। यथासमय इसके द्वारा भारत के एक प्रांत से दूसरा प्रान्त आलोड़ित होगा।"

गेण्डारिया लौटकर गोस्वामी प्रभुजी ने एकदिन उपस्थित शिष्य मण्डलियों के पास उक्त प्रत्यादेश व्यक्त किया। पूजा की सामग्री लाई गई। प्रभुजी स्वयं नामब्रह्म की एक पट अंकित करके साधन कुटीर में स्थापन करके प्रतिदिन तुलसी चन्दन द्वारा उसकी पूजा एवं आरती की व्यवस्था की। उस समय से नित्य नामब्रह्म की पूजा एवं आरती होती है।

नामब्रह्म पूजा के बारे में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा है, **"शास्त्रानुसार नामब्रह्म पूजा में जाति वर्ण के विचार की आवश्यकता नहीं। इसके निकट निवेदित अन्न महाप्रसाद के तुल्य है। यह नीचवर्ण के लोग द्वारा अर्पित एवं स्पर्शित होने पर भी ब्राह्मणदि उच्च वर्ण के लोगों का ग्रहणीय है। कोई अवज्ञा करे तो उसका अपराध होता पड़ता है,"** यह कहकर उन्होंने महानिर्वाणतंत्र में उल्लिखित पूजा–विधि बतलाई।

नामब्रह्म पूजा की और एक विशेषता यह है कि इसमें अन्यान्य विग्रहादि पूजा की तरह सेवापराध की संभावना नहीं है। इस बारे में गोस्वामी प्रभुजी का आदेश इस प्रकार है– "भक्ति ही नामब्रह्म पूजा का श्रेष्ठ उपकरण है। भक्तिपूर्वक दिन में एकबार प्रणाम करने से उसकी पूजा होती है। किसी कारण से मंदिर का दरवाजा दो दिन बंद रहने से भी कोई हानि नहीं है लेकिन श्रद्धाविहीन, दिखावटी भावना उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिए। परम दयाल श्री नित्यानन्द प्रभुजी ने कृपापूर्वक दुर्बल कलि के जीवों के लिए यह सहजसाध्य पूजा की व्यवस्था कर दी है।"

श्रीचैतन्यचरितामृत में महाप्रभुजी ने कहा है यथा –

भावार्थः–

"प्रणव महावाक्य, ईश्वर की मूर्ति।
प्रणव से सर्ववेद जगत् की उत्पति।।
कलियुग में नाम रूप में कृष्ण अवतार।
नाम से सर्व जगत् का होगा निस्तार।।
नाम–विग्रह–स्वरूप तीन एक रूप।
तीन भेद नाहि तीन चिदानन्द रूप।।

श्री अद्वैत प्रकाश में श्री अद्वैत प्रभुजी की उक्ति यथाः–

धर्म प्रवर्तन के लिए कृष्ण नाम लो।
नामब्रह्म प्रचार करके जीव को त्राण दो।
जैसे भगवान की शक्ति अनन्त चिन्मय।
तैसे नाम ब्रह्म की शक्ति नित्य सिद्ध है।।

श्रीश्री भक्तमाल – ग्रन्थ में पद्मपुराण का वचन यथा :–

"महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्प पुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते।।

अर्थ :– हे राजन, जो स्वल्पपुण्यशील है उसे महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म एवं वैष्णव किसी पर विश्वास नहीं होता।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि गोस्वामीजी ने अपने आश्रम में 'नाम–ब्रह्म' की स्थापना की थी। उनके अप्रकट होने के कुछ पश्चात् पुरी की प्रसिद्ध साधिका, साधारण लोगों में जो 'माँ मणि' के नाम से प्रसिद्ध थी, ने इस नामब्रह्म की महिमा बतलाई। **श्री चैतन्य महाप्रभु, गोस्वामीजी एवं अन्य महात्माओं का उन्हें सर्वदा दर्शन मिलता था। उनके समक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोस्वामी ने प्रकट होकर कहा था कि इस नामब्रह्म मंत्र का जप करने पर सद्गुरु की कृपा अर्थात दीक्षा प्राप्त होती है– जप करने के लिए नामब्रह्म निम्न रूप है–**

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(संदर्भ ग्रन्थ–माँ मणि)
(हिन्दी संस्करण)

अनंतर श्रीश्री योगमाया देवी को प्रणाम करके यह प्रसंग समाप्त किया गया।

****

श्रीमती शांतिसुधा देवी

श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के तृतीय संतान शांतिसुधा देवी का जन्म बंगाब्द 1281 सन् के 18 पौष शुक्रवार, (सन् 1875 ई०) रात्रि साढ़े 11 बजे हुआ था। वह शैशव काल से माता–पिता के पास बड़ी हुई थी। साधक पिता के सत्संग से उनकी शिक्षा–दीक्षा संपन्न हुई। आश्रम परिवेश में पालित होने के कारण प्रचलित शिक्षा–दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं हुई। प्राचीन काल में ऋषियों के आश्रम में मुनि कन्यागण जिस प्रकार पालित होते थे, उसी प्रकार आश्रम परिवेश में गोसाँई कन्या शांतिसुधा देवी पालित हुई थी। शिष्यों के प्रति गोस्वामी प्रभु के श्री मुखनिःसृत वाणी, शिष्यों के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दान, पाठ, कीर्तन एवं धार्मिक अनुष्ठानों का विवरण आदि विभिन्न विषयों पर आश्रम में चर्चा होती थी। इन सब विषयों में धर्म, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, भ्रमण संक्रांत सब बातें होती थीं।

शांतिसुधा देवी को आश्रम में इस प्रकार शिक्षा मिली थी। इसके अलावा गोसाँईजी स्वयं कन्या को वेद–वेदान्तादि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ाते थे। माता योगमाया देवी ने उनको ब्रह्म संगीत शिक्षा दी।

गोस्वामी प्रभुजी कहानी रूप में भी सुगंभीर तत्व की बातें संतानों से कहते थे। एकबार गोस्वामी प्रभुजी को सपरिवार पद्मा नदी (पूर्वी बंगाल में गंगा की धारा का नाम) में वास करना पड़ा। उस समय वे बहुत अस्वस्थ थे। कुछ दिनों में नदी के स्वास्थ्यप्रद वायु से वे स्वस्थ हो गए। उस समय एकदिन प्रभुजी की दोनों कन्या शांतिसुधा एवं प्रेमसखी ने पिता के पास कहानी सुनना चाहा। पिता ने दोनों कन्याओं को यह कहानी सुनाई थी –

किसी ब्राह्मण के घर में एक सेवापरायणा, सरला एवं धर्मपरायणा दासी थी। वह कभी झूठ नहीं बोलती थी। इसलिए ब्राह्मण दंपति उसको बहुत स्नेह करते थे। एकबार वे दासी के ऊपर गृहरक्षा का भार सौंपकर गंगास्नान में गए। रवाना होने के पहले वह दासी गृहिणी के हाथ में कुछ फल–फूल देकर बोली – माताजी, तुम्हारे हाथ में यह फल–फूल दे रही हूँ, मैं कंगालिनी हूँ इसलिए अवहेलना वशतः ये सब पानी में मत फेंकना। तुम गंगा माँ को स्मरण करके ये सब उन्हें अपने हाथों से ग्रहण करने के लिए कहना। गृहिणी मन में हँसने लगी, क्या यह भी संभव है

कि गंगा माँ अपने हाथों से ये पूजा उपकरण ग्रहण करेंगी। इसके बाद ब्राह्मण दंपति यथास्थान पहुँच कर यथाविधि स्नान पूजा के बाद दासी प्रदत्त पूजोपहार गंगा माँ को प्रदान करते समय बोले – "माँ तुम प्रकाशित होकर दुःखिनी दासी का यह उपहार ग्रहण करो।" ऐसा बोलने के साथ–साथ गंगा माँ ने दिव्याभरणयुक्त दोनों हाथ पानी के ऊपर उठाए। ब्राह्मणी ने उस दिव्य हस्त में दासी प्रदत्त फल–फूल अर्पण किये। यह घटना देखकर ब्राह्मणी चकित हो गई। दासी की अकृत्रिम भक्ति देखकर उसके प्रति अत्यंत श्रद्धा उदय हुआ। घर में लौटकर ब्राह्मणी ने इसके रहस्य के बारे में दासी से पूछा तो वह बोली कि वह कुछ भी नहीं जानती। वह प्राण निकलने पर भी झूठ नहीं बोलती शायद इसलिए देवी ने उस पर यह कृपा की।"

कन्याओं के निकट उक्त कहानी बोलकर गोस्वामी प्रभुजी सत्य की विजय घोषणा की। सत्य की महिमा सुनकर शांतिसुधा देवी बोली, "हम भी कभी झूठ नहीं बोलते, तो हमें क्यों देवी का दर्शन नहीं मिलेगा ? क्या देवी हम पर कृपा नहीं करेंगी ? गोस्वामी प्रभुजी ने कहा कि भक्तिपूर्वक नैवेद्य देने से वे दर्शन दे सकती हैं। पिता की बातों से आश्वस्त होकर कन्यागण ने दूसरे दिन कुछ भोज्य लाकर पिता को दिया। गोस्वामी प्रभुजी देवी की स्तुति करने लगे। स्तुति समाप्त करके वे मौन हो गए। उस समय अंलकार विभूषित सुन्दर दो हाथ पानी के ऊपर दिखाई दिए। कन्याद्वय विस्मित होकर यह अपूर्व दृश्य देखने लगी। गोस्वामी प्रभुजी के द्वारा वह नैवेद्य हाथ में देने के बाद वे हाथ अदृश्य हो गए। कुछ देर बाद पिता से पूछने पर उन्होंने कहा – "तुम लोग अति भाग्यवती हो। स्वयं पद्मा देवी ने कृपापूर्वक दर्शन दिए हैं। कलियुग में ऐसा प्रत्यक्ष दर्शन अत्यंत दुर्लभ है। तुम लोगों के ऊपर उन्होंने बड़ी कृपा की एवं उनके दर्शन से मेरा जीवन भी धन्य हुआ।"

यही है प्रत्यक्ष शिक्षा। वैज्ञानिक परीक्षा करके प्रमाण देखते हैं। यहाँ भी सत्य की अपूर्व महिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। शांतिसुधा देवी ने इस प्रकार की अनेक शिक्षा लाभ अर्जित किया था।

यथासमय पिता से शांतिसुधा देवी ने दीक्षा प्राप्त की। पिता के आदर्श से साधन–भजन में कन्या ने चरमोत्कर्ष प्राप्त किया। कन्या की उम्र 14 साल होने पर विभिन्न स्थानों से विवाह का रिश्ता आने लगा। लेकिन प्रभुजी को इनमें से एक भी पसंद नहीं आया। अंत में उन्होंने जगद्बंधु मैत्र को कन्या संप्रदान करना निश्चित किया। परिवार में कोई राजी नहीं था क्योंकि उक्त शिष्य स्नातक नहीं था एवं उसकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं थी। उन लोगों का अभिमत सुनकर प्रभुजी बोले– "मनुष्य, मनुष्य का भरण–पोषण नहीं करता। भगवान सबके प्रभु हैं,

सबका पालन करते हैं। अनंत ब्रह्माण्ड का भार जिनके ऊपर है, शांतिसुधा का भार भी उसी भगवान के हाथ में है। वे जो विधान देंगे, वही होगा। मैं देख रहा हूँ जगद्बंधु ही शांतिसुधा के लिए उपयुक्त है। उसके साथ विवाह होने से शांति सुखी रहेगी। अन्यत्र विवाह होने से उसके कष्ट की सीमा नहीं रहेगी। जगद्बंधु के साथ विवाह होने से वह सौभाग्यशालिनी होगी। मैं साफ देख रहा हूँ कि जगदबंधु का भविष्य अतिशय उज्ज्वल है। उसके साथ हमारा केवल इस जन्म का संबंध नहीं, जन्म–जन्म से उसके साथ हमारा संबंध है। तुम लोग किसी प्रकार से इस विवाह को टाल नहीं सकोगे। गुरुजी, महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु के आदेश से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। सारी पृथ्वी विरुद्ध होने पर भी मैं इस कार्य से विरत नहीं रह सकता। यदि तुम लोग इसमें राजी नहीं हो सको तो अपनी इच्छानुसार कन्या का विवाह करो। मैं चल रहा हूँ। आज से मैं तुम लोगों से अलग हो रहा हूँ। उस समय उन्होंने जगदबन्धु मैत्र के अतीत जन्म की कथा एवं महाप्रभु के समय वे कौन थे, यह सब बताया। गोस्वामी प्रभुजी की यह सब बातें सुनकर सब लोग इस विवाह के लिए सहमत हुए।

यह विवाह सन् 1295 के 26 फाल्गुन शुक्रवार (सन् 1889 ई०) को हुआ था। उसी दिन गोस्वामी प्रभुजी के पुत्र योगजीवन के साथ बसंतकुमारी देवीः का विवाह हुआ। एक ही दिन में समारोहपूर्वक दो विवाह ढाका के गेण्डारिया आश्रम में हुए थे। इस विवाह में गया आकाशगंगा पहाड़ के रघुवरदास बाबाजी एवं धामराई के भक्त साधु परशुराम ने योगदान किया था।

विवाह–कार्य साधारण ब्राह्मसमाज के नियम के अनुसार हुआ था। ढाका के सुप्रसिद्ध वकील श्री ईश्वरचन्द्र घोष महाशय गोस्वामी प्रभुजी का विशेष भक्त थे। उन्होंने एकदिन प्रभुजी के पास आकर कहा, "अब अन्य मत में विवाह क्यों करना ? हिन्दू विवाह अनुष्ठान में ऋषियों का मत है, अतः हिन्दू मतानुसार विवाह करना ठीक होगा।" घोष महाशय की बात सुनकर गोस्वामी प्रभुजी बोले कि यह प्रस्ताव अच्छा है, लेकिन दो दिन बाद उन्होंने सबको बुलाकर कहा, "मैंने सोचकर देखा कि हिन्दूमत में विवाह नहीं हो सकता। ब्राह्मण का एक भी संस्कार योगजीवन का नहीं हुआ। जगद्बन्धु ने विभिन्न अनाचार किया है। इन सबका प्रायश्चित होना कठिन है और अब समय भी नहीं है। तुम लोग गलत मत सोचो, ब्राह्म नियमानुसार रजिस्ट्री करके इन लोगों का विवाह कराना पड़ेगा।

गोस्वामी प्रभुजी के पुत्र–कन्या के विवाह में भक्तिभाजन श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय एवं श्री रजनीकांत घोष महाशय ने पुरोहित का काम किया था। विवाह स्थल में गोस्वामी प्रभुजी ने स्वयं उपस्थित रहकर गृहस्थ धर्म के बारे में उपदेश प्रदान किया। पुत्र को एक वर्ष ब्रह्मचर्य पालन की आज्ञा दी। विवाह के

बाद दूसरे दिन रजिस्ट्री हुई। विवाह में साधु–सज्जनों के आगमन से कई दिनों तक आनन्दोत्सव चला था।

विवाह के बाद दूसरे दिन ऐसा महोत्सव हुआ था, जो साधरणतः नहीं देखा जाता। महाभाव की वैद्युतिक शक्ति से उपस्थित लोग अभिभूत हो गए थे। भगवत् प्रेम से विभोर होकर गोस्वामी प्रभुजी ने उदण्ड नृत्य एवं हरिनाम का उच्च–निनाद सर्वत्र प्रतिध्वनित कर दिया। गेण्डारिया आश्रम कैलासधाम में परिणत हो गया था। धामराई के भक्त परशुराम गोस्वामी प्रभुजी के भीतर माधव दर्शन करके उनके श्री चरण में गिरकर बोले, "गोसाँई तुम माधव के साथ–साथ रहते हो।

(संदर्भ ग्रन्थ– 'प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी', लेखक– श्री जगबन्धु मैत्र)

गोस्वामी प्रभुजी को माधव रूप में देखकर वे उनके श्रीचरणमें गिरकर बोले–"गोसाँई रूपी माधव! तुम मेरे प्राणधन हो।" वे विभिन्न स्त्रोत्र पाठ एवं स्तुति करने लगे एवं गोसाँईजी की श्रीचरण रेणु सर्वांग में लगाने लगे। उस समय श्रीधर घोष ने गोस्वामी प्रभु के निकट प्रार्थना की कि आप कभी भी हमें छोड़कर नहीं जाएँगे। इहलोक, परलोक, अनन्तकाल हमें अपने पास रखेंगे – यह प्रार्थना मैं आपके मनुष्यतत्व से नहीं, ब्रह्मतत्व से कर रहा हूँ। आप मेरी प्रार्थना पूरी करेंगे या नहीं ?" उत्तर में प्रभुजी ने कहा, "मैं ब्रह्मरूप में तुम्हारे पास प्रतिज्ञा कर रहा हूँ, तुम अनन्तकाल तक मेरे साथ रहोगे। तुम्हें कभी भी मुझसे अलग नहीं रहना पड़ेगा।" श्री नगेन्द्रगृहिणी देवी मातंगिनी यह दृश्य देखकर प्रेमोन्मत्त होकर, ब्रजांगना भाव से कमर में कलश लेकर सुमधुर गीत के साथ नृत्य करने लगीं। पार्थिव लज्जा उनमें नहीं थी। वह युगल मूर्ति की ओर देखकर उनकी प्रदक्षिणा कर रही थी। पुत्र–कन्या के विवाह में गेण्डारियावासी महानन्द के सागर में डूब गए। हरिध्वनि, नृत्य की ताल में मृदंग एवं करताल की ध्वनि चारों ओर प्रतिध्वनित हो रही थी। यह सब दृश्य देखकर कोई भावावेग से अचेत हो गया, कोई उच्च स्वर में हँसने लगा, किसी का सर्वांग अश्रुसिक्त हो गया, कोई करतालि देकर नृत्य–गीत करने लगा, कोई उन्मत्त की तरह आचरण करने लगा। ऐसा लग रहा था कि गेण्डारिया – आश्रम श्री वृन्दावन में परिणत हो गया है।

बहुत देर बाद गोस्वामी प्रभुजी का बाह्यज्ञान लौटने से वे 'हरिबोल' 'हरिबोल' बोलने लगे। योगमाया देवी चैतन्य प्राप्त करके लज्जित हो गई। अब तक वे लोग चिदानन्द धाम में अवस्थान कर रहे थे।

शांतिसुधा देवी विवाह के बाद कुछ दिन दरभंगा में जगद्बंधु मैत्र के साथ थीं। वहाँ मैत्र महाशय एक विद्यालय में शिक्षक थे।

बंगाब्द सन् 1297 (सन् 1890 ई०) अर्थात् विवाह के प्रायः दो साल बाद शांतिसुधा देवी ने एक महापुरुष को पुत्ररूप में प्राप्त किया। पुत्र का नाम वृन्दावनचन्द्र रखा गया। शिशु के जन्म ग्रहण के समय गोस्वामी प्रभुजी ने शंखध्वनि करने का निर्देश दिया था। उस समय गोस्वामी प्रभुजी श्री वृन्दावन में एवं शांतिसुधा देवी ढाका में थे। शिशु को अभिनन्दन देने पितामह रामगति मैत्र सत्यलोक से आए थे। शांतिसुधा देवी के पुत्र दाऊजी के (वृन्दावनचन्द्र) जन्म ग्रहण के दिन गोस्वामी प्रभु की सास मुक्तकेशी देवी ने सपना देखा कि एक गेरूआ वस्त्र पहना हुआ ब्राह्मण गंगाजल पूर्ण एक ताम्बे का लोटा लेकर गोस्वामी प्रभुजी के साथ सूतिका घर में प्रवेश कर कहने लगा, "मेरे वंश में एक महापुरुष ने जन्म लिया है। हम उनको शांतिजल से अभिषिक्त करके अर्घ्यदान करने आए हैं।" यह कहकर उन्होंने हरिद्वार से लाए गए गंगाजल से बालक का सर्वांग अभिसिंचन किया।

शांतिसुधा देवी द्वारा सवप्न के बारे में पूछने पर गोसाँईजी ने कहा कि "सपना और घटना, दोनों सत्य है। दाऊजी के जन्म ग्रहण करने पर पितामह ने सत्यलोक से आकर मुझसे कहा, चलो ढाका में शांतिसुधा के शिशु को आर्शीवाद दे आए। हम दोनो ने ढाका में आकर शिशु को शांतिजल से अभिषिक्त किया। उसके बाद मैं श्रीवृन्दावन चला गया एवं उन्होंने सत्यलोक प्रस्थान किया।"

उक्त घटना से पता चलता है कि शांतिसुधा देवी की पहली संतान दाऊजी (वृन्दावनचन्द्र) एक महापुरुष थे। पहली संतान के बाद उनको जगदानन्द, सौरीन्द्र सुन्दर, भुवन सुन्दर एवं ब्रजेन्द्र सुन्दर नामक चार पुत्र और हुए।

1299 सन् के 5 भाद्र (1892 ई०) गोस्वामी प्रभुजी ने शांतिसुधा के लिए विग्रह बिहारी लालजी को प्रसाद के लिए कहा। घटना इस प्रकार थी – पूर्व रात में शांतिसुधा ने बातों–बातों में प्रभुजी से कहा, "बाबा, सनातन बाबू के आखड़े में बिहारी लालजी ठाकुर हैं। एकदिन उनका प्रसाद पाने की इच्छा होती है।" ठाकुर ने पूछा– "कौन सा प्रसाद पाने की इच्छा होती है, कहो।"

शांति– "अच्छा, मालपुआ प्रसाद।"

ठाकुर– ठीक है, बिहारीलालजी को तुम्हारी बात कह दी। जगद्‌बंधु को भेजना, प्रसाद ले आएगा। दिन के लगभग साढ़े दस बजे जगद्‌बंधु बाबू अखाड़ा में जाकर आश्रम के नाम पर प्रसाद मांगा। सेवक ने अत्यंत श्रद्धा के साथ प्रसाद देकर कहा – "हमारे यहाँ प्रतिदिन अन्नभोग होता है। आज सुबह अचानक एक धनी आदमी ने आकर मालपुआ का भोग दिया हैं।"

आश्रम के सब लोगों को आज मालपुआ प्रसाद मिला। शांति ने कहा– "ऐसा

स्वादिष्ट मालपुआ और कभी नहीं खाया।"

(ग्रन्थ 'श्रीश्री सद्गुरु संग' से)

शांतिसुधा देवी पति–पुत्रों के साथ निरासक्त होकर जीवन निर्वाह करती थी। आकाशवृत्ति उनका अवलम्बन था। इस प्रकार आदर्श पारिवारिक जीवन अत्यंत दुर्लभ है। पति–पुत्रों के साथ संसार में रहकर उन्होंने जनक राजा के आदर्श का जीवन में पालन किया। इसके पीछे था पिता का जीवनादर्श। पिता के आदर्श से उन्होंने फकीरी व्रत ग्रहण किया था। संसार यात्रा निर्वाह के लिए अर्थ का प्रयोजन था। संसार में अनासक्ति उनके चरित्र की विशेषता थी। सोने का अलंकार वे कभी नहीं पहनती थीं। शरीर, जीवन–यात्रा या बच्चों के लिए वे कभी नहीं सोचती थी। एकमात्र योगक्षेम दाता भगवान सब कुछ निर्वाह कर देते थे। गोस्वामी प्रभुजी ने गुरुजी के आदेश से एकदिन कन्या से पूछा, "शांति तू ऐश्वर्य चाहती है या फकीरी की, गुरुजी जानना चाहते हैं।" कन्या तुरंत उत्तर दी कि वह फकीरी प्रार्थना करती है। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "आज से तुम्हारा नाम फकीरों के तालिका में हुआ।" शांतिसुधा देवी ऋषियुग के मैत्रेयी देवी की तरह बोली – "येनाहं नामृतं स्याम् तेनाहं किं कुर्याम्" (वृहः उपः)

भावार्थ– जिसे लेकर मैं अमृत नहीं बन सकूँ उसे लेकर क्या करना ?

"बाबा – मुझे ऐश्वर्य की जरूरत नहीं है ?" शांतिसुधा देवी ने गोसाँईजी से एकदिन कहा– "मैं सब लोगों का भाव समझ सकती हूँ – क्या सब लोग यह जानते हैं ?" गोसाँईजी ने उत्तर दिये– "सब लोग नहीं जान सकते, तेरे जैसा मूर्ख अर्थात सरल होने पर जान सकते हैं।" इससे पता चलता है कि गोसाँईजी के जीवनकाल में ही वे आध्यात्मिक राज्य में काफी अग्रसर हो गई थीं।

संसार में रहकर धर्म साधन करने के लिए गुरुशक्ति आवश्यक है। "तेन त्यक्तेन भूंजीथाः" – उपनिषद् के इस मंत्र के साधक थे राजर्षि जनक, भगवान वशिष्ट, याज्ञवल्क्य, मैत्रेय आदि ब्रह्मविद एवं ब्रह्मवादिनीगण। इन लोगों संसार में रहकर साधना के चरम शिखर का आरोहण किया था। भगवान विजयकृष्ण के भीतर भी वही आदर्श था। उन्होंने भी पत्नी–पुत्र कन्या लेकर संसार में रहकर साधना की श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की थी। एकबार श्री रामकृष्ण परमहंसदेव ने कहा था, "विजय तुम जनक ऋषि का धर्म पालन कर रहे हो।" उन्होंने यह भी कहा था, "संसार में रहकर धर्म लाभ करना काफी निरापद है, जैसे किला के अंदर से युद्ध करना।" गोस्वामी प्रभुजी भारत के प्राचीन आदर्श को पुनः स्थापित करने के लिए आए थे। अपने जीवन में एवं पुत्र–कन्यागण के जीवन में वे इसे प्रमाणित कर गए हैं। गोस्वामी प्रभुजी के दिव्य जीवन में सहायता करके देवी योगमाया ने जगत्

को दिखाया है कि संसाराश्रम में भी धर्म की उच्चावस्था प्राप्त की जा सकती है। उनके पुत्र संसारी होकर भी चरम अध्यात्म शक्ति के अधिकारी थे। उसी प्रकार शांतिसुधा देवी ने भी वही आदर्श दिखाया है। संसार का अभाव, अशांति उनकी मानसिक चंचलता का कारण नहीं बन सका। वे स्थितप्रज्ञ थीं। संसार में रहकर पति–पुत्रादि के प्रति सब कर्तव्य संपादन करते हुए उसी एक लक्ष्य तक पहुँची थीं।

1300 सन् के माघ महीने (सन् 1894 ई०) में गोस्वामी प्रभुजी कुँभ मेला में गए। उस समय गोस्वामी महाशय की कन्या शांतिसुधा विभिन्न प्रकार के स्त्री–रोग से पीड़ित होकर यंत्रणा भोग रही थीं। उनका शरीर अस्थि–चर्म सार हो गया था। शांतिसुधा एकदिन गोस्वामी महाशय से बोली, "बाबा मुझे मार डालो या मुझे स्वस्थ कर दो।" गोस्वामी महाशय उत्तर में बोले, "सब कर सकता हूँ, लेकिन पुनः आना पड़ेगा।" शांतिसुधा और कुछ नहीं बोली। गोस्वामी महाशय ने भी रोग का प्रतिकार नहीं किया।

एकदिन शांतिसुधा रोग यंत्रणा से तड़प रही थी। उनकी कातरता से नानी व्यथित होकर श्री रामदास कठियाबाबा के पास जाकर बोली "बाबा आप बैठे हैं और शांति तो मर रही है। गोसाँईजी ने कोई व्यवस्था नहीं की।" रामदास काठियाबाबा चरस पीकर आँखें लाल करके बैठे थे। नानी की बात सुनकर वे जोर से बोले, "अभी छूट जायेगा। उन्होंने धूनी से थोड़ी भस्म नानी के हाथ में दी एवं कहा, "पेट में लगा दो" एवं एक दवा भी बताई। दवा इस प्रकार था, एक टुकड़ा अदरक लेकर उसके अन्दर हींग भर के, उसे आग में जलाकर, उसका छिलका निकालकर, छोटा–छोटा टुकड़ा करना होगा। थोड़े नमक के साथ एक–एक टुकड़ा खाना होगा।" नानी के लौटने के साथ–साथ उनकी यंत्रणा कम हो गई एवं वह दवा लेकर रोगमुक्त हो गई। इस प्रकार अन्य महापुरुष भी शांतिसुधा को बहुत स्नेह करते थे।

श्रीवृन्दावन में माता योगमाया देवी की नित्यधाम प्राप्ति की खबर सुनकर शांतिसुधा अत्यंत शोकाकुल हो गई थीं। गोसाँईजी ने यह अनुभव किया था। उन्होंने कन्या को विशेष सांत्वना देकर पत्र लिखें– "माँ शांति! शोक मत करो आज योगमाया सखियों के साथ कितने आनन्द से विराज कर रही हैं, आदि। पितृदेव का पत्र पाकर एवं संभवतः जननी को सर्वदा दिव्यदेह में अप्राकृत ब्रजधाम में विराजमान देखकर उनका शोक दूर हुआ। माता योगमाया देवी ने कन्या को उनके देहांत के पूर्व गेण्डारिया आश्रम में रहने के लिए एक पत्र लिखा था। वह आश्रम उन्होंने कन्या को सौंप दिया था। इसलिए माता के निर्देशानुसार शांतिसुधा देवी पति–पुत्रों और नानी मुक्तकेशी देवी के साथ में आश्रम में वास करने लगी।

आश्रम में उनके साधन कुटीर में सांप का बड़ा उपद्रव था। वहीं वे निश्चिन्त

होकर साधन–भजन करती थीं। सरोवर से एक बड़ा कछुआ ऊपर उठकर उनका श्रीरामचरित पाठ सुनता था। वे अन्दर महल के एक बड़े घर में रहती थीं। वहाँ गोसाँईजी एवं माता योगमाया के दो तैलचित्र सिंहासन में स्थापित था। उसी आसन पर मुक्तकेशी देवी के गोपालजी का विग्रह, श्रीश्री पहाड़ी बाबाजी के गोपालजी का चित्रपट एवं गोसाँईजी के समय के अनेक विग्रह थे। सिंहासन के बगल में एक चारपाई पर शांतिसुधा देवी ने बहुत दिनों तक समाधिस्थ अवस्था में व्यतीत की थी। उन्होंने उसी घर में अंतिम श्वांस ली।

उस घर के संलग्न टाली घर में भी वे उत्सवादि के समय रहती थीं। वे आश्रमवासी को रात तीन बजे जगा देती थीं। उस समय नित्य होम किया जाता था। दोपहर में एवं संध्या में भी होम होता था। रात तीन बजे होम के बाद मंगल आरती एवं प्रातः कीर्तन होते थे। उस समय गोपाल जी को भोग निवेदन के बाद वे चाय–भोग एवं प्रसाद ग्रहण करती थीं। अपराह्न में एकबार चाय के अलावा दिन में और कुछ ग्रहण नहीं करती थी। रात में स्वयं रसोई करके भोग निवेदन करके प्रसाद ग्रहण करती थीं। पान एवं जर्दा उनको प्रिय था। स्वाभाविक अवस्था में वे यह सर्वदा सेवन करती थीं। राधाकुंड से ब्रजमायी सरवती देवी के आने से उनकी आनंद की सीमा नहीं रहती। उस समय शांतिसुधा देवी भावावस्था में संगीत एवं नृत्य करती थीं। दोनों ब्रजभाषा में बातें करती थीं।

सुना जाता है, गोसाँईजी के देहावसान की खबर सुनकर शांतिसुधा देवी अचेत हो गई थीं। अंतिम समय में पिता ने कन्या को पास में नहीं रहने दिया। इससे शांतिसुधा देवी को अत्यंत शोकावेग के साथ–साथ क्षोभ भी हुआ। शोक से उनको बुखार एवं रक्तातिसार हो गया एवं उनकी शरीर दुर्बल हो गया। "तुम धोखा देकर चले गए, बाबा! क्यों इतने निष्ठुर हो गए!" आदि बोलकर दिनभर रोती थीं। उस समय एकदिन गोसाँईजी पुरीधाम में कन्या के पास प्रकट होकर बोले– "शांति तू मत रो, मैं तो तेरे पास ही हूँ। तू जब चाहेगी दर्शन पाएगी। तू बाबा विश्वनाथ के पास काशीधाम में जा, वहाँ ठीक हो जाएगी एवं मेरा दर्शन मिलेगा।" पिता के निर्देश से कन्या काशीधाम जाकर एक मकान में दो मंजिल में रहती थीं। उस समय प्रति संध्या में गोसाँईजी उनके मस्तक के पास बैठते थे एवं मस्तक पर हाथ रखकर सांत्वना देते थे। गोसाँईजी के विदेह लीला का यह एक अपूर्व दृष्टांत है। अपने जीवन के अन्तिम तीस वर्ष देवी गेन्डारिया आश्रम में अप्राकृत ब्रज लीला रस में मग्न रही। उस समय अनेक लोगों ने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षा दान के साथ आकाशवृत्ति पर रहते हुए आश्रम का सब कार्य वे चलाती रहीं।

गोसाँईजी के तिरोधान के बाद शांतिसुधा देवी के समय गेण्डारिया आश्रम में

एकबार धूलट उत्सव में अपूर्व दृश्य देखा गया। उस समय गोसाँईजी के प्रिय शिष्य एवं विख्यात कीर्तनीया श्री रेवतीमोहन सेन उपस्थित थे। जामुन पेड़ के नीचे तीन प्रभु का आसन था। उस दिन प्रातः कीर्तन के साथ–साथ शांतिसुधा देवी आश्रम प्रांगण ध्वनित करते हुए 'हरिबोल' 'हरिबोल' बोलकर नृत्य करते–करते समाधिस्थ हो गईं। उनके श्री अंग से अगुरु चन्दन की सुगंध चारों ओर फैल गई। भावमग्न होकर वे सरवती माई एवं यमुनामाई को लेकर अबीर (गुलाल) छिड़कते–छिड़कते मंदिर प्रदक्षिणा करने लगीं एवं तीन प्रभु के आसन घेरकर नृत्य करने लगीं। फिर वे समाधिस्थ हो गईं। समाधि भंग होने पर बाल्यभोग निवेदन करके सबको प्रसाद वितरित किया गया। उसके बाद रेवती मोहन सेन का मधुर कीर्तन शुरू हुआ। कीर्तन में देवी अचेत हो गई और उनके नयनों से धारा बहने लगी। उनके प्रति अंग की संधिदेश के मांसपिण्डों को अपूर्व नृत्य करते देखा गया। तीन–चार संगीत के बाद रेवतीमोहन बाबू ने नाम–कीर्तन करके जयध्वनि देकर कीर्तन समाप्त किया। उस समय सब लोग प्रायः अचेतन एवं भावमग्न थे। बाद में बहुत देर तक 'राधे राधे' नाम सुनाने के बाद शांतिसुधा देवी का बाह्यज्ञान लौटा। आश्रम में सर्वदा गोसाँईजी एवं माता योगमाया का अप्रकट विहार था। उस दिन सब लोगों ने यह स्पष्ट अनुभव किया।

इसके बाद सब लोग–नगर कीर्तन में निकले। शांतिसुधा देवी का शरीर बहुत ही दुर्बल था। इसलिए कुछ दूर पैदल जाने के बाद सबके अनुरोध से वे घोड़ा–गाड़ी में बैठकर साथ–साथ जाने लगीं। परिक्रमा समाप्त करके दोपहर तीन बजे सब आश्रम लौटे। वहाँ सबने भावमग्न होकर नृत्य करते–करते मंदिर प्रदक्षिणा के बाद कीर्तन समाप्त किया। उसके बाद तीन प्रभु को मालसा भोग एवं समाधि मंदिर में खिचडी भोग निवेदन के बाद भोग आरती का संगीत शुरू हुआ। उस समय ऐसा लग रहा था, मानो प्रभुजी वहाँ उपस्थित हैं। भोगमंदिर खोलने के साथ–साथ देखा गया कि सब भोग बिखरा हुआ है तथा प्रभु ने भोग ग्रहण किया है इसके स्पष्ट चिह्न थे। सब हरिबोल जयघोष करने लगे। देर रात्रि में उत्सव की समाप्ति हुई।

देवी में कभी ऐश्वर्य व्यक्त करने की इच्छा नहीं देखी गई। एकदिन की घटना है पहले ही कहा गया है कि देवी संध्या के बाद एकबार स्वपाक आहार ग्रहण करती थीं। उस समय उनको कोई आहार हजम नहीं होता था, इसलिए एक पाव चावल पात्र में बनाकर उसमें घी डालकर ठाकुर को निवेदन करके वे प्रसाद ग्रहण करती थीं। एकबार संध्या में श्री रेवतीमोहन सेन ने देवी माँ के पास प्रसाद पाने की प्रार्थना की। वे प्रायः 50–60 जन के साथ प्रसाद पाने बैठे। आश्चर्य की बात है कि देवी माँ ने उस एक पाव चावल के भोग से सबको तृप्ति के साथ भोजन

करा दिया। इस प्रकार कभी—कभी उनका ऐश्वर्य व्यक्त हो जाता था।

देवी माँ सर्वज्ञ थीं, इसका परिचय भी मिलता था। गोस्वामी प्रभुजी के साधन कुटी के संलग्न एक छोटी कुटीर में देवी बहुत दिन समाधिस्थ अवस्था में थी। वहाँ अनेक सांप थे। देवी निर्भीक भाव से वहाँ रहती थीं। वहाँ अनेक अलौकिक घटना भी हुई। उनके शिष्यगण वहाँ साधना करते थे। एकदिन साधना के बाद एक शिष्य सपरिवार घर जा रहा था। उस समय देवी माँ ने उनको थोड़ी देर रुककर फिर जाने के लिए कहा एवं एक जन को बत्ती लेकर उन लोगों के साथ जाने को कहा। कुटीर से आंगन तक जाते ही एक बड़ा विषधर सर्प जंगल की ओर जाते हुए देखा गया। देवी माँ के रोकने का कारण अब सबको पता चला।

अंतर्दृष्टि संपन्ना देवी माँ की असीम शक्ति का परिचय पाकर सब चकित् हो जाते। संध्या के कुछ पूर्व विधुबाबू के 'राम चरित मानस' पाठ के बाद आध्यात्मिक विषय में देवी माँ से बातें होती थी। एकदिन उस समय एक क्रंदनरता महिला अपने खोए पुत्र का संवाद जानने के लिए देवी माँ से बार—बार अनुरोध करती रही। अंत में प्यारी बाबू आदि भक्तों के अनुरोध पर देवी माँ ने कहा कि वह लड़का रामेश्वर धाम में निरापद है। उस लड़के का पता भी बता दिया था। लेकिन माँ रामेश्वर धाम कभी नहीं गई थी। रामेश्वर न जाकर भी उन्होंने वहाँ का पता कैसे बताया, सब लोग के इस प्रश्न के उत्तर में देवी माँ बोली, "गुरुजी की कृपा से ध्यान में मिला।" उस समय वे सर्वदा ब्रजभाव में विभोर रहती थीं इसलिए हिन्दी या ब्रजभाषा में बातें करती थीं।

नारायणगंज के वकील श्री राजेन्द्रनाथ चक्रवर्ती निःसंतान रहने के कारण मनःकष्ट में दिन बिताते थे। उन्होंने गोसाँईजी के शिष्य महेशबाबू की शरण ली। महेशबाबू उनको लेकर देवी माँ के पास आए। देवी माँ ने उनसे कहा कि उस विषय में मंत्र या दवा कुछ भी उनको पता नहीं है। बाद में महेशबाबू का सुमधुर कीर्तन सुनकर एवं महेशबाबू के एकांत अनुरोध से देवी माँ ने राजेन्द्रबाबू को आशीर्वाद दिया एवं एक यज्ञ करने निर्देश दिया। आश्रम के सेवक पंडित शिष्य रजनीबाबू को यज्ञ संपादन का निर्देश देकर वे बोली अथर्व वेदोक्त यज्ञ करने से उनका पुत्र प्राप्त होगा। उक्त वेद में इस यज्ञ के बारे में कहाँ लिखा है रजनीबाबू यह नहीं जानते थे। देवी माँ ने आँखें बन्द करके सब मंत्र बोला एवं उस ग्रन्थ में होम के बारे में कहाँ लिखा है, यह भी बता दिया। उपस्थित जनता यह सब सुनकर मुग्ध हो गई। आश्रम में अथर्व वेद नहीं था। ढाका के सारस्वत समाज से वह वेद लाकर देखा गया कि देवी के बतलाए निर्दिष्ट स्थान में ही होम के बारे में लिखा था। रजनीबाबू ने राजेन्द्रबाबू के घर में यह यज्ञ किया। अगले साल ही राजेन्द्र बाबू ने पुत्र प्राप्त किया। इससे पता चलता है कि देवी माँ कितनी बड़ी

अन्तर्दृष्टि संपन्ना एवं शक्ति की अधिकारिणी थीं।

पहले कहा गया है कि देवी माँ ने आश्रम में एक छोटी कुटीर में प्रायः 15 वर्ष समाहित अवस्था में बिताए थे। वहाँ अनेक भक्तों का आगमन, आध्यात्मिक प्रसंग तथा देवी की भाव–समाधि देखी गई। रात में वे अशरीरियों के साथ फकीरी भाषा में बातें करती थी। कभी–कभी ब्रज संगीत गाते–गाते समाधिस्थ हो जाती थी। उस समय उनके शरीर से चन्दन की सुगंध निर्गत होती थी एवं सब लोग इस सुंगध से विभोर हो जाते थे। आश्रम कुंड का पानी केवल सेवा पूजा एवं भोग के लिए व्यवहार किया जाता था। देवी माँ प्रतिदिन सुबह गोपाल गोपाल पुकार कर चावल छिड़क देती थी। एक छोटा कूर्मराज (कछुआ) सीढ़ी पर आकर सब चावल खा जाता था।

आश्रम संचालन में देवी माँ की दक्षता अपूर्व थी। निर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन कभी नहीं हो सकता था। उनके आदेश से आश्रम सेवक विधुबाबू प्रतिदिन रात तीन बजे कलुटोला से आकर मंगल आरती एवं प्रातः कीर्तन में योगदान करते थे। कीर्तन के समय देवी भावावस्था में नृत्य करते–करते वहाँ आते थे। पहले देवी माँ का रचित संगीत प्रभाती स्वर में गाया जाता था :

"जय गुरुदेव जय गुरुदेव जय गुरुदेव जय हे
त्वं ही ब्रह्मा त्वं ही विष्णु त्वं ही देव महेश्वर हे
त्वं ही आदिदेव परमेश्वर पूर्णब्रह्म सनातन हे।।
याची चरणारविन्द देहि मे प्रेम आनन्द
और किसके पास जाऊं तुम ही मेरा प्राण रमण हे।।"

सेवा ही आश्रम का प्रधान कृत्य था। लेकिन आश्रम की कोई निर्दिष्ट आय नहीं थी। सब आकाशवृत्ति पर चलता था। सांसारिक दुःख–कष्ट उनको बिन्दुमात्र भी विचलित नहीं कर सके। संपूर्ण भगवत् विश्वासी एवं उनके प्रति एकांत निर्भरशील थी, देवी मां। उपयुक्त पिता की उपयुक्त कन्या ही थी।

एकदिन प्रातः कीर्तन के समय "मानस–सरोवर के परमहंस जी आए हैं" बोलकर मधुर नृत्य करने लगी। उस दिन वे बहुत देर तक बाह्यज्ञानहीन अवस्था में थीं। ब्रजभाषा बोलती रही। पत्र भी देवनागरी अक्षर में लिखती थीं। उस समय से उन्होंने आहार करना बंद कर दिया। उनको देहज्ञान भी प्रायः नहीं रहता था। ब्रजगोपी–भाव से वे तन्मय रहती थीं। कभी–कभी तालाब के घाट में यमुना की आरती करती थीं। एकदिन आरती करते–करते पानी के भीतर जाने लगी। उनको तैरना नहीं आता, यह उनको पता ही नहीं था। द्वारिकाबाबू दौड़ते हुए आए एवं

उनको पानी से ऊपर आने के लिए समझाने लगे, लेकिन देवी माँ की कोई चेतना नहीं थी। देवी माँ की यह अवस्था देखकर द्वारिकाबाबू ने भावमग्न होकर कहा, "तुम कैसी निष्ठुर माई हो। लालजी रोते–रोते पागल हो गया।" यह सुनकर देवी चौंक उठी एवं पानी से ऊपर आकर बोली, "क्या रे लालजी रो रहा है" यह कहकर जल्दी घर आकर अज्ञान हो गईं। इस प्रकार भावमग्न अवस्था में प्रायः साढ़े तीन साल बीता। उस समय उनकी उम्र लगभग 55 वर्ष थी। उस समय वे सर्वदा नीलाम्बरी साड़ी पहनती थीं। उनके शरीर से अपूर्व सुगन्ध निकलती थी। उनकी जटा से प्रायः मधुक्षरण होता था। यह सब छिपाने के लिए वे सर्वदा रजाई से मस्तक से पैर तक ढँककर रखती थी। वे लीला दर्शन करती रहती थीं। रात भर अपूर्व भाषा में गाती थी। उनको जगाने के लिए रजाई हटाकर बहुत देर तक 'जयराधे' 'जयराधे' नाम करना पड़ता था। उनका तकिया एवं बिस्तर अश्रुसिक्त रहता था। दैहिक प्रचेष्टा नहीं थी। यमुनामाईजी उनको जबरदस्ती स्नान आदि कराती थीं।

गोस्वामीजी के गुरुदेव ब्रह्मानन्द परमहंसजी ने प्रथम दर्शन देकर उनको दीक्षा देने का निर्देश दिया था। लेकिन उन्होंने दीक्षा नहीं दी। पुनः साधन देने का निर्देश पाने पर यमुनामाईजी को पता चला। यमुनामाईजी ने अपनी पुत्रवधू को दीक्षा दिलाया। पुत्रवधु ही देवी माँ की प्रथम मंत्र शिष्या थी।

यमुनामाईजी एवं विधुबाबू दिव्यावस्था में देवी माँ की देखभाल करते थे। दरवेशजी महाराज के भक्त श्री बसंतकुमार पाल महाशय ने भी कुछ दिन आश्रम में रहकर देवी माँ की सेवा की थी। तीन साल देवी माँ की सेवा करने के बाद यमुनामाईजी की आध्यात्मिक अवस्था खुल गई। वे भी सर्वदा आवेश में विभोर रहती थीं।

दिव्यावस्था में देवी माँ वृक्ष–लताओं को भी आलिंगन करती थी। नामरस में निमग्न रहने के कारण उनके भूख–प्यास कुछ भी नहीं थी। दिव्यावस्था में मयमनसिंह के सरकारी वकील श्रीनाथदास एकबार देवी माँ को अनुरोध करके अपने घर ले गए थे। वहाँ संध्याकीर्तन के समय दास महाशय की कन्या वीणापाणि देवी द्वारा श्री राधिका के नवानुराग संगीत गाते समय देवी माँ की आँखों से अविरल अश्रु बहने लगे। संगीत सुनकर सब लोग भावमग्न हो गए थे। कुछ देर बाद ऐसा देखा गया कि देवी माँ वहाँ नहीं है। देवी माँ थोड़ी दूर एक जंगल में तमाल वृक्ष के आलिंगनपूर्वक अचेतन अवस्था में मिली। भावावेश से उनके शरीर में कंपन हो रहा था। उनके अंग से ज्योति निकल रही थी। इसलिए अंधेरे में भी उनको देखा गया। दुर्बल शरीर में उतनी दूर जंगल में वे कैसे गईं ? यह आश्चर्य की बात है। देवी माँ का यह भाव भारतीय धर्मसाधना का एक अद्भुत दृष्टान्त है।

शिष्य के साथ गुरु के सबंध का एक उदाहरण मिलता है। देवी माँ के शिष्य डॉ० नवेन्दु दत्त मजूमदार के जीवन इतिहास में। 1923 ई० में नवेन्दुबाबू ने देवी माँ के पास दीक्षा प्राप्त की। लेकिन विभिन्न प्रतिकूल अवस्था के कारण अपना इष्टमंत्र भी भूल गए। 1939 ई० में नृतत्व विषय में गवेषणा के लिए वे इंग्लैंड गए। दूसरे वर्ष में अत्यंत अस्वस्थ अवस्था में अस्पताल में रहते समय अचानक विस्मृतप्राय दीक्षामंत्र उनके सामने उज्ज्वल रूप में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वे स्वस्थ हो गए एवं अस्पताल से घर आ गए।

इंग्लैंड में आध्यात्मिक दलों की सभा होती थी। यहाँ प्रेतात्माओं को बुलाया जाता था एवं प्रश्नोत्तर चलता था। एकबार नवेन्दुबाबू उनके एक अंग्रेज बंधु के साथ इस प्रकार की एक सभा में उपस्थित हुए। एक बड़े कमरे में यह सभा हो रही थी। वहाँ लगभग दो सौ पुरुष एवं महिला कुर्सी पर बैठे थे। उन लोगों के सामने प्लेटफार्म पर एक टेबल एवं कुर्सी थी। वहाँ एक वृद्धा बैठी थी। वह थी माध्यम। माध्यम ने कुछ देर तक आँखें बन्द करने के बाद थोड़ा हिलना शुरू किया। कुछ क्षण बाद वह बिल्कुल निश्चल हो गई अर्थात् भावमग्न हो गई। उस अवस्था में खड़ी होकर उन्होंने एक दर्शक के प्रति अंगुली दिखाई। वह व्यक्ति खड़ा हो गया। माध्यम ने उसके बारे में कुछ कहा। उसने उनकी बातों की सत्यता स्वीकार की। इस प्रकार माध्यम ने तीन जन को बोलने के बाद अचानक नवेन्दुबाबू की ओर अंगुली दिखाई। नवेन्दुबाबू के खड़े होते ही वे बोली–"I can see one tall thin dark complexioned old lady with long limbs standing behind you and giving you protection against all dangers".

(मैं देख रही हूँ एक लम्बी, श्यामवर्णा, शीर्णा वृद्धा आपके पार्श्व में रहकर आपकी सब विपदा से रक्षा कर रही हैं)

उक्त घटना से पता चलता है, प्रिय शिष्य के कल्याण के लिए देवी माँ शिष्य के साथ इंग्लैंड में भी थी। इस घटना से पाश्चात्य साधकों को पता चला था कि गुरु सर्वदा शिष्य के साथ रहते हैं। भारतीय धर्मसाधना की अनन्त महिमा इससे पहले उन लोगों को पता नहीं था, इसलिए इस घटना से वे लोग विस्मित हो गए।

देवी माँ का हृदय दया से परिपूर्ण था। उनके शिष्य एवं अवसर प्राप्त शिंक्षक श्री रसिकलाल गुह अचानक पत्नी की मृत्यु से बच्चों को लेकर बड़ी मुश्किल में पड़ गए थे। अनेक गुरुभाइयों के पास आश्रय प्रार्थी होकर निराश होकर वे अंत में देवी माँ के पास आए। देवी माँ ने उनको आश्रम में स्थान दिया केवल यही नहीं वे रसिकबाबू ने के छोटे लड़के एवं लड़की को अपने बिस्तर में सुलाती थीं। रसिकबाबू एकाधिक बार देवी माँ का काली माता के रूप में दर्शन किया था।

एकबार दरवेशजी महाराज की पत्नी काशी धाम से नारायण गंज गई थीं। दरवेशजी के शिष्य श्री बसंतपाल के घर में वे बहुत दिन थी। उनकी इच्छा से श्री मधुसुदन गंगोपाध्याय की पत्नी की दीक्षा देवी माँ के पास हुई। उस समय दरवेशजी की पत्नी ने देवी माँ का काली रूप में दर्शन किया। इसके बाद उस दीक्षित महिला ने भी देवी माँ का उसी रूप में दर्शन किया। इन घटनाओं से लगता है कालीमाता स्वयं देवी माँ के रूप में आविर्भूत हुई थीं। इस प्रसंग में उल्लेखयोग्य है कि किसी एक समय गोसाँईजी ने कन्या को विन्ध्याचलवासिनी कहा था। गोस्वामी प्रभुजी के ज्येष्ठभ्राता ब्रजगोपाल गोस्वामी का पौत्र परम् भागवत् सीतानाथ गोस्वामी के देहावसान के बाद उनकी पत्नी एवं बच्चों को देवी माँ ने गेण्डारिया आश्रम में स्थान देकर परम स्नेह के साथ पालन किया था। आश्रम की कोई स्थायी आय नहीं रहने से भी देवी माँ की शक्ति के प्रभाव से किसी को कोई कष्ट नहीं था। इस प्रकार दया की प्रतिमूर्ति थी देवी माँ। देवी माँ का शरीर अत्यंत अस्वस्थ हो गया। प्रायः साढ़े तीन साल गोपीभाव में रहकर उनकी शरीर की बाह्य क्रिया बन्द हो गई थी। इसलिए शिष्यलोग कुछ दिनों के लिए उनको पुरीधाम ले गए। वहाँ वे एक भाड़े के घर में रहती थी। दिन में समाधि मंदिर में दीदीमाँ के कोठा घर में रहती थीं। उस समय अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ देखी गई। देवी माँ के केश संस्कार के लिए कोई नहीं था। इसलिए उनको बहुत कष्ट होता था। एकबार रात में गोसाँईजी बोले, "अब कष्ट नहीं होगा। सब जटा हो जायेगी।" देखा गया दूसरे दिन ही सब जटा हो गई। पुरी से गेण्डारिया आने के बाद गर्मी के कारण सिर में खुजली हो गई इसलिए जटा काटनी पड़ी।

गेण्डारिया लौटने के बाद अनेक नर–नारियों की दीक्षा हुई देवी माँ के पास। दीक्षितों में अनेक शिष्यों के भीतर विस्मयजनक अवस्था देखी गई। देवी माँ स्वयं आश्रम संचालन करती थीं। आकाशवृत्ति अवलंबन करके आश्रम के सर्ब प्रकार के उत्सव, नित्य सेवा पूजा, अतिथि–सेवादि संपन्न कराती थीं। उस समय सहकारी रूप में उन्होंने तृतीय पुत्र श्री सौरिन्द्र सुन्दर मैत्र (खोखा बाबू) को अपने साथ रखा था। इससे उनका कार्य भी हलका हो गया एवं साधन–भजन में सुविधा हुई। वे स्वयं मंदिर आदि साफ करती थीं एवं गुरु व गोपालजी की सेवा करती थीं। जब जो कुछ मिलता उससे ही आश्रम की सेवा पूजा होती थी। रोग, शोक, अभाव, अभियोग में भी उनकी सुमधुर हँसी का अभाव नहीं था। उन्होंने योगक्षेम प्राप्त किया था आश्रम में। वे प्रतिदिन सुबह एवं शाम धर्मग्रंथ पाठ, रामचरितमानस एवं चैतन्य चरितामृत पाठ सुनती थीं। उनके जीवन के हर पदक्षेप से पता चलता था कि उन्होंने अप्राकृत गोपीभाव की साधन में सिद्धि प्राप्त की थी। श्री गोविन्द स्मरण

एवं उनके गुणगान से ब्रजगोपियों की तरह जीवन बिताती थी।

वे बहुत दिन कोलकाता में भी थीं। गोसाँईजी के तिरोधान के बाद वे गेण्डारिया आश्रम के सिवाय अन्यत्र बहुत कम रही। एक–दो बार श्रीहट्ट या मयमनसिंह गई थी। कामाख्या पहाड़ में वे दो बार गई थीं।

जीवन के अंतिम कुछ दिन गंभीरतम अन्तर्मुखी होकर वे सर्वदा वृन्दावन–लीला रसास्वादन में डूबी रहती थीं। वे स्वभावतः अल्पभाषी थीं। उम्र बढ़ने के साथ–साथ शारीरिक अस्वस्थता भी बढ़ने लगी, लेकिन इसकी उनको बिन्दुमात्र परवाह नहीं थी। श्री मुखमंडल पर सर्वदा आनन्द विराजमान था। वे कीर्तन एवं लीला प्रसंग में गंभीर समाधिमग्न रहती थीं।

उनके जीवन का अंतिम समय परमहंसावस्था की तरह था। प्रेमभक्ति की चरम अवस्था में पहुँचने से प्राकृत जगत् के साथ संपर्क नहीं रहता था। देवी माँ में ये सब लक्षण सुस्पष्ट थे। पुरुषोत्तम भगवान की रूप माधुरी पीकर एवं हृदयाकाश में उनको प्रत्यक्ष करके वे तन्मय रहती थीं। उस समय उनकी संतानें उनके पास रहते थीं। पुत्रवधु नीरदा देवी परछाई की तरह लगी रहती थीं। एकदिन वह परम शुभक्षण उपस्थित हुआ। उस समय सब उनको घेरकर नाम–कीर्तन कर रहे थे। देवी माँ ने एकबार ठाकुर का चरणामृत पीने की बात बोलते–बोलते नित्यधाम में प्रस्थान किया। उस समय अनेक भाग्यवान व्यक्तियों ने गोस्वामी प्रभुजी का परम प्रकाश अनुभव किया था। उस दिन था बंगाब्द 1349 सन् 14 माघ, गुरुवार (सन् 1943 ई०)।

****

श्रीमती मनोरमा देवी

संसार में रहकर संसार का सब दायित्व पालन करके, अतिथि अभ्यागतों की सेवा करके एक नारी अध्यात्म जगत् के चरम शिखर में आरोहण कर सकती है, मनोरमा देवी इसका उज्ज्वल दृष्टांत है। वे प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी की शिष्या थीं। स्वयं गोस्वामी प्रभुजी ने अपनी शिष्या के बारे में कहा है– **"एक कुलवधू संसार धर्म पालन करके विभिन्न संकट एवं अभाव के भीतर किस प्रकार धर्म लाभ कर सकती है, मनोरमा यह दृष्टांत दिखाने आई है। पृथ्वी पर करोड़ में ऐसा कदाचित एक जन होता है। मनोरमा के जीवन से लाखों लोगों का उपकार होगा।"** गोस्वामी प्रभुजी ने मनोरमा देवी के बारे में जो कहा, उसके बाद बोलने को और कुछ बचा नहीं।

मनोरमा देवी के पिता ढाका विक्रमपुर परगणा के कुकुटिया ग्रामनिवासी स्वनामधन्य दाता कालीकुमार दत्त थे। दानशीलता एवं अतिथि परायणता के लिए सारे बंगलादेश में उनका नाम प्रसिद्ध था। उनके घर में प्रतिदिन सौ से अधिक लोग आहार करते थे। प्रतिदिन एक मन दूध आता था। लेकिन वे लोग केवल चार जन थे – पति–पत्नी एवं दो बच्चे। कलियुग में ऐसे दानशील व्यक्ति बहुत कम मिलते है। उनकी माता भी पिता के उपयुक्त गृहिणी थी। उनकी पोशाक एवं व्यवहार से किसी को पता नहीं चलता था कि वे एक विशेष व्यक्ति हैं। वह अत्यंत साधारण रूप में रहती थीं। सब लोग उनको 'सोनाबहू' कहकर पुकारते थे। मनोरमा देवी का तारकचन्द्र नामक एक भाई था। देवी के ढाई वर्ष की उम्र में पिता की मृत्यु हुई। लेकिन दत्त परिवार की महिलाएं दुःख के उन दिनों में भी दोनों भाई–बहन तारकचन्द्र एवं मनोरमा देवी का बहुत प्यार से पालन करते थे। चन्द्रकांत घोष महाशय की पत्नी, जिसे मनोरंजन गुहठाकुरता 'मेजदीदी' एवं मनोरमादेवी 'बड़ ठाकुराणी' कहती थीं, वही शिवसुन्दरी देवी अल्पदिनों में विधवा हो गईं। दत्त गृहिणी ने अपनी बालिका कन्या को शिवसुन्दरी की गोद में दिया। उसी दिन से मेजदीदी शिवसुंदरी देवी ने अपनी कन्या की तरह मनोरमा देवी का लालन–पालन किया। मनोरमा की माता सर्वदा 60–70 जन के आहार की व्यवस्था करने में लगी रहती थी, इसलिए बालिका मनोरमा की मेजदीदी एवं उनकी बड़ी माँ देखभाल करते थे। एक वृद्धा परिचारिका दाई माँ या 'कालोमा'

उनको अत्यंत स्नेह करती थी।

मनोरमा देवी भी बड़ी अतिथि वत्सल थी। शिशुकाल में घर में अतिथि आने से अपना दूध भी देने के लिए तत्पर हो जाती थी। बाल्यकाल से ही उनकी देवी–देवताओं में अगाध निष्ठा थी। इस प्रकार देवी 12 वर्ष की हो गई। कुलीन वंश की कन्या के विवाह के लिए अभिभावक चिंतित हुए। शिवसुन्दरी देवी के आग्रह से उपयुक्त पात्र भी मिल गया। 1283 सन् (सन् 1877 ई०) की तीसरी फाल्गुन में मनोरंजन गुह ठाकुरता के साथ देवी की शादी हुई। पात्र उस समय 15 साल का था। दाता कालीकुमार की कन्या को सहधर्मिणी रूप में पाकर पात्र धन्य हो गए। शादी के बाद अपने घर में ही मनोरमा देवी रही एवं वहीं उन्होंने पढ़ाई की। कुछ ही दिनों में स्वर एवं व्यंजनवर्ण पहचान कर विवाह के एक साल के भीतर पति को पत्र लिखा। देवी बाल्यकाल से स्वल्पभषिणी थीं, लेकिन गंभीर नहीं थीं। उनकी प्रकृति सदा हास्यमयी थी। घर के हर सदस्यों के साथ उनका मधुर व्यवहार था।

देवी के पति मनोरंजन गुहठाकुरता का जन्म वरिशाल जिले के लताग्राम में 1264 सन् (सन् 1857 ई०) में हुआ था। उनके माता–पिता ईश्वरचन्द्र गुहठाकुरता एवं हरसुंदरी देवी आदर्श गृहस्थ थे। मनोरंजन बाबू की दीदी ढाई साल बड़ी थी। पुत्र के जन्म ग्रहण के कुछ दिनों के पश्चात् ईश्वरचन्द्र गुहठाकुरता ने परलोक गमन किया। इसके बाद मनोरंजन गुहठाकुरता मातुलालय में पले थे। मनोरंजन महाशय भाषण एवं कविता रचना में विशेष पारागत थे। ब्राह्मधर्म ग्रहण एवं ब्राह्मधर्म प्रचार उनके जीवन का गुरुत्वपूर्ण अंश था। मनोरमा देवी थी आदर्श सहधर्मिणी। पति का धर्म उन्होंने निष्ठापूर्वक ग्रहण किया एवं पति के साथ बैठकर उपासना भी की। इस बारे में मनोरंजनबाबू ने कहा है–"मैं जब छत पर उपासना करता था, मनोरमा आँखें बन्द करके निविष्ट मन से मेरे साथ बैठती थी। वह पवित्र मुखमंडल अब भी मेरी स्मृति में है। उनके साथ उपासना करते समय मुझे ऐसा लगता था कि मैं कोई देवी के साथ तपोवन में तपस्या कर रहा हूँ।"

ब्राह्मधर्म के प्रति गंभीर निष्ठा रहते हुए भी अप्रत्याशित रूप में मनोरंजन बाबू को सद्गुरु दीक्षा की प्राप्ति हुई थी वरिशाल में। मनोरंजन बाबू ने पत्नी की दीक्षा के लिए गोस्वामी प्रभुजी के पास प्रार्थना की थी। प्रभुजी ने उसी क्षण सम्मति प्रदान की। जन्माष्टमी के एक–दो दिन पूर्व कई लोगों के साथ देवी ने दीक्षा प्राप्त की। उस समय के अभूतपूर्व दृश्य का वर्णन मनोरंजन बाबू ने इस प्रकार किया हैं – "दीक्षा कार्य संपन्न होने पर सबने ठाकुर को प्रणाम किया, लेकिन मनोरमा ने नहीं किया। सब लोग उठ गए लेकिन मनोरमा नहीं उठी। एक महिला द्वारा उनका हाथ पकड़कर उठने का संकेत करने पर मनोरमा ने आँखें खोलीं, लेकिन

उठने में कठिनाई हो रही थी। उक्त महिला ने उनको पकड़कर खड़ा किया, तब धीरे–धीरे वह चल सकीं। मंत्रग्रहण के साथ–साथ मनोरमा देवी की सब बहिरिन्द्रयों का निरोध हो गया था। उसी क्षण समाधि अवस्था उपस्थित हुई थी। किसी यंत्र में संपूर्ण चाबी भरे रहने से उसे एकबार खोलने पर फिर वह नहीं रुकता। इसी प्रकार मनोरमा के मनोयंत्र को एक सिद्ध मंत्र की अपेक्षा थी। वह मंत्र प्राप्तिमात्र से श्वास–प्रश्वास में नाम चलने लगा।" दीक्षा के समय श्री कुंजबिहारी घोष एवं मनोरंजन गुहठाकुरता दोनों उपस्थित थे।

जन्माष्टमी का जुलूस खत्म होने पर देवी पति के साथ कुकुटिया गईं। दूसरे दिन पति–पत्नी दो मंजिल के एक छोटे घर में साधन करने बैठे। देवी ने हाथ जोड़कर गुरुजी एवं भगवान को प्रणाम करके आँखें बन्द की। पति भी आँखें बन्द करके 'नाम' करने लगे। एक घन्टा या उससे कुछ क्षण पहले मनोरंजन बाबू ने आँखें खोलीं। लेकिन देवी उसी प्रकार बैठी थीं। छह घंटा व्यतीत होने के बाद देवी का ध्यान भंग हुआ। तब उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम करके आंखें खोलीं। उनसे पूछने पर उन्होंने कहा, "मुझे लगता है कि मैं बहुत ही कम समय बैठी हूँ।" मन की अवस्था पूछने पर पता चला कि इतनी देर तक नाम के आनन्द सागर में वे डूबी हुई थी। उस समय बाह्य इंद्रियों का कार्य बन्द था अर्थात उनको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की कोई अनुभूति नहीं थी।

उसी दिन मनोरमा देवी की प्रथम सार्थक समाधि हुई थी। पहले दिन दीक्षा ग्रहण के बाद जो घटना हुई थी उसकी पुनरावृत्ति हुई दूसरे दिन पूर्ण समाधि में। इस समाधि अवस्था के बारे में देवी के पति लिखते हैं – "बिन्दुमात्र कठोरता या प्रयत्न न करके, केवल गुरु प्रदत्त नाम के सहारे एक अबला का चित्त समाधि–लाभ करेगा, यह मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। इस घटना को सुनकर एक ज्ञानी व्यक्ति (अंग्रेजी विद्या में सुपंडित) ने कहा कि क्षेत्र संपूर्ण प्रस्तुत था। एक सिद्ध मंत्र की अपेक्षा थी। उसकी प्राप्ति के साथ समाधि हो गई।"

देवी के समाधि–लाभ से सब आनन्दित थे, लेकिन यह सुनकर मेजदीदी बड़ी चिंतित हो गई, क्योंकि दीक्षा के बारे में उसी ने सम्मति दी थी। यदि देवी को प्रतिदिन इस प्रकार समाधि होगी, तो सब लोगों को पता चल जाएगा एवं लोग इस विषय को अच्छी नजर से नहीं देखेंगे और मेजदीदी को दोषी ठहराएंगे। जब यह सब समस्या बढ़ने लगी, मनोरंजन बाबू ने देवी को पित्रालय से ले जाने की बात कही। उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं करने से देवी की साधना में विघ्न होगा। मनोरंजन बाबू के इस प्रस्ताव को सुनकर घर के लोग एवं गाँव के लोग राजी नहीं हुए। वे सोचने लगे कि दाता कालीकुमार की कन्या ईसाई बनने जा रही है, क्योंकि वे लोग ब्राह्मों को ईसाई कहते थे। मनोरंजन बाबू ब्राह्म थे, इनका कार्य

था ब्राह्मधर्म का प्रचार करना। इसलिए वे चिंतित हो गए कि, देवी ईसाई होने जा रही है। देवी केवल दत्त परिवार की नहीं, समग्र ग्रामवासियों की प्राण थीं। इसलिए देवी उन लोगों को छोड़कर पति के साथ जाएगी, यह सुनकर उनको बहुत दुःख हुआ। वे लोग इसके विरुद्ध सभासमिति एवं आन्दोलन करने लगे। तीन दिनों से सब लोग देवी को समझाने लगे कि कर्महीन, बेकार पति के साथ अन्यत्र जाने से दो शिशु पुत्रों को लेकर वह मुसीबत में पड़ेगी आदि। मनोरंजन बाबू जनता के दबाव में विनम्रभाव से बोले, – "आपलोग मनोरमा देवी से यह लिखा लाएँ कि वह मेरे साथ नहीं जाएँगी।" जनता ने राजी होकर देवी से अनुरोध किया। देवी ने एक कागज में कुछ लिखकर नौकर द्वारा उनके पास भेज दिया।

कागज में क्या लिखा है यह देखने के लिए सब व्यग्र हो गए। कागज खोलकर देखा गया उसमें लिखा था "मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी।" देवी को और कोई रोक नहीं सका पर मनोरंजनबाबू को किसी से भी सहायता नहीं मिली। अंत में देवी के चाचा शशिभूषण दत्त महाशय ने दस रुपए उधार दिए। उसके सहारे देवी ने पति के साथ यात्रा की। वस्त्र और गहने इत्यादि कुछ भी देवी ने नहीं रखे। उस समय देवी के मन की अवस्था कल्पनातीत थी। यात्रा के दिन सुबह से देवी की अश्रुधारा नहीं रुकी। देवी किसी से बात भी नहीं कर सकती थी। यह दृश्य कोई नहीं भूल सका था। आवश्यक बिस्तर आदि देवी ने नहीं रखा, लेकिन आश्चर्य की बात है, गाँव के लोगों ने भी कुछ नहीं कहा। इस प्रकार देवी कुटुम्ब रिजनों से चिर–विदा ग्रहण करके वरिशाल चली गईं। देवी ने द्वितीय एवं तृतीय पुत्र श्रीमान् नित्यरंजन एवं चित्तरंजन को साथ में लिया और ज्येष्ठपुत्र सत्यरंजन मेजदीदी के साथ वानारिपाड़ा में रह गया।

वरिशाल में ब्रह्म समाज के आचार्य गिरिशचन्द्र मजूमदार महाशय के घर में गुहठाकुरता परिवार को आश्रय मिला। अति निष्ठावान ब्राह्म परिवार में रहकर भी देवी की साधनशक्ति की कमी नहीं हुई। वे जब भी समाज मंदिर में या मजूमदार महाशय के परिवारिक उपासना में हिस्सा लेती थी, उनकी समाधि हो जाती थी। उपासना में बैठने के 1–2 मिनट में गुरुनाम उनको नाम के आनन्द धाम में ले जाता था। यह देखकर सब विस्मित होते थे। समाधि के विषय में किसी को धारणा नहीं थी, इसलिए लोग कभी समझ कर या कभी न समझकर विभिन्न विचार प्रकट करते थे। एकदिन मनोरंजन बाबू ने पत्नी से पूछा कि ध्यान के समय क्या अनुभव होता है ? देवी बोली, "सर्वदा नाम चल रहा है। वह नाम आनन्दमय है। जब उपासना में बैठती हूँ, नाम के आनन्द में डूब जाती हूँ। केवल नाम और आनन्द, और कोई ज्ञान नहीं रहता। उस आनन्द से मैं अपने आप को नहीं लौटा सकती। उपासना में बैठते ही ऐसी अवस्था हो जाती है। मैं रोक नहीं सकती। जिन लोगों

के साथ उपासना में बैठती हूँ शायद उन लोगों को मेरे लिए असुविधा होती है। मैं अब सामाजिक उपासना में नहीं जाना चाहती।"

समाज की उपासना में देखा जाता था कि उपासना के बाद सब घर चले गए, लेकिन देवी पत्थर की तरह बाह्य ज्ञानशुन्य होकर बैठी है। उनकी यह अवस्था देखकर कोई–कोई ब्राह्मिका उनको छोड़कर नहीं जाती थी। वे मनोरंजन बाबू को खबर भेजते। मनोरजनबाबू पत्नी के कान में नाम बोलकर चैतन्य संपादन करते थे। इससे देवी बहुत संकोच अनुभव करती थी, इसलिए वे सामाजिक उपासना में नहीं जाना चाहती थी। मनोरंजन बाबू ने एक सत्य बात कही है। उन्होंने कहा, "यहाँ सद्‌गुरु–प्रदत्त सिद्ध मंत्र की शक्ति मैंने स्पष्ट रूप में देखी एवं समाधि की सत्यता भी समझा क्योंकि तोप के शब्द भी जिसके कान में नहीं पहुँचते हैं, सद्‌गुरु प्रदत्त मंत्र अस्फुटस्वर में कई बार बोलने से ही चेतना लौटती है। क्या यह विस्मयकारी नहीं है ?"

वरिशाल में देवी ने नया संसार बसाया। प्रचारक वृत्ति स्वरूप पति को महीना में 12 से 15 रुपए मिलते थे। उसी के सहारे देवी ने श्री आनन्दमोहन दत्त महाशय के घर में दो कमरे लेकर संसार बसाया। मनोरमा देवी दाता कालीकुमार की एक मात्र कन्या होने से पित्रालय में सबकी दुलारी थी। बड़े प्यार से पाली गई थी। आज उनको रसोई करना, घर साफ करना, पानी भरना, बर्तन धोना आदि सब काम करना पड़ता है। पित्रालय में दुलारी थी, इसलिए काम करने की आदत उनको नहीं थी। फिर भी वह आनन्द के साथ सब काम करती थी। इस बारे में पति की उक्ति उल्लेख योग्य है – "छोटी कुटीर में संसार बसाकर अपने हाथों से रसोई करके जब वह मुझे अन्न व्यंजन परोसती थी, उस समय एक अभूतपूर्व आनन्द से वह मग्न हो जाती थी। उनके ओंठों में हँसी एवं नयनों में उल्लास रहता था। इससे पहले इस प्रकार स्वाधीन भाव से उन्होंने कभी पति सेवा नहीं की थी। मुझे भी पत्नी के हाथ से बना अन्न व्यंजन एवं परोसाना, आज पहली बार मिला। हमारे ह्रदय में एक मुक्त भाव उपस्थित हुआ।" देवी पर गृहस्थी का भार रहने के कारण देवी को साधन–भजन के लिए विशेष समय नहीं मिलता था। सुबह में थोड़ी देर उपासना करके घर का काम करने लगती थी।रात में आहार के बाद कभी–कभी ध्यान में बैठती थी। ध्यानस्थ अवस्था में ही रात बीत जाती थी। प्रातः काल में देवी के कान में नाम सुनाने के बाद उनका बाह्यज्ञान होता था। इस प्रकार दो साल बीत गए।

पित्रालय से आते समय देवी के भाई तारकबाबू घर में नहीं थे। वे घर लौटकर सब सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए एवं देवी को अंलकार एवं अन्यान्य चीजें भेज दी। इसलिए नये संसार में चीजों की कमी नहीं रही। नए संसार में देवी

निरामिष आहार ग्रहण करती थीं। इसके बाद कभी आमिष आहार ग्रहण नहीं किया। एकदिन इस प्रसंग में पति से बोली कि उनकी शारीरिक भोग सुखेच्छा बिलकुल नष्ट हो गई है। एक विशेष प्रवृत्ति के हाथ से उनको संपूर्णरूप में मुक्ति मिली। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए उनको कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा।

गुरु प्रदत्त नाम से एवं पूर्व जन्म के संस्कार से उन्होंने यह अवस्था प्राप्त की। कोई कठिन तपस्या या प्रवृत्ति के साथ संग्राम कुछ भी उनको नहीं करना पड़ा। मनोरंजन बाबू अपनी पत्नी से ये सब सुनकर चकित हो गए। एक नया जगत् उनके निकट प्रकाशित हुआ। देवी की हर बात वे सत्य मानते थे। उनके मन में संदेह हुआ कि ऐसी अवस्था में गर्भधारण संभव है या नहीं ? उन्होंने प्रसिद्ध डाक्टर एवं वैद्य से इस विषय में प्रश्न किया। चिकित्सकों ने कहा कि स्त्री इस अवस्था में भी गर्भधारण कर सकती है। इस अवस्था प्राप्ति के बाद देवी 10 साल शरीर में थी। कभी इस अवस्था का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इस बारे में मनोरंजन बाबू ने कहा, "मैंने गीता आदि में पाठ किया था कि साधकगण प्रवृत्ति को तीव्र तपस्या से जय कर सकते हैं, लेकिन एक अबला किसी प्रकार कठिन तपस्या न करके भी काम जय कर सकती है, मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ।"

देवी को इस अवस्था प्राप्ति के बाद 1294 सन् के 11 कार्तिक (सन् 1887 ई०) को कन्या की प्राप्ति हुई। पूजा की छुट्टी में आनन्दमोहन घर का भार देवी पर सौंपकर सपरिवार त्रिपुरा चले गए। उसी समय उनकी एक कन्या का जन्म हुआ। बड़ी होने पर उस कन्या की देखभाल के लिए कोई नहीं था, इसलिए देवी एकदिन कन्या को कपड़े से बारामदे में एक खम्भे के साथ बांधकर काम कर रही थी। मनोरंजनबाबू के घर में आते ही शिशुकन्या ने उनके पास जाने के लिए हाथ बढ़ाया। उन्होंने कन्या का बंधन खोलकर उसको गोद में लेकर कमरे में प्रवेश करते ही नाम की कृपा का लाभ लिया। इस बारे में उन्होनें लिखा है, – "अचानक उस समय गुरु प्रदत्त नाम मेरे मन में रेलगाड़ी की तरह चलने लगा। मैं नामानन्द से अभिभूत हो गया। मैं आनन्द से आँखें बंद करके बैठा रहा। नाम मेरे मन प्राण को पुलकित करके अपने आप चल रहा था। रेलगाड़ी किसी एक स्टेशन में पहुँचकर रुक जाती है, कुछ देर बाद उसी प्रकार 'नाम' भी अपने आप रुक गया।" मनोरंजनबाबू ने सर्वप्रथम नाम की कृपा का आनन्द लाभ किया। कन्या को गोद में लेते ही उनके भीतर नाम की लीला चलने लगी। इस विषय में शिशुकन्या का कोई अवदान है या नहीं, विवेच्य है। बाद में उन्होंने मनोरमा देवी से सब कहा। देवी ने इस घटना पर भगवान की कृपारूप में विश्वास किया एवं अत्यंत संतुष्ट हुई। इस बारे में मनोरंजनबाबू ने कहा है, "उनके समर्थन से मेरा विश्वास दृढ़ हुआ, क्योंकि वे घटनाओं को विचार–विश्लेषण करके कोई सिद्धान्त पर नहीं पहुँचती

थीं। सत्य को प्रत्यक्ष कर सकती थीं। मेरे दोस्तों में जो उनको अच्छी तरह जानते थे, उन सबको एवं मेरा भी उनके बारे में इस प्रकार विश्वास था।"

देवी गहनों को बेचकर इसी घर के पास दो कमरे का घर बनवाकर सबको लेकर वहाँ रहने लगीं। देवी ने गृह निमार्णकारियों को एकदिन रसोई करके खिलाया एवं आहार के बाद स्वयं झूठा पत्ता फेंककर, गोबर द्वारा झूठन साफ किया। देवी यह समझती थीं कि जिन्हें निमंत्रण किया जाता है वह अतिथि है इसलिए उन लोगों से झूठा साफ कराना असंगत हैं। इस प्रकार सरल अभिमान शून्य आचरण उनका स्वभाव था।

किसी भी अवस्था में देवी की आनन्द की भावना बंद नहीं होती थी। एकदिन देवी कलश लेकर तालाब से पानी लाने गईं। अचानक रास्तें में गिर गई, कलश टूट गया, देवी के कपड़े भींग गए, चोट भी कुछ कम नहीं थी। फिर भी देवी हँसते–हँसते घर लौटी।

एकबार अतिरिक्त परिश्रम के कारण देवी अस्वस्थ हो गईं, मनोरंजन बाबू भी सिरदर्द से कातर हो गए। दोनों की इस प्रकार अवस्था देखकर लाखुटिया के मालगुजार की कन्या, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर की ज्येष्ठ पुत्रवधू ने उन लोगों के बोलपुर शांतिनिकेतन आश्रम में रहने की व्यवस्था कर दी। उस समय आश्रमधारी थे अधोरनाथ चट्टोपाध्याय महाशय। उन्होंने देवी को लाने के लिए बोलपुर स्टेशन में एक पालकी (शिविका) भेजी थी। लेकिन जिस ट्रेन में आना था उस ट्रेन में नहीं आने के कारण वाहक पालकी लेकर वापस चले गए। दूसरी ट्रेन से आने के कारण उन लोगों को बैलगाड़ी में आश्रम जाना पड़ा। रास्ता बहुत ऊँचा–नीचा था। इसलिए गाड़ी की उथल–पुथल से देवी उल्टी करने लगी। बैलगाड़ी चढ़ने की अभिज्ञता नहीं थी क्योंकि वे लोग नदी वाले देश के लोग थे, इसलिए नौका व्यवहार करते थे। उल्लेखनीय है शांति निकेतन में इस आश्रम के संचालक थे रविन्द्रनाथ ठाकुर।

शांति निकेतन आश्रम में पहले एक सुसज्जित मकान में रहने की व्यवस्था की गई थी। देवी को यह पसंद नहीं आया इसलिए महर्षि देवेन्द्रनाथ जी के प्रथम भजनस्थान आँवलाकुंज में फूस से छाया हुआ एक घर चुना गया। घर के चारों ओर प्रकृति की संपदा परिपूर्ण थी। इस घर में देवी स्वयं रसोई करके पति एवं संतानों को जब खिलाती थी उनका मुखमंडल आनन्द से उज्ज्वल हो उठता था। यहाँ पारिवारिक उपासना भी आनन्द के साथ चलने लगी। इस उपासना में आचार्य अघोरनाथ चट्टोपाध्याय एवं बोलपुर के प्रसिद्ध वकील श्री हरिदास वसु महाशय योगदान करते थे। ये लोग ब्रह्मधर्मानुरागी थे। देवी कभी–कभी ध्यान में बैठती थीं। अतः देवी की समाधि अवस्था इन लोगों को अज्ञात नहीं रही। देवी

प्राय:दोपहर एक बजे ध्यान में बैठती एवं चार बजे उनके कान में नाम देकर ध्यान भंग करना पड़ता था। पहले ध्यान में बैठते ही समाधि होती थी। आश्रम में आने के बाद समाधि की इच्छा नहीं होने से समाधि नहीं होती थी। देवी चार बजे ध्यान से उठकर सबको नाश्ता देकर स्वयं नाश्ता करतीं एवं सबको लेकर घूमने जातीं। संध्या के समय उपासना के बाद पुनः संसार के कार्यों में लग जाती थीं। इस प्रकार आनन्द के साथ दिन बीतने लगे। यहाँ देवी स्वस्थ होने लगीं।

नलहाटि में कई ब्राह्मपरिवार रहते थे। उनके अनुरोध से मनोरंजन बाबू को नलहाटि में कई दिन रहना पड़ा। वहाँ से पुनः शांतिनिकेतन आश्रम लौटकर कुछ दिन बाद 1296 के 18 श्रावण (सन् 1889 ई०) वे कोलकाता चले गए। उस समय गोस्वामी प्रभुजी कोलकाता में थे। प्रभुजी ने एकदिन देवी को पास में बैठाकर समाधिस्थ होने बोले। देवी कुछ ही क्षणों में समाधिस्थ हो गई। गोसाँईजी ध्यानस्थ हुए। कुछ देर बाद प्रभुजी ने देवी का ध्यान भंग कर दिया। देवी गुरुजी को प्रणाम करके चली गई। गोसाँईजी ने सास मुक्तकेशी देवी से कहा, "यह हीरे का टुकड़ा है, करोड़ में एक भी मिलना मुश्किल है।"

मनोरमा देवी किस प्रकार गुरु निर्भरशील थीं, इसका एक उदाहरण दिया जा रहा है। एकदिन देवी गुरुजी के पास बैठी थीं। उस समय संवाद आया कि देवी की शिशुकन्या को लेकर नौकरानी कहीं चली गई। वह नहीं मिल रहा है। संवाद सुनकर मनोरंजन बाबू, अन्यान्य गुरुभाई एवं स्वजनगण दौड़े। लेकिन कोई कुछ पता नहीं कर सका। इस बारे में लोग विभिन्न प्रकार की बातें कर रहे थें, लेकिन देवी के भीतर कोई उद्वेग नहीं था। उस समय गोसाँईजी सुकिया स्ट्रीट के गली में देखने बोलें। सब लोग वहाँ जाकर देखे कि वह नौकरानी शिशुकन्या को लेकर रास्ता भूलकर इधर–उधर भटक रही थी। घर का पता भी वह नहीं जानती थी। कन्या के लौटने पर देवी ने उसे प्यार से गोद में ले लिया। गुरुजी के प्रति इस प्रकार असीम निर्भरता थी देवी की।

उसके बाद मनोरंजन बाबू सपरिवार वरिशाल लौटे। प्रचारक के कार्य में मनोरंजन बाबू को सामान्य पैसा मिलता था, लेकिन वरिशाल में आने के बाद देवी के संसार में मनोमोहन चक्रवर्ती आदि छह व्यक्ति आ गए। उनमें एक सदस्य चंडीचरण गुहठाकुरता ने संकोच से देवी को पत्र लिखा। उसके उत्तर में देवी ने लिखा, "हम गरीब हैं, क्या इसलिए हमारे घर में नहीं रहेंगे ? मुझे रसोई करना नहीं आता तो क्या हुआ ? यदि दाल सब्जी में नमक न हो तो नमक डालकर खाएँगे। यदि नमक ज्यादा हो तो पानी मिलाकर खाएँगे।" देवी की इस ममतापूर्ण चिट्ठी से चण्डीचरण रोने लगे। उल्लेखनीय है कि इन लोगों के साथ देवी का खून का रिश्ता नहीं था लेकिन इससे भी अधिक घनिष्ट संबंध था। देवी के घर

के सब कमरे फूस के थे। अधिकांश फूस विलुप्त हो गया था। दिन में सूर्य एवं रात में चन्द्रमा की रोशनी घर में प्रवेश करती थी। ऐसी अवस्था में भी देवी सबकी बड़े प्यार से देखभाल करती रही। ऐसी कोई घटना नहीं हुई, जिसके कारण परिवारस्थ व्यक्तिगण या अतिथि लोग एकबार के लिए भी देवी के प्रति असंतुष्ट हुए हो।

बारिश में घर में पानी गिरता था। देवी मच्छरदानी के ऊपर प्लास्टिक बिछाकर कन्या को गोद में लेकर रात बिताती थी। लेकिन परिवार के किसी को इसके बारे में पता नहीं था। उस समय ब्राह्म–समाज ने मनोरंजन बाबू को कुछ ज्यादा पैसा देना चाहा, लेकिन इसके लिए उनको प्रति सप्ताह कार्य का हिसाब भेजना होगा। पति के इस कार्य में देवी की सम्मति नहीं थी। वह पति से बोली, "आप जो प्रचारकार्य कर रहे हैं, इससे आपके स्वाधीनता में बिन्दुमात्र आघात नहीं लग रहा है। यह पैसा ग्रहण करने से पराधीनता आ जाएगी। यदि किसी सप्ताह में आप समाज संस्कार के बारे में कुछ भी नहीं किए, लेकिन रिपोर्ट देने की बात याद करके एक भाषण देने की इच्छा होगी, इससे क्रमशः कपटता आ सकती है।" देवी की यह बात सुनकर मनोरंजन बाबू ने परम शांति लाभ प्राप्त किया। इस बारे में उनकी उक्ति उल्लेखनीय है– "मनोरमा की बात सुनकर मेरे प्राण में बहुत आनन्द हुआ था। उन्होंने इतने क्लेश में इस प्रकार त्याग स्वीकार किया। इतने अभाव में रहकर भी उनके मन में इस प्रकार सूक्ष्म विचार आया एवं मेरी स्वाधीनता में विघ्न हो इस भावना से उन्होंने किसी प्रकार की सुख–सुविधा ग्रहण नहीं की, यही मेरे आनन्द का कारण था।"

देवी की समाधि के बारे में मनोरंजन बाबू लिखते हैं – "आँखें बंद करके ध्यान गंगा में डूब जाना, इसमें कोई विचार, विवेचना, चेष्टा, प्रयत्न नहीं था। आसन में बैठकर, हाथ जोड़कर नमस्कार करती है। एक मिनट में ध्यान सागर में डूब जाती है। दोनों हाथ गोद के ऊपर गिर जाता है। अनेक साधु, साधक, संन्यासी एवं उदासी उनको देखें हैं। सब कहते थे कि इस प्रकार सहज समाधि उन्होंने कभी नहीं देखी।" इस प्रकार सहज, अकृत्रिम समाधि शक्तिमान महापुरुषों के लिए ही संभव है। भारतीय अध्यात्म साधिकाओं में देवी दुर्लभ अमूल्य रत्न सदृश हैं।

देवी थी परिवार की मध्यमणि। उनके परिवार में लगभग बीस सदस्य थे। भगवत कृपा से प्रायः अतिथि भी आते रहते थे। देवी के पास सब समान थे। मनोरंजन बाबू को प्रचारक के कार्य में व्यस्त रहना पड़ता था, इसलिए इस विशाल परिवार के कर्ता थे श्री मनोमोहन चक्रवर्ती। इस विषय में मनोरंजन बाबू ने कहा है,– "श्री मनोमोहन हमारे संसार का कर्ता बना, नहीं तो कौन करता ? मनमोहन

मुझे भैया कहकर पुकारता। इतने सब पराए लोगों के साथ इतनी घनिष्टता के साथ ऐसा आनन्दमय संसार कोई कहीं देखा है कि नहीं, नहीं जानता। दारिद्रता के भीतर इतना सुख किसने कब देखा है ? इन सबका मूल कारण थी मनोरमा। परिवार के सब लोग उनके प्रति विश्वास एवं भक्ति रखते थे। सब जानते थे कि देवी के पास सब समान हैं, कोई पक्षपात नहीं है। पति, पुत्र एवं अन्य लोगों को लेकर दरिद्रता के भीतर उन्होंने जिस प्रकार समदर्शिता का परिचय दिया, बुद्धि विवेचना करके भी कोई यह नहीं कर सकता है। उनका हृदय इस प्रकार गठित हुआ था कि थोड़ा भी इधर–उधर नहीं हो सकता।"

एकदिन एक अलौकिक घटना हुई। बरसात का समय था। शेष रात से तेज बारिश हो रही थी। परिवार–कर्ता मनोमोहन के पास एक पैसा भी नहीं था। बाजार नहीं करने से सब उपवास करेंगे। किसी के पास उधार करने का भी कोई उपाय नहीं था। मनोमोहन बाबू बिस्तर से उठकर एक छोटी मेज के सामने कुर्सी में बैठकर आँखें बन्द करके प्रभाती उपासना कर रहे थे। संसार की चिन्ता से उपासना में मन नहीं लग रहा था। वे सोच रहे थे कि आज बालक–बालिकाएँ क्या खाएँगे ? बारिश बंद होने से भी कुछ नहीं होगा, क्योंकि उनके पास पैसा नहीं था। ये सब चिन्ता के कारण वे उपासना नहीं कर सके एवं उन्होंने आँखें खोल दी। आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि टेबल के ऊपर पैसा पड़ा है। यह पैसा कहाँ से आया, इसके बारे में ब्राह्म मनोमोहन बाबू ने बिल्कुल नहीं सोचा था। देवी थी संपूर्ण निर्भरशील। इसलिए कहाँ से आया, कौन दिया, कैसे चलेगा– ये सब बातें देवी कभी नहीं सोचती थी। जो कुछ मिलता रसोई करके देवी सबको खिलाती थी। पथ दिखाने के लिए रेलगाड़ी के यात्री को जिस तरह कोई चिन्ता नहीं रहती कि ट्रेन किधर जा रही है ? उसी तरह देवी टिकट खरीदकर संसार रथ की गाड़ी में चढ़ीं। संसार किस प्रकार चलेगा, यह कभी नहीं सोचती थीं। ईश्वर के प्रति इस प्रकार निर्भरशीलता सचमुच अभूतपूर्व है। जो सिद्ध पुरुषों के लिए संभव है वही शक्ति मनोरमा देवी ने प्राप्त की थी। सन् 1297 के 1 ले फाल्गुन (सन् 1891 ई०) को देवी को और एक पुत्र हुआ। इस प्रकार देवी छह पुत्रों की जननी हुई।

अनेक शक्तिमान पुरुष अपने आपको प्रच्छन्न रखते हैं। वे अति साधारण लोगों की तरह रहते हैं। वरिशाल में एक गुप्त साधक पागल की तरह रहते थे, वे 'सानदार' थे। वे ढाक वाद्य बजाने वालों के साथ शहनाई बजाते थे। इसलिए सब लोग उनको 'सानदार' रूप में जानते थे। किसी धर्म–संप्रदाय के साथ उनका विरोध नहीं था, इसलिए सब दल में वे शहनाई बजाते थे। वे कहते थे, शहर में ऐसा कोई नहीं है, जिसमें कलि का प्रभाव नहीं है। एकदिन उन्होंने मनोरंजन बाबू के घर में आहार करने की इच्छा व्यक्त की। मनोरंजनबाबू ने उनसे यथा समय

आहार के लिए आने को कहा, लेकिन वे यथासमय आकर घर के दरवाजा के सामने खड़े रहे, उन्होंने अंदर प्रवेश नहीं किया। इस बारे में उनसे पूछने से उन्होंने कहा कि आदेश नहीं होने से अंदर प्रवेश नहीं करेंगे। कुछ देर तक आँखें बन्द करके खड़े रहने के बाद वे अंदर गए। देवी ने अति यत्नपूर्वक उनको भोजन कराया। उन्होंने मनोरंजनबाबू से पूछा कि क्या यह महिला तुम्हारी पत्नी है ? उनमें कलि का अधिकार नहीं है। यह साक्षात लक्ष्मी है। देवी के बारे में उस सानदार को कोई जानकारी नहीं थी। उनकी बात सुनकर मनोरंजन बाबू विस्मित हो गए। आहार के बाद देवी ने स्वयं जुठा साफ किया। बाल्यकाल से ही देवी की अतिथियों के प्रति इस प्रकार आगाध श्रद्धा थी। उन्होंने अपने माता–पिता से यह शिक्षा प्राप्त की थी।

प्रख्यात आनन्दमोहन बसु एवं रजनीकांत राय आदि ब्राह्मों के प्रचेष्टा से पूर्वबंग एवं आसाम के ब्राह्मों को लेकर पूर्वबंग में एक ब्राह्म समिति स्थापित हुई। इसका केन्द्रस्थान ढाका शहर हुआ। मनोरंजन बाबू को इस समिति का प्रथम एवं एकमात्र प्रचारक निर्वाचित किया गया। इसलिए संसार परिजनों को छोड़कर देवी को ढाका जाना पड़ा। ढाका आने के बाद मनोरमा देवी को मलेरिया हो गया। उस समय वह संतान संभवा थी। उनका स्वास्थ्य क्रमशः खराब होने लगा। मनोरंजन बाबू ने समाज के कार्य में व्यस्त होते हुए भी पत्नी की सेवा में कोई त्रुटि नहीं रखी। धीरे–धीरे पूरा परिवार मलेरिया से आक्रांत हो गया। मनोरंजन बाबू देवी को लेकर बहुत चिंतित रहते थे। लेकिन आश्चर्य की बात है कि देवी ने जीवन–मरन के संधिस्थल में 17 माघ ब्रह्ममुहूर्त में एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इसके बाद देवी धीरे–धीरे स्वस्थ होने लगी।

देवी के स्वास्थ्य की उन्नति के लिए मनोरंजन बाबू नारायणगंज गए। वहाँ जाकर थोड़ा स्वस्थ होने के बाद देवी नाम–जप में बैठने लगी। कान में नाम नहीं बोलने से देवी 10 घंटा से 18 घंटा तक समाधिस्थ रहती थीं। मनोरंजन बाबू ढाका गेण्डारिया आश्रम में गोस्वामी प्रभुजी से मनोरमा देवी के बारे में कहा। गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, **"पूर्वजन्म की सुकृति के सिवाय ऐसी अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। कृपा की आवश्यकता होती है, परन्तु पात्र भी सही होना चाहिए। मनोरमा जैसे दाता बाप की संतान है, ऐसा कलियुग में नहीं देखा जाता। यह अवस्था अति आश्चर्यजनक है लेकिन अभी भी ईश्वर में विश्वास नहीं हुआ है। यह अवस्था नामानंद की अवस्था है। मनोरमा के जीवन द्वारा लाखों लोगों का उपकार होगा।"** गोस्वामीजी ने जिस विश्वास की बात कही है, वह है– पूर्ण विश्वास। शास्त्र में है– "भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे। "भावार्थ – उस पर ब्रह्म को दर्शन

या प्रत्यक्ष करने से हृदय ग्रन्थि विदीर्ण होती है। समस्त संशय नष्ट हो जाता है। उसके कर्मों का क्षय हो जाता है। हृदय ग्रन्थि छिन्न होने का अर्थ है वासना से मुक्ति।"

नारायणगंज में रहते समय एकबार शनिवार के दोपहर एक बजे देवी ध्यान में बैठी। रविवार रात आठ बजे उनका ध्यान भंग हुआ। 32 घंटे में शिशु संतान को देवी की गोद में डालकर दूध पीलाया गया। एक माह की संतान देवी के पास झूला में था। 32 घंटे में शिशु एकबार भी नहीं रोया। ऐसा लग रहा था कि स्वयं भगवान शिशु को गोद में लेकर बैठे हैं। 12 साल के ज्यैष्ठ पुत्र सत्यरंजन ने पिता से कहा – "मैं माँ के घर के पास जोर–जोर से बातें कर रहा था। कोई ऊपर से मुझे कहा 'चुप करो' 'चुप करो'। मैंने चारों ओर किसी को नहीं देखा। मुझे बहुत डर लग रहा है।" 32 घंटे ध्यान के बाद देवी के कपड़े अश्रुजल से भीग गए थे। अश्रुपात के छह घंटे बाद देवी सचेत हुई। इस बार देवी को कुछ भिन्न लग रहा था। इस बारे में मनोरंजन बाबू ने जानने की इच्छा व्यक्त की। देवी ने कहा, "पहले जब बैठती थी नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता था। अतिशय आनंद से प्राण भर जाता था एवं देह का अस्तित्व ज्ञान नहीं रहता था। इस बार भी ऐसा ही हुआ। लेकिन कुछ देर बाद अनुभव हुआ कि ईश्वर ने मुझे सीने से लगा रखा है।" देवी की यह बात सुनकर मनोरंजन बाबू समझ गए कि गुरुजी की बात सच हुई। उन्होंने कहा था, "इसके बाद सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म अपने आप प्रकाशित होगा।" देवी को उस स्थिति में पहुँचा देखकर मनोरंजन बाबू बहुत आनन्दित हुए।

ढांका प्रचारक निवास के शौचागार में छत नहीं थी। वहाँ पेड़ पर कौए का घोसला था। शौचागार में जाने पर कौआ उसे ठोकर मारता था। कौआ को भगाना या वृक्ष को काटंना दोनों में एक भी संभव नहीं था। इस असुविधा में एकदिन पति–पत्नी ने ईश्वर के पास प्रार्थना की। बड़े ही आश्चर्य की बात हैं, प्रार्थना के बाद कौए ने कभी और कुछ नहीं किया। सांसारिक विषयों के लिए देवी कभी प्रार्थना नहीं करती थीं। पति के विशेष अनुरोध से वह प्रार्थना की एवं पूर्ण भी हुई। बाद में और कभी उन्होंने प्रार्थना नहीं की। एकबार अत्यंत सांसारिक क्लेश के कारण मनोरंजन बाबू ने देवी से निश्चिन्त होकर साधन–भजन करने की प्रार्थना करने को कहा। देवी उत्तर में बोली, "अब मुझे कोई प्रार्थना नहीं आती। भगवान सब कुछ देख रहे हैं। उनको और क्या बोलूँ ? जो करना है, वे वही करेंगे। क्या वे प्रार्थना की अपेक्षा करते हैं ?" जो नारी शास्त्रादि ग्रंथ कभी नहीं पढ़ी, संसार लेकर सर्वदा व्यस्त रहती है, उनके मुँह से इस प्रकार उक्ति केवल सद्गुरु कृपाप्राप्त व्यक्ति के लिए ही संभव है।

उस समय गोस्वामी प्रभुजी ने देवी एवं उनके पति के लिए व्रत प्रदान किया–

1. **अर्थोपार्जन की चेष्टा मत करो।**
2. **किसी से कुछ (अर्थ या खाद्य, वस्त्र आदि) नहीं माँगो।**
3. **अपने अभाव के बारे में किसी से नहीं बोलना।**
4. **इच्छापूर्वक कोई कुछ देवे तो ग्रहण करना, अभिमानवश प्रत्याख्यान नहीं करना।**
5. **भागलपुर, गया, हजारीबाग, गिरिडिह, पचम्बा, बैद्यनाथ इनमें से किसी स्थान में रहना।**

गुरुजी के आदेशानुसार वे ढाका से वरिशाल होकर भागलपुर रवाना हुए। वारिशाल के नरोत्तमपुर में बहन के घर में वे एक सप्ताह थे। वहाँ नरोत्तमपुर वानारिपाड़ा एवं आस–पास के गाँवों से लोग देवी को देखने के लिए आते थे। देवी के सुबह आठ बजे ध्यान में बैठने के बाद महिलाएँ देवी को घेरकर माला जपने बैठती थीं। इस प्रकार दोपहर तीन बजने के बाद भी कोई कुछ नहीं खाता था। मनोरंजन बाबू उन लोगों से इस उपवास का कारण पूछा तो एक वृद्धा बोलीं, "खाना–पीना तो प्रतिदिन है, ऐसा शुभदिन, ऐसा सत्संग हमें कब मिलेगा ?"

भागलपुर के नयाबाजार में भुवन देवान के घर में मासिक 17 रूपए भाड़े पर देवी पति–पुत्रों को लेकर रहने लगीं। उनके पास बहुत ही कम पैसा था, लेकिन किसी प्रकार उनका संसार चलता रहा। वहाँ देवी नियमित आसन में बैठती थीं। उनके कानों में नाम सुनाकर ध्यान भंग करना पड़ता था। उस समय उन्होंने अपने आपको शरीर से संपूर्ण स्वतंत्ररूप में साक्षात् किया एवं दैववाणी भी सुनी। एकदिन समाधि के समय जोर–जोर से हँसने लगी। उस दिन एक विशेष वाणी सुनी थी। नये बाजार में अनेक साधु–संन्यासी लोगों का समागम होता था। वे देवी के ध्यान की बात सुनकर देवी को देखने आए। देवी को समाधि अवस्था में देखकर उन्होंने कहा, "यह गुरु की पूरी कृपा है।" वहाँ देवी एक अनाथिनी की देखभाल करती थीं।

भागलपुर से वे गया आए। वहाँ उन्होंने ब्रह्मयोनी पहाड़, गोड़धोया कुण्ड एवं गोस्वामी प्रभुजी के दीक्षा स्थान आकाशगंगा पहाड़ का दर्शन किया। यहाँ एक अलौकिक घटना हुई। देवी थी संपूर्ण ईश्वर निर्भरशील, लेकिन पति इस प्रकार नहीं थे। इस घटना से उनमें परिवर्तन हुआ। गया में रहते समय एकदिन घर में भोजन का सामान कुछ भी नहीं था उन्होंने अनाहार में रहकर केवल उपासना करके दिन बिताने का संकल्प लिया। देवी का बड़ा पुत्र सत्यरंजन उस समय 12

साल का था। वह जानता था कि यह सांसारिक क्लेश नहीं, व्रत पालन मात्र है। उसदिन सब मिलकर उपासना करने लगे। दिन के 10 बजे भी कोई उपासना छोड़कर नहीं उठा। उसी समय 15 दिन की भोजन सामग्री कोई दे गया। अनेक अनुसंधान के बाद भी उस व्यक्ति का पता नहीं चला। देवी का संसार योगक्षेम–वहनकारी ईश्वर ही देखते थे। देवी की इस प्रकार निर्भरता देखकर उनके पति मुग्ध हो गए एवं उन्होंने कहा, "जन्मान्तर में मेरी ऐसी क्या सुकृति थी कि मैंने मनोरमा को पत्नी रूप में प्राप्त किया।" यहाँ पुरुषरूपधारिणी एक नवीना संन्यासिनी के साथ देवी का साक्षात्कार हुआ। संन्यासिनी समाधिमग्ना देवी के प्रति आकृष्ट हुई थी। 24 घंटे के बाद देवी का ध्यान भंग होने के बाद संन्यासिनी ने देवी के साथ मुलाकात की। दोनों में क्या बातें हुई, कोई नहीं जानता।

उस समय देवी को खबर मिली कि गुरुजी कोलकाता आए हैं। देवी उनके दर्शन के लिए दो पुत्रों को लेकर प्रभुजी के पास गईं। बाद में प्रभुजी के शिष्य उमाचरण बाबू के घर में 17 रूपए भाड़े पर छह महीना रहे। घर में प्रवेश करते ही देवी प्रसन्न हो गईं। देवी कहतीं थी, "यदि घर अच्छा हो तो जमीन में सोना भी अच्छा है। यदि चावल अच्छा हो तो केवल नमक से खाना भी अच्छा है।" भवानीपुर के उस संसार में कोई आय नहीं थी, लेकिन कोई अभाव भी नहीं था। यहाँ श्री रेवतीमोहन, वेणीमाधव एवं और एक दो व्यक्ति उनके परिवारभुक्त हुए। एकदिन श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय (डॉन पत्रिका) इस घर में आए। उस समय देवी ध्यानमग्न थी। सतीशचन्द्र भी देवी के पास बैठ गए। इस तरह पूरा दिन बीत गया। इसके बाद सतीशचन्द्र प्रायः प्रतिदिन वहाँ आते थे।

देवी के कनिष्ठ पुत्र के नामकरण उत्सव के बारे में गोस्वामी प्रभुजी को कहा गया। गोस्वामी प्रभुजी भवानीपुर के घर में आने के लिए राजी हो गए। उनके साथ कई शिष्यों ने भी आना चाहा। इधर घर में भंडार शून्य था। मनोरंजन बाबू बहुत चिंतित हो गए। देवी ईश्वर के प्रति संपूर्ण निर्भरशील थीं, इसलिए इस बारे में देवी को कोई चिन्ता नहीं थी।

उमाचरण बाबू की पत्नी ने स्वयं उत्सव में मिठाई देने की इच्छा व्यक्त की। उत्सव के दिन विभिन्न लोगों से पैसा आने लगा। कोई विशुद्ध घी ले आया तो कोई दही। सतीशबाबू ने दस रूपए देकर कहा, "दस रूपए का दूध लाकर खीर बनाने से वे बहुत खुश होंगे। इस प्रकार उत्सव में अनेक भोजन सामग्री संग्रह हुई। गोस्वामी प्रभुजी के उपस्थिति में अन्नप्राशन एवं नामकरण होने के बाद वाद्यध्वनि एवं हुलुध्वनि से चारों दिशाएँ मुखरित हो उठीं। देवी की ईश्वर के प्रति निर्भरशीलता का यह एक प्रेरक दृष्टांत है।

महात्मा सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय प्रायः ध्यान के समय देवी के पास बैठे रहते थे। शास्त्र में समाधि अवस्था के सम्बन्ध जो उन्होंने पढ़ा था, देवी के पास उसे प्रत्यक्ष अनुभव किया। वे देवी को माँ कहते थे। देवी का संसार आकाशवृत्ति पर चलता है, यह वे जानते थे। उन्होंने साऊथ सुबार्वन स्कूल में 60 रूपए वेतन की नौकरी स्वीकार की। उन्होंने नौकरी का पैसा देवी के संसार में देने के लिए अतिसंकोच के साथ मनोरंजन बाबू से प्रार्थना की। सतीश बाबू की बात सुनकर मनोरंजन बाबू चकित हो गए एवं बोले, "जिस व्यक्ति ने अधिक वेतन का अध्यापन छोड़ा हैं, वकालत छोड़ी है, उसने देवी की साधना में सहायता के लिए 60 रूपए वेतन की नौकरी ग्रहण की, यह कल्पना करना भी कठिन हैं। कोई स्वतः प्रवृत्त होकर कुछ प्रदान करने से उनको बाधा डालने का कोई अधिकार मुझे नहीं है, इसलिए सतीशबाबू को मैं कुछ नहीं कह सका।" हर महीना 60 रूपए उनके संसार में वे देने लगे।

कुछ दिन बाद अलौकिक रूप से गोस्वामी प्रभुजी के पास सतीशबाबू को दीक्षा प्राप्ति हुई। इसका विस्तृत वर्णन महात्मा सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय नामक अध्याय में किया गया है।

इस प्रसंग में एक बात उल्लेखनीय है। भवानीपुर में जिसके आकर्षण से धर्मार्थी दल गठित हुआ था एवं जिसको केन्द्र करके विशेष धर्मीय परिवेश बना था, वह केन्द्रमणि मनोरमा देवी शांत रहती थीं। उनके अंग में कोई अलंकार नहीं था। उन्होंने कभी किसी को उपदेश नहीं दिया। धर्म कथा भी किसी से नहीं बोलती थी। वे पति–पुत्रों कुटुम्बों के साथ संसार में थीं। धर्म साधना का मूल ईश्वर पर निर्भरता दिखाने के लिए ही शायद गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से देवी ने सपरिवार भवानीपुर में अवस्थान किया। सर रमेशचन्द्र मित्र, त्रिगुणाचरण सेन, श्रीचरण चक्रवर्ती आदि मनीषीगण देवी को ध्यानमग्न देखने के लिए व्याकुल होकर प्रतीक्षा करते थे। देवी ये सब नहीं जानती थी। घर में आए सब लोगों की परिचर्या देवी स्वयं करती थी।

एनी बेसेन्ट के साथ देवी का मिलन एक अप्रत्याशित घटना थी। श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय ने इन दोनों में बातें करते समय दुभाषिए का काम किया था। उनके मिलन की घटना संक्षेप में इस प्रकार है – श्रीयुत अल्कट् साहब एनी बेसेन्ट के घर के सामने खड़े थे। मनोरमा देवी के सीढ़ी से ऊपर उठते ही साहब ने नमस्कार किया एवं बेसेन्ट का घर दिखाकर चले गए। श्रीमती बेसेन्ट कुर्सी में बैठी थीं। मनोरमा के प्रवेश करते ही बेसेन्ट ने खड़े होकर उनको नमस्कार कर उनका स्वागत किया।

दोनों चटाई पर बैठीं। सतीशबाबू ने दुभाषिए का कार्य किया। मनोरमा ने

पूछा कि मेमसाहब कब क्या–क्या करती हैं ? मिसेस बेसेन्ट भी मनोरमा के बारे में अनेक पूछताछ की। मनोरमा का उत्तर सुनकर सतीशबाबू आश्चर्यचकित हो गए एवं मेमसाहब से उन्होंने कहा कि शास्त्र पाठ नहीं करके भी मनोरमा किस प्रकार ये सब बातें कर रही हैं ? मेमसाहब बोली, "यह गुरुकृपा का फल है।" इन दोनों के मिलन के बारे में मनोरंजन बाबू ने कहा, "यह मिलन बड़ा चमत्कार था। एक महाविदुषी, दूसरी अनपढ़ स्त्री। एक महान् वक्ता, दूसरी निर्वाक। एक पृथ्वी पर्यटनकारिणी यशस्विनी, दूसरी अख्यातनामा बंगाल की साधारण गृहवधू। इन दोनों के मिलन की क्या आवश्यकता थी, यह पता नहीं चला।" धर्मप्राण विदुषी महिला काउन्टेस वाक मिस्टार ने भी देवी को ज्योतिर्मयी रूप में देखा था एवं वे भक्ति से अभिभूत हो गई थीं। उन्होंने देवी को प्रणाम किया एवं आशीर्वाद माँगा।

कुछ दिन बाद देवी मलेरिया से रोगग्रस्त हुई। प्रतिदिन बुखार 105 डिग्री हो जाता था। सिरदर्द एवं उल्टी भी होती थी। बुखार 12 घंटे तक रहता था। सिरदर्द से आँखों से अश्रुधारा निकलती थी। देवी का कष्ट देखकर सब लोग दुःखी हुए।

एकदिन मनोरंजन बाबू ने देवी से बुखार आने के एक घंटा पहले ध्यान में बैठने के लिए कहा। देवी सुबह 7 बजे ध्यान में बैठी। एक घंटा बाद उनका शरीर गरम होने लगा। 1 बजे तक बुखार 105 डिग्री हो गया। मस्तक के दोनों ओर की नसें फूली हुई थी। अन्य दिन ऐसी अवस्था में देवी सिर पकड़कर रोती थीं, लेकिन उस समय देवी को बाह्यज्ञान नहीं था। घरवाले उनकी अवस्था देख रहे थे। देवी पत्थर की मूर्ति की तरह योगासन में बैठी थीं। उस दिन भी बंद आँखों से अश्रुधारा निकल रही थी, लेकिन वह धारा आनन्द की थी या क्लेष की, यह पता नहीं चला। कुछ देर बाद उल्टी शुरू हुई। उपस्थित लोग समझ गए थे कि शरीर अपना काम कर रहा है। बुखार, सिर–पीड़ा, उल्टी यह सब शरीर भोग रहा है। देवी ब्रह्मानन्द सुधापान में निमग्न हैं। इस प्रकार 12 घंटा व्यतीत होने के बाद रात आठ बजे बुखार छूट गया। उसके एक घंटा बाद उनके कान में साधनमंत्र सुनाकर मनोरंजन बाबू ने देवी का ध्यान भंग किया। देवी ने हाथ जोड़कर नमस्कार करके आँखें खोलीं। इस घटना से सब लोग विस्मित हो गए। वे समझ गए थे कि शरीर एवं आत्मा स्वतंत्र है। इसके बाद देवी को बुखार नहीं हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि साधन शक्ति द्वारा रोग, यंत्रणा सब दूर हो सकते हैं।

कोलकाता 91/1 मेछुआ बाजार स्ट्रीट के छोटे से घर में देवी अतिथि–अभ्यागतों को लेकर 20–22 लोगों के साथ वास करती थी। उनमें रेवतीमोहन सेन, वेणीमाधव दे, चन्द्रनाथदास आदि भक्त भी थे। छोटे घर में सामान्य दाल–चावल खाकर एवं जमीन में कष्ट से सोकर भी सब लोग परितृप्त थे। उस

समय देवी स्वस्थ नहीं थी इसलिए रसोई के लिए एक लड़की थी एवं काम के लिए गोकुल नाम का नौकर था। रसोईवाली मिष्ट भाषी थी, लेकिन वह छिपाकर चावल, आलु आदि घर ले जाती थी। एकदिन रसोईवाली की यह कार्यप्रणाली देवी की नजर में आई। देवी ने अपने पति से कहा, "यदि पता चल जाए कि उस पर अविश्वास किया जाता है, तो उस घर में फिर शांति नहीं रहेगी। दास–दासी के साथ मालिक का संपर्क ऐसा होना चाहिए कि उभय पक्ष को सहानुभूति सम्पन्न होना चाहिए। रसोईवाली उस समय यदि काम छोड़ दे तो उन लोगों की क्या अवस्था होगी ? इसलिए उसको नहीं छुड़ाया गया"। देवी उस समय से सावधान हो गई। उल्लेखनीय है कि उस रसोईवाली को ज्यादा दिन नहीं रखा गया था। उस घर में देवी ने सप्तम संतान (कन्या) प्रसव की। गोस्वामी प्रभुजी ने कन्या का नाम विन्ध्यवासिनी रखा।

देवी एवं मनोरंजन गुहठाकुरता के रहने के लिए गोस्वामी प्रभुजी के निर्देशित स्थानों में हजारीबाग एवं बैद्यनाथ बाकी था। उस समय कोलकाता में चेचक का भयानक आक्रमण शुरू हुआ। उन्होंने अलौकिक रूप से हजारीबाग में कालीकृष्ण ठाकुर महाशय के घर में आश्रय प्राप्त किया। कोलकाता से हजारीबाग जाना एवं वहाँ एक साल रहने का सब खर्च उक्त ठाकुर महाशय देकर धन्य होना चाहते थे। गोस्वामी प्रभुजी की अनुमति प्राप्त करके उन लोगों ने कोलकाता से हजारीबाग की यात्रा की। उस समय मनोरंजनबाबू अर्थहीन थे, लेकिन भगवान की कृपा से सब व्यवस्था हो गई।

उस समय गिरिडिह से हजारीबाग जाना पड़ता था। 72 मील पहाड़ी रास्ता अतिक्रम करने में 24 घंटे का समय लगता था, लेकिन वे लोग पहाड़ी सौन्दर्य का दर्शन करते–करते जा रहे थे। इसलिए 36 घंटे का समय लगा। उस समय देवी सर्वदा 'नाम' में निमग्न रहती थीं। उनके मुखमंडल पर एक आनन्दपूर्ण भाव प्रकट होता था। पहाड़ी सौन्दर्य ने उनको और भावमय कर दिया था।

हजारीबाग में ठाकुर महाशय के दुलपार्क भवन में उन लोगों को आश्रय मिला था। उस भवन के पूर्व–उत्तर कोण के छोटे कमरे में देवी ध्यान में बैठती थीं। सुबह सात–आठ बजे ध्यान में बैठने के बाद 24 घंटा बाद ही उनका ध्यान भंग होता था। ध्यान में बैठने के पूर्व उनके पति उनको दूध पिला देते थे। एकदिन हजारीबाग जिला स्कूल में पढ़ते समय एक पुत्र अचानक अचेत हो गया। स्कूल के परिधारकों ने बालक को पालकी द्वारा घर भेज दिया। देवी उस समय ध्यानमग्न थीं। घर में सब लोग बालक को लेकर चिंतित हो गए। लेकिन देवी को कुछ भी पता नहीं चला। उनका बड़ा पुत्र सत्यरंजन चिल्लाकर रोते–रोते माँ को भाई के बारे में कहता रहा, लेकिन देवी का ध्यान भंग नहीं हुआ। अंत मे मनोरंजन बाबू

ने देवी को नाम सुनाकर घ्यान भंग किया। देवी ने शांतभाव से हाथ जोड़कर नमस्कार करके आँखें खोलीं। देवी ने स्थिर होकर सब घटना सुनी। उनमें कोई चंचलता नहीं थी। उन्होंने पुत्र को प्यार से सीने में लगा लिया। थोड़ी देर में नित्यरंजन स्वाभाविक हो गया। पति मनोरंजन बाबू का विश्वास था कि देवी के पास कोई विपदा नहीं आ सकती। गुरुजी एवं ईश्वर के प्रति देवी की असाधारण निर्भरता के कारण देवी के मन में कभी व्यग्रता नहीं आती थी।

1895 ई० में हजारीबाग के घर में जन्माष्टमी का उत्सव हुआ। उत्सव का प्राणकेन्द्र देवी थीं। देवी कभी भी घर से बाहर निकलकर अपरिचित लोगों से बात भी नहीं करती थीं। लेकिन सब लोग देवी के आकर्षण से ही वहाँ आते थे। उनकी उपस्थिति लोगों को आनन्द देती थी। एकदिन हजारीबाग में शहर से छह मील दूर एक पार्वत्य परिवेश में वनभोज की व्यवस्था की गई। उस दिन उक्त स्थान कीर्तनानन्द से मुखरित हो उठा। संध्या के समय लौटने के लिए सब लोग गाड़ी में चढ़े। जब तक सब नौकर–नौकरानी गाड़ी में नहीं चढ़े देवी तब तक बाहर खड़ीं रहीं। सब लोगों के गाड़ी में बैठने के बाद देवी गाड़ी में बैठीं। देवी इस प्रकार सबको अपना मानती थीं।

1896 ई० में हजारीबाग में उन लोगों ने आषाढ़ महीने में झूलन पूर्णिमा के दिन गोस्वामी प्रभुजी का जन्मोत्सव आयोजित किया। उस समय गोस्वामीजी शरीर में थे। एक टेबल पर प्रभुजी का फोटो रखा था एवं प्रतिदिन उसकी पूजा होती थी। घी का दीया जलाकर करताल एवं वाद्य के साथ आरती होती थी। प्रभुजी के फोटो को सुन्दरता से सजाकर देवी देखती रहतीं थीं। आरती के शुरू से अंत तक वह भूमिष्ठ होकर प्रणाम करती थीं। किसी कार्य में चंचलता या ज्यादा उत्साह नहीं दिखाती थीं, सर्वदा शांत रहती थीं। संतानों को प्यार करते समय भी उनमें कोई चंचलता नहीं दिखाई देती थी। एकदिन देवी शिशु को स्तनपान करा रही थीं। शिशु स्तनपान कर रहा था एवं माता संतान की ओर देख रही थीं। उस समय देवी को बाह्यज्ञान नहीं था। एक गुरुभाई विधुभूषण घोष अचानक वहाँ आए, देवी को उनकी उपस्थिति का पता नहीं था। विधुबाबू देवी को देखकर वहाँ से चले गए। देवी के मुखमंडल पर ममतामयी मातृमूर्ति का प्रकाश देखकर वे विस्मित हो गए। मनोरंजन बाबू कहते थे, "जिस प्रकार आंचल से दीप ढँकने से आंचल उज्ज्वल होता है, अति प्रगाढ़ भावों के अन्दर में रहने के कारण देवी के मुखमंडल पर भावों का प्रकाश दिखता था।" जन्मोत्सव में अधिकांश लोग भावमग्न हो गए थे, लेकिन देवी में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया। मनोरंजन बाबू ने पूछा कि उत्सव में सब लोग भावमग्न हो गए थे, क्या उनको अच्छा नहीं लगा ? उत्तर में देवी बोली, "क्यों अच्छा नहीं लगेगा ? सबका भाव समान नहीं होता।"

प्रायः एक साल हजारीबाग में रहकर सभी मलेरिया रोग से मुक्त हो गए। इसके बाद सभी गिरिडि आए एवं गुरुजी के निर्देश पर एक महीना वहाँ रहे। गिरिडि में वे राखालचन्द्र ता महाशय के घर में किराए से थे। हजारीबाग एस्टेट् के मैनेजर श्री गोपालचन्द्र सेन इस परिवार के प्रति विशेष आकृष्ट हुए थे। वे जानते थे कि इस परिवार की कोई निर्दिष्ट आय नहीं है। उन्होंने मनोरंजन बाबू के अज्ञात में उनके अनुगत एक व्यक्ति को एक अभ्रक खदान दे दी एवं शर्त रखी कि मनोरंजन बाबू उस खदान के अर्द्धांश के मालिक होंगे। मनोरंजन बाबू के पास यह प्रस्ताव रखने पर उन्होंने यह सोचा कि गुरुजी ने कहा है यदि, कोई स्वतः प्रवृत्त होकर सहायता करे तो उसकी उपेक्षा नहीं करना चहिए, इसलिए गोपाल बाबू का यह अयाचित दान ग्रहणयोग्य था। देवी बोलीं, "लोगों द्वारा अपनी इच्छा से दान करने से वह भगवान का दान होता है। माँगकर लेने से वह ऋण होता है।" देवी की बात सुनकर मनोरंजन बाबू ने गोपाल बाबू का प्रस्ताव भगवान के दान स्वरूप ग्रहण किया। मनोरंजन बाबू ने गोपाल बाबू से कहा कि अंशदार यदि कोई मूलधन नियोग नहीं कर सके, तो बिडंबना होती है। गोपाल बाबू ने साढ़े चार बीघा अभ्रक जमीन वार्षिक 95 रूपए ब्याज में मनोरंजन बाबू को दी। इसके बारे में मनोरंजन बाबू द्वारा गुरुजी से पूछने से गुरुजी बोले, "अभी भी कर्म बाकी है, इस कार्य को तपस्या के भाव से करो। इस कार्य से कर्म क्षय होगा एवं अनेक लोग उपकृत होंगे। यह कार्य धर्म पालन में एक इतिहास स्वरूप होगा। संचय करने की चेष्टा मत करो।" गुरुजी के निर्देश से मनोरंजन बाबू ने कार्य शुरू किया।

एकदिन किसी श्रद्धेय गुरुभ्राता ने देवी के प्रसाद के लिए विशेष आग्रह व्यक्त किया। देवी अपना उच्छिष्ट कैसे गुरुभाई को देंगी, यह सोचकर प्रसाद शेष नहीं रखी। गुरुभाई ने यथासमय आकर प्रसाद के लिए प्रार्थना की एवं विफल होकर दूसरे दिन प्रसाद रखने के लिए देवी को बारंबार अनुरोध किया। दूसरे दिन भोजन के पहले देवी ने ठाकुर को निवेदन करके प्रत्येक भोज्य द्रव्य से कुछ—कुछ लेकर एक पात्र में रखा। गुरुभाई यथा समय प्रसाद लेने आए। देवी ने गुरुजी का निवेदित प्रसाद गुरुभाई को दिया। गुरुभाई ने आनन्द के साथ प्रसाद आहार किया।

उसके बाद वे लोग वैद्यनाथ गए। वैद्यनाथ के 'नन्दन पहाड़' एवं 'तपोवन' ने देवी को अत्यंत मुग्ध किया। तपोवन में साधनारत बालानन्द ब्रह्मचारीजी को प्रणाम करके देवी ने अत्यंत तृप्ति अनुभव की। उस पहाड़ की गुफाएं इतनी सुन्दर थी कि देवी बहुत देर तक नामानन्द में भाव विभोर होकर पड़ी रहीं। यहाँ पर नौकर—नौकरानी, याचक आदि सब लोग देवी को संतुष्ट करने के लिए सर्वदा सचेष्ट थे। वे देवी को 'माई जी' मानते थे। देवी के कुछ कहने से सब लोग

उत्साहित हो जाते थे कि कौन पहले देवी के आदेश का पालन करेगा ? देवी बहुत कम आदेश करती थीं। लेकिन सभी उनके आदेश की प्रतीक्षा में रहते। सबके प्रति देवी की समान दृष्टि थी। देवी सबकी सेवा करती थीं। एकदिन दाई माँ एक पात्र में दो तीन सेर गरम दूध थाली में रखकर ले जा रही थी। अचानक हाथ से थाली गिर गई एवं पूरा दूध नष्ट हो गया। देवी ने दौड़ते हुए आकर दाई से पूछा, गरम दूध उनके शरीर पर तो नहीं गिरा ? दूध गिरने से देवी को कोई चिन्ता नहीं थी लेकिन गरम दूध गिरने से दाई को कोई कष्ट तो नहीं हुआ, देवी बार–बार यही पूछती रहीं। देवी इन लोगों को कभी हीन–भाव से नहीं देखतीं थी। सर्वदा प्यार की दृष्टि से देखतीं थी। उनके प्यार में ममता विराजती थी।

बैद्यनाथ धाम वास के समय देवी में विशेष परिवर्तन हुआ। संसार का भार आठ साल की कन्या को सौंपकर देवी संसार से अलग रहीं। लगता था देवी संसार का बोझ और वहन नहीं कर सकती थीं। देवी सर्वदा नामानन्द में मग्न रहती थीं। लड़कियाँ देवी को लेकर घूमने भी जाती थी, लेकिन देवी बहुत देर तक बाहर नहीं रहती थीं।

बैद्यनाथ में गुरुभाई महाविष्णु यती महाशय से उन लोगों की भेंट हुई। वे अपूर्व पदावली संगीत गाते थे। सुन्दर संगीत रचना भी करते थे। "अपरूप श्री गुरुरूप हृदये सदा भावना रे" इस प्रसिद्ध संगीत की उन्होंने रचना की थी।

1897 ई० में (बंगला 1304 सन) भीषण भूकंप के कारण बंगाल एवं असम अत्यंत प्रभावित हुआ। दुर्भिक्ष भी देखा गया। देवी अत्यंत व्यथित हो उठीं। भंडार शून्य करके वे भिक्षा दे देती थीं। क्रमशः भिखारियों की संख्या बढ़ने लगी। देवी प्रतिदिन प्रायः सौ भिखारियों को चावल देती थीं। अभ्रक की खान से जो कुछ आय होती थी। सब इसी में व्यय होने लगी। मनोरंजन बाबू ने देवी से कहा इस तरह कितने दिन चलेगा ? देवी बोली, "हमलोग जितने दिन खायेंगे, ये लोग भी खायेंगे।" मनोरंजन बाबू ने कहा, "हम लोगों को कहाँ से भोजन मिलेगा ?" देवी ने पति की ओर देखा, उनकी आँखें भर आई थी। देवी बोली, "मैं क्या करूँ ? मैं यह सब नहीं सहन कर सकती। मुझे यहाँ क्यों लाए ? मैं लोगों का कष्ट सहन नहीं कर सकती।" देवी की बात सुनकर मनोरंजन बाबू और कुछ नहीं बोल सके। दूध पीने वाले शिशुओं के लिए देवी मांड़ रखती थी। देवी आधी रात में उठकर यह सब व्यवस्था करती थी। कभी–कभी चना भी वितरण किया जाता था। वृद्धों के लिए सत्तू बनाकर रखती थीं। दुःखियों के लिए देवी अत्यन्त व्यथित हो गई थीं।

उस दिन शुक्रवार था। मनोरंजन बाबू ने श्रीश्री गुरुजी के दर्शन हेतु कोलकाता जाना चाहा। देवी ने उनको सोमवार को जाने के लिए कहा। यही

पहली बार देवी ने पति की इच्छा में बाधा डाली। सोमवार को उनकी संतान नीतू का जन्मदिन था। प्रत्येक संतान के जन्मदिन में 16 सेर दूध से खीर बनाकर निवेदित किया जाता था। जन्मोत्सव के दिन पति की उपस्थिति की आकांक्षा करके देवी ने पति को सोमवार तक रूकने के लिए बार–बार अनुरोध किया। लेकिन मनोरंजन बाबू शुक्रवार को ही कोलकाता रवाना हुए। फिर भी देवी ने ज्येष्ठ पुत्र सत्यरंजन को स्टेशन भेजा, पति को लौटाने के लिए। शनिवार मनोरंजन बाबू कोलकाता पहुँचे, गुरुजी का दर्शन किया। रविवार उनको देवघर से तार मिला कि ज्येष्ठा कन्या विसूचिका (हैजा) रोग से आक्रांत हुई। तार लेकर वे गुरुजी के पास गए। गोस्वामी प्रभुजी संवाद सुनकर कुछ क्षण मौन रहे फिर बोले, "भगवान जब परीक्षा लेते हैं, तब कठिन स्थान पर आघात करते हैं।" श्रीश्री गुरुजी की बात सुनकर वे अत्यन्त चिंतित होकर सोचने लगे, "मेरे पाँच पुत्र एवं तीन कन्या हैं, इसमें कौन सा कठिन स्थान और कौन सा नरम स्थान, यह पता नहीं है।" गुरुजी को प्रणाम करके उनकी अनुमति लेकर वे वैद्यनाथ धाम रवाना हुए। रास्ते में उनको खबर मिली कि दो और संतान विसूचिका में आक्रांत हैं। उस दिन कोलकाता से देवघर आते समय मनोरंजन बाबू प्रति बार ट्रेन बदलने के समय परवर्ती ट्रेन पकड़ने में विफल हुए। हर बार उनके पहुँचने के थोड़ी देर पहले ट्रेन छूट गई थी। इसलिए मनोरंजन बाबू को देवघर पहुँचने में बहुत देर हो गई। अंत में (जसीडी) जंक्शन से तीन चार मील पैदल चलकर देवघर आए। रास्ते में भिखारियों ने मनोरंजन बाबू से कहा, "बाबा आए हो, कोई चिन्ता नहीं, बच्चे सब ठीक हैं।" यह सुनकर मनोरंजन बाबू निश्चिन्त होकर घर गए, लेकिन घर में देवी को देखकर अत्यंत उद्विग्न हुए। देवी का शरीर विवर्ण एवं हँसी में कोई प्रफुल्लता नहीं थी। उनको लगा कि तीन संतानों को विसूचिका से मुक्त करने के कारण देवी का शरीर ठीक नहीं है। पति की रात में नींद नहीं हुई जानकर देवी ने जल्दी रसोई करके पति को भोजन कराया एवं सोने को कहा। पति ने भी देवी को आहार करके निद्रा लेने को कहा। मनोरंजन बाबू आहार के बाद सो गए। उस दिन सोमवार था। दोपहर दो बजे मनोरंजन बाबू की निद्रा भंग होने पर देवी हँसती हुई पति से बोली, "देखो मुझे भी विसूचिका हो गई। मैंने आपसे पहले ही कहा है कि जिस दिन मैं एकबार से ज्यादा शौच जाऊँगी, समझों उस दिन मुझे विसूचिका हो गई।" पति से बात करते–करते एक घंटा में देवी कई बार शौच गईं। पेट में दर्द शुरू हुआ एवं थोड़ी देर में ही उनका शरीर दुर्बल हो गया। देवी स्वयं पूजाघर में चटाई बिछाकर सो गईं। डाक्टर के आने पर दवा देने से भी देवी ने दवा नहीं लेना चाहा। वह पति का हाथ पकड़कर विनय के साथ बोली, "देखो, दवा खाने से ही लोग बचेंगे और नहीं खाएँगे तो मरेंगे, मैं यह विश्वास नहीं करती। मैं अपने मन को एकांत में रखना चाहती हूँ। आप लोग विघ्न मत डालो।" देवी की बात

सुनकर मनोरंजन बाबू ने सोचा, ध्यान में बैठने से देवी ठीक हो जाएँगी। उन्होंने देवी को ध्यान में बैठने को कहा। देवी बोली, "मेरा शरीर दुर्बल हो गया है, बैठने की शक्ति नहीं है। मुझे और कोई चिकित्सा की जरूरत नहीं है, केवल बर्फ और हवा की आवश्यकता है।"

मनोरंजन बाबू घबड़ा गए। कुछ नहीं समझ पा रहे थे। उन्होंने अश्रुपूर्ण नयनों से देवी को कहा, "दवा लो, नहीं तो मैं कैसे निश्चिन्त रहूँ ?" देवी कुछ नहीं बोलीं। देवी ने मुँह खोला मनोरंजन बाबू ने हल्दी चूर्ण (इस रोग में हल्दी चूर्ण की असाधारण शक्ति है, मनोरंजन बाबू यह जानते थे।) उनके मुँह में डाल दिया। देवी ने तुरंत उल्टी कर दी। कोलकाता से रेवतीबाबू आए। उनको देखकर देवी प्रफुल्लित हुई एवं उनको हवा करने को कहा। दो दिन चिकित्सा के बाद भी कोई फल नहीं हुआ। देवी पुनः बोली, "मैं मन को एकांत में रखना चाहती हूँ, आप लोग बाधा डाल रहे हैं।" उनकी बात सुनकर दवा बंद कर दी गई। आश्चर्य की बात है, इतनी अस्वस्थ अवस्था में भी वह अत्यन्त स्वस्थ रूप में आँखें बंद करके सो रही थी। कभी–कभी हाथ, पाँव में खिंचाव आने के कारण दबाने को बोलती थीं। रोग– यंत्रणा का और कोई बाहरी लक्षण नहीं था। देवी सर्वदा निद्रांच्छन्न रहती थी। कभी–कभी मनोरंजन बाबू देवी से पूछते थे कि उनको नींद आती है या नहीं। देवी बोली, "नहीं नींद नहीं आती।" वे केवल 'नाम' कर रही थीं। चार दिन रोग शैय्या में पड़ी रही एवं उन्होंने कोई बात नहीं की। संतानों के बारे में भी नहीं पूछा। दवा बंद कर दी गई। आधी रात को ऐसा लगा कि नाड़ी का स्पन्दन बंद हो गया। देवी ने पानी माँगा। पति ने दवा को मुँह में डाल दिया। देवी पति की ओर देख रही थी एवं उनका हाथ अपने सीने से लगाकर बोली, "मेरे साथ मजाक कर रहे हो ?" इस प्रकार प्यार से बुलाना उनकी आदत नहीं थी, लेकिन उस दिन उनको कोई संकोच नहीं था। उनके अंतिम अनुरोध की रक्षा नहीं करने के लिए मनोरंजन बाबू बहुत अनुतप्त थे। इस प्रकार मंगलवार रात भी बीत गई। बुधवार को अवस्था और खराब हो गई। उस समय पता चला कि आर्य मिशन के आचार्य पंचानन भट्टाचार्य के पास इस रोग की दवा है, लेकिन वह दवा खाने पर पानी पीना मना है। रोगिणी को पानी नहीं दिया जाएगा, यह सुनकर मनोरंजन बाबू बहुत चिंतित हुए। फिर भी उन्होंने बड़े पुत्र सत्यरंजन को दवा लाने के लिए भट्टाचार्य महाशय के पास भेजा। भट्टाचार्य महाशय उस समय वहाँ नहीं थे। इसलिए दवा नहीं मिली। आषाढ़ महीना का शेष था। कई दिनों से बारिश नहीं हो रही थी, इसलिए गरमी ज्यादा हो रही थी। बुधवार को देवी बोलीं, "आज जोर से बारिश होगी। उसके बाद सब ठीक हो जाएगा।" देवी की बात सुनकर सब लोग आनन्दित हुए। उस दिन संध्या के पूर्व तेज बारिश हुई। सब लोग सोचे देवी की बात सच हुई।

अब देवी स्वस्थ्य हो जाएँगी। रात में देवी शांत होकर सो रही थी। रेवती बाबू आदि परिजन सर्वदा देवी की सेवा कर रहे थे। गुरुवार सुबह देवी की अवस्था खराब नहीं थी। अस्वस्थ बच्चों को पथ्य एवं अन्य लोगों को भोजन दिया गया। मनोरंजन बाबू एवं रेवती बाबू देवी के पास बैठे थे। मनोरंजन बाबू देवी को कुछ बोल रहे थे। देवी ने उनकी ओर देखकर एक–दो प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर दिया। अचानक देवी का मुँह विकृत हो गया एवं तीव्र श्वास चलने लगी। पति समझ गए, अंतिम समय उपस्थित है। उन्होंने सबको कीर्तन करने को कहा। देवी की पवित्र देह घेरकर करताल के साथ मनोरंजन बाबू गाने लगे– "हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।" मातृहीन संतान भी रोते–रोते हरिनाम करने लगी। पुण्यात्मा देवी के शरीर छोड़ने के बाद भी मुखमंडल पर आनन्द छाया हुआ था। इस प्रकार गोस्वामी प्रभुजी का आशीर्वाद प्राप्त कर मनोरमा देवी ने इहलीला समाप्त करके नित्यधाम में प्रस्थान की।

मनोरंजन बाबू संतानों को लेकर देवघर से कोलकाता आए। मनोरंजन बाबू को पता चला कि श्रीश्री गुरुजी तार द्वारा देवी के देहत्याग की खबर सुनकर कुछ देर तक सिसककर रोये थे। देवी तीन–चार दिन केवल गुरुजी के पास आई थी। गुरुजी ने एकदिन मात्र देवी को पास में बैठाकर समाधिस्थ होने को कहा था। केवल उसी दिन देवी अधिक समय तक गुरुजी के पास थीं। अन्यान्य दिन उन्होंने दूर से गुरुजी को प्रणाम किया। फिर भी तार में संवाद पाकर साधारण मनुष्य की तरह गोसाँईजी के शोक व्यक्त करने से ऐसा लगा कि भक्त के विरह में उनके अश्रु निकल रहे थे। गोस्वामीजी का यह रोना शोक के कारण नहीं था। उनमें कोई मोह नहीं रह सकता, इसलिए साधारण लोगों के लिए यह समझना कठीन है।

देवी के देहत्याग के पूर्व रात में, श्री मोहिनीमोहन राय, जो गोस्वामी प्रभुजी के पास ग्रंथ पाठ करते थे, ने स्वप्न में देखा कि गोस्वामी प्रभुजी बोल रहे हैं, मनोरमा आई है। यह सुनकर मोहिनीमोहन बाबू बोले, "जब हम लोग नहीं देख सकते, तो हमें क्यों बोलते हैं ? आप देखिए।" गोस्वामी प्रभुजी बोले, "आप लोग भी देखेंगे" यह सुनने के बाद मोहिनी बाबू ने पश्चिम दिशा में एक अपूर्व ज्योति के भीतर उज्ज्वल मूर्ति देखी। लेकिन वह मूर्ति मनोरमा देवी की है, यह नहीं समझ सके एवं गोसाँईजी को मन की बात कही। धीरे–धीरे वह मूर्ति स्पष्ट होने लगी एवं मोहिनी बाबू ने मनोरमा देवी को देखा एवं उनसे घर जाने के लिए अनुरोध किया। देवी ने कहा, "उनको शांति सुधा देवी के पास जाना होगा।" फिर कहा, "मेरे अनेक कार्य है। पर मैं आपके घर जाऊँगी।" दूसरे दिन सुबह मोहिनी बाबू ने गोसाँईजी को स्वप्न के बारे में बताया। शांतिसुधा देवी बोली, "बाबा मैंने मनोरमा को स्वप्न में देखा, स्वच्छ साड़ी पहनी हुई आनन्दमयी मूर्ति, अति चमत्कार एक

आनन्दमय मंदिर में, पास में एक लड़की भी बैठी थी।" जिस रात में मोहिनी बाबू ने देवी का सपना देखा था, उसी रात में अनिल मिस्त्रि लेन् में श्री उमेशचन्द्र बसु महाशय ने नामजप करते समय देखा कि मनोरमा देवी एक सुन्दर कपड़ा पहनकर एक कन्या के साथ हँसती हुई खड़ी हैं। उसी रात में फरीदपुर में देवी की भ्रातृवधू श्री कुमुदिनी दत्त ने सपना देखा, लाल किनारी वाली साड़ी पहनकर मनोरमा देवी एक लड़की को गोद में लेकर उनके घर में प्रवेश कर रही हैं। कुमुदिनी देवी खुश होकर बोली, "और सब बच्चे कहाँ हैं ?" देवी ने कोई उत्तर न देकर घर में प्रवेश किया। ये लोग देवी की अस्वस्थता की खबर नहीं जानते थे। उक्त घटनाओं से पता चलता है कि, अध्यात्म शक्ति में शक्तिमान व्यक्ति मृत्यु के पूर्व प्रियजनों को इस प्रकार दर्शन दे सकते हैं।

देवी देहत्याग के बाद भी संतानों को दर्शन देती थीं। ज्येष्ठ पुत्र सत्यरंजन एवं ज्येष्ठा कन्या प्रेमलता अपनी जननी को प्रायः सपने में देखते थे। साढ़े तीन साल की द्वितीया कन्या विन्ध्यवासिनी प्रायः माँ को देखती थी। लगता है, इस कन्या के प्रति देवी का विशेष आकर्षण था। देवी प्रायः सूक्ष्म शरीर में गुरुजी का दर्शन करने आती थी। एकदिन मुक्तकेशी देवी के प्रश्न के उत्तर में गोसाँईजी ने कहा– "क्या उज्ज्वल रूप, क्या अपूर्व मूर्ति धारण की है। प्रायः यहाँ आती है, क्या अद्भुत निष्ठा, अब वह स्थूल–देह में नहीं है। अब मेरे कमरे में प्रवेश कर सकती है, लेकिन अब भी वह निषेध मानती है। उस बरामदे में उस दरवाजे के पास बैठी रहती है। वहाँ से प्रणाम करती है, क्या निष्ठा!"

गोस्वामी प्रभुजी के निर्देश से देवी के श्राद्ध के दिन कीर्तनीया श्री मुकुन्दलाल घोष आए थे कीर्तन करने के लिए। अनेक शिष्य–शिष्या आए थे कीर्तन सुनने के लिए। मनोरंजन बाबू विन्ध्यवासिनी को गोद में लेकर दरवाजे के पास बैठे थे। सामने गुरुजी का आसन था। कीर्तन के समय अचानक विन्ध्यवासिनी पिता की गोद से दरवाजे की ओर हाथ बढ़ाकर हँस रही थी। लग रहा था वह किसी के पास जाने के लिए हाथ बढ़ा रही है। इस बारे में पूछने पर विन्ध्यवासिनी बोली, "माँ आई थी।" उसके पास जाने के लिए वह मचल रही थी। उस दिन कीर्तन स्थल में अनेक लोगों ने देवी का दर्शन किया था।

मनोरमा देवी की छोटी लड़की के लालन–पालन का भार उनकी गुरु बहन सरला देवी ने लिया था। सरला देवी संपर्क में मनोरंजन बाबू की भतीजी थी। एकदिन सरला देवी मच्छरदानी के भीतर कन्या को सुला रही थी। अचानक मच्छरदानी के भीतर एक ज्योतिर्मय देह को प्रवेश करते देखकर वे काँपने लगी। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि वह स्वयं मनोरमा देवी थी। उपरोक्त घटनाओं से पता चलता है कि मनोरमा देवी सूक्ष्मदेह में प्रियजनों के पास आती थीं।

मनोरमा देवी की परलौकिक क्रिया किस प्रणाली में होगी, यह गोस्वामी प्रभुजी से पूछने पर प्रभुजी ने कहा, "श्राद्ध संपूर्ण हिन्दू मतानुसार होगा।" मनोरंजन बाबू ने गुरुजी से पूछा, "देवी की आत्मा के कल्याण के लिए उनको क्या करना चाहिए ?" प्रभुजी ने उत्तर दिया, "उनकी आत्मा का कल्याण आप लोगों को नहीं करना पड़ेगा, वह स्वयं कर गई है।" सतीशबाबू के एक प्रश्न के उत्तर में गोसाँईजी बोले, "ऐसा करोड़ में एक होता है, एक साथ दो नहीं आते" जोर के साथ उन्होंने फिर कहा, "पूरी पृथ्वी ढूँढ़कर कोई और एक ले आओ, देखें!"

मनोरंजन बाबू गुरुजी से बोले, "देवी उनके संसार में साधन–भजन या समाधि में नहीं बैठ सकी।" यह सुनकर गुरुजी बोले, "आप लोग उनको नहीं पहचाने। बैठना, न बैठना उनके लिए समान था। मनोरमा संपूर्ण अनासक्त होकर संसार करती थी। उनकी कोई वासना नहीं थी।"

हजारीबाग के भक्तवर पंडित अक्षय भट्ट ने कहा, "मनोरमा श्रीमती के चरण में गई है। वह श्रीधाम में श्रीमती की नित्यलीला की सहचरी बनी है। ब्रजगोपी अंश में उनका जन्म है। वह पुनः ब्रज में लौट गई है। प्रभु गौरांग की कृपा से उनके श्राद्ध के दिन देवता भी आएँगे।" यह सुनकर गोसाँईजी बोले, "यह सब सही है।"

देवी के श्राद्ध में खर्च के बारे में मनोरंजन बाबू ने कहा, "लोग कहते हैं, 'भूत के बाप का श्राद्ध' अर्थात् उस श्राद्ध में कौन, कहाँ से क्या लाता है, कोई नहीं जानता। दृष्टांत अच्छा या बुरा पता नहीं, लेकिन मनोरमा देवी के श्राद्ध में कहाँ से क्या लाया गया ? किसने पैसा दिया ? मैं कुछ नहीं जानता। 'डॉन' पत्रिका के संपादक श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय गुरुजी से बोले कि अच्छी तरह भोजन कराना उनकी इच्छा है। गुरुजी ने उनकी इच्छा का अनुमोदन किया। शायद अधिकांश खर्च सतीशबाबू ने वहन किया था। योगजीवन ने कुछ पैसा दिया था, और कुछ मैं नहीं जानता।"

गोस्वामी प्रभुजी ने इस श्राद्ध में सक्रिय भाग लिया था। उनके निर्देश से चन्द्रकोणा से सर्वोत्कृष्ट घी संगृहीत किया गया था। इस कार्य में गोसाँईजी का उत्साह देखकर मुक्तकेशी देवी बोलीं, "जीवन में कभी किसी सांसारिक कार्य में उनका इस प्रकार आग्रह नहीं देखा। सचमुच उन्होंने दिनभर सब कार्यों पर नजर रखी थी, ताकि किसी प्रकार विश्रृंखला न हो। उसी प्रकार व्यवस्था की थी।"

देवी सूक्ष्म शरीर में संतानों के पास आतीं थी। एकबार कनिष्ठ पुत्र देवरंजन अत्यन्त अस्वस्थ हो गया था। बचने की कोई आशा नहीं थी। मनोरंजन बाबू उस समय अन्य शहर में कार्य के लिए गए थे। खबर मिलते ही वे फरीदपुर के घर में लौटे एवं पुत्र को देखकर निराश हुए। उस समय एकदिन चौथे लड़के योगरंजन

ने पिता से कहा कि उसने आम के पेड़ के नीचे माँ को देखा। एकबार नहीं, जब भी वह आम के पेड़ के नीचे गया, माँ को देखा। मनोरंजन बाबू ने कौतुहल वश पुत्र से कहा कि माँ से पूछना, भाई को कैसे रोगमुक्त किया जाएगा। पिता की बात सुनकर योगरंजन ने आम के पेड़ के नीचे जाकर माँ से पूछा। मनोरमा देवी ने पुत्र को उपाय बता दिया। पुत्र बोला, "माँ ने कहा, घर के पास जो नया कच्चा रास्ता है, उस रास्ते में टुलु (देवरंजन) को गोद में लेकर सुबह–शाम भ्रमण करने से वह रोगमुक्त होगा।" मनोरंजन बाबू ने इस बात पर विश्वास नहीं करते हुए भी देखा कि इस प्रकार भ्रमण से तीन दिन में बुखार छूट गया एवं एक सप्ताह में वह स्वस्थ हो गया। उस समय शिशुकन्या 14–15 माह की थी। वह स्वस्थ सबल थी। उसके बारे में किसी को कोई आशंका नहीं थी। शिशु के पास देवी के आने–जाने से लोग सोचते थे कि शायद देवी शिशु कन्या को अपने पास ले जाना चाहती है। शिशु का अन्नप्राशन करने या नामकरण की बात करने से गोस्वामी प्रभुजी ने कहा, "अभी जरूरत नहीं है।" कुछ दिन बाद सामान्य सर्दी से शिशु ने देहत्याग किया। सर्व कनिष्ठ संतान के चले जाने से मनोरंजन बाबू अत्यन्त शोकाकुल हो गए थे, लेकिन गुरुजी के शक्ति के प्रभाव से वह शोक अधिक समय तक स्थायी नहीं रहा। इस बारे में मनोरंजन बाबू ने लिखा हैं, "इस अधम के जीवन में ठाकुर ने ऐसी अनेक कृपा दिखाई है, नहीं तो मेरा क्या होता, पता नहीं।"

देवी के विषय पर्यालोचना से उनके पति ने जो सत्य उद्‌घाटन किए थे एवं स्वयं जो कुछ अनुभव किए थे इसके बारे में उन्होंने कहा है :–

1. धर्म सत्य वस्तु है यह कल्पना नहीं। साधन–पथ मे चलने से ही सत्य प्रकाशित होता है। अज्ञात, अचिंतित तत्व अपने आप प्रकाशित होता है।

2. समाधि, मूर्छित होने की अवस्था या हठयोग का फल नहीं है।

3. नामानन्द से मनुष्य के नख से केश तक परिपूर्ण होते हैं। हृदय मन परिपूर्ण होता है। उस आनन्द की तुलना नहीं होती। विशुद्ध आनन्द से सब इन्द्रियां स्तब्ध हो जाती हैं, सब प्रवृत्ति एकमुखी होती हैं। शरीर–मन एक ही स्थान में आत्मसमर्पण करता है।

4. मनोरमा देवी समाधि का नाम भी नहीं जानती थी। साधक की इस प्रकार अवस्था हो सकती है, यह भी उनको पता नहीं था। पहले दिन छह घंटा समाधि के बाद भी उनको पता नहीं चला था कि उनको क्या हुआ था ? केवल इतना ही कहतीं, "'नाम' उनको आनन्द–सागर में डुबा रखता है।" इस अवस्था प्राप्ति के एक साल बाद उन्होंने कहा था कि उनकी काम–प्रवृत्ति नष्ट हो गई है।

गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था, **"जो सत्य है, वह नित्य है। बीज से पौधा**

निकलने के बाद वह बीज में प्रवेश नहीं कर सकता। उसी प्रकार सत्य वस्तु एकबार प्रकाशित होने से और विनष्ट नहीं होती, क्योंकि जो सत्य है, वही नित्य है।" गोस्वामी प्रभुजी की यह उक्ति मनोरमा देवी के जीवन में सत्य सिद्ध हुई थी। निम्नोक्त दृष्टांत से यह स्पष्ट होता है –

दीक्षा प्राप्ति के दिन से नाम–जप में बैठने से या भगवत् गुण कीर्तन सुनने से देवी समाधिस्थ होती थीं। अपनी इच्छा से वह समाधि को बंद नहीं कर सकती थी। कुछ दिन बाद उनकी समाधि इच्छाधीन हो गई। उस समय उपासना या कीर्तन में देवी अपने आपको संभल सकती थीं। समाधि के समय उनकी आँखों से अश्रुधारा बहती थी। नारायणगंज में 32 घंटा समाधि में भगवान का स्पर्श एवं हृदय में उनका प्रकाश प्रत्यक्ष हुआ। इसलिए देवी बोलीं, "आज लगा कि भगवान ने मुझे सीने से लगा रखा है।" गोस्वामी प्रभुजी ने यह सुनकर कहा, **"यह आनन्द (नामानन्द) चूस–चूसकर आत्मा निष्पाप होगी, उस समय 'सत्यम ज्ञानमंनन्त ब्रह्म' अपने आप प्राण में प्रकाशित होगा।"** उनके काम, क्रोधादि सब रिपु नष्ट हो गए थे। किसी के प्रति विद्वेष भाव है या नहीं, पूछने पर देवी ने अपनी पति को संकोच के साथ धीरे–धीरे कहा, "मुझे तो पता नहीं चलता"। उनके मन में शुष्कता आती है या नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में भी देवी संकोच के साथ कहतीं, "पता नहीं चलता"। देवी के बारे में उनके पति ने कहा है "देवी के प्रति लोग श्रद्धा भक्ति रखते थे, इसलिए देवी संकोच करतीं थी। इससे पता चलता है कि देवी अपने आपको विशेष कुछ नहीं समझती थीं।" एकदिन गोस्वामी प्रभुजी राखालचन्द्र राय महाशय को बोले, "पहाड़, पर्वत पर भी ऐसे बहुत कम साधु हैं जो प्रशंसा करने से थोड़ा आनन्दित नहीं होते। लेकिन इस लड़की की (मनोरमा की) प्रशंसा करने से वह मानो लज्जा से पानी में पचास हाथ नीचे डूब जाती है।"

गया में, समाधि अवस्था में प्रथम आत्मदर्शन के दिन पति के प्रश्न के उत्तर में देवी बोली, "आज मैंने अपने आपको (आत्मा को) शरीर से संपूर्ण स्वतंत्र देखा।" उस दिन से देहत्याग करने तक वह उसी अवस्था में थीं।

देवी जीवन के अंतिम एक साल बैद्यनाथ में थीं, लेकिन एक दिन भी मंदिर में दर्शन के लिए नहीं गई। मनोरंजन बाबू ने इसका कारण जानना चाहा। देवी बोलीं, "आकर्षण नहीं होता।" ऐसा अकृत्रिम सहज उक्ति अत्यन्त दुर्लभ है! इस बारे में मनोरंजन बाबू द्वारा गोस्वामी प्रभुजी से पूछने पर उन्होंने कहा, "मनोरमा की पूर्ण ब्रह्मज्ञान अवस्था है। इस अवस्था में गुरुदर्शन, आत्मदर्शन, एवं ब्रह्मदर्शन से भिन्न अन्य कोई दर्शन के लिए आकांक्षा नहीं होती।" आश्चर्य की बात है, समाधि अवस्था में देवी के सामने ढोलक बजाने से या शोर करने से भी देवी की समाधि भंग नहीं होती। लेकिन उनके कान में नाम बोलने के साथ–साथ

उनकी बाह्य चेतना लौटती थी। जिस 'नाम' की शक्ति से देवी को वह उच्चावस्था प्राप्त हुई थी, उसके बारे में मनोरंजन बाबू ने कहा, "वास्तव में भगवान मनुष्य को संपूर्ण रूप में ग्रहण करते हैं, ब्रह्ममयी माँ संतान की धूल साफकर उनको निर्मल करके गोद में लेती हैं। यह मनोरमा को देखकर पता चला था। धर्म किसी पहलवान के व्यायाम क्रिया की तरह आत्म–अनुशीलन का फल नहीं है। भगवान नाम–ब्रह्म रूप में भक्त के हृदय में विहार करते हैं। 'नाम' के प्रभाव से सब दुष्कृति दूर होकर सुकृति उदित होती है, देहात्मबुद्धि नष्ट हो जाती है, मूर्ख ज्ञानी होता है। ये सब हमने मनोरमा के भीतर प्रत्यक्ष किया।" समाधि के समय की अनुभूति के बारे में देवी बोलीं, "उस समय ऐसा लगता है मानो अमृत सागर में डुबी हुई हूँ। ऐसा सुख संसार में नहीं है। कान में कुछ सुनाई नहीं देता, आँखों से कुछ दिखाई नहीं देता, जिह्वा से कुछ आस्वादन नहीं किया जा सकता, मन में कोई कल्पना नहीं रहती, फिर भी आनन्द में प्राण इस प्रकार डूब जाता है कि कहीं रिक्त नहीं रहता।" मनोरमा देवी जब ध्यान में बैठती थीं, एक मिनट नीचे की ओर देखकर हाथ जोड़कर प्रणाम करतीं। उसके बाद दोनों हाथ गोद के ऊपर गिर जाते। उस समय देवी प्रगाढ़ समाधि समुद्र में डूब जातीं। बहिरन्द्रियों से उनका कोई संपर्क नहीं रहता। उस समय उनके सामने चिल्लाने से या उनको जोर से धक्का देने से भी वह कुछ भी अनुभव नहीं कर सकती थीं। इस विषय में उनकी किसी चेष्टा की जरूरत नहीं थी। ऐसी समाधि अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें कोई संदेह नहीं है। ध्यान के समय देवी को आत्मदर्शन होता था। इस बारे में उन्होंने बताया, "मैं अपने आपको शरीर से स्वतंत्र रूप में देख सकती हूँ।"

देवी के संसार में सर्वदा दरिद्रता थी एवं क्लेश विद्यमान था। निश्चिन्त होकर 'नाम' करने हेतू भगवान के पास प्रार्थना करने के लिए मनोरंजन बाबू ने देवी से अनुरोध किया। देवी बोली, **"उस समय (समाधि–अवस्था) मुझे कोई अभाव बोध नहीं रहता, कोई प्रार्थना की आवश्यकता अनुभव नहीं करती, क्योंकि हमारे नहीं बोलने से भी, हमारे लिए क्या जरूरी है, परमेश्वर सब देख रहे हैं।"**

पति से पास देवी ने एक ही प्रार्थना की थी। वह प्रार्थना इस प्रकार थी कि कहीं बाहर जाने पर प्रतिदिन देवी को एक पोस्टकार्ड में "मैं ठीक हूँ" लिखना। मनोरंजन बाबू भी देवी से प्रतिज्ञा कराए थे कि देवी को भी प्रतिदिन एक पत्र लिखना पड़ेगा। जीवनभर दोनों ने प्रतिज्ञा निभाई थी।

कई संगीत देवी के प्रिय थे, वह अकेले गाती थीं –

तुम्हारे शुभ मिलन से प्राण जुड़ायेंगे हृदयस्वामी ।

कब बैठूंगी एकांत में प्राणकांत, तुम्हारे साथ मैं ।।
मधुर वृन्दावन में गोपीगण के साथ ।
तुम्हारी नित्यपद सेवा से प्रभु मैं कृतार्थ होना चाहती ।। आदि

संसार के बारे में देवी का अभिमत इस प्रकार था– "घर अच्छा होना चाहिए। शैय्या आदि का प्रश्न नहीं है। अन्य उपकरण जैसा भी हो, चावल अच्छा होना चाहिए। ब्राह्मसमाज में या दूसरों के साथ भाग में रहना नहीं पसन्द करती थी। घर में अतिथि रखती थीं, लेकिन भागीदार नहीं रखना चाहती थीं। अर्थात घर जितना भी छोटा हो, उनका पूरा अधिकार होना चाहिए। पूर्व बंगाल की एक कहावत वह मानती थी – "दूसरों के घर में भोजन करना अच्छा है, लेकिन दूसरे के घर में रहना अच्छा नहीं।" अर्थात स्वाधीन रूप से रहना चाहिए।

देवी उस समय कोलकाता सुकिया स्ट्रीट में रहती थीं। एकबार एकादशी के दिन अतिथि–अभ्यागतों को लेकर अनेक लोग थे। उनके के पास पैसा नहीं था जिससे फल या पूरी की व्यवस्था कर सके। उस समय देवी बोली "घर में केवल बासी भात है, आप लोगों की यदि इच्छा हो तो थोड़ा–बहुत वही खा सकते हैं।" आश्चर्य की बात है उपवास व्रतीगण ने वही ग्रहण किया। गोस्वामी प्रभुजी यह संवाद सुनकर हँसे थे। सब लोग देवी के प्रति किस प्रकार श्रद्धाभक्ति रखते थे, उक्त घटना से इसका प्रमाण मिलता है। इसमें कुंजबिहारी गुहठाकुरता भी थे।

एकदिन जामुन खरीदा गया था। सबको जामुन दिया गया। उस समय कुंजबाबू वहाँ नहीं थे। रात में कुंजबाबू के लौटने पर देवी उनके हाथ में दो जामुन देकर बोली, "तुम्हारे अंश के दो जामुन हैं।" कुंजबाबू ने कहा, "क्या यह भी रखना जरूरी था ?" देवी के घर में अतिथि–अभ्यागत अनेक आते रहते थे। प्रत्येक के प्रति देवी की समान दृष्टि थी। एकबार कुंजबाबू अन्य घर में रहते थे। देवी ने उनको बुलाया एवं कहा कि तुम कमजोर लग रहे हो, इसलिए कुछ दिन यहाँ आकर दूध पीना पड़ेगा। कुंजबाबू बोले, "आपके शिशुओं को दूध नहीं मिलता और मुझे दूध पीना होगा ?" मनोरमा बोली, "वे लोग अभी स्वस्थ हैं, आप का शरीर अस्वस्थ्य है, इसलिए आपको पीना पड़ेगा।" श्री सद्गुरु कृपा से देवी ने ऐसी साधन शक्ति प्राप्त की जिसकी कल्पना करना साधारण मनुष्य के लिए असंभव है। पारिवारिक जीवन में नारी प्रकृति के सभी सद्गुण यथा दया, माया, स्नेह, प्रीति देवी के भीतर परिपूर्ण थे। वह निष्ठा की अपूर्व प्रतिमूर्ति थीं।

श्री वेणीमाधव, देवी की संतान स्थानीय थीं। इस बारे में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था कि पूर्वजन्म में देवी के साथ वेणीमाधव का माता–पुत्र का संबंध था। वेणीमाधव ने ब्राह्मधर्म ग्रहण किया था, इसलिए माता–पिता ने उनको घर से

निकाल दिया था। इससे वेणीमाधव को अभिमान हुआ एवं उन्होंने उन लोगों को त्याग दिया। यद्यपि देवी वेणीमाधव को संतानवत् स्नेह करती थीं, तथापि माता–पिता, भाई–बहन के प्रति उपेक्षा का भाव देवी सहन नहीं कर सकती थीं। माता–पिता की सेवा के बिना सब सेवा या साधना व्यर्थ हो जाती है, देवी ने उनको बार–बार समझाया एवं अंत में गुरुजी को पूछकर अपना कर्तव्य निर्णय करने का उपदेश दिया। देवी ने उनको एक पत्र में लिखा, "तुम्हारे बारे में गुरुजी से पूछने को कहा था, क्योंकि तुम हमारे लिए इतना करते हो लेकिन गर्भधारिणी माँ के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हो। यह सही है या गलत, गोसाँईजी से पूछना, वे जो कहेंगे, वही सही है। तुम्हारी इच्छा न होने से नहीं पूछना।" उक्त लेख से पता चलता है कि श्री वेणीमाधव को कल्याण की पथ पर ले आने के लिए देवी की कितनी प्रचेष्टा थी।

देवी की बात को लिखकर समाप्त नहीं किया जा सकता। उनके बारे में श्री मनोरंजन गुहठाकुरता ने कहा है– **"इस बंगला देश के एक क्षुद्र पल्ली में एक शुद्ध चरित्र धनवान गृहस्थ घर में एक बालिका ने जन्म ग्रहण किया था। उस बालिका ने पुस्तक से कोई विद्यालाभ नहीं किया। किसी से योग–तत्व, आत्मदर्शन, ब्रह्मदर्शन आदि के बारे में नहीं सुना, किसी प्रकार अनुशीलन या चर्चा भी नहीं की। केवल सद्‌गुरु कृपा से दीक्षा प्राप्त करके किस प्रकार आध्यात्मिक उन्नति की एवं किस प्रकार सांसारिक धर्म का पालन किया है, मनोरमा के जीवन में वही चित्रित है।"** इस सामान्य उक्ति में देवी का जीवन वेद निहित है। ऐसी अभूतपूर्व महान नारी के लिए भारतवर्ष जगत् में अत्यन्त गौरवान्वित है। पृथ्वी में सर्वत्र जहाँ भोग–विलास एवं स्वार्थ को प्रधानता दी जाती है, वहाँ भारतवर्ष में इस प्रकार निःस्वार्थ एवं त्याग की भावना नारी जाति के लिए श्रेष्ठ सम्पदा मानी जाती है।

****

श्रीमती यमुना माईजी

श्रीमती यमुना माईजी प्रभुपाद श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की कृपा से साधना के उच्च शिखर पर पहुँच गई थीं। उनके पिता ब्रजमोहन गुहठाकुरता ढाका जिला के विक्रमपुर परगना में पाइकपाड़ा गाँव में रहते थे। उनके आदि पुंरुष वसंत राय यशोहर के प्रसिद्ध राजा थे। गुहठाकुरता महाशय ढाका जार्ज कोर्ट के मुंशी थे। ढाका शहर में किराए के एक मकान में रहते थे। उसी घर में सन् 1282 (1876 ई०) के 21 माघ गुरुवार माघी शुक्ला नवमी तिथि में यमुना माईजी ने जन्मग्रहण किया। वह माता–पिता की सर्व कनिष्ठ संतान थी। उनके पहले दो बहन एवं दो भाई ने जन्मग्रहण किया था। कन्या का नाम ब्रजमोहन ने सुरंगिनी रखा।

ब्रजमोहन गुह की इस कन्या ने परवर्तीकाल में मातृजाति के उज्ज्वल मणिस्वरूप सब दिशाए आलोकित की थीं। सिद्धावस्था में उनमें उन्मादिनी एवं आनन्दमयी मातृशक्ति का प्रकाश देखकर गोस्वामी प्रभुजी की कन्या शांतिसुधा देवी एवं शिष्य राय साहब विधुभूषण मजूमदार महाशय उनको 'यमुना' कहते थे। इसलिए वे यमुना माईजी नाम से परिचित हुईं। उनके बाल्यकाल के बारे में विशेष परिचय नहीं मिला। उस समय के रीति अनुसार वे घर में ही बड़ी हुई थी। उस समय लड़कियों को संसारिक जीवन के प्रयोजनीय जो शिक्षा दी जाती थी, वही शिक्षा उन्होंने भी प्राप्त की थी। यथासमय उनको संसारिक जीवन में प्रवेश करना पड़ा। उनका विवाह ढाका जिला के पश्चिमादिग्राम निवासी प्यारीमोहन बसु ठाकुर के साथ हुआ था। बसु ठाकुर महाशय गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य थे। वे ढाका जार्ज कोर्ट के मुंशी थे। गुरुजी के सान्निध्य लाभ की इच्छा से वे गेण्डारिया आश्रम के पास दक्षिण दिशा में घर बनाकर अपनी पत्नी के साथ वास करते रहे एवं यथारीति साधन–भजन करते रहे। उनके एकमात्र पुत्र पवित्रमोहन बसु ने शांतिसुधा देवी से दीक्षा प्राप्त की थी। पवित्रमोहन मधुर कीर्तन गाता था। कीर्तन के समय जननी आत्मविस्मृत होकर पुत्र को आलिंगन करती थी। वे पुत्र को 'टोना' कहती थीं।

एक शुभ तिथि में गोस्वामी प्रभुजी के पास यमुना माई की दीक्षा हुई थी। सिद्धिलाभ करने के बाद उनको कठिन समस्या का सामना करना पड़ा था। उनको घर की वधू बनाकर रखने के लिए पति, पुत्र उनको यंत्रणा देते थे। उनके ऊपर

अनेक अत्याचार हुए। एकदिन बहुत अत्याचार हुआ। उसदिन पिता एवं पुत्र ने उन्हें एक घर में बन्द करके रख दिया। उस अवस्था में गोसाँईजी की कृपा से रात में अवरोध मुक्त होकर वे नारायणगंज भाग गईं। अतः जीवन के पहली अवस्था में ही उनको क्लेश भोगना पड़ा था। यद्यपि वे भी गोस्वामी प्रभुजी की शिष्या थी फिर भी घनिष्ट कुटुम्ब–परिजन उनके विरुद्ध थे। उनका अपराध यह था कि एक गृहवधू होकर स्वतंत्र रूप से वह भ्रमण करती थीं। नारी होकर पुरुषों के साथ बात करने में लज्जाबोध नहीं करती थीं। उनके गुरुजन कहते थे की नारी को दीक्षा प्रदान करने का अधिकार नहीं है। यह गोसाँईजी की उक्ति है। लेकिन यमुनाज़ी गोस्वामी प्रभुजी की शिष्या होकर भी क्यों दीक्षा दे रही है ?" इन सब कारणों से उनके ऊपर काफी अत्याचार हुआ था। जिस दिन वे अपने घर में अवरुद्ध की गई थी, उस दिन मुक्त होने का कोई उपाय न देखकर गहन रात्रि में घर की ऊँची दीवार पार करके भागकर उन्हें आत्मरक्षा करनी पड़ी थी। ऐसी स्थूलकाय महिला के लिए ऊँची दीवार पार करना असंभव था। फिर भी चेष्टा करते समय उनको अनुभव हुआ था कि गोसाँईजी गोद में लेकर उनको उस पार उतार दिए। गंभीर रात में निकलकर वह आठ मील दूर नारायणगंज पहुँची रात चार बजे। गोसाँईजी की इस तरह कृपा प्राप्त कर वे भावमग्न होकर आनन्द से गाने लगीं –

"चाई आनन्द, चाई प्रेम, चाई हरिनाम निबि के।
निताई हरिनामेर फेरिवाला, निति निति जाय डेके।"

शेष रात में मधुर गीत सुनकर लोग दौड़ते हुए आएं एवं माँ–माँ ध्वनि के साथ उनके चरणों में गिरने लगे। कितने शिक्षित एवं पदस्थ लोग उनका आश्रय पाकर धन्य हो गए। उनकी इस प्रकार मान–मर्यादा देखकर पति एवं पुत्र ने और अत्याचार करने का साहस नहीं किया। उनके अध्यात्म जीवन का संग पाने के लिए लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। इसलिए वे नवद्वीप चली आईं।

यमुनाजी के साथ ऊपर वर्णित अत्याचार सचमुच ह्रदय विदारक है। गोस्वामीजी ने स्त्री गुरु के सम्बन्ध में कहा है– **"वे सिद्ध हों या महासिद्ध, ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर लेने पर भी नारी देह, कभी आचार्य नहीं हो सकती। शास्त्र की व्यवस्था और अनुशासन को जो लोग नहीं मानते, परवाह नहीं करते, वे जो चाहे कर सकते हैं। उनकी बात ही क्या है ?"**

(श्रीश्री सद्‌गुरु संग तृतीय खण्ड पृ० 302)

गोस्वामी प्रभु के उपरोक्त वाणी को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस समय गेण्डारिया आश्रम में गोस्वामीजी की कन्या शांतिसुधा देवी भी दीक्षा देती थीं। पर श्रीश्री सद्‌गुरु संग तृतीय खण्ड पृष्ठ 303 में गोस्वामीजी से सद्‌गुरु दीक्षा के संबंध

में प्रश्न करने पर उन्होंने कहा था– "सद्‌गुरु से दीक्षा लेना बिल्कुल स्वतंत्र प्रकार है। वहाँ किसी समय–असमय और योग्य–अयोग्य का विचार नहीं है। वह तो उनकी कृपा पर निर्भर है। यह दीक्षा चाहे जिस अवस्था में, चाहे जहाँ, एकमात्र भगवान की कृपा से ही हुआ करती है। भगवान ही सद्‌गुरु हैं।"

"उनके पदाश्रित भगवज्जन महापुरुष ही सद्‌गुरु है। सद्‌गुरु शिष्य नहीं बनाते वे तो गुरु बनाते हैं। वे शिष्य के भीतर अपने इष्टदेव को प्रतिष्ठित करके उन्हीं की सेवा पूजा करते हैं।" गोस्वामीजी कथित वाणी की मीमांसा करते हुए सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द सरस्वतीजी ने कहा है :–

शास्त्रों में उल्लेख है– "सिद्ध शरीर होने पर स्त्री–पुरुष के विचार का प्रयोजन नहीं है। स्त्री शरीर के सिद्ध हो जाने पर उसमें लिंग भेद नहीं रह जाता। शरीर सिद्ध हो जाने पर वे ब्रह्म में स्थिति लाभ कर लेते हैं। वे लिंग ज्ञान से परे हो जाते हैं। इसलिए वे पुरुष के निकट पुरुष तथा स्त्री के निकट स्त्री ही प्रतीत होते हैं। उनका लिंग–ज्ञान तिरोहित हो जाने पर स्त्री या पुरुष कहकर उनकी विवेचना नहीं होती है।"

साधारण गुरु और सद्‌गुरु में बहुत अन्तर है। सद्‌गुरु जो भी दीक्षा देते है वह भगवत् निर्देश से होती हैं श्रीमत् स्वामी असीमानन्द जी सरस्वती ने स्त्री गुरु के सम्बन्ध में कहा है– "स्त्री गुरु के सम्बन्ध में विशेष प्रश्न करने पर वे यही शास्त्रोक्त विधि कहते हैं। यह निश्चित है कि इस प्रकार के प्रश्न का सुयोग नहीं हुआ, इसलिए उस समय विशद् रूप से इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ नहीं कहा।"

(संदर्भ ग्रन्थ – अजपा साधन तत्व)

गोस्वामी प्रभुजी के साधन की विशेषता यह है कि उनके प्रत्यक्ष आदेश के बिना शक्ति संचार नहीं होता। गोस्वामीजी की शिष्याओं में श्री शांतिसुधादेवी, यमुनाजी, माता सरोजबाला देवी आदि ने गोस्वामीजी के आदेश से प्रार्थीगण को दीक्षा प्रदान कीं थीं।

ढाका जिला के आमीरवाद ग्राम निवासी यमुनाजी के शिष्य रेवतीमोहन भद्र महाशय ने लिखा है, "हमारी परमाराध्या गुरु माँ श्रीश्री यमुना माईजी ने भक्तियोग में सिद्धिलाभ करके अनेक धनी–दरिद्र, शिक्षित–अशिक्षित, हिन्दू–मुसलमान नर नारी को उनके इष्टमंत्र से दीक्षित किया हैं। शिष्यगण में अनेक बी० ए०, एम० ए०, वकील, मोक्तार एवं स्कूल–कॉलेज के छात्र शामिल थे। वे छोटे–बड़े सबको समान रूप में देखती थीं। उनके मातृस्नेह से कोई वंचित नहीं होता था। जिनके

भाग्य में एकबार उनका संगलाभ हुआ है एवं जो लोग भगवत्प्रेम पाने के लिए व्याकुल होकर उनके पास गए हैं, वे लोग नाम एवं प्रेम की ज्वलन्त मूर्ति दर्शन करके एवं उनसे प्रेम, प्रीति, स्नेह आदि का आस्वादन पाकर मुग्ध हो गए हैं। वे जीवों के दुःख से दुःखी होकर विभिन्न देश में जाकर हरिनाम देती थी। वे हरिनाम में इस प्रकार विभोर होती कि आरती–कीर्तन के समय प्रायः उनका बाह्यज्ञान नहीं रहता था, एवं 'हरिनाम' करते–करते उनकी चेतना लौटती। उन्होंने योगबल से अनेक लोगों को रोगमुक्त किया है एवं स्पर्श द्वारा शक्ति का संचार किया है। कभी–कभी वे ऐसी भविष्यवाणी करतीं थी कि लोग इसकी सत्यता उपलब्धि करके विस्मित हो जाते थे।"

दीक्षा प्रदान के बारे में भी यमुनाजी की महिमा का अंत नहीं था। एकबार यशोहर जिला के गादगछिया गाँव में उनके शिष्य पंचानन कुंडु के घर वे गई थीं। उस समय उनकी पत्नी गर्भवती थी, लेकिन समय हो जाने के कारण उनकी दीक्षा हो गई। उस समय यमुनाजी बोलीं थी, गर्भस्थ संतान को भी 'नाम' मिल गया। उन्होंने यह भी कहा कि, पुत्र संतान होगा एवं उनका नाम गोपाल रखने को कहा। पंचानन कुंडु का और एक पुत्र था उसका नाम सुरेन था। एकबार पंचानन कुंडु वृन्दावन से बाल–गोपाल विग्रह लाए थे। उस विग्रह की पूजा को लेकर दोनों पुत्रों में झगड़ा शुरू हुआ। पिता बोले, एक–एक दिन करके दोनों पूजा करेंगे। उसी नियम से दोनों भाई पूजा करते थे। एकदिन गोपाल दरवाजा बंद करके पूजा कर रहा था। बहुत देर तक बुलाने पर भी उसने दरवाजा नहीं खोला। उसकी माँ एवं बहन ने दरवाजा तोड़कर देखा कि गोपाल विग्रह के सामने अचेत होकर पड़ा है। बाद में चेतना लौटने पर वह केवल रो रहा था। सब लोग चिंतित हो गए। पिता ने पुत्र को गोद में लेकर कारण जानना चाहा। पुत्र बोला, "लाल किनारी वाली साड़ी पहनकर हाथ में करंग लेकर यमुनाजी उसके पास आकर बोलीं, तुम पहले दीक्षा लो, फिर पूजा करो" – यह कहकर उन्होंने गोपाल को दीक्षा दिया। गोपाल को कौन सा 'नाम' मिला, पिता द्वारा यह जानने का आग्रह करने पर गोपाल ने मंत्र का पहला अक्षर बोला तो पिता ने आगे बोलने के लिए उसको निषेध किया। वे समझ गए थे कि गोपाल को मातृगर्भ में जो नाम मिला है, वही नाम मिला था। गोपाल का सौभाग्य देखकर सब लोग उसको धन्य–धन्य करने लगे। आश्रितों के प्रति यमुनाजी की कृपा उक्त घटना से स्पष्ट होता है।

नवद्वीप धाम में जाने के कुछ दिन पूर्व माँ पर बड़ा अत्याचार हुआ था। इसलिए माँ कामताल गाँव में नरेन्द्रलाल सरकार के घर में चली गईं। वहाँ से नाडु गोपाल ब्रह्मचारी को लिखे पत्र में उनकी दुःख की कहानी का पता चलता है। नाडु गोपाल उस समय कोलकाता में बी० ए० पढ़ता था। उस समय उनका नाम था

श्रीदामचन्द्र दास। यमुनाजी ने लिखा था, "बाबा श्रीदाम बहुत दिनों से तुम्हारा कोई पत्र क्यों नहीं मिला बाबा ? मैं तो तुम्हें दो पत्र भेज चुकी हूँ। इस बार टोना एवं उसके पिता ने पड़ोसियों की बुद्धि से मुझे जिस प्रकार लांछित किया है, यदि कभी साक्षात् हो तो जान सकोगे। यह मेरे एवं तुम लोगों के मंगल के लिए ही हुआ है। नहीं तो मैं भी बन्धन से नहीं निकल सकती। गोसॉईजी को अनेक कार्य कराना है।"

गेण्डारिया में अपने घर के बारे में भी यमुनाजी ने शिष्य नाडुगोपाल ब्रह्मचारी को लिखा था– "बाबा, मेरे स्थान के प्रति तुम सबको दृष्टि देना पड़ेगा। सुन रहे हैं कि वे लोग सब लड़कों को बुलाकर बोल दिये हैं कि घर का आधा हिस्सा तुम लोग देवोत्तर कर लो। ऐसा करने से तुम लोग स्वतंत्र रूप में यहाँ आ सकोगे एवं रह सकोगे, नहीं तो संपूर्ण उनके अधीन में रहना होगा। बाबा, धर्म किसी के अधीन नहीं होता। मैं बोल रही हूँ उस घर के प्रति कण में मेरा खून है। संपूर्ण मेरे हाथ से बना हुआ है। अब टोना उस घर का मालिक हुआ है। वह मकान मेरे नाम से संपूर्ण ऋण में है। अतः मैं लिख रही हूँ, यदि तुम लोग माँ की संतान हो तो एकबार खड़े होकर जहाँ माँ के देह पर अत्याचार हुआ था, उस स्थान का उद्धार करके जगत् को दृष्टांत दिखा दो – तुम सबसे मेरी यही प्रार्थना हैं।"

यमुनाजी ने कहा था कि घर की स्वाधीनता नहीं मिलने से ढाका नहीं जाएँगी। माँ की इच्छानुसार उनके शिष्यों ने उस मकान को आश्रम में परिवर्तित किया था, लेकिन उनके जीवित काल में यह संभव नहीं हुआ था। इसलिए उनको अनेक क्लेश भोगने पड़े थे। जीवन के अंतिम समय में भी वे गेण्डारिया नहीं आ सकीं। मृत्यु के बाद उनकी इच्छानुसार उनकी देह उनके गेण्डारिया के घर में समाहित की गई। अंत में नाडुगोपाल ब्रह्मचारी, रजराणी देवी, ब्रजराणी देवी की आंतरिक प्रचेष्टा से उस घर को आश्रम में रूपांतरित करने के लिए एक दलील बनाया गया। इस प्रकार उनके देहावसान के बाद उनके शिष्यों ने उनकी इच्छा पूर्ण की।

कभी–कभी उनमें विभूति प्रकाशित होती थी। गेण्डारिया की श्रीमती लावण्यप्रभा सरकार ने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया था। यमुनाजी थी लावण्यप्रभा देवी की छोटी मौसी। 1324 सन् (सन् 1917 ई०) की एक घटना– उस दिन था पहला पौष। लावण्यप्रभा देवी ने अपनी छोटी मौसी (यमुना जी) का योगजीवन गोस्वामीजी के मंदिर के बारामदे में द्विभुजा काली मूर्ति रूप में दर्शन किया। उस समय उनके मुँह में पान था। उन्होंने प्यार से लावण्यप्रभा देवी को पान प्रसाद दिया था। उस समय से उन्होंने मौसी का अनेक बार काली रूप में दर्शन किया।

उनके शिष्यगण उन्हें सोने के अंलकार से सुसज्जित करना चाहतें थे।

नवद्वीपधाम में रहते समय उनके गुरुभाई सतीशचन्द्र साहा एवं पंचानन कुंडु की पत्नी ने उनको सोने के गहने दिए। उन्होंने गहने धारण किए। एकदिन गंगा स्नान के समय उन्होंने वे सब अंलकार खोलकर कपड़े में बांधकर गंगा माई को दान कर दिया, उस दिन चूड़मणियोग था। ब्रह्मचारी नाड़ूगोपाल साथ में थे। कुछ लोगों की सहायता से उन्होंने अंलकार निकालने की चेष्टा की, पर नहीं मिले। समाज बाड़ी के पास एक शिष्य के घर में माँ रहतीं थी। माँ ने बाद में कहा, "गंगा माई ने अपने हाथों से ग्रहण किया है, वह नहीं मिलेगा।" उसके बाद फिर उनके दो भक्तों ने सोने के गहनों से उनको सजाया। वह सब अंलकार पहनकर नवद्वीप से ढाका आई। वहाँ सब गहने उन लोगों को लौटा दिए। ढाका सब्जीमहल में रहते समय उनकी गुरुबहनों ने उनको सोने के गहनों से सजाया था। गुरुभाई हरिदास राय महाशय ने उनकी स्वर्गीया पत्नी के गहनों से नया हार एवं सोने का शंख बनवाकर उनको पहनाया था। इस प्रकार अनेक गुरुभाई–बहन एवं शिष्यगण उनको अंलकार से सज्जित करके आनन्द बोध करते थे।

यमुनाजी की शिष्या रजराणी देवी ने उस समय दीक्षा प्राप्त नहीं की थी। पुरी में अचानक जगन्नाथ वल्लभ मठ में दोनों का साक्षात्कार हुआ। यमुनाजी के प्रथम दर्शन में ही रजराणी देवी मुग्ध हो गई थीं। ऐसा लगा कि माँ के साथ बहुत दिनों का परिचय है। यमुनाजी के रूप के बारे में रजराणी देवी बोली, "क्या अपूर्व रूप! आँखों को हटाया नहीं जा सकता। केवल ऐसा लग रहा था, जिनको संग प्राप्ति हुई है, उनका जीवन सार्थक हो गया।" स्नानयात्रा एवं रथयात्रा के बाद रजराणी देवी के ढाका लौटने पर गेण्डारिया आश्रम में यमुनाजी के पास उनकी दीक्षा हुई। यमुनाजी सुमधुर स्वर में गाती थीं, कभी–कभी बीणा बजाकर भी गाती थीं।

मतिलाल दास की पत्नी ब्रजमोहिनी दासी गोस्वामी प्रभुजी की भक्त थीं एवं उनके बारे में विभिन्न ग्रंथ पढ़ती थीं। ब्रजमोहिनी दासी के साथ रजराणी देवी का विशेष परिचय हुआ। यमुनाजी को देखने के लिए ब्रजमोहिनी देवी रोती रहती थीं। एक ब्रजमोहिनी देवी ने यमुनाजी को पत्र लिखा। पत्र पाकर यमुनाजी ने अन्य बातों के साथ लिखा, "माँ ब्रजमोहिनी, तुम्हारे बक्से में जो नीलाम्बरी साड़ी है, वह माँ को पहना सकती हो और एक जोड़ी कान की बाली।" यहाँ उल्लेखयोग्य कि यमुनाजी के साथ ब्रजमोहिनीदेवी का कोई परिचय नहीं था, फिर भी यमुनाजी ने उनको कपड़ा एवं कान बाली भेजने के लिए लिखा। सचमुच उनके बक्से में वह साड़ी एवं कान की बाली बहुत दिनों से पड़ी थी। वह कपड़ा एवं कान की बाली के बारे में उनको कैसे पता चला, यह आश्चर्य की बात है। वह साड़ी एवं कान की बाली पहनकर यमुना माईजी ने दूसरे दिन किसी को दान कर दिया। उसके

बाद उन्होंने ब्रजमोहिनी देवी को लिखा, "माँ ब्रजमोहिनी, बाबा कहते थे भारत लक्ष्मी अभी विदेश में हैं। जिस समय तुम्हारा दान आया, उस समय भारत– लक्ष्मी ने भारत में आकर तुम्हारा दान ग्रहण किया। जान लो भारत का सुदिन आएगा।"

यमुनाज़ी ढाका से नवद्वीप आईं। वहाँ समाज–बाड़ी के पास उनके शिष्य सतीशचन्द्र साहा के घर में वे रहती थीं। सतीशबाबू ने माँ को उनके भंडार से जरूरत की चीजें लाने को कहा था। लेकिन यमुनाजी अयाचक वृत्ति पर चलती थीं। एकदिन उनको अनाहार रहना पड़ा। दूसरे दिन उन्होंने सेवक नाडू गोपाल ब्रह्मचारीजी से कहा कि उनकी अँगूठी के विनिमय से भोग की चीजें ले लाओ। नाडू गोपाल ब्रह्मचारी सामान लाने के लिए गए। वह वृद्धा स्त्री, जिनके दुकान से नित्य सेवा की सामग्री खरीदते थे, स्वयं आकर बोली, पैसा के लिए भोग की सामग्री नहीं लेना, यह ठीक नहीं हुआ क्योंकि नित्य सेवा बंद नहीं करनी चाहिए। उधार में देने में उनको कोई आपत्ति नहीं है। उसी समय सतीशबाबू ने खबर सुनकर रोते हुए गुरु माँ से कहा कि माँ उनको अपना नहीं समझती हैं, इसलिए पैसे की बात उनसे नहीं कही। अंत में नित्य सेवा के लिए दस रूपए माँ के हाथ में देकर वे शांत हुए। यमुना माई की इस प्रकार अयाचक वृत्ति विशेष उल्लेखयोग्य है। नवद्वीपधाम में उनके रहने के खर्च के बारे में उनकी शिष्या रजराणी देवी ने जानना चाहा। उन्होंने शिष्या को एक पत्र में लिखा, "कभी घी छेना, कभी मुठीभर चना, कभी वह भी मना।" इससे पता चलता है कि आकाशवृत्ति ही उनका एक मात्र अवलम्बन था। सन् 1327 (सन् 1920 ई०) से दो साल वे नवद्वीपधाम में रहीं।

गोस्वामी प्रभुजी की आरती के समय एक अलौकिक घटना होती थी। वे जब आरती करते थे, केवल कांसे का घन्टा बजाया जाता था, लेकिन उसके साथ अदृश्य रूप में मृदंग, करताल एवं शंख ध्वनि के साथ नामगान भी होता था। रजराणी देवी द्वारा इसके बारे में गुरुमाँ से पूछने पर उन्होंने कहा, **"आरती के समय अनेक महापुरुष आतें हैं, वे लोग ये सब ध्वनि करते हैं। इसलिए आरती के समय उपस्थित होकर नाम करना चाहिए। उनकी शुभदृष्टि से अनेक वर्ष के साधन–भजन का कार्य हो जाता है।"**

नवद्वीपधाम में रहते समय इस प्रकार निःस्व अवस्था में वे नाडुगोपाल ब्रह्मचारी को लेकर काशी एवं वृन्दावन धाम में गई थी। काशी में जाकर कहाँ रहेंगे, कुछ भी नहीं जानते थे। वहाँ पहुँचकर गंगास्नान एवं दर्शनादि के बाद वे दशाश्वमेध घाट गए एवं दोनों थोड़ी गंगा मिट्टी खाकर गंगाजल पी लिए। अचानक एक संन्यासिनी ब्राह्मण कन्या ने उन लोगों को अपने घर में ले जाकर परम यत्न के साथ अतिथि सत्कार किया। वहाँ से विदा होकर वे गंगा की ओर जा रहे थे कि अचानक गुरुभाई किरणचांद दरवेशजी से साक्षात्कार हुआ।

दरवेशजी ने माई को साष्टांग प्रणाम किया एवं उन लोगों को श्रीश्री विजयकृष्ण मठ में ले गए। वहाँ एक दिन रहकर माँ श्रीवृंदावन चली गईं। श्रीधाम में उन्होंने नौ दिन बिताए थे वे प्रतिदिन एकबार थोड़ा–सा आहार कर लेती थीं।

एकबार वे श्रीखंड में दर्शन के लिए गईं, नवद्वीपधाम से शिष्य नाडुगोपाल के साथ। वहाँ उनके पहुँचने के पूर्व रात में महाप्रभु के पार्षद ठाकुर नरहरि सरकार ने सपने में सेवाईत को आदेश दिया, "कल यहाँ एक गौर पागलिनी आ रही है। उनके साथ एक लड़का भी है। उन लोगों के लिए गौर का प्रसाद रखना। वे गौरांग महाप्रभु के चिह्नित हैं एवं देहान्त के बाद नित्यलीला में प्रवेश करेंगी।" यमुनाजी के वहाँ पहुँचते ही सोवाईत ने उनको सब कुछ कहा एवं उन लोगों को प्रसाद ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। यमुनाजी प्रतिष्ठा से डरती थीं। लोगों को पता चलने के पहले ही उन्होंने श्रीखंड से विदा ले ली। "तृणादपि सुनीचेन" यह भाव उनमें सुस्पष्ट रूप में वर्तमान था।

उनमें कोई जाति–विचार नहीं था। किस ने गोसाँईजी से साधन प्राप्त किया, किस ने अन्य से साधन प्राप्त किया, यह सब विचार वे नहीं करती थी। वे सबको समान रूप में देखती थीं।

यमुना जी विभिन्न भाषाएँ बोल सकती थीं एवं लिख भी सकती थीं। उनकी भाषाएँ केवल शांतिसुधा देवी समझती थीं एवं उसी भाषा में उत्तर देती थीं। यमुनाजी ने साधारण बंगला भाषा में शिक्षा प्राप्त कीं थी लेकिन अवस्था खुलने के बाद कोई भी भाषा उनको अज्ञात नहीं थी। वे कहती थी, "मनुष्यों की अवस्था खुलने से कोई भी भाषा अज्ञात नहीं रहती।" उनके शिष्य–शिष्यागण कभी–कभी सपने में उनका बंशीधारी श्रीकृष्णरूप में या कभी काली रूप में दर्शन करते थे। उनके शिष्यों को कोई आघात करने से या कोई दुर्घटना में आहत होने से वह सब आघात स्वयं झेलती थीं। इसके फलस्वरूप उनके शरीर के विभिन्न अंगो में आघात का चिह्न देखा जाता था, लेकिन शिष्यों के शरीर में कोई चिह्न नहीं रहता या उनलोगों को यंत्रणा भी नहीं भोगनी पड़ती थी।

सन् 1328 के 16 चैत्र (सन् 1922 ई०) वे ढाका गेण्डारिया में अपने घर में आईं। कई दिनों वहाँ रहने के बाद पुत्र के अशिष्ट व्यवहार से वे शिष्या रजराणी की सहायता से सनातन बाबू की सब्जी मंडी में एक पुराने घर में चली आईं। उस समय घर के मालिक की पत्नी ने अत्यंत श्रद्धा के साथ कुछ गहने उनको दिए थे। उन्होंने अलंकार ग्रहण करके दाता की मनोकामना पूर्ण की। बाद में सब अंलकार बेचकर उनको कार्य में लगाया गया। सब्जी मंडी में यमुनाजी एक साल रहीं। उस समय अनेक लोगों ने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी। उनमें श्री अजितकुमार दास अनन्यतम थे। सब्जी महल में गोसाँईजी का उत्सव बड़े समारोह के साथ

किया जाता था। तीन दिनों तक श्री कृष्णलीला–गान हुआ था। लगभग एक साल सब्जी महल में रहने के बाद यमुनाजी रजराणी देवी एवं नाडुगोपाल को लेकर चन्द्रनाथ चले गए।

भविष्य के दुर्दिनों को जानकर यमुनाजी बोलीं, **"सामने भीषण दुर्दिन आने वाला है। सब सावधान रहो। उस समय जो 'नाम' पकड़कर रहेंगे वे ही रक्षा पाएँगे, बाकी सब ध्वंस हो जाएँगे। जैसे गेंहू पीसने की चक्की की खूँटी में जो दाल लगा रहता है, वह उसी प्रकार रह जाता है और सब चक्की घुमाने के साथ–साथ चूर–चूर हो जाता है।"** बंगला 1330 सन् (सन् 1923 ई०) में उन्होंने यह बात कही थी। इसके पाँच साल बाद बंगला 1335 सन् (सन् 1928 ई०) में ढाका में भयंकर दंगा हुआ एवं अनेक लोगों की मृत्यु हुई। महात्माओं को कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। वे त्रिकालदर्शी होते हैं। इसलिए भविष्य में क्या होने वाला है इसके बारे में शिष्य–शिष्या, भक्त, अनुगत जनों को वे सावधान कर देते हैं।

बंगला 1330 सन् (सन् 1923 ई०) की कार्तिक संक्रांति के दिन अचानक वे सब्जी महल से शिष्य मनीन्द्र के घर में गईं। जाते समय उन्होंने रजराणी देवी को आश्रम के सब कार्य सुनियमित रूप में करने का आदेश दिया। वे नारायगंज का दही, रसगुल्ला एवं बालुसाई गोसाँईजी को भोग में देना पंसद करती थीं। इसके साथ घी–भात एवं खीर होने से उनको बड़ा आनन्द होता था। इसलिए उनकी इच्छानुसार विशेष पर्व दिन में ठाकुर को भोग में घी–भात, रसगुल्ला एवं नारायणगंज का दही एवं खीर देने की विशेष प्रचेष्टा की जाती थी। उनके गेण्डारिया आश्रम में संध्या आरती के बाद प्रायः रसगुल्ला एवं बालुसाई गोसाँईजी को भोग दिया जाता था।

यमुनाजी कैसी शक्तिमान थी, उसका परिचय उनके शिष्य नाडुगोपाल ब्रह्मचारी ने दिया है। उन्होंने कहा, "माईजी सद्‌गुरु रूपी भगवान श्रीश्री विजयकृष्ण की लीला समुद्र की एक तरंग थीं। वास्तव में गोसाँईजी उनके भीतर से अभिनव रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। मानो गंभीर आधार भेद करके विद्युत की झलक दिखाई देती है। गोसाँईजी की प्रिय लीला भूमि पुण्यभूमि गेण्डारिया धाम में माँ के ही कुछ सतीर्थ, घनिष्ट कुटुम्ब एवं परिजनों द्वारा वे उपेक्षित, अपमानित एवं उत्पीड़ित हुई थी। हम जानते हैं गोसाँईजी के शिष्य–शिष्यागण महाशक्तिशाली एवं महाशक्तिशालिनी हैं। फिर भी वे माँ की उच्च तन्मय अवस्था को समझ नहीं सके। ये सब गोसाँईजी की एक अभिनव लीला है। माँ उपरोक्त कारण से गेण्डारिया धाम में शांति से वास नहीं कर सकी। कुछ दिन विभिन्न स्थान में वास करके पुरीधाम चली गईं। उसके बाद नवद्वीप धाम में वास किया। पूर्वबंग में माँ

के अनादर एवं असम्मान के कारण गोसाँईजी ने माँ को नवद्वीप में रखा था।"

नाड़ुगोपाल ब्रह्मचारी के उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि आत्याचारी लोग कितने निष्ठुर एवं हृदयहीन थे। गोसाँईजी के आश्रम में जाकर माँ प्रणामादि न कर सके, इसलिए उन्होंने दक्षिण के द्वार पर ताला लगा दिया था। यमुनाजी अपने घर में बैठकर सजल नयन से गुरुजी का आश्रम दर्शन करती थी। विरुद्ध वादीगण ने गोसाँईजी के आश्रम की दक्षिण की ऊँची दीवार के ऊपर लंबा बांस लगाकर टाट का घेरा लगा दिया, जिससे माँ अपने घर से आश्रम का दर्शन भी नहीं कर सकतीं थी। अन्याय स्थायी नहीं हो सकता। इस घटना के कई महीने बाद गोस्वामी प्रभुजी की कन्या श्री शांतिसुधा देवी का गेण्डारिया आश्रम का भार ग्रहण किया। उन्होंने दक्षिण द्वार का ताला खोलकर आश्रम प्रवेश द्वार मुक्त किया एवं दीवार के ऊपर लगाई गई टाट हटा दी। यमुनाजी के लिए अब गोसाँईजी की आश्रम में प्रवेश करने में कोई बाधा नहीं रही।

1330 सन् (सन् 1923 ई०) के भाद्र महीने में, सब्जी महल में यमुनाजी की शिष्या रजराणी देवी को उनके महाप्रयाण की पूर्व सूचना मिली थी। उस दिन आश्रम में उनके शिष्य रेवतीबाबू एवं उनकी पत्नी कई नारियल लाए थे। उस समय विभिन्न प्रकार की मिठाई बनाने में वे लोग नीचे व्यस्त थे। ऊपर में गोसाँईजी की पूजा के बाद आरती हो रही थी। यमुनाजी एवं अन्य सब लोग घर से आरती देख रहे थे। उस समय रजराणी देवी पंखा से गुरु माँ यमुनाजी को हवा कर रही थीं। उस समय उन्होंने देखा– आश्रम का समग्र दो मंजिल एक बड़े रथ जैसा है। उस रथ को लेकर कई घोड़े द्रुतगति से चल रहे हैं। उन्होंने और देखा गुरुभाई लोग गोस्वामीजी की दो मूर्ति के पास खड़े हैं। एक मूर्ति में गोस्वामीजी के चारों ओर कुछ लोग नृत्यरत हैं एवं अन्य मूर्ति के पास कुछ लोग कांसर–घंटा बजा रहें हैं। आरती के बाद रजराणी देवी अपने दर्शन की बात यमुनाजी से बोली। यमुनाजी ने शिष्या की विशेष प्रशंसा की। गुरु भाई नाड़ुगोपाल ब्रह्मचारी यह सुनकर व्याकुल होकर रोने लगे। उन्होंने कहा कि रथ दर्शन अच्छा नहीं है। उनकी बात सही हुई। उसी सन् में अर्थात् 1330 सन् के 13 फाल्गुन सोमवार (सन् 1924 ई०) दोपहर 2 बजकर 10 मिनट में चट्टग्राम के चन्द्रनाथ में यमुना माई जी ने देहत्याग की। कुछ दिन पहले से ही वे ऐसी बातें कहने लगी थीं, जिससे पता चला था कि स्वेच्छा से वे शीघ्र देह त्याग करेंगी। वहाँ पर एकदिन उन्होंने शिष्यों से कहा, "चलो मैं देह छोड़ूँगी"। कई व्यक्ति उनके साथ चन्द्रनाथ पहाड़ पर गए। यमुना माईजी ने पहाड़ पर जाकर योगासन में बैठकर स्वेच्छा से देहत्याग की। उनकी यह इच्छा मृत्यु अत्यन्त विस्मयकर है। यमुनामाई जी की देह ट्रेन रिजर्व करके गेण्डारिया लाई गई।

उन्होंने देहत्याग के पूर्व एकदिन कहा था "मुझे कदम के पेड़ के नीचे रखना।" उस समय कोई उनसे नहीं पूछा कि वह कदम पेड़ का अवस्थान कहाँ है ? यमुनाजी भी उस पेड़ के बारे में कुछ नहीं बोलीं। आश्चर्य की बात है, उनकी समाधि देने के बाद देखा गया समाधिस्थान के पास पूर्व दिशा में एक छोटा कदम–वृक्ष सुन्दर फूलों से शोभित है। यह किसी के नजर में नहीं आया था। सब लोग सोचने लगे यमुनाजी की इच्छा पूरी हुई। ये सब गोस्वामी प्रभुजी की अनन्त कृपा का निदर्शन है। यमुनाजी की समाधि पर बाद में नाड़ुगोपाल ब्रह्मचारी, रजराणी देवी, ब्रजराणी देवी की प्रचेष्टा से मंदिर बनाया गया। मंदिर एवं जगमोहन निमार्ण कार्य समाप्त हुआ 1950 ई० में। उसी वर्ष उनका जन्मोत्सव एवं तिरोभाव उत्सव महा समारोह के साथ किया गया।

यमुनाजी चाहती थीं, उनका घर आश्रम में परिणत हो। उनकी जीवितावस्था में यह संभव नहीं हुआ था। इसलिए जीवन के अंतिम समय वे गेण्डारिया में नहीं बिता सकीं। चन्द्रनाथ पहाड़ के सीताकुंड में उनके देहावसान के बाद उनको गेण्डारिया लाकर समाधिस्थ किया गया। इसके बाद उनके घर को आश्रम करने की प्रचेष्टा चलने लगी। घर ऋण से आबद्ध था। घर को ऋणमुक्त करके उनका घर आश्रम बनाया गया। इस प्रकार यमुनाजी के शिष्यों ने उनकी इच्छा पूरी की।

बंगाब्द 1350 सन् (सन् 1943 ई०) में ढाका में हिन्दू–मुसलमान दंगा शुरू हुआ। उस समय नाड़ु गोपाल ब्रह्मचारीजी के तत्वावधान में गेण्डारिया से गोसाँईजी, योगमाया देवी, नामब्रह्म, यमुनाजी के चित्र, गोपालजी का विग्रह एवं यमुनाजी के श्रीचरण चिह्न कोलकाता में लाये गये। एक साल तक यमुनाजी का चित्र हरीश मुखर्जी रोड में रखा था। कोलकाता में एक नये आश्रम प्रतिष्ठा की प्रचेष्टा चली। उस समय यमुनाजी के स्मरण उत्सव के लिए आयोजन किया गया था। आश्चर्य की बात है, उनकी आविर्भाव तिथि से तिरोभाव तिथि तक 15 दिनों तक हजारों नर–नारायण ने प्रसाद ग्रहण किया। आकाशवृत्ति अवलंबन कर नाड़ुगोपाल ब्रह्मचारी के उत्साह से एवं यमुनाजी की कृपा से यह उत्सव सम्पन्न हुआ। सब उपकरण कहाँ से आए, किसी को पता नहीं चला। उत्सव के दिनों में ब्रह्मचारीजी, पूजा एवं आरती करते थे एवं अधिक समय तक आसन में बैठे रहते एवं यमुनाजी की प्रतिकृति की ओर देखते रहते एवं रोते थे। इस प्रकार 15 दिनों का उत्सव अति सुन्दर रूप में संपन्न हुआ।

नवद्वीप धाम में यमुनाजी के आश्रम प्रतिष्ठा के बारे में गोस्वामी प्रभुजी की अपार करुणा स्मरणीय है। यमुनाजी के स्थायी आश्रम की प्रतिष्ठा के लिए नाड़ुगोपाल ब्रह्मचारीजी ने गुरुभाई अजित दास को भार देकर परलोक गमन किया। अजित दास आश्रम के स्थान चयन के बारे में चिंतित थे। गोसाँईजी की

कृपा से आकस्मिक रूप से स्थान मिल गया। इस बारे में उल्लेख योग्य सिद्धान्त यह था कि यमुनाजी की आविर्भाव तिथि का उत्सव नवद्वीप के नए आश्रम में होगा एवं मंदिर प्रतिष्ठा कार्य करेंगे, श्रीमत स्वामी असीमानन्द सरस्वती महाराज। ढाका गेण्डारिया आश्रम से यमुनाजी सेवित गोस्वामी प्रभुजी की खड़ी हुई अवस्था का चित्र देश विभाजन के बाद कोन्नगर में यमुनाजी के शिष्य गोपालचन्द्र गुह के घर में रखकर सेवा पूजा की व्यवस्था की गई थी। यमुनाजी का दण्डायमान चित्र नवद्वीप धाम के मणिपुर रोड में श्रीश्री यमुना माईजी के नव निर्मित आश्रम में रखकर सेवा पूजा की व्यवस्था की गई। स्वामी असीमानन्दजी ने पुरुलिया रामचन्द्रपुर आश्रम से नवद्वीप आकर यमुनाजी की आविर्भाव तिथि में यथारीति आश्रम की प्रतिष्ठा की एवं विग्रहादि नए सिंहासन में स्थापित किये। आश्रम प्रतिष्ठा के लिए विभिन्न स्थानों से दान आया। इस प्रकार गोस्वामी प्रभुजी की कृपा से नवद्वीप धाम में यमुनाजी की आकांक्षित आश्रम की प्रतिष्ठा हुई।

1381 सन् (सन् 1975 ई०) में इस नवद्वीप आश्रम में यमुना माईजी का शततम जन्मोत्सव अनुष्ठित हुआ। 6 फाल्गुन से 9 फाल्गुन तक विभिन्न अनुष्ठानों के माध्यम से इन चार दिनों के महाकल्याण की सूचना दी गई। इस उत्सव में अनेक साधु–संन्यासी, यमुनाजी की शिष्य–शिष्या एवं असंख्य भक्तों ने सहयोग दिया। इस उत्सव की और एक विशेषता यह थी कि चार दिनों तक प्रसाद वितरण के बाद भी भंडार सदा सर्वदा पूर्ण था। उत्सव के अंत में यह प्रत्यक्ष करके सब लोग आश्चर्यचकित हो गए थे। दयाल गोसाँईजी एवं यमुना माईजी की अपार करुणा से सब धन्य हो गए।

****

श्रीमती योगमाया गुह

आज आश्रम, मन्दिर एवं भक्तों के घरों में श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का जो छाया चित्र दिखलाई पड़ता है उसका एक विचित्र इतिहास है। इस चित्र को प्राप्त करने के लिए गोस्वामी प्रभु की शिष्या श्रीमती योगमाया गुह के प्रति सब भक्तवृन्द कृतज्ञ हैं। प्रभुजी का पट विग्रह सामान्य चित्र नहीं है। वे सद्गुरु थे। आज भी उनके पट विग्रह के समक्ष श्रद्धापूर्वक भोग निवेदन करने पर भोग ग्रहण करने के सुस्पष्ट चिन्हादि सभी प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

पटविग्रह के निकट व्याकुल प्रार्थना पूर्ण होती है इसके असंख्य प्रमाण हैं। गोस्वामी प्रभुजी के शिष्य पंडित दुर्गामोहन अत्यन्त निर्धन शिक्षक थे। उन्हें नित्य काफी दूरी तक पैदल पाठशाला जाना पड़ता था। गर्मी के दिनों में पुराना एवं फटा हुआ असंख्य छिद्र युक्त छाता एवं जाड़े के दिनों में इसी प्रकार का स्वेटर पहनकर वे पाठशाला जाते थे। एकदिन उनकी अन्तरात्मा प्रभुजी के निकट बोल उठी इस छाते और स्वेटर से और काम नहीं चलेगा। उस दिन पाठशाला जाने के पूर्व पट विग्रह के सामने प्रणाम करते समय वहाँ एक नया छाता उन्हें मिला। जाड़े के दिनों में इसी तरह नित्यपूजित प्रभुजी के चित्र के निकट स्वेटर प्राप्त हुआ। इसी तरह मुजःफरपुर में सन् 1934 ई० के भंयकर भूकंप के समय प्रभुजी के शिष्य शैलजा प्रसाद अस्वस्थ अवस्था में लेटे हुए थे। घर के अन्य लोग उनके पास दुमंजिल कमरे में बैठे थे। उस समय आकस्मिक भूकंप से रक्षा के लिए शैलजा प्रसाद प्रभुजी के पट (चित्र) के समक्ष प्रार्थना करने लगे। आसपास के सब कमरे, मकान, सीढ़ी आदि सब गिर पड़े पर इन लागों को कुछ भी नहीं हुआ। उस समय भाग्यवान शैलजा प्रसाद ने देखा कि गोस्वामी प्रभु एक हाथ से छत को सहारा देकर खड़े हैं एवं कह रहे हैं – 'डरो मत!' इस तरह प्रभुजी के चित्र की असंख्य महिमा है। गोस्वामी प्रभु किसी को भी चित्र लेने नहीं देते थे। एक शिष्य ने अच्छे कारीगर द्वारा उनका विग्रह बनवाना प्रारम्भ किया था। प्रभुजी को जब मालूम चला तब उन्होंने उसे तोड़ डालने का निर्देश दिया। पर भाग्यवती शिष्या योगमाया गुह की व्याकुल प्रार्थना को गोस्वामी प्रभु टाल न सके एवं चित्र लेने की अनुमति उन्हें देनी पड़ी।

योगमाया गुह का जन्म वरिशाल जिले के अन्तर्गत वाटाजोड़ नामक गाँव में 1276 बंगाब्द (1869 ई०) के अग्रहायण महीने में हुआ था। पिता थे राय बहादुर

द्वारकानाथ दत्त। उस समय वरिशाल के वे श्रेष्ठ वकील माने जाते थे। देवी की माताजी भी अत्यन्त दयावती एवं विभिन्न सद्‌गुणों से विभूषित थी। देवी को छः वर्ष की उम्र में मातृ वियोग हुआ। उसके पिता ने दूसरा विवाह किया। उसके बाद से एकमात्र भाई एवं देवी को विमाता का निष्ठुर व्यवहार सहन करना पड़ा।

बारह वर्ष की उम्र में देवी का विवाह हुआ वरिशाल के वानरीपाड़ा निवासी सत्यकुमार गुहठाकुरता के साथ। देवी पति को अत्यन्त श्रद्धा करती थीं। विवाह के पश्चात् देवी ने देखा कि पति नित्य निर्दिष्ट समय पर ध्यान में मग्न रहते हैं। प्राथमिक अवस्था में देवी को आश्चर्य होता था पर बाद में उन्हें समझ में आया कि पति भगवान के नाम का ध्यान कर रहे हैं। पति उस समय विद्यालय में पढ़ते थे। पति–पत्नी में मुलाकात बहुत कम होती थी। विवाह के लगभग चार वर्ष बाद कन्या योगसाधना का जन्म हुआ। सौभाग्यवश उसी समय गोस्वामी प्रभुजी के निकट सन् 1272 बंगाब्द (सन् 1865 ई०) आश्विन महीने में सत्यकुमार की दीक्षा हो गई।

उस समय गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज के आचार्य थे। पति–पत्नी यद्यपि ब्राह्मसमाज की उपासना में जाते रहते थे पर उन्होंने ब्राह्मधर्म ग्रहण नहीं किया था। सत्यकुमार ने गोस्वामीजी से 'अजपा साधन' की दीक्षा ग्रहण की थी। देवी को उस समय दीक्षा नहीं मिली थी इसलिए वे सर्वदा पति को पृथक रूप से साधना करते देखकर चिन्तित हो जाती थी। पति ने एकदिन कहा– "तुम डरो मत। जब तक तुम्हारी दीक्षा न हो जाय तब तक मैं थोड़ा अलग रहूँगा। जब तुम्हें भी दीक्षा प्राप्त हो जावेगी तब दोनों एक साथ साधन–भजन करेंगे।"

दीक्षा प्राप्त करने के लिए क्रमशः देवी व्याकुल हो गईं। वरिशाल जिले के अन्तर्गत वानरीपाड़ा ग्राम में गोस्वामी प्रभु के अनेक शिष्य रहते थे। उन लोगों के सत्संग के प्रभाव से देवी ने दीक्षा के लिए एकदिन गोस्वामी प्रभु को पत्र लिखा। गोस्वामीजी ने लिखा –

"जिनके पति यह साधन प्राप्त कर चुके हैं, वे भी इस साधना को पाने के अधिकारी हैं। तुम जब भी आवोगी तुम्हें अवश्य दीक्षा प्राप्त हो जायेगा।"

प्रभुजी का पत्र पाकर देवी दीक्षा के लिए ले जाने हेतु पति से बार–बार अनुरोध करने लगीं। उस समय गोस्वामीजी कोलकाता में थे। वरिशाल से स्टीमर सर्विस चालू हो गया था पर उसमें महिला यात्री नहीं रहते थे। देवी कम उम्र की थी एवं शिशु कन्या भी थी इस कारण सत्यकुमार किस प्रकार देवी को ले जायेंगे सोचकर चिन्तित थे। उस संमय आर्थिक अभाव भी था। यद्यपि उनके पिता धनी थे पर प्राचीन पंथी पिता से कोलकाता जाने के लिए रूपए माँगना सत्यकुमार के

लिए कठिन था। इसी तरह तीन वर्ष व्यतीत हो गए। देवी सर्वदा प्रार्थना करती रहती थी। अचानक सत्यकुमार के बड़े भाई एवं उनकी पत्नी को भी गोसाँईजी से दीक्षा मिल गई। अब इन लोगों की सहायता से अपनी पत्नी को लेकर सत्यकुमार कोलकाता में गोसाँईजी के पास पहुँचे एवं गोसाँईजी का दर्शन कर धन्य हो गए। पर गोसाँईजी ने कहा कि माता–पिता की अनुमति के बिना दीक्षा नहीं मिलेगी। इसे सुनकर देवी हताश हो गई। महिलाओं के लिए निर्दिष्ट कक्ष में माता योगमाया देवी का दर्शन और आशीर्वाद मिला। माता योगमाया देवी ने सांत्वना देते हुए कहा – "उन्होंने स्वयं जब तुम्हें लिखा है कि दीक्षा मिलेगी तब अवश्य ही मिलेगी – तुम धैर्य रखो।"

यहाँ पर एकदिन देवी ने सौभाग्यवश एक अद्भुत दृश्य देखा। माता योगमाया देवी नित्य गोसाँईजी की एकान्त में पूजा करतीं थी। उस दिन जिस समय माता योगमाया देवी पूजा कर रही थीं तब सत्यकुमार की पत्नी ने वह दृश्य छिपकर देखा। उस दृश्य का वर्णन उन्होंने इस प्रकार दिया था – "देवताओं की जिस तरह फूल चन्दन द्वारा पूजा की जाती है। उसी तरह माता योगमाया देवी ने गोसाँईजी की पूजा की। गोसाँईजी ने उनको चन्दन का तिलक लगा दिया।" इस दृश्य को देखकर उनके मन में एक अपूर्व भाव का संचार हुआ।

देवी की शिशुकन्या को कृपापूर्वक गोसाँईजी ने स्वयं अन्न प्रसाद खिलाया। इस तरह कन्या का अन्नप्राशन सम्पन्न होने के दूसरे दिन उन लोगों के वरिशाल जाने का दिन निर्दिष्ट था। देवी का व्याकुल हृदय दीक्षा न मिलने से बहुत दुःखी था। प्रातः चार बजे अचानक गोसाँईजी के निर्देशानुसार माता योगमाया देवी ने निद्रित देवी को जगाकर कहा – "तुम तुरन्त तैयार हो जाओ। अभी तुम्हारी दीक्षा होगी। गोसाँईजी के गुरुदेव परमहंसजी ने तुम्हें अभी दीक्षा देने के लिए निर्देश दिया है यदि यह मुहूर्त चला जाएगा तो फिर दीक्षा नहीं होगी।" इसे सुनते ही देवी जल्दी से शौच होकर आई। देह शुद्धि के लिए स्नान आवश्यक है ऐसा सोचकर माता योगमाया देवी ने स्वयं एक लोटा पानी सिर में डाल दिया एवं वस्त्र परिवर्तन कर जल्दी से दीक्षा के लिए आने को कहा। इधर गोसाँईजी बार–बार जोर–जोर से कहने लगे, "शायद दीक्षा नहीं होगी। देरी हो रही है! जल्दी आ जाओ! वस्त्र परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। यह मुहूर्त चले जाने पर और नहीं होगा।" देवी के पहुँचते ही गोसाँईजी ने अपने आसन के नीचे से एक कुशासन निकालकर बिछाते हुए कहा, "जल्दी बैठ जाओ और समय नहीं है, ब्रह्म मुहूर्त बीत जाने पर दीक्षा नहीं होगी।" देवी तुरन्त आसन में बैठ गई। कुछ विधि–निषेध कहकर एक मंत्र का उच्चारण करते हुए गोसाँईजी ने दीक्षा दी। 'नाम' की शक्ति से उस समय देवी विभोर हो गईं। आसन से उठने की शक्ति उनमें नहीं थी एक

महिला उन्हें पकड़कर महिलाओं के कमरे में ले गई। गोसाँईजी ने दीक्षा के अन्य नियम सत्यकुमार से समझ लेने का निर्देश दिया। इस तरह अलौकिक रूप से गोसाँईजी के गुरुदेव परमहंसजी की कृपा से 1296 बंगाब्द आश्विन महीने (1889 ई०) में देवी की दीक्षा हो गई।

उस रात में सत्यकुमार अन्यत्र थे। प्रातः जब उन्होंने पत्नी की दीक्षा प्राप्ति की घटना सुनी तब आश्चर्यचकित हो गए एवं अपने को सौभाग्यवान समझने लगे। देवी की आन्तरिक इच्छा थी कि पति को जो मंत्र मिला है उसे भी वही मंत्र मिले। दीक्षा के बाद अचानक गोसाँईजी ने एक कागज में मंत्र को लिखकर दिया जिससे मंत्र विस्मरण हो जाने पर देवी उसे देख लें। पति ने जब देवी के पास से वह कागज देखा तब आश्चर्यचकित हो गए। उनका मंत्र ही पत्नी को भी मिला है।

यहाँ शिशु के अन्नप्राशन की घटना संक्षेप में दी जा रही है – उस दिन माता योगमाया देवी ने मिठाई एवं विभिन्न अन्न व्यंजन बनाये। गोसाँईजी के भोजन के बाद शिशु को उसकी माँ ने जमीन पर छोड़ दिया। शिशु सीधे गोसाँईजी के पास गया। गोसाँईजी ने स्वयं उसके मुँह में तीन बार प्रसाद दिया। शिशु अपने हाथों से मिठाई लेकर अपने सर्वांग में लगाने लगा एवं ताली बजाकर आनन्द प्रकट करने लगा। गोसाँईजी की कन्या प्रेमसखी (कुतुबुड़ी) भी वहीं थी। उन्होंने कहा– "पिताजी, तुम्हारा प्रसाद पाकर यह शिशु आनन्द प्रकट कर रहा है। इसलिये इसका नाम प्रेमानन्द रखा जाय।" गोस्वामीजी ने इसका समर्थन किया।

दीक्षा के पश्चात् पति–पत्नी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने लगे। कुटुम्ब के लोगों ने यद्यपि इसका समर्थन नहीं किया पर वे दोनों आनन्द एवं उत्साहपूर्वक इस व्रत का पालन करते रहे। उस समय एक सिद्ध फकीर 'साजाल' ने इन्हें विशेष रूप से उत्साहित किया।

चार वर्ष पश्चात् दूसरी बार गोसाँईजी का दर्शन मिला देवी को। उस समय संकीर्तन में गोसाँईजी का मनोहर नृत्य एवं भावावेश देखकर वे लोग मुग्ध हो गए। 1300 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) प्रयाग कुंभ मेले में गोस्वामीजी के पास सत्यकुमार गए। उनकी इच्छा थी गंगा के किनारे किसी स्थान पर एक नौकरी यदि मिल जावे तो वहीं स्थाई रूप से रहेंगे। कुंभ में जाने के पूर्व पत्नी को इन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की थी। यात्रा के पूर्व महात्मा नरोत्तमदास जी की 'प्रार्थना' नामक पुस्तक पत्नी को उन्होंने दी एवं उसका पाठ करने को कहा। देवी कहती थी– "यह पुस्तक ही उनका प्रथम एवं शेष दान था।"

सत्यकुमार प्रयाग में गुरुदेव के साथ सम्मलित हुए। कुंभ का विवरण देते हुए कुछ पत्र भी पत्नी को दिए पर अन्त में उन्होंने लिखा कि पत्र लिखकर समय

नष्ट न करके बाद में सब विवरण कहेंगे। कुंभ मेला समाप्त होने पर गोसाँईजी के साथ वे नवद्वीप में आए। उस वर्ष चन्द्रग्रहण एवं श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म लग्न के ग्रह–नक्षत्रादि की पुर्नावृति चार सौ वर्ष पश्चात् हुई थी। इस कारण विशेष समारोह के साथ जन्मतिथि मनाई गई। यहाँ से गोस्वामी प्रभु के साथ सब लोग शांतिपुर आए। यहाँ सत्यकुमार को अचानक हैजा हो गया। आवश्यक चिकित्सा आदि करने पर भी रोगी की अवस्था और खराब होती गई एवं अन्त समय निकट जानकर उनको घेर कर नाम–कीर्तन आरम्भ किया गया। मृत्यु के पूर्व गोस्वामीजी उसके निकट गए। गोस्वामीजी की पदधूलि उसने ग्रहण की एवं हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए श्री गुरुदेव की ओर देखने लगे। इसी अवस्था में उनकी प्राणवायु निकल गई। श्मशान में शव दाह के समय सभी दिशाएँ सुगन्ध से व्याप्त हो गई। इस अलौकिक घटना को उपस्थित सभी लोगों ने अनुभव किया।

इस दुर्घटना का समाचार पाकर देवी शोक, निराशा एवं दुःख से अभिभूत हो गई। उनकी सभी आशा व्यर्थ हुई। गोस्वामीजी ने सत्यकुमार की मृत्यु के सम्बन्ध में कहा था – **"उच्च कोटि के आत्मा की गति इसी प्रकार होती है। सत्यकुमार ने बहुत अच्छी मृत्यु पायी है। करोड़ों में एक इस प्रकार देखी जाती है। कल रात्रि के समय गंगा तीर में एक ब्राह्मण घर में उसका पुनः जन्म हुआ है। उसे गर्भयातना भोग नहीं करना पड़ा। जैसे ही प्रविष्ट हुआ वैसे ही भूमिष्ट हुआ। बहुत भाग्यवान था। विशेष प्रयोजन से उसका जन्म हुआ है। उसके द्वारा कुछ विशेष कार्य होगा। भगवान भी युग–युग में जन्म लेते हैं। मनुष्य की क्या बात ?"**

पति के मृत्यु से देवी को संसार शून्य सा लगा। घनिष्ट कुटुम्बी रजनीदास की पत्नी सर्वदा उनके निकट आती एवं आवश्यक सांत्वना देतीं। इस समय देवी एकबार गोसाँईजी के दर्शन करने के लिए व्याकुल हो गईं। अन्त में उन्होंने गोसाँईजी को एक पत्र लिखा। उस समय गोसाँईजी एक विशेष व्रत लिए थे। स्वयं कोई पत्र नहीं लिखते थे। पत्र का उत्तर गोसाँईजी के कहने पर कुंजबिहारी गुह ने लिखकर भेजा – "आप का पत्र मिला। मनोरंजन गुह ठाकुरता ने पत्र को पढ़ा एवं प्रत्येक प्रश्न का उत्तर गोस्वामीजी ने जो कहा उसे जगद्बन्धु बाबू ने लिख लिया। प्रश्न आपके पास लिखा हुआ होगा उससे उत्तर मिला लेंगे।"

देवी ने 17 प्रश्न किया थे उनमें से निम्न प्रमुख थे –

प्रश्न 1– यदि सत्यकुमार का पुनः जन्म हुआ है तब उनके साथ मेरा कैसा सम्बन्ध रहना चाहिए ? मेरे साथ किस प्रकार भेट होगी ? वे मेरा कुछ भी उपकार कर पायेंगे क्या ? पुर्नजन्म से हम लोगों का सम्पर्क क्या विच्छिन्न हो गया है ?

उत्तर – यदि तुम यथार्थ सहधर्मिणी हो तब तुम्हारे साथ उनका अनन्तकाल तक सम्बन्ध रहेगा। उनके साथ भेट होने की किसी प्रकार की संभावना नहीं है। पर जब–जब दोनों को परस्पर आवश्यकता होगी तब दोनों का मिलन होगा। वे तुम्हारा उपकार कर सकते हैं यदि तुम उनको न भूल जाओ। तुम लोगों का सम्पर्क नष्ट नहीं हुआ है

प्रश्न 2– मृत्यु के पश्चात् परलोकगत आत्मा के लिए तर्पण एवं पिण्डदान आदि करने पर परलोकगत आत्मा उसे किस प्रकार ग्रहण करती है एवं इससे उसका क्या मंगल होता है ?

उत्तर – पिण्ड आदि वे लोग स्वयं ग्रहण करते हैं उससे उन लोगों की आत्मा का पोषण होता है।

प्रश्न 3– यदि पुनर्जन्म हुआ हो तब पिण्डदान एवं तर्पणादि का क्या फल होता है ? मेरे मन में यदि विश्वास हो कि उन्होने पुनः देह धारण की है तब मैं उनके लिए तर्पणादि करूँ या न करूँ ? मुझे इस प्रकार विश्वास होने से उनके विषय में चिन्ता से मेरा क्या फायदा हो सकता है ? यदि परलोकगत आत्मा शरीर धारण न करे तब उसके द्वारा विभिन्न मंगल किये जा सकते है एवं परलोक में मिलन की आशा रहती है। यदि शरीर धारण कर ले तब इस प्रकार की आशा कैसे की जा सकती है ? मुझे लगता है कि पुनर्जन्म होने पर उसके साथ हमेशा के लिए मेरा सम्बन्ध नष्ट हो गया है ?

उत्तर – पाँच वर्ष तक उससे उपकार प्राप्त होता है। इसके सिवाय पितृलोक में जिसकी आत्मा है उसका श्राद्ध तर्पणादि करने से उपकार होता है। उसके विषय में चिन्ता से तुम्हारा मंगल होगा, धर्म जीवन की उन्नति होगी।

शरीर धारण करने पर भी मिलन की सम्भावना किस प्रकार रह सकती है उसका उत्तर ऊपर में दिया गया है। पुनर्जन्म होने पर संबंध वर्जन नहीं होगा– नहीं हो सकता, यदि पति में भक्ति रहे।

प्रश्न 4– कौन से पाप से मुझे यह वैधव्य यंत्रणा भोग करनी पड़ी ?

उत्तर – संसार के सभी नर–नारी इस प्रकार कर्मफल भोग करते आ रहे हैं।

प्रश्न 5– ईश्वर सभी कार्य मंगल के लिए करते हैं, इसमें मेरा क्या मंगल होगा ?

उत्तर – अवश्य ही कोई मंगल होगा उसे तुम नहीं जानती हो।

प्रश्न 6– कितने दिनों तक मुझे पृथ्वी पर इस प्रकार की यंत्रणा भोग करनी होगी ? इस जीवन में यदि मेरी धर्मकार्य में उन्नति न हो तब यथाशीघ्र इस शरीर

को त्याग करने का क्या कोई उपाय है ?

उत्तर – ईश्वर का नाम करो। उनके प्रति ध्यान रखो। भक्ति पूर्वक धर्मपालन करो। पति पर भक्ति रखो। माता–पिता की भक्ति पूर्वक सेवा करो। यत्नपूर्वक सन्तान प्रतिपालन करो। अतिथि सेवा करो – इसीसे तुम्हारा मंगल होगा।

प्रश्न 7– एकबार मनुष्य जन्म होने पर क्या फिर दूसरा जन्म हो सकता है ?

उत्तर– कर्मानुसार सभी हो सकता है। भगवत् इच्छा से कुछ भी असंभव नहीं है।

प्रश्नोत्तर में और एक मूल्यवान तथ्य कुंजबिहारी ने लिखा था–

गर्भ संचार होने पर गर्भ कभी खाली नहीं रहता। एक ही गर्भ में क्रमानुसार अनेक आत्मा में प्रवेश करते हुए कर्मफल भोग कटा सकती है। कोई तीन महीने में प्रवेश पूर्वक चार महीने में निकल सकता है। (केवल इतने समय के लिए कर्मफल भोग करने के लिये) इसी प्रकार प्रसव होने के पूर्व समय तक दूसरी आत्मा के द्वारा गर्भ अधिकृत था, पर प्रसव होने के समय सत्यकुमार ने गर्भ में प्रवेश करने के साथ–साथ जन्म लिया। गोसाँईजी ने कहा है – "इस प्रकार का जन्म अत्यन्त दुर्लभ है एवं सौभाग्यवान का होता है।" और एकदिन उन्होंने कहा था – "सत्य कुमार का जन्म और मृत्यु अत्यन्त आश्चर्यजनक है।"

गोसाँईजी का पत्र पाने के पश्चात् देवी उनके दर्शन के लिए अधीर हो गईं। थोड़े दिनों के भीतर गोराचांददास वकील की पत्नी एवं कन्या के साथ देवी भी कोलकाता गईं। कोलकाता में मनोरंजन गुहठाकुरता के घर में सब लोग ठहरे। उस समय गोसाँईजी राखाल राय के घर में थे। वहाँ गोसाँईजी का दूर से दर्शन कर देवी का शोक काफी कम हो गया। एकदिन पतितपावनी गंगाजी में स्नान करने से शोक–ताप और कम हो गया। इसके पश्चात् गोसाँईजी के पास जब वह गईं तब उनके चरण पकड़कर रोने लगी। गोसाँईजी ने उसे सांत्वना देते हुए कहा– "हो गया! हो गया! अब उठो और मत रो! सत्यकुमार के लिए शोक करना उचित नहीं है उसकी मृत्यु अत्यन्त सुन्दर है।" गोसाँईजी के आशीर्वाद एवं सांत्वना वाणी सुनते ही देवी के अन्तरात्मा का शोक–ताप सब दूर हो गया। मन में जितने प्रश्न थे सब शान्त हो गए। गोसाँईजी जब घर के भीतर भोजन के लिए जाते थे तब देवी के मन के प्रश्नों के उत्तर अपने से देते थे। इस तरह देवी की शोकाग्नि पूर्णतः दूर हो गई।

कोलकाता में गोसाँईजी के निकट तीन दिन रहने के पश्चात् उनके बड़े भाई ने राखाल बाबू से कहा कि देवी की दो वर्ष की एक कन्या एवं पाँच वर्ष का एक पुत्र घर में है। आप गोसाँईजी से कहकर उसे वापस भेजिए। राखलबाबू ने

गोसाँईजी से सब बातें कही। गोसाँईजी ने कहा– "आज ही उसे भेज दो। बच्चों का प्रतिपालन अभी उसका प्रधान कर्तव्य है। यह पति की स्मृति एवं भगवान का दान है।"

घर जाने की बात सुनते ही देवी रोने लगी एवं कहने लगी "गोस्वामी प्रभुजी के दर्शन करने पर मेरा शोक दूर हो गया है। वरिशाल में जाकर पुनः शोक उत्पन्न होगा। मैं अब क्या लेकर जाऊँगी। क्या लेकर रहूँगी ? यदि प्रभुजी का जटा–जूटधारी एक चित्र मुझे मिल जाता तो उसे लेकर मैं रह जाती।" राखाल बाबू ने कहा, "यह मिलने पर तुम्हे और हम सभी को एक अवलम्बन मिल जाता। क्या वे दया करके चित्र देंगे ? इस प्रकार के चित्र के लिए कितने लोगों ने उनसे अनुरोध किया है पर उन्होंने किसी की बात नहीं मानी। वे बोलते थे – मेरे नाम के प्रचार से क्या होगा। मेरा नाम गहरे पानी के समुद्र में डूब जावें। फिर भी तुम्हारी बात एकबार बोलकर चेष्टा की जाय।" इन सब बातों को सुनकर देवी बोली, "नहीं, आप मेरी बात मत बोलिये, मुझे लज्जा होती है। कितने अनुगत भक्त शिष्यों का अनुरोध वे नहीं माने–मैं कौन हूँ ? उनके निकट मेरी यह प्रार्थना ठीक नहीं है ? आप मेरे लिए उनके पास अनुरोध मत कीजिये।" देवी के निषेध करने पर भी राखाल बाबू गोस्वामीजी के पास गए एवं गोस्वामीजी से कहा, "योगमाया रो रही है वह जाना नहीं चाहती। वह कहती है कि मैं क्या लेकर रहूँगी ? यदि मुझे गोसाँईजी का एक चित्र मिल जाता तो उसे लेकर घर में रह जाती।" राखाल बाबू की बातों को सुनकर गोसाँईजी ने सहास्य कहा, "मेरे चित्र पाने पर यदि उसे शान्ति मिले तो फोटो ले लो।" राखाल बाबू ने तुरन्त देवी के पास आकर कहा, "देखो, योगमाया! प्रभु का आदेश हो गया अब तुम्हें कोई कष्ट नहीं रहेगा। तुम्हारे लिए हम सभी को फोटो मिल जावेगी।" राखाल बाबू बेंगाल फोटाग्राफर के मालिक नीलमाधव के पास गए। उस दिन वर्षा हो रही थी इस कारण फोटो खीचना संभव नहीं हुआ। गोस्वामीजी के निर्देशानुसार देवी उसी दिन वरिशाल रवाना हो गई। जाने के पूर्व गोसाँईजी ने पुनः उसे कहा – "सन्तान का पालन–पोषण अभी तुम्हारा प्रधान कर्तव्य है। यह पति का चिन्ह एवं भगवान का दान है। इस भावना से मन लगाकर सन्तान का पालन करो। जितना हो सके 'नाम' करो उसी से तुम्हारे धर्म की रक्षा होगी एवं शान्ति मिलेगी।"

योगमाया देवी के वरिशाल जाने के चार दिन बाद फोटोग्राफर आया। गोसाँईजी का दर्शन करके वह आर्तनाद करके रोने लगा एवं कहने लगा, "आप का फोटो लेकर उसे बेचकर काफी रुपये कमाऊँगा इसी भावना को लेकर मैं आया था। आपका दर्शन करने मैं नहीं आया।" इस प्रकार कहता हुआ वह शिशु की तरह रोने लगा। गोसाँईजी के दर्शन से वह इतना मुग्ध हो गया कि उसने पहले

दीक्षा के लिए प्रार्थना की। उसको प्रभुजी ने दीक्षा प्रदान की। उसके बाद उसने गोसाँईजी का फोटो लिया। बाद में जब उसे पता चला कि गोस्वामीजी बराबर फोटो लेने को मना करते थे पर एक महिला को सांत्वना देने के लिए वे सहमत हुए हैं, इसे जानकर वह बोला जिस महिला के लिए फोटो लेने के लिए आकर मुझे अमूल्य रत्न की प्राप्ति हुई उसका मूल्य मैं नहीं लूँगा।" योगमाया देवी ने जाते समय दो फोटो का मूल्य चार रुपये राखाल बाबू को दिया था। राखाल बाबू के बार–बार निषेध करने पर भी योगमया देवी रुपये देकर चली गयी थीं। राखाल बाबू ने दो फोटो अच्छी तरह मढ़ाकर देवी के पास भेज दिये।

फोटो प्राप्त कर योगमाया देवी अपने को धन्य मानने लगी। परम अनुराग एवं भक्तिपूर्वक देवी ने फोटो को स्थापित कर उसकी यथायोग्य सेवा पूजा प्रारम्भ की। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नानादि से निवृत होकर देवी जप एवं पूजा आदि करती थी। उसके बाद गृह कार्य में लगी रहती। सभी लोगों के भोजन के पश्चात् दोपहर एक बजे स्वपाक थोड़ा सा अन्न बनाकर गोसाँईजी को भोग लगाकर वह प्रसाद ग्रहण करती। इस तरह नियमित सेवा पूजा से क्रमशः उसे मन में शांति मिली। पर देवी के परिजनों के हृदयहीन आचरण एवं सहानुभूतिहीन व्यवहार से उसे क्लेश मिला। विमाता का दुर्व्यवहार सहन करते हुए सन्तानों का प्रतिपालन करते हुए अपने पिता के घर में वे रहने लगी। इतने कष्ट में दिन बिताने पर भी गोसाँईजी की सेवा पूजा से उनका मन एक विशेष आनन्द रस का आस्वादन करता था।

इस फोटो के बाद गोस्वामी ने और किसी को भी फोटो लेने की अनुमति नहीं दी। उनका कहना था, "अत्यन्त लज्जाजनक, धूलि कीट की अपेक्षा नश्वर इस देह का इतना सम्मान किस लिए ? पूर्व में विभिन्न लोगों के अनुरोध से जो फोटो ली गई थी अब वह अपराध लगता है। मुँह में विनय दिखाकर फोटो लेना अत्यन्त कपटता है।"

देवी को बहुत अच्छे स्वप्न आदि दर्शन होते रहते थे। स्वप्न दर्शन के संबंध में गोस्वामी प्रभुजी ने कहा था –

(1) स्वप्न में देवदर्शन यदि ठीक–ठीक हो तो विषय की आसक्ति दूर हो जाती है। इस देवदर्शन के विषय में मन में कभी सन्देह नहीं होगा। उनके वाक्यों को सुनकर एवं उन्हें स्पर्श कर जो आनन्द मिलेगा उसे भूल नहीं सकोगे। मन में ऐसा विश्वास होगा कि मैं धन्य हो गया। जो असली दर्शन नहीं हो उसमें इस प्रकार की भावना कभी नहीं होगी।

(2) सभी स्वप्न मिथ्या नहीं होते। अतीत (पिछले) जन्म के चित्र अनेक समय स्वप्न में देखे जाते है। भविष्य जीवन की घटना कभी–कभी

दिखलाई पड़ती है। सिर अथवा पेट में वायु अधिक होने से जो स्वप्न दिखलाई पड़ेंगे वे व्यर्थ या उलटे–सीधे कुछ भी होते हैं।

(3) यदि किसी को कभी कोई स्वप्न दिखलाई पड़े अथवा कोई तत्व लाभ होवे, उसे क्या प्रकाश करना उचित है ? जो बोलता है और जो सुनता है दोनों का अनिष्ट होता है। स्वप्न में कोई आश्चर्यजनक घटना देखने पर उसे प्रकाश करना उचित नहीं है। भगवान स्वयं यदि आकर कहे कि मैं आया हूँ तो भी संदिग्ध आत्मा उसपर विश्वास नहीं कर सकता। स्वप्न की बात यदि लोग विश्वास करते तो अब तक सब का उद्धार हो जाता।

देवी के भीतर जो अनुभूति होती थी या वे जो स्वप्न आदि दर्शन करती थीं उनमें से कुछ उन्होंने लिख रखा था। उन लेखों से कुछ घटनाओं का उल्लेख यहाँ दिया जा रहा है –

(1) पति के मृत्यु के एक महीने के भीतर बंगला सन् 1301 (सन् 1894 ई०) 15 वैशाख का स्वप्न दर्शन –

गोस्वामीजी के घर में गई। गोसाँईजी को सब बातें नहीं कह पाती थी इस कारण मन में सर्वदा कष्ट था। इस बार गोसाँईजी आनन्दमय लगे। मेरे मन की बातों को अपने से सब कहने लगे। गोसाँईजी कभी शयन कर रहे हैं तो कभी बैठे हैं। पति के सबंध में प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा – "उसकी भावना बहुत उच्च थी। वह तुमसे भी अधिक मुझे श्रद्धा एवं प्रेम करता था। पृथ्वी के अन्य सभी पदार्थों से वह मुझे अधिक चाहता था। मेरे संग के सिवा उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उसकी गुरुभक्ति, गुरुनिष्ठा एवं उसका गुरु में विश्वास अद्‌भुत था। इसके सिवाय वह संन्यासी भी था।" इस तरह की अनेक बातें गोसाँईजी कहते रहे। मेरे संबंध में उन्होंने कहा "तुम्हें अभी देरी है, कर्म–भोग बाकी है बाद में होगा।" इस तरह लगभग सारी रात उनसे बातें करती रही। उनका आयाचित स्नेह एवं पति के प्रति उनके विचारों को सुनकर मन में बहुत आनन्द मिला।

(2) 1301 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) 23 ज्येष्ठ– गोसाँईजी के घर गई हूँ। वे भोजन करने बैठे हैं। मुझसे उन्होंने नारियल का चूर्ण माँगा। चूर्ण करने के लिए कोई वस्तु न मिली। इस बीच गोसाँईजी की सास आईं। उन्होंने तुरन्त नारियल चूरा तैयार कर गोसाँईजी को दिया। गोसाँईजी भोजन करके उठे। अपने हाथ से नारियल चूर्ण न दे सकने के कारण मुझे बहुत दुःख हुआ। इस तरह काफी देर तक गुरु–दर्शन होता रहा।

(3) स्थान– वरिशाल् 1301 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) 6 श्रावण –

पति के कुंभ मेले में जाने पर उनकी मृत्यु होगी ऐसा जानकर मैं उन्हें नहीं

जाने दे रही हूँ। वे कुंभ में जाने के लिऐ बहुत समझाने लगे। उन्होंने कहा, "दो दिन हो चाहे एक वर्ष हो मृत्यु तो एक दिन अवश्य होगी। मनुष्य यह नहीं समझता है वह कभी झगड़ा करता है, कभी कटु वाक्य कहता है, न रहने पर तब उसे समझ में आता है कि कितना कष्ट है।"

थोड़ी देर बाद देखी कि मैं भी कुंभ मेले में गई हूँ। वहाँ मनोरंजन बाबू को देखा। वे मुझे सब स्थानों को दिखाने लगे अक्षयवट, विभिन्न साधु–महात्माओं को दिखाते हुए अन्त में गोसाँईजी को दिखाया। मन में बहुत आनन्द मिला।

(4) 1301 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) 31 श्रावण – कोलकाता में गोसाँईजी के पास गई हूँ। उनका दर्शन मिला। वे बैठकर उस समय तिलक लगा रहे थे। मैं विभिन्न प्रश्न पूछने लगी एवं वे उत्तर देने लगे। मैंने पूछा, श्री चैतन्य देव क्या अभी भी हैं। उन्होंने कहा – "हाँ अवश्य हैं।" इस तरह बातें होती रही। स्वप्न के समय जो बातें हुई सब याद नहीं रही इसलिये दुःख हुआ।

(5) 1301 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) 26 आश्विन – सुबह के समय स्वप्न देखा कि मैं एक गुरुबहन के साथ गोसाँईजी के घर में गई। गोसाँईजी को मैंने एक बरामदे में बैठे हुए देखा। कुछ लोग वहाँ उपस्थित थे। गुरुभाई राखाल बाबू गोसाँईजी के सामने आँखे बन्द करके चित होकर लेटे हुए है। लोग उनके ऊपर फूल, बेलबत्ती आदि दिए हैं। ऊपर जाने के लिए इन सब लोगों के बीच से जाना होगा सोचकर मैं खड़ी रही। गुरु बहन उन लोगों के बीच से गोसाँईजी को बिना प्रणाम किए ऊपर चली गई। मैं वहीं दूर से उन्हें प्रणाम की। गोसाँईजी ने कहा – मुझे क्यों प्रणाम कर रही हो, मेरे कमरे में स्त्रियाँ कैसे आ गई ? मैं रोते हुए ऊपर कमरे में चली गई। थोड़ी देर बाद गोसाँईजी ऊपर आ गए। मैं बहुत कुछ उनसे कहने लगी। वे भी आनन्दपूर्वक बातें करते हुए बोले – आहा ! सत्यकुमार चला गया ! इस तरह काफी देर तक वे बात करते रहे।

(6) 1301 बगांब्द (सन् 1894 ई०) 8 पौष – एक अशुभ स्वप्न देखा। ठाकुर–घर में आँखे बन्द करके नाम–जप कर रही थी इसी समय एक गुरु बहन रोते हुए आकर बोलीं कि गोसाँईजी ने शरीर त्याग दिया। यह संवाद सुनकर मैं भी रोने लगी। नींद टूट गई। सुना था कि खराब सपना देखने पर फिर से सोना चाहिए इस कारण सो गई। थोड़ी देर के बाद सुना कि गोसाँईजी बात कर रहे हैं, उनकी बातों को सुनकर बहुत आनन्द मिला। ऐसा लगा कि उनके अभाव में मुझे जो कष्ट हुआ था उसे वे दूर करने के लिए उपदेश दे रहे हैं।

उपरोक्त कुछ स्वप्न दृष्टांत स्वरूप दिए गए हैं। साधक की साधना ठीक चल रही है कि नहीं, स्वप्न उसका एक प्रमुख निदर्शन है।

देवी बंगाब्द 1317 (सन् 1910 ई०) में पुरी गईं पर उन्हें आश्रम में स्थान नहीं मिला। अन्यत्र किराये के मकान में वे लोग रहने लगे। आश्रम में रहने के लिए स्थान नहीं मिलने से देवी को मन में बहुत कष्ट हुआ। इस बीच देवी का शरीर भी अचानक अस्वस्थ हो गया। जिन लोगों के साथ देवी आईं थी वे लोग आश्रम के मंदिर की प्रतिष्ठा उत्सव के पहले ही वापस जाने के लिए तैयार हो गए। उस समय देवी ने एकदिन स्वप्न में गोसाँईजी को देखा। वे उसे बार–बार पुरी में रहने के लिए कह रहे थे। इस स्वप्न के पश्चात् देवी ने मन में स्थिर किया, "यदि स्वप्न ठीक है एवं यह गोसाँईजी की इच्छा है तो उनका वापस जाना नहीं होगा।" कुटुम्ब के लोग निर्दिष्ट दिन यात्रा करने की सब ने तैयारी कर ली पर देवी की इच्छा थी मंदिर प्रतिष्ठा उत्सव को देखने की। अचानक उस दिन दोपहर 12 बजे मंदिर के सेवाधिकारी श्री शारदाकान्त जी देवी के पास आए एवं उन्हें महाप्रसाद देकर कहा–"बहन जी आज आप जा रही है इस कारण मैं भेट करने आया। आपका स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं है और सामने मंदिर प्रतिष्ठा भी है, आपका अभी जाना नहीं होगा। आप आश्रम में आ जाईये वहाँ मैं सब व्यवस्था कर दूँगा। मेरी बात आप मान लीजिये।" ऐसा कहकर शारदाकान्त चले गए। शारदाकान्त के साथ देवी का विशेष परिचय न रहने पर भी इस प्रकार अचानक आना एवं आश्रम में रहने के अनुरोध को देवी टाल न सकीं। आश्रम में आने पर देवी को एक कमरा भी मिल गया। देवी गोसाँईजी को बार–बार प्रणाम करते हुए अपने स्वप्न को सत्य होते देखकर बहुत आनन्दित हुईं। इस तरह पुरी में देवी कई बार आयी थी।

देवी की योगसाधना नाम की एक कन्या थी। उसका विवाह 12 वर्ष की उम्र में अच्छे धनी परिवार में हो गया। परन्तु विवाह के थोड़े दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। देवी के मन में विशेष धक्का लगा। उस बार पुरी न जाकर देवी काशी चली गईं एवं शोकमग्न होकर प्रायः काशी के घाटों में बैठी रहती थीं। एकदिन शाम को देवी हनुमान घाट के पास बैठी थीं। उस समय अचानक कन्या योगसाधना गंगाजी के भीतर से निकली एवं अपनी माँ से बोली, "माँ मैं बहुत आनन्द में हूँ। इस राज्य में सदा आनन्द है। मैंने अपनी आनन्दमय प्रसन्न मूर्ति तुम्हें दिखला दी – इसी गंगाजी में मैं हूँ और मैं नहीं आऊँगी।" ऐसा कहकर कन्या गंगाजी में फिर से अदृश्य हो गई। देवी इस दृश्य को देखकर चौंक उठी पर इस घटना के पश्चात् और कभी भी स्वप्न आदि में कन्या को नहीं देखा। उसके हृदय में धीरे–धीरे शांति आने लगी। शोक भी दूर हो गया।

एक वर्ष काशी में रहकर वह पुत्र के साथ वृन्दावन आईं। यहाँ यमुनाजी का दर्शन एवं मंदिरों में विग्रहों के दर्शन से देवी को बहुत आनन्द मिला। उस समय गोसाँईजी के कुछ शिष्य वृन्दावन में रहते थे। उन लोगों ने देवी के रहने आदि

की अच्छी व्यवस्था कर दी। वृन्दावन में रहते समय भी देवी को अच्छे स्वप्न प्रायः दिखलाई पड़ते थे। उस समय गोसाँईजी के शिष्य विधुभूषण घोष महाशय ने एकदिन देवी से कहा – **"जब वृन्दावन आ ही गए हैं तो एक वर्ष तक यहाँ अविच्छिन्न रूप से रहिये। यथाशक्ति साधन–भजन करते रहिये। यहाँ वहाँ घूम कर समय बर्बाद मत करिये। बृज में की गई साधना कभी भी व्यर्थ नहीं होती। देखना, ऐसी कोई अच्छी अनुभूति होगी कि आपको और कोई अभाव नहीं रहेगा।"**

विधुबाबू के निर्देशानुसार चलकर वृन्दावन में देवी को गोसाँईजी का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ। दूसरा माघ को अचानक देवी को अत्यन्त सिर दर्द के साथ बुखार हुआ। तीन दिन के बाद शरीर में लाल दाने उभर आए। देवी ने सोचा शायद मोती झीरा (छोटी माता) हो गई है। यह रोग संक्रामक है इस कारण देवी पास के एक खाली कमरे में चली गई एवं रोग की यंत्रणा में छटपटाने करने लगी। देवी बड़ी दुश्चिन्ता में पड़ गई कि इस संक्रामक रोग में यहाँ कौन देखेगा ? इसी समय अचानक दयालु गुरुदेव ने देवी को दर्शन दिया। देवी ने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि ऊपर की छत की सीढ़ी की ओर से गोसाँईजी कमरे के भीतर आए, उनके आविर्भाव से कमरा आलोकित हो उठा। देवी अवाक एवं स्तंभित होकर उनके प्रफुलिल्त दिव्य शरीर को देखने लगीं। गोस्वामी प्रभुजी ने कोई बात नहीं कही। केवल प्रसन्न दृष्टि द्वारा अभयदान दिया। इस समय देवी ऐसी असीम आनन्द में मग्न हो गईं कि उसकी वाक् शक्ति मानों लुप्त हो गई। देवी ने इस दर्शन के बारे में लिखा था– "आनन्द से प्राण मन भर गया। मैं लेटी हुई थी उसी अवस्था में उनको देखने लगी। गुरुदेव खड़े थे, उठकर उनके चरण पकड़ लूँ इस तरह की इच्छा मन में नहीं हुई। जिस आनन्द सागर में निमग्न हो गई थी उस समय कुछ कहने की शक्ति भी नहीं थी। कितनी देर तक वे थे कह नहीं सकती। थोड़ी देर बाद धीरे–धीरे वे चले गए। अभी तक मुझे शरीर का स्मरण ही नहीं था। उनके अन्तर्ध्यान होते ही शरीर में चेतना आई। सोचने लगी की यह मैंने क्या देखा ? ऐसे देवदुर्लभ दर्शन प्राप्त कर उनके चरणों की धूलि न ले सकी। इस कारण मन में कष्ट हुआ।" गुरुदेव के पुनः दर्शन की आकांक्षा से देवी सीढ़ी के पास गई पर दरवाजा भीतर से बन्द था। ऊपर छत में जाकर उन्होंने चारों तरफ देखा पर वे नहीं मिले। निराश मन से वापस आकर वह फिर से बिस्तर में लेट गईं एवं गुरुदेव की अपार कृपा की चिन्ता में मग्न हो गईं। इस घटना के बाद क्रमशः उनका शरीर स्वस्थ हो गया।

इस वर्ष पुरी में रथयात्रा के समय रहने का सौभाग्य हुआ देवी को। रथ यात्रा के पश्चात् समुद्र स्नान एवं भीषण गर्मी के कारण देवी को तेज बुखार हो गया।

पुत्र प्रेमानन्द पुरी आकर माँ को वापस ले गया। इस बार गेण्डारिया आश्रम में आकर देवी को आनन्द नहीं मिला। यद्यपि गोसाँईजी की कन्या शांतिसुधा देवी के स्नेहपूर्ण व्यवहार से देवी को अच्छा लगा पर आश्रम के अन्य लोगों के आपसी मतभेद ने मन को विचलित कर दिया। उस समय नारायणगंज में रहते समय देवी ने एक स्वप्न देखा। उन्होंने लिखा था – सुबह स्वप्न देखा, गोसाँईजी शिष्यों के सहित गेण्डारिया आश्रम में हैं। पर सुबह से वे दिखलाई नहीं दे रहे हैं। उन्हें सब जगह ढूँढा गया पर वे कहीं नहीं मिले। सभी लोग अत्यन्त चिन्तित हो गए। दोपहर के समय उन्हें कहीं से आते हुए देखा गया। उनके सारे शरीर में आघात के चिन्ह थे। शरीर के विभिन्न स्थानों में फूल गया था एवं चोट के निशान दिखलाई दे रहे थे। इसे देखकर मेरे हृदय में बहुत कष्ट होने लगा। सभी लोग उन्हें इस अवस्था में देखकर अश्रुविसर्जन कर रहे थे। गोसाँईजी अपनी कुटिया के भीतर जाकर लेट गए। मैं भीतर जाकर उनके शरीर को दबाने लगी जिससे पीड़ा से उनको कुछ आराम मिले।

इस प्रकार स्वप्न देखकर इसका तात्पर्य उनके समझ में इस प्रकार आया कि गुरुजी अपने शरीर में अंग प्रत्यंगों में आघात का चिन्ह दिखाकर कहना चाहते हैं कि आश्रम के भीतर आपसी मतभेद एवं अतिथियों के साथ खराब व्यवहार करने से आश्रम के देवता के अंग में उसका आघात लगता है। इस कारण आश्रमवासियों को अपना व्यवहार एवं आचरण संयत एवं अच्छा रखना आवश्यक है। गोस्वामीजी ने गेण्डारिया आश्रम में अपने हाथों से एक कागज पर लिखा था –

"श्री हरि सहाय"

सविनय निवेदनमिदम्

इस आश्रम में जो लोग वास करेगें अथवा दर्शनार्थी होकर उपस्थित होंगे, उनके निकट में विनीत निवेदन कर रहा हूँ कि इस आश्रम में कोई पर–निन्दा, वृथा तर्क–वितर्क एवं वाद–प्रतिवाद न करें। यदि किसी के संबंध में कोई बात बोलना हो तो उसके समक्ष उसे बोलें, नहीं तो परस्पर आपस में असद्भाव आ सकता है। मनुष्य जीवन सीमित एवं क्षणिक है। वृथा चर्चा में समय नष्ट करना उचित नहीं इस कारण सभी के चरणों में यह निवेदन करता हूँ।

–निवेदक– श्री विजयकृष्ण गोस्वामी, दिनांक 1302 बंगाब्द, 7 आश्विन (सन् 1895 ई०)

इसके पश्चात् 1326 बंगाब्द (सन् 1919 ई०)देवी पुनः पुरी चली गईं। इस बार समुद्र के किनारे रहने लगीं। एकदिन असावधानीवश अचानक उनके पैर की

अँगुली में बहुत जोर से चोट लगी। रथयात्रा समीप था। देवी को डाक्टर ने कहा कि नाखून के भीतर बहुत मवाद जम गया है। आपरेशन करना होगा। देवी को दुश्चिन्ता हो गई। उसी दिन रात्रि के समय स्वप्न में गोसाँईजी ने देवी से कहा– "घाव में अपान का पत्ता बांध दो, ठीक हो जायेगा।" स्वप्न में देवी बोली कि इसमें सिद्ध मलहम लगा रही हूँ। गोसाँईजी ने कहा उस सिद्ध मलहम के ऊपर अपान की पत्ती बांध दो। नींद टूट गई। सुबह होते ही गोसाँईजी के आश्रम से अपान की पत्ती लाकर सिद्ध मलहम के ऊपर बांध दिया गया। 14 आषाढ़ रथयात्रा के दिन आश्रम से शारदाकान्त जी ने काठियाबाबा के शिष्य द्वारिकादास बाबाजी को देवी के रथ दर्शन में सहायता के लिए भेजा। बाबाजी को देवी ने कहा कि जब तीनों प्रभु रथ में चढ़ जावेंगे तब आप मुझे ले चलिएगा। मैं पैदल जाऊंगी। दोपहर 12 बजे बाबाजी की सहायता से देवी रथ दर्शन करने निकल पड़ीं। तीनों रथों के विग्रह का दर्शन एवं रथ के रस्सी को खींचकर देवी को बहुत आनन्द मिला। आश्चर्य की बात है कि अंगुलियों में दर्द एकदम नहीं था। शरीर भी ठीक हो गया।

रथयात्रा के समय देवी कई बार पुरी गई थी। एकबार स्वप्न में देवी को पति ने कहा कागज पेंसिल तकिये के नीचे रखना। गुरुजी को स्मरण करते हुए निद्रित होना। जो भी दर्शन हो अच्छे स्वप्न आदि लिख कर रखना। तब ठीक होगा। क्योंकि बाद में लिखने से सब ठीक से याद नहीं रहता। इस स्वप्न दर्शन के बाद से देवी अपने स्वप्न आदि अधिकांश लिखकर रखती थीं।

गेण्डारिया आश्रम के सम्बन्ध में देवी ने लिखा है –"गेण्डारियावासी बालक, वृद्ध, महिलाएँ सभी एक अपूर्व भाव में मग्न रहते थे। गेण्डारिया आश्रम के आसपास रहने वाले सभी यहाँ तक कि गर्भस्थ शिशुओं ने भी गोस्वामीजी की कृपा प्राप्त की थी। छोटे–छोटे बच्चे सरल, निष्कपट और सत्यवादी थे। उनके भीतर हिंसा कुटीलता आदि भावना नहीं थी।

हाय! वह दिन आज नहीं है। श्याम के बिना जिस तरह वृन्दावन शून्य हो गया था उसी तरह गोसाँईजी के बिना गेण्डारिया मृतवत् हो गया था।"

योगमाया देवी के जीवन चरित संबंधित अनेक घटनाएँ आज भी अज्ञात है। देवी ने शेष जीवन पुरी में बिताया। मृत्यु के समय उनकी उम्र लगभग 90 वर्ष की थी। उन्होंने काशी में शरीर त्याग किया था।

****

श्रीमती मन्दाकिनी देवी

पन्द्रहवी शताब्दी में श्री चैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने सर्वत्र भगवन्नाम नाम प्रचार किया था। उनके द्वारा प्रचारित नाम किस प्रकार शक्तिपूर्ण था उसका उदाहरण मिलता है मन्दाकिनी देवी के जीवन में।

मन्दाकिनी देवी का पित्रालय था वर्धमान जिले के पांईटा नामक ग्राम में। गोस्वामी प्रभु के अनन्यतम शिष्य देवेन्द्रनाथ सामन्त के मामा का घर भी यहीं था। मन्दाकिनी देवी कुटम्ब के सम्पर्क में देवेन्द्रनाथ की मौसी थीं। इसी कारण गोस्वामीजी के शिष्य मंडली में वे 'देवेन्द्र के मौसी' नाम से प्रसिद्ध थीं। उस समय के रीति अनुसार अल्पायु में देवी का विवाह हुआ हुगली जिला के अन्तर्गत मलयपुर ग्राम के सामन्त परिवार में। कुछ सन्तानों की जननी होने पर भी केवल एक कन्या के सिवाय सभी की मृत्यु हो गई। थोड़े दिनों के पश्चात् पति की भी मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु के कुछ वर्षों के बाद कन्या की भी मृत्यु हो गई। इस तरह संसार के आकर्षण अपने आप चले गए। गोसाँईजी ने कहा था – **"जो मेरी आशा करता है उसका मैं सर्वनाश करता हूँ। उसके बाद भी यदि वह मेरी आशा नहीं छोड़ता तो मैं उसे दासों का दास बनाता हूँ।"** यहाँ सर्वनाश का अर्थ सब आसक्तियों एवं भगवान को पाने में प्रतिबन्धक सभी का नाश है। देवी का जीवन इस सत्य कथन का प्रमाण है –

असहाय एवं पति पुत्र हीन देवी को संसार में अत्यन्त संघर्ष एवं प्रतिकूल वातावरण के भीतर से अग्रसर होना पड़ा पर पूर्वजन्म के पुण्य के प्रभाव से आँखों के सामने विभिन्न देवी–देवताओं एवं महात्माओं को प्रायः देखती थीं। उस समय हर परिवार में रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का नियमित पाठ होता था। देवी सर्वदा इस सत्संग में जाती थी। एकदिन भागवत पाठ के समय देवी ने सुना कि व्याध के तीर से भगवान श्रीकृष्ण के कोमल चरणों में आघात लगी एवं इसी आघात से उन्होंने अपना देह त्याग दिया। इस कथा को सुनकर देवी के आँखों से अश्रुपात होने लगा। मन एवं प्राण श्रीकृष्ण के इस कष्ट का स्मरण कर विचलित हो गया। इस कष्ट को वह भूल न सकी एवं सर्वदा प्राणों में यही चिन्ता छाई रहती थी। इस घटना के बाद से देवी का जीवन सम्पूर्ण परिवर्तित हो गया। पहले जिन कार्यों में आनन्द पाती थीं अब सब असार लगने लगा। आँखों के सामने इसी समय से दिव्य दर्शन विशेष रूप से प्रारम्भ हो गया। पर वे इन सब

देवी–देवताओं के शब्द नहीं सुन पाती थी। देवी अनेक समय इनसे विभिन्न प्रश्न करती पर कोई उत्तर उसे नहीं मिलता था। देवी मन में सोचती थी कि शायद अन्य लोग भी इसी तरह दर्शन पाते हैं। परिवार के लोगों से इस विषय पर चर्चा करने से वे लोग उपहास करने लगे। कोई इन्हें विक्षिप्त या पागल कहने लगे। पर देवी को खुली आँखों से यह सब दर्शन होता रहता था।

कुछ दिनों के बाद भोजन बनाते समय कभी–कभी श्रीकृष्ण दर्शन देते थे, परन्तु कोई बात नहीं होती थी। एकदिन हँस के ऊपर सवार एक देवता का दर्शन हुआ। देवी उनसे पूछी– "बाबा तुम कौन हो ?" उस दिन प्रकाशित देवता ने कहा – "मैं ब्रह्मा हूँ।" इसके बाद से कभी–कभी इन लोगों की बात सुनाई पड़ने लगी। कभी–कभी वैष्णव महात्माओं को कीर्तन करते हुए जाते देखती। उनमें कोई मुंडित मस्तक, नामावली धारण किए हुए तो कोई अन्य वेश में संकीर्तन में मग्न दिखलाई पड़ते थे।

उस ग्राम में कुछ व्यक्ति गोस्वामीजी के निकट दीक्षा प्राप्त किए थे। पर वे अपने को सर्वदा गुप्त रखते थे। सामन्त परिवार क्षत्रिय परिवार होने से उनका आचार एवं आचरण सम्पूर्ण विभिन्न प्रकार का था। देवी के ससुराल के दो युवक जगदीश एवं जगबन्धु उस समय कोलकाता में कॉलेज में पढ़ते थे। देवेन्द्रनाथ सामन्त के निकट गोस्वामीजी की बात सुनकर वे लोग गुप्त रूप से प्रायः गोस्वामीजी के पास जाते रहते थे। इस तरह गोस्वामीजी के शिष्यों के सत्संग के प्रभाव से अध्यात्म जगत् के दर्शन आदि के सम्बन्ध में उन्हें थोड़ा अनुभव था। 1300 बंगाब्द (सन् 1893 ई०) में कॉलेज के अवकाश के समय जब वे लोग घर आए तब एकदिन मन्दाकिनी देवी से इन लोगों का विशेष परिचय हुआ। देवी के अनुभव एवं दर्शनों को सुनकर वे लोग समझ गए कि इस तरह के असाधारण दर्शन किसी–किसी भाग्यवान को ही होते हैं। वे लोग देवी को अत्यन्त श्रद्धा करते थे एवं उनकी सब बातों पर विश्वास करते थे।

एकदिन दोपहर को जमीन पर कपड़े बिछाकर देवी विश्राम कर रही थीं, ठीक उसी समय उन्होंने देखा कि एक स्थूलकाय, गेरूआ वस्त्र धारण किए एवं जटाधारी संन्यासी घर के भीतर तखत् पर बैठे हुए हैं। अचानक एक अपरिचित संन्यासी को अपने कमरे के भीतर देखकर देवी घबड़ा गईं। देवी ने पूछा – "बाबा तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आए हो ? "संन्यासी ने कहा, "मैं देवेन्द्र सामन्त का गुरु हूँ। इस लोक एवं परलोकवासी महात्मा लोग तुम्हें गेण्डारिया जाने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।" ऐसा कहकर संन्यासी अदृश्य हो गए।

संन्यासी इस तरह एकान्त कमरे में कहाँ से आए एवं अचानक अदृश्य हो गए यह सोचकर देवी अत्यन्त विस्मित हो गईं। इस संम्बन्ध में उन्होंने जगदीश एवं

जगबन्धु से चर्चा की। वे लोग समझ गए कि गोस्वामी प्रभुजी ने देवी पर कृपा की है। उन लोगों के पास गोसाँईजी का चित्र था। उसे देखते ही देवी ने कहा कि इसी संन्यासी ने मुझे दर्शन देकर गेण्डारिया जाने का निर्देश दिया था। गेण्डारिया में गोस्वामीजी का आश्रम है एवं वह यहाँ से बहुत दूर ढाका (पूर्व बंगाल) में है, सुनकर देवी वहाँ ले जाने के लिए उनसे अनुरोध करने लगी। यद्यपि वे लोग देवी के प्राप्त दर्शन के सम्बन्ध में निःसंशय थे पर परिवार के लोगों से छिपाकर देवी को ले जाने का साहस उनमें नहीं था।

वर्षा काल में मलयपुर ग्राम सब तरफ बाढ़ के पानी से डूब जाता था। कोलकाता जाने के लिए तारकेश्वर आकर ट्रेन पकड़ना पड़ता था। कॉलेज खुलने का समय हो गया था। दोनों युवक कोलकाता जाने के लिए तैयार हुए। देवी बार–बार उनसे कोलकाता तक ले जाने का अनुरोध करने लगीं। इस बीच देवी ने रास्ते के खर्च के लिए कुछ रुपये भी जमा कर लिए पर वे लोग उन्हें साथ में ले जाने का साहस न कर पाये। एक छोटी नाव में वे दोनों चढ़ गए एवं निम्न भूमि जहाँ काफी पानी जम गया था उसे पार करने लगे। असहाय एवं गेण्डारिया जाने के लिये व्याकुल देवी उस गहरे पानी में कूद गई। उन लोगों को मालूम था कि देवी को तैरना नहीं आता। अतः बाध्य होकर उन्होंने देवी को अपनी नाव में उठाया।

इस तरह उन लोगों के साथ देवी पहले तारकेश्वर आईं एवं वहाँ से कोलकाता आईं। इस घटना का विवरण देते हुए देवी ने कहा था–

"अच्छे घर की एक कुलवधु, कभी घर से बाहर नहीं गई थी पर मुझे कोई डर नहीं था क्योंकि गोस्वामीजी एवं एक महात्मा आगे एवं पीछे रहकर अपने साथ मुझे ले गए थे। मैं तारकेश्वर से हावड़ा आई। हावड़ा से सियालदह स्टेशन में आकर यहाँ से गोआलन्दा आई, यहाँ से स्टीमर में नारायणगंज आना पड़ा। यहाँ से फिर ट्रेन में चढकर फूलबेड़ा नामक स्टेशन में पहुँची। रास्ते में सर्वदा गोसाँईजी एवं वे महात्मा साथ में थे। फूलबेड़ा से ढाका आ गई। ढाका में लोगों से पूछकर मालूम चला कि अभी संध्या हो गई है, इस कारण अभी गेण्डारिया जाना सम्भव नहीं है, कल सुबह जाना होगा। अन्त में संध्या के समय एक स्थान में रात्रि विश्राम के लिए गई। वह स्थान एक वेश्या का घर था। मिट्टी का दुमंजिला मकान था, वे लोग ऊपर रहते थे। नीचे एक कमरे में बकरियां थी। वहीं मैंने रात बिताई। मच्छरों के कारण रातभर नींद नहीं हुई। प्राण में बहुत ही उद्वेग था कि कब प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन मिलेगा। सुबह होते ही पूछते हुए गेण्डारिया आश्रम में पहुँच गई। उस समय हल्की वर्षा हो रही थी। एक फूस की झोपड़ी के नीचे आकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर में एक व्यक्ति मुझे इस तरह खड़ी देखकर मेरा परिचय लेने के

बाद गोसाँईजी की सास मुक्तकेशी देवी के पास ले गए। बाद में मालूम चला कि वह व्यक्ति थे गोस्वामीजी के अत्यन्त प्रिय भक्त श्रीधर घोष।"

मन्दाकिनी देवी की सब बातें सुनकर मुक्तकेशी देवी उन्हें गोसाँईजी के पास ले गई। गोस्वामी प्रभुजी को देखते ही देवी समझ गई कि इन्हीं महात्मा जी ने दर्शन देकर गेण्डारिया आने के लिए कहा था। देवी उन्हें प्रणाम करने के बाद पूछी, "आपने मुझे यहाँ क्यों बुलाया था ?" गोसाँईजी ने कहा, "इस लोक एवं परलोकवासी ऋषि, मुनि एवं महात्माओं का आदेश है कि तुम श्री वृन्दावन जाकर रहो।" देवी ने कहा, "वृन्दावन जाने का राह खर्च मेरे पास नहीं है।" गोसाँईजी ने कहा, "उसकी कोई चिन्ता मत करो। मैं सब व्यवस्था कर दूँगा।"

बाद में गोसाँईजी से जब पूछा गया कि देवी के पास आपके साथ और एक कौन महात्मा गए थे। गोसाँईजी ने कहा, "वे महात्मा थे श्री नित्यानन्द महाप्रभु।" गेण्डारिया में कुछ दिन रहने के पश्चात् शिष्य देवेन्द्रनाथ के नाम से गोस्वामीजी ने एक पत्र लिखकर देवी के हाथ में दिया। देवी ने वर्धमान जिले के बोकड़ा ग्राम में देवेन्द्रनाथ के पास आकर गोसाँईजी का पत्र दिया। पत्र इस प्रकार था।

"श्रीश्री हरि"

गेण्डारिया आश्रम 1300साल (सन् 1893 ई०)/15 आषाढ़

परम् कल्याणवरेषु,

तुम्हारी मौसी यहाँ आई हैं। वे हरिभक्त एवं मुक्तात्मा हैं उनका सभी साधन–भजन पूर्ण हो गया है और साधना की आवश्यकता नहीं है। सभी देवता, साधु–महात्मा एवं हरिभक्तगण उनकी रक्षा कर रहे हैं। उन्हें श्री वृन्दावन जाने के लिए भक्तगण अनुरोध कर रहे हैं उन्हें शीघ्र वृन्दावन भेज देना। कोई उन्हें पागल न समझे।

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी।

पत्र को गोस्वामीजी के निर्देशानुसार जगदबन्धु मैत्र ने लिखा था एवं हस्ताक्षर गोस्वामीजी का था। उस समय देवी को गेण्डारिया में गोसाँईजी ने दीक्षा नहीं दी थी। देवी को अलौकिक रुप से एक मंत्र मिला था। गोस्वामीजी ने कहा था, "जो मंत्र तुम्हें मिला है श्री वृन्दावन में जाकर निष्ठापूर्वक उसी का जप करो। सिद्ध योगीगण, देवतागण एवं हरिभक्तगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा कर रहे हैं। पूर्वजन्म में नित्यानन्द प्रभु के श्री मुख उच्चारित शक्तियुक्त नाम तुमने सुना था। तुम धन्य हो।"

कुछ समय अपने गाँव में रखने के पश्चात् देवेन्द्रनाथ एवं गुरुभाइयों ने

मिलकर मन्दाकिनी को श्री वृन्दावन भेज दिया। वृन्दावन जाकर राधाकुण्ड के पास एक कुटिया बनाकर वहीं वे रहती थीं एवं माधुकरी (भिक्षा) द्वारा अपने भोजन की व्यवस्था करती थीं। यहाँ भी अनेक प्रकार की परीक्षा एवं कष्ट के भीतर उन्हें रहना पड़ा। ऐसा दिन भी गया था कि पहनने की एक मात्र साड़ी सम्पूर्ण फट गयी थी। दूसरा वस्त्र न रहने से माधुकरी में जाना बन्द हो गया। अपरिचित व्यक्ति द्वारा भोजन लेकर कुटिया के बाहर पुकारने पर भी देवी बाहर न आ सकी। अन्त में उस व्यक्ति के भोजन सामग्री बाहर रखकर चले जाने के बाद देवी बाहर आकर द्रव्यादि भीतर ले गईं।

श्रीवृन्दावन में मन्दाकिनी देवी काफी दिनों तक कठोर साधना की। कुछ दिनों के बाद गोसाँईजी के दर्शन के लिए वे कोलकाता आईं। उस समय गोसाँईजी सुकिया स्ट्रीट में राखाल बाबू के घर में थे। गोसाँईजी को देखते ही देवी ने प्रश्न किया, "क्या आपने मुझे पहचाना" उत्तर देते समय अपने दोनों हाथों को सिर पर रखते हुए गोस्वामीजी ने कहा, "सिर पर रखा हूँ।" इस समय देवी ने दीक्षा के लिए प्रार्थना की। गोसाँई जी ने कहा, "श्री नित्यानन्द प्रभुजी की शक्ति आपके भीतर है आपको और दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है।" इसे सुनकर गोस्वामीजी के शिष्यों ने उनसे पूछा कि मन्दाकिनी देवी को नित्यानन्द प्रभु की शक्ति किस तरह प्राप्त हुई ? गोस्वामीजी ने कहा –**"गौरांग अवतार के समय जब पृथ्वी के जीव समझाने पर भी हरिनाम ग्रहण नहीं कर रहे थे तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को आदेश दिया तुम गंगातीर में भगवत्–नाम में शक्ति संचार करते हुए उच्चस्वर से कीर्तन करो। वह नाम स्थावर–जंगम, पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि जिसके भी कानों में प्रवेश करेगा, उसका उद्धार हो जायेगा। महाप्रभु के निर्देशानुसार नित्यानन्द प्रभु नाम प्रचार करते हुए भ्रमण करने लगे। मन्दाकिनी देवी उस जन्म में एकदिन कलसी (घड़ा) लेकर गंगा जल लाने जा रहीं थी। उस समय नित्यानन्द प्रभु द्वारा उच्चारित नाम को सुनने के कारण इनकी यह अवस्था हुई है। कहाँ कौन सा पुष्प कब खिलेगा कौन कह सकता है ?"**

गोसाँईजी की उपरोक्त बातों को सुनने पर भी मन्दाकिनी देवी दीक्षा लेने का संकल्प त्याग नहीं की। ऐसा लगता है गोस्वामीजी सद्‌गुरु रूप में अवतीर्ण हुए हैं, यह तत्व उनके निकट प्रकट हो गया था। देवी के बार–बार प्रार्थना करने पर 1300 बंगाब्द (सन् 1893 ई०) 16 आश्विन राखाल बाबू के घर में देवी की दीक्षा हुई। कुछ लोगों ने सोचा था कि दीक्षा के समय देवी के भीतर भावावेश या इसी तरह कुछ देखा जायेगा पर उस समय कुछ भी नहीं हुआ। इस विषय में किसी व्यक्ति के प्रश्न पर गोसाँईजी ने कहा, "वे अपने को गुप्त रखें हैं इसी कारण भाव का बाहरी प्रकाश दिखलाई नहीं पड़ा।"

दीक्षा के पश्चात् देवी पुनः श्रीवृन्दावन चली गईं एवं तपस्या में मग्न हो गईं। उस समय उनके निकट वृन्दावन की दिव्य लीला प्रकाशित होने लगी। कभी—कभी इस दिव्य लीला में वे भी प्रविष्ट हो जातीं थी। कभी श्रीकृष्ण उन्हें लेकर घने जंगल में जाते और अदृश्य हो जाते थे। तब देवी अकेली अस्थिर होकर श्रीकृष्ण को उलाहना देते हुए गाली देती रहती थी, "काला लड़का मुझे वन के भीतर लाकर कहाँ भाग गया पता नहीं! इत्यादि।" इस तरह मधुर भाव—समुद्र में देवी लीला रस आस्वादन कर धन्य हो गईं।

कभी—कभी मलयपुर में आकर भी देवी रहती थीं। एकान्त निर्जन में जब वे भोजन करती थी तब भावावेश में उनके नेत्रों से जो अश्रुधारा प्रवाहित होती थी उससे मिट्टी के घर की जमीन का गड्ढा अश्रुजल से भर जाता था। पर वे अपने प्राप्त अनुभव या दर्शन के सम्बन्ध में किसी से कुछ भी नहीं कहतीं।

गोस्वामीजी अंतिम समय जब पुरी आए थे तब देवी भी साथ में थी। गोस्वामीजी के शरीर त्याग देने के बाद उनके समाधि आश्रम में ही देवी रहने लगीं। उनकी कुटिया को 'देवेन्द्र की मौसी का घर' नाम से जाना जाता था। अपने शेष जीवन में साधना के कौन से उच्च शिखर पर वे थी यह साधारण लोगों के निकट अज्ञात रहा। इसी पवित्र श्री जगन्नाथजी के धाम में तथा गोसाँईजी के समाधि आश्रम में देवी ने अंतिम श्वास त्याग दी।

मन्दाकिनी देवी के इस संक्षिप्त जीवन से पता चलता है कि श्री चैतन्य एवं श्री नित्यानन्दजी द्वारा प्रचारित नाम में कितनी शक्ति है। पाँच सौ वर्ष पूर्व श्री नित्यानन्द जी द्वारा कथित नाम—कीर्तन की ध्वनि सुनकर मन्दाकिनी देवी के भीतर किस तरह भगवत प्रेम विकसित हुआ था यह एक दृष्टान्त स्वरूप है।

पुरी में रहते समय पंचम पुरुषार्थ 'प्रेमभक्ति' के सम्बन्ध में गोस्वोमीजी ने कहा था— **"अनेक योनियों का भ्रमण करने के बाद मनुष्य जन्म मिलता है। मैं कौन हूँ ? क्या कर रहा हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? आदि प्रश्न मन में आते हैं तो इस समय गुरु की प्राप्ति होती है। तीन जन्म सूर्य, तीन जन्म गणेश, एक सौ जन्म शक्ति उपासना फिर तीन जन्म शिव उपासना करनी पड़ती है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ की साधना करने के पश्चात् पंचम पुरुषार्थ भगवत्प्रेम प्राप्त होता है।"**

(संदर्भ ग्रन्थ— श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत)

****

श्रीमती सत्यदासी देवी

गुरु के ऊपर निर्भर रहने वाले शिष्य कठिन विपदा के समय भी उन्हीं के भरोसे रहते हैं। किसी भी प्रतिकूल अवस्था में उनका विश्वास शिथिल नहीं होता। इसका उज्ज्वल दृष्टांत है सत्यदासी देवी। देवी का पुत्र कोलकाता में ट्राम से उतरते वक्त एक मोटर कार के धक्के से गिर पड़ा। उसे बहुत जोर से चोट लगी और वह बेहोश हो गया। उसे अस्पताल में भर्ती किया गया। यह समाचार जब देवी को दिया गया, उस समय उन्होंने कहा, "मैं यहाँ क्या करूँगी ? गोसाँईजी का चरणामृत ले जाओ – वे ही देखेंगे।" इस प्रकार कठिन परीक्षा के समय भी देवी का मन विचलित नहीं हुआ एवं गुरु के प्रति उनका विश्वास अटल रहा।

देवी सत्यदासी का जन्म कोलकाता के कलूटोला के विख्यात सेन वंश में हुआ था। 1287 बंगाब्द (1880 ई०) 8 दिसम्बर को देवी का जन्म हुआ था। देवी के पिता सातकोड़ी सेन एवं माता का नाम सर्वमंगला था। केशवचन्द्र सेन भी इसी परिवार के घनिष्ट कुटुम्बी थे। देवी के मामा अभयनारायण राय सोमड़ा ग्राम के थे। इनकी विचित्र जीवनी श्री विजयकृष्ण परिजन के द्वितीय खण्ड में दी गई है।

उस समय स्त्री शिक्षा का प्रचलन बहुत कम था। देवी का नौ वर्ष की उम्र में बैद्यवाटी निवासी सुशील चन्द्रगुप्त के साथ विवाह हो गया। पूर्व जन्म के संस्कार वश बचपन से देवी को अलौकिक दर्शन आदि मिलते थे। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण ब्रह्मचारी कुलदानन्द द्वारा लिखित 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' ग्रंथ में मिलता है। इसका कुछ अंश यहाँ उद्‌धृत किया जा रहा है।

"अभयबाबू की भानजी सत्यदासी की बातें सुनकर मैं अवाक् रह गया। सौभाग्य से पूर्वजन्म में उसे किसी पर्वतवासी महापुरुष की कृपा प्राप्त हुई थी। उन्हीं की कृपा से बालिका को समय–समय पर गुरु स्मरण हो आता है। तब बालिका फूल चन्दन लगाकर गुरुजी के आसन के समक्ष पूजा करती है। पूजा के समय कभी–कभी भक्ति भाव से उसकी बाह्य संज्ञा लुप्त हो जाती है। इस समय तीन–चार घंटे समाधि मग्न रहती है। भाषा के शब्दों का ज्ञान नहीं है परन्तु बालिका संस्कृत में गुरु स्तुति करते जाती है। उस समय स्पष्ट रूप से गुरुजी के चरण चिन्ह आसन पर पड़ते हैं। महापुरुष के आविर्भाव के लक्षण बार–बार स्पष्ट होने से घर के लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ठाकुर (गोसाँईजी) के इस घर में पधारने से चार–पाँच दिन पहले बालिका से उनके गुरुदेव ने आकर कहा, "माँ

यहाँ एक महापुरुष आने वाले हैं, तुम उनसे दीक्षा ग्रहण करना।" सत्यदासी ने कहा, "आप तो हैं, फिर दूसरों से दीक्षा लेने की क्या आवश्यक्ता है।" तब गुरुदेव ने उससे कहा – "वर्तमान युग में कई लोग इनसे दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। यही ईश्वर का विधान है।" गोस्वामीजी चार–पाँच दिन बाद अपने माताजी के श्राद्ध के लिए पुत्र योगजीवन को लेकर इस घर में पधारे। तब सत्यदासी ने ठाकुर से गुरुदेव के आदेश की बात कही और दीक्षा के लिए प्रार्थना की। गोस्वामीजी ने कहा – "तुम्हारे गुरुदेव का आदेश मेरे लिए शिरोधार्य है। शीघ्र ही तुम्हें दीक्षा दूँगा।" गोस्वामीजी ने यथा शीघ्र सत्यदासी को साधन प्रदान किया। साधन के समय गुरु शक्ति के प्रभाव से सत्यदासी आसन से कुछ ऊपर उठकर कमरे में शून्य स्थान में अवस्थान कर रही थीं। धन्य है सत्यदासी। धन्य है गुरुदेव की असाधारण कृपा। यह कृपा ही हमारे लिए एक मात्र भरोसा है।"

सत्यदासी की नाना प्रकार की अलौकिक अवस्थाओं को रोग समझकर उनके माता–पिता बारम्बार गुरुदेव गोसाँईजी से उसके कल्याण की प्रार्थना करने लगे। गोस्वामीजी ने इस पर लिखा, "सत्यदासी को उनके माता–पिता पहचान नहीं पा रहे हैं, क्योंकि ऐसी अवस्थाएँ उन्होंने कभी देखी ही नहीं। संसार के लोग इसे पीड़ा कह रहे हैं। एक–दो लोग "पीड़ा नहीं है" कहे तो भी कोई लाभ नहीं होगा। इसे रोग कहकर महात्माओं से ठीक करने का अनुरोध करने पर इस अवस्था की अवज्ञा करना ही होगा। महात्मागण बार–बार कह तो रहे है कि यह रोग नहीं है पर इसे भी न मानना क्या अच्छा है ? पीड़ा कहाँ है ? क्या ज्वर है या उल्टियाँ हो रही है ? क्या पेट में दर्द है ? हृदय, फेफड़े, पील्हा, आमाशय, मूत्राशय, गर्भाशय कहीं भी कोई पीड़ा है ? तो फिर व्यर्थ पीड़ा का नाम क्यों दे रहे हैं ?"

देवी के पूर्वजन्म के गुरु हिमालय पर्वतवासी एक महात्मा देवी के शरीर में जब प्रवेश करते थे तब वे बाह्यज्ञान शून्य होकर संस्कृत में स्तोत्रादि पाठ करतीं थी। एक समय देखा गया कि सन्तान होने के पूर्व मध्याह्न भोजन के पश्चात् देवी रक्त वमन कर रही है। इसकी निवृत्ति किसी प्रकार नहीं हो रही थी। वायु परिवर्तन के लिए कुछ दिनों के लिए उन्हें देवघर ले जाया गया। उस समय एकदिन अचानक एक संन्यासी ने आकर सत्यदासी का बनाया अन्न भोजन करने की इच्छा व्यक्त की। सत्यदासी ने अपने हाथों से भोजन बनाकर संन्यासी को भोजन कराया। संन्यासी ने देवी को हर्रे के समान एक फल खाने को दिया। इस फल को खाने के पश्चात् रक्तवमन रोग ठीक हो गया एवं देवी का स्वास्थ्य पूर्ण रूप से ठीक हो गया।

देवी की सेवा परायणता उल्लेखनीय है। अपने परिजनों में किसी की पीड़ा होने का समाचार मिलने पर वह यथायोग्य उसकी सेवा करती। एकबार शिमला

जाकर कुटुम्ब का एक व्यक्ति कठिन रोग से पीड़ित हो गया। सभी प्रकार की बाधाओं की उपेक्षा कर देवी शिमला चली गईं एवं रोगी के रोगमुक्त होने पर ही घर वापस आईं।

देवी अल्पभाषी थी। परनिन्दा–परचर्चा करते हुए उन्हें कभी भी नहीं देखा गया। घर गृहस्थी के समस्त कर्तव्यों का पालन करने पर भी संसार में किसी के प्रति उनकी आसक्ति नहीं थी। साधना की उच्च अवस्था प्राप्त करने पर भी कभी उसे प्रकाश नहीं करती थीं। अपने अनुभव, दर्शनादि या अनुभूति के विषय को गुप्त रखती थीं।

कोलकाता में पहले एक किराये के मकान में देवी सपरिवार रहतीं थी। इस मकान में पूजा के कमरे में देवी नियमित रूप से पूजा ध्यानादि करती थीं। यहाँ पर दिवाल पर जटाजूट समन्वित गोस्वामी प्रभु का चित्र प्रकाशित हुआ। यह चित्र सर्वदा रहता था। घर के सब लोगों ने इस अलौकिक दृश्य को देखा था। स्वयं का मकान बन जाने के बाद वहाँ भी इसी तरह पूजा के कमरे के दिवाल पर चित्र प्रकाशित हुआ था। बहुत लोगों ने इसे प्रत्यक्ष किया। श्री दरवेशजी महाराज (गोस्वामीजी के शिष्य) एकबार देवी के पुराने मकान में आए थे एवं गोस्वामीजी के चित्र को दिवाल में प्रकाशित हुआ देखकर साष्टांग प्रणाम किये। उस समय उन्होंने देवी के घर में सभी लोगों से कहा था – "तुम सब धन्य हो ! धन्य हो गए!"

देवी के बड़े भाई जितेन्द्र सेन अध्यापक थे। एकबार कुछ लोगों के समक्ष बातचीत करते हुए उन्होंने कहा, "मेरी छोटी बहन गोसाँईजी की शिष्या है। उसे विभिन्न प्रकार के दर्शन होते रहते हैं।" इसी समय किसी कार्यवश देवी उसी कमरे में आईं। बड़े भाई के निर्देश से देवी ने सभी लोगों के समक्ष कहा, "गोसाँई का दर्शन नहीं मिलता यह मैं नहीं कह सकती। पर जब भी मैं चाहती हूँ उसी समय नहीं मिलता। जब उनकी कृपा होती है तब उनका दर्शन करती हूँ।"

गोसाँईजी ने किसी समय कहा था कि परिपूर्ण रूप से भगवान को पाने का अर्थ है – **"जहाँ चाहूँ वहाँ प्राप्त करूँ। जब चाहूँ तभी उन्हें प्राप्त करूँ एवं जिस रूप में चाहूँ उसी प्रकार पाऊँ।"** देवी के कथन से प्रमाणित होता है कि तब तक देवी परिपूर्ण अवस्था प्राप्त नहीं की थी।

देवी के एक नाति के मेरूदण्ड (रीढ़) की हड्डी में कोई रोग हो गया। डाक्टर के निर्देश से उसे कुछ महीने बिस्तर में चित्त होकर सब समय सोये हुए रहना पड़ा। चलना–फिरना सब बन्द हो गया। देवी उसी कमरे में शयन करतीं थी। नाति को इस अवस्था में पड़े हुए देखकर एकदिन उसके मन में चिन्ता हुई कि डाक्टरों ने कहा है कि इस रोग से मुक्ति पाना कठिन है। किसी–किसी का सारा

जीवन इसी तरह बीत जाता है। उस दिन मन में अपने–आप गोसाँईजी के निकट प्रार्थना हुई अचानक उन्होंने देखा कि पूर्णिमा के समय चन्द्रमा की रोशनी की तरह घर अलोकित हो उठा। यह प्रकाश कहाँ से आ रहा है। इस ओर ध्यान देने पर देखी कि गोस्वामी प्रभु उसी कमरे में एक तरफ खड़े हैं एवं उनके शरीर से यह ज्योति सब तरफ फैल रही है। नाति के ऊपर भी यह ज्योति पड़ रही है। इस दृश्य को देखकर देवी का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। जब उन्हें होश आया तब मूर्ति अदृश्य हो गई थी। उसी दिन से नाति ठीक होने लगा एवं सम्पूर्ण स्वस्थ हो गया। डाक्टर के द्वारा डेढ़ महीने पश्चात् प्लास्टर खोलने पर वे आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा, "हम लोगों से भूल हो गई थी। इसे प्लास्टर की आवश्कता नहीं थी।"

पति की मृत्यु के पश्चात् सत्यदासी देवी से दरवेशजी ने पूछा था कि इसकी मृत्यु के समय क्या गोसाँईजी आए थे। देवी ने कहा, "हाँ वह उनके पास खड़े थे।"

शरीर छोड़ने के पहले देवी कठिन रोगग्रस्त हो गई। उन्हें हार्निया के दर्द से शरीर में बहुत कष्ट हुआ। देवी के पुत्र सुप्रकाश गुप्त उस समय कोलकाता के एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। अन्य डाक्टरों ने भी देवी के हार्निया का आपरेशन करना स्थिर किया। अचानक दो–एक दिन बाद हार्निया निश्चिन्ह हो गया एवं दर्द समाप्त हो गया। पुत्र ने उस समय कहा था – "माँ की रोग यंत्रणा एवं मृत्यु हमारे डाक्टरी ज्ञान के बाहर है उनकी मृत्यु उनकी इच्छाधीन थी। सन् 1967 ई०, 24 अप्रेल को देवी ने नश्वर शरीर त्याग दिया।"

मृत्यु के पूर्व दिन देवी ने कहा –
बहुत मिला, बहुत मिला, बहुत मेहेरबानी तेरी।
अब तो छुट्टी मिले मालिक, छुट्टी दे दो मालिक।।

देवी कुछ कविताओं में अपने अनुभूतियों को लिखीं थी। उसमें से एक कविता का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है –

"नाम की हवा शरीर में लगने पर मनुष्य फिर साधारण मनुष्य नहीं रहता। श्वास–प्रश्वास में नाम के अभ्यास से उन्हें पुकारने से 'नामी' आते हैं।" सत्यदासी के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने कहा था–"वह सत्यदासी नहीं कृष्णदासी है– उसका असली नाम है कृष्णदासी। वे भगवान के द्वापर लीला में कोई ब्रजगोपी थी।"

(संदर्भ – श्रीश्री विजय लीला कथा)

****

सुरेन्द्र की माँ

सद्‌गुरु अवतार गोस्वामीजी के शिष्यों में कुछ लोग बहुत प्रसिद्ध हुए। पर कुछ महान् शिष्य एवं शिष्याओं का जीवन सर्वसाधारण के अगोचर रहा। गोस्वामीजी के शिष्य सुरेन्द्र की माँ इसी तरह अख्यात रहीं। पर इनका विचित्र जीवन दीपक की शिखा की तरह प्रकाश देता रहा।

इनका नाम था कुसुम देवी एवं पति का नाम था गोसाँईदास बसु। इनका निवास स्थान था वर्धमान जिले के अन्तर्गत कुलीन ग्राम। इसी ग्राम में बोलपुर के प्रसिद्ध वकील हरिदास बसु ने भी जन्मग्रहण किया था। हरिदास बसु इनके निकट कुटुम्बी थे। सुरेन्द्र की माँ छोटे उम्र में एक पुत्र सुरेन्द्र को लेकर विधवा हो गईं। पति की मृत्यु के पश्चात् ससुराल की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गई कि अन्न–वस्त्र का अभाव हो गया। सुरेन्द्र की माँ अपने शिशु सन्तान को लेकर पिता के घर आ गईं। पिता की भी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। सुरेन्द्र की माँ घर के सब काम एवं पिता की सेवा आदि करते हुए पुत्र का पालन करती रहीं।

कुलीन ग्रामवासी लोग हरिदास बसु की प्रार्थना से गोसाँईजी के निकट दीक्षा प्राप्त कर धन्य हुए थे। इसका विवरण हरिदास बसु की जीवनी में प्राप्त होगा। सुरेन्द्र की माँ भी इसी समय दीक्षा प्राप्त की थीं। दीक्षा प्राप्ति के बाद अपनी साधना में देवी निष्ठापूर्वक लग गईं। नाम की शक्ति से वे प्रायः भावमग्न होकर बाह्यज्ञान शून्य हो जाती थीं। इस तरह घर के दैनन्दिन कार्य में विघ्न शुरू हो गया। पिता साधना की अवस्था को समझ न पाने के कारण कन्या का तिरस्कार करने लगे एवं साधन–भजन आदि की निन्दा करने लगे। एकदिन देवी गोस्वामीज़ी के निकट व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगी– "हे गुरुदेव नाम–जप करने के लिए बैठने पर पिताजी अत्यन्त असंतुष्ट होते हैं, वे भजन की निन्दा करते हैं एवं घर से निकल जाने के लिए कहते रहते हैं। इस अवस्था में मैं क्या करूँ।"

देवी की कातर प्रार्थना सुनकर उस दिन गोसाँईजी ने प्रकट होकर सुरेन्द्र की माँ से कहा – "तुम पिता का घर परित्याग कर ससुराल में जाकर रहो।" सुरेन्द्र की माँ बोली – "मेरे पिता की सेवा करने वाला कोई नहीं है।" गोसाँईजी– "उसका भार तुम्हारे ऊपर नहीं है।"

सुरेन्द्र की माँ – "ससुराल में क्या खाऊँगी। वहाँ अन्न वस्त्र आदि की कोई

व्यवस्था नहीं है।" गोसाँईजी – "यह सब तुम चिन्ता मत करो। इसकी व्यवस्था किसी भी तरह हो जायेगी।"

इस तरह गोसाँईजी के साथ कुछ देर बात होने के पश्चात् वे अदृश्य हो गए। देवी पिता का गृह त्याग करने के लिए प्रस्तुत हुई पर पिता की चिन्ता कर वह असमंजस में पड़ गई। उस दिन देवी भजन कर रहीं थी। उस समय पिताजी ने अत्यन्त क्रोध प्रकाश करते हुए उसे घर से निकल जाने को कहा। कन्या पिता से कही कि मेरे चले जांने पर तुम्हारी सेवा कौन करेगा। क्रोधित पिता ने कहा कि तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। अभी तू यहाँ से चली जा।

सुरेन्द्र की माँ ने अन्त में कहा–"तब मैं चली। मेरा कोई दोष नहीं। मेरा अपराध न लेना। आपके अस्वस्थ होने से मुझे खबर देना मैं आकर सेवा करूँगी। पर इस घर में आज से मैं जल तक स्पर्श भी नहीं करूँगी।"

इस तरह सम्पूर्ण असहाय अवस्था में पुत्र को लेकर देवी अपने ससुराल में आ गई। गुरुकृपा से यहाँ आने के बाद ग्राम के एक समृद्ध वकील देवेन्द्रनाथ मित्र ने देवी की इस प्रकार असहाय अवस्था को देखकर उसके पुत्र को अपने पास रख लिया एवं उसकी शिक्षा की आवश्यक व्यवस्था की। पुत्र की इस प्रकार सुव्यवस्था हो जाने पर देवी निश्चिन्त हो गई। इस प्रकार अत्यन्त कष्ट एवं अभाव के भीतर से देवी अपना साधन–भजन एवं गृहकार्य करने लगीं। एकदिन सुरेन्द्र जी की माँ अपने रसोई घर को गोबर से लिप रहीं थी। उस समय उसने देखा कि चूल्हें के पास नमक के कुछ टुकड़े पड़े हैं एवं कुछ चीटियां उसे खा रही हैं। सुरेन्द्र की माँ इसे देखकर अत्यन्त दुःखित हुई। वह मन ही मन चींटियों को बोलने लगी कि अरे ! तुम लोग किसी दूसरे के घर में रहती तो मिठाई, शक्कर आदि तुम्हें खाने को मिलता। इस अभागिनी के घर में तुम नमक का टुकड़ा खा रही हो। मेरे घर में थोड़ा सा गुड़ भी नहीं है कि मैं तुम्हें खाने को दूँ।

यह सब कहते हुए सुरेन्द्र की माँ रोने लगी। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। गुरुशक्ति जाग्रत हो गई। शरीर में कंपन एवं श्वास का वेग बढ़ गया। प्रबल वेग से प्राणायाम होने लगा। नाम अपने आप तीव्र गति से चलने लगा। सामने तुलसी के पौधे के पास पछाड़ खाकर वे गिर पड़ीं एवं उनका बाह्यज्ञान लोप हो गया। उस अवस्था में सुरेन्द्र की माँ देखीं कि गोस्वामीजी दण्ड–कमंडल लेकर खड़े हैं। उन्होंने उससे कहा, "सुरेन्द्र की माँ उठ आज मैं तेरे घर भोजन करूँगा। जल्दी मेरे लिए भोजन बना।"

सुरेन्द्र की माँ बोली – "मेरे घर में कुछ भी नहीं है। मैं कैसे तुम्हें खिलाऊँ" ? गोस्वामीजी– "जाकर कुलंगी में देख, वहाँ चावल रखा है।"

इतना कहकर गोसाँईजी अदृश्य हो गए। सुरेन्द्र की माँ ने उठकर देखा कि एक सेर चावल लक्ष्मीजी के चित्र के सामने रखा है। वह जल्दी से तालाब में स्नान करके आई। तालाब के किनारे से कुछ साग ले आई। पड़ोसियों के घर से थोड़ा आलू आदि माँग कर ले आई और रसोई बनाने लगीं। रसोई बनाने के बाद वह एक पत्थर की थाली में भोजन रखकर, एक आसन भूमि में बिछाकर, एक ग्लास जल रखकर गुरुदेव को भोजन निवेदन कर, कमरे का कपाट लगाकर, बाहर बैठकर रोने लगीं एवं मन ही मन कहने लगी कि आज गोस्वामीजी ने स्वयं मेरे पास से भोजन माँगा। पर मैं इतनी गरीब हूँ कि केवल साग अन्न ही बनाकर उन्हें भोग लगा सकी। उसी समय बसु परिवार की एक अन्य महिला (यह भी गोस्वामीजी की शिष्या थी) कुछ आम, केला, दूध, मिठाई लेकर सुरेन्द्र की माँ को देकर बोली कि सुना है तुम गोस्वामीजी को भोग लगा रही हो। मैं कुछ सामान लाई हूँ। इसे भी भोग में लगा देना। यह कहकर सामान और फूल आदि रखकर वह चली गई।

सुरेन्द्र की माँ ने वे सब सामान लेकर धीरे से कपाट खोलकर कमरे में प्रवेश किया। उसने देखा कि गोस्वामीजी साक्षात् आसन में बैठकर प्रसाद पा रहे हैं। उन्होंने सुरेन्द्र की माँ से कहा – "मेरा भोजन हो गया है। इस सामान को रख दो। मुहल्ले के बच्चों को बुलाकर प्रसाद दे दो।" सुरेन्द्र की माँ ने गोस्वामीजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा का पालन किया।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद गुरुभाई हरिदास बसु बोलपुर से आए। सुरेन्द्र की माँ ने सुना कि वे सब पुरी जा रहे हैं। उसके मन में भी पुरी जाने की प्रबल इच्छा हुई। पर पुरी जाने का किराया उसके पास नहीं है सोचकर वे दुःखित हो गईं। दुःख के कारण वे भावावेश में आ गईं। उस समय गोस्वामीजी ने दर्शन देकर कहा कि तू रुपये के लिए इतना क्यों सोच रही है ? मैं रुपये की व्यवस्था कर दूँगा। गुरु की इस बात को सुनकर अपने को धिक्कार देते हुए विलाप करते हुए उनसे कहने लगीं कि यह दुर्गति मेरी क्यों हुई ? आपके पास से रुपये कैसे ले सकती हूँ ? मुझे अर्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। आप ही मेरे परम अर्थ हैं। मैं पुरी नहीं जाऊँगी। आप ही मेरे जगन्नाथ हैं। आप में ही पुरी, वृन्दावन, काशी, गया, गंगा सब विद्यमान हैं। मुझे केवल चरणों में स्थान दें। यह कहकर वह उन्हें प्रणाम करके नाम में तल्लीन हो गईं।

इस घटना के बाद सुरेन्द्र की माँ कभी पुरी नहीं गईं। उसके भीतर प्रज्ञा ज्ञान उदित हुआ। उसे यह उपलब्धि हुई कि गुरु सर्वत्र हैं। सब समय वे विद्यमान हैं, वे पूर्ण ज्ञान स्वरूप हैं। शिष्य की किसी भी इच्छा को वे पूर्ण कर सकते हैं। वे शिष्य का क्षणमात्र के लिए भी परित्याग नहीं करते हैं। उन्होंने शिष्य का सम्पूर्ण

भार ग्रहण कर लिया है। इस तरह गोसाँईजी की कृपा प्राप्त कर सुरेन्द्र की माँ का जीवन धन्य हो गया।

****

श्रीमती शरत्कामिनी देवी

ढाका शहर के निकट बारदी ग्राम के नाग परिवार में शरत्कामिनी देवी का जन्म उन्नीसवीं सदी के प्रथम अंश में हुआ था। देवी के पिता कालीकृष्ण नाग जिस प्रकार धार्मिक थे वैसी ही उनकी दक्षता संस्कृत, फारसी एवं उर्दू साहित्य में थी। देवी की माता अम्बिका देवी थीं। इस दम्पति की आठ सन्तान थीं, उनमें शरत्कामिनी देवी एवं छोटे भाई कुंजलाल नाग का नाम गोसाँईजी के शिष्यों में प्रसिद्ध है।

उस समय के रीति के अनुसार देवी की शिक्षा घर में ही हुई। रामायण, महाभारत आदि धर्म ग्रन्थों के पाठ से गृहस्थ जीवन की आवश्यक शिक्षा उन्हें मिली। छोटी उम्र में ही देवी का विवाह कामिनीमोहन बसु के साथ हुआ।

कामिनीमोहन थे पाश्चात्य शिक्षा एवं आचार–विचार को अपना आदर्श मानने वाले। उस समय बंगाल के अधिकांश शिक्षित युवकों में इसी प्रकार की भावना देखी जाती थी। युवकगण हिन्दू धर्म के कर्मकांड को कुसंस्कार कहकर वर्जन करने की चेष्टा करते थे। इसके साथ वे नास्तिक एवं निषिद्ध भोजन आहारी थे।

उस समय बारदी ग्राम प्रसिद्ध था महान् योगी श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के कारण। नाग परिवार इस ग्राम के समृद्धशाली मालगुजार थे। सौभाग्यवश देवी को श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी, परमहंस श्री रामकृष्णदेव एवं श्री विजयकृष्ण जी इन तीनों महात्माओं की कृपा प्राप्त हुई। इन तीनों महात्माओं के सत्संग से उनका जीवन धन्य हो गया।

देवी के सन्तानों में प्रथम पुत्र शैलेश एवं द्वितीय कन्या शैवालिनी थी। पुत्र शैलेश के प्रति देवी का तीव्र स्नेह था। छुटपन से बालक के भीतर विभिन्न प्रकार के सद्गुणों का समावेश देखकर सभी उसे प्यार करते थे। इस बालक का छोटी उम्र में ही निधन हो गया। देवी पुत्र शोक से पागल की तरह हो गईं। उस समय अपने एक भानजी के निकट आकर देवी के मन को बहुत सांत्वना मिली। देवी के छोटे भाई कुंजलाल एवं यह भानजी दोनों श्री गोस्वामीजी के शिष्य थे। इन लोगों की शांतिपूर्ण एवं सात्विक भावना को देखकर देवी भी दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो गईं। कुंजलाल की चेष्टा से यथासमय देवी की दीक्षा हुई। इस दीक्षा के सम्बन्ध में देवी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्प्रसंग' में लिखा है, "दीक्षादान के समय गोस्वामीजी ने

कहा कि गुरुजी कृपापूर्वक तुम्हें दीक्षा दे रहे हैं। माँसाहार, उच्छिष्ट, (जूठा भोजन) परनिन्दा त्याग एवं इसके साथ कुछ नियमों को पालन करने का निर्देश उन्होंने दिया। जिस समय उन्होंने मंत्र दिया उस समय ऐसा लगा कि जीवन धन्य हो गया। शोक, ताप, दुःख आदि कहाँ चले गए पता नहीं चला।"

गोस्वामीजी की सहधर्मिणी माता योगमाया देवी का स्नेह देवी ने शुरू से प्राप्त किया। उस समय गोस्वामी प्रभु यद्यपि हिन्दू मतानुसार दीक्षा आदि देते थे फिर भी ब्राह्मसमाज के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। बाद में जब ब्राह्मसमाज के लोगों ने उनके हिन्दू आचार–विचार एवं मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में उनके विचारधारा में परिवर्तन देखा तब वे इसका विरोध करने लगे। उस समय उन्होंने ब्राह्मसमाज त्याग करके ढाका शहर के निकट गेण्डारिया में आश्रम की स्थापना की।

उस समय की समाज व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण वर्ग भोजनादि निम्न वर्ण के लोगों से पृथक करते थे। निम्न जाति के लोगों द्वारा बनाया अन्न, उच्च वर्ण के ब्राह्मण ग्रहण नहीं करते थे। गोस्वामीजी यद्यपि ब्राह्मण वर्ण के थे एवं नाग परिवार निम्न वर्ण का था पर शुरू से ही माता योगमाया देवी, शरत्कामिनी देवी को अपने साथ भोजन बनाने एवं परोसने के काम में बुला लेतीं थी। इसे देखकर कई लोगों ने विरूद्ध भावना प्रकट की पर माता योगमाया देवी ने किसी की बात नहीं मानी। गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज में काफी दिनों तक थे इस कारण जात–पात का कोई बन्धन वहाँ नहीं था। सात्विक आचार–विचार वाले एवं दीक्षा प्राप्त व्यक्ति रसोई एवं परोसने का काम करते थे। **श्री गोस्वामीजी कहा करते थे कि गुरु के स्थान में पंक्ति विचार की आवश्यकता नहीं है।**

देवी के दीक्षा प्राप्ति के बाद इनके पति सर्वदा इनके आचार–विचार के प्रति हँसी–मजाक करते थे। देवी को बहुत कष्ट होता था। एकदिन इस विषय पर गोसाँईजी से देवी ने चर्चा की। गोसाँईजी ने कहा– **"आप चिन्ता मत करिये। पति–पत्नी के भीतर एक विशेष आकर्षण है। पत्नी के आकर्षण से पति को भी उसी तरह चलना होगा। आपके पति सरल एवं धार्मिक हैं उनकी भी यथा समय दीक्षा होगी।"**

गुरुदेव की वाणी सफल हुई। थोड़े ही दिनों में देवी के पति के भीतर भी आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा गया एवं उनकी भी दीक्षा हो गई। देवी की एक विधवा ननंद की भी इसी समय दीक्षा हुई। लगभग एक वर्ष बाद गोसाँईजी जब कोलकाता चले गए तब देवी को मन में बहुत कष्ट हुआ। पर ईश्वर के विधान से देवी के पति कोलकाता में कुछ व्यापार करना शुरू किये। इस कारण देवी का परिवार कोलकाता आ गया। इनका निवास स्थान गोस्वामीजी के निवास स्थान

के पास था। गोस्वामीजी प्रायः इनके घर में आते रहते थे एवं यहाँ बहुत लोगों की दीक्षा भी हुई। इस तरह भाग्यवान देवी का घर भजन–कीर्तन एवं भक्तों की सेवा से धन्य हुआ।

एकदिन गोस्वामीजी ने एक श्लोक का उच्चारण करते हुए इसे सोने के पहले एवं सुबह जागने पर कहने का निर्देश दिया।

श्लोक – ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

इस श्लोक के उच्चारण करने से विभिन्न क्लेशों अर्थात रोग, शोक, कष्ट आदि से मुक्ति मिलती है।

देवी की पुत्री शैवालिनी उस समय बेथुन स्कूल में पड़ती थी। अपने स्वभाव एवं पढ़ाई में अच्छी होने के कारण स्कूल के सभी उसके उज्ज्वल भविष्य के संबंध में आशा करते थे। पर गोस्वामीजी ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके केवल उपाधि प्राप्त करने को मना किया। इस कारण देवी ने अनिच्छा रहते हुए भी गुरु आज्ञा का पालन किया। गोस्वामीजी ने स्वयं शान्तिसुधा एवं शैवालिनी को संस्कृत पढ़ाना शुरू किया। संस्कृत के स्तोत्र आदि भी इस तरह इन लोगों ने सीख लिया।

गोस्वामीजी की कन्या एवं शैवालिनी दोनों एक ही उम्र की थी एवं दोनों में बहुत मित्रता थी। एकदिन गोसाँईजी के साथ सब लोग दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्णदेव का दर्शन करने गए। उस समय देवी ने देखा कि गोसाँईजी, श्री रामकृष्णदेव के दर्शन के लिए किस तरह भावमग्न हो द्रुत गति से अग्रसर हो रहे थे। वहाँ पहुँचने पर पहले गोसाँईजी स्वयं भीतर गए। उस समय श्री रामकृष्णदेव के गले में कैन्सर हो गया था। इस कारण उनका शरीर बहुत अस्वस्थ था। थोड़ी देर पश्चात् उनसे अनुमति लेकर गोसाँईजी सबको भीतर ले गए। श्री रामकृष्णदेव सबको देखकर बहुत आनन्द प्रकाश करने लगें। शांतिसुधा एवं शैवालिनी के ऊपर आनन्दपूर्वक श्री रामकृष्णदेव फूल छिड़कने लगे। सब लोगों के भोजन एवं सेवा के लिए वे बहुत व्यग्र हो गए। गोस्वामीजी ने कहा कि आप चिन्ता न करें। यहाँ सब आयोजन हो रहा है। भोजन तैयार हो रहा है।

श्री रामकृष्णदेव ने माता योगमाया देवी एवं शरत्कामिनी देवी को अपने पास बुलाया एवं इन लोगों के प्रणाम करने पर अपने कोमल चरण द्वारा इनके सिर को स्पर्श किया। गोसाँईजी ने उस समय कहा कि आपलोग आज धन्य हो गए। श्री रामकृष्णदेव की सहधर्मिणी माता शारदा देवी थोड़े से दूध में अन्न मिलाकर उन्हें खिला दी। उस समय बात करने में, भोजन करने में उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था।

श्री रामकृष्णदेव के भोजन के बाद महिलाएँ माता शारदा देवी के पास चली गईं। उस समय बहुत देर तक उनसे बातचीत होती रही। उस समय माता शारदा देवी ने शरत्कामिनी देवी की कन्या का आदर करते हुए एक चवन्नी एवं मिश्री प्रसाद दी। फिर हँसते हुए कहीं – "इस कन्या को मुझे दे दो।" देवी ने भी हँसते हुए कहा कि यह तो हमारा परम सौभाग्य होगा। इस तरह काफी समय तक माता शारदा देवी का सानिध्य इन लोगों ने प्राप्त किया। इसके बाद नीचे काफी देर तक कीर्तन चला। कीर्तन के पश्चात् स्नान एवं आहार सम्पन्न हुआ। माँ शारदा स्वयं इन लोगों का जूठा पत्तल उठाने लगी। बहुत कठिनाई से उन्हें इस कार्य से अलग किया गया। इस प्रकार सत्प्रसंग एवं सत्संग करते हुए सन्ध्या हो गई। सब लोग श्री रामकृष्णदेव एवं माता शारदा देवी का आशीर्वाद लेकर वापस अ गए। इस घटना का वणर्न करते समय देवी आनन्द में मग्न हो जाती थी एवं उनके आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगता था।

इसी प्रकार एकबार ब्राह्मधर्म के प्रचारक नगेन्द्रनाथ के घर कोन्नगर में गोस्वामीजी गए। नगेन्द्रनाथ की पत्नी मातंगिनी देवी गोस्वामी प्रभु के आगमन से भाव में उन्मत्तवत हो गई। ब्रजमाईयों की तरह उनके भीतर ब्रजभाव प्रस्फुटित हुआ। यहाँ भी कई लोगों की दीक्षा हुई। इस दीक्षा के संबंध में देवी ने लिखा है– **"गोसाँईजी प्रदत्त दीक्षा सम्पूर्ण कृपा सापेक्ष है। उच्च वर्ण, जाति, पदमर्यादा या सतचरित्र वाले लोग ही केवल दीक्षा पाने के अधिकारी नहीं थे। कितने पापी लोगों को उन्होंने अयाचित होकर दीक्षा दी है कितने लोगों को 'अभी समय नहीं हुआ है' ऐसा कहकर बाद में आने को कहा है। वे कहते थे जिन्हें दीक्षा मिलेगी उनका नाम पहले से तालिका में है, केवल उन्हें ही यह दीक्षा मिलती है।"**

कोन्ननगर में रहते समय देवी की कन्या शैवालिनी की भी दीक्षा हो गई। एकदिन शरत्कामिनी देवी ने गोस्वामीजी से पूछा– "मैं देखती हूँ कि आप जब चलते है तब कुत्ते, बिल्ली आदि आपको देखकर चिल्लाते हैं, यहाँ तक कि पक्षी भी आवाज देते हैं। देखकर ऐसा लगता है कि वे लोग आपसे कुछ कहना चाहते है। इसका कारण क्या है ?"

गोसाँईजी ने कहा– **"ये सब दीक्षा प्रार्थी है। गुरुदेव मुझे स्थावर, जंगम, भूचर आदि सभी को नाम देने का आदेश दिए हैं।"** गोस्वामीजी की बात सुनकर शारद्कामिनी देवी आश्चर्यचकित हो गई। उसी समय एकदिन आहार के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए गोस्वामीजी ने कहा – **"आहार के दोष से तमोगुण की वृद्धि होती है। माँस, प्याज आदि तमोगुण को बढ़ाता है। मसूर की दाल**

मी न खाना अच्छा है।"

शरद्कामिनी की कन्या शैवालिनी के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने कहा– "इसका विवाह ज्ञान दत्त के साथ करने से अच्छा होगा। लड़का सत्चरित्र एवं बहुत अच्छा है। दरभंगा में एकबार मैं बहुत बीमार पड़ गया था। उस समय वहाँ के वकील राधागोविन्द के घर में था। तब ज्ञान ने मेरी बहुत सेवा की थी। ज्ञान के साथ शैवालिनी का विवाह होने से वे लोग सुखी होगें।" गोस्वामीजी की बात सुनकर यहीं विवाह करना तय किया गया।

उस समय बारदी के श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी ने एकदिन कहा कि देखो जीवनकृष्ण (गोस्वामीजी) ढाका में है, उसे देखने की बहुत इच्छा है। मैं तो बुढ़ा हो गया हूँ, नाव में जाने की शक्ति नहीं है। यह समाचार सुनकर गोस्वामीजी बारदी जाने का विचार किये। बारदी पहुँचते ही वे लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के आश्रम पहुँचे। ब्रह्मचारीजी को देखते ही वे भावमग्न होकर कहने लगे – "यह मैं क्या देख रहा हूँ। प्रत्येक रोम कूप से अग्नि के समान तेज निकल रहा है, असंख्य देवता वर्तमान हैं ! अद्भुत !!"

ब्रह्मचारीजी ने गोसाँईजी को शान्त करते हुए कहा– "चुप रह! चुप रह! अभी तक मैंनें अपने को छिपाकर रखा था– तू सब प्रकाश कर दिया।" उल्लेखनीय है ब्रह्मचारीजी का जन्म अद्वैत वंश में हुआ था। वे गोस्वामीजी के प्रपितामह के छोटे भाई थे। उस समय उनकी उम्र लगभग 150 वर्ष थी। वे अपने को छिपाने के लिए विभिन्न समय अनाप–शनाप बातें करते थे। श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी कृत 'श्रीश्री सदगुरु संग' ग्रन्थ में मिलता है।

श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के पास शरत्कामिनी देवी को कई बार जाने का सौभाग्य मिला था। एकबार ब्रह्मचारीजी ने देवी से कहा, "तू अपनी लड़की शैवालिनी का विवाह ज्ञान दत्त के साथ मत करना, यह लड़का कमजोर है। दूर देश में विवाह देना ठीक नहीं। ब्रह्मचारीजी ने एक परिचित लड़के का नाम लेकर कहा कि यहाँ पर विवाह देने से कन्या का मंगल होगा।" ब्रह्मचारीजी की बातों को सुनकर देवी दुविधा में पड़ गई। दोनों महापुरुष हैं एवं विभिन्न विचार प्रकट कर रहे हैं अन्त में देवी ने अपने गुरुदेव के निर्देश का पालन करना उचित समझा एवं ज्ञान दत्त के साथ शैवालिनी का विवाह हो गया। बाद में जब इस विवाह का समाचार ब्रह्मचारीजी के पास आया तब वे शरत्कामिनी देवी की गुरु भक्ति की प्रशंसा करने लगे।

श्री लोकनाथ ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए शरत्कामिनी देवी ने

लिखा है– "बाहर से देखने पर ब्रह्मचारीजी अत्यन्त कठोर लगते थे पर जो लोग उनके साथ अन्तरंग भाव से मिले हैं वे जानते हैं कि उनका हृदय किस प्रकार कोमल था एवं वे कितने दयालु थे। वे अपने को गुप्त रखते थे। असंख्य लोग उनकी करूणा और अलौकिक शक्ति को देखकर धन्य हो गए। अनेक बीमार, कुष्ठ आदि दुरारोग्य से पीड़ित व्यक्ति केवल उनके दृष्टिपात से आरोग्य लाभ किए हैं। नीलकण्ठ की तरह वे रोगियों का विष अपने शरीर में ले लेते थे। अनेक तपेदिक (टी० बी०) के रोगियों को रोगमुक्त करते समय उनके गले से खून गिरते हुए देखा गया।"

शरत्कामिनी देवी को मातृभाव से ब्रह्मचारीजी ने कहा कि देख मैं तेरे पुत्र रूप में जन्म लूँगा। इसके कुछ दिन बाद देवी को एक पुत्र की प्राप्ति हुई, उसका चेहरा ब्रह्मचारीजी के समान दुबला, नाक, मुँह एवं आँखें उसी तरह थी। बच्चे के जन्म के कुछ दिनों के बाद देवी के छोटे भाई कुंजलाल भी बारदी गए।

ब्रह्मचारीजी ने पूछा – तेरा भानजा हुआ है न ?

कुंजलाल – हाँ।

ब्रह्मचारीजी – उसका नाम क्या रखा ?

कुंजलाल – आप जो आदेश करे वही होगा।

ब्रह्मचारीजी – साधारण नाम ब्रह्मचारी और अच्छा नाम लोकनाथ रखना।

कुंजलाल – आपके समान नाम रखकर पुकारने में असुविधा होगी। आपके नाम से थोड़ा परिवर्तित कर लोकानन्द नाम रखने में कैसा रहेगा ?

ब्रह्मचारीजी – अच्छा ठीक है वैसा ही नाम रख ले। बच्चे को क्यों नहीं लाया। उसका अन्नप्राशन यहीं करना होगा।

ब्रह्मचारीजी के निर्देशानुसार आवश्यक सामग्री लेकर सब लोग यथा समय बारदी गए। ब्रह्मचारीजी ने भोजन करते समय बच्चे को अपने पास बुलाया और अपना प्रसाद बच्चे को खिलाया। बच्चे का अवशेष भोजन वे स्वयं खाने लगे। महात्मा की विचित्र लीला देखकर सब मुग्ध हो गए। भोजन के पश्चात् देवी को उन्होंने कहा बच्चे को ले जा। इसे डाक्टरी दवायें मत देना। आयुर्वेद वनौषधि आदि देना। बकरी का दूध पिलाना। बकरी जंगल में विभिन्न औषधी खाती है। इस कारण उसका दूध बहुत उपकारी होता है पर डाक्टरों का रोजगार बन्द न हो जाय इसलिए डाक्टरी दवाई खरीदकर फेंक देना।" फिर उन्होंने कहा – "इस संन्यासी बालक को लेकर क्या करेगी ?"

मुझे चिन्तित देखकर उन्होंने कहा – "अच्छा डर मत। यह धर्म भी करेगा एवं

कर्म भी करेगा। विवाह भी करेगा, उपार्जन करेगा एवं घर गृहस्थी भी देखेगा एवं तुझे भी खिलायेगा।"

और एकदिन बातचीत करते हुए उन्होंने देवी से कहा, "देख गृहस्थी का काम करते हुए उससे उदासीन मत होना। उससे कर्म की वृद्धि होती है। अपनापन (मोह) त्यागकर जब कर्म करेगी तब समझोगी कि कर्म क्या है एवं कर्म किसका है ? तब कर्म करते समय उसमें विरक्ति नहीं होगी। देख मैं तो संन्यासी हूँ पर किस तरह संसारी हूँ। यह जो घर देख रही है, यह सब मैंने अपने हाथों से स्वयं बनाया है।" वे स्त्री–स्वाधीनता एवं महिलाओं को ज्यादा उम्र में विवाह करना उचित नहीं समझते थे।

अपना परिचय देते हुए उन्होंने कहा था कि वे शान्तिपुर (जिला नदिया) में श्री अद्वैत वंश के हैं। वे गोस्वामीजी के प्रपितामह के छोटे भाई थे। वे चार भाई थे। दस वर्ष की उम्र में वैराग्य भाव आने से माता–पिता की अनुमति लेकर उन्होंने संसार त्याग किया। इसके बाद कितने पर्वत, नदी एवं गहन जंगलों में दीर्घकाल कठोर तपस्या करते हुए सिद्ध अवस्था प्राप्ति के बाद बारदी गाँव में आकर रहने लगे। वे जब बारदी आए उस समय उनकी उम्र सौ वर्ष से अधिक थी। बारदी में रहते समय एक ग्वालिन महिला को वे माँ कहते थे। वे भी पुत्रवत् ब्रह्मचारीजी का पालन करती थी। ब्रह्मचारीजी ने कहा था कि यह ग्वालिनी पिछले जन्म में उनकी माँ थी।

ब्रह्मचारी उपदेश देते हुए कहते थे – **"देखो, हम लोग तीन श्रेणी में विभक्त हैं – उत्तम, मध्यम और अधम। कर्म करने के पहले जो सोच–समझकर करता है, वह उत्तम है। कर्म करने के पश्चात् जो अनुतप्त होता है कि ऐसा न करना ही ठीक था, वह मध्यम है एवं कार्य करने के पहले एवं अंत में जिसको कोई विचार या चिन्ता नहीं होती वह अधम है।"**

ब्रह्मचारीजी ने अपने देहत्याग की तिथि पहले से कह दिया था। उनके अंतिम निर्देशानुसार उनके पवित्र देह का दाह संस्कार किया गया। उनके आश्रम में नित्य भोग, आरती एवं अतिथि सेवा पूर्ववत् होती थी। आश्रम में चित्र के समक्ष भोग निवेदन करने पर अनेक समय भोग ग्रहण के चिन्ह एवं उनके शरीर की दिव्य सुगन्ध मिलती थी। इस तरह भक्त लोग उनके आविर्भाव को अनुभव कर अपने को भाग्यवान समझते थे।

ग्वालिनी माँ बहुत दिनों तक थी। भोग वे अपने हाथों से बनाती थी। माँ को प्रायः ब्रह्मचारीजी का दर्शन मिलता रहता था। वृद्धा अवस्था में एकबार माँ तीव्र ज्वर के कारण अचेत हो गई। शरीर में उठने की भी सामर्थ्य न रहा। उस समय

ब्रह्मचारीजी ने प्रकाशित होकर कहा, "माँ उठो ! मुझे भोजन दो ! मुझे भूख लगी है।" माँ उठी एवं स्नानादि से निवृत होकर भोजन बनाकर निवेदन की। इस घटना के कुछ दिनों के बाद ग्वालिनी माँ का देहान्त हो गया।

गुरुदेव एवं गुरुपत्नि के दर्शन के लिए शरत्कामिनी देवी प्रायः गेण्डारिया जाती थीं। इस समय वे आश्रम के निकट अपने छोटे भाई कुंजलाल के मकान में रहती थीं। माता योगमाया देवी ने एकदिन कहा– "छोटे–छोटे पुत्र एवं कन्याओं के साथ इस तरह भाई के घर में हमेशा रहना उचित नहीं है। भाई अपना है पर उसकी पत्नी पराई घर से आई है। आपके पति भले आदमी है। उनका इस प्रकार उदासीन रहना ठीक नहीं। भाई के संसार में अच्छे सुखाद्य भोजन की अपेक्षा अपने स्वयं के घर में रूखा–सूखा व्यंजन करना अधिक अच्छा है।" बारदी के ब्रह्मचारीजी ने भी देवी को पृथक घर में रहने के लिए कहा था। पर परिस्थिति ऐसी थी कि कई वर्षों के बाद गेण्डारिया आश्रम के पास उनका अपना मकान बना। उस समय माता योगमाया देवी ने शरीर त्याग दी थी। माता योगमाया देवी ने एकबार गोसाँईजी से पूछा था कि शैवालिनी की माँ का कर्म कब समाप्त होगा ? दिनभर इस तरह कठोर परिश्रम वह कितने दिनों तक करती रहेगी ? उस समय गोसाँई ने कहा था, "एक–एक व्यक्ति कर्म करने के लिए ही आते हैं। शैवालिनी की माँ का कर्म करते हुए ही कर्म कट जायेगा। उसे और संसार में आना नहीं पड़ेगा।" गोसाँईजी के इस बात को सुनकर शरत्कामिनी देवी के मन में अपार आनन्द हुआ कि इसी जन्म में उनके सब कर्मभोग की समाप्ति हो जायेगी।

संतान अपने माता–पिता को, पत्नी अपने पति को यदि देवता की तरह श्रद्धा करे, उनकी सेवा करे तो उस पुण्य के फलस्वरूप मनुष्य मुक्ति पा सकता है। एकदिन एक वृद्धा आकर अपने पुत्र के आचरण के सुधार के लिए गोसाँईजी से व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगी। पुत्र खराब संगत के कारण शराबी हो गया था। गोसाँईजी ने पूछा कि आपके साथ पुत्र का व्यवहार कैसा है ? वृद्धा बोली की मुझे वह बहुत मानता है। चरणामृत लेता है, महीने के अन्त में पूरा वेतन लाकर मुझे देता है पर अत्यन्त शराबी हो गया है। गोसाँईजी ने उसे सांत्वना देते हुए कहा– **"माँ की जो पूजा करता है सैकड़ों अपराध करने पर भी उसकी सद्गति हो जाएगी। आप निश्चिन्त रहे। शीघ्र ही उसका परिवर्तन होगा।"** थोड़े दिनों के भीतर उसका आचरण सम्पूर्ण पलट गया।

देवी के पति दीक्षा लेने के पश्चात् सम्पूर्ण रुप से गुरु के अनुगत हो गए। जब भी अवसर मिलता वे गोसाँईजी का संग करते। जब गोसाँईजी वृन्दावन गए थे उस समय कामिनीमोहन भी गए। वृन्दावन में गोसाँई की कृपा से साधना में उनकी द्रुत उन्नति होने लगी। उनके निस्वार्थ एवं सरल भाव को देखकर सब मुग्ध हो

जाते थे। थोड़े ही दिनों में उन्हें विभिन्न प्रकार के दर्शन होना प्रारम्भ हो गया क्रमशः श्रीवृन्दावन की दिव्य लीला कभी–कभी उन्हें दिखलाई पड़ने लगी। सहस वृन्दावन के रम्य उपवन, गायें आँखों के सामने प्रस्फुटित होते एवं पुनः अदृश्य हो जाते थे। संसार के प्रति उनका आकर्षण भी बहुत कम हो गया। उस समय मात योगमाया देवी ने एकदिन शरत्कामिनी को कहा – "वृन्दावन से पति को वापस लाने की चेष्टा करो। तुम्हारे बच्चे अभी छोटे–छोटे हैं, दूसरे किसी पर भरोस रखना ठीक नहीं। इस समय यदि वह संन्यास ग्रहण कर लें तब तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ेगा।" माता योगमाया देवी के निर्देशानुसार शरत्कामिनी ने वृन्दावन मे पत्र लिखीं। उन्होंने भी पत्र दिया। पत्र प्राप्त कर उनका मन विचलित हो गय एवं गोसाँईजी की अनुमति लेकर वे वापस आ गए। उस समय एकदिन अपने पुत्र योगजीवन को गोसाँईजी ने कहा– "कामिनीमोहन की साधना में अच्छी उन्नति हो रही थी। पर घर वापस आने के लिए बार–बार पत्र आने से उसका मन विचलित हो गया। और कुछ दिन यहाँ रहने पर उसकी आध्यात्मिक अवस्था खुल जाती।"

अपने पति के संबंध में शरत्कामिनी देवी लिखी है कि मैंने अपने स्वार्थ के लिए उनके परमार्थ के मार्ग में बाधा उत्पन्न की। इनके भीतर दिखावटी भावन नहीं थी। संतान शोक, आर्थिक हानि एवं संसार के विभिन्न समस्याओं के भीतर भी वे अटल रहते थे। उनका कहना था– "तुलसीदास जी ने कहा है कि धीर रखो। रघुवीरजी जब सहायक हैं तो क्या डर है।"

वृन्दावन से वापस आने के पश्चात् अचानक कामिनीमोहन परलोक चले गए देवी ने अपने जीवन की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए कहा था–

पूर्व जन्मकृत कर्मभोग भुगतना ही पड़ता है। पति के चले जाने पर सन्तानं को लेकर कठिन समस्याओं के भीतर से जाना पड़ा। पर गुरुकृपा से सर्वद रोते–रोते नाम करती थी एवं प्रार्थना करती थी, "ठाकुर मेरी कोई शक्ति नहीं तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम ही आघात देते हो एवं सहन करने की शक्ति भी तुम्ह देते हो। हम लोगों को शिक्षा देने के लिए तुमने अपने जीवन में कितना आघात एवं ताप सहन किया।"

पति के मृत्यु के पश्चात् देवी अपनी साधना में और अधिक तल्लीन होने क चेष्टा करने लगी। माता योगमाया देवी का बराबर देवी की प्रति अपार स्नेह था उन्होंने भी वृन्दावन में शरीर त्याग दिया। गोसाँईजी जब पुरी गए थे उस सम देवी को जाने का सौभाग्य नहीं मिला। उनके शरीर छोड़ने के कुछ दिनों के बा अचानक देवी को पुरी जाने का अवसर मिला। पुरी में गोसाँईजी जहाँ रहते थे उसी "नीलमणी वर्मन" के मकान में सब लोग ठहरे। गोसाँईजी की सास मुक्तके देवी तब साथ में थी। जब सब लोग श्री जगन्नाथजी के दर्शन के लिए जाने लगे उ

समय उनका अशौच काल था। इस अवस्था में मंदिर में जाना निषेध रहता है। देवी ने मुक्तकेशी देवी से प्रार्थना की कि सब लोगों के साथ वे मंदिर तक जायेगी एवं मंदिर के बाहर किसी जगह उन लोगों के वापस आने तक प्रतीक्षा करेगी।

मंदिर के पास आकर सब लोग भीतर चले गए। देवी बाहर एक स्थान पर खड़ी रही एवं गोसाँईजी के साथ जगन्नाथजी ने जो सब लीला की थी उसका स्मरण करने लगी। अचानक उनकी आँखों के सामने जगन्नाथजी की विशाल मूर्ती प्रकट हुई। इसे देखकर देवी भावमग्न हो गई। उस अवस्था में उन्होंने देखा कि जटाजूटधारी विशाल गोसाँईजी की मूर्ति जगन्नाथ जी में मिल गई। इसे देखकर देवी अचेत होकर गिर गई। जब सब लोग दर्शन करके बाहर आए तब देवी अचेत पड़ी थी। मुक्तकेशी देवी ने उसे होश में लाने की चेष्टा की। थोड़ी देर पश्चात् देवी की सम्पूर्ण चेतना वापस आई। देवी के पास से उसके प्राप्त दर्शन को सुनकर मुक्तकेशी देवी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा – "मनुष्य देव–दर्शन के लिए शुभ समय की प्रतीक्षा करता है। भगवान सर्वत्र हैं एवं स्वयं प्रकाशित होते हैं।" देवी ने जगन्नाथजी की जिस मूर्ति का दर्शन किया था वास्तव में जब बाद में वह भीतर गई तब वही मूर्ति देखकर भावावेश में देवी मूर्च्छित हो गई थी। गोस्वामीजी जब जीवित थे उस समय देवी उनके चित्र की पूजा करतीं थी। साधारणतया गुरु के शरीर में रहते समय उनकी पूजा आदि करने से उनकी आयु कम होती है ऐसा कहा जाता है। मुक्तकेशी देवी ने भावी अमंगल की आशंका से एकदिन गोसाँईजी से इस प्रकार देवी के पूजा के संबंध में प्रश्न की। गोसाँईजी ने उत्तर में कहा – "उसकी जिस प्रकार की इच्छा है वह पूजा कर सकती है।"

गेण्डारिया आश्रम के आसपास गोसाँईजी के कुछ शिष्यों ने मकान बनाया था। शरत्कामिनी देवी का भी इसी तरह एक मकान बना। पूजा के कमरे में गुरुदेव के चित्र को स्थापित कर देवी नियमित पूजा एवं भोगादि देती थी। उस समय यद्यपि गोसाँईजी स्थूल देह में नहीं थे पर उनकी कृपा का निदर्शन प्रायः यहाँ मिलता था। प्रायः भोग ग्रहण के चिन्ह, अपूर्व सुगन्ध एवं आसन में बैठने के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई पड़ते थे। एकदिन मध्याह्न में भोग निकालने के थोड़ी देर बाद पूजा के घर से किसी व्यक्ति के नासिका गर्जन की तरह आवाज आने लगी। इसे सुनकर मुक्तकेशी देवी एवं आश्रम से कई स्त्री–पुरुष वहाँ पर आए। सभी ने आवाज सुनी। अनुसंधान करने पर सब लोगों ने देखा कि चित्र से प्राणायाम के शब्दों की तरह स्पष्ट शब्द हो रहा है एवं उसी तरह गोस्वामीजी का चित्र कम्पित हो रहा है। चित्र बहुत उज्ज्वल लग रहा था। प्रायः दो घण्टे तक इस तरह का स्पन्दन एवं ध्वनि सभी लोगों ने सुनी। गेण्डारिया आश्रम में इस तरह की घटना सर्वदा देखी गई। कदम एवं आम के पेड़ से मधु वर्षण अनेक लोगों ने प्रत्यक्ष किया

है। वैज्ञानिक इस घटना की किसी भी प्रकार से व्याख्या नहीं कर सकते। देवी ने लिखा है –

"हम लोगों की तरह अविश्वासी को कृपा वितरण करते हुए नास्तिक से आस्तिक बनाने के लिए वे कितने प्रकार से अपनी महिमा व्यक्त कर रहे हैं। पथ प्रदर्शक के उज्ज्वल प्रकाश की तरह वे अपनी ज्योति प्रदर्शित करते हुए अग्रसर हो रहे हैं। इस तरह पथ भ्रष्ट जीव को वे रास्ता दिखलाते हुए यथार्थ पथ में परिचालित कर रहे हैं।"

गोसाँईजी से पूछा गया कि हम लोगों का कर्मभोग कितने दिनों में समाप्त होगा ? उन्होंने कहा था– **"किसी का एक जन्म, किसी को दो जन्म, किसी को तीन जन्म लगेगा।"**

प्रश्न – तीन जन्म से ज्यादा भी क्या लग सकता है ?

गोसाँईजी – **"सद्गुरु का आश्रय मिलने से और नये कर्म की सृष्टि नहीं होती।" सद्गुरु का आश्रय पाने पर तीन जन्म से अधिक नहीं लगता।**

प्रश्न – तीन जन्म कितने वर्ष हो सकते है ? एक वृक्ष तो दो सौ, चार सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इस तरह वृक्ष जन्म होने से हजार वर्ष भी क्या लग जायेगा ?

गोसाँईजी – **"साधारण मनुष्य की परमायु के हिसाब से पचास वर्ष एक जन्म में मानी जाती है। इस प्रकार तीन जन्म।"**

उपरोक्त प्रसंग का उल्लेख करते हुए शरत्कामिनी देवी ने लिखा है– "इसकी अपेक्षा आशा की वाणी और क्या हो सकती है ? हम लोगों के नये कर्म की सृष्टि नहीं होगी। डेढ़ सौ वर्ष के भीतर संसार का सब हिसाब–किताब समाप्त कर उस शान्तिमय आनन्द निकेतन में चले जायेंगे। सद्गुरु हम सभी का उद्धार करेंगे। वे केवल पथ प्रदर्शन ही नहीं करेंगे। हमें लक्ष्य में ले जावेंगे। विपथ में चलने पर सुपथ में खींचते हुए ले जायेंगे। हमारे द्वारा छोड़ने की चेष्टा करने पर भी वे हमें कभी त्याग नहीं करेंगे।"

देवी इस तरह गुरु ध्यान एवं नाम–जप करते हुए सद्गुरु के ज्योतिर्मय धाम में प्रस्थान की। इस तरह उन्होंने गुरु कृपा से दुर्लभ मनुष्य जन्म को सार्थक किया।

अन्त में देवी कथित एक वाणी का स्मरण करते हुए यह प्रसंग हम समाप्त कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है–

"मनुष्य मकड़ी की तरह अपने बनाये हुए जाल में घूमता हुआ परेशान

होता है। मुक्ति का कोई उपाय उसे नहीं सूझता। पर पूर्वजन्म के सुकृति के फलस्वरूप जिसको सद्गुरु की प्राप्ति होती है उसकी आँखे खुल जाती है। उसके बहिर्मुखी इन्द्रियगण अन्तर्मुखी होकर त्रिगुण के अतीत हो जायेंगे। सद्गुरु के रूप में भगवान जीवन के किसी शुभ समय में, विधाता की आश्वासन वाणी देते हुए, मानव को सत्य पथ का सन्धान देते हैं। इस प्रकार पापी का उद्धार करने के लिए युग–युग में सद्गुरु आगमन करते हैं।"

****

श्रीमती कुसुमकामिनी गुह

गोस्वामी प्रभुजी के निकट दीक्षा प्राप्तकर जो लोग सद्‌गुरु शक्ति के प्रभाव से अलौकिक देव दुर्लभ अवस्था प्राप्त किए थे, उनमें कुसुमकामिनी देवी अनन्यतमा हैं। वे कुसुमकुमारी के नामसे अधिक प्रसिद्ध थीं। नरोत्तमपुर के विख्यात राय वंश में देवी का जन्म हुआ था। इनकी माँ का नौ वर्ष की उम्र में विवाह हुआ था। 22 वर्ष तक किसी सन्तान के जन्म न होने से परिवार के सब लोगों ने सोचा कि इसकी सन्तान अब नहीं होगी।

उस समय वरिशाल जिले के एक प्रसिद्ध फकीर ने देवी की माँ को कुछ फूल और तुलसी देकर उसे खाने के लिए कहा। फकीर ने कहा था कि तुम्हारी कन्या सन्तान होगी। उसका नाम फूल के नाम पर रखना। फकीर प्रदत्त दवाई लेने के बाद 1283 बंगाब्द (सन् 1877 ई०) 11 फाल्गुन को देवी का जन्म हुआ। फकीर के निर्देशानुसार कन्या का नाम कुसुमकामिनी रखा गया।

12 वर्ष की उम्र में देवी का विवाह बानारीपाड़ा निवासी कुंजबिहारी गुह ठाकुरता से हुआ। कुंजबाबू का जन्म 1273 बंगाब्द (सन् 1867 ई०) में वरिशाल जिला के अन्तर्गत बाईसारी में हुआ था। विवाह के पूर्व ही उनकी दीक्षा गोस्वामीजी के पास हुई थी। गोस्वामीजी ने दीक्षा देने के बाद कहा था कि तुम यथाशीघ्र विवाह करो तुम्हारा जीवन सफल होगा। कुंज बाबू बी० ए० पास थे एवं स्कूल में हेड मास्टर थे। पिता भी अच्छा काम करते थे इस विवाह में उन्होंने काफी खर्च किया था।

विवाह के समय कुंज बाबू बी०ए० पढ़ते थे। बी०ए० पास करने के बाद वे प्रसिडेंसी कॉलेज में एम०ए० में भर्ती हुए। उस समय गोस्वामीजी वृन्दावन गए। कुंज बाबू ने गोस्वामी प्रभुजी का संग पाने के लोभ से पढ़ाई छोड़ दी एवं वृन्दावन चले गए। सौभाग्यवश वे कई महीने गोसाँईजी के पास वृन्दावन में रहे। उस समय कुसुमकामिनी देवी कभी पिता के पास तो कभी ससुराल में रहती थी। अपने पति एवं सास के प्रति शुरू से ही उनकी बहुत श्रद्धा थी। कभी–कभी वे इनकी पूजा भी करतीं थी। पति का चरणामृत श्रद्धापूर्वक वे नित्य लेती थीं। उन्होंने 'आचार्ययोग' नामक पुस्तक में लिखा है – "कभी भी मैंने अपना व्यक्तित्व नहीं रखा। पति के व्यक्तित्व के साथ अपना व्यक्तित्व एक मानती थी जो उन्हें अच्छा लगता था वही मुझे भी अच्छा लगता। मन, प्राण, अंग–प्रत्यंग द्वारा एक होकर

केवल उनका ही भजन की। पति सामान्य नहीं हैं, विश्वपति के बीज स्वरूप हैं। एकाग्र भावना से पति की सेवा करने पर विश्वपति की भावना अंकुरित होती है। यह परोक्ष नहीं प्रत्यक्ष अनुभूति की बात है। गुरुदेव एवं उनका मैंने भगवत् बुद्धि से भजन किया है। अपने स्वार्थ, सुख एवं व्यक्तित्त्व का बलिदान देकर अहैतुक भाव (निष्काम भाव) से प्रेम करने पर उसे काम न कहकर प्रेम कहा जाता है। इसमें किसी प्रकार की लज्जा, घृणा या भय नहीं रहता।"

एकबार कुंज बाबू ने कुसुमकामिनी की परीक्षा करने के लिए कहा, "तुम्हारे केश क्या काट सकती हो ? "सबके अज्ञात में देवी रसोईघर में गई एवं अपने केशो को काटकर लाकर अपने पति को दी। पति उसके इस कार्य को देखकर घबरा गए। उन्होंने कहा– "यह तुमने क्या किया ? तुम क्या पागल हो ? "देवी ने उत्तर दिया – "तुमने मुझे कहा इसलिए मैंने केशों को काट दिया। अब क्यों चिन्ता कर रहे हो। केश क्या काम में आते हैं। ज्यादा केश रहने से मुझे कष्ट होता था। तुमने मेरे लिए कितनी सुविधा कर दी। इसके लिए चिन्ता मत करो जो ईश्वर की इच्छा है वहीं होगा।"

इस तरह एकदिन परीक्षा करने के लिए पति ने कहा कि क्या तुम दुमंजिल मकान के छत से कूद सकती हो। देवी तुरन्त छत में चली गयी। कुंज बाबू साथ–साथं दौड़े और समझाकर नीचे ले आए।

उस समय देवी की उम्र 17–18 साल की होगी। कुंज बाबू किसी कार्यवश कोलकाता गए। जब पति कहीं बाहर चले जाते थे तो देवी उनके जूते को अपनी छाती में रखती एवं नित्य पूजा करती थीं। केवल स्नान एवं पूजा के समय उसे खोलती थीं। एकदिन देवी की इच्छा हुई कि पति का नाम अपने छाती में लिखूँ। उन्होंने एक दर्पण व चाकू लिया एवं पति का नाम 13 स्थानों पर अंकित किया। खून से वस्त्र भींग गए पर देवी को कोई चिन्ता नहीं थी। देवी ने लिखा है– "छाती पर 13 बार उनके नाम को लिखी एवं उस कटे हुए स्थान में जिससे नाम स्पष्ट हो जाये स्याही द्वारा भर दी। पति के पदधूलि में कितना गुण है। सभी पति की कृपा। पति से ही विश्वपति अंकुरित होते हैं। पति द्वारा विश्वपति को पाना सहज है। पति–पत्नी सम्बन्ध बहुत बड़ी साधना है। विवाह का दूसरा नाम है उद्वाह अर्थात् दोनों एक दूसरे को उन्नति के पथ में ले जाये इस कारण इसे उद्वाह कहते हैं। एकीभूत होकर एकाग्र भावना से देवता ज्ञान से मन, प्राण एवं अंग–प्रत्यंग द्वारा पति का भजन करना चाहिये। पति को पत्नी के प्रति भी देवी भावना रखना चाहिये। पति–पत्नी संबंध बहुत बड़ी साधना है।"

विवाह के कुछ दिनों के बाद गोस्वामीजी के निकट देवी की दीक्षा हो गई।

दीक्षा के लगभग 16 वर्ष पश्चात् देवी ने एक दुर्लभ अवस्था प्राप्त की थी। इस संबंध में उन्होंने लिखा है– "1301 बंगाब्द (सन् 1894 ई०) 25 ज्येष्ठ की दोपहर के समय अचानक मेरी क्षुधा शान्त हो गई। लगभग ढाई वर्ष बिना आहार किए बीत गए। उस समय मैं बानारीपाड़ा में रहती थी। उस वर्ष अचानक अकाल पड़ा। गरीब लोग अपने छोटे–छोटे बच्चों को लेकर भोजन के लिए सर्वदा घूमते रहते थे। सास प्रायः उन्हें चावल बनाकर देती थी। मुझे बार–बार भोजन बनाना पड़ता था। इस कारण एकदिन उन्होंने कहा इस तरह रोज देना संभव नहीं है। उन लोगों को दूसरे घरों में चले जाने के लिए वे कहती थी। मैं अपने हिस्से का अन्न एवं सब्जी छोटे–छोटे बच्चों को बांट देती थी। किसी–किसी दिन बड़े व्यक्तियों को भी जब सुनती कि दो दिन से भूखे हैं सब अन्न बांट देती थी। सास या घर के लोगों को यह बात मालूम नहीं थी। इस तरह लगातार पाँच दिन बीत गए। शरीर बहुत दुर्बल हो गया। घर में नौकर नही था। उस दिन दोपहर को बर्तन साफ करने के लिए तालाब के घाट में गई। उस समय शरीर बहुत ही कमजोर हो गया। बर्तन साफ करना भी कठिन लगा। भूख से व्याकुल हो गई। उस समय हृदय से प्रार्थना की, "ठाकुर अब तो मैं मर जाऊँगी। मैं तो अब कुछ भी नहीं कर सकती। शरीर बहुत दुर्बल हो गया है एवं बहुत भूख लगी है।" घाट के पास बैठकर पानी की तरफ दृष्टि रखकर मैं इस तरह प्रार्थना करने लगी। उस समय अचानक पानी के ऊपर गोसाँईजी को अपने निकट खड़े हुए देखी। उन्हें देखकर गम्भीर ध्यान में तल्लीन हो गई। अपने शरीर की भूख को आकर्षिण करते हुए हाथों में पुष्प की तरह लेकर उनके चरणों में अर्पण करने लगी। इस तरह क्षुधा–पुष्प को अर्पण करने के पश्चात्, चरणामृत मानकर अंजलि में भरकर, वे जहाँ खड़े थे वहाँ का पानी पेट भरकर पी लिया। पेट भर गया। पूर्ण रूप से भोजन करने पर जैसा लगता है वैसा लगा। इसके थोड़ी देर बाद गोसाँईजी अदृश्य हो गए। मैं सब बर्तनों को साफ करके घर आई। शरीर की सारी दुर्बलता, क्षुधा आदि समाप्त हो गई। इस प्रकार दिन बीतने लगा। सास भोजन करने के लिए बार–बार बोलती थी पर अनिच्छा रहते हुए भी उनकी बात मानकर थोड़ा दूध या कुछ भी खाने पर साथ ही साथ उल्टी हो जाती थी। शरीर सर्वदा स्वस्थ एवं सबल लगता था। ठाकुर जी का चरणामृत जंल लेती थी। प्यास लगने पर पानी भी लेती थी। पेशाब स्वाभाविक था एवं 5–6 महीने पश्चात् बकरी की लीद की तरह दो–एक मल निकलता था। रसोई आदि सभी कार्य स्वभाविक रूप से करती थी। सास एवं कई लोगों की धारणा हुई की शायद कोई बीमारी हुई है। सभी का मन सन्देह युक्त होने से इस प्रकार विचार आते थे। सास मुझे कोलकाता भेज दी।"

कोलकाता में देवी मनोरंजन गुहठाकुरता के घर ठहरीं। मनोरंजन बाबू ने

गोसाँईजी से कहा कि कुसुमकामिनी को उसकी सास चिकित्सा के लिए यहाँ भेजी है क्या किया जाए ? गोसाँईजी ने कहा, "उसका शरीर तो सबल और स्वस्थ है जब उसे चिकित्सा के लिए भेजा गया है तब डाक्टर को दिखा दो।" उस समय कोलकाता के सुप्रसिद्ध डाक्टर नीलरतन सरकार को दिखाया गया। उन्होंने अच्छी तरह परीक्षा की पर किसी भी रोग का लक्षण दिखलाई नहीं पड़ा। देवी के पास से पूरा विवरण सुनकर मुग्ध होकर उन्होंने कहा– "इनका शरीर मनुष्य का नहीं देवता का है। मनुष्य का शरीर बिना आहार से कभी पुष्ट नहीं होता। यह मेरी डाक्टरी बुद्धि के बाहर है आप लोगों ने मुझे अच्छा रोगी दिखलाया!"

गोसाँईजी के पास मनोरंजन बाबू ने सब बातें कही। गोसाँईजी ने सुनकर कहा कि एकदिन कुसुम द्वारा सबको भोजन बनाकर खिलाने पर अच्छा होगा। दूसरे दिन लगभग 75 लोगों का भोजन तैयार हुआ। दो सहायक भी साथ में थे। सभी तृप्तिपूर्वक भोजन किये। उस समय लगभग 7–8 महीने बिना भोजन किए हुए बीत गए थे। देवी को सौभाग्यवश गोसाँईजी का भावावेश में मधुर नृत्य एवं समाधि अवस्था देखने को मिला। उस समय गोस्वामीजी राखाल बाबू के घर में थे। इसी मकान में गोसाँईजी की छोटी कन्या प्रेमसखी (कुतु) को टायफायड हो गया। क्रमशः शरीर कमजोर होता गया। चिकित्सा की पूरी व्यवस्था की गई पर उनकी परमायु समाप्त हो गई। जिस दिन उसने शरीर छोड़ा उस दिन गोसाँईजी के निर्देश से कुसुमकामिनी सुबह आठ बजे से संध्या 5 बजे तक उसे नाम सुनाती रही। संध्या 5 बजे प्रेमसखी ने शरीर त्याग दिया। उस समय गोसाँई बहुत आनन्द पूर्वक कीर्तन करने लगे। भावावेश में गोसाँईजी को देखकर सब लोग अभिभूत हो गए। प्रेमसखी के जीवनी में इस घटना का विस्तृत विवरण प्राप्त होगा।

उल्लेखनीय है कि कोलकाता में कुछ दिन तक गोस्वामी प्रभु का संग करके देवी धन्य हो गई। यहाँ से बानारीपाड़ा आकर देवी के जीवन में एक अविस्मरणीय घटना घटी। घटना का विवरण देवी ने स्वयं इस प्रकार दिया–

उस दिन मैं रसोई बना रही थी। चूल्हें में थोड़ा सा फूस जलाकर एक हंडी में चावल और पानी देकर उसे चूल्हें में चढ़ा दी। फूस की आग ज्यादा देर नहीं रहती बार–बार फूस देना पड़ता है। उस समय मुझे नाम–जप करने की तीव्र इच्छा हुई। नाम में मैं तन्मय हो गई एवं भाव समाधि हो गई। बाह्यज्ञान संम्पूर्ण लुप्त हो गया। नामानन्द में मग्न थी। उस समय देखी कि गोसाँईजी कह रहे हैं "आज तुम्हें रसोई नहीं करना होगा। तुम्हारा चावल माता अन्नपूर्णा बना रही है।" मैं चूल्हा के पास संध्या 6 बजे बैठी थी। रात को नौ बजे उठकर देखी कि बहुत सुन्दर रूप से चावल तैयार हो गया। चावल में माड़ बिलकुल नहीं था। चावल बहुत गरम एवं हंडी ढकी हुई थी। चूल्हे के भीतर बिल्कुल ठण्डा था। आग भी

नहीं थी एवं राख भी नहीं थी। उस समय घर के सब लोग इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उस अन्न को सास, कैलासबाबू, पतिदेव एवं सभी लोगों ने थोड़ा खाकर देखा। मैंने भी लिया। भगवान के राज्य में कुछ भी असंभव नही। दूसरे दिन इस अन्न से पशु–पक्षिओं को भी थोड़ा–थोड़ा दिया गया। यह अन्न सुखाकर रख दिया गया। अनेक भाग्यवान लोगों ने इस शुष्क अन्न प्रसाद को पाया था।

इस घटना के समय गोस्वामीजी कोलकाता में थे। गोसाँईजी जब कुंभ मेले में गए उस समय वरिशाल जिले के प्रसिद्ध वकील गोराचांद दास ने गोस्वामीजी से इस घटना के सम्बन्ध में जानने की इच्छा से प्रश्न किया कि कुंज बाबू के देश में बिना अग्नि से क्या चावल पक गया था ? गोसाँईजी ने कहा, "इसमें आश्चर्य क्या है। पंचभूत तो है ही जब जिसके द्वारा कार्य हो जाय।" उस दिन नित्यपाठ समाप्त होने पर इस घटना के सम्बन्ध में गोसाँईजी ने कुंज बाबू से पूछा। कुंज बाबू ने घटना का विस्तृत विवरण दिया। उसे सुनकर गोसाँईजी ने कहा था –

"यह अति सत्य घटना है इसे ही सत्य घटना कहते हैं। इस प्रकार की घटना बहुत दुर्लभ होती है। इस एक घटना द्वारा परवर्ती काल में कितने लोगों का उद्धार हो जावेगा। युग–युगान्तर बीत जायेगा पर यह घटना पर्वत पर अंकित रेखा की तरह चिरस्थाई हो जायेगी। वर्तमान समय में इस घटना का समादर कोई नहीं करेगा। कोई कहेगा यह मिथ्या है या प्रशंसा पाने के लिए कोई चालाकी की होगी। यदि तुम लोग भक्ति कर सको एवं मर्यादा दे सको तब और आश्चर्यजनक कार्य देख सकोगे। भगवान की अन्नपूर्णा शक्ति ने रसोई बनाई थी।"

ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी ने "श्रीश्री सद्‌गुरु संग" ग्रन्थ में कुसुमकामिनी देवी के संबंध में विशेष विवरण दिया है। यहाँ संक्षेप में उस दिन की घटना दी जा रही है– भ्रमण करते हुए ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी वानारीपाड़ा गाँव में आए एवं वहाँ कुछ दिन रुके। इस गाँव में गोसाँईजी से कृपा प्राप्त काफी लोग रहते थे। ब्रह्मचारी एक–एक दिन विभिन्न घरों में भीक्षा ग्रहण करते थे। ब्रह्मचारीजी से भेंट होने पर कुसुमकामिनी देवी ने उन्हें थोड़ा सा शुष्क अन्न देकर कहा कि जिस समय माता अन्नपूर्णा देवी ने रसोई बनाई थीं उस समय गोसाँईजी ने प्रकाशित होकर मुझे कहा था, "ब्रह्मचारी यहाँ आ रहे हैं उनके लिए एक ग्रास अन्न रख देना। इसी कारण एक ग्रास आपके लिए सूखा के रखी थी। माता अन्नपूर्णा द्वारा बनाया हुआ चावल आपको भीक्षा में दे रही हूँ।"

दूसरे दिन देवी के अनुरोध से ब्रह्मचारीजी उनके घर भिक्षा ग्रहण करने के लिए गए। ब्रह्मचारीजी स्वपाक अन्न लेते थे। उस हिसाब से एक सेर चावल की

खिचड़ी बनाने का आयोजन किया गया। इस परिवार के प्रति गोसाँईजी की असाधारण कृपा देखकर ब्रह्मचारीजी मुग्ध हो गए। भोजन तैयार हो जाने के पश्चात् देवी ने कहा– जब आप घर में थे उस समय एकदिन मैं स्वप्न देखी कि आप आकर कह रहे हैं, "मुझे भूख लगी है। कुछ भोजन दो।" मेरे पास ठाकुर जी का प्रसाद था वह मैं आपको अपने हाथों से खिलाने लगी। आप बहुत आनन्दपूर्वक खाने लगे। ब्रह्मचारीजी ने पूछा कि क्या मुझे इसी वेश में तुमने देखी थी। देवी ने कहा कि यही वेश था पर तिलक भभूत का नहीं था वह लाल सिन्दूर का था। ब्रह्मचारीजी आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि घर में रहते समय वे इसी प्रकार तिलक करते थे। देवी के अनुरोध को मानकर ब्रह्मचारीजी भोजन करने सम्मत हो गए। अपने पति की अनुमति लेकर ब्रह्मचारीजी को अपनी गोद में बैठाकर एक बालक की तरह देवी भोजन कराने लगी। देवी भावावेश में थी। ब्रह्मचारीजी को जब देवी ने गोद में लिया तब उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वे गोसाँईजी की गोद में बैठे हैं। भोजन करते समय अकस्मात् गुरुदेव के शरीर की सुगंध 'पद्मगंध' पाकर ब्रह्मचारीजी भी भावमुग्ध हो गए। उन्हें ऐसा लगा कि गोसाँईजी की गोद में उनके श्रीहस्त से प्रसाद ले रहे हैं। ब्रह्मचारी इसी ध्यान में मग्न हो गए। ब्रह्मचारीजी ने इस अनुभव को व्यक्त करते हुए लिखा है– "मेरी सभी बाह्यस्मृति लुप्त हो गयी। अनुभव केवल स्पर्शसुख में सीमित था। एक अव्यक्त आनन्द में मुग्ध हो गया। भाषा द्वारा इसे प्रकाश नहीं कर सकता। यह अवस्था भी अधिक समय नहीं रही। देवी के असाधारण ध्यान के प्रभाव से मुझे अपने देह से मानो अलग कर दिया। मैं देखने लगा कुसुम की गोद में स्वयं गोसाँईजी अर्धशायित अवस्था में हैं एवं देवी उन्हें खिचड़ी खिला रही हैं। गोसाँईजी आनन्दपूर्वक भोजन कर रहे हैं। भोजन के समय गोसाँईजी के श्री मुखारविन्द की शोभा को देखते हुए मेरी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। बाह्यज्ञान सम्पूर्ण लुप्त हो गया। प्रायः एक घन्टे पश्चात् कुंज बाबू की 'जय गुरु' 'जय गुरु' आवाज सुनकर मेरी चेतना लौट आई। उस समय कुसुमकुमारी भी स्वाभाविक अवस्था में आ गई। मैं उठकर कुछ देर तक बैठा रहा। कुसुमकुमारी पुनः समाधिस्थ हो गई। मैं सोचने लगा। यह क्या हो गया ? कुंज बाबू भी अश्रुमग्न हैं एवं देवी समाधि मग्न। खिचड़ी थोड़ी सी पड़ी थी। लगभग 5–7 लोगों के भोजन के लायक खिचड़ी मेरे पेट में चले गई। पर मुझे लगा कि मैंने केवल 4–5 ग्रास भोजन किया है। अपरिमित परिमाण में भोजन से मुझे कुछ भी तकलीफ नहीं हुई। स्वाभाविक अवस्था में शरीर था। कुसुम की समाधि उस दिन रात्रि प्रायः तीन बजे टूटी। जय दयाल गुरुदेव की ! तुम्हारी यह असाधारण कृपा मेरे अन्तिम दिनों तक जागृत रहे –यही प्रार्थना है!"

ब्रह्मचारी प्रदत्त विवरण में देवी की उच्च आध्यात्मिक अवस्था की झलक

दिखलाई पड़ती है।

उल्लेखनीय है कि कुसुमकामिनी देवी ने 'आचार्य योग' ग्रन्थ में पति–पत्नी के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए लिखा है –

"पति और मैंने एक साथ वानारीपाड़ा में रहते समय सास की पूजा अनेक बार की है। ससुर की पूजा करने का सौभाग्य मेरे भाग्य में नहीं हुआ क्योंकि मेरे विवाह के लगभग ढाई वर्ष पूर्व उनका निधन हो गया था।" कुंजबाबू जिस समय भागलपुर एवं कूमिल्ला में हेडमास्टर थे उस समय कुसुमकामिनी की माँ कुछ दिन उनके पास रही। उस समय कुंज बाबू और देवी नित्य उनकी पूजा करते थे। कुंजबाबू जब लक्ष्मीपुरा में थे उस समय देवी को आसन में बैठने की बहुत सुविधा हुई। आसन में बैठने के 10–12 मिनट पश्चात् वे नाम समाधि में मग्न हो जाती थी। उन्होंने लिखा है–

"गुरुजी की इच्छा से मन स्थिर होने पर समाधि होती है– अर्थात् संसार की तरफ मन निश्चेष्ट हो जाता है, उस समय उस सम्बन्ध में कोई चेतना नहीं रहती। शरीर में प्राण रहता है पर मन नहीं रहता। उस समय केवल आनन्द, दर्शन एवं बातचीत होती है। यह सब चिन्मय कार्य है– स्थूल कार्य नहीं है। समाधि से यदि उठाने की आवश्यकता हो तो कान के पास कुछ देर धीरे–धीरे 'नाम' करना चाहिये। 'नाम' कान से होकर अन्दर जाने पर मन इधर आ जाता है तब चेतना आ जाती है।"

गोस्वामीजी दीक्षा के समय कहते थे– "जो गृहस्थ हैं उन्हें पति–पत्नी के मध्य भगवत् सम्बन्ध स्थापना करना होगा। पत्नी भगवत् शक्ति, पति नारायण है। पत्नी अपने पति को नारायण ज्ञान से भक्ति करेंगी। पति भी पत्नी को भगवान की शक्ति मानकर चलेंगे, जिस प्रकार सावित्री, लक्ष्मी, भगवती उसी प्रकार। जिस परिवार में पति–पत्नी के मध्य इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होता है वहाँ किसी भी प्रकार का अकल्याण नहीं हो सकता। इस प्रकार होने से परिवार में ही भगवत् लीला का दर्शन होगा।"

देवी का जीवन उपरोक्त निर्देश का एक दृष्टान्त है। गृहस्थ आश्रम में रहकर दोनों ने ब्रह्मचर्य का पालन किस तरह किया, इसका उल्लेख करते हुए देवी ने लिखा है– "ऋतु स्नान के बाद तीन दिन वे (कुंजबाबू) पत्नी संग करते थे। यह वीर्य का अपव्यय नहीं, शास्त्र सम्मत ब्रह्मचर्य है। इसमें दोष नहीं है। सृष्टि कर्ता की इस प्रकार इच्छा है, नहीं तो सभी यदि स्थिर–वीर्य हो जावें तब कुछ दिनों के भीतर संसार ध्वंस हो जायेगा एवं भगवान की लीला बन्द हो जायेगी। उनका (कुंजबाबू का) चरित्र बल बहुत था। केवल पति थे इसलिए ही नहीं अपने चरित्र

बल से उन्हें देवता बोध होता था। ब्रह्मचर्य पालन से शरीर और मन दोनों अच्छा रहता हैं पर इसके पालन के लिए दोनों की परस्पर सहायता आवश्यक है। संयम का दोनों को पालन करना पड़ता है। दोनों की परस्पर उन्नति हो इस कारण विवाह को उद्वाह भी कहा जाता है। दूध के भीतर जिस तरह मक्खन है शरीर के भीतर वीर्य उसी तरह है। इस वीर्य का अपव्यय करना अत्यन्त अपराध एवं दुःख की बात है। इससे मन का आनन्द कम हो जाता है। शरीर अवसन्न होकर शक्तिहीन हो जाता है। शास्त्रों में कहा है वीर्य का अपव्यय ब्रह्महत्या के तुल्य पाप है। कुछ लोग अधिक पत्नी संग करते हैं यह उचित नहीं है एवं उनकी स्त्रियां भी सहयोग देकर पति का मंगल नहीं करती हैं। वे बाघिनी की तरह कार्य करती हैं।"

इसीलिए कहा गया है –

दिन की मोहिनी, रात की बाघिनी

पलक पलक लहू चूसे।

दुनिया के लोक सब बावर हुआ

घर घर बाघिनी पोसे।।

लक्ष्मीपुरा में रहते समय अनाहार में देवी का ढाई वर्ष बीत गया। 21 वर्ष की उम्र में उनका प्रथम गर्भ हुआ। उस समय एकदिन आसन में बैठकर नाम करते समय गोसाँईजी का निर्देश मिला– "अब से तुम आहार करो, अनाहार में मत रहो।" गोसाँईजी उस समय कोलकाता में राखाल बाबू के घर में थे। आश्चर्य की बात है कि उसी दिन से उन्हें भूख लगी एवं वे नियमित रूप से भोजन करने लगी। शरीर की सब क्रिया ठीक स्वाभाविक रूप से चलने लगी।

कुंजबाबू शेष 14 वर्ष हविगंज स्कूल में हेडमास्टर थे। बंगला सन् 1329 आश्विन महीने (सन् 1922 ई०) में 56 वर्ष की उम्र में उन्होंने शरीर छोड़ा। उनको निमोनिया हुआ। 13 दिन तक सेवा एवं चिकित्सा चली। उस समय अपने मन की अवस्था को देवी ने इस प्रकार व्यक्त की है–

"उन्होंने (कुंजबाबू ने) शरीर छोड़ा। फूल, बेलपत्ती से उनकी अच्छी तरह पूजा की। उसी में आनन्द मिला। क्योंकि पहले से ही मेरे मन की दृढ़ धारणा रही है कि दैहिक सम्बन्ध कुछ भी नहीं है– यह क्षण भंगुर है। काँच की वस्तु की तरह यह क्षण भंगुर है। इस कारण पहले से मैं ध्यान करती थी। आँखों में देखने की अपेक्षा ध्यान में देखने पर अधिक आनन्द पाती थी। सभी ठाकुर की महिमा है। चिन्मय वस्तु की दृढ़ता अधिक है। स्थूल वस्तु सभी क्षणभंगुर है।"

बंगला भाषा में देवी ने अनेक भजन एवं कविता लिखी थी। इन कविताओं

में उनके हृदय की भावना प्रकट थी। अपने शेष जीवन में वे सर्वदा नाम–जप एवं इष्ट ध्यान में मग्न रहती थीं। यद्यपि विशेष रूप से उन्होंने किसी शास्त्र का अध्ययन नहीं किया था पर श्रीमद् भागवत के श्लोकों को वे शुरू से अन्त तक बोल सकती थीं। इस संबंध मे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा था– "ये सब श्लोक समुद्र की तरंग की तरह मन के भीतर उदित होते हैं। श्लोक कहते समय यदि कोई बात करें तब तरंग उठना बन्द हो जाता है।"

देवी ने 'आचार्य योग' ग्रन्थ में अपने कुछ दर्शन एवं अनुभूति का उल्लेख किया है। उदाहरण स्वरूप यहाँ कुछ दिया जा रहा है–

1. प्रथम बार काशी जाकर प्रथम दिन जब विश्वनाथजी का दर्शन करने गई तब विश्वनाथ शिवलिंग के बदले वहाँ गुरुदेव गोसाँईजी को देखी। मेरे प्रणाम करने के बाद भी मैं उन्हें देखती रही। थोड़ी देर बाद वे अदृश्य हो गए तब पत्थर के शिवजी का दर्शन की। आरती एवं भोग के समय भी इसी तरह विश्वनाथजी के स्थान पर गोसाँईजी को देखी।

2. हविगंज में रहते समय एकबार रात सात–साढ़े सात बजे, मैं जिस खाट में सोती थी उसी पर स्थिर भाव से बैठी नाम–जप कर रही थी। उस समय अचानक देखी कि जगन्नाथजी के मन्दिर में बैठी हूँ। मंदिर में अनेक लोगों को भी देखी। जगन्नाथजी, सुभद्रामाई एवं बलरामजी सभी जाग्रत लग रहे थे। सभी मूर्ति अत्यन्त माधुर्यमय लगे। इसे देखकर मैं आनन्द सागर में डूब गई। 10–15 मिनट बाद यह सभी दृश्य अदृश्य हो गए।

3. पुरी में गोस्वामीजी के समाधि मंदिर में देवी ने कई बार गोस्वामीजी का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर फूल–तुलसी से उनकी पूजा की थी।

4. भुवनेश्वर में आकर प्रथम दिन पत्थर के शिवजी का दर्शन की। दूसरे दिन मंदिर में जाकर जब फूल बेलपत्ती आदि द्वारा पूजा करने लगी तब वहाँ अचानक पत्थर के शिवजी को न देखकर गोसाँईजी को खड़े हुए देखी। चेहरा बहुत उज्ज्वल था। तीन–चार मिनट इस तरह दर्शन मिला। फिर वे अदृश्य हो गए।

5. पुरी में जगन्नाथजी के मंदिर में भी इसी तरह कई बार देवी को जगन्नाथजी के स्थान पर गोसाँईजी का प्रत्यक्ष दर्शन मिला था।

6. एकबार गोसाँईजी के समाधि मंदिर में आरती के पश्चात् कीर्तन के समय देवी ने देखा कि समाधि स्थान ज्योतिर्मय हो गया है एवं वहाँ पर गोस्वामीजी को नृत्य करते हुए देखी। 15–16 मिनट इस प्रकार दर्शन हुआ।

इस तरह अनेक प्रकार के दर्शन देवी को प्रायः होते रहते थे। श्री गुरुदेव की कृपा से नाम, नामी (इष्टमूर्ति) एवं नामदाता (सद्गुरु) तीनों एक ही हैं यह तत्व प्रत्यक्ष अनुभव कर देवी धन्य हो गई। देवी ने कई मूल्यवान लेख लिखे थे, उनमें से साधकों के लिए उपयोगी एक लेख एवं एक पत्र नीचे दिया जा रहा है।

मोह– मोह के भ्रम में पड़कर हम लोग केवल व्यर्थ दुःख भोग करते रहते हैं। मेरा पुत्र, मेरी लड़की, मैंने यह किया, मैं यह करूँगा, किसी के प्रशंसा से आनन्दित हो गया, किसी के निंदा से दुःखित हो गया, शोक के कारण विषाद ग्रस्त हो गया। इस प्रकार असंख्य रूप से मोह उत्पन्न होते हैं। अंह ज्ञान से ही मोह की उत्पति होती है। इसी मोह के कारण अनेक प्रकार के दुःख पाना पड़ता है। वास्तव में देखा जाए तो मोह एक प्रकार का भ्रम है। इसी भ्रम में पड़कर जगत् मुग्ध है। इस भूल को दूर करना ही होगा। मैं जो भी लिख रही हूँ यह कल्पना से नहीं अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति प्रकाश कर रही हूँ।

इस जीवन पथ में मोह के संबंध में अच्छी तरह समझकर चलने पर मालूम चलेगा कि मोह हमें कितना क्लेश देता है। इस सत्य को सर्वदा याद रखने पर मोह अपने आप चला जाता है। जिस समय चोर चोरी करने के लिए घर में घुसता है तब यदि मालिक जाग जाय तो वह तुरन्त भाग जाता है। इसे मैंने विशेष रूप से अनुभव किया है। मेरी 13 संतान हुई उसमें से सात चले गए। मैं संतानों को बहुत प्यार करती थी पर उनके चले जाने पर शोक अनुभव नहीं हुआ। किसी भी प्रकार विचलित नहीं हुई। संतानों के मृत्यु के समय नाम एवं कीर्तन करती थी। क्योंकि अच्छी तरह स्मरण रहे कि हमलोग एक रेलगाड़ी के सवारी हैं तब एक सवारी क्या दूसरे सवारी के उतरने के लिए अपेक्षा करेगा। वैसा कभी भी नहीं होता। इस जीवन के पथ में जिसे जितनी दूर जाना है, वहाँ तक जाने के बाद निर्दिष्ट स्थान आने पर हमलोग उतर जाते हैं। हमलोग अपने साथ श्वाँस–प्रश्वाँस रूपी एक प्रकार छोटा प्राणायाम लेकर आए हैं। जितना प्राणायाम लेकर आए हैं उतना समाप्त होते ही सब कुछ त्यागकर चले जाते हैं। मनुष्य, कुत्ता आदि विभिन्न रूप एक क्षणिक अवस्था है। मूल में सभी भगवत् शक्ति है। हम चाहे तो बीज लगा सकते हैं पर क्या हम वृक्ष उत्पन्न कर सकते हैं ? अतः मैं सर्वदा देखती हूँ कि **भगवान ही सब कर रहे हैं। भगवान मातृगर्भ में शिशु की तरह हैं। जिस प्रकार माँ अपने गर्भ में रक्षित शिशु की हलचल समझ सकती है पर उसे न पकड़ सकती है और न देख सकती है। केवल उसे वह अनुभव कर सकती हैं। मातृगर्भ में स्थित शिशु की तरह भगवान सर्वमय हैं। हम उसे देख नहीं सकते, पकड़ नहीं सकते पर विचार करने पर स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं।**

भगवान के इस रंगमंच पर हम लोग केवल उनके खेल देखते रहेंगे। हम

लोग आनन्द करेंगे। सभी के प्रति प्रेम भावना रहेगी। मोह नहीं रहने पर किसी के शरीर छोड़ने पर किसी प्रकार के क्लेश का अनुभव नहीं होगा। कारण मोह नहीं रहने पर स्पष्ट समझ में आयेगा कि यह सब भ्रम है।

देवी लिखी हैं – मोह दूर करने के लिए बहुत साधन–भजन की आवश्यकता नहीं है। मोह के संबंध में सर्वदा विशेष ध्यान रखने पर वह स्वतः चला जाता है। इसे मैंने पूर्ण रूप से अनुभव किया है। इसी कारण इस विषय पर जोर देकर कह रही हूँ। मोह दूर होने पर ही शांति मिलेगी। जगत् आनन्दमय होगा। व्यर्थ दुःख तब भोगना नहीं पड़ेगा।

"मैं जो नाम करती हूँ वह भी मैं नहीं करती हूँ। बहुत दिन हो गए श्वाँस के साथ नाम मिल गया है। श्वाँस के साथ वह होता रहता है। इस लेख को लिखते समय मैं पुरी में हूँ एवं मेरी उम्र 74 वर्ष है।"

देवी के उपरोक्त लेख से प्रतीत होता है कि सद्गुरु नाम की शक्ति से देवी शोक–मोह को अतिक्रम करते हुए एक दिव्य आनन्द में मग्न थी। देवी अधिकांश समय कोलकाता में रहतीं थी। कभी–कभी तीर्थों का भ्रमण भी करती थीं। काशी, पुरी, प्रयाग धाम देवी कई बार गईं। दरवेशजी महाराज एवं गोसाँईजी के अन्य शिष्यगण देवी पर बहुत श्रद्धा रखते थे।

वृद्ध अवस्था में देवी के शरीर में रक्त की कमी देखी गई। शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। कोलकाता के अच्छे डाक्टरों के निर्देशानुसार चिकित्सा की गई पर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में 1361 बंगाब्द 14 श्रावण (सन् 1954 ई०) प्रातः 4 बजे देवी ने भी गुरुदेव का स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिया।

देवी का एक पत्रांश–

श्री गुरुदेव के चरणों का आश्रय करते हुए सुस्थिर रूप से सन्तानों को लेकर पड़ी हूँ। अभी संसार के आकर्षण से अलग रहते हुए संसार के कार्यों में लगी हूँ। संसार की ग्रन्थि छिन्न हो गई है, चित्त उनसे लगा है। अभी इस लोक और परलोक दोनों के सन्धि स्थान पर रहती हूँ। उनके आशीर्वाद से मैं स्थिर हूँ। पति के भीतर मैंने ईश्वर की उपासना की है। दयामय ईश्वर मुझे स्थूल से सूक्ष्म जगत् में ले गए हैं। ....यद्यपि बहिरंग भजन समाप्त हो गया है पर अन्तरंग भजन और अधिक घनीभूत हो गया है। अपने को एक क्षण के लिए भी मैं विधवा नहीं समझती क्योंकि हृदय राज्य में वे सर्वदा परिभ्रमण कर रहे हैं। मैं अपने को पति से युक्त समझती हूँ। मेरे हृदय मंदिर में वे (पति) ही गुरुदेव के रूप में विराजित हैं। वे मेरी शिराओं में प्रवाहित हैं। मेरा जो कुछ भी है सब उन्हीं का दान है। उनके सिवाय मेरा कुछ भी नहीं है। पति को मैं विश्वपति का ही बीज समझती हूँ। बीज से जिस प्रकार

वृक्ष अंकुरित होता है उसी प्रकार पति से विश्वपति प्रकाशित होते हैं। जब मन, प्राण, शरीर के सब अंग–प्रत्यंग केवल पति का ही अनुसरण करते हुए पति का भजन करे तब पति के ध्यान से ही विश्वपति प्रकाशित होते हैं। यह उनकी कृपा से मैंने अनुभव किया है। इस कारण वे मेरे परम् सम्पति हैं। उनसे मैं किसी भी समय विच्छिन्न नहीं हूँ।

अभी मैं किस अवस्था में हूँ समझ में नहीं आता। अनेक समय सुख–दुःख कुछ भी समझ नहीं पाती। पूर्व स्मृति का स्मरण रखते हुए आच्छन्न एवं भीतर मौन रहती हूँ। गुरुदेव की जो इच्छा है वह सभी मंगलमय है। उन्हीं की इच्छा पूर्ण हो।

आपलोगों के साथ मेरा सम्बन्ध अनन्त काल से है। यह विश्व ब्रह्माण्ड दयामय ईश्वर की लीलाभूमि है। उनसे हम लोग विच्छन्न हो गए थे फिर उन्हीं में मिल जावेंगे। वे सर्वमय है अनन्त ब्रह्माण्ड में अनन्त रूप से लीला कर रहे हैं। सभी ठाकुरजी हैं, दुःख देने वाले एवं भोगने वाले ठाकुरजी ही हैं – सुख देने वाले एवं भोगने वाले ठाकुरजी ही हैं – सर्व भूत में, सब वस्तुओं में, सब स्थानों में ठाकुरजी ही हैं – यह ठाकुरजी की कृपा से, आप लोगों के आशीर्वाद से प्राणों में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। यह केवल लिखने के लिए नहीं वरन् प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है।

****

श्रीमती सरोजबाला देवी

गोसाँईजी के शिष्यों में जिन्होंने सद्गुरु के रूप में असंख्य लोगों का उद्धार किया उनमें श्रीमत् स्वामी किरणचन्द्र दरवेशजी महाराज एवं उनके पूर्वाश्रम की सहधर्मिणी श्रीमती सरोजबाला देवी का नाम प्रसिद्ध है।

स्वामी किरणचन्द्र दरवेशजी पूर्वाश्रम में जब विद्यार्थी थे तब एकदिन एक तेरह वर्ष की उम्र की बालिका ने उन्हें परमार्थ पथ में अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया था। उनकी बातों को सुनकर किरणचन्द्र की अन्तरात्मा चौंक उठी थी। परवर्तीकाल में यही बालिका उनके धर्मजीवन की सहायिका एवं सहधर्मिणी हुई।

8 जुलाई, सन् 1881 ई० शुक्रवार में देवी सरोजबाला का जन्म उत्तरी बंगाल के पावना में हुआ था। पिता हरिचरण गंगोपाध्याय एवं माता हरमोहिनी देवी थी। माखनलाल थे देवी के बड़े भाई। पिता पुलिस की नौकरी करते थे। माता हरमोहिनी देवी की सत्यनिष्ठा प्रसिद्ध थी। इसी कारण उनके सन्तानों ने भी इसी सत्य की पूजा आजीवन की।

देवी के बड़े भाई माखनलाल को सौभाग्यवश छात्र अवस्था में ही सद्गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के पास दीक्षा मिल गई। अपनी छोटी बहन की दीक्षा के लिए प्रार्थना करने पर गोसाँईजी ने कुछ दिन अपेक्षा करने का निर्देश दिया। कुलीन ब्राह्मण की कन्या को विवाह के पश्चात् किस प्रकार का घर मिलेगा, दीक्षा के नियम आदि उसके द्वारा पालन करना संभव होगा कि नहीं इत्यादि विषयों की चिन्ता उन्हें होती थी।

ईश्वर के विधान से माखनलाल के अन्तरंग एवं अभिन्न मित्र थे फरीदपुर जिले के खालिया गाँव के किरणचन्द्र। छात्र अवस्था से दोनों की घनिष्ट मित्रता रही। माखनलाल की माता किरणचन्द्र को पुत्रवत् स्नेह करती थी। स्कूल की छुट्टी में अवसर मिलने पर किरणचन्द्र प्रायः माखनलाल के घर में आ जाते थे। माखनलाल की माँ के स्नेह का उल्लेख करते हुए किरणचन्द्र ने आत्मकथा में लिखा है– "मैं उन्हें माँ कहता था। दूसरे की माँ को माँ कहने पर इतना आनन्द मिलेगा यह मुझे मालूम नहीं था। माखन के घर में उसकी छोटी बहन सरोजबाला को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ जाता था। उस समय उसकी उम्र लगभग तेरह वर्ष होगी। मेरी उम्र उस समय सोलह वर्ष थी। उसकी विषेशता यह थी कि वह

अधिकांश समय मौन रहती थी। दिन भर में उसे चार–पाँच बार केवल बात करते हुए देखता था। अपनी माँ के संसारिक के कार्यों में वह सहायता करती थी। प्रतिदिन संध्या के समय तुलसी मंच के समीप प्रदीप जलाना एवं प्रणाम करना उसका नित्यकर्म था। प्राथमिक अवस्था में इसकी नीरवता मुझे अच्छी नहीं लगती थी। पर जब उसके दैनन्दिन कार्यों का अवलोकन किया तब उसके प्रति आकर्षित हुआ एवं इसके प्रति अपने–आप श्रद्धा उत्पन्न हुई।"

माखनलाल अपनी छोटी बहन को बहुत स्नेह करते थे। इसकी दीक्षा के लिए गोसाँईजी की अनुमति मिल गई थी। पर विवाह के पश्चात् बालिका के पति कैसे होंगे ? पति साधना में सहायक होंगे या नहीं ? इत्यादि चिन्ता करके वे बहुत चिंतित हो गए थे। गोसाँईजी ने उसे कुछ दिन और अपेक्षा करने के लिए कहा। बालिका के भविष्य को लेकर मैं भी काफी चिंतित हो गया।"

बाल्यकाल में देवी का स्वभाव किस प्रकार था, यह किरणचन्द्र के उपरोक्त लेख से स्पष्ट हो जाता है। दुर्गा–पूजा के अवकाश के समय माखनलाल एवं किरणचन्द्र खालिया में चले गए। वहाँ किरणचन्द्र के घर बड़े धूमधाम से दूर्गा–पूजा मनाई जाती थी। इसके बाद दोनों मित्र माखनलाल के घर अड़ियाल गाँव में चले आए। आड़ियाल में रहते समय एकदिन किरणचन्द्र बरामदे में अकेले बैठे थे। अचानक उस समय सरोजबाला देवी वहाँ आई एवं बोली, "आपको अभी तक दीक्षा नहीं मिली है न ?" उस निर्वाक् बालिका के मुँह से अचानक इन शब्दों को सुनकर किरणचन्द्र चौंक उठे। उन्होंने पूछा "कौन सी दीक्षा ?" इसे सुनकर बालिका कुछ देर निर्वाक् रहकर बोली, "आश्चर्य की बात है आप किस तरह के व्यक्ति हैं ?" ऐसा कहकर देवी अप्रसन्न भाव से चली गई।

देवी के वाक्यों का प्रभाव किरणचन्द्र के हृदय में पड़ा। देवी के इस वाक्य ने किरणचन्द्र को एक नई दिशा दिखलाई। किरणचन्द्र ने अचानक इस समय एकदिन स्वप्न देखा कि वे मजबूत रस्सी से बंधे हुए हैं एवं उन्हें मुक्त करने वाला कोई नहीं है। स्वप्न को देखकर एवं देवी के बातों को स्मरण कर विभिन्न विचार उनके मन में आने लगे। उसी समय अचानक किसी कार्यवश देवी उस कमरे में आई। देवी से किरणचन्द्र ने पूछा – "उस दिन तुमने अचानक मेरे प्रति अप्रसन्नता भावना दिखलाई उसका क्या कारण है। गोसाँईजी के पास दीक्षा प्रार्थी होने से ही क्या दीक्षा हो जाती है। सुना है कितने लोगों को उन्होंने प्रार्थी होने पर भी दीक्षा नहीं दी ? मुझे भी यदि अनुमति न दे तो क्या होगा ? "देवी ने उत्तर दिया– "दीक्षा पाना या न पाना यह मनुष्य के हाथ में नहीं है – यह दीक्षा जो देंगे वे समझेंगे। पर दीक्षा प्रार्थी होने का सौभाग्य आपको है। ऐसी मेरी धारणा थी इसी कारण उस दिन कही थी। इसके लिए क्षमा माँगती हूँ। यह दीक्षा न मिलने पर

भी केवल प्रार्थी होकर जो मरेगा, उसकी चिन्ता नहीं। इस प्रकार क्यों वृथा दिन बिता रहे हैं ?" ऐसा कहकर देवी चली गई। पर इन वाक्यों का किरणचन्द्र के मन पर विशेष प्रभाव हुआ। इसके बाद मित्र के निर्देशानुसार उसी दिन गोसाँईजी को उन्होंने पत्र लिखा। इस तरह देवी सरोजबाला ने किरणचन्द्र को उनके सुप्त या विस्मृत लक्ष्य के प्रति अग्रसर होने में जो सहायता की थी उससे किरणचन्द्र का भविष्य जीवन सम्पूर्ण परिवर्तित हो गया इसमें सन्देह नहीं।

यथा समय सन् 1302 बंगाब्द (सन् 1895 ई०) में वृन्दावन के तीर्थमणि कुंज में किरणचन्द्र की दीक्षा गोसाँईजी के पास हो गई। इस घटना का विस्तृत विवरण ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में दिया गया है। गोसाँईजी के पास दीक्षा प्राप्त कर किरणचन्द्र धन्य हो गए। पर इस दीक्षा के लिए प्रेरणा देने के कारण सरोजबाला के प्रति वे बराबर कृतज्ञ रहे। 1302 बंगाब्द (सन् 1896 ई०) में ढाका में जो धूलट उत्सव हुआ था उस समय किरणचन्द्र को गोसाँईजी ने विवाह का निर्देश दिया था एवं सरोजबाला देवी के साथ विवाह करने को कहा। किरणचन्द्र जब आड़ियाल में आए उस समय गोसाँईजी के निर्देश के सम्बन्ध में सरोजबाला देवी से बात हुई। सरोजबाला ने उस समय कहा – "मैं तुम्हारे सिवाय अन्य किसी से विवाह नहीं करूँगी।" इसे सुनकर किरणचन्द्र निश्चिन्त हो गए।

1303 बगांब्द (सन् 1896 ई०) 4 आषाढ़ को गोसाँईजी का पत्र पाकर किरणचन्द्र कोलकाता में सीताराम घोष स्ट्रीट के पते पर उनके पास गए। 15 आषाढ़ को गोसाँई जी ने किरणचन्द्र को बुलाकर कहा – "25 आषाढ़, बुधवार की रात्रि तुम्हारे विवाह का निर्दिष्ट समय है। तुम अभी अपने घर खालिया चले जाओ। मेरा आशीर्वाद है– सरोजबाला तुम्हारे धर्म पथ में प्रधान सहायिका रहेगी।"

गोसाँईजी के निर्देशानुसार यथासमय विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् देवी खालिया में आ गई। यहाँ कई दिनों तक आनन्द उत्सव चला। उस समय सरोजबाला आनन्द में मग्न हो गई। किरणचन्द्र ने उसे कहा– "यह आनन्द उत्सव तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन में स्थाई रहे – यही प्रार्थना है।" इस तरह भगवत विधान से दो शक्ति मिलित हुए। विवाह के पश्चात् देवी दीक्षा के लिए व्याकुल हो गई। गोसाँईजी के निर्देशानुसार 1303 बंगाब्द 12 माघ (सन् 1897 ई०) के दिन देवी दीक्षा प्राप्त करके धन्य हो गई। दीक्षा के पश्चात् देवी एक विशेष आनन्द में मग्न हो गई। ऐसा लगा मानो आनन्द का दबा हुआ स्त्रोत खुल गया।

विवाहित जीवन में किस तरह रहना चाहिये इस संबंध में गोसाँईजी ने उन्हें जैसा निर्देश दिया था उसे वे कठोर रूप से पालन करने लगे। विवाह के पश्चात् एक ही शय्या में शयन करते हुए भी वे इन्द्रियों के प्रभाव से दो महीने तक मुक्त रहे। दो महीने पश्चात् अचानक गोसाँई का पत्र आया –

"मैं सन्तुष्ट हुआ। तुम लोग परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। अब कोई डर नहीं है। मैं रास्ता तैयार करता जा रहा हूँ तुम लोग अग्रसर होते रहो।

देवी सरोजबाला भगवत् निर्दिष्ट पत्नी थी किरणचन्द्र की। विवाह के पश्चात् दोनों ने प्रतिज्ञा की–

1. एक दूसरे के धर्म–जीवन में बाधा प्रदान नहीं करेंगे।

2. इसे पालन करने के लिए जितना भी त्याग स्वीकार करना पड़े उसे करने में नहीं हिचकेंगे।

3. विवाहित जीवन के आदर्शों का प्रतिपालन करने के लिये, गुरु निर्देशित पद्धति को, दोनों मिलकर कठोर रूप उसे पालन करेंगे।

दीक्षा के पश्चात् गोस्वामी प्रभु, माता योगमाया देवी एवं नामब्रह्म का चित्र स्थापित करते हुए देवी ने निष्ठापूर्वक सेवा पूजा आरम्भ की।

खालिया में किरणचन्द्र के पूर्वजों की मालगुजारी थी। भूमि–कर वसूल करते समय एकबार प्रजा लोगों के साथ संघर्ष हुआ एवं दो प्रजा का निधन हो गया। इस घटना को देखकर किरणचन्द्र का मन विचलित हो गया। उस समय आत्मचिन्तन करते समय उनके आँखों के सामने एक दृश्य दिखलाई पड़ा। एक विशाल अग्निकुण्ड में सभी गिर रहे हैं एवं जल–भुन कर राख बन जा रहे हैं। ब्रह्माण्ड तीव्र गति से घूम रहा है। उस भ्राम्यामान सौरमण्डल में सूर्य के अपूर्व ज्योति के भीतर से सद्गुरु रूपी भगवान विभ्रान्त प्राणियों को पुकार कर कह रहे हैं– "इस पथ से आ जाओ। सभी समस्याओं का समाधान हो जायगा।" इसे देखकर किरणचन्द्र बहुत चिंतित हो गए। सरोजबाला देवी ने उस समय पति को साहस देते हुए लिखा– "तूफान के भीतर से जाने में पुरुष होकर डरने से कैसे चलेगा ? गुरुदेव की तरफ लक्ष्य रखकर सब कर्तव्य करते रहो।" देवी का पत्र पाकर किरणचन्द को बहुत आश्वासन मिला। इस तरह जीवन के संघर्षमय एवं प्रतिकुल परिस्थिति में सर्वदा साहस देकर अपने निर्दिष्ट पथ में चलने के लिए देवी ने उत्साह प्रदान किया।

इस समय अचानक दो घटना घटी। किरणचन्द्र के एक गुरुभाई की पत्नी ने आत्महत्या कर पति को बन्धन मुक्त की एवं एक दूसरे गुरुभाई ने युवती पत्नी को त्यागकर संन्यास ग्रहण किया। इन दोनों घटनाओं से किरणचन्द्र के मन में पुनः प्रश्न आया कि कोई संसार के बन्धन में फँस जाता है तो कोई सबकुछ त्यागकर संन्यासी हो जाता है। किसी के लिए संसार बन्धन का कारण होता है तो किसी के लिए यह मुक्ति का कारण होता है। सरोजबाला देवी के संबंध में

उन्होंने विचार करके देखा कि वह कभी बन्धन का कारण नहीं हुई एवं उससे साधना में सर्वदा सहायता ही मिली है। ऐसी स्त्री से घृणा करना अपराध है। महाशक्ति की अमर्यादा करने पर क्या धर्म लाभ संभव है ? इस प्रकार जब मन में उथल–पुथल चल रहा था तब अचानक एकदिन माता योगमाया देवी ने अप्राकृत रूप से दर्शन देकर कहा – "महाशक्ति ही सभी का आश्रय है। महाशक्ति की अपार कृपा अनुभव होगी। सरोजबाला की सहायता तुम्हें लक्ष्य की ओर ले जायेगी। वह कभी भी तुम्हारे बन्धन का कारण नहीं होगी।" किरणचन्द्र ने पुनः प्रश्न किया – केवल मेरे लिए पत्नी बन्धन का कारण नहीं होगी या सभी के लिए ? उत्तर में माता योगमाया देवी बोलीं– **"यह साधन जिसे मिलेगा, धीरे–धीरे वह सभी बन्धनों से मुक्त होगा। पत्नी, पुत्र, मित्र, संसार आदि सबका बन्धन और आकर्षण कट जावेगा। इस साधना के भीतर संन्यास का बीज है – यथा समय वह अंकुरित होगा, वर्धित होगा, पल्लवित होगा एवं पूर्णता प्राप्त करेगा।"** किरणचन्द्र ने साष्टांग प्रणाम किया। जब वे उठे तब माता योगमाया देवी अप्रकट हो गई थीं। माता योगमाया देवी के पास से दिव्य आश्वासन–वाणी प्राप्त कर किरणचन्द्र निश्चिन्त हुए। किरणचन्द्र को साधना करते समय एकबार स्वप्न में अपने जीवन के भूत एवं भविष्य काल के दृश्य दिखलाई पड़े। भविष्य में संन्यास लेकर वे भारत के विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हुए अन्त में काशी में स्थित हुए एवं वही उनका देहत्याग हुआ। ऐसा दृश्य उन्होंने स्वप्न में देखा। इस दृश्य को देखने के बाद कई दिन तक रात में उन्हें नींद नहीं आई। इसे देखकर सरोजबाला देवी ने इसका कारण जानना चाहा। किरणचन्द्र से सब कुछ सुनकर देवी ने कहा – "तुम तो संन्यासी हो, क्यों चिन्ता करते हो ?"

किरणचन्द्र ने गोसाँईजी को पत्र लिखा। गोसाँई के पास से उत्तर मिला– "स्थिर रहो, यथा समय सब होगा। जितना भी कर्म है, भोग है शेष होने दो– चिन्ता मत करो।" गोसाँईजी का उत्तर प्राप्त करके किरणचन्द्र के मन की चंचलता दूर हो गई। उस समय यह सब देख–सुनकर सरोजबाला देवी के मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं आई। इस तरह अनुकूल–प्रतिकूल सभी अवस्थाओं में देवी का मन शान्त रहता था। देवी बात बहुत कम करती थीं पर सैकड़ों प्रवचन से जो नहीं हो सकता वह देवी के धैर्य को देखकर एवं अल्प वाणी से मिलता था।

गोस्वामी प्रभु ने शरीर त्याग करने के पहले किरणचन्द्र को उनके भविष्य जीवन के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दिए थे। उसी निर्देश को पालन करते हुए किरणचन्द संसार के कार्यों को करने लगे। पर संयुक्त परिवार में विभिन्न लोगों के स्वार्थपूर्ण आचरण से उन्हें विरक्ति आती थी। उस समय सरोजबाला उत्साह देते हुए कहती थीं, "तुम तो संसार के कल्याण के लिए ही सब कर रहे हो। चिन्ता

मत करो गुरुदेव का नाम लेते हुए अपना कर्तव्य करते रहो।" इस प्रकार की सांत्वना वाणी से किरणचन्द्र के मन में उत्साह एवं बल का संचार होता था।

देवी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों प्राप्त दर्शनादि के संबंध में कभी चर्चा नहीं करती थीं। दरवेशजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– **"मेरे साधना के नियमों का किसी प्रकार का उल्लंघन उन्होंने कभी सहन नहीं किया। मेरे जीवन–संकट में भी डाक्टरों के कहने पर भी निषिद्ध भोजन नहीं करने दी। धर्म की रक्षा के लिए उनका उत्साह, उनकी सहायता, प्रचेष्टा एवं धर्म–साधना सभी विपद और कठिन संकट से मेरी रक्षा की है। धरती की तरह सहनशीलता, नीरव भाषिणी यह नारीमूर्ति यदि मेरी सहायता नहीं करती तो मैं कहाँ गिर पड़ता कह नहीं सकता। वह धीर स्थिर और शान्त थी। विक्षोभहीनता एवं धरती के समान सहनशीलता उनमें स्वाभाविक रूप से थी। इसे देखकर मैं मन ही मन उसे प्रणाम करता हूँ। मुझे भी इसी तरह शान्त कर दो ठाकुर!"**

1307 बंगाब्द (सन् 1900 ई०) में गोस्वामी प्रभु के जन्मोत्सव में किरणचन्द्र ने स्वयं अपने घर में उत्सव किया। इसके पूर्व गोसाँईजी को निवेदन किए गए भोग में उन्होंने भोग ग्रहण के चिन्ह देखा था पर उन्हें परिपूर्ण विश्वास नहीं होता था। इस बार निष्ठापूर्वक देवी ने भोग तैयार किया एवं किरणचन्द्र ने स्वयं निवेदन किया और दरवाजा बन्द करके वहीं बैठकर नाम–जप करने लगे। थोड़ी देर पश्चात् "किरण" शब्द को सुनकर वे चौंक उठे। वे समझ गए यह आवाज तो गोसाँई की है। विस्मित होकर वे सोचने लगे। इसी समय पुनः वही आवाज ठाकुरजी के कमरे से उन्हें सुनाई पड़ी। इस बार आवाज सुनकर वे अपने को स्थिर न रख सके एवं ठाकुर जी का कमरा खोलकर भीतर गए। उस समय उन्होंने देखा कि गोसाँईजी आसन पर बैठे हैं। उनका भोजन हो गया है। पत्थर की थाली का सब भोजन एवं कटोरी में दी गई सब्जी सब समाप्त हो गई है। कमरे में घुसते ही किरणचन्द्र को गोसाँईजी ने अपने जूठे हाथों को धोने के लिए पानी देने को कहा। उस हिसाब से वे जल पात्र पकड़े – यहाँ तक उन्हें होश था। उसके बाद उनकी चेतना लुप्त हो गई एवं वे गिर पड़े। चेतना आने पर उन्होंने देखा उन्हें घेरकर सब लोग खड़े है। वे जल्दी से उठकर बैठ गए पर गोसाँईजी नहीं दिखे। भोजन का पात्र जो उन्होंने शून्य देखा था। वह यथारीति पूर्ण हो गया था। वे व्याकुल हो गए एवं पूछने लगे "किसी ने कुछ देखा है क्या ?" जो चार लोग किरणचन्द्र के साथ–साथ कमरे में घुसे थे, उन्होंने गोसाँईजी को आसन में बैठा हुआ देखा था, उनमें देवी सरोजबाला भी थी। यह घटना गोसाँईजी के देहांत के 14 महीने बाद हुई थी। इस तरह किरणचन्द्र एवं देवी सरोजबाला ने गोसाँईजी का प्रत्यक्ष

दर्शन पाकर धन्य हो गए।

बंगला सन् 1319 (सन् 1912 ई०) में गोस्वामी प्रभु ने अप्राकृत रूप से दर्शन देकर किरणचन्द्र को संन्यास लेने का निर्देश दिया। सभी प्रकार की आवश्यक व्यवस्था कर कोलकाता में आकर सरोजबाला देवी को उन्होंने सब कुछ कहा। देवी का मन पहले से प्रस्तुत था। पति को सर्वश्रेष्ठ आश्रम ग्रहण करने के लिए तैयार देखकर मन में देवी असीम सन्तोष प्राप्त की एवं उन्हें बाधा न देकर उत्साहित किया। पति ने गोस्वामीजी के निर्देश के अनुसार प्रयाग त्रिवेणी संगम में संन्यास ग्रहण किया। उनके संन्यास का नाम था कैशोरानन्द सरस्वती, पर वे स्वामी किरणचाँद दरवेश नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके बाद आगे किरणचाँद के बदले दरवेशजी सम्बोधन किया जायेगा।

दरवेशजी संन्यास के बाद तीन वर्ष तक विभिन्न तीर्थों का भ्रमण एवं नाम–साधना करते रहे। पति का संवाद अधिक दिनों तक नहीं मिलने से देवी कभी–कभी चिन्तित हो जाती थीं। दरवेशजी तीर्थ–भ्रमण समाप्त कर जब काशी आए तब गोसाँईजी के निर्देशानुसार देवी सरोजबाला को भी वे काशी ले आए। देवी भी दरवेशजी के निर्देश के अनुसार गोसाँईजी की पूजा एवं आश्रम की सेवा में सहायता करने लगीं। काशी में पहले किराये के मकान में अस्थाई रूप से आश्रम था। बाद में जब सोनारपुरा रोड पर 5 ए0 औध गर्वी रोड पर मठ की स्थापना हो गई तब देवी मठ में आ गई। वे मठ की परिचालना में बहुत परिश्रम करतीं थी। वे अपने शरीर की चिन्ता नहीं करती थीं। दरवेशजी को कार्यवश विभिन्न स्थानों में जाना पड़ता था। उस समय आश्रम की व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से देवी को करनी पड़ती थी। अधिक परिश्रम करने के कारण देवी प्रायः अस्वस्थ हो जाती थी। पर इस अवस्था में भी वे सेवा पूजा के कार्यों में अपने को लगाये रखती। एकबार इसी तरह दरवेशजी कहीं बाहर गए थे, जब वे वापस आए तब सरोजबाला देवी को अत्यन्त अस्वस्थ देखकर अपने एक शिष्य को पत्र में उन्होंने लिखा–

"तुम लोगों की माँ बहुत अस्वस्थ है पर उन्हें विश्राम देना किसी का साध्य नहीं है। शायद श्मशान भूमि के बिना उनको विश्राम नहीं मिलेगा।"

मठ के सेवा कार्य एवं भोग में किसी भी प्रकार की कंजूसी देवी को पसंद नहीं थी। इस विषय पर कभी–कभी दरवेशजी के साथ देवी की बहस भी हो जाती थी। एकबार दरवेशजी ने एक ऐसे ही मौके पर अपने एक शिष्य को पत्र में लिखा–

"आश्रम का खर्चा इतना बढ़ गया है कि इसे लेकर तुम लोगों की माँ के साथ मेरा प्रायः झगड़ा हो जाता है। क्या किया जाय ? वह अपनी इच्छानुसार खर्चा न कर पाने पर रोना चालू कर देती है। केवल लोगों को देना एवं खिलाना ही मानो

उनका परमधर्म है।"

एक समय मठ का खर्च कम करने के लिए दरवेशजी ने कुछ नियम चालू किये। उसमें एक नियम था। भोग में घी बन्द करना। भोग में घी बन्द करते ही देवी अत्यन्त दुःखित हो गई। अपने जीवन में आज तक बिना घी के वह भोग कभी नहीं लगाई ऐसा कहकर वह विलाप करने लगीं। दरवेशजी ने उनकी बात नहीं मानी। देवी ने अपने हाथ की चूड़ियों को बेचकर घी लाने का विचार किया। इसी समय अचानक एक व्यक्ति ने पाँच सेर घी भेज दिया। इस घटना के सम्बन्ध में दरवेशजी ने लिखा था– "ढाका के एक लखपति मालगुजार हैं वे मुझे बहुत श्रद्धा करते हैं। अभी भी उन्हें दीक्षा नहीं मिली है। इनके घर में कई पुरखों से गोपीनाथजी की सेवा होती है। जिस दिन मैंने काशी में घी भोग देना बन्द कर दिया, उसी दिन रात के समय गोमीनाथजी ने उस व्यक्ति को स्वप्न में कहा, "काशी में दरवेश को पाँच सेर अच्छा गाय का घी भेज दो।" उस व्यक्ति ने घी भेजकर लिखा, "मैं आपको कुछ भेजूँगा ऐसा कभी भी मन में नहीं सोचा था अचानक इस प्रकार का स्वप्न देखा।" इस घटना के बाद हताश होकर मैं सब छोड़ दिया। खर्च कम करने या बढ़ाने के ऊपर अपना विचार अब नहीं रखना चाहता। गोसाँईजी ने कहा है कि अपव्यय (व्यर्थ खर्च) न होने पर अभाव नहीं रहेगा।"

देश की सेवा में एवं धार्मिक कार्यों में देवी सर्वदा खुले मन से दान करती रहती थीं। पुरी में जटियाबाबा के समाधि मंदिर का निर्माण कार्य जब प्रारम्भ हुआ तब देवी ने कई बार अपने अलंकारों को दान कर दिया था। आश्रम में शिष्य एवं भक्त लोग प्रायः आते रहते थे। देवी का सबसे अधिक प्रिय कार्य था उन्हें अच्छी तरह खिलाना। दरवेशजी ने देवी को इस तरह अत्यधिक परिश्रम करते देख एक शिष्य को पत्र में लिखा था, **"तुम लोगों की माँ रात तीन बजे से शुरू करके रात दस बजे तक अपने हाथों से मंदिर में गोसाँईजी, माता योगमाया देवी एवं श्री नामब्रह्म की सेवा करती रहती है। कठोर तपस्या से जो नहीं होता है इस सेवा द्वारा और अधिक उच्च अवस्था लाम हो सकती है। तुम्हारी माँ एकबार ठाकुर जी के कमरे में घुसने पर फिर बाहर आना ही नहीं चाहती। तीन–चार घंटे तक उन्हें ध्यानस्थ अवस्था में मैंने देखा है।"** दरवेशजी के इस पत्र से यह ज्ञात हो जाता है कि साधना में बैठने पर वे किस तरह तल्लीन हो जातीं थी।

दरवेशजी ने अपने देहावसान शरीर छोड़ने के पूर्व देवी सरोजबाला को मठ की सारी जिम्मेदारी एवं परिचालना का भार देकर कहा था–

"तुमने मुझे कभी भी कष्ट नहीं दिया वरन् मैंने ही तुम्हें कभी–कभी कष्ट

दिया है। मुझे क्षमा करना। जिस दिन देखा कि तुमने माता योगमाया देवी के अंश में जन्म लिया है। उस दिन से तुम्हें पत्नी की तरह व्यवहार नहीं किया। यह तुम भी जानती हो।" और एकदिन उन्होंने कहा– "तुम्हारे शरीर की जो अवस्था है उसे देखकर यह कहा नहीं जा सकता कि पहले कौन जायेगा। जो भी हो तुम्हारा और जन्म नहीं होगा। माता योगमाया देवी के साथ मिलित होवोगी।"

दरवेशजी ने 17 आषाढ़ 1353 बंगाब्द (1946 ई०) में शरीर त्याग दिया। मठ परिचालन का सम्पूर्ण भार देवी के ऊपर पड़ा। देवी सरोजबाला ने दरवेशजी के शरीर छोड़ने के लगभग एक वर्ष बाद दीक्षा देना आरम्भ किया। दरवेशजी के शरीर छोड़ने के पश्चात् अनेक लोग उनके पास दीक्षा लेने आते थे पर उन्होंने उस समय किसी को दीक्षा न देकर उन्हें स्वामी असीमानन्द सरस्वती एवं मेदनीपुर के श्री कुमुदबान्धव चट्टोपाध्याय के पास भेज देती थीं। स्वामी असीमानन्द जी पुरुलिया जिले के अन्तर्गत रामचन्द्रपुर आश्रम में रहते थे एवं दरवेशजी महाराज के शिष्य थे। श्री कुमुदबान्धव जी गोसाँईजी के शिष्य थे। उस समय देवी कहती थी कि मुझे अभी तक दीक्षा देने का आदेश नहीं मिला है।

भागवत तिवारी दीर्घ समय दरवेशजी के साथ विभिन्न स्थानों में जाते रहते थे एवं उनकी सेवा करते थे। पर दीक्षा लेने की आकांक्षा उनकी नहीं थी। दरवेशजी के देहावसान के पश्चात् वे देवी के साथ कभी–कभी विभिन्न स्थानों में जाते थे। 1355 बंगाब्द (सन् 1948 ई०) पुरी में गोसाँईजी के आश्रम में निर्वाण–तिथि के उत्सव में देवी के साथ वे भी आए। यहाँ आने के बाद भागवतजी का स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया। एकदिन जब वे बिस्तर में सोये हुए थे तब अचानक दरवेशजी एवं गोसाँईजी ने उन्हें दर्शन देकर माता सरोजबाला देवी से दीक्षा लेने का निर्देश दिया। दूसरे दिन ग्यारह बजे देवी ने उन्हें दीक्षा दी। भाग्यवान भागवतजी माता सरोजबाला देवी के प्रथम शिष्य हुए। इसके बाद अनेक लोगों ने दीक्षा प्राप्त की।

ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी के शिष्य धनबाद के क्षितिशचन्द्र के घर में दरेवशजी एवं माता सरोजबाला देवी अनेक बार गए थे। इनके कुछ पुत्रों की एवं अनेक लोगों की दीक्षा देवी के पास हुई। देवी प्रायः प्रतिवर्ष गर्मी के दिनों में कोलकाता जाती थीं एवं दरवेशजी के शिष्य प्यारी मोहन पोद्दार के घर ठहरती थीं। उस समय यहाँ कीर्तन–भजन आदि में अनेक लोग आते थे। माताजी से उस समय अनेक लोगों ने दीक्षा प्राप्त किया। दरवेशजी का व्यवहार बाह्यतः थोड़ा कठोर लगता था पर माताजी के पास शिष्यगण जो स्नेह प्राप्त करते थे वह अनुपम था।

माताजी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान एवं पूजादि प्रायः 7 बजे तक करती थीं। बाल–भोग के पश्चात् उनके निर्देशानुसार दोपहर में गोसाँईजी के भोग की

व्यवस्था की जाती थी। सारा दिन भक्तों के आगमन एवं सत्संग में बीत जाता था। इस तरह दीर्घकाल तक माताजी की कृपा एवं आशीर्वाद लोगों को मिलता रहा। माताजी की जब आयु 80 वर्ष हो गई उस समय वे अधिक समय ध्यानस्थ रहती थीं। भाव अवस्था में उन्हें कभी–कभी होश भी नहीं रहता था। कभी–कभी परिचित लोगों को भी वे पहचान नहीं पाती। इस कारण कुछ लोगों के मन में सन्देह भी होता था। पर जिन्होंने माताजी की कृपा प्राप्त की थी वे जानते थे की माताजी आजकल अधिकांश समय भावमग्न रहती हैं इसी कारण इस प्रकार करती हैं।

काशी में रहते समय माता आनन्दमयी अनेक बार मठ में आईं थी। दरवेशजी एवं माता सरोजबाला देवी को वे बहुत श्रद्धा करती थीं। दरवेशजी के शरीर त्याग करने के बाद भी जब तक माता सरोजबाला देवी जीवित रहीं, माँ आनन्दमयी कई बार उनसे मिलने आईं। एकबार माता आनन्दमयी मठ में आकर माता सरोजबाला से कही कि माँ मैं विन्ध्याचल जा रही हूँ। उस समय माता सरोजबाला देवी उनसे बोली कि सामने ग्रहण है उस समय क्या तुम काशी में गंगा स्नान नहीं करोगी ? माँ आनन्दमयी ने कहा– "तुम्हारी जैसी इच्छा, माँ मैं ग्रहण के समय अवश्य यहाँ स्नान करूँगी।" ग्रहण के समय वे काशी में स्नान करने के बाद माता सरोजबाला देवी को खबर भेजी कि माताजी के निर्देशानुसार मैंने ग्रहण में यहाँ स्नान किया। इस तरह दोनों महान साधिकाओं का आपस में अन्तरंग संबंध था।

दरवेशजी के देहावसान के लगभग 15 वर्ष पश्चात् 1961 ई० में देवी ने काशीधाम में श्रीश्री विजयकृष्ण मठ में शरीर त्याग दिया। देवी के जीवन की पर्यालोचना करने पर मालूम चलता है कि यद्यपि विशाल मालगुजारी का अंश एवं नाम–यश का कोई अभाव नहीं था, फिर भी अपने को इस आकर्षण से अलग रखकर एवं भोग–विलास से दूर रहते हुए, उन्होंने पति की साधना में आवश्यक सहायता की। अपना सब कार्य वे इस प्रकार करती थीं कि साधारण लोग कुछ समझ भी नहीं पाते थे। पति के किसी भी बात का प्रतिवाद उन्होंने नहीं किया। यद्यपि माताजी ने स्कूल–कॉलेज की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी फिर भी किसी समस्या के आने पर अथवा भक्त लोगों के प्रश्नों का उत्तर वे इस तरह देती थीं कि लोग मुग्ध हो जाते थे। माताजी शिष्यों के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर पत्र के द्वारा देती थीं। उनमें से केवल एक पत्र का उत्तर यहाँ दिया जा रहा है–

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर तुम लोगों के गुरुजी (दरवेशजी) अच्छा दे सकते थे और दे सकते हैं मंदिर पत्रिका के सम्पादक असीमानन्द। मैं और क्या कहूँ ? फिर भी थोड़ा बहुत जो जानती हूँ कह रही हूँ– "**स्मार्त मत का अर्थ शक्ति नहीं समझना। स्मार्त मत का अर्थ है स्मृति शास्त्रों का मत या सिद्धान्त। शास्त्र**

एवं सदाचार का पालन करने के लिए गोसाँईजी सर्वदा कहते थे। वे स्मृति–शास्त्र के अनुसार एकादशी व्रत का पालन करते थे। हम लोग भी ऐसा ही करते हैं। साम्प्रदायिक भावना के साथ–साथ गोस्वामी मत प्रारम्भ हुआ है। पहले यह नहीं था। यदि तुम्हारे समाज में स्मार्त मत का प्रचलन न रहे तो गोस्वामी मत के अनुसार एकादशी करना। व्रत किया जाता है मन की पवित्रता की रक्षा के लिये। जिस दिन उसे अच्छी तरह कर सको उसी दिन करना। 'उप' का अर्थ है समीप में, 'वास' का अर्थ है रहना अर्थात भगवान का संग करना ही उपवास है। अर्थात श्वाँस–प्रश्वाँस में नाम–जप करना ही वास्तविक उपवास है, अथवा नाम–नामी–नामदाता अभिन्न मानकर उनके समीप में रहना ही उनके चरणों में रहना होगा। यदि नाम–जप नहीं हो और भूखा रहे तो उपवास नहीं हुआ। ऐसा थोड़ा बहुत फायदा तो है पर नाम–जप की तुलना में कुछ भी नहीं। पूजा में तुलसी, फूल सभी दे सकते हो पर तुलसी न देने से ठीक पूजा नहीं होती। तुलसी जब नहीं मिलती तब फूल से, फूल न मिलने पर जल से पूजा की जाती है। पूजा नियमित समय पर करना ही नियम है। यदि ऐसा संभव न हो तो नित्य पूजा न करके विशेष– विशेष तिथि में पूजा की जा सकती है। नित्य पूजा करने पर समय ठीक रखना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो सेवा अपराध होता है। जो भी करो नियमित समय पर करो। भोग में थोड़ी भी देरी होने पर तुम्हारे ठाकुर (दरवेशजी) उस दिन भोजन नहीं करते थे। दीक्षा मिलने पर ही इष्ट–नाम के द्वारा तुलसी देने से पूजा सम्पूर्ण होती है। केवल ऐसे ही देने पर ठीक शांति नहीं मिलती। यद्यपि सभी ठीक विधि से हुआ पर श्री चरणों में वह नहीं पहुँचता। पर कभी–कभी मन में इच्छा होने पर भक्तिपूर्वक कोई भी तुलसी दे सकता है। भक्ति ही सब कुछ है। भक्ति द्वारा सब पूजा या साधना पूर्ण होती है।"

माता सरोजबाला देवी सद्‌गुरु के निर्देश प्राप्त कर दीक्षा देती थीं। श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी प्रदत्त साधना में जो आचार्य या सद्‌गुरु होते हैं उन्हें गोस्वामीजी की प्रत्यक्ष अनुमति प्राप्त होना आवश्यक है। अन्य सम्प्रदाय की तरह गद्‌दी परम्परा या महन्त परम्परा इस दीक्षा में नहीं है। प्रत्येक दीक्षा प्रार्थी को कौन सा मंत्र देना है इसे गोस्वामीजी, दीक्षा देते समय आचार्य को बोल देते हैं। सभी लोग सद्‌गुरु नहीं हो सकते। भगवत निर्देश पाना आवश्यक है इस संबंध में दरवेशजी महाराज ने एक शिष्य को पत्र के उत्तर में लिखा था– **"सभी सम्प्रदाय के रीति के अनुसार गुरु और परमगुरु कहकर जो पार्थक्य है तुम लोगों की साधना में यह नहीं है। गुरु के पास से मंत्र लेकर, जब चाहा सुविधा देखकर**

एक शिष्य बना लिया तुम लोगों को ऐसा नहीं चलेगा। जिस दिन इस प्रकार मृत मंत्र चलेगा उसी दिन से साधारण गृहस्थ गुरु की तरह माला–जप एवं चोरी एक साथ चलेगी।"

"यह साधना एक शक्ति है। यह शक्ति स्वयं प्राप्त होने पर भी श्री गुरु की प्रत्यक्ष अनुमति के बिना दूसरे के देह में संचार करने की क्षमता (सामर्थ्य) उत्पन्न नहीं होती। यह अनुमति तुम्हारे गुरु ने प्राप्त कर ली है। इस कारण तुम लोग बच गए नहीं तो गतानुगतिक बिना सोचे–विचारे अवस्था होती। शक्तिदाता गोसाँईजी हैं।"

"अतएव तुम्हारे यथार्थ गुरु गोसाँईजी हैं एवं यथार्थ तथा व्यवहारिक दोनों गुरु यह 'दरवेश' है। जब साधना में अग्रसर होओगे तब नाम और नामी जिस प्रकार अभिन्न है समझोगे, उसी प्रकार तुम्हारे गुरु और गोसाँईजी एक ही व्यक्ति हैं, वह समझ पाओगे।

****

ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय नमः

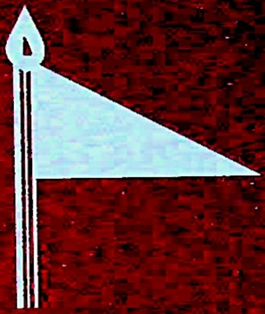

सद्गुरू श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के उपदेश

१. ऐसा दिन नहीं रहेगा।
२. आत्मप्रशंसा मत करो।
३. परनिन्दा मत करो।
४. अहिंसा परमो धर्मः।
५. सब प्राणियों पर दया करो।
६. शास्त्र एवं महात्माओं पर विश्वास रखो।
७. शास्त्र एवं महात्माओं के आचरण से
जो मेल न खाये उसे विषवत् त्याग दो।
८. नाहंकारात् परो रिपुः।

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, पो० रघुनाथपुर
जिला - पुरुलिया (पश्चिम बंग)
पिन कोड - 723133